मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं०	१९९३	से	२०२९ तक	४५,२५०
सं०	२०३३	ग्यारहवाँ	संस्करण	५,०००
सं०	२०३४	बारहवाँ	संस्करण	१०,०००
				कुल ६०,२५०

मूल्य एक रुपया साठ पैसे

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

निवेदन

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यकके प्रपाठक ७-८ और ९ का नाम तैत्तिरीयोपनिषद् है। इनमें सप्तम प्रपाठक, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद्की शीक्षावल्ली कहते हैं, सांहिती उपनिषद् कही जाती है और अष्टम तथा नवम प्रपाठक, जो इस उपनिषद्की ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली हैं, वारुणी उपनिषद् कहलाती हैं। इनके आगे जो दशम प्रपाठक है उसे नारायणोपनिषद् कहते हैं, वह याज्ञिकी उपनिषद् है। इनमें महत्त्वकी दृष्टिसे वारुणी उपनिषद् प्रधान है, उसमें विशुद्ध ब्रह्मविद्याका ही निरूपण किया गया है। किंतु उसकी उपलब्धिके लिये चित्तकी एकाग्रता एवं गुरुकृपाकी आवश्यकता है। इसके लिये शीक्षावल्लीमें कई प्रकारकी उपासना तथा शिष्य एवं आचार्यसम्बन्धी शिष्टाचारका निरूपण किया गया है। अतः औपनिषद सिद्धान्तको हृदयङ्गम करनेके लिये पहले शीक्षावल्ल्युक्त उपासनादिका ही आश्रय लेना चाहिये। इसके आगे ब्रह्मानन्दवल्ली तथा भृगुवल्लीमें जिस ब्रह्मविद्याका निरूपण है उसके सम्प्रदाय-प्रवर्तक वरुण हैं; इसलिये वे दोनों वल्लियाँ वारुणी विद्या अथवा वारुणी उपनिषद् कहलाती हैं।

इस उपनिषद्पर भगवान् शङ्कराचार्यने जो भाष्य लिखा है वह बहुत ही विचारपूर्ण और युक्तियुक्त है। उसके आरम्भमें ग्रन्थका उपोद्घात करते हुए भगवान्ने यह बतलाया है कि मोक्षरूप परम

निःश्रेयसकी प्राप्तिका एकमात्र हेतु ज्ञान ही है। इसके लिये कोई अन्य साधन नहीं है। मीमांसकोंके मतमें 'स्वर्ग' शब्दवाच्य निरतिशय प्रीति (प्रेय) ही मोक्ष है और उसकी प्राप्तिका साधन कर्म है। इस मतका आचार्यने अनेकों युक्तियोंसे खण्डन किया है और स्वर्ग तथा कर्म दोनोंहीकी अनित्यता सिद्ध की है।

इस प्रकार आरम्भ करके फिर इस वल्लीमें बतलायी हुई भिन्न-भिन्न उपासनादिकी संक्षिप्त व्याख्या करते हुए इसके उपसंहारमें भी भगवान् भाष्यकारने कुछ विशद विचार किया है। एकादश अनुवाकमें शिष्यको वेदका स्वाध्याय करानेके अनन्तर आचार्य सत्यभाषण एवं धर्माचरणादिका उपदेश करता है तथा समावर्तन संस्कारके लिये आदेश देते हुए उसे गृहस्थोचित कर्मोंकी भी शिक्षा देता है। वहाँ यह बतलाया गया है कि देवकर्म, पितृकर्म तथा अतिथिपूजनमें कभी प्रमाद न होना चाहिये, दान और स्वाध्याय-में भी कभी भूल न होनी चाहिये, सदाचारकी रक्षाके लिये गुरुजनों-के प्रति श्रद्धा रखते हुए उन्हींके आचरणोंका अनुकरण करना चाहिये—किंतु वह अनुकरण केवल उनके सुकृतोंका हो, दुष्कृतोंका नहीं। इस प्रकार समस्त वल्लीमें उपासना एवं गृहस्थजनोचित सदाचारका ही निरूपण होनेके कारण किसीको यह आशंका न हो जाय कि ये ही मोक्षके प्रधान साधन हैं इसलिये आचार्य फिर मोक्षके साक्षात् साधनका निर्णय करनेके लिये पाँच विकल्प करते हैं—(१) क्या परम श्रेयकी प्राप्ति केवल कर्मसे हो सकती है? (२) अथवा विद्याकी अपेक्षायुक्त कर्मसे, (३) किंवा कर्म और ज्ञानके समुच्चयसे, (४) या कर्मकी अपेक्षावाले ज्ञानसे, (५) अथवा केवल ज्ञानसे? इनमेंसे अन्य सब पक्षोंको सदोष सिद्ध करते हुए आचार्यने यही निश्चय किया है कि केवल ज्ञान ही मोक्षका साक्षात् साधन है।

इस प्रकार शीक्षावल्लीमें संहितादिविषयक उपासनाओंका निरूपण कर फिर ब्रह्मानन्दवल्लीमें ब्रह्मविद्याका वर्णन किया गया है। इसका

पहला वाक्य है—'*ब्रह्मविदाप्नोति परम्*'। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यह सूत्रभूत वाक्य ही सम्पूर्ण ब्रह्मविद्याका बीज है। ब्रह्म और ब्रह्मवित्के स्वरूपका विचार ही तो ब्रह्मविद्या है और ब्रह्मवेत्ताकी पर-प्राप्ति ही उसका फल है; अतः निःसंदेह यह वाक्य फलसहित ब्रह्मविद्याका निरूपण करनेवाला है। आगेका समस्त ग्रन्थ इस सूत्रभूत मन्त्रकी ही व्याख्या है। उसमें सबसे पहले '*सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म*' इस वाक्यद्वारा श्रुति ब्रह्मका लक्षण करती है। इससे ब्रह्मके स्वरूपका निश्चय हो जानेपर उसकी उपलब्धिके लिये पञ्चकोशका विवेक करनेके अभिप्रायसे उसने पक्षीके रूपक-द्वारा पाँचों कोशोंका वर्णन किया है और उन सबके आधाररूपसे सर्वान्तरतम परब्रह्मका '*ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा*' इस वाक्यद्वारा निर्णय किया है। इसके पश्चात् ब्रह्मकी असत्ता माननेवाले पुरुषकी निन्दा करते हुए उसका अस्तित्व स्वीकार करनेवाले पुरुषकी प्रशंसा की है और उसे 'सत्' बतलाया है। फिर ब्रह्मका सार्वात्म्य प्रतिपादन करनेके लिये '*सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेय*' इत्यादि वाक्यद्वारा उसीको जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बतलाया है।

इस प्रकार सत्संज्ञक ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति दिखलाकर फिर सप्तम अनुवाकमें असत्से ही सत्की उत्पत्ति बतलायी है। किंतु यहाँ 'असत्' का अर्थ अभाव न समझकर अव्याकृत ब्रह्म समझना चाहिये और 'सत्' का व्याकृत जगत्; क्योंकि अत्यन्ताभावसे किसी भावपदार्थकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और उत्पत्तिसे पूर्व सारे पदार्थ अव्यक्त थे ही। इसलिये 'असत्' शब्द अव्याकृत ब्रह्मका ही वाचक है। वह ब्रह्म रसस्वरूप है; उस रसकी प्राप्ति होनेपर यह जीव रसमय—आनन्दमय हो जाता है। उस रसके लेशसे ही सारा संसार सजीव देखा जाता है। जिस समय साधनाका परिपाक होनेपर पुरुष इस अदृश्य अशरीर अनिर्वाच्य और अनाश्रय परमात्मामें स्थिति लाभ करता है उस समय वह सर्वथा निर्भय हो जाता है और जो उसमें थोड़ा-सा भी अन्तर करता है उसे भय प्राप्त हो

अतः ब्रह्ममें स्थित होना ही जीवकी अभयस्थिति है, क्योंकि वहाँ भेदका सर्वथा अभाव है और भय भेदमें ही होता है '*द्वितीयाद्वै भयं भवति* ।'

इस प्रकार ब्रह्मनिष्ठकी अभयप्राप्तिका निरूपण कर ब्रह्मके सर्वान्तर्यामित्व और सर्वशासकत्वका वर्णन करते हुए ब्रह्मवेत्ताके आनन्दकी सर्वोत्कृष्टता दिखलायी है । वहाँ मनुष्य, मनुष्यगन्धर्व, देवगन्धर्व, पितृगण, आजानजदेव, कर्मदेव, देव, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति और ब्रह्मा—इन सबके आनन्दोंको उत्तरोत्तर शतगुण बतलाते हुए यह दिखलाया है कि निष्काम ब्रह्मवेत्ताको वे सभी आनन्द प्राप्त हैं । क्यों न हो ? सबके अधिष्ठानभूत परब्रह्मसे अभिन्न होनेके कारण क्या वह इन सभीका आत्मा नहीं है । अतः सर्वरूपसे वही तो सारे आनन्दोंका भोक्ता है । भोक्ता ही क्यों सर्व-आनन्दस्वरूप भी तो वही है, सारे आनन्द उसीके स्वरूपभूत आनन्द-महोदधिके क्षुद्रातिक्षुद्र कण ही तो हैं ।

इसके पश्चात् हृदयपुण्डरीकस्थ पुरुषका आदित्यमण्डलस्थ पुरुषके साथ अभेद करते हुए यह बतलाया है कि जो इन दोनोंका अभेद जानता है वह इस लोक अर्थात् दृष्ट और अदृष्ट विषयसमूहसे निवृत्त होकर इस समष्टि अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय आत्माको प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार सारा प्रपञ्च उसका अपना शरीर हो जाता है—उसके लिये अपनेसे भिन्न कुछ भी नहीं रहता । उस निर्भय और अनिर्वाच्य स्वात्मतत्त्वकी जिसे प्राप्ति हो जाती है, उसे न तो किसीका भय रहता है और न किसी कृत या अकृतका अनुताप ही । जब अपनेसे भिन्न कुछ है ही नहीं तो भय किसका और क्रिया कैसी ? क्रिया तो देश, काल या वस्तुका परिच्छेद होनेपर ही होती है, उस एक अखण्ड अमर्यादित, अद्वितीय वस्तुमें किसी प्रकारकी क्रियाका प्रवेश कैसे हो सकता है ?

इस प्रकार ब्रह्मानन्दवल्लीमें ब्रह्मविद्याका निरूपण कर भृगुवल्लीमें उसकी प्राप्तिका मुख्य साधन पञ्चकोश-विवेक दिखलानेके लिये वरुण और भृगुका आख्यान दिया गया है। आत्मतत्त्वका जिज्ञासु भृगु अपने पिता वरुणके पास जाता है और उससे प्रश्न करता है कि जिससे ये सब भूत उत्पन्न हुए हैं, जिससे उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं और अन्तमें जिसमें ये लीन हो जाते हैं उस तत्त्वका मुझे उपदेश कीजिये। इसपर वरुणने अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और वाणी—ये ब्रह्मोपलब्धिके छः मार्ग बतलाकर उसे तप करनेका आदेश दिया और कहा कि *'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्म'*—तपसे ब्रह्मको जाननेकी इच्छा कर, तप ही ब्रह्म है। भृगुने जाकर मनःसमाधान-रूप तप किया और इन सबमें अन्नको ही ब्रह्म जाना। किंतु फिर उसमें संदेह हो जानेपर उसने फिर वरुणके पास आकर वही प्रश्न किया और वरुणने भी फिर वही उत्तर दिया। इसके पश्चात् उसने प्राणको ब्रह्म जाना और इसी प्रकार पुनः-पुनः संदेह और पुनः-पुनः वरुणके वही आदेश देनेपर अन्तमें आनन्दको ही ब्रह्म निश्चय किया।

यहाँ ब्रह्मज्ञानका प्रथम द्वार अन्न था। उसीसे श्रुति यह आदेश करती है कि अन्नकी निन्दा न करे—यह नियम है, अन्नका तिरस्कार न करे—यह नियम है और खूब अन्न संग्रह करे—यह भी नियम है। यदि कोई अपने निवासस्थानपर आवे तो उसकी उपेक्षा न करे, सामर्थ्यानुसार अन्न, जल एवं आसनादिसे उसका अवश्य सत्कार करे। ऐसा करनेसे वह अन्नवान्, कीर्तिमान् तथा प्रजा, पशु और ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होता है। इस प्रकार अन्नकी महिमाका वर्णन कर भिन्न-भिन्न आश्रयोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे उसकी उपासनाका विधान किया गया है। उस उपासनाके द्वारा जब उसे अपने सार्वात्म्यका अनुभव होता है उस समय उस लोकोत्तर आनन्दसे उन्मत्त होकर वह अपनी कृतकृत्यताको व्यक्त करते हुए अत्यन्त विस्मयपूर्वक गा उठता है—*'अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादो ३ऽहमन्नादो ३ऽहमन्नादः। अहꣳश्लोककृदहꣳश्लोककृदहꣳश्लोककृत्'* इत्यादि। उसकी यह उन्मत्तो-

उसके कृतकृत्य हृदयका उद्गार है, यह उसका अनुभव है और यही है उसके आध्यात्मिक संग्रामके अयत्नसाध्य भगवत्कृपालभ्य विजयका उद्घोष ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपनिषद्का प्रधान लक्ष्य ब्रह्मज्ञान ही है । इसकी वर्णन-शैली बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी और शृङ्खलाबद्ध है । भगवान् शङ्कराचार्यने इसके ऊपर जो भाष्य लिखा है, वह भी बहुत विचारपूर्ण है । आशा है, विज्ञजन उससे यथेष्ट लाभ उठानेका प्रयत्न करेंगे ।

इस उपनिषद्के प्रकाशनके साथ प्रथम आठ उपनिषदोंके प्रकाशनका कार्य समाप्त हो जाता है । हमें इनके अनुवादमें श्रीविष्णुबापटशास्त्रीकृत मराठी-अनुवाद, श्रीदुर्गाचरण मजूमदारकृत बंगला-अनुवाद, ब्रह्मनिष्ठ पं० श्रीपीताम्बरजीकृत हिंदी-अनुवाद और महामहोपाध्याय डा० श्रीगङ्गानाथजी झा एवं पं० श्रीसीतारामजी शास्त्रीकृत अंग्रेजी अनुवादसे यथेष्ट सहायता मिली है । अतः हम इन सभी महानुभावोंके अत्यन्त कृतज्ञ हैं । फिर भी हमारी अल्पज्ञताके कारण इनमें बहुत-सी त्रुटियाँ रह जानी स्वाभाविक हैं । उनके लिये हम कृपालु पाठकोंसे सविनय क्षमा-प्रार्थना करते हैं और आशा करते हैं कि वे उनकी सूचना देकर हमें अनुगृहीत करें, जिससे कि हम अगले संस्करणमें उनके संशोधनका प्रयत्न कर सकें ।

—अनुवादक



श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

१. शान्तिपाठ १३

शीक्षावल्ली

प्रथम अनुवाक

२–सम्बन्ध-भाष्य १४

३–शीक्षावल्लीका शान्तिपाठ २१

द्वितीय अनुवाक

४–शीक्षाकी व्याख्या २५

तृतीय अनुवाक

५–पाँच प्रकारकी संहितोपासना २७

चतुर्थ अनुवाक

६–श्री और बुद्धिकी कामनावालोंके लिये जप और होम-सम्बन्धी मन्त्र ३३

पञ्चम अनुवाक

७–व्याहृतिरूप ब्रह्मकी उपासना ४१

षष्ठ अनुवाक

८–ब्रह्मके साक्षात् उपलब्धिस्थान हृदयाकाशका वर्णन ... ४७

सप्तम अनुवाक

९–पाङ्क्तरूपसे ब्रह्मकी उपासना ... ५४

अष्टम अनुवाक

१०–ओङ्कारोपासनाका विधान ५७

नवम अनुवाक

११–ऋतादि शुभकर्मोंकी अवश्यकर्तव्यताका विधान ६१

दशम अनुवाक

१२–त्रिशंकुका वेदानुवचन ६५

एकादश अनुवाक

१३–वेदाध्ययनके अनन्तर शिष्यको आचार्यका उपदेश ... ६८

१४–मोक्ष-साधनकी मीमांसा ... ७८

द्वादश अनुवाक ... ...

ब्रह्मानन्दवल्ली

प्रथम अनुवाक

१५—ब्रह्मानन्दवल्लीका शान्तिपाठ ९४

१६—ब्रह्मज्ञानके फल, सृष्टिक्रम और अन्नमय कोशरूप पक्षीका वर्णन ... ९६

द्वितीय अनुवाक

१७—अन्नकी महिमा तथा प्राणमय कोशका वर्णन १२४

तृतीय अनुवाक

१८—प्राणकी महिमा और मनोमय कोशका वर्णन १३०

चतुर्थ अनुवाक

१९—मनोमय कोशकी महिमा तथा विज्ञानमय कोशका वर्णन ... १३८

पञ्चम अनुवाक

२०—विज्ञानकी महिमा तथा आनन्दमय कोशका वर्णन ... १४१

षष्ठ अनुवाक

२१—ब्रह्मको सत् और असत् जाननेवालोंका भेद, ब्रह्मज्ञ और अब्रह्मज्ञकी ब्रह्मप्राप्तिके विषयमें शङ्का तथा सम्पूर्ण प्रपञ्चरूपसे ब्रह्मके स्थित होनेका निरूपण १५०

सप्तम अनुवाक

२२—ब्रह्मकी सुकृता एवं आनन्दरूपताका तथा ब्रह्मवेत्ताकी अभय-प्राप्तिका वर्णन १७३

अष्टम अनुवाक

२३—ब्रह्मानन्दके निरतिशयत्वकी मीमांसा १८२

२४—ब्रह्मात्मैक्य दृष्टिका उपसंहार १९१

नवम अनुवाक

२५—ब्रह्मानन्दका अनुभव करनेवाले विद्वान्‌की अभयप्राप्ति ... २०८

भृगुवल्ली

प्रथम अनुवाक

२६—भृगुका अपने पिता वरुणके पास जाकर ब्रह्मविद्याविषयक प्रश्न करना तथा वरुणका ब्रह्मोपदेश २१३

द्वितीय अनुवाक

२७—अन्न ही ब्रह्म है—ऐसा जानकर और उसमें ब्रह्मके लक्षण घटाकर भृगुका पुनः वरुणके पास आना और उसके उपदेशसे पुनः तप करना २१८

तृतीय अनुवाक

२८–प्राण ही ब्रह्म है—ऐसा जानकर और उसीमें ब्रह्मके लक्षण घटाकर भृगुका पुनः वरुणके पास आना और उसके उपदेशसे पुनः तप करना २२०

चतुर्थ अनुवाक

२९–मन ही ब्रह्म है—ऐसा जानकर और उसमें ब्रह्मके लक्षण घटाकर भृगुका पुनः वरुणके पास आना और उसके उपदेशसे पुनः तप करना २२१

पञ्चम अनुवाक

३०–विज्ञान ही ब्रह्म है—ऐसा जानकर और उसमें ब्रह्मके लक्षण घटाकर भृगुका पुनः वरुणके पास आना और उसके उपदेशसे पुनः तप करना २२२

षष्ठ अनुवाक

३१–आनन्द ही ब्रह्म है—ऐसा भृगुका निश्चय करना तथा इस भार्गवी वारुणी विद्याका महत्त्व और फल २२३

सप्तम अनुवाक

३२–अन्नकी निन्दा न करनारूप व्रत तथा शरीर और प्राणरूप अन्न-ब्रह्मके उपासकको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन ... २२६

अष्टम अनुवाक

३३–अन्नका त्याग न करना रूप व्रत तथा जल और ज्योतिरूप अन्न ब्रह्मके उपासकको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन २२८

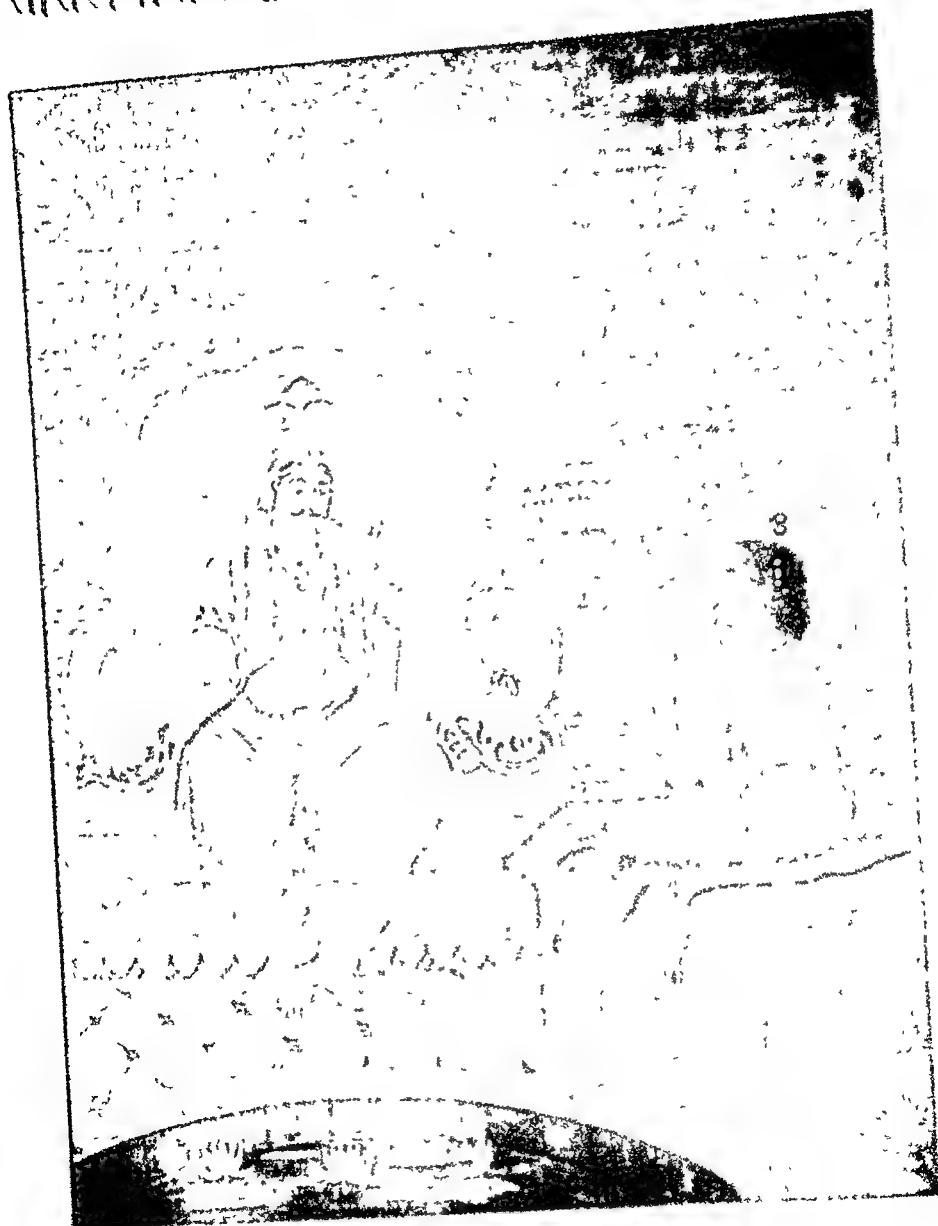
नवम अनुवाक

३४–अन्नसञ्चयरूप व्रत तथा पृथिवी और आकाशरूप अन्नब्रह्मके उपासकको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन २२९

दशम अनुवाक

३५–गृहागत अतिथिको आश्रय और अन्न देनेका विधान एवं उससे प्राप्त होनेवाला फल तथा प्रकारान्तरसे ब्रह्मकी उपासनाका वर्णन २३०
३६–आदित्य और देहोपाधिक चेतनकी एकता जाननेवाले उपासकको मिलनेवाला फल २४१
३७–ब्रह्मवेत्ताद्वारा गाया जानेवाला साम २४५
३८–शान्तिपाठ २४९





वरुण और भृगु



तत्सद्ब्रह्मणे नमः

तैत्तिरीयोपनिषद्

मन्त्रार्थ, शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थसहित



सर्वाशाध्वान्तनिर्मुक्तं सर्वाशाभास्करं परम् ।
चिदाकाशावतंसं तं सद्गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥



शान्तिपाठ

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



शीक्षावल्ली

प्रथम अनुवाक

सम्बन्ध-भाष्य

यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव प्रलीयते ।
येनेदं धार्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ १ ॥

जिससे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसमें ही यह लीन होता है और जिसके द्वारा यह धारण किया जाता है, उस ज्ञानस्वरूपको मेरा नमस्कार है ।

यैरिमे गुरुभिः पूर्वं पदवाक्यप्रमाणतः ।
व्याख्याताः सर्ववेदान्तास्तान्नित्यं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

पूर्वकालमें जिन गुरुजनोंने पद, वाक्य और प्रमाणोंके विवेचनपूर्वक इन सम्पूर्ण वेदान्तों (उपनिषदों) की व्याख्या की है, उन्हें मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ।

तैत्तिरीयकसारस्य मयाचार्यप्रसादतः ।
विस्पष्टार्थरुचीनां हि व्याख्येयं सम्प्रणीयते ॥ ३ ॥

जो स्पष्ट अर्थ जाननेके इच्छुक हैं, उन पुरुषोंके लिये मैं श्रीआचार्यकी कृपासे तैत्तिरीयशाखाके सारभूत इस उपनिषद्की व्याख्या करता हूँ ।

उपक्रमः

नित्यान्यधिगतानि कर्माण्युपात्तदुरितक्षयार्थानि, काम्यानि च फलार्थिनां पूर्वस्मिन्ग्रन्थे। इदानीं कर्मोपादानहेतुपरिहाराय ब्रह्मविद्या प्रस्तूयते।

संचित पापोंका क्षय ही जिनका मुख्य प्रयोजन है ऐसे नित्यकर्मोंका तथा सकाम पुरुषोंके लिये विहित काम्यकर्मोंका इससे पूर्ववर्ती ग्रन्थमें [अर्थात् कर्मकाण्डमें] परिज्ञान हो चुका है। अब कर्मानुष्ठानके कारणकी निवृत्तिके लिये ब्रह्मविद्याका आरम्भ किया जाता है।

आत्मविदेवाप्तकामो भवति

कर्महेतुः कामः स्यात्। प्रवर्तकत्वात्। आप्तकामानां हि कामाभावे स्वात्मन्यवस्थानात् प्रवृत्त्यनुपपत्तिः। आत्मकामित्वे चाप्तकामता; आत्मा हि ब्रह्म; तद्विदो हि परप्राप्तिं वक्ष्यति। अतोऽविद्यानिवृत्तौ स्वात्मन्यवस्थानं परप्राप्तिः "अभयं प्रतिष्ठां विन्दते" (तै० उ० २। ७। १) "एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति" (तै० उ० २। ८। २२) इत्यादिश्रुतेः।

कामना ही कर्मकी कारण हो सकती है; क्योंकि वही उसकी प्रवर्तक है। जो लोग पूर्णकाम हैं, उनकी कामनाओंका अभाव होनेपर स्वरूपमें स्थिति हो जानेसे कर्ममें प्रवृत्ति होनी असम्भव है। आत्मदर्शनकी कामना पूर्ण होनेपर ही पूर्णकामता [की सिद्धि] होती है; क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्मवेत्ताको ही परमात्माकी प्राप्ति होती है ऐसा आगे [श्रुति] बतलायेगी। अतः अविद्याकी निवृत्ति होनेपर अपने आत्मामें स्थित हो जाना ही परमात्माकी प्राप्ति है; जैसा कि "अभय पद प्राप्त कर लेता है" "[उस समय] इस आनन्दमय आत्माको प्राप्त हो जाता है" इत्यादि श्रुतियोंसे प्रमाणित होता है।

मीमांसकमत-समीक्षा

काम्यप्रतिषिद्धयोरनारम्भादारब्धस्य चोपभोगेन क्षयान्नित्यानुष्ठानेन प्रत्यवायाभावादयत्नत एव स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षः । अथवा निरतिशयायाः प्रीतेः स्वर्गशब्दवाच्यायाः कर्महेतुत्वात्कर्मभ्य एव मोक्ष इति चेत् ।

न; कर्मानेकत्वात् । अनेकानि ह्यारब्धफलान्यनारब्धफलानि चानेकजन्मान्तरकृतानि विरुद्धफलानि कर्माणि सम्भवन्ति। अतस्तेष्वनारब्धफलानामेकस्मिञ्जन्मन्युपभोगक्षयासंभवाच्छेषकर्मनिमित्तशरीरारम्भोपपत्तिः कर्मशेषसद्भावसिद्धिश्च "तद्य इह रमणीयचरणाः" (छा० उ० ५ । १० । ७) "ततः शेषेण" (आ०ध ० २ । २ । २ । ३, गो०

पूर्व०—काम्य और निषिद्ध कर्मोंका आरम्भ न करनेसे, प्रारब्ध कर्मोंका भोगद्वारा क्षय हो जानेसे तथा नित्यकर्मोंके अनुष्ठानसे प्रत्यवायोंका अभाव हो जानेसे अनायास ही अपने आत्मामें स्थित होनारूप मोक्ष प्राप्त हो जायगा; अथवा 'स्वर्ग' शब्दवाच्य आत्यन्तिक प्रीति कर्मजनित होनेके कारण कर्मसे ही मोक्ष हो सकता है—यदि ऐसा माना जाय तो ?

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि कर्म तो बहुत-से हैं। अनेकों जन्मान्तरोंमें किये हुए ऐसे अनेकों विरुद्ध फलवाले कर्म हो सकते हैं, जिनमेंसे कुछ तो फलोन्मुख हो गये हैं और कुछ अभी फलोन्मुख नहीं हुए हैं। अतः उनमें जो कर्म अभी फलोन्मुख नहीं हुए हैं, उनका एक जन्ममें ही क्षय होना असम्भव होनेके कारण उन अवशिष्ट कर्मोंके कारण दूसरे शरीरका आरम्भ होना सम्भव ही है। "इस लोकमें जो शुभ कर्म करनेवाले हैं [उन्हें शुभयोनि प्राप्त होती है]" "[उपभोग किये कर्मोंसे] बचे हुए कर्मोंद्वारा [जीवको आगेका शरीर

स्मृ० ११) इत्यादि श्रुतिस्मृतिशतेभ्यः ।

प्राप्त होता है', इत्यादि सैकड़ों श्रुति-स्मृतियोंसे अवशिष्ट कर्मके सद्भावकी सिद्धि होती है।

इष्टानिष्टफलानामनारब्धानां क्षयार्थानि नित्यानीति चेत् ?

पूर्व०—इष्ट और अनिष्ट दोनों प्रकारके फल देनेवाले संचित कर्मोंका क्षय करनेके लिये ही नित्यकर्म है—ऐसी बात हो तो ?

न; अकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । प्रत्यवायशब्दो ह्यनिष्टविषयः । नित्याकरणनिमित्तस्य प्रत्यवायस्य दुःखरूपस्यागामिनः परिहारार्थानि नित्यानीत्यभ्युपगमान्नानारब्धफलकर्मक्षयार्थानि।

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि उन्हें न करनेपर प्रत्यवाय होता है—ऐसा सुना गया है। 'प्रत्यवाय' शब्द अनिष्टका ही सूचक है। नित्यकर्मोंके न करनेके कारण जो आगामी दुःखरूप प्रत्यवाय होता है; उसका नाश करनेके लिये ही नित्यकर्म हैं—ऐसा माना जानेके कारण वे संचित कर्मोंके क्षयके लिये नहीं हो सकते।

यदि नामानारब्धकर्मक्षयार्थानि नित्यानि कर्माणि तथाप्यशुद्धमेव क्षपयेयुर्न शुद्धम् । विरोधाभावात् । न हीष्टफलस्य कर्मणः शुद्धरूपत्वान्नित्यैर्विरोध उपपद्यते । शुद्धाशुद्धयोर्हि विरोधो युक्तः ।

और यदि नित्यकर्म, जिनका फल अभी आरम्भ नहीं हुआ है उन कर्मोंके क्षयके लिये हों तो भी वे अशुद्ध कर्मका ही क्षय करेंगे, शुद्धका नहीं; क्योंकि उनसे तो उनका विरोध ही नहीं है। जिनका फल इष्ट है उन कर्मोंका तो शुद्धरूप होनेके कारण नित्यकर्मोंसे विरोध होना सम्भव ही नहीं है। विरोध तो शुद्ध और अशुद्ध कर्मोंका ही होना उचित है।

न च कर्महेतूनां कामानां ज्ञानाभावे निवृत्त्यसंभवादशेषकर्मक्षयोपपत्तिः । अनात्मविदो हि कामोऽनात्मफलविषयत्वात् । स्वात्मनि च कामानुपपत्तिर्नित्यप्राप्तत्वात् । स्वयं चात्मा परं ब्रह्मेत्युक्तम् ।

इसके सिवा कर्मकी हेतुभूत कामनाओंकी निवृत्ति भी ज्ञानके अभावमें असम्भव होनेके कारण उन (नित्यकर्मों) के द्वारा सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय होना सम्भव नहीं है; क्योंकि अनात्मफलविषयिणी होनेके कारण कामना अनात्मवेत्ताको ही हुआ करती है । आत्मामें तो कामनाका होना सर्वथा असम्भव है; क्योंकि वह नित्यप्राप्त है । और यह तो कहा ही जा चुका है कि स्वयं आत्मा ही परब्रह्म है ।

नित्यानां चाकरणमभावस्ततः प्रत्यवायानुपपत्तिरिति । अतः पूर्वोपचितदुरितेभ्यःप्राप्यमाणायाः प्रत्यवायक्रियाया नित्याकरणं लक्षणमिति "अकुर्वन्विहितं कर्म" (मनु० ११ । ४४) इति शतुर्नानुपपत्तिः । अन्यथाभावाद्भावोत्पत्तिरिति सर्वप्रमाणव्याकोप इति । अतोऽयत्नतः स्वात्मन्यवस्थानमित्यनुपपन्नम् ।

तथा नित्यकर्मोंका न करना तो अभावरूप है, उससे प्रत्यवाय होना असम्भव है । अतः नित्यकर्मोंका न करना यह पूर्वसंचित पापोंसे प्राप्त होनेवाली प्रत्यवायक्रियाका ही लक्षण है । इसलिये 'अकुर्वन् विहितं कर्म' इस वाक्यके 'अकुर्वन्' पदमें 'शतृ' प्रत्ययका होना अनुचित नहीं है अन्यथा अभावसे भावकी उत्पत्ति सिद्ध होनेके कारण सभी प्रमाणोंसे विरोध हो जायगा । अतः ऐसा मानना सर्वथा अयुक्त है कि [कर्मानुष्ठानसे] अनायास ही आत्मस्वरूप-स्थिति हो जाती है ;

यच्चोक्तं निरतिशयप्रीतेः स्वर्गशब्दवाच्यायाः कर्मनिमित्तत्वात्कर्मारब्ध एव मोक्ष इति, तन्न; नित्यत्वान्मोक्षस्य । न हि नित्यं किञ्चिदारभ्यते लोके। यदारब्धं तदनित्यमिति । अतो न कर्मारब्धो मोक्षः ।

और यह जो कहा कि 'स्वर्ग' शब्दसे कही जानेवाली निरतिशय प्रीति कर्मनिमित्तक होनेके कारण मोक्ष कर्मसे ही आरम्भ होनेवाला है, सो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि मोक्ष नित्य है और किसी भी नित्य वस्तुका आरम्भ नहीं किया जाता, लोकमें जिस वस्तुका भी आरम्भ होता है वह अनित्य हुआ करती है, इसलिये मोक्ष कर्मारब्ध नहीं है ।

विद्यासहितानां कर्मणां नित्यारम्भसामर्थ्यमिति चेत् ?

पूर्व०—ज्ञानसहित कर्मोंमें तो नित्य मोक्षके आरम्भ करनेकी भी सामर्थ्य है ही ?

न; विरोधात् । नित्यं चारभ्यत इति विरुद्धम् ।

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि ऐसा माननेसे विरोध आता है, मोक्ष नित्य है और उसका आरम्भ किया जाता है—ऐसा कहना तो परस्पर विरुद्ध है।

यद्विनष्टं तदेव नोत्पद्यत इति । प्रध्वंसाभाववन्नित्योऽपि मोक्ष आरभ्य एवेति चेत् ?

पूर्व०—जो वस्तु नष्ट हो जाती है, वही फिर उत्पन्न नहीं हुआ करती, अतः प्रध्वंसाभावके समान नित्य होनेपर भी मोक्षका आरम्भ किया ही जाता है—ऐसा मानें तो ?

न; मोक्षस्य भावरूपत्वात् प्रध्वंसाभावोऽप्यारभ्यत इति न संभवति; अभावस्य विशेषाभावाद्विकल्पमात्रमेतत् ।

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि मोक्ष तो भावरूप है । प्रध्वंसाभाव भी आरम्भ किया जाता है यह संभव नहीं; क्योंकि अभावमें कोई विशेषता न होनेके कारण यह तो केवल विकल्प ही है । भावका

भावप्रतियोगी ह्यभावः । यथा ह्यभिन्नोऽपि भावो घटपटादिभिर्विशेष्यते भिन्न इव घटभावः पटभाव इति; एवं निर्विशेषोऽप्यभावः क्रियागुणयोगाद्द्रव्यादिवद्विकल्प्यते । न ह्यभाव उत्पलादिवद्विशेषणसहभावी । विशेषणवत्त्वे भाव एव स्यात् ।

विद्याकर्मकर्तृनित्यत्वाद्विद्याकर्मसन्तानजनितमोक्षनित्यत्वमिति चेत् ?

न; गङ्गास्रोतोवत्कर्तृत्वस्य दुःखरूपत्वात् । कर्तृत्वोपरमे च मोक्षविच्छेदात् । तस्मादविद्याकामकर्मोपादानहेतुनिवृत्तौ स्वात्मन्यवस्थानं मोक्ष इति । स्वयं

प्रतियोगी ही 'अभाव' कहलाता है । जिस प्रकार भाव वस्तुतः अभिन्न होनेपर भी घट-पट आदि विशेषणोंसे भिन्नके समान घटभाव, पटभाव आदि रूपसे विशेषित किया जाता है, इसी प्रकार अभाव निर्विशेष होनेपर भी क्रिया और गुणके योगसे द्रव्यादिके समान विकल्पित होता है । कमल आदि पदार्थोंके समान अभाव विशेषणके सहित रहनेवाला नहीं है । विशेषणयुक्त होनेपर तो वह भाव ही हो जायगा ।

पूर्व०—विद्या और कर्म इनका कर्ता नित्य होनेके कारण विद्या और कर्मके अविच्छिन्न प्रवाहसे होनेवाला मोक्ष नित्य ही होना चाहिये । ऐसा मानें तो ?

सिद्धान्ती—नहीं, गङ्गाप्रवाहके समान जो कर्तृत्व है वह तो दुःखरूप है । [अतः उससे मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती और यदि उसीसे मोक्ष माना जाय तो भी] कर्तृत्वकी निवृत्ति होनेपर मोक्षका विच्छेद हो जायगा । अतः अविद्या, कामना और कर्म—इनके उपादान कारणकी निवृत्ति होनेपर आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाना ही मोक्ष है—यह सिद्ध

चात्मा ब्रह्म। तद्विज्ञानादविद्यानिवृत्तिरिति ब्रह्मविद्यार्थोपनिषदारभ्यते।

होता है। तथा स्वयं आत्मा ही ब्रह्म है और उसके ज्ञानसे ही अविद्याकी निवृत्ति होती है, अतः अब ब्रह्मज्ञानके लिये उपनिषद्का आरम्भ किया जाता है।

उपनिषच्छब्द-निरुक्तिः

उपनिषदिति विद्योच्यते, तच्छीलिनां गर्भजन्मजरादिनिशातनात्तदवसादनाद्वा ब्रह्मणो वोपनिगमयितृत्वादुपनिषण्णं वास्यां परं श्रेय इति। तदर्थत्वाद्ग्रन्थोऽप्युपनिषद्।

अपना सेवन करनेवाले पुरुषोंके गर्भ, जन्म और जरा आदिका निशातन (उच्छेद) करने या उनका अवसादन (नाश) करनेके कारण 'उपनिषद्' शब्दसे विद्या ही कही जाती है। अथवा ब्रह्मके समीप ले जानेवाली होनेसे या इसमें परम श्रेय ब्रह्म उपस्थित है इसलिये [यह विद्या उपनिषद् है] उस विद्याके ही लिये होनेके कारण ग्रन्थ भी उपनिषद् है।

शीक्षावल्लीका शान्तिपाठ

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ १॥

[प्राणवृत्ति और दिनका अभिमानी देवता] मित्र (सूर्यदेव) हमारे लिये सुखकर हो [अपानवृत्ति और रात्रिका अभिमानी] वरुण हमारे

लिये सुखावह हो [नेत्र और सूर्यका अभिमानी देवता] अर्यमा हमारे लिये सुखप्रद हो । बलका अभिमानी इन्द्र तथा [वाक् और बुद्धिका अभिमानी देवता] बृहस्पति हमारे लिये शान्तिदायक हों । तथा जिसका पादविक्षेप–(डग) बहुत विस्तृत है वह [पादाभिमानी देवता] विष्णु हमारे लिये सुखदायक हो । ब्रह्म [रूप वायु] को नमस्कार है । हे वायो ! तुम्हें नमस्कार है । तुम ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हो । अतः तुम्हींको मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा । तुम्हींको ऋत (शास्त्रोक्त निश्चित अर्थ) कहूँगा । और [क्योंकि वाक् और शरीरसे सम्पन्न होनेवाले कार्य भी तुम्हारे ही अधीन हैं इसलिये] तुम्हींको मैं सत्य कहूँगा । अतः तुम [विद्यादानके द्वारा] मेरी रक्षा करो तथा ब्रह्मका निरूपण करनेवाले आचार्यकी भी [उन्हें वक्तृत्व-सामर्थ्य देकर] रक्षा करो । मेरी रक्षा करो । और वक्ताकी रक्षा करो । आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तीनों प्रकारके तापोंकी शान्ति हो ॥ १ ॥

शं सुखं प्राणवृत्तेरहश्चाभिमानी देवतात्मा मित्रो नोऽस्माकं भवतु । तथैवापानवृत्ते रात्रेश्चाभिमानी देवतात्मा वरुणः । चक्षुष्यादित्ये चाभिमान्यर्यमा । बल इन्द्रः । वाचि बुद्धौ च बृहस्पतिः । विष्णुरुरुक्रमो विस्तीर्णक्रमः पादयोरभिमानी । एवमाद्याऽध्यात्मदेवताः शं नः । भवत्विति सर्वत्रानुषङ्गः ।

प्राणवृत्ति और दिनका अभिमानी देवता मित्र हमारे लिये शं सुखरूप हो । इसी प्रकार अपानवृत्ति और रात्रिका अभिमानी देवता वरुण, नेत्र और सूर्यमें अभिमान करनेवाला अर्यमा, बलमें अभिमान करनेवाला इन्द्र, वाणी और बुद्धिका अभिमानी बृहस्पति तथा उरुक्रम अर्थात् विस्तीर्ण पादविक्षेपवाला पादाभिमानी देवता विष्णु इत्यादि सभी अध्यात्मदेवता हमारे लिये सुखदायक हों । 'भवतु' (हों) इस क्रिया-का सभी वाक्योंके साथ सम्बन्ध है ।

तासु हि सुखकृत्सु विद्याश्रवणाधारणोपयोगा अप्रतिबन्धेन भविष्यन्तीति तत्सुखकर्तृत्वं प्राार्थ्यते शं नो भवत्विति ।

उनके सुखप्रद होनेपर ही ज्ञानके श्रवण, धारण और उपयोग निर्विघ्नतासे हो सकेंगे इसलिये ही 'शं नो भवतु' आदि मन्त्रद्वारा उनकी सुखावहताके लिये प्रार्थना की जाती है ।

ब्रह्म विविदिषुणा नमस्कारवन्दनक्रिये वायुविषये ब्रह्मविद्योपसर्गशान्त्यर्थं क्रियेते । सर्वक्रियाफलानां तदधीनत्वाद् ब्रह्म वायुस्तस्मै ब्रह्मणे नमः । प्रह्वीभावं करोमीति वाक्यशेषः नमस्ते तुभ्यं हे वायो नमस्करोमीति । परोक्षप्रत्यक्षाभ्यां वायुरेवाभिधीयते ।

अब ब्रह्मके जिज्ञासुद्वारा ब्रह्मविद्याके विघ्नोंकी शान्तिके लिये वायुसम्बन्धी नमस्कार और वन्दन किये जाते हैं। समस्त कर्मोंका फल वायुके ही अधीन होनेके कारण ब्रह्म वायु है । उस ब्रह्मको मैं नमस्कार अर्थात् प्रह्वीभाव (विनीतभाव) करता हूँ । यहाँ 'करोमि' यह क्रिया वाक्यशेष है । हे वायो ! तुम्हें नमस्कार है—मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ—इस प्रकार यहाँ परोक्ष और प्रत्यक्षरूपसे वायु ही कहा गया है ।

किं च त्वमेव चक्षुराद्यपेक्ष्य बाह्यं संनिकृष्टमव्यवहितं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि यस्मात्तस्मात्त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं यथाशास्त्रं यथाकर्तव्यं बुद्धौ सुपरिनिश्चितमर्थं तदपि त्वद-

इसके सिवा क्योंकि बाह्य चक्षु आदिकी अपेक्षा तुम्हीं समीपवर्ती—अव्यवहित अर्थात् प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, इसलिये तुम्हींको मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा । तुम्हींको ऋत अर्थात् शास्त्र और अपने कर्तव्यानुसार बुद्धिमें सम्यक् रूपसे निश्चित किया हुआ अर्थ कहूँगा; क्योंकि वह [ऋत]

धीनत्वात्त्वामेव वदिष्यामि । सत्यमिति स एव वाक्कायाभ्यां संपाद्यमानः, सोऽपि त्वदधीन एव संपाद्य इति त्वामेव सत्यं वदिष्यामि ।

तत्सर्वात्मकं वाय्वाख्यं ब्रह्म मयैवं स्तुतं सन्मां विद्यार्थिनमवतु विद्यासंयोजनेन । तदेव ब्रह्म वक्तारमाचार्यं वक्तृत्वसामर्थ्यसंयोजनेनावतु । अवतु मामवतु वक्तारमिति पुनर्वचनमादरार्थम् । ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिरिति त्रिर्वचनमाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानां विद्याप्राप्त्युपसर्गाणां प्रशमार्थम् ॥१॥

तुम्हारे ही अधीन है । वाक् और शरीरसे सम्पादन किया जानेवाला वह अर्थ ही सत्य कहलाता है, वह भी तुम्हारे ही अधीन सम्पादन किया जाता है; अतः तुम्हींको मैं सत्य कहूँगा ।

वह वायुसंज्ञक सर्वात्मक ब्रह्म मेरे द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर मुझ विद्यार्थीको विद्यासे युक्त करके रक्षा करे । वही ब्रह्म वक्ता आचार्यको वक्तृत्वसामर्थ्यसे युक्त करके उसकी रक्षा करे । मेरी रक्षा करे और वक्ताकी रक्षा करे—इस प्रकार दो बार कहना आदरके लिये है । 'ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः'—ऐसा तीन बार कहना विद्याप्राप्तिके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक विघ्नोंकी शान्तिके लिये है ॥ १ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥



द्वितीय अनुवाक

शीक्षाकी व्याख्या

अर्थज्ञानप्रधानत्वादुपनिषदो ग्रन्थपाठे यत्नोपरमो मा भूदिति शिक्षाध्याय आरभ्यते—

उपनिषद् अर्थज्ञानप्रधान है (अर्थात् अर्थज्ञान ही इसमें मुख्य है), अतः इस ग्रन्थके अध्ययनका प्रयत्न शिथिल न हो जाय—इसलिये पहले शीक्षाध्याय आरम्भ किया जाता है—

शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः॥ १॥

हम शीक्षाकी व्याख्या करते हैं। [अकारादि] वर्ण, [उदात्तादि] स्वर, [ह्रस्वादि] मात्रा, [शब्दोच्चारणमें प्राणका प्रयत्नरूप] बल, [एक ही नियमसे उच्चारण करनारूप] साम तथा सन्तान (संहिता) [ये ही विषय इस अध्यायसे सीखे जाने योग्य हैं]। इस प्रकार शीक्षाध्याय कहा गया॥ १॥

शिक्षा शिक्ष्यतेऽनयेति वर्णाद्युच्चारणलक्षणम्। शिक्ष्यन्त इति वा शिक्षा वर्णादयः। शिक्षैव शीक्षा। दैर्घ्यं छान्दसम्। तां शीक्षां व्याख्यास्यामो विस्पष्टमा समन्तात्कथयिष्यामः।

जिससे वर्णादिका उच्चारण सीखा जाय उसे 'शिक्षा' कहते हैं अथवा जो सीखे जायँ वे वर्ण आदि ही शिक्षा हैं। शिक्षाको ही 'शीक्षा' कहा गया है। (शीक्षाशब्दमें ईकारका) दीर्घत्व वैदिक प्रक्रियाके अनुसार है। उस शीक्षाकी हम व्याख्या करते हैं अर्थात् उसका सर्वतोभावसे स्पष्ट वर्णन करते हैं

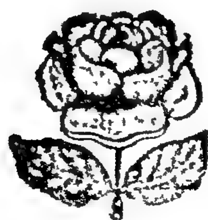
चक्षिङो वा ख्याञादिष्टस्य व्याङ्पूर्वस्य व्यक्तवाक्कर्मण एतद्रूपम् ।

तत्र वर्णोऽकारादिः, स्वर उदात्तादिः, मात्रा ह्रस्वाद्याः, बलं प्रयत्नविशेषः, साम वर्णानां मध्यमवृत्त्योच्चारणं समता, सन्तानः सन्ततिः संहितेत्यर्थः । एष हि शिक्षितव्योऽर्थः । शिक्षा यस्मिन्नध्याये सोऽयं शीक्षाध्याय इत्येवमुक्त उदितः । उक्त इत्युपसंहारार्थः ॥ १ ॥

'व्याख्यास्यामः' यह पद 'वि' और 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'चक्षिङ' धातुके स्थानमें वैकल्पिक 'ख्यात्र्' आदेश करनेसे निष्पन्न होता है । इसका अर्थ स्पष्ट उच्चारण है ।

तहाँ अकारादि वर्ण, उदात्तादि स्वर, ह्रस्वादि मात्राएँ, [वर्णोंके उच्चारणमें] प्रयत्नविशेषरूप बल वर्णोंको मध्यम वृत्तिसे उच्चारण करनारूप साम अर्थात् समता तथा सन्तान—सन्तति अर्थात् संहिता—यही शिक्षणीय विषय है । शिक्षा जिस अध्यायमें है उस इस शिक्षा-अध्यायका इस प्रकार कथन यानी प्रकाशन कर दिया गया । यहाँ 'उक्तः' पद उपसंहारके लिये है ॥ १ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥



तृतीय अनुवाक

पाँच प्रकारकी संहितोपासना

अधुना संहितोपनिषदुच्यते— | अत्र संहितासम्बन्धिनी उपनिषत् (उपासना) कही जाती है—

सह नौ यशः । सह नौ ब्रह्मवर्चसम् । अथातः सꣳहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः । पञ्चस्वधिकरणेषु । अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् । ता महासꣳहिता इत्याचक्षते । अथाधिलोकम् । पृथिवी पूर्वरूपम् । द्यौरुत्तररूपम् । आकाशः संधिः ॥ १ ॥

वायुः संधानम् । इत्यधिलोकम् । अथाधिज्यौतिषम् । अग्निः पूर्वरूपम् । आदित्य उत्तररूपम् । आपः संधिः । वैद्युतः संधानम् । इत्यधिज्यौतिषम् । अथाधिविद्यम् । आचार्यः पूर्वरूपम् ॥ २ ॥

अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्या संधिः । प्रवचनꣳ संधानम् इत्यधिविद्यम् । अथाधिप्रजम् । माता पूर्वरूपम् । पितोत्तररूपम् । प्रजा संधिः प्रजननꣳसंधानम् । इत्यधिप्रजम् ॥ ३ ॥

अथाध्यात्मम् । अधरा हनुः पूर्वरूपम् । उत्तरा हनुरुत्तररूपम् । वाक्संधिः । जिह्वा संधानम् । इत्य-

ध्यात्मम् । इतीमा महासꣳहिता य एवमेता महासꣳहिता व्याख्याता वेद । संधीयते प्रजया पशुभिः । ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन ॥ ४ ॥

हम [शिष्य और आचार्य] दोनोंको साथ-साथ यश प्राप्त हो और हमें साथ-साथ ब्रह्मतेजकी प्राप्ति हो । [क्योंकि जिन पुरुषोंकी बुद्धि शास्त्राध्ययनद्वारा परिमार्जित हो गयी है वे भी परमार्थतत्त्वको समझनेमें सहसा समर्थ नहीं होते, इसलिये] अब हम पाँच अधिकरणोंमें संहिताकी उपनिषद् [अर्थात् संहितासम्बन्धिनी उपासना] की व्याख्या करेंगे । अधिलोक, अधिज्यौतिष, अधिविद्य, अधिप्रज और अध्यात्म—ये ही पाँच अधिकरण हैं । पण्डितजन उन्हें महासंहिता कहकर पुकारते हैं । अब अधिलोक (लोकसम्बन्धी) दर्शन (उपासना) का वर्णन किया जाता है—संहिताका प्रथम वर्ण पृथिवी है, अन्तिम वर्ण द्युलोक है, मध्यभाग आकाश है ॥ १ ॥ और वायु सन्धान (उनका परस्पर सम्बन्ध करनेवाला) है [अधिलोक-उपासकको संहितामें इस प्रकार दृष्टि करनी चाहिये]—यह अधिलोक दर्शन कहा गया । इसके अनन्तर अधिज्यौतिष दर्शन कहा जाता है—यहाँ संहिताका प्रथम वर्ण अग्नि है, अन्तिम वर्ण आदित्य है, मध्यभाग आप (जल) है और विद्युत् सन्धान है [अधिज्यौतिप उपासकको संहितामें ऐसी दृष्टि करनी चाहिये]—यह अधिज्यौतिष दर्शन कहा गया । इसके पश्चात् अधिविद्य दर्शन कहा जाता है—इसकी संहिताका प्रथम वर्ण आचार्य है ॥ २ ॥ अन्तिम वर्ण शिष्य है, विद्या सन्धि है और प्रवचन (प्रश्नोत्तररूपसे निरूपण करना) सन्धान है—[ऐसी अधिविद्य-उपासकको दृष्टि करनी

१ 'संहिता' शब्दका अर्थ सन्धि या वर्णोंका सामीप्य है । भिन्न-भिन्न वर्णोंके मिलनेपर ही शब्द बनते हैं; उनमें जब एक वर्णका दूसरे वर्णसे योग होता है तब उन पूर्वोत्तर वर्णोंके योगको 'सन्धि' कहते हैं और जिस शब्दोच्चारणसम्बन्धी प्रयत्नके योगसे सन्धि होती है उसे 'संधान' कहा जाता है ।

चाहिये । यह विद्यासम्बन्धी दर्शन कहा गया । इससे आगे अधिप्रज दर्शन कहा जाता है—यहाँ संहिताका प्रथम वर्ण माता है, अन्तिम वर्ण पिता है, प्रजा (सन्तान) सन्धि है और प्रजनन (ऋतुकालमें भार्या-गमन) सन्धान है—[अधिप्रज-उपासकको ऐसी दृष्टि करनी चाहिये]। यह प्रजासम्बन्धी उपासनाका वर्णन किया गया ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् अध्यात्मदर्शन कहा जाता है—इसमें संहिताका प्रथम वर्ण नीचेका हनु (नीचेके होठसे ठोडीतकका भाग) है, अन्तिम वर्ण ऊपरका हनु (ऊपरके होठसे नासिकातकका भाग) है, वाणी सन्धि है और जिह्वा सन्धान है—[ऐसी अध्यात्म-उपासकको दृष्टि करनी चाहिये]। यह अध्यात्मदर्शन कहा गया । इस प्रकार ये महासंहिताएँ कहलाती हैं । जो पुरुष इस प्रकार व्याख्या की हुई इन महासंहिताओंको जानता है [अर्थात् इस प्रकार उपासना करता है] वह प्रजा, पशु, ब्रह्मतेज, अन्न और स्वर्गलोकसे संयुक्त किया जाता है । [अर्थात् उसे इन सबकी प्राप्ति होती है] ॥ ४ ॥

तत्र संहिताद्युपनिषत्परिज्ञाननिमित्तं यद्यशः प्रार्थ्यते तन्नावावयोः शिष्याचार्ययोः सहैवास्तु । तन्निमित्तं च यद्ब्रह्मवर्चसं तेजस्तच्च सहैवास्त्विति शिष्यवचनमाशीः । शिष्यस्य ह्यकृतार्थत्वात्प्रार्थनोपपद्यते नाचार्यस्य । कृतार्थत्वात् । कृतार्थो ह्याचार्यो नाम भवति ।

उस संहितादि उपनिषद् [अर्थात् संहितादिसम्बन्धिनी उपासना] के परिज्ञानके कारण जिस यशकी याचना की जाती है वह हम शिष्य और आचार्य दोनोंको साथ-साथ ही प्राप्त हो । तथा उसके कारण जो ब्रह्मतेज होता है वह भी हम दोनोंको साथ-साथ ही मिले—इस प्रकार यह कामना शिष्यका वाक्य है; क्योंकि अकृतार्थ होनेके कारण शिष्यके लिये ही प्रार्थना करना सम्भव भी है—आचार्यके लिये नहीं; क्योंकि वह कृतार्थ होता है । जो पुरुष कृतार्थ होता है वही आचार्य कहलाता है ।

अथानन्तरमध्ययनलक्षण-विधानस्य, अतो यतोऽत्यर्थं ग्रन्थ-भाविता बुद्धिर्न शक्यते सहसार्थ-ज्ञानविषयेऽवतारयितुमित्यतः संहिताया उपनिषदं संहिताविषयं दर्शनमित्येतद्ग्रन्थसंनिकृष्टामेव व्याख्यास्यामः; पञ्चस्वधिकरणे-ष्वाश्रयेषु ज्ञानविषयेष्वित्यर्थः।

कानि तानीत्याह अधिलोकं लोकेष्वधि यद्दर्शनं तदधिलोकम्। तथाधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रज-मध्यात्ममिति। ता एताः पञ्च-विषया उपनिषदो लोकादिमहा-वस्तु विषयत्वात्संहिताविषय-त्वाच्च महत्यश्च ताः संहिताश्च महासंहिता इत्याचक्षते कथयन्ति वेदविदः।

अथ तासां यथोपन्यस्ताना-मधिलोकं दर्शनमुच्यते। दर्शन-

'अथ' अर्थात् पहले कहे हुए अध्ययनरूप विधानके अनन्तर 'अतः'—क्योंकि ग्रन्थके अध्ययनमें अत्यन्त आसक्त की हुई बुद्धिको सहसा अर्थज्ञान [को ग्रहण करने] में प्रवृत्त नहीं किया जा सकता, इसलिये हम ग्रन्थकी समीपवर्तिनी संहितोपनिषद् अर्थात् संहिता-सम्बन्धिनी दृष्टिकी पाँच अधि-करण-आश्रय अर्थात् ज्ञानके विषयोंमें व्याख्या करेंगे [तात्पर्य यह कि वर्णोंके विषयमें पाँच प्रकारके ज्ञान बतलावेंगे]।

वे पाँच अधिकरण कौन-से हैं? सो बतलाते हैं—'अधिलोक'—जो दर्शन लोकविषयक हो उसे अधि-लोक कहते हैं। इसी प्रकार अधि-ज्यौतिष, अधिविद्य, अधिप्रज और अध्यात्म भी समझने चाहिये। ये पञ्चविषयसम्बन्धिनी उपनिषदें लोकादि महावस्तुविषयिणी और संहितासम्बन्धिनी हैं; इसलिये वेद-वेत्तालोग इन्हें महती संहिता अर्थात् 'महासंहिता' कहकर पुकारते हैं।

अब ऊपर बतलायी हुई उन (पाँच प्रकारकी उपासनाओं) मेंसे पहले अधिलोक-दृष्टि बतलायी जाती है।

क्रमविवक्षार्थोऽथशब्दः सर्वत्र । पृथिवी पूर्वरूपं पूर्वो वर्णः पूर्वरूपम् । संहितायाः पूर्वे वर्णे पृथिवीदृष्टिः कर्तव्येत्युक्तं भवति । तथा द्यौः उत्तररूपमाकाशोऽन्तरिक्षलोकः संधिर्मध्यं पूर्वोत्तररूपयोः संधीयेते अस्मिन्पूर्वोत्तररूपे इति । वायुः संधानम् । संधीयतेऽनेनेति संधानम् । इत्यधिलोकं दर्शनमुक्तम् । अथाधिज्योतिषमित्यादि समानम् । इतीमा इत्युक्ता उप प्रदर्श्यन्ते । यः कश्चिदेवमेता महासंहिता व्याख्याता वेदोपास्ते । वेदेत्युपासनं स्याद्विज्ञानाधिकारात् "इति प्राचीनयोग्योपास्स्व" इति च वचनात् । उपासनं च यथा-

यहाँ दर्शनक्रम बतलाना इष्ट होनेके कारण 'अथ' शब्दकी सर्वत्र अनुवृत्ति करनी चाहिये । पृथिवी पूर्वरूप है । यहाँ पूर्ववर्ण ही पूर्वरूप कहा गया है इससे यह बतलाया गया है कि संहिता (सन्धि) के प्रथम वर्णमें पृथिवीदृष्टि करनी चाहिये । इसी प्रकार द्युलोक उत्तररूप (अन्तिम वर्ण) है आकाश अर्थात् अन्तरिक्ष सन्धि—पूर्व और उत्तररूपका मध्य है अर्थात् इसमें ही पूर्व और उत्तररूप एकत्रित किये जाते हैं । वायु सन्धान है । जिससे सन्धि की जाय उसे सन्धान कहते हैं । इस प्रकार अधिलोक दर्शन कहा गया । इसीके समान 'अथाधिज्योतिषम्' इत्यादि मन्त्रोंका अर्थ भी समझना चाहिये ।

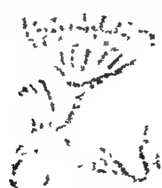
'इति' और 'इमाः' इन शब्दोंसे पूर्वोक्त दर्शनोंका परामर्श किया जाता है । जो कोई इस प्रकार व्याख्या की हुई इस महासंहिताको जानता अर्थात् उपासना करता है—यहाँ उपासनाका प्रकरण होनेके कारण 'वेद' शब्दसे उपासना समझना चाहिये जैसा कि 'इति प्राचीनयोग्योपास्स्व'[1] इस आगे (१।६।२में) कहे जानेवाले वचनसे सिद्ध होता है ।

१: हे प्राचीनयोग्य शिष्य ! इस प्रकार तू उपासना कर ।

शास्त्रं तुल्यप्रत्ययसन्ततिरसंकीर्णा चातत्प्रत्ययैः शास्त्रोक्तालम्बनविषया च । प्रसिद्धश्चोपासनशब्दार्थो लोके गुरुमुपास्ते राजानमुपास्त इति । यो हि गुर्वादीन्सन्ततमुपचरति स उपास्त इत्युच्यते । स च फलमाप्नोत्युपासनस्य । अतोऽत्रापि च य एवं वेद संधीयते प्रजादिभिः स्वर्गान्तैः । प्रजादिफलान्याप्नोतीत्यर्थः ॥ १–४ ॥

शास्त्रानुसार समान प्रत्ययके प्रवाहका नाम 'उपासना' है । वह प्रवाह विजातीय प्रत्ययोंसे रहित और शास्त्रोक्त आलम्बनको आश्रय करनेवाला होना चाहिये । 'लोकमें गुरुकी उपासना करता है' 'राजाकी उपासना करता है' इत्यादि वाक्योंमें 'उपासना' शब्दका अर्थ प्रसिद्ध ही है । जो पुरुष गुरु आदिकी निरन्तर परिचर्या करता है वही 'उपासना करता है' ऐसा कहा जाता है । वही उस उपासनाका फल भी प्राप्त करता है । अतः इस महासंहिताके सम्बन्धमें भी जो पुरुष इस प्रकार उपासना करता है वह [मन्त्रमें बतलाये हुए] प्रजासे लेकर स्वर्गपर्यन्त समस्त पदार्थोंसे सम्पन्न होता है, अर्थात् प्रजादिरूप फल प्राप्त करता है ॥ १–४ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥



चतुर्थ अनुवाक

श्री और बुद्धिकी कामनावालोंके लिये जप

और होम-सम्बन्धी मन्त्र

यश्छन्दसामिति मेधाकामस्य श्रीकामस्य च तत्प्राप्तिसाधनं जपहोमावुच्येते । "स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु" "ततो मे श्रिय-मावह" इति च लिङ्गदर्शनात् ।

अब 'यश्छन्दसाम्' इत्यादि मन्त्रोंसे मेधाकामी तथा श्रीकामी पुरुषोंके लिये उनकी प्राप्तिके साधन जप और होम बतलाये जाते हैं, क्योंकि "वह इन्द्र मुझे मेधासे प्रसन्न अथवा बलयुक्त करे" तथा "अतः उस श्रीको तू मेरे पास ला" इन वाक्योंमें [क्रमशः मेधा और श्री-प्राप्तिके लिये की गयी प्रार्थनाके] लिङ्ग देखे जाते हैं ।

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः । छन्दोभ्योऽध्य-मृतात्संबभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देव धारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय । आवहन्ती वितन्वाना ॥ १ ॥

कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासाꣳसि मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा । ततो मे श्रियमावह । लोमशां पशुभिः सह स्वाहा । आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ २ ॥

जो वेदोंमें ऋषभ (श्रेष्ठ अथवा प्रधान) और सर्वरूप हैं तथा वेदरूप अमृतसे प्रधानरूपसे आविर्भूत हुआ है, वह [ओंकाररूप] इन्द्र (सम्पूर्ण कामनाओंका ईश) मुझे मेधासे प्रसन्न अथवा बलयुक्त करे। हे देव! मैं अमृतत्व (अमृतत्वके हेतुभूत ब्रह्मज्ञान) का धारण करनेवाला होऊँ। मेरा शरीर विचक्षण (योग्य) हो। मेरी जिह्वा अत्यन्त मधुमती (मधुर भाषण करनेवाली) हो। मैं कानोंसे खूब श्रवण करूँ। [हे ओंकार!] तू ब्रह्मका कोष है और लौकिक बुद्धिसे ढँका हुआ है [अर्थात् लौकिक बुद्धिके कारण तेरा ज्ञान नहीं होता]। तू मेरी श्रवण की हुई विद्याकी रक्षा कर। मेरे लिये वस्त्र, गौ और अन्न-पानको सर्वदा शीघ्र ही ले आनेवाली और इनका विस्तार करनेवाली श्रीको [भेड़-बकरी आदि] ऊनवाले तथा अन्य पशुओंके सहित वृद्धि प्राप्त करानेके अनन्तर तू मेरे पास ला—स्वाहा। ब्रह्मचारीलोग मेरे पास आवें—स्वाहा। ब्रह्मचारीलोग मेरे प्रति निष्कपट हों—स्वाहा। ब्रह्मचारीलोग प्रमा (यथार्थ ज्ञान) को धारण करें—स्वाहा। ब्रह्मचारीलोग दम (इन्द्रियदमन) करें—स्वाहा। ब्रह्मचारीलोग शम (मनोनिग्रह) करें—स्वाहा। [इन मन्त्रोंके पीछे जो 'स्वाहा' शब्द है, वह इस बातको सूचित करता है कि ये हवनके लिये है ॥ १-२ ॥

यश्छन्दसां वेदानामृषभ ओङ्कारतो बुद्धि-इवर्षभः प्राधान्यात् बलं प्रार्थ्यते विश्वरूपः सर्वरूपः सर्ववाग्व्याप्तेः। "तद्यथा शङ्कुना" (छा० उ० २।२३।३) इत्यादि श्रुत्यन्तरात्। अत एव-

जो [ओंकार] प्रधान होनेके कारण छन्द—वेदोंमें श्रेष्ठके समान श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण वाणीमें व्याप्त होनेके कारण विश्वरूप यानी सर्वमय हैं; जैसा कि "जिस प्रकार शङ्कुओं (पत्तोंकी नसों) से [सम्पूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं, इसी प्रकार ओंकारसे सम्पूर्ण वाणी व्याप्त है— ओंकार ही यह सब कुछ है]" इस एक अन्य श्रुतिसे सिद्ध होता है। इसीलिये

र्षभत्वमोङ्कारस्य । ओङ्कारो ह्यत्रोपास्य इति ऋषभादिशब्दैः स्तुतिर्न्याय्यैवोङ्कारस्य । छन्दोभ्यो वेदेभ्यो वेदा ह्यमृतं तस्मादमृतादधिसंबभूव । लोकदेववेदव्याहृतिभ्यः सारिष्ठं जिघृक्षोः प्रजापतेस्तपस्यत ओङ्कारः सारिष्ठत्वेन प्रत्यभादित्यर्थः । न हि नित्यस्योङ्कारस्याञ्जसैवोत्पत्तिरेव कल्पयते । स एवंभूत ओङ्कार इन्द्रः सर्वकामेशः परमेश्वरो मा मां मेधया प्रज्ञया स्पृणोतु प्रीणयतु बलयतु वा प्रज्ञाबलं हि प्रार्थ्यते ।

ओंकारकी श्रेष्ठता है। यहाँ ओंकार ही उपासनीय है, इसलिये 'ऋषभ' आदि शब्दोंसे ओंकारकी स्तुति की जानी उचित ही है। छन्द अर्थात् वेदोंसे—वेद ही अमृत हैं, उस अमृतसे जो प्रधानरूपसे हुआ है। तात्पर्य यह है कि लोक, देव, वेद और व्याहृतियोंसे सर्वोत्कृष्ट सार ग्रहण करनेकी इच्छासे तप करते हुए प्रजापतिको ओंकार ही सर्वोत्तम साररूपसे भासित हुआ था; क्योंकि नित्य ओंकारकी साक्षात् उत्पत्तिकी कल्पना नहीं की जा सकती। वह इस प्रकारका ओंकाररूप इन्द्र—सम्पूर्ण कामनाओंका स्वामी परमेश्वर मुझे मेधा-प्रज्ञाके द्वारा प्रसन्न अथवा सबल करे, इस प्रकार यहाँ बुद्धि-बलके लिये प्रार्थना की जाती है।

अमृतस्य अमृतत्वहेतुभूतस्य ब्रह्मज्ञानस्य तदधिकारात्, हे देव धारणो धारयिता भूयासं भवेयम्। किं च शरीरं मे मम विचर्षणं विचक्षणं योग्यमित्येतत्। भूयादिति प्रथमपुरुषविपरिणामः। जिह्वा मे मधु-

हे देव ! मैं अमृत—अमृतत्वके हेतुभूत ब्रह्मज्ञानका धारण करनेवाला होऊँ; क्योंकि यहाँ ब्रह्मज्ञानका ही प्रसंग है। तथा मेरा शरीर विचर्षण—विचक्षण अर्थात् योग्य हो। [मूलमें 'भूयासम्' (होऊँ) यह उत्तम पुरुषका प्रयोग है इसे] 'भूयात्' (हो) इस प्रकार प्रथम पुरुषमें परिणत कर लेना चाहिये। मेरी

मत्तमा मधुमत्यतिशयेन मधुरभाषिणीत्यर्थः। कर्णाभ्यां श्रोत्राभ्यां भूरि बहु विश्रुवं व्यश्रवं श्रोता भूयासमित्यर्थः। आत्मज्ञानयोग्यः कार्यकरणसंघातोऽस्त्विति वाक्यार्थः। मेधा च तदर्थमेव हि प्रार्थ्यते।

जिह्वा मधुमत्तमा—अतिशय मधुमती अर्थात् अत्यन्त मधुरभाषिणी हो। मैं कानोंसे भूरि—अधिक मात्रामें श्रवण करूँ अर्थात् बड़ा श्रोता होऊँ। इस वाक्यका तात्पर्य यह है कि मेरा शरीर और इन्द्रियसंघात आत्मज्ञानके योग्य हो। तथा उसीके लिये ही बुद्धिकी याचना की जाती है।

ब्रह्मणः परमात्मनः कोशोऽसि। असेरिवोपलब्ध्यधिष्ठानत्वात्। त्वं हि ब्रह्मणः प्रतीकः, त्वयि ब्रह्मोपलभ्यते। मेधया लौकिकप्रज्ञया पिहित आच्छादितः स त्वं सामान्यप्रज्ञैरविदिततत्त्व इत्यर्थः। श्रुतं श्रवणपूर्वकमात्मज्ञानादिकं मे गोपाय रक्ष। तत्प्राप्त्यविस्मरणादि कुर्वित्यर्थः। जपार्था एते मन्त्रा मेधाकामस्य।

परमात्माकी उपलब्धिका स्थान होनेके कारण तू तलवारके कोशके समान ब्रह्म यानी परमात्माका कोश है; क्योंकि तू ब्रह्मका प्रतीक है—तुझमें ब्रह्मकी उपलब्धि होती है। वही तू मेधा अर्थात् लौकिकी बुद्धिसे आच्छादित यानी ढका हुआ है, अर्थात् सामान्यबुद्धि पुरुषोंको तेरे तत्त्वका ज्ञान नहीं होता। मेरे श्रुत अर्थात् श्रवणपूर्वक आत्मज्ञानादि विज्ञानकी रक्षा कर; अर्थात् उसकी प्राप्ति एवं अविस्मरण आदि कर। ये मन्त्र मेधाकामी पुरुषके जपके लिये हैं।

होमार्थास्त्वधुना श्रीकामस्य मन्त्रा उच्यन्ते ओङ्कारतः श्रियः प्रार्थना आवहन्त्यानयन्ती। वितन्वाना विस्तारयन्ती। तनो-

अब लक्ष्मीकामी पुरुषको होमके लिये मन्त्र बतलाये जाते हैं—आवहन्ती—लानेवाली, वितन्वाना—विस्तार करनेवाली, क्योंकि 'तनु'

वेस्तत्कर्मत्वात् । कुर्वाणा निर्वर्तयन्ती, अचीरमचिरं क्षिप्रमेव, छान्दसो दीर्घः, चिरं वा कुर्वाणा आत्मनो मम, किमित्याह—वासांसि वस्त्राणि मम गावश्च गाश्चेति यावत्, अन्नपाने च सर्वदैवमादीनि कुर्वाणा श्रीर्या तां ततो मेधानिर्वर्तनात्परमावहानय । अमेधसो हि श्रीरनर्थायैवेति ।

किंविशिष्टाम् । लोमशामजाव्यादियुक्तामन्यैश्च पशुभिः संयुक्तामावहेत्यधिकारादोङ्कार एवाभिसंबध्यते । स्वाहा स्वाहाकारो होमार्थमन्त्रान्तज्ञापनार्थः । आयन्तु मामिति व्यवहितेन संबन्धः । ब्रह्मचारिणो विमायन्तु प्रमायन्तु दमायन्तु शमायन्त्वित्यादि ॥ १-२ ॥

धातुका अर्थ विस्तार करना ही है; कुर्वाणा—करनेवाली; अचीरम्—अचिर अर्थात् शीघ्र ही; 'अचीरम्' में दीर्घ ईकार वैदिक प्रक्रियाके अनुसार है । अथवा चिरं (चिरकालतक) आत्मनः—मेरे लिये करनेवाली, क्या करनेवाली ? सो बतलाते हैं—मेरे वस्त्र, गौ और अन्न-पान इन्हें जो श्री सदा ही करनेवाली है । उसे, बुद्धि प्राप्त करानेके अनन्तर तू मेरे पास ला; क्योंकि बुद्धिहीनके लिये तो लक्ष्मी अनर्थका ही कारण होती है ।

किन विशेषणोंसे युक्त श्रीको लावे । लोमश अर्थात् भेड़-बकरी आदि ऊनवालोंके सहित और अन्य पशुओंसे युक्त श्रीको ला । यहाँ 'आवह' क्रियाका अधिकार होनेके कारण [उसके कर्ता] ओंकारसे ही सम्बन्ध है । स्वाहा—यह स्वाहाकार होमार्थ मन्त्रोंका अन्त सूचित करनेके लिये है । ['आ मायन्तु ब्रह्मचारिणः' इस वाक्यमें] 'आयन्तु माम्' इस प्रकार 'आ' का व्यवधानयुक्त 'यन्तु' शब्दसे सम्बन्ध है । [इसी प्रकार मेरे प्रति] ब्रह्मचारीलोग निष्कपट हों । वे प्रमाका धारण करें, इन्द्रिय-निग्रह करें, मनोनिग्रह करें, इत्यादि ॥ १-२ ॥

यशो जनेऽसानि स्वाहा । श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा । तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा । स मा भग प्रविश स्वाहा । तस्मिन् सहस्रशाखे निभगाहं त्वयि मृजे स्वाहा । यथापः प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम् । एवं मां ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा । प्रतिवेशोऽसि प्र मा पाहि प्र मा पद्यस्व ॥३॥

मैं जनतामें यशस्वी होऊँ—स्वाहा । मैं अत्यन्त प्रशंसनीय और धनवान् होऊँ—स्वाहा । हे भगवन् ! मैं उस ब्रह्मकोशभूत तुझमें प्रवेश कर जाऊँ—स्वाहा । हे भगवन् ! वह तू मुझमें प्रवेश कर—स्वाहा । हे भगवन् ! उस सहस्रशाखायुक्त [अर्थात् अनेकों भेदवाले] तुझमें मैं अपने पापाचरणोंका शोधन करता हूँ—स्वाहा । जिस प्रकार जल निम्न प्रदेशकी ओर जाता है तथा महीने अहर्जर—संवत्सरमें अन्तर्हित हो जाते हैं, उसी प्रकार हे धातः ! ब्रह्मचारीलोग सब ओरसे मेरे पास आवें—स्वाहा । तू [शरणागतोंका] आश्रयस्थान है अतः मेरे प्रति भासमान हो, तू मुझे प्राप्त हो ॥ ३ ॥

यशो यशस्वी जने जनसमूहेऽसानि भवानि । श्रेयान्प्रशस्यतरो वस्यसो वसीयसो वसुतराद्वसुमत्तराद्वासानीत्यन्वयः । किं च तं ब्रह्मणः कोशभूतं त्वा त्वां हे भग भगवन्पूजावन्प्रविशानि प्रविश्य चानन्यस्त्वदात्मैव भवानीत्यर्थः ।

मैं जनतामें यशस्वी होऊँ तथा श्रेयान्—प्रशस्यतर और वस्यसः—वसीयसः अर्थात् वसुमान्से भी वसुमान् यानी अत्यन्त धनी पुरुषोंसे भी विशेष धनवान् होऊँ । तथा हे भग-भगवन्-पूजनीय ! ब्रह्मके कोशभूत उस तुझमें मैं प्रवेश करूँ; तात्पर्य यह कि तुझमें प्रवेश करके तुझसे अनन्य हो मैं तेरा ही रूप

स त्वमपि मा मां भग भगवन् प्रविश । आवयोरेकत्वमेवास्तु । तस्मिंस्त्वयि सहस्रशाखे बहुशाखाभेदे हे भगवन्, निमृजे शोधयाम्यहं पापकृत्याम् ।

यथा लोक आपः प्रवता प्रवणवता निम्नवता देशेन यन्ति गच्छन्ति । यथा च मासा अहर्जरं संवत्सरोऽहर्जरः । अहोभिः परिवर्तमानो लोकाञ्जरयतीत्यहानि वास्मिञ्जीर्यन्त्यन्तर्भवन्तीत्यहर्जरः । तं च यथा मासा यन्त्येवं मां ब्रह्मचारिणो हे धातः सर्वस्य विधातः मामायन्त्वागच्छन्तु सर्वतः सर्वदिग्भ्यः ।

प्रतिवेशः—श्रमापनयनस्थानमासन्नगृहमित्यर्थः । एवं त्वं प्रतिवेश इव प्रतिवेशस्त्वच्छीलिनां सर्वपापदुःखापनयनस्थानमसि, अतो मा मां प्रति प्रभाहि प्रकाशयात्मानं प्रपद्यस्व च ।

हो जाऊँ तथा तू भी, हे भग—भगवन्! मुझमें प्रवेश कर । अर्थात् हम दोनोंकी एकता ही हो जाय । हे भगवन् ! उस सहस्रशाखा—अनेकों शाखाभेदवाले तुझमें मैं अपने पापकर्मोंका शोधन करता हूँ ।

लोकमें जिस प्रकार जल प्रवणवान्-निम्नतायुक्त देशकी ओर जाते हैं और महीने जिस प्रकार अहर्जरमें अन्तर्हित होते हैं । अहर्जर संवत्सरको कहते हैं, क्योंकि वह अहः दिनोंके रूपमें परिवर्तित होता हुआ लोकोंको जीर्ण करता है अथवा उसमें अहः—दिन जीर्ण यानी अन्तर्भूत होते हैं, इसलिये वह अहर्जर है । उस संवत्सरमें जिस प्रकार महीने जाते हैं, उस प्रकार हे धातः ! मेरे पास सब ओरसे सम्पूर्ण दिशाओंसे ब्रह्मचारीलोग आवें ।

'प्रतिवेश' श्रमनिवृत्तिके स्थान अर्थात् समीपवर्ती गृहको कहते हैं । इस प्रकार तू प्रतिवेशके समान प्रतिवेश यानी अपना अनुशीलन करनेवालोंका दुःखनिवृत्तिका स्थान है । अतः तू मेरे प्रति अपनेको प्रकाशित कर और मुझे प्राप्त हो; अर्थात्

मां रसविद्धमिव लोहं त्वन्मयं त्वदात्मानं कुर्वित्यर्थः ।

श्रीकामाऽस्मिन्विद्याप्रकरणे-

विद्योपलब्धौ धनस्योपयोगः ऽभिधीयमानो धनार्थः । धनं च कर्मार्थम् । कर्म चोपात्तदुरितक्षयाय । तत्क्षये हि विद्या प्रकाशते । तथा च स्मृतिः "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः । यथादर्शतले प्रख्ये पश्यन्त्यात्मानमात्मनि" (महा० शा० २०४ । ८, गरुड० १ । २३७ । ६) इति ॥ ३ ॥

पारदसंयुक्त लोहेके समान तू मुझे अपनेसे अभिन्न कर ले ।

इस ज्ञानके प्रकरणमें जो लक्ष्मीकी कामना कही जाती है, वह धनके लिये है, धन कर्मके लिये होता है और कर्म प्राप्त हुए पापोंके क्षयके लिये है । उनके क्षीण होनेपर ही ज्ञानका प्रकाश होता है, जैसा कि यह स्मृति भी कहती है "पापकर्मोंका क्षय हो जानेपर ही पुरुषको ज्ञान होता है । जिस प्रकार दर्पणके स्वच्छ हो जानेपर उसमें मुख देखा जा सकता है, उसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरणमें आत्माका साक्षात्कार होता है" ॥ ३ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥



पञ्चम अनुवाक

व्याहृतिरूप ब्रह्मकी उपासना

संहिताविषयमुपासनमुक्तं तदनु मेधाकामस्य श्रीकामस्य मन्त्रा अनुक्रान्ताः। ते च पारम्पर्येण विद्योपयोगार्था एव। अनन्तरं व्याहृत्यात्मनो ब्रह्मणोऽन्तरुपासनं स्वाराज्यफलं प्रस्तूयते—

पहले संहितासम्बन्धिनी उपासनाका वर्णन किया गया। तत्पश्चात् मेधाकी कामनावाले तथा श्रीकामी पुरुषोंके लिये मन्त्र बतलाये गये। वे भी परम्परासे ज्ञानके उपयोगके लिये ही हैं। उसके पश्चात् अब जिसका फल स्वाराज्य है उस व्याहृति-रूप ब्रह्मकी आन्तरिक उपासनाका आरम्भ किया जाता है—

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामु ह स्मैतां चतुर्थीं माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति। तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौ लोकः॥ १॥

मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते। भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषि महीयन्ते। भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि। सुवरिति यजूꣳषि॥ २॥

मह इति ब्रह्म ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते । भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते । ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥ ३ ॥

'भूः, भुवः और सुवः'—ये तीन व्याहृतियाँ हैं, उनमेंसे 'महः' इस चौथी व्याहृतिको माहाचमस्य (महाचमसका पुत्र) जानता है । वह महः ही ब्रह्म है । वही आत्मा है । अन्य देवता उसके अङ्ग (अवयव) हैं । 'भूः' यह व्याहृति यह लोक है, 'भुवः' अन्तरिक्षलोक है और 'सुवः' यह स्वर्गलोक है ॥ १ ॥ तथा 'महः' आदित्य है । आदित्यसे ही समस्त लोक वृद्धिको प्राप्त होते हैं । 'भूः' यही अग्नि है, 'भुवः' वायु है, 'सुवः' आदित्य है तथा 'महः' चन्द्रमा है । चन्द्रमासे ही सम्पूर्ण ज्योतियाँ वृद्धिको प्राप्त होती हैं । 'भूः' यही ऋक् है, 'भुवः' साम है, 'सुवः' यजुः है ॥ २ ॥ तथा 'महः' ब्रह्म है । ब्रह्मसे ही समस्त वेद वृद्धिको प्राप्त होते हैं । 'भूः' यही प्राण है, 'भुवः' अपान है, 'सुवः' व्यान है तथा 'महः' अन्न है । अन्नसे ही समस्त प्राण वृद्धिको प्राप्त होते हैं । इस प्रकार ये चार व्याहृतियाँ हैं । इनमेंसे प्रत्येक चार-चार प्रकारकी हैं । जो इन्हें जानता है वह ब्रह्मको जानता है । सम्पूर्ण देवगण उसे बलि (उपहार) समर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

भूर्भुवः सुवरिति; इतीत्युक्तोपप्रदर्शनार्थः । एतास्तिस्रः व्याहृतिचतुष्टयम् इति च प्रदर्शितानां परामर्शार्थः । परामृष्टाः

'भूर्भुवः सुवरिति' इसमें 'इति' शब्द पूर्वकथित [व्याहृतियों] को ही प्रदर्शित करनेके लिये है, 'एतास्तिस्रः' ये शब्द भी पूर्वप्रदर्शित [व्याहृतियों] के ही परामर्शके लिये हैं । 'वै' इस

स्मार्यन्ते वा इत्यनेन। तिस्र एताः प्रसिद्धा व्याहृतयः स्मार्यन्ते तावत्। तासामियं चतुर्थी व्याहृतिर्मह इति। तामेतां चतुर्थीं महाचमसस्यापत्यं माहाचमस्यः प्रवेदयते। उ ह स्म इत्येतेषां वृत्तानुकथनार्थत्वाद्विदितवान्ददर्शेत्यर्थः। माहाचमस्यग्रहणमार्षानुस्मरणार्थम्। ऋषिस्मरणमप्युपासनाङ्गमिति गम्यत इहोपदेशात्।

अव्ययसे परामृष्ट व्याहृतियोंका स्मरण कराया जाता है। अर्थात् [इन शब्दोंसे] ये तीन प्रसिद्ध व्याहृतियाँ स्मरण दिलायी जाती हैं। उनमें 'महः' यह चौथी व्याहृति है। उस इस चौथी व्याहृतिको महाचमसका पुत्र माहाचमस्य जानता है। किंतु 'उ ह स्म' ये तीन निपात अतीत घटनाका अनुकथन करनेके लिये होनेके कारण इसका अर्थ 'जानता था', 'देखा था' इस प्रकार होगा। [व्याहृतिके द्रष्टा] ऋषिका अनुस्मरण करनेके लिये 'माहाचमस्य' यह नाम लिखा गया है। इस प्रकार यहाँ उपदेश होनेके कारण यह जाना जाता है कि ऋषिका अनुस्मरण भी उपासनाका एक अङ्ग है।

व्याहृतिषु महसः प्राधान्यम्

येयं माहाचमस्येन दृष्टा व्याहृतिर्मह इति तद्ब्रह्म महद्धि ब्रह्म महश्च व्याहृतिः किं पुनस्तत्? स आत्मा आप्नोतेर्व्याप्तिकर्मण आत्मा

जिस 'महः' नामक व्याहृतिको माहाचमस्यने देखा था, वह ब्रह्म है। ब्रह्म भी महान् है और व्याहृति भी महः है। और वह क्या है? वही आत्मा है। 'व्याप्ति' अर्थवाले 'आप्' धातुसे 'आत्मा' शब्द निष्पन्न होता है। क्योंकि लोक,

इतराश्च व्याहृतयो लोका देवा वेदाः प्राणाश्च मह इत्यनेन व्याहृत्यात्मनादित्यचन्द्रब्रह्मान्नभूतेन व्याप्यन्ते यतः अतोऽङ्गान्यवयवा अन्या देवताः। देवताग्रहणमुपलक्षणार्थं लोकादीनाम्। मह इत्येतस्य व्याहृत्यात्मनो देवलोकादयः सर्वेऽवयवभूता यतोऽत आहादित्यादिभिर्लोकादयो महीयन्ते इति। आत्मना ह्यङ्गानि महीयन्ते महनं वृद्धिरुपचयः। महीयन्ते, वर्धन्त इत्यर्थः।

देव, वेद और प्राणरूप अन्य व्याहृतियाँ आदित्य, चन्द्र, ब्रह्म एवं अन्नस्वरूप व्याहृत्यात्मक महःसे व्याप्त हैं, इसलिये वे अन्य देवता इसके अङ्ग—अवयव हैं। यहाँ लोकादिका उपलक्षण करानेके लिये 'देवता' शब्दका ग्रहण किया गया है। क्योंकि देव और लोक आदि सभी 'महः' इस व्याहृत्यात्माके अवयवस्वरूप हैं, इसीलिये ऐसा कहा है कि आदित्यादिके योगसे लोकादि महत्ताको प्राप्त होते हैं। आत्मासे ही अङ्ग महत्ताको प्राप्त हुआ करते हैं। 'महन्' शब्दका अर्थ वृद्धि—उपचय है। अतः 'महीयन्ते' इसका वृद्धिको प्राप्त होते हैं, यह अर्थ है।

प्रतिव्याहृति-चत्वारो भेदाः

अयं लोकोऽग्निर्ऋग्वेदः प्राण इति प्रथमा व्याहृतिर्भूरिति। एवमुत्तरोत्तरैकैका चतुर्धा भवति। मह इति ब्रह्म। ब्रह्मेत्योङ्कारः, शब्दाधिकारेऽन्यस्यासंभवात्। उक्तार्थमन्यत्।

यह लोक, अग्नि, ऋग्वेद और प्राण—ये पहली व्याहृति भूः हैं; इसी प्रकार उत्तरोत्तर प्रत्येक व्याहृति चार-चार प्रकारकी है।[1] 'महः' ब्रह्म है; ब्रह्मका अर्थ ओंकार है; क्योंकि शब्दके प्रकरणमें अन्य किसी ब्रह्मका होना असम्भव है। शेष सबका अर्थ पहले कहा जा चुका है।

१. यथा अन्तरिक्षलोक, वायु, सामवेद और अपान—ये दूसरी व्याहृति भुवः हैं; द्युलोक, आदित्य, यजुर्वेद और व्यान—ये तीसरी व्याहृति सुवः हैं, तथा आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म और अन्न—ये चौथी व्याहृति महः हैं।

ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धेति। ता वा एता भूर्भुवः सुवर्मह इति चतस्र एकैकशश्चतुर्धा चतुष्प्रकाराः। धाशब्दः प्रकारवचनः। चतस्रश्चतस्रः सत्यश्चतुर्धा भवन्तीत्यर्थः। तासां यथाक्लृप्तानां पुनरुपदेशस्तथैवोपासननियमार्थः। ता यथोक्तव्याहृतीर्यो वेद स वेद विजानाति। किम्? ब्रह्म।

वे ये चारों व्याहृतियाँ चार प्रकारकी हैं। अर्थात् वे ये भूः, भुवः, सुवः और महः चार व्याहृतियाँ प्रत्येक चार-चार प्रकारकी हैं। 'धा' शब्द 'प्रकार' का वाचक है। अर्थात् वे चार-चार होती हुई चार प्रकारकी हैं। उनकी जिस प्रकार पहले कल्पना की गयी है उसी प्रकार उपासना करनेका नियम करनेके लिये उनका पुनः उपदेश किया गया है। उस उपर्युक्त व्याहृतियोंको जो पुरुष जानता है, वही जानता है। किसे जानता है? ब्रह्मको।

ननु "तद्ब्रह्म स आत्मा" इति ज्ञाते ब्रह्मणि न वक्तव्यमविज्ञातवत् वेद ब्रह्मेति।

शङ्का—'वह ब्रह्म है, वह आत्मा है' इस वाक्यद्वारा [महःरूपसे] ब्रह्मको जान लेनेपर भी उसे न जाननेके समान '[उसे जो जानता है] वह ब्रह्मको जानता है' ऐसा कहना तो ठीक नहीं है।

न, तद्विशेषविवक्षुत्वाददोषः। सत्यं विज्ञातं चतुर्थव्याहृत्यात्मा ब्रह्मेति न तु तद्विशेषो हृदयान्तरुपलभ्यत्वं मनोमयत्वादिश्च।

पञ्चमषष्ठानुवाकयोरेकवाक्यता

समाधान—ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उस [ब्रह्मविषयक ज्ञान] के विषयमें विशेष कहना अभीष्ट होनेके कारण इस प्रकार कहनेमें कोई दोष नहीं है। यह ठीक है कि इतना तो जान लिया कि चतुर्थ व्याहृतिरूप ब्रह्म है, किंतु हृदयके भीतर उपलब्ध होना तथा मनोमयत्वादिरूप उसकी विशेषताओंका

'शान्तिसमृद्धम्' इत्येवमन्तो विशेषणविशेष्यरूपो धर्मपूगो न विज्ञायत इति तद्विवक्षु हि शास्त्रमविज्ञातमिव ब्रह्म मत्वा स वेद ब्रह्मेत्याह। अतो न दोषः। यो हि वक्ष्यमाणेन धर्मपूगेन विशिष्टं ब्रह्म वेद स वेद ब्रह्मेत्यभिप्रायः। अतो वक्ष्यमाणानुवाकेनैकवाक्यतास्य; उभयोर्ह्यनुवाकयोरेकमुपासनम्।

लिङ्गाच्च, भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठतीत्यादिकं लिङ्गमुपासनैकत्वे। विधायकाभावाच्च। न हि 'वेद' 'उपासितव्यः' इति विधायकः कश्चिच्छब्दोऽस्ति। व्याहृत्यानुवाके 'ता यो वेद' इति च

तो ज्ञान नहीं हुआ। [अगले अनुवाकमें] 'शान्तिसमृद्धम्' इस वाक्यतक कहा हुआ विशेषण विशेष्यरूप धर्म-समूह ज्ञात नहीं है, उसे बतलानेकी इच्छासे ही शास्त्रने ब्रह्मको न जाने हुएके समान मानकर 'वह ब्रह्मको जानता है' ऐसा कहा है। इसलिये इसमें कोई दोष नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि जो पुरुष आगे बतलाये जानेवाले धर्मसमूहसे विशिष्ट ब्रह्मको जानता है वही ब्रह्मको जानता है। अतः आगे कहे जानेवाले अनुवाकसे इसकी एकवाक्यता है; क्योंकि इन दोनों अनुवाकोंकी एक ही उपासना है।

[ज्ञापक] लिङ्ग होनेसे भी यही बात सिद्ध होती है। [छठे अनुवाकमें] 'भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति' इत्यादि फलश्रुति इन दोनों अनुवाकोंमें एक ही उपासना होनेका लिङ्ग है। कोई विधान करनेवाला शब्द न होनेके कारण भी ऐसा ही समझा जाता है। [छठे अनुवाकमें] 'वेद' 'उपासितव्यः' ऐसा कोई [उपासनाका] विधान करनेवाला शब्द नहीं है। व्याहृति-अनुवाकमें जो 'उन (व्याहृतियों) को जो जानता है' ऐसा वाक्य है वह

वक्ष्यमाणार्थत्वान्नोपासनभेदकः । वक्ष्यमाणार्थत्वं च तद्विशेषविवक्षुत्वादित्यादिनोक्तम् । सर्वे देवा अस्मा एवं विदुषेऽङ्गभूता आवहन्त्यानयन्ति बलिं स्वाराज्यप्राप्तौ सत्यामित्यर्थः ॥ १-२ ॥

आगे बतलायी जानेवाली उपासनाके लिये होनेके कारण [पूर्वोक्त उपासनासे] उसका भेद करनेवाला नहीं है। इसी उपासनाको आगे बतलाना क्यों इष्ट है यह बात 'उसकी विशेषता बतलानेकी इच्छा होनेके कारण' आदि हेतुओंसे पहले कह ही चुके हैं। ऐसा जाननेवाले उपासकको उसके अङ्गभूत समस्त देवगण बलि (उपहार) समर्पण करते हैं अर्थात् स्वाराज्यकी प्राप्ति हो जानेपर उसके लिये उपहार लाते हैं— यह इसका तात्पर्य है ॥ १-२ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

षष्ठ अनुवाक

ब्रह्मके साक्षात् उपलब्धिस्थान हृदयाकाशका वर्णन

भूर्भुवःसुवःस्वरूपा मह इत्येतस्य व्याहृत्यात्मनो ब्रह्मणोऽङ्गान्यन्या देवता इत्युक्तम् । यस्य ता अङ्गभूतास्तस्य ब्रह्मणः साक्षादुपलब्ध्यर्थमुपासनार्थं च हृदयाकाशः स्थानमुच्यते शालग्राम इव विष्णोः । तस्मिन्हि तद्ब्रह्मोपास्यमानं मनोमयत्वादि

भूः, भुवः और सुवः—ये अन्य देवता 'महः' इस व्याहृतिरूप हिरण्यगर्भसंज्ञक ब्रह्मके अङ्ग हैं—ऐसा पहले कहा जा चुका है। जिसके वे अङ्गभूत हैं उस इस ब्रह्मकी साक्षात् उपलब्धि और उपासनाके लिये हृदयाकाश स्थान बतलाया जाता है, जैसे कि विष्णुके लिये शालग्राम। उसमें उपासना किये जानेपर ही वह मनोमयत्वादिधर्मविशिष्ट ब्रह्म

धर्मविशिष्टं साक्षादुपलभ्यते पाणाविवामलकम् । मार्गश्च सर्वात्मभावप्रतिपत्तये वक्तव्य इत्यनुवाक आरभ्यते—

हथेलीपर रखे हुए आँवलेके समान साक्षात् उपलब्ध होता है। इसके सिवा सर्वात्मभावकी प्राप्तिके लिये मार्ग भी बतलाना है, इसलिये इस अनुवाकका आरम्भ किया जाता है—

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेण तालुके । य एष स्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः । यत्रासौ केशान्तो विवर्तते । व्यपोह्य शीर्षकपाले भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ ॥ १ ॥

सुवरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः । श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्ततो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म । सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम् । शान्तिसमृद्धममृतम् । इति प्राचीनयोग्योपास्स्व ॥ २ ॥

यह जो हृदयके मध्यमें स्थित आकाश है उसमें ही यह मनोमय अमृतस्वरूप हिरण्मय पुरुष रहता है। तालुओंके बीचमें और [उसके मध्य] यह जो स्तनके समान [मांसखण्ड] लटका हुआ है [उसमें होकर जो सुषुम्ना नाड़ी] जहाँ केशोंका मूलभाग विभक्त होकर रहता है उस मूर्धप्रदेशमें मस्तकके कपालोंको विदीर्ण करके निकल गयी है वह इन्द्रयोनि [अर्थात् परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग] है। [इस प्रकार उपासना करनेवाला] पुरुष प्राणप्रयाणके समय मूर्धाका भेदन कर 'भूः' इस व्याहृतिरूप अग्निमें स्थित होता है [अर्थात् 'भूः' इस व्याहृतिका चिन्तन करनेसे अग्निरूप होकर इस लोकको व्याप्त करता है]। इसी प्रकार 'भुवः' इस

व्याहृतिका ध्यान करनेसे वायुमें ॥ १ ॥ 'भुवः' इस व्याहृतिका चिन्तन करनेसे आदित्यमें तथा 'महः' की उपासना करनेसे ब्रह्ममें स्थित हो जाता है। इस प्रकार वह स्वाराज्य प्राप्त कर लेता है तथा मनके पति (ब्रह्म) को पा लेता है। तथा वाणीका पति, चक्षुका पति, श्रोत्रका पति और सारे विज्ञानका पति हो जाता है। यही नहीं, इससे भी बड़ा हो जाता है। वह आकाश शरीर, सत्यस्वरूप प्राणाराम, मन आनन्द (जिसके लिये मन आनन्दस्वरूप है), शान्तिसम्पन्न और अमृतस्वरूप ब्रह्म हो जाता है। हे प्राचीनयोग्य शिष्य ! तू इस प्रकार [उस ब्रह्मकी] उपासना कर ॥ २ ॥

'सः' इति व्युत्क्रम्य 'अयं हृदयाकाशतत्स्थ- पुरुषः' इत्यनेन जीवयोःस्वरूपम् संबध्यते। य एषोऽन्तर्हृदये हृदयस्यान्तर्हृदयमिति पुण्डरीकाकारो मांसपिण्डः प्राणायतनोऽनेकनाडीसुषिर ऊर्ध्वनालोऽधोमुखो विशस्यमाने पशौ प्रसिद्ध उपलभ्यते। तस्यान्तर्य एष आकाशः प्रसिद्ध एव करकाकाशवत्, तस्मिन्सोऽयं पुरुषः। पुरि शयनात्पूर्णा वा भूरादयो लोका येनेति पुरुषः। मनोमयो

'सः' इस पहले पदका, पाठक्रमको छोड़कर आगेके 'अयं पुरुषः' इस पदसे सम्बन्ध है। जो यह अन्तर्हृदयमें हृदयके भीतर [आकाश है]। हृदय अर्थात् श्वेत कमलके आकारवाला मांसपिण्ड, जो प्राणका आश्रय, अनेकों नाडियोंके छिद्रवाला तथा ऊपरका नाल और नीचेको मुखवाला है, जो कि पशुका आलभन (वध) किये जानेपर स्पष्टतया उपलब्ध होता है। उसके भीतर जो यह कमण्डलुके अन्तर्वर्ती आकाशके समान प्रसिद्ध आकाश है उसीमें यह पुरुष रहता है, जो शरीररूप पुरमें शयन करनेके कारण अथवा उसने भूः आदि सम्पूर्ण लोकोंको पूरित किया हुआ है इसलिये 'पुरुष' कहलाता है। वह मनोमय

मनो विज्ञानम् मनुतेर्ज्ञानकर्मणः, तन्मयस्तत्प्रायस्तदुपलम्भत्वात् । मनुतेऽनेनेति वा मनोऽन्तःकरणं तदभिमानी तन्मयस्तल्लिङ्गो वा; अमृतोऽमरणधर्मा हिरण्मयो ज्योतिर्मयः ।

— ज्ञानवाची 'मन्' धातुसे सिद्ध होनेके कारण 'मन' शब्दका अर्थ 'विज्ञान' है, तन्मय—तत्प्राय अर्थात् विज्ञानमय है, क्योंकि उस (विज्ञानस्वरूप) से ही वह उपलब्ध होता है, अथवा जिसके द्वारा जीव मनन करता है वह अन्तःकरण ही 'मन' है । उसका अभिमानी, तन्मय अथवा उससे उपलक्षित होनेवाला अमृत—अमरणधर्मा और हिरण्मय—ज्योतिर्मय है ।

हृदयाकाशस्थ-जीवोपलब्धये मार्गः

तस्यैवंलक्षणस्य हृदयाकाशे साक्षात्कृतस्य विदुष आत्मभूतस्येन्द्रस्य-स्वरूपप्रतिपत्तये मार्गोऽभिधीयते । हृदयादूर्ध्वं प्रवृत्ता सुषुम्ना नाम नाडी योगशास्त्रेषु च प्रसिद्धा । सा चान्तरेण मध्ये प्रसिद्धे तालुके तालुकयोर्गता । यश्चैष तालुकयो-र्मध्ये स्तन इवावलम्बते मांसखण्ड-स्तस्य चान्तरेणेत्येतत् । यत्र च केशान्तः केशानामन्तोऽवसानं मूलं केशान्तो विवर्तते विभागेन वर्तते मूर्धप्रदेश इत्यर्थः तं देशं प्राप्य तत्र विनिःसृता व्यपोह्य शिरःकपाले विदार्य शीर्षकपाले

हृदयाकाशमें साक्षात्कार किये हुए उस ऐसे लक्षणोंवाले तथा विद्वान्‌के आत्मभूत इन्द्र (ईश्वर)-के ऐसे स्वरूपकी प्राप्तिके लिये मार्ग बतलाया जाता है—हृदयदेशसे ऊपरकी ओर जानेवाली सुषुम्ना नामकी नाडी योगशास्त्रमें प्रसिद्ध है । वह 'अन्तरेण तालुके' अर्थात् दोनों तालुओंके बीचमें होकर गयी है । और तालुओंके बीचमें यह जो स्तनके समान मांसखण्ड लटका हुआ है उसके भी बीचमें होकर गयी है । तथा जहाँ यह केशान्त—केशोंके मूलभागका नाम 'केशान्त' है वह जिस स्थानपर विभक्त होता है अर्थात् जो मूर्धप्रदेश है, उस स्थानमें पहुँचकर जो निकल गयी है, अर्थात् जो शीर्ष-कपालों—मस्तकके कपालोंको

शिरःकपाले विनिर्गता या सेन्द्रयोनिरिन्द्रस्य ब्रह्मणो योनिर्मार्गः स्वरूपप्रतिपत्तिद्वारमित्यर्थः ।

तयैवं विद्वान्मनोमयात्मदर्शी

सुषुम्नाद्वारा चतुर्व्याहृतिरूपब्रह्मप्राप्तिः

मूर्ध्नो विनिष्क्रम्यास्य लोकस्याधिष्ठाता भूरिति व्याहृतिरूपो योऽग्निर्महतो ब्रह्मणोऽङ्गभूतस्तस्मिन्नग्नौ प्रतितिष्ठत्यग्न्यात्मनेमं लोकं व्याप्नोतीत्यर्थः । तथा भुव इति द्वितीयव्याहृत्यात्मनि वायौ । प्रतितिष्ठतीत्यनुवर्तते । सुवरिति तृतीयव्याहृत्यात्मन्यादित्ये । मह इत्यङ्गिनि चतुर्थव्याहृत्यात्मनि ब्रह्मणि प्रतितिष्ठति ।

ब्रह्मीभूतस्य विदुष ऐश्वर्यम्

तेष्वात्मभावेन स्थित्वाप्नोति ब्रह्मभूतः स्वाराज्यं स्वराड्भावं स्वयमेव राजाधिपतिर्भवति, अङ्गभूतानां देवानां यथा ब्रह्म । देवाश्च

पार—विभक्त यानी विदीर्ण करती हुई बाहर निकल गयी है, वही इन्द्रयोनि—इन्द्र अर्थात् ब्रह्मकी योनि—मार्ग यानी ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्तिका द्वार है ।

इस प्रकार उस सुषुम्ना नाडीद्वारा जाननेवाला अर्थात् मनोमय आत्माका साक्षात्कार करनेवाला पुरुष मूर्धद्वारसे निकलकर इस लोकका अधिष्ठाता जो महान् ब्रह्मका अङ्गभूत 'भूः' ऐसा व्याहृतिरूप अग्नि है उस अग्निमें स्थित हो जाता है, अर्थात् अग्निरूप होकर इस लोकको व्याप्त कर लेता है । इसी प्रकार वह 'भुवः' इस द्वितीय व्याहृतिरूप वायुमें स्थित हो जाता है—इस प्रकार 'प्रतितिष्ठति' इस क्रियाकी अनुवृत्ति की जाती है । तथा [ऐसे ही] 'सुवः' इस तृतीय व्याहृतिरूप आदित्यमें और 'महः' इस चतुर्थ व्याहृतिरूप अङ्गी ब्रह्ममें स्थित होता है ।

उनमें आत्मस्वरूपसे स्थित हो वह ब्रह्मभूत हुआ स्वाराज्य—स्वराड्भावको प्राप्त कर लेता है अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्म अङ्गभूत देवताओंका अधिपति है उसी प्रकार स्वयं उनका राजा—अधिपति हो जाता है । तथा उसके

सर्वेऽस्मै बलिमावहन्त्यङ्गभूता यथा ब्रह्मणे । आप्नोति मनसस्पतिम् । सर्वेषां हि मनसां पतिः सर्वात्मकत्वाद् ब्रह्मणः । सर्वैर्हि मनोभिस्तन्मनुते । तदाप्नोत्येवं विद्वान् । किं च वाक्पतिः सर्वासां वाचां पतिर्भवति । तथैव चक्षुष्पतिश्चक्षुषां पतिः । श्रोत्रपतिः श्रोत्राणां पतिः । विज्ञानपतिर्विज्ञानानां च पतिः । सर्वात्मकत्वात्सर्वप्राणिनां करणैस्तद्वान्भवतीत्यर्थः ।

अङ्गभूत समस्त देवगण जिस प्रकार ब्रह्मको उसी प्रकार इस अपने अङ्गीके लिये उपहार लाते हैं । तथा वह मनस्पतिको प्राप्त हो जाता है । ब्रह्म सर्वात्मक होनेके कारण सम्पूर्ण मनोंका पति है, वह सारे ही मनोंद्वारा मनन करता है । इस प्रकार उपासनाद्वारा विद्वान् उसे प्राप्त कर लेता है । यही नहीं, वह वाक्पति-सम्पूर्ण वाणियोंका पति हो जाता है, तथा चक्षुष्पति—नेत्रोंका स्वामी, श्रोत्रपति—कानोंका स्वामी और विज्ञानपति—विज्ञानोंका स्वामी हो जाता है । तात्पर्य यह है कि सर्वात्मक होनेके कारण वह समस्त प्राणियोंकी इन्द्रियोंसे इन्द्रियवान् होता है ।

किं च ततोऽप्यधिकतरमेतद्भवति । किं तत्? उच्यते । आकाशशरीरमाकाशः शरीरमस्याकाशवद्वा सूक्ष्मं शरीरमस्येत्याकाशशरीरम् । किं तत्? प्रकृतं ब्रह्म । सत्यात्म सत्यं मूर्तामूर्तमवितथं स्वरूपं चात्मा स्वभावोऽस्य तदिदं सत्यात्म । प्राणारामं प्राणेष्वा-

यही नहीं, वह तो इससे भी बड़ा हो जाता है । सो क्या? बतलाते हैं—आकाशशरीर-आकाश जिसका शरीर है अथवा आकाशके समान जिसका सूक्ष्म शरीर है, वही आकाशशरीर है । वह है कौन? प्रकृत ब्रह्म [अर्थात् वह ब्रह्म जिसका यहाँ प्रकरण है] । सत्यात्म—जिसका मूर्तामूर्तरूप सत्य यानी अमिथ्या ही स्वरूप आत्मा अर्थात् स्वभाव है उसे 'सत्यात्म' कहते हैं । प्राणाराम—

राम आक्रीडा यस्य तत्प्राणारामम्। प्राणानां वारामो यस्मिंस्तत्प्राणारामम्। मनआनन्दम्; आनन्दभूतं सुखकृदेव यस्य मनस्तन्मनआनन्दम्। शान्तिसमृद्धं शान्तिरुपशमः, शान्तिश्च तत्समृद्धं च शान्तिसमृद्धम्। शान्त्या वा समृद्धं तदुपलभ्यत इति शान्तिसमृद्धम्। अमृतममरणधर्मि। एतच्चाधिकरणविशेषणं तत्रैव मनोमय इत्यादौ द्रष्टव्यमिति। एवं मनोमयत्वादिधर्मैर्विशिष्टं यथोक्तं ब्रह्म हे प्राचीनयोग्य, उपास्स्वेत्याचार्यवचनोक्तिरादरार्था। उक्तस्तूपासनाशब्दार्थः ॥ १-२ ॥

प्राणोंमें जिसका रमण अर्थात् क्रीडा है अथवा जिसमें प्राणोंका आरमण है उसे प्राणाराम कहते हैं। मनआनन्दम्—जिसका मन आनन्दभूत अर्थात् सुखकारी ही है वह मन आनन्द कहलाता है। शान्तिसमृद्धम् शान्ति उपशमको कहते हैं, जो शान्त भी है और समृद्ध भी वह शान्तिसमृद्ध है अथवा शान्तिके द्वारा उस समृद्ध ब्रह्मकी उपलब्धि होती है, इसलिये उसे शान्तिसमृद्ध कहते हैं। अमृत-अमरणधर्मी। ये अधिकरणमें आये हुए विशेषण उस मनोमय आदिमें ही जानने चाहिये। इस प्रकार मनोमयत्व आदि धर्मोंसे विशिष्ट उपर्युक्त ब्रह्मकी, हे प्राचीनयोग्य! तू उपासना कर—यह आचार्यकी उक्ति (उपासनाके) आदरके लिये है। 'उपासना' शब्दका अर्थ तो पहले बतलाया ही जा चुका है ॥ १-२ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाक

पाङ्क्तरूपसे ब्रह्मकी उपासना

यदेतद् व्याहृत्यात्मकं ब्रह्मोपास्यमुक्तं तस्यैवेदानीं पृथिव्यादिपाङ्क्तस्वरूपेणोपासनमुच्यते । पञ्चसंख्यायोगात्पङ्क्तिच्छन्दःसंपत्तिः । ततः पाङ्क्तत्वं सर्वस्य । पाङ्क्तश्च यज्ञः । "पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञः" इति श्रुतेः । तेन यत्सर्वं लोकाद्यात्मान्तं च पाङ्क्तं परिकल्पयति यज्ञमेव तत्परिकल्पयति । तेन यज्ञेन परिकल्पितेन पाङ्क्तात्मकं प्रजापतिमभिसंपद्यते । तत्कथं पाङ्क्तमिदं सर्वमित्यत आह—

यह जो व्याहृतिरूप उपास्य ब्रह्म बतलाया गया है अब पृथिवी आदि पाङ्क्तरूपसे उसीकी उपासनाका वर्णन किया जाता है—[पृथिवी आदि पाँच-पाँच संख्यावाले पदार्थ हैं तथा पङ्क्तिछन्द भी पाँच पदोंवाला है, अतः] पाँच संख्याका योग होनेसे [उन पृथिवी आदिसे] पङ्क्तिछन्द सम्पन्न होता है । इसीसे उन सबका पाङ्क्तत्व है । यज्ञ भी पाङ्क्त है, जैसा कि "पङ्क्तिछन्द पाँच पदोंवाला है, यज्ञ पाङ्क्त है" इस श्रुतिसे ज्ञात होता है । अतः जो लोकसे लेकर आत्मापर्यन्त सबको पाङ्क्तरूपसे कल्पना करता है, वह यज्ञकी ही कल्पना करता है । उस कल्पना किये हुए यज्ञसे वह पाङ्क्तस्वरूप प्रजापतिको प्राप्त हो जाता है । अच्छा तो यह सब किस प्रकार पाङ्क्त है? सो अब बतलाते हैं—

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः । अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि । आप ओषधयो वनस्पतय

आकाश आत्मा । इत्यधिभूतम् । अथाध्यात्मम् । प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः । चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक् । चर्म माꣳसꣳस्नावास्थि मज्जा । एतदधिविधाय ऋषिरवोचत् । पाङ्क्तं वा इदꣳ सर्वम् । पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तꣳस्पृणोतीति ॥ १ ॥

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिशाएँ और अवान्तर दिशाएँ [—यह लोकपाङ्क्त]; अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा और नक्षत्र [—यह देवतापाङ्क्त] तथा आप, ओषधि, वनस्पति, आकाश और आत्मा—ये अधिभूतपाङ्क्त हैं । अब अध्यात्मपाङ्क्त बतलाते हैं—प्राण, व्यान, अपान, उदान और समान [यह वायुपाङ्क्त]; चक्षु, श्रोत्र, मन, वाक् और त्वचा [—यह इन्द्रियपाङ्क्त] तथा चर्म, मांस, स्नायु, अस्थि और मज्जा [—यह धातुपाङ्क्त]—ये सब मिलाकर अध्यात्मपाङ्क्त हैं। [इस प्रकार पाङ्क्तोपासनाका विधान कर ऋषिने कहा]—'यह सब पाङ्क्त ही है; इस [आध्यात्मिक] पाङ्क्तसे ही उपासक [बाह्य] पाङ्क्तको पूर्ण करता है' ॥ १ ॥

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिश इति लोकपाङ्क्तम् । अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणीति देवतापाङ्क्तम् । आप ओषधयो वनस्पतय आकाश आत्मेति भूतपाङ्क्तम् । आत्मेति विराड् भूताधिकारात् । इत्यधिभूतमि-

त्रिविध-भूतपाङ्क्तम्

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिशाएँ और अवान्तर दिशाएँ—ये लोकपाङ्क्त हैं; अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा और नक्षत्र—ये देवतापाङ्क्त हैं; जल, ओषधि, वनस्पति, आकाश और आत्मा—ये भूतपाङ्क्त हैं। यहाँ 'आत्मा' विराट्को कहा है; क्योंकि यह भूतोंका अधिकरण है । 'इत्यधिभूतम्' यह वाक्य अधिलोक और

त्यधिलोकाधिदैवतपाङ्क्तद्वयोपलक्षणार्थम् । लोकदेवतापाङ्क्तयोश्चाभिहितत्वात् ।

अथानन्तरमध्यात्मं पाङ्क्तत्रयमुच्यते 'प्राणादि वायुपाङ्क्तम् । चक्षुरादीन्द्रियपाङ्क्तम् । चर्मादि धातुपाङ्क्तम् ।' एतावद्धीदं सर्वमध्यात्मम्, बाह्यं च पाङ्क्तमेवेत्येतदेवमधिविधाय परिकल्प्यऋषिर्वेद एतद्दर्शनसंपन्नो वा कश्चिदृषिरवोचदुक्तवान् । किमित्याह—पाङ्क्तं वा इदं सर्वं पाङ्क्तेनैवाध्यात्मिकेन संख्यासामान्यात्पाङ्क्तं बाह्यं स्पृणोति बलयति पूरयति । एकात्मतयोपलभ्यत इत्येतत् । एवं पाङ्क्तमिदं सर्वमिति यो वेद स प्रजापत्यात्मैव भवतीत्यर्थः ॥ १ ॥

त्रिविधाध्यात्म-पाङ्क्तम्

अधिदैवत—इन दो पाङ्क्तोंका भी उपलक्षण करानेके लिये है, क्योंकि इनमें लोक और देवता सम्बन्धी दो पाङ्क्तोंका भी वर्णन किया गया है।

अब आगे तीन अध्यात्मपाङ्क्तोंका वर्णन किया जाता है—प्राणादि वायुपाङ्क्त, चक्षु आदि इन्द्रियपाङ्क्त और चर्मादि धातुपाङ्क्त—बस, ये इतने ही अध्यात्म और बाह्य पाङ्क्त हैं। इनका इस प्रकार विधान अर्थात् कल्पना करके ऋषि—वेद अथवा इस दृष्टिसे सम्पन्न किसी ऋषिने कहा। क्या कहा ? सो बतलाते हैं—निश्चय ही यह सब पाङ्क्त ही है। आध्यात्मिक पाङ्क्तसे ही संख्यामें समानता होनेके कारण उपासक, बाह्यपाङ्क्तको बलवान् पूरित करता है अर्थात् उसके साथ एकरूपसे उपलब्ध करता है इस प्रकार 'यह सब पाङ्क्त है' ऐसा जो पुरुष जानता है, वह प्रजापतिस्वरूप ही हो जाता है—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ १ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

अष्टम अनुवाक

ओङ्कारोपासनाका विधान

व्याहृत्यात्मनो ब्रह्मण उपासनमुक्तम्। अनन्तरं च पाङ्क्तस्वरूपेण तस्यैवोपासनमुक्तम्। इदानीं सर्वोपासनाङ्गभूतस्योङ्कारस्योपासनं विधित्स्यते। परापरब्रह्मदृष्ट्या उपास्यमान ओङ्कारः शब्दमात्रोऽपि परापरब्रह्मप्राप्तिसाधनं भवति। स ह्यालम्बनं ब्रह्मणः परस्यापरस्य च, प्रतिमेव विष्णोः "एतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति" (प्र० उ० ५।२) इति श्रुतेः।

व्याहृतिरूप ब्रह्मकी उपासनाका निरूपण किया गया, उसके पश्चात् उसीकी उपासनाका पाङ्क्तरूपसे वर्णन किया। अब सम्पूर्ण उपासनाओंके अङ्गभूत ओंकारकी उपासनाका विधान करना चाहते हैं। पर एवं अपर ब्रह्मदृष्टिसे उपासना किये जानेपर ओंकार—केवल शब्दमात्र होनेपर भी पर और अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होता है, वही पर और अपर ब्रह्मका आलम्बन है, जिस प्रकार कि विष्णुका आलम्बन प्रतिमा है। "इसी आलम्बनसे उपासक [पर या अपर] किसी एक ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है" इस श्रुतिसे यही बात प्रमाणित होती है।

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओꣳशोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥ १ ॥

'ॐ' यह शब्द ब्रह्म है, क्योंकि 'ॐ' यह सर्वरूप है, 'ॐ' यह अनुकृति (अनुकरण—सम्मतिसूचक संकेत) है—ऐसा प्रसिद्ध है। [याज्ञिकलोग] "ओ श्रावय" ऐसा कहकर श्रवण कराते हैं। 'ॐ' ऐसा कहकर सामगान करते हैं। 'ॐ शोम्' ऐसा कहकर शस्त्रों (गीतिरहित ऋचाओं) का पाठ करते हैं। अध्वर्यु प्रतिगर (प्रत्येक कर्म) के प्रति 'ॐ' ऐसा उच्चारण करता है। 'ॐ' ऐसा कहकर ब्रह्मा अनुज्ञा देता है, 'ॐ' ऐसा कहकर वह अग्निहोत्रके लिये आज्ञा देता है। वेदाध्ययन करनेवाला ब्राह्मण 'ॐ' ऐसा उच्चारण करता हुआ कहता है—'मैं ब्रह्म (वेद अथवा परब्रह्म) को प्राप्त करूँ। इससे वह ब्रह्मको ही प्राप्त कर लेता है ॥१॥

ओमिति इति शब्दः स्वरूपपरिच्छेदार्थः, ओमित्येतच्छब्दरूपं ब्रह्मेति मनसा धारयेदुपासीत। यत ओमितीदं सर्वं हि शब्दरूपमोङ्कारेण व्याप्तम्। 'तद्यथा शङ्कुना' (छा० उ० २। २३। ३) इति श्रुत्यन्तरात्। अभिधानतन्त्रं ह्यभिधेयमित्यत इदं सर्वमोङ्कार इत्युच्यते।

(ओङ्कारस्य सार्वात्म्यम्)

'ओमिति' इसमें 'इति' शब्द ओंकारके स्वरूपका परिच्छेद (निर्देश) करनेके लिये है। अर्थात् 'ॐ' यह शब्दरूप ब्रह्म है—ऐसा इसका मनसे ध्यान-उपासना करे, क्योंकि 'ॐ' यही सब कुछ है, कारण, समस्त शब्दरूप प्रपञ्च ओंकारसे व्याप्त है जैसा कि 'जिस प्रकार शङ्कुसे पत्ते व्याप्त रहते हैं,' इत्यादि एक दूसरी श्रुतिसे सिद्ध होता है। सम्पूर्ण वाच्य वाचकके ही अधीन होता है, इसलिये यह सब ओंकार ही कहा जाता है।

ओङ्कारस्तुत्यर्थमुत्तरो ग्रन्थः। उपास्यत्वात्तस्य। ओमित्येतदनुकृतिरनुकरणम्। करोमि यास्यामि

(ओङ्कारमहिमा)

आगेका ग्रन्थ ओंकारकी स्तुतिके लिये है; क्योंकि वह उपासनीय है। 'ॐ' यह अनुकृति यानी अनुकरण है। इसीसे किसीके द्वारा 'मैं करता हूँ, मैं जाता हूँ'

चेति कृतमुक्तमोमित्यनुकरोत्यन्यः। अत ओङ्कारोऽनुकृतिः। ह स्म वा इति प्रसिद्धार्थावद्योतकाः। प्रसिद्धमोङ्कारस्यानुकृतित्वम्।

इस प्रकार किये हुए कथनको सुनकर दूसरा पुरुष [उसको स्वीकृत करते हुए] 'ॐ' ऐसा अनुकरण करता है। इसलिये ओंकार अनुकृति है। 'ह', 'स्म' और 'वै'—ये निपात प्रसिद्धिके सूचक हैं; क्योंकि ओंकारका अनुकृतित्व तो प्रसिद्ध ही है।

अपि च 'ओ श्रावय' इति प्रैषपूर्वकमाश्रावयन्ति। तथोमिति सामानि गायन्ति सामगाः। ॐ शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति शस्त्रशंसितारोऽपि। तथोमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौत्यनुजानाति प्रैषपूर्वकमाश्रावयति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। जुहोमीत्युक्त ओमित्येवानुज्ञां

इसके सिवा 'ओ श्रावय' इस प्रकार प्रेरणापूर्वक याज्ञिकलोग प्रतिश्रवण कराते हैं। तथा 'ॐ' ऐसा कहकर सामगान करनेवाले सामका गान करते हैं। शस्त्रशंसन करनेवाले भी 'ॐ शोम्' ऐसा कहकर शस्त्रोंका पाठ करते हैं। तथा अध्वर्युलोग प्रतिगरके प्रति 'ॐ' ऐसा उच्चारण करते हैं। 'ॐ' ऐसा कहकर ब्रह्मा अनुज्ञा देता है अर्थात् प्रेरणापूर्वक आश्रवण करता है; और 'ॐ' कहकर वह अग्निहोत्रके लिये आज्ञा देता है। अर्थात् यजमानके यों कहनेपर कि 'मैं हवन करता हूँ' वह 'ॐ' ऐसा कहकर उसे अनुज्ञा देता है।

ओमित्येव ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन् प्रवचनं करिष्यन्नध्येष्यमाण ओमित्येवाह । ओमित्येव प्रतिपद्यतेऽध्येतुमित्यर्थः । ब्रह्मवेदमुपाप्नवानीति प्राप्नुयां ग्रहीष्यामीत्युपाप्नोत्येव ब्रह्म । अथवा ब्रह्म परमात्मा तमुपाप्नवानीत्यात्मानं प्रवक्ष्यन्प्रापयिष्यन्नोमित्येवाह स च तेनोङ्कारेण ब्रह्म प्राप्नोत्येव । ओङ्कारपूर्वं प्रवृत्तानां क्रियाणां फलवत्त्वं यस्मात्तस्मादोङ्कारं ब्रह्मेत्युपासीतेति वाक्यार्थः ॥ १ ॥

प्रवचन अर्थात् अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण 'ॐ' ऐसा उच्चारण करता है; अर्थात् 'ॐ' ऐसा कहकर ही यह अध्ययन करनेके लिये प्रवृत्त होता है। 'मैं ब्रह्म यानी वेदको प्राप्त करूँ अर्थात् उसे ग्रहण करूँ' ऐसा कहकर वह ब्रह्मको प्राप्त कर ही लेता है। अथवा [यों समझो कि] 'मैं ब्रह्म—परमात्माको प्राप्त करूँ' इस प्रकार आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छासे वह 'ॐ' ऐसा ही कहता है और उस ॐकारके द्वारा वह ब्रह्मको प्राप्त कर ही लेता है। इस प्रकार क्योंकि ॐकारपूर्वक प्रवृत्त होनेकी क्रियाएँ फलवती होती हैं इसलिये 'ॐकार ब्रह्म है' इस तरह उसकी उपासना करे—यह इस वाक्यका अर्थ है ॥ १ ॥

इति शीक्षावल्ल्यामष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥



नवम अनुवाक

ऋतादि शुभकर्मोंकी अवश्यकर्तव्यताका विधान

विज्ञानादेवाप्नोति स्वाराज्यमित्युक्तत्वाच्छ्रौतस्मार्तानां कर्मणामानर्थक्यं प्राप्तमित्यतस्तन्मा प्रापदिति कर्मणां पुरुषार्थं प्रति साधनत्वप्रदर्शनार्थमिहोपन्यासः—

विज्ञानसे ही स्वाराज्य प्राप्त कर लेता है—ऐसा [छठे अनुवाकमें] कहे जानेके कारण श्रौत और स्मार्त कर्मोंकी व्यर्थता प्राप्त होती है । वह प्राप्त न हो, इसलिये पुरुषार्थके प्रति कर्मोंका साधनत्व प्रदर्शित करनेके लिये यहाँ उनका उल्लेख किया जाता है—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ १ ॥

ऋत (शास्त्रादिद्वारा बुद्धिमें निश्चय किया हुआ अर्थ) तथा स्वाध्याय (शास्त्राध्ययन) और प्रवचन (अध्यापन अथवा वेदपाठरूप ब्रह्मयज्ञ) [ये अनुष्ठान किये जाने योग्य हैं] । सत्य (सत्यभाषण) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [अनुष्ठान किये जाने चाहिये] । दम

(इन्द्रियदमन) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [इन्हें सदा करता रहे]। शम (मनोनिग्रह) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [ये सर्वदा कर्तव्य हैं]। अग्नि (अग्न्याधान) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [इनका अनुष्ठान करे]। अग्निहोत्र तथा स्वाध्याय और प्रवचन [ये नित्य कर्तव्य हैं]। अतिथि (अतिथिसत्कार) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [इनका नियमसे अनुष्ठान करे]। मानुषकर्म (विवाहादि लौकिक व्यवहार) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [इन्हें करता रहे]। प्रजा (प्रजा उत्पन्न करना) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [—ये सदा ही कर्तव्य हैं]। प्रजन (ऋतुकालमें भार्यागमन) तथा [इसके साथ] स्वाध्याय और प्रवचन [करता रहे]। प्रजाति (पौत्रोत्पत्ति) तथा स्वाध्याय और प्रवचन [इनका नियतरूपसे अनुष्ठान करे]। सत्य ही [अनुष्ठान करने योग्य है] ऐसा रथीतरका पुत्र सत्यवचा मानता है। तप ही [नित्य अनुष्ठान करने योग्य है] ऐसा नित्य तपोनिष्ठ पौरुशिष्टिका मत है। स्वाध्याय और प्रवचन ही [कर्तव्य हैं] ऐसा मुद्गलके पुत्र नाकका मत है। अतः वे (स्वाध्याय और प्रवचन) ही तप हैं, वे ही तप हैं॥ १ ॥

ऋतमिति व्याख्यातम्। स्वाध्यायोऽध्ययनम्। प्रवचनमध्यापनं ब्रह्मयज्ञो वा। एतान्यृतादीन्यनुष्ठेयानीति वाक्यशेषः। सत्यं च सत्यवचनं यथाव्याख्यातार्थं वा। तपः कृच्छ्रादि। दमो बाह्यकरणोपशमः। शमोऽन्तःकरणोपशमः। अग्नय आधा-

'ऋत' इसकी व्याख्या पहले [ऋतं वदिष्यामि—इस वाक्यमें] की जा चुकी है। 'स्वाध्याय' अध्ययनको कहते हैं, तथा 'प्रवचन' अध्यापन या ब्रह्मयज्ञका नाम है। ये ऋत आदि अनुष्ठान किये जाने योग्य हैं—यह वाक्यशेष है। सत्य-सत्य वचन अथवा जैसा पहले [सत्यं वदिष्यामि—इस वाक्यमें] व्याख्या की गयी है वह तप—कृच्छ्रादि; दम—बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह; शम—चित्तकी शान्ति; [वे सब करने योग्य

तव्याः। अग्निहोत्रं च होतव्यम्। अतिथयश्च पूज्याः। मानुषमिति लौकिकः संव्यवहारः, तच्च यथा प्राप्तमनुष्ठेयम्। प्रजा चोत्पाद्या। प्रजनश्च प्रजननमृतौ भार्यागमनमित्यर्थः। प्रजातिः पौत्रोत्पत्तिः पुत्रो निवेशयितव्य इत्येतत्।

सर्वैरेतैः कर्मभिर्युक्तस्यापि

स्वाध्यायप्रवचन-सहयोगकारणम्

स्वाध्यायप्रवचने यत्नतोऽनुष्ठेये इत्येवमर्थं सर्वेण सह स्वाध्यायप्रवचनग्रहणम्। स्वाध्यायाधीनं ह्यर्थज्ञानम्, अर्थज्ञानायत्तं च परं श्रेयः, प्रवचनं च तदविस्मरणार्थं धर्मप्रवृद्ध्यर्थं च। अतः स्वाध्यायप्रवचनयोरादरः कार्यः।

सत्यमिति सत्यमेवानुष्ठातव्य-

सत्यादिप्राधान्ये मुनीनां मतभेदाः

मिति सत्यमेव वचो यस्य सोऽयं सत्यवचा नाम वा तस्य। राथीतरो रथीतरस्य गोत्रो राथीतराचार्यो मन्यते। तप इति तप एव

हैं]। अग्नियोंका आधान करना चाहिये। अग्निहोत्र होम करने योग्य है। अतिथियोंका पूजन करना चाहिये। मानुष यानी लौकिक व्यवहार; उसका भी यथाप्राप्त अनुष्ठान करना चाहिये। प्रजा उत्पन्न करनी चाहिये। प्रजन—प्रजनन—ऋतुकालमें भार्यागमन और प्रजाति—पौत्रोत्पत्ति अर्थात् पुत्रको स्त्रीपरिग्रह कराना चाहिये।

इन सब कर्मोंसे युक्त पुरुषको भी स्वाध्याय और प्रवचनका यत्नपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये—इसीलिये इन सबके साथ स्वाध्याय और प्रवचनको ग्रहण किया गया है। स्वाध्यायके अधीन ही अर्थज्ञान है और अर्थज्ञानके अधीन ही परमश्रेय है, तथा प्रवचन उसकी अविस्मृति और धर्मकी वृद्धिके लिये है; इसलिये स्वाध्याय और प्रवचनमें आदर (श्रद्धा) रखना चाहिये।

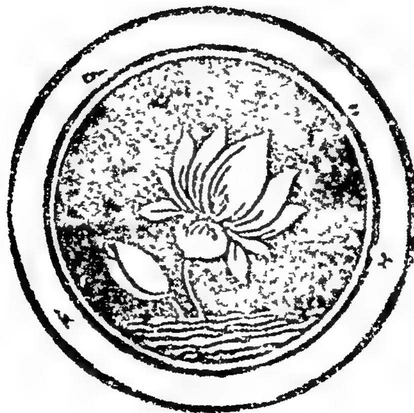
सत्य अर्थात् सत्य ही अनुष्ठान किये जाने योग्य है—ऐसा सत्यवचा—सत्य ही जिसका वचन हो वह अथवा जिसका नाम ही सत्यवचा है वह राथीतर अर्थात् रथीतरके वंशमें उत्पन्न हुआ राथीतर आचार्य मानता है। तप यानी तप ही

कर्तव्यमिति तपोनित्यस्तपसि नित्यस्तपः परस्तपोनित्य इति वा नाम पौरुशिष्टिः पुरुशिष्टस्यापत्यं पौरुशिष्टिराचार्यो मन्यते ।

स्वाध्यायप्रवचने एवानुष्ठेये इति नाको नामतो मुद्गलस्यापत्यं मौद्गल्य आचार्यो मन्यते । तद्धि तपस्तद्धि तपः । हि यस्मात्स्वाध्यायप्रवचने एव तपस्तस्मात्ते एवानुष्ठेये इति । उक्तानामपि सत्यतपःस्वाध्यायप्रवचनानां पुनर्ग्रहणमादरार्थम् ॥ १ ॥

कर्तव्य है—ऐसा तपोनित्य नित्य तपोनिष्ठ अथवा तपोनित्य नामवाला पौरुशिष्टि पुरुशिष्टका पुत्र पौरुशिष्टि आचार्य मानता है । स्वाध्याय और प्रवचन ही अनुष्ठान किये जाने योग्य हैं—ऐसा नाक नामवाला मुद्गलका पुत्र मौद्गल्य आचार्य मानता है । वही तप है, वही तप है । इसका तात्पर्य यह है कि स्वाध्याय और प्रवचन ही तप हैं, इसलिये वे ही अनुष्ठान किये जाने योग्य हैं । पहले कहे हुए भी सत्य, तप, स्वाध्याय और प्रवचनोंका पुनर्ग्रहण उनके आदरके लिये है ॥ १ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥



दशम अनुवाक

त्रिशङ्कुका वेदानुवचन

अहं वृक्षस्य रेरिवेति स्वाध्यायार्थो मन्त्राम्नायः । स्वाध्यायश्च विद्योत्पत्तये । प्रकरणात् । विद्यार्थं हीदं प्रकरणम् । न चान्यार्थत्वमवगम्यते । स्वाध्यायेन च विशुद्धसत्त्वस्य विद्योत्पत्तिरवकल्पते ।

'अहं वृक्षस्य रेरिवा' आदि मन्त्राम्नाय स्वाध्याय (जप) के लिये है । तथा स्वाध्याय विद्या (ज्ञान) की उत्पत्तिके लिये बतलाया गया है; यह प्रकरणसे ज्ञात होता है; क्योंकि यह प्रकरण विद्याके लिये ही है, इसके सिवा उसका कोई और प्रयोजन नहीं जान पड़ता, क्योंकि स्वाध्यायके द्वारा जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, उसीको विद्याकी उत्पत्ति होना सम्भव है ।

अहं वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि द्रविणꣳसवर्चसम् । सुमेधा अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ॥१॥

मैं [अन्तर्यामीरूपसे उच्छेदरूप संसार-] वृक्षका प्रेरक हूँ । मेरी कीर्ति पर्वतशिखरके समान उच्च है । ऊर्ध्वपवित्र (परमात्मारूप कारणवाला) हूँ । अन्नवान् सूर्यमें जिस प्रकार अमृत है, उसी प्रकार मैं भी शुद्ध अमृतमय हूँ । मैं प्रकाशमान [आत्मतत्त्वरूप] धन, सुमेधा (सुन्दर मेधावाला) और अमरणधर्मा तथा अक्षित (अव्यय) हूँ, अथवा अमृतसे सिक्त (भीगा हुआ) हूँ—यह त्रिशङ्कु ऋषिका वेदानुवचन है ॥ १ ॥

अहं वृक्षस्योच्छेदात्मकस्य संसारवृक्षस्य रेरिवा प्रेरयिताऽन्तर्याम्यात्मना। कीर्तिः ख्यातिर्गिरेः पृष्ठमिवोच्छ्रिता मम। ऊर्ध्वपवित्र ऊर्ध्वं कारणं पवित्रं पावनं ज्ञानप्रकाश्यं पवित्रं परमं ब्रह्म यस्य सर्वात्मनो मम सोऽहमूर्ध्वपवित्रः। वाजिनीव वाजवतीव। वाजमन्नं तद्वति सवितरीत्यर्थः। यथा सवितर्यमृतमात्मतत्त्वं विशुद्धं प्रसिद्धं श्रुतिस्मृतिशतेभ्य एवं स्वमृतं शोभनं विशुद्धमात्मतत्त्वमस्मि भवामि। द्रविणं धनं सवर्चसं दीप्तिमत्तदेवात्मतत्त्वमस्मीत्यनुवर्तते। ब्रह्मज्ञानं वात्मतत्त्वप्रकाशकत्वात्सवर्चसम्। द्रविणमिव द्रविणं मोक्षसुखहेतुत्वात्। आ पक्षे प्राप्तं मयेत्यध्याहारः

मैं अन्तर्यामीरूपसे वृक्ष अर्थात् उच्छेदात्मक संसाररूप वृक्षका प्रेरक हूँ। मेरी कीर्ति—प्रसिद्धि पर्वतके पृष्ठभागके समान ऊँची है। मैं ऊर्ध्वपवित्र हूँ—पवित्र पावन अर्थात् ज्ञानसे प्रकाशित होने योग्य पवित्र परब्रह्म जिस मुझ सर्वात्माका ऊर्ध्व यानी कारण है वह मैं ऊर्ध्वपवित्र हूँ। 'वाजिनि इव'—वाजवान्के समान—वाज अर्थात् अन्न उससे युक्त सूर्यके समान, जिस प्रकार सैकड़ों श्रुति-स्मृतियोंके अनुसार सूर्यमें विशुद्ध अमृत यानी आत्म-तत्त्व प्रसिद्ध है, उसी प्रकार मैं भी सु अमृत अर्थात् शोभन विशुद्ध आत्मतत्त्व हूँ।

वही मैं आत्मतत्त्व सवर्चस—दीप्तिशाली द्रविण यानी धन हूँ—इस प्रकार यहाँ 'अस्मि' (हूँ) क्रियाकी अनुवृत्ति की जाती है। अथवा आत्मतत्त्वका प्रकाशक होनेसे तेजस्वी ब्रह्मज्ञान, जो मोक्ष-सुखका हेतु होनेके कारण धनके समान धन है, [मुझे प्राप्त हो गया है]—इस पक्षमें 'अस्मि' क्रियाकी अनुवृत्ति न करके] 'मया प्राप्तम्' (वह मुझे प्राप्त हो गया है) इसका अध्याहार करना चाहिये।

सुमेधाः शोभना मेधा सर्वज्ञलक्षणा यस्य मम सोऽहं सुमेधाः । संसारस्थित्युत्पत्त्युपसंहारकौशलयोगात्सुमेधस्त्वम् । अत एवामृतोऽमरणधर्माक्षितोऽक्षीणोऽव्ययः, अक्षतो वा; अमृतेन वोक्षितः सिक्तः । "अमृतोक्षितोऽहम्" इत्यादि ब्राह्मणम् ।

सुमेधा—जिस मेरी मेधा शोभन अर्थात् सर्वज्ञत्वलक्षणवाली है, वह मैं सुमेधा हूँ । संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और संहार—इसका कौशल होनेके कारण मेरा सुमेधस्त्व है । इसीसे मैं अमृत—अमरणधर्मा और अक्षित--अक्षीण यानी अव्यय अथवा अक्षय हूँ । अथवा, [तृतीयातत्पुरुष समास माननेपर] अमृतेन उक्षितः-अमृतसे सिक्त हूँ । "मैं अमृतसे उक्षित हूँ,' ऐसा ब्राह्मणवाक्य भी है ।

इत्येवं त्रिशङ्कोर्ऋषेर्ब्रह्मभूतस्य ब्रह्मविदो वेदानुवचनम्; वेदो वेदनमात्मैकत्वविज्ञानं तस्य प्राप्तिमनु वचनं वेदानुवचनम् । आत्मनः कृतकृत्यताख्यापनार्थं वामदेववत्त्रिशङ्कुनार्षेण दर्शनेन दृष्टो मन्त्राम्नाय आत्मविद्याप्रकाशक इत्यर्थः ।

इस प्रकार यह ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्ता त्रिशङ्कु ऋषिका वेदानुवचन है । वेद वेदन अर्थात् आत्मैकत्वविज्ञानको कहते हैं। उसकी प्राप्तिके अनु—पीछेका वचन 'वेदानुवचन' कहलाता है । तात्पर्य यह है कि अपनी कृतकृत्यता प्रकट करनेके लिये वामदेवके समान[1] त्रिशङ्कु ऋषिद्वारा आर्ष दृष्टिसे देखा हुआ यह मन्त्राम्नाय आत्मविद्याका प्रकाश करनेवाला है ।

अस्य च जपो विद्योत्पत्त्यर्थोऽवगम्यते । ऋतं चेत्यादि-

इसका जप विद्याकी उत्पत्तिके लिये माना जाता है । इस 'ऋतं

१. देखिये ऐतरेयोपनिषद् २ । १ । ५ ।

कर्मोपन्यासादनन्तरं च वेदानुवचनपाठादेतदवगम्यत एवं श्रौतस्मार्तेषु नित्येषु कर्मसु युक्तस्य निष्कामस्य परं ब्रह्म विविदिषोरार्षाणि दर्शनानि प्रादुर्भवन्त्यात्मादिविषयाणीति ॥ १ ॥

च' इत्यादि अनुवाकमें धर्मका उपन्यास (उल्लेख) करनेके अनन्तर वेदानुवचनका पाठ करनेसे यह जाना जाता है कि इस प्रकार श्रौत और स्मार्त नित्यकर्मोंमें लगे हुए, परब्रह्मके निष्काम जिज्ञासुके प्रति आत्मा आदिसे सम्बन्धित आर्ष दर्शनोंका प्रादुर्भाव हुआ करता है ॥ १ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

एकादश अनुवाक

वेदाध्ययनके अनन्तर शिष्यको आचार्यका उपदेश

प्राग्ब्रह्मविज्ञानात् कर्मविधिः

वेदमनूच्येत्येवमादिकर्तव्यतोपदेशारम्भः प्राग्ब्रह्मविज्ञानान्नियमेन कर्तव्यानि श्रौतस्मार्तकर्माणीत्येवमर्थः। अनुशासनश्रुतेः पुरुषसंस्कारार्थत्वात्। संस्कृतस्य हि विशुद्धसत्त्वस्यात्मज्ञानमञ्जसैवोत्पद्यते "तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययामृतमश्नुते" (मनु० १२। १०४) इति स्मृतिः। वक्ष्यति च-'तपसा ब्रह्म विजि-

ब्रह्मात्मैक्यविज्ञानसे पूर्व श्रौत और स्मार्तकर्मोंका नियमसे अनुष्ठान करना चाहिये—इसीलिये 'वेदमनूच्य' इत्यादि श्रुतिसे उनकी कर्तव्यताके उपदेशका आरम्भ किया जाता है; क्योंकि ['अनुशास्ति' ऐसी] जो अनुशासन श्रुति है वह पुरुषके संस्कारके लिये है; क्योंकि जो पुरुष संस्कारयुक्त और विशुद्धचित्त होता है, उसे अनायास ही आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस सम्बन्धमें "तपसे पापका नाश करता है और ज्ञानसे अमरत्व लाभ करता है" ऐसी स्मृति है। आगे ऐसा कहेंगे भी कि

ज्ञासस्व" (तै० उ० ३ । २ । ५) इति । अतो विद्योत्पत्त्यर्थमनुष्ठेयानि कर्माणि । अनुशास्तीत्यनुशासनशब्दादनुशासनातिक्रमे हि दोषोत्पत्तिः ।

"तपसे ब्रह्मको जाननेकी इच्छा कर" अतः ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये कर्म करने चाहिये । 'अनुशास्ति' इसमें 'अनुशासन'—ऐसा शब्द होनेके कारण उस अनुशासनका अतिक्रमण करनेपर दोषकी उत्पत्ति होगी ।

प्रागुपन्यासाच्च कर्मणाम् । केवलब्रह्मविद्यारम्भाच्च पूर्वं कर्माण्युपन्यस्तानि । उदितायां च ब्रह्मविद्यायाम् "अभयं प्रतिष्ठां विन्दते" (तै०उ० २ । ७ । १) "न बिभेति कुतश्चन" (तै० उ० २ । ९ । १) "किमहं साधु नाकरवम्" (तै० उ० २ । ९ । १) इत्येवमादिना कर्मनैष्किञ्चन्यं दर्शयिष्यति; इत्यतोऽवगम्यते पूर्वोपचितदुरितक्षयद्वारेण विद्योत्पत्त्यर्थानि कर्माणीति । मन्त्रवर्णाच्च—"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते" (ई० उ० ११) इति । ऋतादि-

कर्मोंका उपन्यास पहले किया जानेके कारण भी [यह निश्चय होता है कि ये कर्म विद्याकी उत्पत्तिके लिये हैं] । कर्मोंका उपन्यास केवल ब्रह्मविद्याका निरूपण आरम्भ करनेसे पूर्व ही किया गया है । ब्रह्मविद्याका उदय होनेपर तो "अभय प्रतिष्ठाको प्राप्त कर लेता है" "किसीसे भी भय नहीं मानता" "मैंने कौन-सा शुभ कर्म नहीं किया" इत्यादि वाक्योंद्वारा कर्मोंकी निष्किञ्चनता ही दिखलायेंगे । इससे विदित होता है कि कर्म पूर्वसंचित पापोंके क्षयके द्वारा ज्ञानकी प्राप्तिके ही लिये हैं "अविद्या (कर्म) से मृत्यु (अधर्म) को पार करके विद्या (उपासना) से अमरत्व लाभ करता है" इस मन्त्रवर्णसे भी यही बात प्रमाणित होती है । अतः पहले (नवम अनुवाकमें)

दीनां पूर्वत्रोपदेश आनर्थक्यपरिहारार्थः । इह तु ज्ञानोत्पत्त्यर्थत्वात्कर्तव्यतानियमार्थः ।

जो ऋतादिका उपदेश किया है वह उनके आनर्थक्यकी निवृत्तिके लिये है । तथा यहाँ ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु होनेसे उनकी कर्तव्यताका नियम करनेके लिये है ।

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १ ॥

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकꣳसुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ॥ २ ॥

नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात् ॥ ३ ॥

ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः ।

संमर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् । तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः। एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एव मु चैतदुपास्यम् ॥ ४ ॥

वेदाध्ययन करानेके अनन्तर आचार्य शिष्यको उपदेश देता है—सत्य बोल । धर्मका आचरण कर । स्वाध्यायसे प्रमाद न कर । आचार्यके लिये अभीष्ट धन लाकर (उसकी आज्ञासे स्त्रीपरिग्रह कर और) सन्तान-परम्पराका छेदन न कर । सत्यसे प्रमाद नहीं करना चाहिये । धर्मसे प्रमाद नहीं करना चाहिये । कुशल (आत्मरक्षामें उपयोगी) कर्मसे प्रमाद नहीं करना चाहिये । ऐश्वर्य देनेवाले माङ्गलिक कर्मोंसे प्रमाद नहीं करना चाहिये । स्वाध्याय और प्रवचनसे प्रमाद नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥ देवकार्य और पितृकार्योंसे प्रमाद नहीं करना चाहिये। तू मातृदेव (माता ही जिसका देव है ऐसा) हो, पितृदेव हो, आचार्य-देव हो और अतिथिदेव हो । जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हींका सेवन करना चाहिये—दूसरोंका नहीं । हमारे (हम गुरुजनोंके) जो शुभ आचरण हैं तुझे उन्हींकी उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥ दूसरे प्रकारके कर्मोंकी नहीं । जो कोई [आचार्यादि धर्मोंसे युक्त होनेके कारण] हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, उनका आसनादिके द्वारा तुझे आश्वासन (श्रमापहरण) करना चाहिये । श्रद्धापूर्वक देना चाहिये । अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये। अपने ऐश्वर्यके अनुसार देना चाहिये । लज्जापूर्वक देना चाहिये । भय मानते हुए देना चाहिये । संवित्—मैत्री आदि कार्यके निमित्तसे देना चाहिये । यदि तुझे कर्म या आचारके विषयमें कोई सन्देह उपस्थित हो ॥ ३ ॥ तो वहाँ जो विचारशील, कर्ममें नियुक्त, आयुक्त (स्वेच्छासे कर्मपरायण), अरूक्ष (सरलमति) एवं धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, उस प्रसङ्गमें वे जैसा व्यवहार करें वैसा ही तू भी कर । इसी प्रकार जिनपर संशययुक्त दोष आरोपित किये गये हों उनके विषयमें, वहाँ जो विचारशील, कर्ममें

नियुक्त अथवा आयुक्त (दूसरोंसे प्रेरित न होकर स्वतः कर्ममें परायण), सरलहृदय और धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, वे जैसा व्यवहार करें तू भी वैसा ही कर। यह आदेश—विधि है, यह उपदेश है; यह वेदका रहस्य है और [ईश्वरकी] आज्ञा है। इसी प्रकार तुझे उपासना करनी चाहिये—ऐसा ही आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

अधीतवेदस्य कर्तव्यनिरूपणम्

वेदमनूच्याध्याप्याचार्योऽन्तेवासिनं शिष्यमनुशास्ति ग्रन्थग्रहणादनु पश्चाच्छास्ति तदर्थं ग्राहयतीत्यर्थः, अतोऽवगम्यतेऽधीतवेदस्य धर्मजिज्ञासामकृत्वा गुरुकुलान्न समावर्तितव्यमिति। "बुद्ध्वा कर्माणि चारभेत्" इति स्मृतेश्च। कथमनुशास्तीत्याह—

सत्यं वद यथाप्रमाणावगतं वक्तव्यं तद्वद। तद्वद्धर्मं चर। धर्म इत्यनुष्ठेयानां सामान्यवचनं सत्यादिविशेषनिर्देशात्। स्वा-

वेदका अध्ययन करानेके अनन्तर आचार्य अन्तेवासी—शिष्यको उपदेश करता है, अर्थात् ग्रन्थ-ग्रहणके पश्चात् अनुशासन करता है—उसका अर्थ ग्रहण कराता है। इससे ज्ञात होता है कि वेदाध्ययन कर चुकनेपर भी ब्रह्मचारीको बिना धर्मजिज्ञासा किये गुरुकुलसे समावर्तन (अपने घरकी ओर प्रत्यागमन) नहीं करना चाहिये। 'कर्मोंका यथावत् ज्ञान प्राप्त करके उनके अनुष्ठानका आरम्भ करे' इस स्मृतिसे भी यही सिद्ध होता है। किस प्रकार उपदेश करता है ? सो बतलाते हैं—

सत्य बोल अर्थात् जो कहनेयोग्य बात प्रमाणसे जैसी जानी गयी हो उसे उसी प्रकार कह। इसी प्रकार धर्मका आचरण कर। 'धर्म' यह अनुष्ठान करनेयोग्य कर्मोंका सामान्यरूपसे वाचक है; क्योंकि सत्यादि विशेष धर्मोंका तो निर्देश कर ही दिया है। स्वाध्याय

ध्यायादध्ययनान्मा प्रमदः प्रमादं मा कार्षीः। आचार्यायाचार्यार्थं प्रियमिष्टं धनमाहृत्यानीय दत्त्वा विद्यानिष्क्रयार्थम्, आचार्येण चानुज्ञातोऽनुरूपान्दारानाहृत्य प्रजातन्तुं प्रजासन्तानं मा व्यवच्छेत्सीः। प्रजासन्ततेर्विच्छित्तिर्न कर्तव्या। अनुत्पद्यमानेऽपि पुत्रं पुत्रकाम्यादिकर्मणा तदुत्पत्तौ यत्नः कर्तव्य इत्यभिप्रायः। प्रजाप्रजनप्रजातित्रयनिर्देशसामर्थ्यात्। अन्यथा प्रजनश्चेत्येतदेकमेवावक्ष्यत्।

सत्यान्न प्रमदितव्यं प्रमादो न कर्तव्यः। सत्याच्च प्रमदनमनृतप्रसङ्गः, प्रमादशब्दसामर्थ्यात्। विस्मृत्याप्यनृतं न वक्तव्यमित्यर्थः। अन्यथासत्यवदनप्रतिषेध एव [illegible] र्मान्न

अर्थात् अध्ययनसे प्रमाद न कर। आचार्यके लिये प्रिय—उनका अभीष्ट धन लाकर और विद्यादानसे उऋण होनेके लिये उन्हें देकर आचार्यके आज्ञा देनेपर अपने अनुरूप स्त्रीसे विवाह करके प्रजातन्तु—सन्तति-क्रमका छेदन न कर। अर्थात् प्रजासन्ततिका विच्छेद नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि यदि पुत्र उत्पन्न न हो तो भी पुत्र-काम्या (पुत्रेष्टि) आदि कर्मोंद्वारा उनकी उत्पत्तिके लिये यत्न करना ही चाहिये। [नवम अनुवाकमें] प्रजा, प्रजन और प्रजाति—तीनोंहीका निर्देश किया गया है; उसकी सामर्थ्यसे यही बात सिद्ध होती है; अन्यथा वहाँ केवल 'प्रजन' इस एक ही साधनका निर्देश किया जाता।

सत्यसे प्रमाद नहीं करना चाहिये। सत्यसे प्रमादका अभिप्राय है असत्यका प्रसङ्ग, यह प्रमादशब्दके सामर्थ्यसे बोधित होता है। तात्पर्य यह है कि कभी भूलकर भी असत्य भाषण नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा तात्पर्य न होता, तो यहाँ केवल असत्यभाषणका निषेध ही किया जाता। धर्मसे प्रमाद

प्रमदितव्यम् । धर्मशब्दस्यानुष्ठेयविषयत्वादननुष्ठानं प्रमदः स न कर्तव्यः । अनुष्ठातव्य एव धर्म इति यावत् । एवं कुशलादात्मरक्षार्थात्कर्मणो न प्रमदितव्यम् । भूतिर्विभूतिस्तस्यै भूत्यै भूत्यर्थान्मङ्गलयुक्तात्कर्मणो न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायोऽध्ययनं प्रवचनमध्यापनं ताभ्यां न प्रमदितव्यम् । ते हि नियमेन कर्तव्ये इत्यर्थः ॥ १ ॥

तथा देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । दैवपित्र्ये कर्मणी कर्तव्ये ।

मातृदेवो माता देवो यस्य स त्वं मातृदेवो भव स्याः । एवं पितृदेव आचार्यदेवो भव । देवतावदुपास्या एत इत्यर्थः । यान्यपि चान्यान्यनवद्यान्यनिन्दितानि शिष्टाचारलक्षणानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि कर्तव्यानि त्वया । नो न कर्त-

करना चाहिये । 'धर्म' शब्द अनुष्ठेय कर्मविशेषका वाचक होनेसे उसका अनुष्ठान न करना ही प्रमाद है; सो नहीं करना चाहिये । अर्थात् धर्मका अनुष्ठान करना ही चाहिये । इसी प्रकार कुशल-आत्मरक्षामें उपयोगी कर्मोंसे प्रमाद न करे । 'भूति' वैभवको कहते हैं, उस वैभवके लिये होनेवाले मङ्गलयुक्त कर्मोंसे प्रमाद न करे । स्वाध्याय और प्रवचनमें प्रमाद न करे । स्वाध्याय अध्ययन है और प्रवचन अध्यापन, उन दोनोंसे प्रमाद न करे अर्थात् उनका नियमसे आचरण करता रहे ॥ १ ॥

इसी प्रकार देवकार्य और पितृकार्योंसे भी प्रमाद न करे, अर्थात् देवता और पितृसम्बन्धी कर्म अवश्य करने चाहिये ।

मातृदेव—माता है देव जिसका वह तू मातृदेव हो । इसी प्रकार पितृदेव हो, आचार्यदेव हो [अतिथिदेव हो] [इनका अर्थ समझना चाहिये] । तात्पर्य यह है कि ये सब देवताके समान उपासना करनेयोग्य हैं । इसके सिवा और भी जो अनवद्य—अनिन्द्य—यानी शिष्टाचाररूप कर्म हैं तेरे लिये वे ही सेवनीय यानी कर्तव्य हैं । अन्य

ण्यानीतराणि सावद्यानि शिष्टकृतान्यपि । यान्यस्माकमाचार्याणां सुचरितानि शोभनचरितान्याम्नायाद्यविरुद्धानि तान्येव त्वयोपास्यान्यदृष्टार्थान्यनुष्ठेयानि, नियमेन कर्तव्यानीति यावत् ॥ २ ॥ नो इतराणि विपरीतान्याचार्यकृतान्यपि ।

ये के च विशेषिता आचार्यत्वादिधर्मैरस्मदस्मत्तः श्रेयांसः प्रशस्यतरास्ते च ब्राह्मणा न क्षत्रियादयस्तेषामासनेनासनदानादिना त्वया प्रश्वसितव्यम् । प्रश्वसनं प्रश्वासः श्रमापनयः । तेषां श्रमस्त्वयापनेतव्य इत्यर्थः । तेषां चासने गोष्ठीनिमित्ते समुदिते तेषु न प्रश्वसितव्यं प्रश्वासोऽपि न कर्तव्यः केवलं तदुक्तसारग्राहिणा भवितव्यम् ।

निन्दायुक्त कर्म भले ही वे शिष्ट पुरुषोंके किये हुए हों—तुझे नहीं करने चाहिये । हम आचार्यलोगोंके भी जो सुचरित—शुभ चरित अर्थात् शास्त्रसे अविरुद्ध कर्म हैं, उन्हींकी तुझे उपासना करनी चाहिये; अदृष्ट फलके लिये उन्हींका अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् तेरे लिये वे ही नियमसे कर्तव्य हैं ॥ २ ॥ दूसरे नहीं, अर्थात् उनसे विपरीत कर्म आचार्यके किये हुए भी कर्तव्य नहीं हैं ।

जो कोई भी आचार्यत्व आदि धर्मोंके कारण विशिष्ट हैं, अर्थात् हमसे श्रेष्ठ बड़े हैं तथा वे ब्राह्मण भी हैं—क्षत्रिय आदि नहीं हैं, उनका आसनादिके द्वारा अर्थात् उन्हें आसनादि देकर तुझे प्रश्वास—प्रश्वासका अर्थ है आश्वासन यानी श्रमापहरण करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि तुझे उनका श्रम निवृत्त करना चाहिये । तथा किसी गोष्ठी (सभा) के लिये उन्हें उच्चासन प्राप्त होनेपर तुझे प्रश्वास—दीर्घनिःश्वास भी नहीं छोड़ना चाहिये; तुझे केवल उनके कथनका सार ग्रहण करनेवाला होना चाहिये ।

किं च यत्किंचिद्देयं तच्छ्रद्धयैव दातव्यम् । अश्रद्धया अदेयं न दातव्यम् । श्रिया विभूत्या देयं दातव्यम् । ह्रिया लज्जया च देयम् । भिया भीत्या च देयम् । संविदा च मैत्र्यादिकार्येण देयम् ।

अथैवं वर्तमानस्य यदि कदाचित्ते तव श्रौते स्मार्ते वा कर्मणि वृत्ते वाचारलक्षणे विचिकित्सा संशयः स्यात् ॥३॥ ये तत्र तस्मिन् देशे काले वा ब्राह्मणास्तत्र कर्मादौ युक्ता इति व्यवहितेन संबन्धः कर्तव्यः । संमर्शिनो विचारक्षमाः । युक्ता अभियुक्ताः कर्मणि वृत्ते वा आयुक्ता अपरप्रयुक्ताः । अलूक्षा अरूक्षा अक्रूरमतयः । धर्मकामा अदृष्टार्थिनोऽकामहता इत्येतत्, स्युर्भवेयुः । ते यथा येन प्रकारेण ब्राह्मणास्तत्र तस्मिन्

इसके सिवा तुझे जो कुछ दान करना हो वह श्रद्धासे ही देना चाहिये, अश्रद्धासे नहीं । श्री अर्थात् विभूतिके अनुसार देना चाहिये, ह्री—लज्जापूर्वक देना चाहिये, भी—भय मानते हुए देना चाहिये तथा संविद् यानी मैत्री आदि कार्यके निमित्तसे देना चाहिये ।

फिर इस प्रकार वर्तते हुए तुझे यदि किसी समय किसी श्रौत या स्मार्त कर्म अथवा आचरणरूप वृत्त (व्यवहार) में संशय उपस्थित हो ॥३॥ तो वहाँ उस देश या कालमें जो ब्राह्मण नियुक्त हों—इस प्रकार 'तत्र' इस पदका 'युक्ता' इस व्यवधानयुक्त पदसे सम्बन्ध करना चाहिये—[और जो] संमर्शी—विचारक्षम, युक्त-कर्म अथवा आचरणमें पूर्णतया तत्पर, आयुक्त—किसी दूसरेसे प्रयुक्त न होनेवाले [अर्थात् स्वेच्छासे प्रवृत्त], अलूक्ष-अरूक्ष अर्थात् अक्रूरमति (सरलचित्त) और धर्मकामी—अदृष्टफलकी इच्छावाले अर्थात् कामनावश विवेकशून्य न हों, वे ब्राह्मण उस कर्म या आचरणमें जिस

कर्मणि वृत्ते वा वर्तेरंस्तथा त्वमपि वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु, अभ्याख्याता अभ्युक्ता दोषेण संदिह्यमानेन संयोजिताः केनचित्तेषु च यथोक्तं सर्वमुपनयेद्ये तत्रेत्यादि ।

एष आदेशो विधिः । एष उपदेशः पुत्रादिभ्यः पित्रादीनाम् । एषा वेदोपनिषद्वेदरहस्यं वेदार्थ इत्येतत् । एतदेवानुशासनमीश्वरवचनम् । आदेशवाक्यस्य विधेरुक्तत्वात्सर्वेषां वा प्रमाणभूतानामनुशासनमेतत् । यस्मादेवं तस्मादेवं यथोक्तं सर्वमुपासितव्यं कर्तव्यम् । एवमु चैतदुपास्यमुपास्यमेव चैतन्नानुपास्यमित्यादरार्थं पुनर्वचनम् ॥४॥

प्रकार बर्ताव करें, उसी प्रकार तुझे भी बर्ताव करना चाहिये । इसी प्रकार अभ्याख्यातोंके प्रति—अभ्याख्यात—अभ्युक्त अर्थात् जिनपर कोई संशययुक्त दोष आरोपित किया गया हो उनके प्रति जैसा पहले 'ये तत्र' इत्यादिसे कहा गया है, उसी सब व्यवहारका प्रयोग करना चाहिये ।

यह आदेश अर्थात् विधि है, यह पुत्रादिको पिता आदिका उपदेश है, यह वेदोपनिषद्—वेदका रहस्य यानी वेदार्थ है । यही अनुशासन यानी ईश्वरका वाक्य है । अथवा आदेशवाक्य विधि है—ऐसा पहले कहा जा चुका है, इसलिये यह सभी प्रमाणभूत [उपदेशकों] का अनुशासन है । क्योंकि ऐसा है इसलिये पहले जो कुछ कहा गया है, वह सब इसी प्रकार उपासनीय—करने योग्य है । इस प्रकार ही इसकी उपासना करनी चाहिये–यह उपासनीय ही है, अनुपास्य नहीं है–इस प्रकार यह पुनरुक्ति उपासनाके आदरके लिये है ॥ ४ ॥

मोक्ष-साधनकी मीमांसा

मोक्षकारण-मीमांसायां चत्वारो विकल्पाः

अत्रैतच्चिन्त्यते विद्याकर्मणोर्विवेकार्थं किं कर्मभ्य एव केवलेभ्यः परं श्रेय उत विद्यासव्यपेक्षेभ्य आहोस्विद्विद्याकर्मभ्यां संहताभ्यां विद्याया वा कर्मापेक्षाया उत केवलाया एव विद्याया इति ?

कर्मणां मोक्ष-साधनत्वनिरासः

तत्र केवलेभ्य एव कर्मभ्यः स्यात् । समस्तवेदार्थज्ञानवतः कर्माधिकारात् 'वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना' इति स्मरणात् । अधिगमश्च सहोपनिषदर्थेनात्मज्ञानादिना । "विद्वान्यजते" "विद्वान्याजयति" इति च विदुष एव कर्मण्यधिकारः प्रदर्श्यते सर्वत्र "ज्ञात्वा चानुष्ठानं" इति च ।

अब विद्या और कर्मका विवेक [अर्थात् इन दोनोंका फल भिन्न-भिन्न है—इसका निश्चय] करनेके लिये यह विचार किया जाता है कि क्या परम श्रेयकी प्राप्ति (१) केवल कर्मसे होती है, (२) अथवा विद्याकी अपेक्षायुक्त कर्मसे (३) किंवा परस्पर मिले हुए विद्या और कर्म दोनोंसे (४) अथवा कर्मकी अपेक्षा रखनेवाली विद्यासे (५) या केवल विद्यासे ही ?

उनमें [पहला पक्ष यह है कि] केवल कर्मोंसे ही परम श्रेयकी प्राप्ति हो सकती है; क्योंकि "द्विजातिको रहस्यके सहित सम्पूर्ण वेदका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये" ऐसी स्मृति होनेसे सम्पूर्ण वेदका ज्ञान रखनेवालेको ही कर्मका अधिकार है और वेदका ज्ञान उपनिषद्के अर्थभूत आत्मज्ञानादिके सहित ही हो सकता है । "विद्वान् यज्ञ करता है" "विद्वान् यज्ञ कराता है" इत्यादि वाक्योंसे सर्वत्र विद्वान्का ही कर्ममें अधिकार दिखलाया गया है" तथा ["जानकर कर्मानुष्ठान करे" ऐसा भी कहा है । कोई-कोई

कृत्स्नश्च वेदः कर्मार्थ इति हि मन्यन्ते केचित् । कर्मभ्यश्चेत्परं श्रेयो नावाप्यते वेदोऽनर्थकः स्यात् ।

ऐसा भी मानते हैं कि सम्पूर्ण वेद कर्मके ही लिये हैं; और यदि कर्मोंसे ही परम श्रेयकी प्राप्ति न हुई तो वेद भी व्यर्थ हो जायगा ।

न; नित्यत्वान्मोक्षस्य, नित्यो हि मोक्ष इष्यते । कर्मकार्यस्यानित्यत्वं प्रसिद्धं लोके । कर्मभ्यश्चेच्छ्रेयो नित्यं स्यात्तच्चानिष्टम् । "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते" (छा० उ० ८ । १ । ६) इति न्यायानुगृहीतश्रुतिविरोधात् ।

सिद्धान्ती—ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि मोक्ष नित्य है—मोक्ष नित्य ही माना गया है । और जो वस्तु कर्मका कार्य है, उसकी अनित्यता लोकमें प्रसिद्ध है । यदि नित्य श्रेय कर्मोंसे होता है ऐसा मानें तो इष्ट नहीं है; क्योंकि इसका जिस प्रकार यह कर्मोपार्जित लोक क्षीण होता है [उसी प्रकार पुण्यार्जित परलोक भी क्षीण हो जाता है ।] इस न्याययुक्त श्रुतिसे विरोध है ।

काम्यप्रतिषिद्धयोरनारम्भादारब्धस्य च कर्मण उपभोगेन क्षयान्नित्यानुष्ठानाच्च तत्प्रत्यवायानुत्पत्तेर्ज्ञाननिरपेक्ष एव मोक्ष इति चेत् ?

पूर्व०—काम्य और प्रतिषिद्ध कर्मोंका आरम्भ न करनेसे, प्रारब्ध कर्मोंका भोगसे ही क्षय हो जानेसे तथा नित्य कर्मोंके अनुष्ठानके कारण प्रत्यवायकी उत्पत्ति न होनेसे मोक्ष ज्ञानकी अपेक्षासे रहित ही है—यदि ऐसा मानें तो ?

तच्च न; शेषकर्मसंभवात्तन्निमित्तशरीरान्तरोत्पत्तिः प्राप्नो-

सिद्धान्ती—ऐसी बात भी नहीं है, शेष (संचित) कर्मोंके रह जानेसे उनके कारण अन्य शरीरकी उत्पत्ति सिद्ध होती है—इस प्रकार

तीति प्रत्युक्तम् । कर्मशेषस्य च नित्यानुष्ठानेनाविरोधात्क्षयानुपपत्तिरिति च ।

यदुक्तं समस्तवेदार्थज्ञानवतः कर्माधिकारादित्यादि, तच्च न, श्रुतज्ञानव्यतिरेकादुपासनस्य । श्रुतज्ञानमात्रेण हि कर्मण्यधिक्रियते नोपासनामपेक्षते । उपासनं च श्रुतज्ञानादर्थान्तरं विधीयते । मोक्षफलमर्थान्तरप्रसिद्धं च स्यात् । 'श्रोतव्यः' इत्युक्त्वा तद्व्यतिरेकेण 'मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति यत्नान्तरविधानात् । मनननिदिध्यासनयोश्च प्रसिद्धं श्रवणज्ञानादर्थान्तरत्वम् ।

ज्ञानकर्मसमुच्चयस्य मोक्षसाधनत्वनिरासः

एवं तर्हि विद्यासव्यपेक्षेभ्यः कर्मभ्यः स्यान्मोक्षः विद्यासहितानां च कर्मणां भवेत्कार्या-

हम इसका पहले ही खण्डन कर चुके हैं तथा नित्यकर्मोंके अनुष्ठानसे संचित कर्मोंका विरोध न होनेके कारण उनका क्षय होना संभव नहीं है ।

और यह जो कहा कि समस्त वेदके अर्थको जाननेवालेको ही कर्मका अधिकार होनेके कारण [केवल कर्मसे ही निःश्रेयसकी प्राप्ति हो सकती है] सो भी ठीक नहीं; क्योंकि उपासना श्रुतज्ञान (गुरुकुलमें किये हुए वाक्यविचार) से भिन्न ही है । मनुष्य श्रुतज्ञानमात्रसे ही कर्मका अधिकारी हो जाता है, इसके लिये वह उपासनाकी अपेक्षा नहीं रखता । उपासना तो श्रुतज्ञानसे भिन्न वस्तु ही बतलायी गयी है । यह उपासना मोक्षरूप फलवाली और अर्थान्तररूपसे प्रसिद्ध है; क्योंकि 'श्रोतव्यः' ऐसा कहकर (मनन और निदिध्यासनके लिये) 'मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'—इस प्रकार पृथक् यत्नान्तरका विधान किया है । लोकमें भी श्रवणज्ञानसे मनन और निदिध्यासनका अर्थान्तरत्व प्रसिद्ध ही है ।

पूर्व०—इस प्रकार तब तो विद्याकी अपेक्षासे युक्त कर्मोंद्वारा ही मोक्ष हो सकता है । जो कर्म ज्ञानके सहित होते हैं उनमें कार्यान्तरके

न्तरारम्भसामर्थ्यम् । यथा स्वतो मरणज्वरादिकार्यारम्भसमर्थानामपि विषदध्यादीनां मन्त्रशर्करादिसंयुक्तानां कार्यान्तरारम्भसामर्थ्यम्, एवं विद्यासहितैः कर्मभिर्मोक्ष आरभ्यत इति चेत् ?

आरम्भका सामर्थ्य हो सकता है, जिस प्रकार कि स्वयं मरण और ज्वरादि कार्योंके आरम्भमें समर्थ होनेपर भी विष एवं दधि आदिमें मन्त्र और शर्करादिसे युक्त होनेपर कार्यान्तरके आरम्भका सामर्थ्य हो जाता है, इसी प्रकार विद्यासहित कर्मोंसे मोक्षका आरम्भ हो सकता है—यदि ऐसा मानें तो ?

न; आरभ्यस्यानित्यत्वादित्युक्तो दोषः ।

सिद्धान्ती—नहीं, जो वस्तु आरम्भ होनेवाली होती है वह अनित्य हुआ करती है—इस प्रकार इस पक्षका दोष बतलाया जा चुका है।

वचनादारभ्योऽपि नित्य एवेति चेत् ?

पूर्व०—किंतु ['न स पुनरावर्तते' इत्यादि] वचनसे तो आरम्भ होनेवाला मोक्ष भी नित्य ही होता है ?

न; ज्ञापकत्वाद्वचनस्य । वचनं नाम यथाभूतस्यार्थस्य ज्ञापकं नाविद्यमानस्य कर्तृ । न हि वचनशतेनापि नित्यमारभ्यत आरब्धं वाविनाशि भवेत् । एतेन विद्याकर्मणोः संहतयोर्मोक्षारम्भकत्वं प्रत्युक्तम् ।

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि वचन तो केवल ज्ञापक है; यथार्थ अर्थको बतलानेवालेका ही नाम 'वचन' है। वह किसी अविद्यमान पदार्थको उत्पन्न करनेवाला नहीं होता । सैकड़ों वचन होनेपर भी नित्य वस्तुका आरम्भ नहीं किया जा सकता और न आरम्भ होनेवाली वस्तु अविनाशी ही हो सकती है । इससे समुच्चित विद्या और कर्मके मोक्षारम्भकत्वका प्रतिषेध कर दिया गया ।

विद्याकर्मणी मोक्षप्रतिबन्धहेतुनिवर्तके इति चेत्-न, कर्मणः फलान्तरदर्शनात् । उत्पत्तिसंस्कारविकाराप्तयो हि फलं कर्मणो दृश्यते । उत्पत्त्यादिफलविपरीतश्च मोक्षः ।

गतिश्रुतेराप्य इति चेत् । "सूर्यद्वारेण", "तयोर्ध्वमायन्" (क० उ० २ । ३ । १६) इत्येवमादिगतिश्रुतिभ्यः प्राप्यो मोक्ष इति चेत् ।

न; सर्वगतत्वाद्गन्तृभिश्चानन्यत्वादाकाशादिकारणत्वात्सर्वगतं ब्रह्म । ब्रह्माव्यतिरिक्ताश्च सर्वे विज्ञानात्मनः । अतो नाप्यो मोक्षः । गन्तुरन्यद्विभिन्नं देशं प्रति भवति गन्तव्यम् । न हि येनैवाव्यतिरिक्तं यत्तत्तेनैव

विद्या और कर्म—ये दोनों मोक्षके प्रतिबन्धके हेतुओंको निवृत्त करनेवाले हैं [मोक्षके स्वरूपको उत्पन्न करनेवाले नहीं हैं; अतः जिस प्रकार प्रध्वंसाभाव कृतक होनेपर भी नित्य है, उसी प्रकार उन प्रतिबन्धोंकी निवृत्ति भी नित्य ही होगी]—यदि ऐसा कहो तो यह कथन ठीक नहीं; क्योंकि कर्मोंका तो अन्य ही फल देखा गया है । उत्पत्ति, संस्कार, विकार और आप्ति—ये कर्मके फल देखे गये हैं । किंतु मोक्ष उत्पत्ति आदि फलसे विपरीत है ।

पूर्व—गतिप्रतिपादिका श्रुतियोंसे तो मोक्ष आप्य सिद्ध होता है तथा 'सूर्यद्वारसे', "उस सुषुम्ना नाडीद्वारा ऊर्ध्वलोकोंको जानेवाला" आदि गतिप्रतिपादिका श्रुतियोंसे जाना जाता है कि मोक्ष प्राप्य है ।

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है; क्योंकि ब्रह्म सर्वगत, गमन करनेवालोंसे अभिन्न और आकाशादिका भी कारण होनेसे सर्वगत है तथा सम्पूर्ण विज्ञानात्मा ब्रह्मसे अभिन्न हैं, इसलिये मोक्ष आप्य नहीं है । गमन करनेवालेसे पृथक् अन्य देशमें ही गमन करनेयोग्य हुआ करता है । जो जिससे अभिन्न होता

गम्यते । तदनन्यत्वप्रसिद्धेश्च "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" (तै० उ० २ । ६ । १) "क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि" (गीता१३।२) इत्येवमादिश्रुतिस्मृतिशतेभ्यः ।

है उसीसे वह गन्तव्य नहीं होता । और उसकी अनन्यता तो "उसे रचकर वह उसीमें प्रविष्ट हो गया" "सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ भी तू मुझको ही जान" इत्यादि सैकड़ों श्रुति-स्मृतियोंसे सिद्ध होती है ।

गत्यैश्वर्यादिश्रुतिविरोध इति चेत् । अथापि स्यादप्राप्यो मोक्षस्तदा गतिश्रुतीनां "स एकधा" (छा० उ० ७ । २६ । २) "स यदि पितृलोककामो भवति" (छा० उ० ८ । २ । १) "स्त्रीभिर्वा यानैर्वा" (छा० उ० ८ । १२ । ३) इत्यादिश्रुतीनां च कोपः स्यादिति चेत् ।

पूर्व०—[ऐसा माननेसे तो] गति और ऐश्वर्यका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंसे विरोध होगा-- अच्छा, यदि मोक्ष अप्राप्य ही हो तो भी गतिश्रुति तथा "वह एक-रूप होता है" "वह यदि पितृलोक-की इच्छावाला होता है" "वह स्त्री और यानोंके साथ रमण करता है" इत्यादि श्रुतियोंका व्याकोप (बाध) हो जायगा ।

न; कार्यब्रह्मविषयत्वात्तासाम् । कार्ये हि ब्रह्मणि स्त्र्यादयः स्युर्न कारणे । "एकमेवाद्वितीयम्" (छा० उ० ६ । २ । १) "यत्र नान्यत्पश्यति" (छा० उ० ७ । २४ । १) "तत्केन कं पश्येत्" (बृ० उ० २ । ४ । १४; ४ । ५ । १५) इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि वे तो कार्य ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं । स्त्री आदि तो कार्य-ब्रह्ममें ही हो सकती हैं, कारण-ब्रह्ममें नहीं; जैसा कि "एक ही अद्वितीय ब्रह्म", "जहाँ कोई और नहीं देखता" "तब किसके द्वारा किसे देखे" इत्यादि श्रुतियोंसे सिद्ध होता है ।

विरोधाच्च विद्याकर्मणोः समुच्चयानुपपत्तिः । प्रविलीनकर्त्रादिकारकविशेषतत्त्वविषया हि विद्या तद्विपरीतकारकसाध्येन कर्मणा विरुध्यते न ह्येकं वस्तु परमार्थतः कर्त्रादिविशेषवत्तच्छून्यं चेत्युभयथा द्रष्टुं शक्यते । अवश्यं ह्यन्यतरन्मिथ्या स्यात् । अन्यतरस्य च मिथ्यात्वप्रसङ्गे युक्तं यत्स्वाभाविकाज्ञानविषयस्य द्वैतस्य मिथ्यात्वम् । "यत्र हि द्वैतमिव भवति" (बृ० उ० २ । ४ । १४) "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति" (क० उ० २ । १ । १०, बृ० उ० ४ । ४ । १९) "अथ यत्रान्यत्पश्यति······ तदल्पम्" (छा० उ० ७।२४।१) "अन्योऽसावन्योऽहमस्मि" (बृ० उ० १ । ४ । १०) "उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति" (तै० उ० २ । ७ । १) इत्यादिश्रुतिशतेभ्यः ।

इसके सिवा विद्या और कर्मका विरोध होनेके कारण भी उनका समुच्चय नहीं हो सकता । जिसमें कर्ता-करण आदि कारकविशेषोंका पूर्णतया लय होता है उस तत्त्वको (ब्रह्मको) विषय करनेवाली विद्या अपनेसे विपरीत साधनसाध्य कर्मसे विरुद्ध है । एक ही वस्तु परमार्थतः कर्ता आदि विशेषसे युक्त और उससे रहित—दोनों ही प्रकारसे नहीं देखी जा सकती । उनमेंसे एक पक्ष अवश्य मिथ्या होना चाहिये । इस प्रकार किसी एकके मिथ्यात्वका प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर जो स्वभावसे ही अज्ञानका विषय है उस द्वैतका ही मिथ्या होना उचित है, जैसा कि "जहाँ द्वैतके समान होता है", "वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है", "जहाँ अन्य देखता है वह अल्प है", "यह अन्य है मैं अन्य हूँ", "जो थोड़ा-सा भी अन्तर करता है उसे भय प्राप्त होता है" इत्यादि सैकड़ों श्रुतियोंसे प्रमाणित होता है।

सत्यत्वं चैकत्वस्य "एकधैवानुद्रष्टव्यम्" (बृ० उ० ४।४।२०) "एकमेवाद्वितीयम्" (छा० उ० ६।२।१) "ब्रह्मैवेदꣳसर्वम्" (मु० उ० २।२।११) "आत्मैवेदꣳसर्वम्" (छा० उ० ७।२५।२) इत्यादिश्रुतिभ्यः। न च संप्रदानादिकारकभेदादर्शने कर्मोपपद्यते। अन्यत्वदर्शनापवादश्च विद्याविषये सहस्रशः श्रूयते। अतो विरोधो विद्याकर्मणोः। अतश्च समुच्चयानुपपत्तिः। तत्र यदुक्तं संहताभ्यां विद्याकर्मभ्यां मोक्ष इति, अनुपपन्नं तत्।

विहितत्वात्कर्मणां श्रुतिविरोध इति चेत्। यद्युपमृद्य कर्त्रादिकारकविशेषमात्मैकत्वविज्ञानं विधीयते सर्पादिभ्रान्तिविज्ञानोपमर्दकरज्ज्वादिविषयविज्ञानवत्प्राप्तः कर्मविधिश्रुतीनां निर्विष-

तथा "एक रूपसे ही देखना चाहिये" "एक ही अद्वितीय", "यह सब ब्रह्म ही है", "यह सब आत्मा ही है" इत्यादि श्रुतियोंसे एकत्वकी सत्यता सिद्ध होती है। सम्प्रदान आदि कारकभेदके दिखायी न देनेपर कर्म होना सम्भव भी नहीं है। ज्ञानके प्रसंगमें भेददृष्टिके अपवाद तो सहस्रों सुननेमें आते हैं। अतः विद्या और कर्मका विरोध है, इसलिये भी उनका समुच्चय होना असम्भव है। ऐसी दशामें पूर्वमें तुमने जो कहा था कि परस्पर मिले हुए विद्या और कर्म दोनोंसे मोक्ष होता है, वह सिद्ध नहीं होता।

पूर्व०—कर्म भी श्रुतिविहित हैं; अतः ऐसा माननेपर श्रुतिसे विरोध उपस्थित होता है। यदि सर्पादि भ्रान्तिजनित ज्ञानका बाध करनेवाले रज्जु आदि विषयक ज्ञानके समान कर्ता आदि कारकविशेषका बाध करके ही आत्मैकत्वके ज्ञानका विधान किया जाता है तो कोई विषय न रहनेके कारण कर्मका विधान करनेवाली श्रुतियोंका उन

यत्वाद्विरोधः। विहितानि च कर्माणि। स च विरोधो न युक्तः प्रमाणत्वाच्छ्रुतीनामिति चेत् ?

न; पुरुषार्थोपदेशपरत्वाच्छ्रुतीनाम्। विद्योपदेशपरा तावच्छ्रुतिः संसारात्पुरुषो मोक्षयितव्य इति संसारहेतोरविद्याया विद्यया निवृत्तिः कर्तव्येति विद्याप्रकाशकत्वेन प्रवृत्तेति न विरोधः।

एवमपि कर्त्रादिकारकसद्भावप्रतिपादनपरं शास्त्रं विरुध्यत एवेति चेत् ?

न; यथाप्राप्तमेव कारकास्तित्वमुपादायोपात्तदुरितक्षयार्थं कर्माणि विदधच्छास्त्रं मुमुक्षूणां

(विद्याका विधान करनेवाली श्रुतियों) से विरोध उपस्थित होता है; और कर्मोंका विधान भी किया ही गया है तथा सभी श्रुतियाँ प्रमाणभूत हैं इसलिये पूर्वोक्त विरोधका होना उचित नहीं है—यदि ऐसा कहें तो ?

सिद्धान्ती—यह कथन ठीक नहीं; क्योंकि श्रुतियाँ परम पुरुषार्थका उपदेश करनेमें प्रवृत्त हैं। श्रुति ज्ञानका उपदेश करनेमें तत्पर है। उसे संसारसे पुरुषका मोक्ष कराना है, इसके लिये संसारकी हेतुभूत अविद्याकी विद्याके द्वारा निवृत्ति करना आवश्यक है; अतः वह विद्याका प्रकाश करनेवाली होकर प्रवृत्त हुई है। इसलिये ऐसा माननेसे कोई विरोध नहीं आता।

पूर्व०—किंतु ऐसा माननेपर भी तो कर्तादि कारककी सत्ताका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रका तो उससे विरोध होता ही है।

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है, स्वभावतः प्राप्त कारकोंके अस्तित्वको स्वीकार कर सञ्चित पापोंके क्षयके लिये कर्मोंका विधान करनेवाला शास्त्र मुमुक्षुओं और फलकी

फलार्थिनां च फलसाधनं न कारकास्तित्वे व्याप्रियते। उपचितदुरितप्रतिबन्धस्य हि विद्योत्पत्तिर्नावकल्पते। तत्क्षये च विद्योत्पत्तिः स्यात्ततश्चाविद्यानिवृत्तिस्तत आत्यन्तिकः संसारोपरमः।

इच्छावालोंकी [उनके इष्ट] फलकी प्राप्ति करानेका साधन है, वह कारकोंका अस्तित्व सिद्ध करनेमें प्रवृत्त नहीं है। जिस पुरुषका संचित पापरूप प्रतिबन्ध विद्यमान रहता है उसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसका क्षय हो जानेपर ही ज्ञान होता है और तभी अविद्याकी निवृत्ति होती है तथा उसके अनन्तर ही संसारकी आत्यन्तिक उपरति होती है।

अपि चानात्मदर्शिनो ह्यनात्मविषयः कामः। कामयमानश्च करोति कर्माणि। ततस्तत्फलोपभोगाय शरीराद्युपादानलक्षणः संसारः। तद्व्यतिरेकेणात्मैकत्वदर्शिनो विषयाभावात्कामानुत्पत्तिरात्मनि चानन्यत्वात्कामानुत्पत्तौ स्वात्मन्यवस्थानं मोक्ष इत्यतोऽपि विद्याकर्मणोर्विरोधः।

ज्ञानादेव तु कैवल्यम्

इसके सिवा जो पुरुष अनात्मदर्शी है उसे ही अनात्मवस्तुसम्बन्धिनी कामना हो सकती है; कामनावाला ही कर्म करता है और उसीसे उनका फल भोगनेके लिये उसे शरीरादिग्रहणरूप संसारकी प्राप्ति होती है। इसके विपरीत जो आत्मैकत्वदर्शी है उसकी दृष्टिमें विषयोंका अभाव होनेके कारण उसे उनकी कामना भी नहीं हो सकती। आत्मा तो अपनेसे अभिन्न है, इसलिये उसकी कामना भी असम्भव होनेके कारण उसे स्वात्मस्वरूपमें स्थित होनारूप मोक्ष सिद्ध ही है। इसलिये भी ज्ञान और कर्मका विरोध

विरोधादेव च विद्या मोक्षं प्रति न कर्माण्यपेक्षते ।

है और विरोध होनेके कारण ही ज्ञान मोक्षके प्रति कर्मकी अपेक्षा नहीं रखता ।

स्वात्मलाभे तु पूर्वोपचितप्रतिबन्धापनयद्वारेण विद्याहेतुत्वं प्रतिपद्यन्ते कर्माणि नित्यानीति । अत एवास्मिन्प्रकरण उपन्यस्तानि कर्माणीत्यवोचाम । एवं चाविरोधः कर्मविधिश्रुतीनाम् अतः केवलाया एव विद्यायाः परं श्रेय इति सिद्धम् ।

हाँ, आत्मलाभमें पूर्वसंचित पापरूप प्रतिबन्धकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्म ज्ञानप्राप्तिके हेतु अवश्य होते हैं । इसीलिये इस प्रकरणमें कर्मोंका उल्लेख किया गया है--यह हम पहले ही कह चुके हैं । इस प्रकार भी कर्मका विधान करनेवाली श्रुतियोंका [विद्याविषयिनी श्रुतियोंसे] विरोध नहीं है । अतः यह सिद्ध हुआ कि केवल विद्यासे ही परमश्रेयकी प्राप्ति होती है ।

एवं तर्ह्याश्रमान्तरानुपपत्तिः कर्मनिमित्तत्वाद्विद्योत्पत्तेः । गार्हस्थ्ये च विहितानि कर्माणीत्यैकाश्रम्यमेव । अतश्च यावज्जीवादिश्रुतयोऽनुकूलतराः ।

पूर्व०—यदि ऐसी बात है तब तो [गृहस्थाश्रमके सिवा] अन्य आश्रमोंका होना भी उपपन्न नहीं है, क्योंकि विद्याकी उत्पत्ति तो कर्मके निमित्तसे होती है और कर्मोंका विधान केवल गृहस्थके ही लिये किया गया है, अतः इससे एकाश्रमत्वकी ही सिद्धि होती है । और इसलिये 'यावज्जीवन अग्निहोत्र करे' इत्यादि श्रुतियाँ और भी अनुकूल ठहरती हैं ।

न; कर्मानेकत्वात् । न ह्यग्निहोत्रादीन्येव कर्माणि । ब्रह्मचर्यं तपः सत्यवदनं शमो दमोऽहिंसे-

ज्ञानसाधकानि कर्माणि

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है; क्योंकि कर्म तो अनेक हैं । केवल अग्निहोत्र आदि ही कर्म नहीं हैं । ब्रह्मचर्य, तप, सत्यभाषण, शम, दम और अहिंसा आदि अन्य कर्म

त्येवमादीन्यपि कर्माणीतराश्रमप्रसिद्धानि विद्योत्पत्तौ साधकतमान्यसंकीर्णत्वाद्विद्यन्ते ध्यानधारणादिलक्षणानि च। वक्ष्यति च—"तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" (तै० उ० ३ । २ । ५) इति।

भी इतर आश्रमोंके लिये प्रसिद्ध ही हैं। वे तथा ध्यान-धारणादिरूप कर्म [हिंसा आदि दोषोंसे] असंकीर्ण होनेके कारण ज्ञानकी उत्पत्तिमें सर्वोत्तम साधन हैं। आगे (भृगु० २ । ५ में) यह कहेंगे भी कि "तपके द्वारा ब्रह्मको जाननेकी इच्छा कर"।

ज्ञानप्राप्तौ गार्हस्थ्यस्य आनर्थक्यम्

जन्मान्तरकृतकर्मभ्यश्च प्रागपि गार्हस्थ्याद्विद्योत्पत्तिसंभवात्कर्मार्थत्वाच्च गार्हस्थ्यप्रतिपत्तेः कर्मसाध्यायां च विद्यायां सत्यां गार्हस्थ्यप्रतिपत्तिरनर्थिकैव।

जन्मान्तरमें किये हुए कर्मोंसे तो गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेसे पूर्व भी ज्ञानकी उत्पत्ति होना सम्भव है। तथा गृहस्थाश्रमकी स्वीकृति केवल कर्मोंके ही लिये की जाती है। अतः कर्मसाध्य ज्ञानकी प्राप्ति हो जानेपर तो गृहस्थाश्रमकी स्वीकृति भी व्यर्थ ही है।

लोकार्थत्वाच्च पुत्रादीनाम्; पुत्रादिसाध्येभ्यश्चायं लोकः पितृलोको देवलोक इत्येतेभ्यो व्यावृत्तकामस्य नित्यसिद्धात्मलोकदर्शिनः कर्मणि प्रयोजनमपश्यतः कथं प्रवृत्तिरुपपद्यते। प्रतिपन्नगार्हस्थ्यस्यापि विद्योत्पत्तौ विद्या-

इसके सिवा पुत्रादि साधन तो लोकोंकी प्राप्तिके लिये हैं। पुत्रादि साधनोंसे सिद्ध होनेवाले उन इहलोक, पितृलोक एवं देवलोक आदिसे जिसकी कामना निवृत्त हो गयी है, नित्यसिद्ध आत्माका साक्षात्कार करनेवाले एवं कर्मोंमें कोई प्रयोजन न देखनेवाले उस ब्रह्मवेत्ताकी कर्मोंमें कैसे प्रवृत्ति हो सकती है? जिसने गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लिया है उसे भी, जब ज्ञानकी

परिपाकाद्विरक्तस्य कर्मसु प्रयोजनमपश्यतः कर्मभ्यो निवृत्तिरेव स्यात् । "प्रव्रजिष्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि" (बृ० उ० ४ । ५ । २) इत्येवमादिश्रुतिलिङ्गदर्शनात् ।

कर्म प्रति श्रुतेर्यत्नाधिक्यदर्शनादयुक्तमिति चेदग्निहोत्रादिकर्म प्रति श्रुतेरधिको यत्नो महांश्च कर्मण्यायासोऽनेकसाधनसाध्यत्वादग्निहोत्रादीनाम् । तपोब्रह्मचर्यादीनां चेतराश्रमकर्मणां गार्हस्थ्येऽपि समानत्वादल्पसाधनापेक्षत्वाच्चेतरेषां न युक्तस्तुल्यवद्विकल्प आश्रमिभिस्तस्येति चेत् ।

न; जन्मान्तरकृतानुग्रहात् । यदुक्तं कर्मणि श्रुतेरधिको यत्न इत्यादि नासौ दोषः

प्राप्ति होती है और ज्ञानके परिपाकसे विषयोंमें वैराग्य होता है तो, कर्मोंमें अपना कोई प्रयोजन न देखकर उनसे निवृत्त ही होगा । इस विषयमें "अरी मैत्रेयि ! अब मैं इस स्थानसे संन्यास करना चाहता हूँ" इत्यादि श्रुतिरूप लिङ्ग भी देखा जाता है ।

पूर्व०—किन्तु कर्मोंके प्रति श्रुतिका अधिक प्रयत्न देखनेसे तो यह बात ठीक नहीं जान पड़ती ? अग्निहोत्रादि कर्मोंके प्रति श्रुतिका विशेष प्रयत्न है; कर्मानुष्ठानमें आयास भी अधिक है; क्योंकि अग्निहोत्रादि कर्म अनेक साधनोंसे सिद्ध होनेवाले हैं । अन्य आश्रमोंके कर्म तप और ब्रह्मचर्यादि तो गृहस्थाश्रममें भी उन्हींके समान कर्तव्य तथा अल्पसाधनकी अपेक्षावाले हैं; अतः अन्य आश्रमियोंके साथ गृहस्थाश्रमका समान-सा मानना तो उचित नहीं है ?

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि उनपर जन्मान्तरका अनुग्रह होता है । तुमने जो कहा कि 'कर्मपर श्रुतिका विशेष प्रयत्न है' इत्यादि, सो यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि

यतो जन्मान्तरकृतमप्यग्निहोत्रादिलक्षणं कर्म ब्रह्मचर्यादिलक्षणं चानुग्राहकं भवति विद्योत्पत्तिं प्रति । येन जन्मनैव विरक्ता दृश्यन्ते केचित् । केचित्तु कर्मसु प्रवृत्ता अविरक्ता विद्याविद्वेषिणः । तस्माज्जन्मान्तरकृतसंस्कारेभ्यो विरक्तानामाश्रमान्तरप्रतिपत्तिरेवेष्यते ।

जन्मान्तरमें किया हुआ भी अग्निहोत्रादि तथा ब्रह्मचर्यादिरूप कर्म ज्ञानकी उत्पत्तिमें उपयोगी होता है, जिससे कि कोई लोग तो जन्मसे ही विरक्त देखे जाते हैं और कोई कर्ममें तत्पर, वैराग्यशून्य एवं ज्ञानके विरोधी दीख पड़ते हैं। अतः जन्मान्तरके संस्कारोंके कारण जो विरक्त हैं उन्हें तो [गृहस्थाश्रमसे भिन्न] अन्य आश्रमोंका स्वीकार करना ही इष्ट होता है ।

कर्मफलबाहुल्याच्च, पुत्रस्वर्गब्रह्मवर्चसादिलक्षणस्य कर्मफलस्यासंख्येयत्वात्, तत्प्रति च पुरुषाणां कामबाहुल्यात्तदर्थः श्रुतेरधिको यत्नः कर्मसूपपद्यते । आशिषां बाहुल्यदर्शनादिदं मे स्यादिदं मे स्यादिति ।

कर्मविधौ श्रुतेः प्रयासप्रयोजनम्

कर्मफलोंकी अधिकता होनेके कारण भी [श्रुतिमें उनका विशेष विस्तार है] । पुत्र, स्वर्ग एवं ब्रह्मतेज आदि कर्मफल असंख्येय होनेके कारण और उनके लिये पुरुषोंकी कामनाओंकी अधिकता होनेसे भी कर्मोंके प्रति श्रुतिका अधिक यत्न होना उचित ही है; क्योंकि 'मुझे यह मिले, मुझे यह मिले' इस प्रकार कामनाओंकी बहुलता भी देखी जाती है ।

उपायत्वाच्च, उपायभूतानि हि कर्माणि विद्यां प्रतीत्यवोचाम । उपायेऽधिको यत्नः कर्तव्यो नोपेये ।

उपायरूप होनेके कारण भी [श्रुतिका उनमें विशेष प्रयत्न है] । कर्म ज्ञानोत्पत्तिमें उपायरूप है ऐसा हम पहले कह चुके हैं तथा प्रयत्न उपायमें ही अधिक करना चाहिये, उपेयमें नहीं ।

कर्मनिमित्तत्वाद्विद्यया यत्नान्तरानर्थक्यमिति चेत्कर्मभ्य एव पूर्वोपचितदुरितप्रतिबन्धक्षयादेव विद्योत्पद्यते चेत्कर्मभ्यः पृथगुपनिषच्छ्रवणादियत्नोऽनर्थक इति चेत् ।

पूर्व०—ज्ञान कर्मके निमित्तसे होनेवाला है इसलिये भी अन्य प्रयत्नकी निरर्थकता सिद्ध होती है । यदि कर्मोंके द्वारा ही पूर्वसंचित पापरूप प्रतिबन्धका क्षय होनेपर ज्ञानकी उत्पत्ति होती है तो कर्मोंसे भिन्न उपनिषच्छ्रवणादिविषयक प्रयत्न व्यर्थ ही है—ऐसा मानें तो ?

न; नियमाभावात् । न हि प्रतिबन्धक्षयादेव विद्योत्पद्यते न त्वीश्वरप्रसादतपोध्यानाद्यनुष्ठानादिति नियमोऽस्ति । अहिंसाब्रह्मचर्यादीनां च विद्यां प्रत्युपकारकत्वात्साक्षादेव च कारणत्वाच्छ्रवणमनननिदिध्यासनानाम् । अतः सिद्धान्याश्रमान्तराणि सर्वेषां चाधिकारो विद्यायां परं च श्रेयः केवलाया विद्याया एवेति सिद्धम् ।

सिद्धान्ती—नहीं, क्योंकि ऐसा कोई नियम नहीं है—'ज्ञानकी उत्पत्ति प्रतिबन्धके क्षयसे ही होती है, ईश्वरकृपा, तप एवं ध्यानादिके अनुष्ठानसे नहीं हो सकती, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि अहिंसा एवं ब्रह्मचर्यादि भी ज्ञानोत्पत्तिमें उपयोगी हैं तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासनादि तो उसके साक्षात् कारण ही हैं । अतः अन्य आश्रमोंका होना सिद्ध ही है तथा ज्ञानमें सभी आश्रमियोंका अधिकार है । इससे यह सिद्ध हुआ कि परमश्रेयकी प्राप्ति केवल ज्ञानसे ही हो सकती है ।

इति शीक्षावल्ल्यामेकादशोऽनुवाकः ॥ ११ ॥

द्वादश अनुवाक

अतीतविद्याप्राप्त्युपसर्गशमनार्थं शान्तिं पठति—

पूर्वकथित विद्याकी प्राप्तिके प्रतिबन्धोंकी शान्तिके लिये शान्तिपाठ किया जाता है—

शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!! ॥ १ ॥

मित्र (सूर्यदेव) हमारे लिये सुखकर हो। वरुण हमारे लिये सुखावह हो। अर्यमा हमारे लिये सुखप्रद हो। इन्द्र तथा बृहस्पति हमारे लिये शान्तिदायक हों। तथा जिसका पादविक्षेप बहुत विस्तृत है वह विष्णु हमारे लिये सुखदायक हो। ब्रह्म [रूप वायु] को नमस्कार है। हे वायो! तुम्हें नमस्कार है। तुम ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुम्हींको हमने प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा है। तुम्हींको ऋत कहा है। तुम्हींको सत्य कहा है। अतः तुमने मेरी रक्षा की है तथा ब्रह्मका निरूपण करनेवाले आचार्यकी भी रक्षा की है। मेरी रक्षा की है और वक्ताकी भी रक्षा की है। त्रिविध तापकी शान्ति हो॥ १॥

व्याख्यातमेतत्पूर्वम् ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है॥ १ ॥

इति शीक्षावल्ल्यां द्वादशोऽनुवाकः॥ १२॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्ये शीक्षावल्ली समाप्ता॥

ब्रह्मानन्दवल्ली

प्रथम अनुवाक

ब्रह्मानन्दवल्लीका शान्तिपाठ

अतीतविद्याप्राप्त्युपसर्गप्रशमनार्था शान्तिः पठिता। इदानीं तु वक्ष्यमाणब्रह्मविद्याप्राप्त्युपसर्गोपशमनार्था शान्तिः पठ्यते—

पूर्वकथित विद्याकी प्राप्तिके प्रतिबन्धोंकी शान्तिके लिये शान्ति-पाठ कर दिया गया। अब आगे कही जानेवाली विद्याकी प्राप्तिके प्रतिबन्धोंकी शान्तिके लिये शान्ति-पाठ किया जाता है—

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[वह परमात्मा] हम [आचार्य और शिष्य] दोनोंकी साथ-साथ रक्षा करे, हम दोनोंका साथ-साथ पालन करे, हम साथ-साथ वीर्यलाभ करें, हमारा अध्ययन किया हुआ तेजस्वी हो और हम परस्पर द्वेष न करें। तीनों प्रकारके प्रतिबन्धोंकी शान्ति हो।

सह नाववतु—नौ शिष्याचार्यौ सहैवावतु रक्षतु । सह नौ भुनक्तु भोजयतु । सह वीर्यं विद्यादिनिमित्तं सामर्थ्यं करवावहै निर्वर्तयावहै । तेजस्वि नावावयोस्तेजस्विनोरधीतं स्वधीतमस्तु, अर्थज्ञानयोग्यमस्त्वित्यर्थः । मा विद्विषावहै; विद्याग्रहणनिमित्तं शिष्यस्याचार्यस्य वा प्रमादकृतादन्यायाद्विद्वेषः प्राप्तस्तच्छमनाय इयमाशीर्मा विद्विषावहा इति । मैवेतरेतरं विद्वेषमापद्यावहै ।

शान्तिः शान्तिः शान्तिरिति त्रिर्वचनमुक्तार्थम् । वक्ष्यमाणविद्याविघ्नप्रशमनार्था चेयं शान्तिः । अविघ्नेनात्मविद्याप्राप्तिराशास्यते तन्मूलं हि परं श्रेय इति ।

'सह नाववतु'—[वह ब्रह्म] हम आचार्य और शिष्य दोनोंकी साथ-साथ ही रक्षा करे और हमारा साथ-साथ भरण अर्थात् पालन करे । हम साथ-साथ वीर्य यानी विद्याजनित सामर्थ्य सम्पादन करें, हम दोनों तेजस्वियोंका अध्ययन किया हुआ तेजस्वी—सम्यक् प्रकारसे अध्ययन किया हुआ अर्थात् अर्थ-ज्ञानके योग्य हो तथा हम विद्वेष न करें । विद्याग्रहणके कारण शिष्य अथवा आचार्यका प्रमादकृत अन्यायसे द्वेष हो सकता है; उसकी शान्तिके लिये 'मा विद्विषावहै' ऐसी कामना की गयी है । तात्पर्य यह है कि हम एक दूसरेसे विद्वेषको प्राप्त न हों ।

'शान्तिः शान्तिः शान्तिः' इस प्रकार तीन बार 'शान्तिः' शब्द उच्चारण करनेका प्रयोजन पहले कहा जा चुका है । यह शान्तिपाठ आगे कही जानेवाली विद्याके विघ्नोंकी शान्तिके लिये है । इसके द्वारा निर्विघ्नतापूर्वक आत्मविद्याकी प्राप्तिकी कामना की गयी है । क्योंकि वही परम श्रेयका भी मूल कारण है ।

ब्रह्मज्ञानके फल, सृष्टिक्रम और अन्नमय कोशरूप पक्षीका वर्णन

उपक्रमः संहितादिविषयाणि कर्मभिरविरुद्धान्युपासनान्युक्तानि। अनन्तरं चान्तःसोपाधिकात्मदर्शनमुक्तं व्याहृतिद्वारेण स्वाराज्यफलम्। न चैतावताशेषतः संसारबीजस्योपमर्दनमस्तीत्यतोऽशेषोपद्रवबीजस्याज्ञानस्य निवृत्त्यर्थं विधूतसर्वोपाधिविशेषात्मदर्शनार्थमिदमारभ्यते ब्रह्मविदाप्नोति परमित्यादि।

प्रयोजनं चास्या ब्रह्मविद्याया अविद्यानिवृत्तिस्तत आत्यन्तिकः संसाराभावः। वक्ष्यति च—"विद्वान्न बिभेति कुतश्चन" (तै० उ० २। ९। १) इति। संसारनिमित्ते च सत्यभयं प्रतिष्ठां च विन्दत इत्यनुपपन्नम्, कृताकृते पुण्यपापे न तपत इति च। अतोऽवगम्यतेऽस्माद्विज्ञानात्सर्वात्मब्रह्मविषयादात्यन्तिकः संसाराभाव इति।

कर्मसे अविरुद्ध संहितादिविषयक उपासनाओंका पहले वर्णन किया गया। उसके पश्चात् व्याहृतियोंके द्वारा स्वाराज्यरूप फल देनेवाला हृदयस्थित सोपाधिक आत्म-दर्शन कहा गया। किंतु इतनेहीसे संसारके बीजका पूर्णतया नाश नहीं हो जाता। अतः सम्पूर्ण उपद्रवोंके बीजभूत अज्ञानकी निवृत्तिके निमित्त इस सर्वोपाधिरूप विशेषसे रहित आत्माका साक्षात्कार करानेके लिये अब 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यादि मन्त्र आरम्भ किया जाता है।

इस ब्रह्मविद्याका प्रयोजन अविद्याकी निवृत्ति है, उससे संसारका आत्यन्तिक अभाव होता है। यही बात "ब्रह्मवेत्ता किसीसे नहीं डरता" इत्यादि वाक्यसे श्रुति आगे कहेगी भी। संसारके निमित्त [अज्ञान] के रहते हुए 'पुरुष अभय स्थितिको प्राप्त कर लेता है, तथा उसे कृत और अकृत अर्थात् पुण्य और पाप ताप नहीं पहुँचाते ऐसा मानना सर्वथा अयुक्त है। इससे जाना जाता है कि इस सर्वात्मक ब्रह्मविषयक विज्ञानसे ही संसारका आत्यन्तिक अभाव होता है।

स्वयमेव च प्रयोजनमाह ब्रह्मविदाप्नोति परमित्यादावेव सम्बन्धप्रयोजनज्ञापनार्थम् । निर्ज्ञातयोर्हि सम्बन्धप्रयोजनयोर्विद्याश्रवणग्रहणधारणाभ्यासार्थं प्रवर्तते । श्रवणादिपूर्वकं हि विद्याफलम् "श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" (बृ० उ० २ । ४ । ५) इत्यादिश्रुत्यन्तरेभ्यः ।

इस प्रकरणके सम्बन्ध और प्रयोजनका ज्ञान करानेके लिये श्रुतिने स्वयं ही 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यादि वाक्यसे आरम्भमें ही इसका प्रयोजन बतला दिया है, क्योंकि सम्बन्ध और प्रयोजनोंका ज्ञान हो जानेपर ही पुरुष विद्याके श्रवण, ग्रहण, धारण और अभ्यासके लिये प्रवृत्त हुआ करता है। "श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यादि दूसरी श्रुतियोंसे यह भी निश्चय होता ही है कि विद्याका फल श्रवणादिपूर्वक होता है।

ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाभ्युक्ता । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । तस्येदमेव शिरः । अयं दक्षिणः पक्षः । अयमुत्तरः पक्षः । अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

ब्रह्मवेत्ता परमात्माको प्राप्त कर लेता है । उसके विषयमें यह [श्रुति] कही गयी है—'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है ।' जो पुरुष उसे बुद्धिरूप परम आकाशमें निहित जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्मरूपसे एक साथ ही सम्पूर्ण भोगोंको प्राप्त कर लेता है । उस इस आत्मासे ही आकाश उत्पन्न हुआ । आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल,

जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधियाँ, ओषधियोंसे अन्न और अन्नसे पुरुष उत्पन्न हुआ। वह यह पुरुष अन्न एवं रसमय ही है। उसका यह [शिर] ही शिर है, यह [दक्षिण बाहु] ही दक्षिण पक्ष है, यह [वाम बाहु] वाम पक्ष है, यह [शरीरका मध्यभाग] आत्मा है और यह [नीचेका भाग] पुच्छ प्रतिष्ठा है। उसके विषयमें ही यह श्लोक है ॥ १ ॥

ब्रह्मविद् ब्रह्मेति वक्ष्यमाणलक्षणं ब्रह्मविदो बृहत्तमत्वाद् ब्रह्म तद्वेत्ति विजानातीति ब्रह्मविदाप्नोति परं निरतिशयं तदेव ब्रह्म परम्। न ह्यन्यस्य विज्ञानादन्यस्य प्राप्तिः। स्पष्टं च श्रुत्यन्तरं ब्रह्मप्राप्तिमेव ब्रह्मविदो दर्शयति "स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" (मु० उ० ३। २। ९) इत्यादि।

ब्रह्मप्राप्ति-निरूपणम्

'ब्रह्मवित्'—ब्रह्म जिसका लक्षण आगे कहा जायगा और जो सबसे बड़ा होनेके कारण 'ब्रह्म' कहलाता है, उसे जो जानता है उसका नाम 'ब्रह्मवित्' है; वह ब्रह्मवित् उस परम—निरतिशय ब्रह्मको ही 'आप्नोति'—प्राप्त कर लेता है, क्योंकि अन्यके विज्ञानसे किसी अन्यकी प्राप्ति नहीं हुआ करती। "वह, जो कि निश्चय ही उस परब्रह्मको जानता है, ब्रह्म ही हो जाता है" यह एक दूसरी श्रुति ब्रह्मवेत्ताको स्पष्टतया ब्रह्मकी ही प्राप्ति होना प्रदर्शित करती है।

ननु सर्वगतं सर्वस्यात्मभूतं ब्रह्म वक्ष्यति। अतो नाप्यम्। प्राप्तिश्चान्यस्यान्येन परिच्छिन्नस्य च परिच्छिन्नेन दृष्टा। अपरिच्छिन्नं सर्वात्मकं च ब्रह्मेत्यतः परिच्छिन्नवदनात्मवच्च तस्याप्तिरनुपपन्ना।

शङ्का—ब्रह्म सर्वगत और सबका आत्मा है—ऐसा आगे कहेंगे, इसलिये वह प्राप्तव्य नहीं हो सकता। प्राप्ति तो अन्य परिच्छिन्न पदार्थकी किसी अन्य परिच्छिन्न पदार्थद्वारा ही होती देखी गयी है। किंतु ब्रह्म तो अपरिच्छिन्न और सर्वात्मक है; इसलिये परिच्छिन्न और अनात्मपदार्थके समान उसकी प्राप्ति होनी असम्भव है।

नायं दोषः; कथम्? दर्शनादर्शनापेक्षत्वाद्ब्रह्मण आप्त्यनाप्त्योः परमार्थतो ब्रह्मरूपस्यापि सतोऽस्य जीवस्य भूतमात्राकृतबाह्यपरिच्छिन्नान्नमयाद्यात्मदर्शिनस्तदासक्तचेतसः प्रकृतसंख्यापूरणस्यात्मनोऽव्यवहितस्यापि बाह्यसंख्येयविषयासक्तचित्ततया स्वरूपाभावदर्शनवत्परमार्थब्रह्मस्वरूपाभावदर्शनलक्षणयाविद्ययान्नमयादीन्बाह्यानात्मन आत्मत्वेन प्रतिपन्नत्वादन्नमयाद्यनात्मभ्यो नान्योऽहमसीत्यभिमन्यते। एवमविद्यात्मभूतमपि ब्रह्मानाप्तं स्यात्।

समाधान—यह कोई दोषकी बात नहीं है, किस प्रकार नहीं है? क्योंकि ब्रह्मकी प्राप्ति और अप्राप्ति तो उसके साक्षात्कार और असाक्षात्कारकी अपेक्षासे हैं। जिस प्रकार [दशम पुरुषके लिये] प्रकृत (दशम) संख्याकी पूर्ति करनेवाला अपना-आप[1] सर्वथा अव्यवहित होनेपर भी संख्या करने योग्य बाह्य विषयोंमें आसक्तचित्त रहनेके कारण वह अपने स्वरूपका अभाव देखता है, उसी प्रकार पञ्चभूत तन्मात्राओंसे उत्पन्न हुए बाह्य परिच्छिन्न अन्नमय कोशादिमें आत्मभाव देखनेवाला यह जीव परमार्थतः ब्रह्मस्वरूप होनेपर भी उनमें आसक्त हो जाता है और अपने परमार्थ ब्रह्मस्वरूपका अभाव देखनारूप अविद्यासे अन्नमयकोश आदि बाह्य अनात्माओंको आत्मस्वरूपसे देखनेके कारण 'मैं अन्नमय आदि अनात्माओंसे भिन्न नहीं हूँ' ऐसा अभिमान करने लगता है। इस प्रकार अपना आत्मा होनेपर भी अविद्यावश ब्रह्म अप्राप्त ही है।

---

१. इस विषयमें यह दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि एक बार दस मनुष्य यात्रा कर रहे थे। रास्तेमें एक नदी पड़ी। जब उसे पार कर वे उसके दूसरे तटपर पहुँचे तो यह जाननेके लिये कि हममेंसे कोई बह तो नहीं गया, अपनेको गिनने लगे। उनमेंसे जो भी गिनना आरम्भ करता वह अपनेको छोड़कर शेष नौको ही गिनता। इस प्रकार एककी कमी रहनेके कारण वे यह समझकर कि हममेंसे एक आदमी नदीमें बह गया है खिन्न हो रहे थे। इतनेमें ही एक बुद्धिमान्

तस्यैवमविद्ययानाप्तब्रह्मस्वरूपस्य प्रकृतसंख्यापूरणस्यात्मनोऽविद्ययानाप्तस्य सतः केनचित्स्मारितस्य पुनस्तस्यैव विद्ययाप्तिर्यथा तथा श्रुत्युपदिष्टस्य सर्वात्मब्रह्मण आत्मत्वदर्शनेन विद्यया तदाप्तिरुपपद्यत एव ।

जिस प्रकार प्रकृत (दशम) संख्याको पूर्ण करनेवाला अपना आप अविद्यावश अप्राप्त रहता है और फिर किसीके द्वारा स्मरण करा दिये जानेपर विद्याद्वारा उसकी प्राप्ति हो जाती है, उसी प्रकार अविद्यावश जिसके ब्रह्मस्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती उस सबके आत्मभूत श्रुत्युपदिष्ट ब्रह्मकी आत्मदर्शनरूप विद्याके द्वारा प्राप्ति होनी उचित ही है ।

उत्तरग्रन्थावतरणिका

ब्रह्मविदाप्नोति परमिति वाक्यं सूत्रभूतम् । सर्वस्य वल्ल्यर्थस्य ब्रह्मविदाप्नोति परमित्यनेन वाक्येन वेद्यतया सूत्रितस्य ब्रह्मणोऽनिर्धारितस्वरूपविशेषस्य सर्वतो व्यावृत्तस्वरूपविशेषसमर्पणसमर्थस्य लक्षणस्याविशेषेण चोक्तवेदनस्य ब्रह्मणो वक्ष्यमाणलक्षणस्य

'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' यह वाक्य सूत्रभूत है। जो सम्पूर्ण वल्लीके अर्थका विषय है, जिसका 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इस वाक्यद्वारा ज्ञातव्यरूपसे सूत्रतः उल्लेख किया गया है, उस ब्रह्मके ऐसे लक्षणका—जिसके विशेष रूपका निश्चय नहीं किया गया है और जो सम्पूर्ण वस्तुओंसे व्यावृत्त स्वरूपविशेषका ज्ञान करानेमें समर्थ है—वर्णन करते हुए स्वरूपका निश्चय करानेके लिये तथा जिसके ज्ञानका सामान्यरूपसे वर्णन कर दिया गया है उस आगे कहे जानेवाले लक्षणोंसे युक्त ब्रह्मको

पुरुष उधर आ निकला। उसने सब वृत्तान्त जानकर उन्हें एक लाइनमें खड़ा किया और हाथमें डंडा लेकर एक, दो, तीन—इस प्रकार गिनते हुए हर एकके एक-एक डंडा लगाकर उन्हें दस होनेका निश्चय करा दिया और यह भी दिखला दिया कि वह दसवाँ पुरुष स्वयं गिननेवाला ही था जो दूसरोंमें आसक्तचित्त रहनेके कारण अपनेको भूले हुए था।

विशेषेण प्रत्यगात्मतयानन्यरूपेण विज्ञेयत्वाय, ब्रह्मविद्याफलं च ब्रह्मविदो यत्परब्रह्मप्राप्तिलक्षणमुक्तं स सर्वात्मभावः सर्वसंसारधर्मातीतब्रह्मस्वरूपत्वमेव नान्यदित्येतत्प्रदर्शनायैषर्गुदाहियते—तदेषाभ्युक्तेति ।

विशेषतः 'अपना अन्तरात्मा होनेसे अनन्यरूपसे जाननेयोग्य है' ऐसा प्रतिपादन करनेके लिये और यह दिखलानेके लिये कि—ब्रह्मवेत्ताको जो परमात्माकी प्राप्तिरूप ब्रह्मविद्याका फल बतलाया गया है वह सर्वात्मभाव सम्पूर्ण सांसारिक धर्मोंसे अतीत ब्रह्मस्वरूपता ही है—और कुछ नहीं है—'तदेषाभ्युक्ता' यह ऋचा कही जाती है ।

तत्तस्मिन्नेव ब्राह्मणवाक्योक्तेऽर्थ एषर्गभ्युक्ताम्नाता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति ब्रह्मणो लक्षणार्थं वाक्यम्। सत्यादीनि हि त्रीणि विशेषणानि पदानि विशेष्यस्य ब्रह्मणः । विशेष्यं ब्रह्म विवक्षितत्वाद्वेद्यतया । वेद्यत्वेन यतो ब्रह्मप्राधान्येन विवक्षितं तस्माद्विशेष्यं विज्ञेयम् अतः अस्माद् विशेषणविशेष्यत्वादेव सत्यादीनि एकविभक्त्यन्तानि पदानि समानाधिकरणानि । सत्यादि-

तत्—उस ब्राह्मणवाक्यद्वारा बतलाये हुए अर्थमें ही [सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म] यह ऋचा कही गयी है । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह वाक्य ब्रह्मका लक्षण करनेके लिये है । 'सत्य' आदि तीन पद विशेष्य ब्रह्मके विशेषण बतलानेके लिये हैं । वेद्यरूपसे विवक्षित (बतलाये जानेको इष्ट) होनेके कारण ब्रह्म विशेष्य है । क्योंकि ब्रह्म प्रधानतया वेद्यरूपसे (ज्ञानके विषयरूपसे) विवक्षित है, इसलिये उसे विशेष्य समझना चाहिये । अतः इस विशेषण-विशेष्यभावके कारण एक ही विभक्तिवाले 'सत्य' आदि तीनों पद समानाधिकरण हैं । सत्य आदि

भिस्त्रिभिर्विशेषणैर्विशेष्यमाणं ब्रह्म विशेष्यान्तरेभ्यो निर्धार्यते। एवं हि तज्ज्ञानं भवति यदन्येभ्यो निर्धारितम्। यथा लोके नीलं महत्सुगन्ध्युत्पलमिति।

निर्विशेषस्य विशेषणवत्त्वे आक्षेपः

ननु विशेष्यं विशेषणान्तरं व्यभिचरद्विशेष्यते। यथा नीलं रक्तं चोत्पलमिति। यदा ह्यनेकानि द्रव्याण्येकजातीयान्यनेकविशेषण-योगीनि च तदा विशेषणस्यार्थ-वत्त्वम्। न ह्येकस्मिन्नेव वस्तुनि विशेषणान्तरायोगात्। यथासा-वेक आदित्य इति, तथैकमेव च ब्रह्म न ब्रह्मान्तराणि येभ्यो विशेष्येत नीलोत्पलवत्।

ब्रह्मविशेषणानां तल्लक्षणार्थत्वम्

न; लक्षणार्थत्वाद्विशेषणा-नाम्। नायं दोषः कस्मात्? यस्माल्ल-क्षणार्थप्रधानानि विशेषणानि न

तीन विशेषणोंसे विशेषित होनेवाला ब्रह्म अन्य विशेष्योंसे पृथग्रूपसे निश्चय किया जाता है। जिसका अन्य पदार्थों-से पृथग्रूपसे निश्चय किया गया है उस-का इसी प्रकार ज्ञान हुआ करता है; जैसे लोकमें 'नील' विशाल और सुगन्धित कमल [-ऐसा कहकर ऐसे कमलका अन्य कमलोंसे पृथग्रूपसे निश्चय किया जाता है]।

शङ्का—अन्य विशेषणोंका व्यावर्तन करनेपर ही कोई विशेष्य विशेषित हुआ करता है; जैसे—नीला अथवा लाल कमल। जिस समय अनेक द्रव्य एक ही जातिके और अनेक विशेषणों-की योग्यतावाले होते हैं, तभी विशेषणोंकी सार्थकता होती है। एक ही वस्तुमें, किसी अन्य विशेषणका सम्बन्ध न हो सकनेके कारण विशेषणकी सार्थकता नहीं होती। जिस प्रकार यह सूर्य एक है उसी प्रकार ब्रह्म भी एक ही है, उसके सिवा अन्य ब्रह्म है ही नहीं, जिनसे कि नील कमलके समान उसकी विशेषता बतलायी जाय।

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि ये विशेषण लक्षणके लिये हैं। [अब इस सूत्ररूप वाक्य-की ही व्याख्या करते हैं—] यह दोष नहीं हो सकता; क्यों नहीं हो सकता? क्योंकि ये विशेषण लक्षणार्थ-

विशेषणप्रधानान्येव । कः पुनर्लक्षणलक्ष्ययोर्विशेषणविशेष्ययोर्वा विशेष इति ? उच्यते; समानजातीयेभ्य एव निवर्तकानि विशेषणानि विशेष्यस्य । लक्षणं तु सर्वत एव यथावकाशप्रदात्राकाशमिति । लक्षणार्थं च वाक्यमित्यवोचाम ।

प्रधान हैं, केवल विशेषणप्रधान ही नहीं हैं। किंतु लक्षण-लक्ष्य तथा विशेषण-विशेष्यमें विशेषता (अन्तर) क्या है ? सो बतलाते हैं—विशेषण तो अपने विशेष्यका उसके सजातीय पदार्थोंसे ही व्यावर्तन करनेवाले होते हैं, किंतु लक्षण उसे सभीसे व्यावृत्त कर देता है; जिस प्रकार अवकाश देनेवाला 'आकाश' होता है—इस वाक्यमें है[1]।' यह हम पहले ही कह चुके हैं कि यह वाक्य [आत्माका] लक्षण करनेके लिये है।

सत्याद्दिशब्दा न परस्परं संबध्यन्ते परार्थत्वात् । विशेष्यार्था हि ते । अत एकैको विशेषणशब्दः परस्परं निरपेक्षो ब्रह्मशब्देन संबध्यते सत्यं ब्रह्म ज्ञानं ब्रह्मानन्तं ब्रह्मेति ।

सत्यादि शब्द परार्थ (दूसरेके लिये) होनेके कारण परस्पर सम्बन्धित नहीं हैं। वे तो विशेष्यके ही लिये हैं अतः उनमेंसे प्रत्येक विशेषणशब्द परस्पर एक-दूसरेकी अपेक्षा न रखकर ही 'सत्यं ब्रह्म, ज्ञानं ब्रह्म, अनन्तं ब्रह्म' इस प्रकार 'ब्रह्म' शब्दसे सम्बन्धित है।

सत्यमित्यस्य व्याख्यानम्

सत्यमिति यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत्सत्यम् । यद्रूपेण निश्चितं यत्तद्रूपं व्यभि-

सत्यम्—जो पदार्थ जिस रूपसे निश्चय किया गया है उससे व्यभिचरित न होनेके कारण वह सत्य कहलाता है। जो पदार्थ जिस रूपसे निश्चित किया गया है, उस रूपसे

१. इस वाक्यमें 'अवकाश देनेवाला' यह पद उसके सजातीय अन्य महाभूतोंसे तथा विजातीय आत्मा आदिसे भी व्यावृत्त कर देता है।

चरदनृतमित्युच्यते । अतो विकारोऽनृतम् । "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" (छा० उ० ६ । १ । ४) एवं सदेव सत्यमित्यवधारणात् । अतः सत्यं ब्रह्मेति ब्रह्म विकारान्निवर्तयति ।

अतः कारणत्वं प्राप्तं ब्रह्मणः ।

ज्ञानमित्यस्य तात्पर्यम्, ज्ञानकर्तृत्वाभाव- निरूपणं च

कारणस्य च कारकत्वं वस्तुत्वान्मृद्वदचिद्रूपता च प्राप्तात् इदमुच्यते ज्ञानं ब्रह्मेति ज्ञानं ज्ञप्तिरवबोधः, भावसाधनो ज्ञानशब्दो न तु ज्ञानकर्तृ ब्रह्मविशेषणत्वात्सत्यानन्ताभ्यां सह । न हि सत्यतानन्तता च ज्ञानकर्तृत्वे सत्युपपद्यते । ज्ञानकर्तृत्वेन हि विक्रियमाणं कथं सत्यं भवेदनन्तं च । यद्धि न

व्यभिचरित होनेपर वह मिथ्या कहा जाता है । इसलिये विकार मिथ्या है । "विकार केवल वाणीसे आरम्भ होनेवाला और नाममात्र है, बस, मृत्तिका ही सत्य है" इस प्रकार निश्चय किया जानेके कारण सत् ही सत्य है । अतः 'सत्यं ब्रह्म' यह वाक्य ब्रह्मको विकारमात्रसे निवृत्त करता है ।

इससे ब्रह्मका कारणत्व प्राप्त होता है और वस्तुरूप होनेसे कारणमें कारकत्व रहा करता है । अतः मृत्तिकाके समान उसको जड-रूपताका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है । इसीसे 'ज्ञानं ब्रह्म' ऐसा कहा है । 'ज्ञान' ज्ञप्ति यानी अवबोधको कहते हैं । 'ज्ञान' शब्द भाववाचक है; 'सत्य' और 'अनन्त' के साथ ब्रह्मका विशेषण होनेके कारण उसका अर्थ 'ज्ञानकर्ता' नहीं हो सकता । उसका ज्ञानकर्तृत्व स्वीकार करनेपर ब्रह्मकी सत्यता और अनन्तता सम्भव नहीं है । ज्ञान-कर्तारूपसे विकारको प्राप्त होनेवाला होकर ब्रह्म सत्य और अनन्त कैसे हो सकता है ? जो किसीसे भी

कुतश्चित्प्रविभज्यते तदनन्तम्। ज्ञानकर्तृत्वे च ज्ञेयज्ञानाभ्यां प्रविभक्तमित्यनन्तता न स्यात्। "यत्र नान्यद्विजानाति स भूमा अथ यत्रान्यद्विजानाति तदल्पम्" (छा० उ० ७। २४। १) इति श्रुत्यन्तरात्।

नान्यद्विजानातीति विशेषप्रतिषेधादात्मानं विजानातीति चेन्न; भूमलक्षणविधिपरत्वाद्वाक्यस्य। यत्र नान्यत्पश्यतीत्यादि भूम्नो लक्षणविधिपरं वाक्यम्। यथा प्रसिद्धमेवान्योऽन्यत्पश्यतीत्येतदुपादाय यत्र तन्नास्ति स भूमेति भूमस्वरूपं तत्र ज्ञाप्यते। अन्यग्रहणस्य प्राप्तप्रतिषेधार्थत्वान्न स्वात्मनि क्रियास्तित्वपरं वाक्यम्। स्वात्मनि च भेदा-

विभक्त नहीं होता वही अनन्त हो सकता है। ज्ञानकर्ता होनेपर तो वह ज्ञेय और ज्ञानसे विभक्त होगा; इसलिये उसकी अनन्तता सिद्ध नहीं हो सकेगी। "जहाँ किसी दूसरेको नहीं जानता वह भूमा है और जहाँ किसी दूसरेको जानता है वह अल्प है" इस एक दूसरी श्रुतिसे यही सिद्ध होता है।

इस श्रुतिमें 'दूसरेको नहीं जानता' इस प्रकार विशेषका प्रतिषेध होनेके कारण वह स्वयं अपनेको ही जानता है—ऐसी यदि कोई शङ्का करे तो ठीक नहीं; क्योंकि यह वाक्य भूमाके लक्षणका विधान करनेमें प्रवृत्त है। 'यत्र नान्यत्पश्यति' इत्यादि वाक्य भूमाके लक्षणका विधान करनेमें तत्पर है। अन्य अन्यको देखता है—इस लोकप्रसिद्ध वस्तुस्थितिको स्वीकार कर 'जहाँ ऐसा नहीं है वह भूमा है'—इस प्रकार उसके द्वारा भूमाके स्वरूपका बोध कराया जाता है। 'अन्य' शब्दका ग्रहण तो यथाप्राप्त द्वैतका प्रतिषेध करनेके लिये है; अतः यह वाक्य अपनेमें क्रियाका अस्तित्व प्रतिपादन करनेके लिये नहीं है। और स्वात्मामें तो भेदका अभाव होनेके कारण उसका विज्ञान होना सम्भव ही

भावाद्विज्ञानानुपपत्तिः। आत्मनश्च विज्ञेयत्वे ज्ञात्रभावप्रसङ्गः; ज्ञेयत्वेनैव विनियुक्तत्वात्।

एक एवात्मा ज्ञेयत्वेन ज्ञातृत्वेन चोभयथा भवतीति चेत्?

न; युगपदनंशत्वात्। न हि निरवयवस्य युगपज्ज्ञेयज्ञातृत्वोपपत्तिः। आत्मनश्च घटादिवद्विज्ञेयत्वे ज्ञानोपदेशानर्थक्यम्। न हि घटादिवत्प्रसिद्धस्य ज्ञानोपदेशोऽर्थवान्। तस्माज्ज्ञातृत्वे सति आनन्त्यानुपपत्तिः। सन्मात्रत्वं चानुपपन्नं ज्ञानकर्तृत्वादिविशेषवत्त्वे सति। सन्मात्रत्वं च सत्यत्वम्, "तत्सत्यम्" (छा० उ० ६।८।१६) इति श्रुत्यन्तरात्। तस्मात्सत्यानन्तशब्दाभ्यां सह विशे-

नहीं है। आत्माका विज्ञेयत्व स्वीकार करनेपर तो ज्ञाताके अभावका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है; क्योंकि वह तो विज्ञेयरूपसे ही विनियुक्त (प्रयुक्त) हो चुका है। [अब उसे ज्ञाता कैसे माना जाय?]

शङ्का—एक ही आत्मा ज्ञेय और ज्ञाता दोनों प्रकारसे हो सकता है—ऐसा मानें तो?

समाधान—नहीं, वह अंशरहित होनेके कारण एक साथ उभयरूप नहीं हो सकता। निरवयव ब्रह्मका एक साथ ज्ञेय और ज्ञाता होना सम्भव नहीं है। इसके सिवा यदि आत्मा घटादिके समान विज्ञेय हो तो ज्ञानके उपदेशकी व्यर्थता हो जायगी। जो वस्तु घटादिके समान प्रसिद्ध है उसके ज्ञानका उपदेश सार्थक नहीं हो सकता। अतः उसका ज्ञातृत्व माननेपर उसकी अनन्तता नहीं रह सकती। ज्ञानकर्तृत्वादि विशेषसे युक्त होनेपर उसका सन्मात्रत्व भी सम्भव नहीं है। और "वह सत्य है" इस एक अन्य श्रुतिसे उसका सत्यरूप होना ही सन्मात्रत्व है। अतः 'सत्य' और 'अनन्त' शब्दोंके साथ विशेषण-

षणत्वेन ज्ञानशब्दस्य प्रयोगाद्भावसाधनो ज्ञानशब्दः । ज्ञानं ब्रह्मेति कर्तृत्वादिकारकनिवृत्त्यर्थं मृदादिवदचिद्रूपतानिवृत्त्यर्थं च प्रयुज्यते ।

रूपसे 'ज्ञान' शब्दका प्रयोग किया जानेके कारण वह भाववाचक है । अतः 'ज्ञानं ब्रह्म' इस विशेषणका उसके कर्तृत्वादि कारकोंकी निवृत्तिके लिये तथा मृत्तिका आदिके समान उसकी जडरूपताकी निवृत्तिके लिये प्रयोग किया जाता है ।

अनन्तमित्यस्य वत्त्वम् । निरुक्तिः

ज्ञानं ब्रह्मेतिवचनात्प्राप्तमन्तवत्त्वम् । लौकिकस्य ज्ञानस्यान्तवत्त्वदर्शनात् । अतस्तन्निवृत्त्यर्थमाह—अनन्तमिति ।

'ज्ञानं ब्रह्म' ऐसा कहनेसे ब्रह्मका अन्तवत्त्व प्राप्त होता है; क्योंकि लौकिक ज्ञान अन्तवान् ही देखा गया है । अतः उसकी निवृत्तिके लिये 'अनन्तम्' ऐसा कहा है ।

ब्रह्मणः शून्यार्थत्वमाशङ्क्यते

सत्यादीनामनृतादिधर्मनिवृत्तिपरत्वाद्विशेष्यस्य ब्रह्मण उत्पलादिवदप्रसिद्धत्वात् "मृगतृष्णाम्भसि स्नातः खपुष्पकृतशेखरः । एष वन्ध्यासुतो याति शशशृङ्गधनुर्धरः" इतिवच्छून्यार्थतैव प्राप्ता सत्यादिवाक्यस्येति चेत् ?

शङ्का—सत्यादि शब्द तो अनृतादि धर्मोंकी निवृत्तिके लिये है और उनका विशेष्य ब्रह्म कमल आदिके समान प्रसिद्ध नहीं है; अतः "मृगतृष्णाके जलमें स्नान करके शिरपर आकाशकुसुमका मुकुट धारण किये तथा हाथमें शशशृङ्गका धनुष लिये यह वन्ध्याका पुत्र जा रहा है" इस उक्तिके समान इस 'सत्यं ज्ञानम्' इत्यादि वाक्यकी शून्यार्थता ही प्राप्त होती है ।

न; लक्षणार्थत्वात् । विशेषणत्वेऽपि सत्यादीनां लक्षणार्थ-

समाधान—नहीं, क्योंकि वे [सत्यादि] लक्षण करनेके लिये हैं ।

प्राधान्यमित्यवोचाम। शून्ये हि लक्ष्येऽनर्थकं लक्षणवचनं लक्षणार्थत्वान्मन्यामहे न शून्यार्थतेति। विशेषणार्थत्वेऽपि च सत्यादीनां स्वार्थापरित्याग एव। शून्यार्थत्वे हि सत्यादिशब्दानां विशेष्यनियन्तृत्वानुपपत्तिः। सत्याद्यर्थैरर्थवत्त्वे तु तद्विपरीतधर्मवद्भ्यो विशेष्येभ्यो ब्रह्मणो विशेष्यस्य नियन्तृत्वमुपपद्यते। ब्रह्मशब्दोऽपि स्वार्थे नार्थवानेव। तत्रानन्तशब्दोऽन्तवत्त्वप्रतिषेधद्वारेण विशेषणम्। सत्यज्ञानशब्दौ तु स्वार्थसमर्पणेनैव विशेषणे भवतः।

"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः" इति ब्रह्मण्येवात्मशब्दप्रयोगाद्वेदितु-

सत्यादि शब्द विशेषण होनेपर भी उनका प्रधान प्रयोजन लक्षणके लिये होना ही है—यह हम पहले ही कह चुके हैं। यदि लक्ष्य शून्य हो तब तो उसका लक्षण बतलाना भी व्यर्थ ही होगा। अतः लक्षणार्थ होनेके कारण उनकी शून्यार्थता नहीं है—ऐसा हम मानते हैं। विशेषणके लिये होनेपर भी सत्यादि शब्दके अपने अर्थका त्याग तो होता ही नहीं है। यदि सत्यादि शब्दोंकी शून्यार्थता हो तो वे अपने विशेष्यके नियन्ता हैं—ऐसा नहीं माना जा सकता। सत्यादि अर्थोंसे अर्थवान् होनेपर ही उनके द्वारा अपनेसे विपरीत धर्मवाले विशेष्योंसे अपने विशेष्य ब्रह्मका नियन्तृत्व बन सकता है। 'ब्रह्म' शब्द भी अपने अर्थसे अर्थवान् ही है। उन [सत्यादि तीन शब्दों] में 'अनन्त' शब्द उसके अन्तवत्त्वका प्रतिषेध करनेके द्वारा उसका विशेषण होता है तथा 'सत्य' और 'ज्ञान' शब्द तो अपने अर्थोंके समर्पणद्वारा ही उसके विशेषण होते हैं।

शङ्का—"उस आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ" इस श्रुतिमें 'आत्मा' शब्दका प्रयोग ब्रह्मके ही लिये

रात्मैव ब्रह्म । "एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति" (तै० उ० २।८।५) इति चात्मतां दर्शयति । तत्प्रवेशाच्च; "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" (तै० उ० २।६।१) इति च तस्यैव जीवरूपेण शरीरप्रवेशं दर्शयति । अतो वेदितुः स्वरूपं ब्रह्म ।

एवं तर्ह्यात्मत्वाज्ज्ञानकर्तृत्वम् । आत्मा ज्ञातेति हि प्रसिद्धम् । "सोऽकामयत" (तै० उ० २।६।१) इति च कामिनो ज्ञानकर्तृत्वाज्ज्ञप्तिर्ब्रह्मेत्युक्तम् ।

अनित्यत्वप्रसङ्गाच्च । यदि नाम ज्ञप्तिर्ज्ञानमिति भावरूपता ब्रह्मणस्तथाप्यनित्यत्वं प्रसज्येत पारतन्त्र्यं च । धात्वर्थानां कारकापेक्षत्वात् । ज्ञानं च

किया जानेके कारण ब्रह्म जाननेवालेका आत्मा ही है । "इस आनन्दमय आत्माको प्राप्त हो जाता है" इस वाक्यसे श्रुति उसकी आत्मता दिखलाती है तथा उसके प्रवेश करनेसे भी [उसका आत्मत्व सिद्ध होता है]। "उसे रचकर वह उसीमें प्रविष्ट हो गया" ऐसा कहकर श्रुति उसीका जीवरूपसे शरीरमें प्रवेश होना दिखलाती है । अतः ब्रह्म जाननेवालेका स्वरूप ही है।

इस प्रकार आत्मा होनेसे तो उसे ज्ञानका कर्तृत्व सिद्ध होता है । 'आत्मा ज्ञाता है' यह बात तो प्रसिद्ध ही है । "उसने कामना की" इस श्रुतिसे कामना करनेवालेके ज्ञानकर्तृत्वकी सिद्धि होती है । अतः ब्रह्मका ज्ञानकर्तृत्व निश्चित होनेके कारण 'ब्रह्म ज्ञप्तिमात्र है' ऐसा कहना अनुचित है ।

इसके सिवा ऐसा माननेसे अनित्यत्वका प्रसङ्ग भी उपस्थित होता है । यदि 'ज्ञान ज्ञप्तिको कहते हैं' इस व्युत्पत्तिके अनुसार ब्रह्मकी भावरूपता मानी जाय तो भी उसके अनित्यत्व और पारतन्त्र्यका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है; क्योंकि धातुओंके अर्थ कारकोंकी अपेक्षावाले

समुद्योज्य ततः पश्चाद् राजाप्यक्षौहिणीवृतः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् सेनाको नियुक्त करके अपने भाइयों और पुत्रोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर भीमसेनके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे ॥ १९ ॥

चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युती ।
द्रौपदेयाः ससौभद्राः पृष्ठगोपास्तरस्विनः ॥ २० ॥

भीमके पहियोंकी रक्षा परम तेजस्वी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव कर रहे थे । द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा अभिमन्यु– ये वेगशाली वीर उनके पृष्ठभागकी रक्षा करते थे ॥ २० ॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः ।
सहितः पृतनाशूरै रथमुख्यैः प्रभद्रकैः ॥ २१ ॥

पाञ्चालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्न अपनी सेनाके चुने हुए शूरवीर एवं प्रधान रथी प्रभद्रकोंके साथ उन सबकी रक्षा करते थे ॥ २१ ॥

शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाभिरक्षितः ।
यत्तो भीष्मविनाशाय प्रययौ भरतर्षभ ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इन सबके पीछे अर्जुनद्वारा सुरक्षित शिखण्डी भीष्मका विनाश करनेके लिये उद्यत हो आगे बढ रहा था ॥ २२ ॥

पृष्ठगोपोऽर्जुनस्यापि युयुधानो महारथः ।
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २३ ॥

अर्जुनके पीछे महारथी सात्यकि थे । पाञ्चाल वीर युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके रथके पहियोंकी रक्षा करते थे ॥ २३ ॥

राजा तु मध्यमानीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
बृहद्भिः कुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव ॥ २४ ॥

चलते-फिरते पर्वतोंके समान विशाल और मतवाले गजराजोंकी सेनाके कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर बीचकी सेनामें उपस्थित थे ॥ २४ ॥

अक्षौहिण्या च पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः ।
विराटमन्वयात् पश्चात्पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ २५ ॥

महामना पराक्रमी पाञ्चालराज द्रुपद पाण्डवोंके लिये एक अक्षौहिणी सेनाके सहित राजा विराटके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ २५ ॥

तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः।
नानाचिह्नधरा राजन्रथेष्वासन्महाध्वजाः ॥ २६ ॥

राजन्! उनके रथोंपर भाँति-भाँतिके चिन्होंसे विभूषित स्वर्णमण्डित विशाल ध्वज सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २६ ॥

समुत्सर्प्य ततः पश्चाद् धृष्टद्युम्नो महारथः।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षद्युधिष्ठिरम् ॥ २७ ॥

तदनन्तर महारथी धृष्टद्युम्न आगे बढ़कर स्वयं भाइयों और पुत्रोंके साथ उपस्थित हो राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करने लगे ॥ २७ ॥

त्वदीयानां परेषां च रथेषु विविधान्ध्वजान्।
अभिभूयार्जुनस्यैको ध्वजस्तस्थौ महाकपिः ॥ २८ ॥

राजन्! आपके तथा शत्रुओंके रथोंपर जो बहुसंख्यक विशाल ध्वज फहरा रहे थे, उन सबको तिरस्कृत करके केवल अर्जुनके रथपर एकमात्र महान् कपिसे उपलक्षित दिव्य ध्वज शोभा पाता था ॥ २८ ॥

पादातास्त्वग्रतोऽगच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः।
अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः ॥ २९ ॥

भीमसेनकी रक्षाके लिये उनके आगे-आगे हाथोंमें खड्ग, शक्ति तथा ऋष्टि लिये कई लाख पैदल सैनिक चल रहे थे ॥ २९ ॥

वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः।
शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाचलाः ॥ ३० ॥
क्षरन्त इव जीमूता मदार्द्राः पद्मगन्धिनः।
राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३१ ॥

राजा युधिष्ठिरके पीछे जंगम पर्वतोंके समान ऊँचे ऊँचे दस हजार गजराज जा रहे थे। उनके गण्डस्थलसे फूटकर मदकी धारा बह रही थी। वे सोनेकी जालीदार झूलोंसे उद्दीप्त हो रहे थे। उनमें शौर्य भरा था। उनसे कमलके समान सुगन्ध निकलती थी और वे सभी मदसे गीले हो रहे थे ॥ ३०-३१ ॥

भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन्परिघोपमाम्।
प्रचकर्ष महत्सैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥ ३२ ॥

दुर्जय वीर महामनस्वी भीमसेन हाथमें परिघके समान मोटी एवं भयंकर गदा लिये अपने साथ विशाल सेनाको खींचे लिये जा रहे थे ॥ ३२ ॥

तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तं रश्मिमालिनम् ।
न शेकुः सर्वतो योधाः प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥ ३३ ॥

उस समय किरणोंकी मालावाले सूर्यकी भाँति तपते हुए उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था । निकट आनेपर समस्त योद्धा उनकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ न हो सके ॥ ३३ ॥

वज्रो नामैष तु व्यूहो दुर्भिदः सर्वतोमुखः ।
चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥ ३४ ॥

यह वज्रनामक व्यूह सर्वथा तोडे जानेमें कठिन तथा सब ओर मुखवाला था । उसके ध्वजके निकट सुवर्णभूषित धनुष विद्युत्के समान प्रकाशित होता था । गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा ही वह भयंकर व्यूह सुरक्षित था ॥ ३४ ॥

यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ॥ ३५ ॥

पाण्डवलोग जिस व्यूहकी रचना करके आपकी सेनाका सामना करनेके लिये खडे हुए थे, वह उनके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण मनुष्यलोकमें अजेय था ॥ ३५ ॥

संध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
प्रावात्सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ ३६ ॥

सूर्योदयके समय जब सभी सैनिक संध्योपासना कर रहे थे, तब बिना बादलके ही पानीकी बूँदोंके साथ हवा चलने लगी । उसके साथ मेघकी-सी गर्जना भी होती थी ॥ ३६ ॥

विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा नीचैः शर्करकर्षिणः ।
रजश्चोद्धूयमानं तु तमसाच्छादयज्जगत् ॥ ३७ ॥

वहाँ सब ओर तथा नीचे बालू और कंकड बरसाती हुई तीव्र वायु बह रही थी । उस समय इतनी धूल उडी कि जगत्में घोर अन्धकार छा गया ॥ ३७ ॥

पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ ।
उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥ ३८ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बडी भारी उल्का गिरी और उदय होते हुए सूर्यसे टकराकर बडे जोरकी आवाजके साथ बिखर गयी ॥ ३८ ॥

अथ सज्जीयमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ।
निष्प्रभोऽभ्युदियात्सूर्यः सघोषो भूश्चचाल ह ।
व्यशीर्यत सनादा च तदा भरतसत्तम ॥ ३९ ॥

हे भरतभूषण ! जब उभय-पक्षकी सेनाएँ युद्धके लिये पूर्णतः तैयार हो गयीं, उस समय सूर्य प्रभाहीन होकर उदय हुआ और भारी आवाजके साथ धरती काँपने लगी । हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय ऐसा जान पडता था, मानो पृथ्वी विकट नाद करती हुई फटी जा रही है ॥ ३९ ॥

निर्घाता बहवो राजन्दिक्षु सर्वासु चाभवन् ।
प्रादुरासीद्रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४० ॥

राजन् ! सम्पूर्ण दिशाओंमें अनेक बार वज्रपातके समान भयानक शब्द प्रकट हुए । तीव्र वेगसे धूलकी वर्षा होने लगी । कुछ भी सूझ नहीं पडता था ॥ ४० ॥

ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ।
किङ्किणीजालनद्धानां काञ्चनस्रग्वतां रवैः ॥ ४१ ॥
महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ।
सर्वं झणझणीभूतमासीत्तालवनेष्विव ॥ ४२ ॥

सहसा वायुके वेगसे ध्वज हिलने लगे । पताकासहित वे ध्वज सूर्यके समान तेजस्वी जान पडते थे । उन्हें सोनेके हार और सुन्दर वस्त्रोंसे सजाया गया था । उनमें छोटी-छोटी घंटियोंके साथ झालरें बँधी थीं, जिनके मधुर शब्द सब ओर फैल रहे थे । इस प्रकार उन महान् ध्वजोंके शब्दसे ताडके जंगलोंकी भाँति उस रणभूमिमें सब ओर झनझनकी आवाज हो रही थी ॥ ४१-४२ ॥

एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा युद्धनन्दिनः ।
व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ ४३ ॥
स्रंसन्त इव मज्जानो योधानां भरतर्षभ ।
दृष्ट्वाग्रतो भीमसेनं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ७०० ॥

इस प्रकार युद्धसे आनन्दित होनेवाले पुरुषसिंह पाण्डव आपके पुत्रकी वाहिनीके सामने व्यूह बनाकर खडे हुए थे और हमारे योद्धाओंके रक्त और मज्जाको भी सुखाये देते थे । गदाधारी भीमसेनको आगे खडा देख हमारी सारी सेना भयभीत हो रही थी ॥ ४३-४४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ७०० ॥

×

: २० :

धृतराष्ट्र उवाच

सूर्योदये संजय के नु पूर्वं युयुत्सवो हृष्यमाणा इवासन् ।
मामका वा भीष्मनेत्राः समीके पाण्डवा वा भीमनेत्रास्तदानीम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– संजय ! सूर्योदयके समय किस पक्षके योद्धा युद्धकी इच्छासे अधिक हर्षका अनुभव करते हुए जान पडते थे ? भीष्मके नेतृत्वमें युद्धमें आये हुए मेरे सैनिक अथवा भीमसेनकी अध्यक्षतामें आनेवाले पाण्डव सैनिक ? उस समय कौन अधिक प्रसन्न थे ? ॥१॥

केषां जघन्यौ सोमसूर्यौ सवायू केषां सेनां श्वापदा व्याभषन्त ।
केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः सर्वं ह्येतद्ब्रूहि तत्त्वं यथावत् ॥ २ ॥

चन्द्रमा, सूर्य और वायु किनके प्रतिकूल थे ? किनकी सेनाकी ओर देखकर हिंसक जन्तु भयंकर शब्द करते थे ? किस पक्षके नवयुवकोंके मुखकी कान्ति प्रसन्न थी ? ये सब बातें तुम मुझे ठीक-ठीक बताओ ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

उभे सेने तुल्यमिवोपयाते उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र ।
उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥ ३ ॥

संजय बोले– नरेन्द्र ! दोनों ओरकी सेनाएँ समान रूपसे आगे बढ रही थीं । दोनों ओरके व्यूहमें खडे हुए सैनिक हर्षसे उल्लासित थे । दोनों ही सेनाएँ वनश्रेणियोंके समान आश्चर्यरूप प्रतीत होती थीं और दोनों ही हाथी, रथ एवं घोडोंसे भरी हुई थीं ॥ ३ ॥

उभे सेने बृहती भीमरूपे तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये ।
तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे तथा ह्युभे सत्पुरुषार्यगुप्ते ॥ ४ ॥

भारत ! दोनों ओरकी सेनाएँ विशाल, भयंकर और दुःसह थीं, मानों विधाताने दोनों सेनाओंको स्वर्गकी प्राप्तिके लिये ही रचा था । दोनों ही सत्पुरुषोंसे रक्षित थीं ॥ ४ ॥

पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः ।
दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥ ५ ॥

आपके पुत्र कौरवोंका मुख पश्चिम दिशाकी ओर था और कुन्तीके पुत्र उनसे युद्ध करनेके लिये पूर्वाभिमुख खडे थे । कौरवसेना दैत्यराजकी सेनाके समान जान पडती थी और पाण्डववाहिनी देवराज इन्द्रकी सेनाके तुल्य प्रतीत होती थी ॥ ५ ॥

शुक्रो वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां धार्तराष्ट्राञ्श्वापदा व्याभषन्त ।
गजेन्द्राणां मदगन्धांश्च तीव्रान्न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः ॥ ६ ॥

पाण्डवसेनाके पीछेकी ओरसे शुद्ध हवा चल रही थी और आपके पुत्रोंकी ओर देखकर हिंसक जन्तु बोल रहे थे । आपके पुत्रकी सेनामें जो हाथी थे, वे पाण्डवपक्षके गजराजोंके मदोंकी तीव्र गन्ध नहीं सहन कर पाते थे ॥ ६ ॥

दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं सुवर्णकक्ष्यं जातिबलं प्रभिन्नम् ।
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां संस्तूयमानो वन्दिभिर्मागधैश्च ॥ ७ ॥

दुर्योधन कमलके समान कान्तिवाले मदस्रावी गजराजपर बैठकर कौरवसेनाके मध्यभागमें खडा था । उसके हाथीपर सोनेका हौदा कसा हुआ था और पीठपर सोनेकी जाली बिछी हुई थी । उस समय वन्दी और मागधजन उसकी स्तुति कर रहे थे ॥ ७ ॥

चन्द्रप्रभं श्वेतमस्यातपत्रं सौवर्णी स्रग्भ्राजते चोत्तमाङ्गे ।
तं सर्वतः शकुनिः पार्वतीयैः सार्धं गान्धारैः पाति गान्धारराजः ॥ ८ ॥

उसके मस्तकपर चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्वेत छत्र तना हुआ था और कण्ठमें सोनेकी माला सुशोभित हो रही थी । गान्धारराज शकुनि गान्धारदेशके पर्वतीय योद्धाओंके साथ आकर दुर्योधनकी सब ओरसे रक्षा कर रहा था ॥ ८ ॥

भीष्मोऽग्रतः सर्वसैन्यस्य वृद्धः श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सशंखः ।
श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशः ॥ ९ ॥

हमारी सम्पूर्ण सेनाके आगे बूढे पितामह भीष्म थे । उनके सिरपर श्वेत रंगकी पगडी थी और श्वेत वर्णका ही छत्र तना हुआ था । उनके धनुष और शङ्ख भी श्वेत ही थे । वे श्वेत शैलके समान प्रकाशित होनेवाले श्वेत घोडों और श्वेत ध्वजसे सुशोभित हो रहे थे ॥ ९ ॥

तस्य सैन्यं धार्तराष्ट्राश्च सर्वे बाह्लीकानामेकदेशः शलश्च ।
ये चाम्बष्ठाः क्षत्रिया ये च सिन्धौ तथा सौवीराः पञ्चनदाश्च शूराः ॥१०॥

उनकी सेनामें आपके सभी पुत्र, बाह्लीकसेनाका एक अंश, शल और अम्बष्ठ, सौवीर, सिन्धु तथा पञ्चनद देशके शूरवीर क्षत्रिय विद्यमान थे ॥ १० ॥

शोणैर्हयै रुक्मरथो महात्मा द्रोणो महाबाहुरदीनसत्त्वः ।
आस्ते गुरुः प्रयशा सर्वराज्ञां पश्चाच्चमूमिन्द्र इवाभिरक्षन् ॥ ११ ॥

उनके पीछे समस्त यशस्वी राजाओंके गुरु, उदार हृदयवाले महामना महाबलशाली द्रोणाचार्य लाल घोडोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथमें बैठकर भूमिपालकी भाँति रक्षा करते हुए जा रहे थे ॥ ११ ॥

वार्द्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च ।
शाल्वा मत्स्याः केकयाश्चापि सर्वे गजानीकैर्भ्रातरो योत्स्यमानाः ॥ १२ ॥

वृद्धक्षत्रका पुत्र जयद्रथ, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, शाल्व और मत्स्यदेशीय क्षत्रिय तथा सब भाई केकयराजकुमार युद्धकी इच्छासे हाथियोंके समूहोंको साथ ले सम्पूर्ण सेनाके मध्यभागमें स्थित थे ॥ १२ ॥

शारद्वतश्चोत्तरधूर्महात्मा महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी ।
शकैः किरातैर्यवनैः पह्लवैश्च सार्धं चमूमुत्तरतोऽभिपाति ॥ १३ ॥

महान् धनुर्धर और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले गौतमवंशीय महामना कृपाचार्य गुरुतर भार ग्रहण करके शक, किरात, यवन तथा पह्लव सैनिकोंके साथ कौरवसेनाके बाँयें भागमें होकर चल रहे थे ॥ १३ ॥

महारथैरन्धकवृष्णिभोजैः सौराष्ट्रकैर्नैर्ऋतैरात्तशस्त्रैः ।
बृहद्बलः कृतवर्माभिगुप्तो बलं त्वदीयं दक्षिणतोऽभिपाति ॥ १४ ॥

हाथमें हथियार लिये सुशिक्षित सौराष्ट्रदेशीय वीरों तथा वृष्णिवंश भोजवंश अन्धकवंश और नैर्ऋत्यदेशके महारथियोंद्वारा पालित विशाल सेना तथा कृतवर्माद्वारा सुरक्षित होकर बृहद्बल दाहिने भागसे होकर युद्धके लिये यात्रा कर रहा था ॥ १४ ॥

संशप्तकानामयुतं रथानां मृत्युर्जयो वार्जुनस्येति सृष्टाः ।
येनार्जुनस्तेन राजन्कृतास्त्राः प्रयाता वै ते त्रिगर्ताश्च शूराः ॥ १५ ॥

'या तो हम अर्जुनपर विजय प्राप्त करेंगे अथवा हमारी मृत्यु हो जाएगी' ऐसी प्रतिज्ञा करके दस हजार संशप्तक रथी तथा बहुतसे अस्त्रवेत्ता त्रिगर्तदेशीय शूरवीर जिस ओर अर्जुन थे, उसी ओर जा रहे थे ॥ १५ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु नागानां तव भारत ।
नागे नागे रथशतं शतं चाश्वा रथे रथे ॥ १६ ॥

भारत ! आपकी सेनामें एक लाखसे अधिक हाथी थे । एक-एक हाथीके साथ सौ–सौ रथ थे और एक–एक रथके साथ सौ–सौ घोडे थे ॥ १६ ॥

अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः ।
एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत ॥ १७ ॥

प्रत्येक अश्वके पीछे दस–दस धनुर्धर और प्रत्येक धनुर्धरके साथ दस–दस पैदल सैनिक नियुक्त किये गये थे, जो ढाल-तलवार लिये रहते थे । भरतनन्दन ! इस प्रकार भीष्मजीने आपकी सेनाओंका व्यूह रचा था ॥ १७ ॥

अव्यूहन्मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवोऽग्रणीः ॥ १८ ॥

शन्तनुनन्दन सेनापति भीष्म प्रत्येक दिन मानुष, दैव, गान्धर्व और आसुर प्रणालीके अनुसार व्यूह-रचना करके सेनाके अग्रभागमें स्थित होते थे ॥ १८ ॥

महारथौघविपुलः समुद्र इव पर्वणि ।
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ॥ १९ ॥

भीष्मद्वारा रचित कौरवसेनाका वह व्यूह महारथियोंके समुदायसे सम्पन्न हो पर्वकालके समुद्रके समान गर्जना करता था । युद्धमें उसका मुख पश्चिमकी ओर था ॥ १९ ॥

अनन्तरूपा ध्वजिनी त्वदीया नरेन्द्र भीमा न तु पाण्डवानाम् ।
तां त्वेव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधृष्यां यस्या नेतारौ केशवश्चार्जुनश्च ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ७२० ॥

नरेन्द्र ! आपकी सेना अनन्त रूपवाली भयंकर थी; पाण्डवोंकी वैसी नहीं थी । परंतु मैं तो उसी सेनाको विशाल और दुर्जय मानता हूँ, जिसके नेता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं ॥ २० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ७२० ॥

: २१ :

संजय उवाच

बृहतीं धार्तराष्ट्राणां दृष्ट्वा सेनां समुद्यताम् ।
विषादमगमद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

संजय बोले— राजन् ! युद्धके लिये उद्यत हुई धृतराष्ट्रपुत्रकी विशाल सेनाको देखकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें विषाद छा गया ॥ १ ॥

व्यूहं भीष्मेण चाभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अभेद्यमिव सम्प्रेक्ष्य विषण्णोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २ ॥

भीष्मने जिस व्यूहकी रचना की थी, उसका भेदन करना असम्भव था । उसे अक्षोभ्य-सा देखकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर दुःखी होकर अर्जुनसे इस प्रकार बोले ॥ २ ॥

धनंजय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे ।
धार्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः ॥ ३ ॥

'महाबाहु धनंजय ! जिनके प्रधान योद्धा पितामह भीष्म हैं, उन धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ हम समरभूमिमें कैसे युद्ध कर सकते हैं ? ॥ ३ ॥

अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणामित्रकर्शिना ।
कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरितेजसा ॥ ४ ॥

हे शत्रुनाशक अर्जुन ! महातेजस्वी भीष्मने शास्त्रीय विधिके अनुसार यह अक्षोभ्य एवं अभेद्य व्यूह रचा है ॥ ४ ॥

ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्शन ।
कथमस्मान्महाव्यूहादुद्यानं नो भविष्यति ॥ ५ ॥

शत्रुनाशन अर्जुन ! हमलोग अपनी सेनाओंके साथ प्राणसंकटकी स्थितिमें पहुँच गये हैं । इस महान् व्यूहसे हमारा उद्धार कैसे होगा ? ॥ ५ ॥

अथार्जुनोऽब्रवीत्पार्थं युधिष्ठिरममित्रहा ।
विषण्णमभि सम्प्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम् ॥ ६ ॥

राजन् ! तब शत्रुओंका नाश करनेवाले अर्जुनने आपकी सेनाको विषादग्रस्तसे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको सम्बोधित करके कहा ॥ ६ ॥

प्रज्ञयाभ्यधिकाञ्शूरान्गुणयुक्तान्बहूनपि ।
जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशां पते ॥ ७ ॥

प्रजानाथ ! अधिक बुद्धिमान्, उत्तम गुणोंसे युक्त तथा बहुसंख्यक शूरवीरोंको भी बहुत थोडे योद्धा जिस प्रकार जीत लेते हैं, उसे बताता हूँ, सुनिये ॥ ७ ॥

तत्तु ते कारणं राजन्प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव ॥ ८ ॥

राजन् ! आप दोषदृष्टिसे रहित हैं अतः आपको वह युक्ति बताता हूँ । पाण्डुनन्दन ! उसे केवल देवर्षि नारद, भीष्म तथा द्रोणाचार्य जानते हैं ॥ ८ ॥

एतमेवार्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत् ।
पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन्दिवौकसः ॥ ९ ॥

कहते हैं, पूर्वकालमें जब देवासुर-संग्राम हो रहा था, उस समय इसी विषयको लेकर पितामह ब्रह्माने इन्द्र आदि देवताओंसे इस प्रकार कहा था ॥ ९ ॥

न तथा बलवीर्याभ्यां विजयन्ते जिगीषवः ।
यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च ॥ १० ॥

विजयकी इच्छा रखनेवाले शूरवीर अपने बल और पराक्रमसे वैसी विजय नहीं पाते, जैसी कि सत्य, सज्जनता, धर्म तथा उत्साहसे प्राप्त कर लेते हैं ॥ १० ॥

त्यक्त्वाधर्मं च लोभं च मोहं चोद्यममास्थिताः ।
युध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ११ ॥

देवताओ ! अधर्म, लोभ और मोह त्यागकर उद्यमका सहारा ले अहंकारशून्य होकर युद्ध करो । जहाँ धर्म है उसी पक्षकी विजय होती है ॥ ११ ॥

एवं राजन्विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणे जयः ।
यथा मे नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १२ ॥

राजन् ! इसी नियमके अनुसार आप भी यह निश्चितरूपसे जान लें कि युद्धमें हमारी विजय अवश्यम्भावी है । जैसा कि नारदजीने मुझसे कहा है, जहाँ कृष्ण हैं, वहीं विजय है ॥१२॥

गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽन्वेति माधवम् ।
अन्यथा विजयश्चास्य संनतिश्चापरो गुणः ॥ १३ ॥

विजय तो श्रीकृष्णका एक गुण है, अतः वह उनके पीछे-पीछे चलता है । जैसे विजय गुण है, उसी प्रकार विनय भी उनका द्वितीय गुण है ॥ १३ ॥

अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः ।
पुरुषः सनातनतमो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १४ ॥

भगवान् गोविन्दका तेज अनन्त है । वे शत्रुओंके समुदायमें भी कभी व्यथित नहीं होते; क्योंकि वे सनातन पुरुष (परमात्मा) हैं । अतः जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है ॥१४॥

पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा वैकुण्ठोऽकुण्ठसायकः ।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत्के जयन्त्विति ॥ १५ ॥

ये श्रीकृष्ण कहीं भी प्रतिहत या अवरुद्ध न होनेवाले ईश्वर हैं । इनका बाण अमोघ है । ये ही पूर्वकालमें श्रीहरिरूपमें प्रकट होकर वज्रगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें देवताओं और असुरोंसे बोले—तुमलोगोंमेंसे किसकी विजय हो ? ॥ १५ ॥

अनु कृष्णं जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम् ।
तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥

उस समय जिन लोगोंने उनका आश्रय लेकर कहा 'कृष्णके पीछे ही जीत भी चलती है?' । उन्हींकी जीत हुई । इस प्रकार श्रीकृष्णकी कृपासे ही इन्द्र आदि देवताओंने त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया है ॥ १६ ॥

तस्य ते न व्यथां काचिदिह पश्यामि भारत ।
यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक्त्रिदशेश्वरः ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ७३७ ॥

अतः, हे भारत ! मैं आपके लिये किसी प्रकारकी व्यथा या चिन्ता होनेका कारण नहीं देखता; क्योंकि देवेश्वर तथा विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्ण आपके लिये विजयकी आशा करते हैं ॥१७॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ ७३७ ॥

ः २२ ः

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समचोदयत् ।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १ ॥

संजय बोले— भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने भीष्मजीकी सेनाका सामना करनेके लिये अपनी सेनाकी व्यूहरचना करते हुए उसे युद्धके लिये प्रेरित किया ॥ १ ॥

यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ।
स्वर्गं परमभीप्सन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥ २ ॥

कुरुकुलके धुरन्धर वीर पाण्डवोंने उत्तम युद्धके द्वारा उत्कृष्ट स्वर्गलोककी इच्छा रखकर शास्त्रोक्त विधिसे शत्रुके मुकाबिलेमें अपनी सेनाका व्यूह–निर्माण किया ॥ २ ॥

मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना ।
धृष्टद्युम्नस्य च स्वयं भीमेन परिपालितम् ॥ ३ ॥

व्यूहके मध्यभागमें सव्यसाची अर्जुनद्वारा सुरक्षित शिखण्डीकी सेना थी और अग्रभागमें भीमसेन द्वारा पालित धृष्टद्युम्नकी सेना थी ॥ ३ ॥

अनीकं दक्षिणं राजन्युयुधानेन पालितम् ।
श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥ ४ ॥

राजन् ! उस व्यूहके दक्षिण भागकी रक्षा इन्द्रके समान धनुर्धर सात्वतशिरोमणि श्रीमान् सात्यकि कर रहे थे ॥ ४ ॥

महेन्द्रयानप्रतिमं रथं तु सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम् ।
युधिष्ठिरः काञ्चनभाण्डयोक्त्रं समास्थितो नागकुलस्य मध्ये ॥ ५ ॥

राजा युधिष्ठिर हाथियोंकी सेनाके बीचमें खडे एक सुन्दर रथपर आरूढ हुए, जो देवराज इन्द्रके रथकी समानता कर रहा था । उस रथमें सब आवश्यक सामग्री रक्खी गयी थी । भाँति-भाँतिके सुवर्ण तथा रत्नोंसे विभूषित होनेके कारण उस रथकी विचित्र शोभा हो रही थी । उसमें सुवर्णमय भाण्ड तथा रस्सियाँ रक्खी हुई थीं ॥ ५ ॥

समुच्छ्रितं दान्तशलाकमस्य सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति ।
प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्ति महर्षयः संस्तुतिभिर्नरेन्द्रम् ॥ ६ ॥

उस समय किसी सेवकने युधिष्ठिरके ऊपर हाथीके दाँतोंकी बनी हुई शलाकाओंसे युक्त श्वेत छत्र लगा रक्खा था, जिसकी बडी शोभा हो रही थी । कुछ महर्षिगणोंने नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा महाराज युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की ॥ ६ ॥

पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो महर्षिवृद्धाः श्रुतवन्त एव ।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिः समन्ततः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः ॥ ७ ॥

शास्त्रोंके विद्वान् पुरोहित, महर्षि और वृद्धगण जप, मन्त्र तथा उत्तम ओषधियोंद्वारा सब ओरसे युधिष्ठिरके कल्याण और शत्रुओंके संहारका शुभ आशीर्वाद देने लगे ॥ ७ ॥

ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ।
कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा कुर्वन्ययौ शक्र इवामरेभ्यः ॥ ८ ॥

उस समय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी कुरुश्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिर बहुतसे वस्त्र, गाय, फल-फूल और स्वर्णमय आभूषण ब्राह्मणोंको दान करते हुए आगे बढ रहे थे ॥ ८ ॥

सहस्रसूर्यः शतकिङ्किणीकः परार्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ।
रथोऽर्जुनस्याग्निरिवार्चिमाली विभ्राजते श्वेतहयः सुचक्रः ॥ ९ ॥

अर्जुनका रथ ज्वालमालाओंसे युक्त अग्निके समान शोभा पा रहा था । उसमें सूर्यकी आकृतिके सहस्रों चक्र विद्यमान थे । सैकडों क्षुद्र घंटिकाएँ लगी हुई थीं । बहुमूल्य जाम्बूनद नामक सुवर्णसे भूषित होनेके कारण उस रथकी विचित्र शोभा हो रही थी । उसमें श्वेत रंगके घोडे और सुन्दर पहिये लगे थे ॥ ९ ॥

तमास्थितः केशवसंगृहीतं कपिध्वजं गाण्डिवबाणहस्तः ।
धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां न विद्यते नो भविता वा कदाचित् ॥ १० ॥

गाण्डीव धनुष और बाण हाथमें लिये हुए कपिध्वज अर्जुन उस रथपर आरूढ थे । भगवान् श्रीकृष्णने उसकी बागडोर सँभाल रखी थी । अर्जुनके समान धनुर्धर इस भूतलपर न तो कोई है और न होगा ही ॥ १० ॥

उद्वर्तयिष्यंस्तव पुत्रसेनामतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम् ।
अनायुधो यः सुभुजो भुजाभ्यां नराश्वनागान्युधि भस्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

महाराज ! जो सुन्दर बाँहोंवाले भीमसेन बिना आयुधके केवल भुजाओंसे ही युद्धमें मनुष्यों, घोडों और हाथियोंको भस्म कर सकते हैं, उन्होंने ही आपके पुत्रोंकी सेनाका संहार कर डालनेके लिये अत्यन्त रौद्र रूप धारण कर रक्खा था ॥ ११ ॥

+

स भीमसेनः सहितो यमाभ्यां वृकोदरो वीररथस्य गोप्ता ।
तं प्रेक्ष्य मत्तर्षभसिंहखेलं लोके महेन्द्रप्रतिमानकल्पम् ॥ १२ ॥
समीक्ष्य सेनाग्रगतं दुरासदं प्रविव्यथुः पङ्कगता इवोष्ट्राः ।
वृकोदरं वारणराजदर्पं योधास्त्वदीया भयविग्नसत्त्वाः ॥ १३ ॥

वृकोदर भीमसेन नकुल और सहदेवके साथ रहकर अपने वीर रथी धृष्टद्युम्नकी रक्षा कर रहे थे । जो सिंहों और साँडोंके समान उन्मत्त-से होकर युद्धका खेल खेलते हैं, जिनका दर्प गजराजके समान बढा हुआ है तथा जो लोकमें देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी हैं, उन्हीं दुर्धर्ष वीर भीमसेनको सेनाके अग्रभागमें उपस्थित देख आपके सैनिक भयसे उद्विग्न चित्त हो कीचडमें फँसे हुए हाथियोंकी भाँति व्यथित हो उठे ॥ १२–१३ ॥

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं राजपुत्रं दुरासदम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं गुडाकेशं जनार्दनः ॥ १४ ॥

उस समय सेनाके मध्यभागमें खडे हुए दुर्जय वीर निद्राविजयी भरतश्रेष्ठ राजकुमार अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा ॥ १४ ॥

वासुदेव उवाच

य एष गोप्ता प्रतपन्बलस्थो यो नः सेनां सिंह इवेक्षते च ।
स एष भीष्मः कुरुवंशकेतुर्येनाहतास्त्रिंशतो वाजिमेधाः ॥ १५ ॥

भगवान् वासुदेव बोले– धनंजय ! ये जो अपनी सेनाके मध्यभागमें स्थित हो रोषसे तप रहे हैं और सिंहके समान हमारी सेनाकी ओर देखते हैं, ये ही कुरुकुलकेतु भीष्म हैं, जिन्होंने अबतक तीन सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया है ॥ १५ ॥

एतान्यनीकानि महानुभावं गूहन्ति मेघा इव घर्मरश्मिम् ।
एतानि हत्वा पुरुषप्रवीर काङ्क्षस्व युद्धं भरतर्षभेण ॥ १६ ॥

जैसे बादल अंशुमाली सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार ये सारी सेनाएँ इन महानुभाव भीष्मको आच्छादित किये हुए हैं । नरवीर अर्जुन ! तुम पहले इन सेनाओंको मारकर भरतकुलभूषण भीष्मजीके साथ युद्धकी अभिलाषा करो ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

केषां प्रहृष्टास्तत्राग्रे योधा युध्यन्ति संजय ।
उदग्रमनसः केऽत्र के वा दीना विचेतसः ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र बोले– संजय ! उस समय किस पक्षके योद्धा अत्यन्त हर्षमें भरकर पहले युद्धमें प्रवृत्त हुए ? किनके मनमें उत्साह भरा था और कौन–कौन मनुष्य दीन एवं अचेत हो रहे थे ? ॥ १७ ॥

के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने ।
मामकाः पाण्डवानां वा तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १८ ॥

संजय ! हृदयको कम्पित कर देनेवाले संग्राममें किन्होंने पहले संग्राम किया, मेरे पुत्रोंने या पाण्डवोंने ? यह मुझे बताओ ॥ १८ ॥

कस्य सेनासमुदये गन्धमाल्यसमुद्भवः ।
वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्जताम् ॥ १९ ॥

किसकी सेनाओंमें सुगन्धित पुष्पमाला आदिका प्रादुर्भाव हुआ ? किस पक्षके गर्जते हुए योद्धाओंकी वाणी उदारतापूर्ण और उत्साहयुक्त थी ? ॥ १९ ॥

संजय उवाच

उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे मुदा ।
स्रग्धूपपानगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥ २० ॥

संजय बोले— राजन् ! दोनों ही सेनाओंके योद्धा उस समय हर्षमें भरे हुए थे । उभयपक्षमें ही सुगन्ध और पुष्पहारोंका प्रादुर्भाव हुआ था ॥ २० ॥

संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ ।
संसर्पतामुदीर्णानां विमर्दः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! संगठित, व्यूहबद्ध तथा युद्धविषयक उत्साहसे उद्यत हुए दोनों दलोंके योद्धाओंकी जब मुठभेड हुई, उस समय बडी भारी मार-काट मची थी ॥ २१ ॥

वादित्रशब्दस्तुमुलः शङ्खभेरीविमिश्रितः ।
कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ७५९ ॥

राजन् ! शङ्ख और भेरी आदि वाद्योंका सम्मिलित भयंकर शब्द था । गर्जते हुए हाथियों और हर्षमें भरी हुई सेनाओंका तुमुल नाद सर्वत्र व्याप्त हो रहा था ॥ २२ ॥

॥ श्रीमहाभारतके भीष्मपर्वमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ७५९ ॥

: २३ :

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे संजय ! कुरुक्षेत्रकी पुण्यभूमिमें युद्धकी इच्छासे एकत्रित हुए मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच—

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

सञ्जय बोले— उस समय पाण्डवोंकी सेनाको व्यूह रच कर खडी देखकर राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यके पास गये और उनसे कहने लगे ॥ २ ॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

हे आचार्य ! पाण्डुपुत्रोंकी इस बडी सेनाको देखिये, जिस सेनाकी व्यूहरचना आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नने की है ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

इस युद्धमें भीम, अर्जुन, युयुधान, विराट और महारथी द्रुपदके समान शूरवीर और महाधनुर्धारी हैं ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥

इसीतरह धृष्टकेतु, चेकितान और वीर्यवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज और नरश्रेष्ठ शैब्य ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

इसी प्रकार पराक्रमी युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजा एवं सुभद्राके पुत्र अभिमन्यु, तथा द्रौपदीके पांच पुत्र ये सबके सब महारथी हैं ॥ ६ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

परन्तु हे द्विजोत्तम ! अब हमारी ओर जितने प्रधान योद्धा हैं उनके नाम भी सुनिये तथा सेनाके जो मुख्य मुख्य नायक हैं उनके नाम भी मैं आपको सुनाता हूँ; ध्यान दे कर सुनिये ॥ ७ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

आप और भीष्म, कर्ण, युद्धविजयी कृप, अश्वत्थामा, विकर्ण (दुर्योधनके सौ भाइयोंमेंसे एक,) तथा सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवा ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

एवं इनके सिवा बहुतेरे अन्यान्य शूर मेरे लिये प्राण देनेको तैयार हैं, वे सभी नानाप्रकारके शस्त्र चलानेमें निपुण तथा युद्धमें प्रवीण हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

इस प्रकारकी हमारी यह सेना, जिसकी रक्षा स्वयं भीष्म कर रहे हैं, अपरिमित है; किन्तु उन पाण्डवोंकी वह सेना जिसकी रक्षा भीम कर रहा है; वह पर्याप्त अर्थात् परिमित या मर्यादित है ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

(तो अब) नियुक्तिके अनुसार सब अयनोंमें अर्थात् सेनाके भिन्न भिन्न प्रवेश द्वारोंमें रहकर आप सब मिल करके भीष्मकी ही सभी ओरसे रक्षा करें ॥ ११ ॥

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

(इतनेमें) दुर्योधनको खुश करते हुए प्रतापवान्, कौरवोंमें वृद्ध पितामह सेनापति भीष्मने सिंहके समान बडी गर्जनाकर (लडाईकी सलामीके लिये) अपना शंख फूँका ॥ १२ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

इसके साथ ही साथ अनेक शंख, भेरी (नौबतें), पणव, आनक और गोमुख ये लडाईके बाजे एकदम बजने लगे और इन बाजोंके नादसे चारों ओर भारी कोलाहल होने लगा ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

अनन्तर सफेद घोडोंसे जुते हुए बडे रथमें बैठे हुए माधव (श्रीकृष्ण) और पाण्डव अर्जुनने (यह सूचना देने के लिये कि अपने पक्षकी भी तैयारी है, प्रत्युत्तर के ढँग पर) दिव्य शंख बजाये ॥ १४ ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

हृषीकेश अर्थात् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य नामका शंख, धनंजय अर्जुनने देवदत्त शंख तथा भयङ्कर कर्म करनेवाले वृकोदर अर्थात् भीमसेनने पौण्ड्र नामक बडा शंख बजाया ॥ १५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय, नकुलने सुघोष और सहदेव ने मणिपुष्पक, ॥१६॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

महाधनुर्धर काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, अपराजित सात्यकि, ॥ १७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥

द्रुपद और द्रौपदीके पांचों बेटे तथा महाबाहु सौभद्र अभिमन्यु इन सबने, हे राजन् धृतराष्ट्र ! चारों ओरसे अपने अपने पृथक् पृथक् शंख बजाये ॥ १८ ॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

आकाश और पृथिवीको अतिशय गुंजानेवाले उस शङ्ख ध्वनिने कौरवोंका कलेजा फाड सा डाला ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

अनन्तर कौरवोंको व्यवस्थासे खडे देख, परस्पर परस्पर एक दूसरे पर शस्त्रप्रहार करनेका समय आने पर कपिध्वज पाण्डव अर्थात् अर्जुन, अपने धनुपको संभालकर, हे राजा धृतराष्ट्र ! हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णसे यह वाक्य बोले– हे अच्युत ! मेरा रथ दोनों सेनाओंके बीच लेजाकर खडा कीजिए ॥ २०–२१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

ताकि युद्धकी इच्छासे तैयार हुए इन लोगोंका मैं अवलोकन कर लूं और मुझे इस रणसंग्राममें किनके साथ लढना है, यह भी देख लूं ॥ २२ ॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

साथ ही युद्धमें दुर्बुद्धि दुर्योधनका प्रिय करनेकी इच्छासे यहाँ जो लडनेके लिये जमा हुए हैं, उन्हें भी मैं देख लूँ ॥ २३ ॥

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥

हे धृतराष्ट्र ! गुडाकेश अर्थात् आलस्यको जीतनेवाले अर्जुनके इस प्रकार कहने पर हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णने (अर्जुनके) उत्तम रथको दोनों सेनाओंके मध्य भागमें लाकर खडा कर दिया; और ॥ २४ ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥

भीष्म, द्रोण तथा सब राजाओंके सामने वे बोले, " हे अर्जुन ! यहाँ एकत्रित हुए इन कौरवोंको देखो " ॥ २५ ॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥

उस सेनामें अर्जुनने (अपनेही) बडे-बडे, पितृस्थानीय दादा, आचार्य, मामा, मित्र, भाई, पुत्र, पौत्र और मित्र आदियोंको देखा ॥ २६ ॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥

दोनों ही सेनाओंमें अपने ससुरों और सुहृदोंको देखा । और इस प्रकार उस युद्धमें अपने सभी भाईयोंको खडा हुआ देखकर वह कुन्तीपुत्र अर्जुन ॥ २७ ॥

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वेमान्स्वजनान्कृष्ण युयुत्सून्समवस्थितान् ॥ २८ ॥

परम करुणासे व्याप्त और विषण्ण होकर यह वचन बोले— हे कृष्ण ! युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आये हुए इन स्वजनोंको देखकर ॥ २८ ॥

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

मेरे गात्र अवसन्न हो रहे हैं, मुँह सूखा जा रहा है, शरीरमें कँप उठकर रोएँ भी खडे हो गए हैं ॥ २९ ॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

गाण्डीव धनुष हाथसे गिरा जा रहा है और शरीरमें भी सर्वत्र दाह हो रहा है; मेरा मन चक्कर सा खा गया है । अब मैं यहां नहीं ठहर सकता ॥ ३० ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

हे केशव ! इसी प्रकारके मुझे सब लक्षण विपरीत दीखते हैं और स्वजनोंको युद्धमें मारकर श्रेय अर्थात् कल्याण होगा ऐसा भी नहीं दीखता है ॥ ३१ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

हे कृष्ण ! मुझे विजयकी इच्छा नहीं; न राज्य चाहिये और न सुख ही। हे गोविन्द ! राज्य, उपभोग या जीवित रहनेसे ही हमें उसका क्या उपयोग है ? ॥ ३२ ॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

जिनके लिये राज्यकी, उपभोगोंकी और सुखोंकी इच्छा मैंने की थी, वे ही ये लोग प्राण और धनोंकी आशा छोडकर युद्धके लिये खडे हुए हैं ॥ ३३ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

आचार्य, बडे बूढे, लडके, दादा, मामा, ससुर, नाति, साले और दूसरे भी सम्बन्धी ॥३४॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

भले ही ये मुझे मार डालें, तथापि, हे मधुसूदन ! त्रैलोक्यके राज्यके लिये भी मैं (इन्हें) मारनेकी इच्छा नहीं करता, फिर पृथ्वीकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३५ ॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन ! इन धृतराष्ट्रके बेटोंको मारकर हमारा कौनसा प्रिय होगा ? यद्यपि ये आततायी हैं, तो भी इनको मारनेसे हमें पाप ही आकर घेरेगा ॥ ३६ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

इसलिये बान्धवोंके सहित धृतराष्ट्र–पुत्रोंको मारना हमें उचित नहीं है, क्योंकि, हे माधव ! स्वजनोंको मारकर हम सुखी कैसे होंगे ? ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
यद्यपि लोभसे जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है, ऐसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको कुलके क्षयसे होनेवाला दोष और मित्रद्रोहका पातक दिखाई नहीं देता ॥ ३८ ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥
तथापि, हे जनार्दन ! कुलक्षयका दोष हमें स्पष्ट दीख पड रहा है, अतः इस महापापसे बचनेकी बात हमारे मनमें आये बिना कैसे रहेगी ? ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥
कुलका क्षय होनेसे सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाता है, और कुलधर्मोंके नष्ट होनेसे समूचा कुल अधर्मसे पराभूत हो जाता है ॥ ४० ॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥
हे कृष्ण ! अधर्मके फैलनेसे कुलस्त्रियाँ बिगड जाती हैं; हे वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके बिगड जानेपर वर्णसङ्करकी उत्पत्ति होती है ॥ ४१ ॥

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥
और वर्णसङ्कर होनेसे वह कुलघातकोंको और समग्र कुलको निश्चय ही नरकमें ले जाता है, एवं पिण्डदान और तर्पणादि क्रियाओंके लुप्त हो जानेसे उनके पितर भी पतन पाते हैं ॥४२॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥
कुलघातकोंके इन वर्णसङ्करकारक दोषोंसे सनातन जातिधर्म और कुलधर्म विच्छिन्न होते हैं ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥
और, हे जनार्दन ! हम ऐसा सुनते आरहे हैं, कि जिन मनुष्योंके कुलधर्म विच्छिन्न हो जाते हैं, उनका निश्चय ही नरकवास होता है ॥ ४४ ॥

+

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

देखो तो सही ! जो हम लोग राज्य-सुखके लोभसे स्वजनोंको मारनेके लिये उद्यत हुए हैं, सचमुच यह हम एक बडा भारी पाप करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥ ४५ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

इसकी अपेक्षा मेरा अधिक कल्याण तो इसमें होगा, कि मैं निःशस्त्र हो जाऊं और इनका प्रतिकार करना छोड दूँ और ये शस्त्रधारी कौरव मुझे रणमें मार डालें ॥ ४६ ॥

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ८०६ ॥

इसप्रकार रणभूमिमें ये सब बातें कहकर और शर-शरासनका परित्याग करके, चित्त शोकसे व्याप्त होनेके कारण अर्जुन अपने रथके स्थानपर चुपचाप बैठ गये ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ ८०६ ॥

: २४ :

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– इस प्रकार करुणासे व्याप्त, आँखोंमें आँसू भरे हुए और विषाद पानेवाले अर्जुनसे मधुसूदन श्रीकृष्ण यह वाक्य बोले ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! इस सङ्कटके समय पर तेरे मनमें यह मोह (कश्मल) कहाँसे आगया, जिसका कि आर्य अर्थात् सत्पुरुषोंने कभी आचरण नहीं किया, जो अधोगतिको पहुँचानेवाला है, और जो दुष्कीर्तिकारक है ॥ २ ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ ३ ॥

हे पार्थ ! ऐसा नामर्द मत हो ! यह तुझे शोभा नहीं देता । हे शत्रुओंको ताप देनेवाले ! अंतःकरणकी इस क्षुद्र दुर्वलताको छोडकर (युद्धके लिये) उठकर खडा हो जा ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

अर्जुन बोले– हे शत्रुओंको मारनेवाले मधुसूदन ! मैं पूजाके योग्य इन भीष्म और द्रोणके साथ युद्धमें बाणोंसे कैसे लडूंगा ? ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

महात्मा गुरुओंको न मारकर इस लोकमें भीख माँग करके पेटपालना भी श्रेयस्कर है; परन्तु भले ही वे अर्थलोलुप हों, तो भी उन लोगोंको मारकर इसी जगत्में मुझे रक्तसे सने हुए भोग भोगने पडेंगे ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

हम जय प्राप्त करें या हमें (वे लोग) जीत लें इन दोनों बातोंमें कौनसी बात श्रेयस्कर है, यह भी हम नहीं जानते । जिन्हें मारकर हम फिर जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करते, वे ये धृतराष्ट्रपुत्र (युद्धके लिये) सामने खडे हुए हैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वा धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

दीनतासे मेरी स्वाभाविक वृत्ति नष्ट हो गई है, मेरे चित्तमें अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य कर्मके विषयमें मोह उत्पन्न हो गया है, इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ, कि जो निश्चयसे श्रेयस्कर हो, वह मुझे बतलाइए । मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये मुझ शरणागतको समझाइये ॥ ७ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

क्योंकि पृथ्वीका निष्कण्टक समृद्ध राज्य या देवताओं (स्वर्ग) का भी स्वामित्व मिल जाये, तथापि मुझे ऐसा कुछ भी (साधन) नहीं नजर आता, कि जो इन्द्रियोंको सुखाने वाले मेरे इस शोकको दूर कर सके ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

संजय बोले– हे परन्तप धृतराष्ट्र ! गुडाकेश अर्जुनने इस प्रकार हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णसे कहा; और 'मैं नहीं लडूँगा' इस प्रकार भगवान् कृष्णसे कहकर वह चुप हो गया ॥ ९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ १० ॥

हे भारत ! दोनों सेनाओंके बीचमें विषण्ण होकर बैठे हुए अर्जुनसे हृषीकेश श्रीकृष्ण कुछ हँसते हुएसे यह वाक्य बोले ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥

श्रीभगवान् बोले – जिनका शोक नहीं करना चाहिये, तू उन्हींका शोक कर रहा है और पण्डितोंके समान बातें करता है ! जिनके प्राण शरीरसे निकल गए हैं, अथवा जिनकी देहोंमें प्राण विद्यमान हैं, उनके लिए ज्ञानी पुरुष कभी शोक नहीं करते ॥ ११ ॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

ऐसा कोई नहीं कह सकता, कि मैं पहिले कभी नहीं था, वा तुम पहिले कभी नहीं थे, या ये राजा लोग पहिले कभी नहीं थे, अथवा हम सब लोग इसके बाद कभी नहीं रहेंगे ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

जिस प्रकार देह धारण करनेवालेकी इस देहमें लडकपन, जवानी और बुढापा आता है, उसी प्रकार आगे दूसरी देह प्राप्त हुआ करती है, इसलिये इस विषयमें धीर पुरुष मोहयुक्त नहीं होते ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

हे कुंतिपुत्र ! शीतोष्ण या सुख-दुःख देनेवाले, मात्राओं अर्थात् बाह्य सृष्टिके पदार्थोंके इंद्रियोंसे जो संयोग होते हैं, उनकी उत्पत्ति होती है और नाश होता है; अतएव वे अनित्य अर्थात् विनाशशाली हैं । हे भारत ! तू शोक न करके उनको सहन कर ॥ १४ ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! जिसके लिए दुःख और सुख सम हैं, ऐसे जिस धीर पुरुषको वे पीडित नहीं करते वही अमृतत्त्व अर्थात् अमृत ब्रह्मकी स्थितिको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ १५ ॥

नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

जो कभी भी अस्तित्वमें नहीं रहा वह कभी भी अस्तित्वमें नहीं आ सकता और जो अस्तित्वमें है, उसका कभी अभाव नहीं हो सकता, तत्त्वज्ञानियोंने सत् और असत्, उन दोनोंका अन्त देख लिया है अर्थात् अन्त देखकर उनके स्वरूपका निर्णय किया है ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

यह जगत् जिसने फैलाया अथवा व्याप्त किया है, उस मूल आत्मस्वरूप ब्रह्मको ही तुम अविनाशी जानो । इस अव्यय आत्मतत्त्वका विनाश करनेका सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है ॥ १७ ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

कहा है, कि जो शरीरका स्वामी (आत्मा) नित्य, नाशरहित और अचिन्त्य है, उसे प्राप्त होनेवाले ये शरीर नाशवान् अर्थात् अनित्य हैं । अतएव, हे भारत ! तू युद्ध कर ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

जो पुरुष उस आत्माको मारनेवाली मानता है, या ऐसा समझता है, कि वह मारी जाती है वे दोनों ही उस आत्माको नहीं जानते, क्योंकि किसीको यह आत्मा न तो मारती है और न किसीसे मारी ही जाती है ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

यह (आत्मा) न तो कभी जन्म लेती है और न कभी मरती ही है और ऐसा भी नहीं है, कि यह एकवार होकर फिर न हो । यह आत्मा तो अज, नित्य, शाश्वत और पुराण (पूर्व हीसे नवीन) है, एवं शरीरके मार दिए जानेपर भी यह मारी नहीं जाती ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१ ॥

हे पार्थ ! जिसने जान लिया, कि यह आत्मा अविनाशी, नित्य, अज और अव्यय है, वह पुरुष किसको तो किससे मरवायेगा या किसको तो मारेगा ? (अर्थात् आत्माको स्वयं मारने या दूसरोंसे मरवानेकी बात ही गलत है) ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

जिस प्रकार कोई आदमी पुराने कपडेका परित्याग कर दूसरे नये कपडेको पहनता है, उसी प्रकार देही अर्थात् शरीरका स्वामी आत्मा पुराने शरीर त्यागकर दूसरे नये शरीरको धारण करती है ॥ २२ ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

इसे अर्थात् आत्माको शस्त्र काट नहीं सकते, इसे आग जला नहीं सकती, वैसेही इसे पानी भिगा या डुबा नहीं सकता और वायु सुखा भी नहीं सकता ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

कभी भी न कटनेवाली, न जलनेवाली, न भीगनेवाली और न सूखनेवाली यह आत्मा नित्य, सर्वगत, स्थिर, अचल और सनातन अर्थात् चिरन्तन है ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

इस आत्माको ही अव्यक्त अर्थात् जो इन्द्रियोंको गोचर नहीं हो सकता, अचिन्त्य अर्थात् जो मनसे भी जाना नहीं जा सकता, और अविकार्य अर्थात् जिसे किसी भी विकारकी उपाधि नहीं है, ऐसा कहते हैं । इसलिये उस आत्माको इस प्रकारका समझ कर उसके लिए शोक करना तुम्हें उचित नहीं है ॥ २५ ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

अथवा, यदि तुम ऐसा मानता हो, कि यह आत्मा शरीरके साथही सर्वदा जन्म लेता है, या शरीरके साथ सदा मरता है, तो भी, हे महाबाहो ! उसके लिए शोक करना उचित नहीं ॥ २६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

क्योंकि जो जन्मता है उसकी मृत्यु निश्चित है, और जो मरता है, उसका जन्म निश्चित है; इसलिये इस अपरिहार्य बातके लिए शोक करना तुमको उचित नहीं है ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

हे भारत अर्जुन ! सब भूत जन्मके पूर्व अव्यक्त, जन्मके बाद मध्यमें व्यक्त और मरनेपर फिर अव्यक्त हो जाते हैं; (ऐसी यदि सभी की स्थिति है) तो हे भारत ! उसमें शोक किस बातका ? ॥ २८ ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

मानों कोई तो आश्चर्य (अद्भुत वस्तु) समझकर इस आत्माकी ओर देखता है, कोई दूसरा आश्चर्यकी तरह इसका वर्णन करता है, और कोई मानों आश्चर्य समझ कर इसके बारेमें सुनता है । परन्तु (इस प्रकार देखकर, वर्णन कर और) सुनकर भी इनमें कोई इसे तत्त्वतः नहीं जानता ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हे भारत ! सबके शरीरमें रहनेवाला शरीरका स्वामी (आत्मा) सर्वदा अवध्य अर्थात् कभी भी न मारा जानेवाला है; अतएव, हे भारत अर्जुन ! सब अर्थात् किसी भी प्राणीके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

इसके सिवाय स्वधर्मकी ओर ध्यान देकर भी इस समय कम्पित होना तुम्हें उचित नहीं है । क्योंकि क्षत्रियोंके लिये धर्मयुद्धसे बढकर और कोई भी धर्म श्रेयस्कर नहीं है ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

हे पार्थ ! यह युद्ध बिना प्रार्थना किये हुए खुला हुआ स्वर्गका द्वार ही है; ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियों को ही मिला करता है ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

इस समय पर यदि तुम अपने धर्मके अनुकूल यह युद्ध न करोगे तो स्वधर्म और कीर्ति खोकर पाप बटोरोगे ॥ ३३ ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

यही नहीं, बल्कि सब लोग तुम्हारी अक्षय्य दुष्कीर्ति गाते रहेंगे और सम्भावित पुरुषके लिये तो अकीर्ति मृत्युसे भी बढकर है ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

सब महारथ लोग समझेंगे, कि तुम डर कर लडाईसे विमुख हो गये और जिन्हें आज तुम बहुमान्य हो रहे हो, वे ही लोग तुम्हें हीन समझने लगेंगे ॥ ३५ ॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

तुम्हारे सब शत्रु तुम्हारे सामर्थ्यकी निन्दा करेंगे और बहुतसी बातें ऐसी कहेंगे, कि जिसे कहना भी उचित नहीं । कहो तो, इससे बढकर दुःख और होही क्या सकता है ? ॥ ३६ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

हे कौन्तेय ! यदि तुम लडाईमें मारे जाओगे, तो तुम्हें स्वर्ग मिलेगा और यदि जीत गये तो पृथ्वीका राज्य भोगोगे ! इसलिये, हे अर्जुन ! युद्धका निश्चय करके उठो ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय और पराजयको एक सा मानकर फिर युद्धमें लग जाओ । ऐसा करनेसे तुम्हें कोई भी पाप नहीं लगेगा ॥ ३८ ॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

सांख्य अर्थात् संन्यासनिष्ठाके अनुसार तुम्हें यह बुद्धि अर्थात् ज्ञान या उपपत्ति बतलाई । अब जिस बुद्धिसे युक्त होने पर कर्मोंको करने पर भी, हे पार्थ ! तुम कर्मबन्ध छोडोगे, ऐसी वह (कर्म) योग की बुद्धि अर्थात् ज्ञान तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

यहाँ अर्थात् इस कर्मयोगमार्गमें एकवार आरम्भ किये हुए कर्मका नाश नहीं होता और आगे कोई प्रत्यवाय भी नहीं उत्पन्न होता । इस धर्मका थोडासा भी आचरण करनेसे वह वडे भयसे संरक्षण करता है ॥ ४० ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

हे कुरुनन्दन ! इस मार्गमें व्यवसाय बुद्धि अर्थात् कार्य और अकार्यका निश्चय करनेवाली (इन्द्रियरूपी) बुद्धि एक अर्थात् एकाग्र करनी चाहिये । क्योंकि जिनकी बुद्धि इस प्रकार एक निश्चय नहीं होती, उनकी बुद्धि अर्थात् वासनाएँ अनेक शाखाओंसे युक्त और अनन्त प्रकारकी होती हैं ॥ ४१ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥

हे पार्थ ! कर्मकांडात्मक वेदोंके फलश्रुति-युक्त वाक्योंसे भूले हुए और यह कहनेवाले मूढ वृत्ति लोग कि इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है; बढाकर कहा करते हैं, कि ॥ ४२ ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥

अनेक प्रकारके यज्ञ-याग आदि कर्मोंसे ही फिर जन्मरूप फल प्राप्त होता है और जन्म-जन्मान्तरमें भोग तथा ऐश्वर्य मिलता है, स्वर्गके पीछे पडे हुए वे काम्य बुद्धिसे युक्त लोग होते हैं ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

उल्लिखित भाषणकी ओर ही उनका मन आकर्षित हो जाता है । इससे वे भोग और ऐश्वर्यमें ही गर्क रहते हैं; इस कारण उनकी व्यवसायात्मक अर्थात् कार्य-अकार्यका निश्चय करनेवाली बुद्धि कभी भी समाधिस्थ अर्थात् एकस्थानमें स्थिर रहनेवाली नहीं होती ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

हे अर्जुन ! कर्मकाण्डात्मक वेद इस रीतिसे त्रैगुण्यकी बातोंसे भरे हुए हैं, इसलिये तू निस्त्रैगुण्य अर्थात् त्रिगुणोंसे अतीत, नित्य सत्त्वस्थ और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे अलिप्त हो एवं योग-क्षेम आदि स्वार्थोंमें न पड कर आत्मनिष्ठ हो ॥ ४५ ॥

×

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

चारों ओर पानीके आजाने पर कुएँका जितना अर्थ या प्रयोजन रह जाता है अर्थात् कुछ भी काम नहीं रह जाता है, उतना ही प्रयोजन ज्ञानप्राप्त ब्राह्मणको सब कर्मकाण्डात्मक वेदका रहता है अर्थात् सिर्फ काम्यकर्मरूपी वैदिक कर्मकाण्डकी उसे कुछभी जरूरत नहीं रहती ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

तुम्हारा अधिकार कर्म करनेमात्रका ही है; फल मिलना या न मिलना कभी भी तुम्हारे अधिकारमें नहीं; इसलिये मेरे कर्मका अमुक फल मिले, यह हेतु मनमें रखकर काम करनेवाले तुम न हो; और कर्म छोडनेका भी तुम आग्रह मत करो ॥ ४७ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥

हे धनञ्जय ! आसक्ति छोड कर और कर्मकी सिद्धि हो या असिद्धि, दोनोंको समान रूपसे ही मानकर, 'योगस्थ' हो करके कर्म करो। कर्मके सिद्ध होने या निष्फल होनेमें सम होकर रहनेवाली समताकी मनोवृत्तिको ही कर्मयोग कहते हैं ॥ ४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

क्योंकि, हे धनञ्जय ! बुद्धिके साम्ययोगकी अपेक्षा बाह्य कर्म बहुत ही कनिष्ठ है। अतएव इस साम्य बुद्धिकी शरणमें जाओ, फलहेतुक अर्थात् फलपर दृष्टि रखकर काम करनेवाले लोग कृपण अर्थात् दीन या कम दर्जेके हैं ॥ ४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥

जो साम्य-बुद्धिसे युक्त हो, वह इस लोकमें पाप और पुण्य दोनोंसे अलिप्त रहता है, इसलिये तुम योगका आश्रय लो। पापपुण्यसे अलिप्त रहकर कर्म करनेकी चतुराई कुशलता या युक्तिको ही कर्मयोग कहते हैं ॥ ५० ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

समत्व बुद्धिसे युक्त ज्ञानी पुरुष कर्मफलका त्याग करके जन्मके बन्धसे मुक्त होकर परमेश्वरके दुःखविरहित पदको जा पहुँचते हैं ॥ ५१ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

जब तुम्हारी बुद्धि मोहके मलिन आवरणसे पार हो जायगी, तबसे जो सुनी हैं और सुननेकी हैं उन बातोंसे तुम विरक्त हो जाओगे ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

नाना प्रकारके वेदवाक्योंसे विक्षेप युक्त हुई तुम्हारी बुद्धि जब समाधि वृद्धिमें स्थिर और निश्चल होगी, तब यह साम्यबुद्धिरूप योग तुम्हें प्राप्त होगा ॥ ५३ ॥

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

अर्जुन बोले– हे केशव ! मुझे बतलाइए कि, समाधिस्थ स्थितप्रज्ञकी क्या परिभाषा है ? तथा वह स्थितप्रज्ञ किस तरह बोलता है, किस तरह बैठता है और किस प्रकार चलता है ? ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे पार्थ ! जब कोई मनुष्य अपने मनके संपूर्ण काम अर्थात् वासनाओंका परित्याग करता है, और अपने आपमें ही सन्तुष्ट होकर रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दुःखमें जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखमें जिसकी आसक्ति नहीं रहती और प्रेम, भीति और क्रोध जिसके छूट गये हैं, उसको स्थितप्रज्ञ मुनि कहते हैं ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

सब बातोंमें जिसका मन निःसङ्ग हो गया, और यथाप्राप्त शुभ और अशुभका भी जिसे आनन्द या विषाद नहीं रहता, उसकी बुद्धि स्थिर है ॥ ५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

जैसे कछुवा अपने हाथ-पैर आदि अवयव सब ओरसे सिकोड लेता है, उसी प्रकार जब कोई पुरुष शब्द, स्पर्श आदि इन्द्रियोंके विषयोंसे अपनी इन्द्रियोंको खींच लेता है, तब कहना चाहिये, कि उसकी बुद्धि स्थिर हुई है ॥ ५८ ॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

निराहारी पुरुषके विषय तो छूट जाते हैं, पर उनका रस अर्थात् विषयप्रेम नहीं छूटता । परन्तु परब्रह्मका अनुभव होनेपर विषय प्रेम भी छूट जाता है अर्थात् विषय और उनका प्रेम दोनों छूट जाते हैं ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

हे कुन्तीपुत्र ! कारण यह है, कि केवल इन्द्रियोंके नियमन करनेके विषयमें प्रयत्न करनेवाले विद्वान्के भी मनको ये प्रबल इन्द्रियाँ बलात्कारसे मनमानी ओर खींच लेती हैं ॥ ६० ॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

अतएव इन सब इन्द्रियोंका निग्रह कर युक्त अर्थात् योगयुक्त और मुझमें अर्थात् परमात्मामें मन लगाकर रहे। इस प्रकार जिसकी इन्द्रियाँ स्वाधीन रहती हैं, कहना चाहिये कि उसीकी बुद्धि स्थिर है ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषका इन विषयोंमें आसक्ति बढती जाती है । फिर इस सङ्गके बढ जानेसे कामकी उत्पत्ति होती है, फिर इस कामकी तृप्ति होनेमें विघ्न होनेसे उस कामसे ही क्रोध उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

क्रोधसे संमोह अर्थात् अविवेक होता है, संमोहसे स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे पुरुषका सर्वस्व नाश हो जाता है ॥ ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

परंतु अपनी आत्मा अर्थात् अन्तःकरण जिसके वशमें है, वह पुरुष प्रीति और द्वेषसे मुक्त हुई अपनी स्वाधीन इन्द्रियोंसे विषयोंका उपभोग करता हुआ भी चित्तसे प्रसन्न रहता है ॥ ६४ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

चित्तके प्रसन्न रहनेसे उसके सब दुःख नाशको प्राप्त होते हैं, और जिसका चित्त प्रसन्न है उसकी बुद्धि भी शीघ्र स्थिर हो जाती है ॥ ६५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

जो पुरुष युक्त अर्थात् योगयुक्त नहीं हुआ है, उसमें स्थिर बुद्धि और भावना अर्थात् दृढ बुद्धिरूप निष्ठा भी नहीं रहती । जो भावनासे रहित है, उसे शान्ति नहीं मिल सकती, और जिसके अन्दर शान्ति नहीं, उसे सुख कहाँसे मिलेगा ? ॥ ६६ ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

विषयोंमें सञ्चरण अर्थात् व्यवहार करनेवाली इन्द्रियोंके पीछे पीछे जो मन जाता है, वही पुरुषकी बुद्धिको ऐसे हरण किया करता है, जैसे कि वायु पानीमें नौकाको खींचता है ॥ ६७ ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

इसलिये, हे महाबाहो अर्जुन ! इन्द्रियोंके स्पर्शादि विषयोंसे जिसकी इन्द्रियाँ हर तरहसे अलग हो गई हों, कहना चाहिये कि उसीकी बुद्धि स्थिर हुई है ॥ ६८ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

सब लोगोंकी जो रात है, उसमें स्थितप्रज्ञ पुरुष जाग्रत रहता है और जिस समय समस्त प्राणिमात्र जागते रहते हैं, वह इस ज्ञानवान् पुरुषकी रात होती है ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

चारों ओरसे पानी भर जानेपर भी जिसकी मर्यादा स्थिर रहती है ऐसे समुद्रमें जिस प्रकार सब पानी चला जाता है, उसी प्रकार जिस पुरुषमें समस्त विषय उसकी शान्ति भङ्ग किए बिना ही प्रवेश करते हैं, उसे ही सच्ची शान्ति मिलती है। विषयोंकी इच्छा करनेवालेको यह शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ७० ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

जो पुरुष सब काम, अर्थात् आसक्ति छोडकर और निःस्पृह हो करके व्यवहार करता है, एवं जिसे ममत्व और अहङ्कार नहीं होता, उसे ही शांति मिलती है ॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ८७८ ॥

हे पार्थ ! यही ब्राह्मी स्थिति है। इसे पा जानेपर कोई भी मोहमें नहीं फंसता; और अन्तकालमें अर्थात् मरनेके समयमें भी इस स्थितिमें रहकर ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् ब्रह्ममें मिल जाने रूप मोक्षको पाता है ॥ ७२ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चौवीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ ८७८ ॥

: २५ :

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे जनार्दन ! यदि तुम साम्यबुद्धि ही को कर्मसे श्रेष्ठ समझते हो, तो हे केशव ! प्राणियोंके वधरूपी घोर कर्ममें मुझे क्यों नियुक्त करते हो ? ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

कभी कर्मकी प्रशंसा करते हो तो कभी ज्ञानको श्रेष्ठ कहकर उसका वर्णन करते हो। इन मिलीजुली बातोंसे मेरी बुद्धिको क्यों मोहमें डालते हो ? इन दोनोंमें निश्चय करके जो उत्तम हो उसे कहो, जिसका अनुष्ठान करनेसे मेरा कल्याण हो ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे पापरहित अर्जुन ! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठायें हैं, यह मैंने प्रथम ही कह दिया है, ज्ञानयोगसे सांख्योंकी और कर्मयोगसे योगियोंकी निष्ठा होती है ॥ ३ ॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

विना कर्मके अनुष्ठान किये पुरुष कदापि नैष्कर्म्य –स्थितिको प्राप्त नहीं हो सकता; और न केवल कर्मोंका त्याग करनेसे ही वह मोक्षलाभका अधिकारी हो सकता है ॥ ४ ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

ज्ञानी हो, वा अज्ञानी हो, कोई भी मनुष्य विना कर्म किये क्षणमात्र भी नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृतिसे जो स्वाभाविक राग, द्वेष, आदि गुण उत्पन्न होते हैं, उनके वशमें होकर उसे कर्ममें अवश्य ही प्रवृत्त होना पडता है ॥ ५ ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य हाथ पांव आदि पांचों कर्मेन्द्रियोंको रोककर अन्तःकरण अर्थात् मनमें इन्द्रियोंके विषयोंका ध्यान करता रहता है; वह मूढबुद्धि मिथ्याचारी झूठा वा पाखण्डी कहलाता है ॥ ६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष ज्ञानसे इन्द्रियोंको मनसे रोककर और फलाभिलाषासे रहित होकर, कर्मेन्द्रियोंसे कर्मयोगका अनुष्ठान करता है, वही सबसे उत्तम है ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! अतः तुम नियमित कर्मका निर्वाह करो, क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्मका करना ही उत्तम है । कर्मसे निवृत्त होनेपर तुम्हारे शरीरका भी निर्वाह नहीं होगा ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९ ॥

यज्ञके सिवाय अन्य जो कर्म हैं, उनमें सब प्राणी बंधे हुए हैं । हे कुन्तीनन्दन ! इसलिए तुम फलकी इच्छा छोडकर यज्ञके वास्ते कर्म करो ॥ ९ ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

प्रजापति (ब्रह्मा) ने ब्राह्मणादिक प्रजाओंको यज्ञके समेत उत्पन्न किया और उनसे कहा कि यज्ञसे ही तुम्हारी वृद्धि होगी; यह तुम्हारे अभीष्टकामनाओंको सिद्ध करनेवाला होगा ॥ १० ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

तुम लोग यज्ञसे देवताओंको प्रसन्न करो और देवता भी जलवृष्टि आदि उत्पन्न करके तुम्हारी वृद्धि करेंगे । इसप्रकार देवता और तुम परस्पर एक दूसरेको सन्तुष्ट करते हुए परम कल्याणको प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

यज्ञसे देवता तृप्त और प्रसन्न होकर जलवृष्टि आदिसे तुम्हारी सकल अभिलषित और भोग-प्रद वस्तु तुम्हें प्रदान करेंगे । जो पुरुष उन देवताओंके दिये हुए अन्न आदिको उन्हें विना समर्पित किये ही स्वयं भोग करता है, उसको चोर ही समझना चाहिये ॥ १२ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

यज्ञसे बचे हुए भोगका जो महात्मा सेवन करते हैं, वे सब पापोंसे बच जाते हैं और जो मनुष्य अपने ही वास्ते भोजन बनाते हैं, वे दुराचारी केवल पाप ही भोगते रहते हैं ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

प्राणिमात्र अन्नसे ही उत्पन्न होते हैं, अन्न पर्जन्यसे उत्पन्न होते हैं, पर्जन्य यज्ञसे उत्पन्न होता है; और यज्ञकी उत्पत्ति कर्मसे होती है ॥ १४ ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

कर्मकी उत्पत्ति ब्रह्मसे अर्थात् प्रकृतिसे हुई है, और यह ब्रह्म अक्षरसे अर्थात् परमेश्वरसे प्रकट हुआ है । इसलिये यह समझो, कि सर्वगत ब्रह्म ही यज्ञमें सह अधिष्ठित रहता है ॥ १५ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

इसी प्रकारसे जो घूमनेवाला कर्मरूपी यह जगत् चक्र है; उसके निमित्त जो पुरुष इस लोकमें उसका अनुवर्त्ती अर्थात् कर्मानुष्ठानका अनुयायी नहीं होता, उसकी अवस्था पापस्वरूप है। हे अर्जुन! ऐसा मनुष्य केवल इन्द्रियपरायण वा इन्द्रियाराम अर्थात् इन्द्रियोंको सुख देनेवाला है। वह वृथा ही जीवन धारण करता है ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल आत्माहीसे प्रीति करता और इसीमें तृप्ति मानता है तथा आत्माहीमें जिसकी सन्तुष्टता रहती है, उसको कुछ काम इस लोक और परलोकमें करनेको नहीं रहता अर्थात् वह सब कर्म कर चुका होता है ॥ १७ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

इसलिये उसे कर्म करनेसे और न करनेसे कोई लाभ नहीं होता तथा सब प्राणियोंमें उसे किसी प्राणीका आश्रय भी नहीं लेना पडता ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

अतः तुम सदा मनसे फलासक्तिकी कामना छोडकर करने योग्य जो कर्म हैं, उनको अवश्य करते रहो; क्योंकि जो पुरुष फलकी कामना त्यागकर कर्म करता है, उसको परम गति प्राप्त होती है ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

जनक आदि महात्माओंने निश्चय करके कर्मके द्वारा ही सम्पूर्ण रूपसे सिद्धि प्राप्त की थी। इसी प्रकार लोकसंग्रह पर दृष्टि रखकर भी तुम्हें कर्म करना उचित है ॥ २० ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

श्रेष्ठ लोग जिस कर्मको करते हैं, उसी कर्मको साधारण मनुष्य भी करने लगते हैं, श्रेष्ठ पुरुष जिस शास्त्रको प्रमाण मानकर चलते हैं, उसीके अनुसार सब लोग चलते हैं ॥ २१ ॥

×

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

अर्जुन ! मुझको तीनों लोकोंमें कोई भी कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि मुझे कोई भी ऐसा पदार्थ अप्राप्त नहीं है, कि जो मुझे कार्य करके प्राप्त करना हो । तो भी मैं कर्म करनेमें लगा ही रहता हूं ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! जो मैं आलस्य त्यागकर कर्म न करूं तो दूसरे भी सभी लोग कर्मको छोडकर मेरी राहपर चलने लगेंगे ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

यदि मैं कर्म न करूं, तो ये सब लोग कर्महीन होकर धर्मके लोप होनेसे नष्ट हो जायँगे । इस प्रकार मैं उन प्रजाओंमें वर्णसंकरका कारण बनूं और इस प्रकार इन प्रजाओंका नाशक भी बनूं ॥ २४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

हे भारत ! जिस प्रकार अज्ञानी मनुष्य कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं; वैसे ही ज्ञानी पुरुषको भी लोकसंग्रहके निमित्त अर्थात् अज्ञ लोगोंको उपदेश देनेके लिये कर्मके फलकी आशा त्यागकर कर्मको करना चाहिए ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

जो अज्ञानी मनुष्य कर्ममें आसक्त हैं, उन लोगोंकी बुद्धिमें दूसरा भाव उत्पन्न करना विद्वान्को कदापि उचित नहीं है; बल्कि स्वयं योगयुक्त होकर सब कर्मोंका आचरण करे, और लोगोंसे भी खुशीसे करावे ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

सब कर्म प्रकृतिके गुण सत्त्व, रज, तमके द्वारा ही किए या करवाये जाते हैं, पर अहंकारसे विमूढ हुई आत्मावाला पुरुष इन सब कर्मोंका कर्त्ता अपने ही को मानता है ॥ २७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

हे महाबाहो ! तत्त्ववित् लोग प्रकृतिके गुण और कर्मोंसे आत्माको पृथक् जानकर यह समझते हैं, 'गुणोंका यह आपसमें खेल है' ऐसा विचार करके उसमें आसक्त नहीं होते ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

जो लोग प्रकृतिके सत्त्वादि गुणोंसे मोहित होकर गुण और कर्मोंमें फंसे रहते हैं उन अल्पज्ञ, मन्दबुद्धि लोगोंको ज्ञानी जन विचलित न करें [अर्थात् "इन कर्मोंमें क्या रखा है, कर्म तो बन्धनकारक हैं, अतः इन्हें मत करो" ऐसी बातें कहकर उन्हें कर्मोंसे विचलित न करें ।] ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

ऐसी अवस्थामें तुम अध्यात्म-ज्ञान द्वारा सब कर्मोंको मुझे अर्पण करके निष्काम होकर 'यह कर्म मेरा फलसाधक है' इस प्रकारकी ममता, आशा और शोकसे रहित होकर युद्ध करो ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥

जो लोग मेरी इस संमतिपर असूयारहित और श्रद्धावान् होकर मेरे इस मतका नित्य अनुष्ठान करते हैं, वे लोग धीरे धीरे कर्म करते हुए कर्मोंसे मुक्त होजाते हैं ॥ ३१ ॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

पर जो मेरे इस मतकी निन्दा करते हैं, और इसका अनुष्ठान नहीं करते, उनको दुष्टबुद्धि, सर्वज्ञानसे मूढ तथा नष्ट हुआ ही तुम समझो ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

ज्ञानी मनुष्य भी अपनी प्रकृतिके अनुकूल ही कर्म करनेकी चेष्टा करते हैं । जब कि प्राणिमात्र ही प्रकृतिके अनुवर्ती हैं, तब ऐसे स्थलमें निग्रह (जबर्दस्ती) उन लोगोंका क्या कर सकती है ? ॥ ३३ ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

बल्कि हरएक इन्द्रियोंके अपने अपने विषय अनुकूल होनेसे उसमें अनुराग और प्रतिकूल होनेसे उसमें द्वेष उत्पन्न होता है, परन्तु ऐसा होनेपर भी राग द्वेष आदिके वशमें होना उचित नहीं है, क्योंकि राग और द्वेष मोक्षकी इच्छा करने वाले पुरुषके लिए शत्रु हैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

सम्पूर्ण रूपसे अनुष्ठित पराये धर्मका अनुष्ठान करनेकी अपेक्षा अपना धर्म अङ्गहीन भी हो, तो भी उत्तम है, क्योंकि अपने धर्ममें मरण भी श्रेष्ठ है, अर्थात् अपने धर्ममें मर जाना भी इस लोकमें यश और स्वर्गसाधनका मूल है, परन्तु दूसरेका धर्म उत्तमतासे भी ग्रहण किया जावे, तो भी इस लोकमें अपयश और मरनेसे परलोकमें नरकसाधनका मूल होता है ॥३५॥

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

अर्जुन बोले– हे वृष्णिनन्दन ! पुरुष बिना इच्छाके भी किसकी प्रेरणासे पापकर्ममें नियुक्त होता है ? जैसे कोई बलपूर्वक उसको पापकर्म करनेमें नियुक्त कर रहा हो । इसमें पुरुष किसकी इच्छासे प्रेरित होकर पापाचरण करता है ? ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

श्री भगवान् बोले– हे अर्जुन ! वह महापापी, अत्यधिक खानेवाले और रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाले काम और क्रोध ही हैं, इन्हें ही अपना शत्रु समझो ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

जैसे धूंएसे आग, मलसे दर्पण और जरायु (झिल्ली) से गर्भ ढका रहता है, वैसे ही कामसे यह सब ढका हुआ रहता है ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! वह काम कभी तृप्त न होनेवाले अग्निके समान है और ज्ञानी लोगोंका नित्य वैरी है; वह ज्ञानको ढक देता है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

दस इन्द्रियें, मन और बुद्धिको इस कामके रहनेका स्थान कहते हैं; इनके आश्रयसे ज्ञानको ढककर यह काम मनुष्यको मोहित करता है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

हे भरतर्षभ ! इसलिये सबसे पहले तुम इन इन्द्रियोंका दमन करके, ज्ञान विज्ञानके नाश करनेवाले महापापी कामको जीत लो ॥ ४१ ॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

इन्द्रियां शरीरको धारण करती हैं, इससे शरीरसे इन्द्रिय सूक्ष्म और उसकी प्रकाशक हैं । इस कारण इन्द्रियोंको पण्डितोंने शरीरसे श्रेष्ठ कहा है । मन इन्द्रियोंको उनके विषयमें प्रवृत्त और निवृत्त करता है; इस कारण इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है; मनसे बुद्धि और बुद्धिसे परे साक्षी रूपसे जो अवस्थित है, वही बुद्धिसे श्रेष्ठ है; और उसीको आत्मा कहते हैं ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्याऽत्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ९२१ ॥

हे महाबाहो ! इस प्रकार जो बुद्धिसे परे है उस आत्माको जानकर अपनी आत्माको संयत करके, इस दुरासद कामरूपी शत्रुको तुम मार डालो ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पच्चीसवां अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ ९२१ ॥

: २६ :

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे शत्रुनाशन अर्जुन ! इस अव्यय, त्रिकालमें अबाधित नाशरहित कर्मयोगका उपदेश मैंने पहले पहल विवस्वान् आदित्य सूर्यको दिया था, सूर्यने अपने पुत्र मनुको दिया और वैवस्वत मनुने राजा इक्ष्वाकुको दिया था ॥ १ ॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ २ ॥

इसी प्रकार परम्परासे प्राप्त होते हुए इस कर्मयोगको राजर्षि जानते चले आए। बहुत दिन बीत जानेसे अब यह कर्मयोग नष्ट हो गया है ॥ २ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

उसी पुराने उत्तम रहस्यमय कर्मयोगको मैंने आज तुम्हें अपना भक्त तथा सखा जानकर कहा है ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

अर्जुन बोले– विवस्वान् सूर्यका जन्म प्रथम, और आपका जन्म इस कालमें हुआ है; तब मैं किस प्रकारसे जानूं कि आपने पहले विवस्वान् आदित्यको इस योगका उपदेश दिया था ? ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे शत्रुओंके नाश करनेवाले अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे बहुतेरे जन्म बीत गये, मैं उन बीते हुए सब जन्मोंको जानता हूं; परन्तु तुम उन बीते हुए जन्मोंको नहीं जानते ॥ ५ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

मैं जन्म – मरण रहित अविनाशी और सब प्राणियोंका ईश्वर होकर भी अपनी प्रकृतिका अवलम्बन करके अपनी मायासे जन्म धारण करता हूं ॥ ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है; तब तब मैं स्वयं ही जन्म (अवतार) लिया करता हूं ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

साधुओंके क्लेश दूर करनेके निमित्त और अधर्मी, दुष्कर्मी, दुष्टलोगोंका दमन करनेके लिए तथा धर्मकी पुनः स्थापना करनेके लिये मैं युग युगमें इच्छानुसार अवतार लेता हूं ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो मेरे इन अलौकिक जन्म कर्मको यथार्थरूपसे जानता है, उसे शरीर छोडने पर फिर जन्म नहीं लेना पडता; वरन् वह मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

बहुतसे पुरुष राग, द्वेष और क्रोधको जीतकर मुझमें निष्ठा और मेरा ही आसरा लेकर ज्ञान-रूप तपसे शुद्ध होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! जो जिस प्रकारसे मेरा भजन वा सेवा करता है, मैं उसीके अनुसार उसको वैसा ही फल देनेका यत्न करता हूं; क्योंकि वह चाहे कैसा ही क्यों न हो; किन्तु मेरे ही मार्गमें आकर मिलता है ॥ ११ ॥

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

इस मर्त्यलोकमें प्रायः मनुष्य कर्मके फलकी इच्छासे ही देवताओंके निमित्त यज्ञ किया करते हैं, क्योंकि कर्मसे उत्पन्न हुआ फल उनको शीघ्र ही मिलता है ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

गुण कर्मके विभागसे मैंने चारों वर्णोंको उत्पन्न किया है । मैं इन सब कार्योंको करनेवाला हूं, तो भी तुम मुझे न करनेवाला अकर्ता ही समझो ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥

कर्मोंको करते हुए न मेरी फलभोगकी कुछ इच्छा है और न ये कर्म ही मुझमें लिपटते हैं। जो मनुष्य मुझको इसी भांति जानता है; वह कर्मके बन्धनमें नहीं फंसता ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

ऐसा ही समझकर प्राचीनकालमें मोक्षको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले महात्मा ज्ञानी कर्म करते थे; इससे तुम भी पूर्व पुरुषोंके द्वारा किये गए अति प्राचीन कर्मका अनुष्ठान करो ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६ ॥

कैसा कर्म करना चाहिए और किस प्रकारका कर्म नहीं करना चाहिये, इस विषयमें ज्ञानी लोग भी मोहित हो जाते हैं। इस कारण जिस तरहके कर्म करनेसे तुम अशुभसे मुक्त होओगे, वह कर्म मैं कहता हूं, तुम सुनो ॥ १६ ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

कर्मका तत्त्व भी जानना चाहिए और विपरीत कर्मका तत्त्व भी जान लेना चाहिये । तथा अकर्म (कर्म न करना) क्या है यह भी समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि कर्मोंकी गति जानना बहुत कठिन है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

जो कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्म देखता है वह पुरुष सब मनुष्योंमें ज्ञानी और वही युक्त अर्थात् योगयुक्त तथा समस्त कर्मोंको करनेवाला होता है ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥

जिसके सभी समारंभ अर्थात् उद्योग कर्मफल–प्राप्तिकी अभिलाषाओंसे रहित होते हैं, और ज्ञानाग्निसे जिसके सम्पूर्ण कर्म भस्म हो जाते हैं ज्ञानियोंने ऐसे ही मनुष्यको पण्डित कहा है ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २० ॥

जो कर्मके फलकी आसक्तिको छोडकर नित्य ही तृप्त रहता है और किसीका आसरा नहीं लेता वह कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेपर भी कुछ कर्म नहीं करता ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

जो वासनासे रहित है, जिसके चित्त और देह स्वाधीन हैं, और जो सर्वसंगसे मुक्त होकर केवल शरीरसे कर्म करता है, वह दोषी नहीं होता ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

जो विना मांगे हुए ही यथालाभमें सन्तुष्ट रहे, जो सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख, वैर–प्रीति आदिको सहन करनेवाला हो; जिसमें वैरभाव न हो; जिसे लाभ तथा नुकसानमें हर्ष और विषाद न हो; वह कर्म करके भी बन्धनमें नहीं फंसता ॥ २२ ॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

जो आसक्तिरहित और राग–द्वेषसे मुक्त है, जो ज्ञानमें चित्त स्थिर किए हुए है, ऐसा मनुष्य केवल यज्ञके निमित्त यदि कर्माचरण करता है, तो उसके समग्र कर्मोंका लय हो जाता है ॥ २३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

अर्पण करनेकी क्रिया ब्रह्म है, अर्पण करनेका द्रव्य जिसे हवि कहते हैं, वह भी ब्रह्म है, अग्निही ब्रह्म है और उसमें जो हवन करता है वह भी ब्रह्म है; इस प्रकार कर्मात्मक ब्रह्ममें जिसके चित्तकी एकाग्रता है, इसको मिलनेवाला फल भी ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ भी नहीं ॥ २४ ॥

देवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

कुछ कर्मयोगी ब्रह्मबुद्धिके बदले इन्द्र, वरुण आदि देवताओंके उद्देश्यसे यज्ञ करते हैं; और कुछ दूसरे लोग पहिले कहे हुए ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञ करके यज्ञहीका होम करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

और कुछ लोग नाक कान इत्यादि इन्द्रियोंका संयमरूपी अग्निमें हवन करते हैं। कुछ लोग शब्द, स्पर्श आदि विषयोंका इन्द्रियरूपी अग्निमें हवन करते हैं ॥ २६ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

कुछ तो पांच ज्ञान इन्द्रियें, पांच कर्म इन्द्रियें, प्राण, अपान, श्वास, प्रश्वास आदिके सब कर्मोंका ज्ञानसे जलता हुआ जो आत्मसंयम योगरूपी अग्नि है उसमें होम करते हैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

कोई कोई तीव्रव्रत करनेवाले यति द्रव्यका दानरूप यज्ञ करते हैं; कोई कोई यत्न करनेवाले कठोर व्रती तपस्यारूपी यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; कोई कोई चित्तकी वृत्तिको निरोध (रोक) करके समाधिरूपी यज्ञ करते हैं; कोई वेदाध्ययनरूपी यज्ञ करते हैं; कोई कोई ज्ञानरूपी यज्ञ करते हैं ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

कोई प्राणवायुका अपानवायुमें होम कर पूरक नामक प्राणायाम करते हैं, कोई अपानवायुका प्राण-वायुमें होम करके रेचक प्राणायाम करते हैं; कोई प्राण और अपान-वायुकी गति रोककर कुम्भक प्राणायाम करते हैं; ॥ २९ ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

और कोई कोई मित आहार करने वाले होकर प्राणप्रभृति वायुमें प्राणवायुका ही हवन किया करते हैं, अर्थात् वे लोग प्राण और अपान वायु आदिमेंसे जिसकी गति रोक देते हैं, उसीमें अन्य वायु लीन हो जाता है— परन्तु ये सभी यज्ञ करनेवाले तथा जाननेवाले हैं; इन लोगोंके ऊपर कहे हुए सभी यज्ञोंसे पापोंका नाश होता रहता है ॥ ३० ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

वे यज्ञके कर्मोंको समाप्त करके उसके अवशिष्ट अमृतसंज्ञक अन्नका भोजन करते हैं, ऐसे ही ज्ञानी ज्ञानसे सनातन ब्रह्मको पाते हैं । हे कुरुसत्तम ! जो इन ऊपर कहे हुए यज्ञोंमेंसे किसी भी यज्ञका अनुष्ठान नहीं करते, उनके लिये यह थोडे सुखसे युक्त मनुष्यलोक भी नहीं रहता, तब बहुत सुखोंसे भरा हुआ स्वर्ग लोग कैसे मिल सकेगा ? ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

इसी प्रकारसे नाना प्रकारके यज्ञ जो वेदमें कहे हुए हैं, उन सबको ही कर्मोंसे सिद्ध होनेवाला जानना चाहिये, ऐसा ही जानकर तुम इस संसारसे मुक्त होओगे ॥ ३२ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तपः ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

हे परन्तप पृथा-पुत्र ! द्रव्य-मय देवता आदिके यज्ञोंके उद्देश्यसे किए जानेवाले यज्ञकी अपेक्षा ज्ञान-यज्ञ ही उत्तम है; क्योंकि सभी कर्म ज्ञानमें समाप्त हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

तुम पूरे सब बातोंके जाननेवाले सम्यक्‌दर्शी, महात्मा, ज्ञानीके पास जाकर भक्ति तथा श्रद्धासे नमस्कार और उनकी सेवा करके प्रश्नके द्वारा ज्ञान प्राप्त करो; वे लोग तुम्हें ज्ञानका उपदेश देंगे ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

हे पाण्डुनन्दन ! उस ज्ञानको पाकर फिर तुम ऐसे मोहमें नहीं पडोगे, समस्त प्राणियोंको अपनी आत्मामें और मुझमें स्थित हुआ देखोगे ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥

यदि तुम सम्पूर्ण पापियोंकी अपेक्षा भी अधिक पापी होओगे, तो भी ज्ञानरूपी नौकापर चढकर पापरूपी समुद्रके पार हो जाओगे ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! जिस प्रकार जलती हुई अग्नि लकाडियोंको भस्म कर देती है, उसी भांति ज्ञानरूपी अग्नि भी सब कर्मोंको भस्मीभूत कर देती है ॥ ३७ ॥

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ ३८ ॥

इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वह आत्मज्ञान कर्मयोगमें सिद्ध मनुष्यको समयानुसार क्रमसे स्वयं अनायास ही प्राप्त हो जाता है ॥ ३८ ॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

संयमसे युक्त, जितेन्द्रिय, श्रद्धावान् और उसीमें निष्ठा रखनेवाले लोग ही ज्ञानको पासकते हैं और इस ज्ञानको प्राप्त करके मनुष्य शीघ्र ही परम शान्तिपद पाता है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

परन्तु ज्ञानरहित, श्रद्धासे हीन और संशयसे युक्त मनुष्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, विशेष करके संशयग्रस्त मनुष्य तो न इस लोकमें ही सुख पाता है और न परलोकमें ही ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ ४१ ॥

हे धनञ्जय ! जिसने कर्मयोगके आश्रयसे कर्म अर्थात् कर्मबंधन त्याग दिया है और ज्ञानसे जिसके सब सन्देह दूर हो गये हैं ऐसे उस आत्मज्ञानी पुरुषको वे सब कर्म बन्धनमें नहीं फंसा सकते ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ९६३ ॥

इससे, हे भारत ! तुम अज्ञानसे उत्पन्न हुए, हृदयमें वास करनेवाले इस संशयको ज्ञानरूपी खड्गसे काटकर कर्म-योगका आसरा लेकर युद्ध करनेके निमित्त उठकर खडे होजाओ ॥४२॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ ९६३ ॥

: २७ :

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे कृष्ण ! तुम एकबार कर्म संन्यासको भी कहते हो, और दूसरी बार कर्मोंके योगको भी कहते हो, इन दोनोंमें जो एक उत्तम हो, उसीको निश्चय करके मुझसे कहो ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

श्री भगवान् बोले— कर्मका संन्यास और कर्मयोग दोनों ही मोक्षसाधनके हेतु हैं, किन्तु इन दोनोंमेंसे कर्म-त्यागसे कर्मयोगकी योग्यता विशेष है ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

हे महाबाहो ! जो सुख, दुःख तथा उसके साधनके निमित्त द्वेष और आकांक्षा नहीं करता; उसे कर्ममें प्रवृत्त होनेपर भी नित्य संन्यासी ही जानना चाहिये । क्योंकि वह सुख–दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित होता है, अतः विना आयास ही कर्मोंके सब बन्धोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

अज्ञानी लोग सांख्य (कर्मसंन्यास) और योग (कर्मयोग) इन दोनों विषयोंको अलग अलग कहते हैं; किन्तु पण्डित लोग ऐसा नहीं कहते; क्योंकि इन दोनोंमेंसे एकका अच्छी प्रकार अनुष्ठान करनेहीसे इन दोनोंका जो एक ही फल है, वह मिलता है ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

ज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले पुरुष जिस साक्षात् मोक्षपदको पाते हैं; निष्काम (फलकी इच्छा त्यागकर) कर्म करनेवाले कर्मयोगी भी ज्ञानसे उसी मोक्ष-पदको पाते हैं । इसलिए कर्म-संन्यास और कर्मयोग इन दोनोंको जो मनुष्य एक ही जानता है, उसीको यथार्थदर्शी कहना चाहिये ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

हे महाभुज ! कर्मयोगको छोडकर संन्यासका आचरण करना दुःखका निमित्त होता है; परन्तु कर्मयोगसे युक्त मुनि शीघ्र ही ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

वह कर्मयोगयुक्त निर्मल चित्त होकर शरीर और आत्माको जीतकर तथा इन्द्रियोंको अपने वशमें करके सब प्राणियोंको आत्मा–स्वरूप ही जानता है । ऐसा मनुष्य स्वाभाविक वा लौकिक कर्मोंको करके भी उनमें नहीं फंसता ॥ ७ ॥

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥

योगयुक्त मनुष्य तत्त्वज्ञानी होकर देखना, सुनना, छूना, सूंघना, भोजन करना, आना, जाना, सोना, श्वास लेना, श्वासका छोडना, वचन बोलना, मल-मूत्रको त्यागना, किसी वस्तुका ग्रहण करना, पलक खोलना और बन्द करना आदि सब कर्मोंको करता हुआ भी यही समझता है, कि इन्द्रियां सब अपने अपने विषयमें प्रवृत्त हैं, मैं कुछ नहीं करता ॥८-९॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

जो फलासक्तिको त्यागकर कर्मफल ब्रह्मको समर्पित करते हुए कर्म करता है वह जलसे कमलके पत्तेकी भांति पापसे लिप्त नहीं होता ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

कर्मयोगी फलकी आसक्ति छोडकर आत्मशुद्धिके लिए केवल शरीरसे, केवल मनसे, केवल बुद्धिसे तथा केवल इन्द्रियोंसे कर्म करता है ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥

जो युक्त अर्थात् कर्मयोगसे युक्त हो गया, वह कर्मके फलोंको त्याग कर अन्तकी पूर्ण शान्तिको पाता है और जो योगयुक्त नहीं हुआ वह कामसे अर्थात् वासनासे फलके विषयमें आसक्त होकर कर्म करनेसे पाप–पुण्यसे बद्ध हो जाता है ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

सब कर्मोंका मनसे त्याग करके जितेन्द्रिय देहवान् पुरुष नौ द्वारोंके इस देहरूपी नगरमें कुछ न करता और कराता हुआ आनंदसे रहता है ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

परमेश्वरने जीवोंके कर्तृत्वको उनके कर्म वा उनको प्राप्त होनेवाले फलके संयोगको नहीं उत्पन्न किया; स्वभाव अर्थात् प्रकृति ही कर्ममें प्रवृत्त होती है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥

सर्वव्यापक परमेश्वर किसीके पाप या पुण्यको ग्रहण नहीं करता । अपितु जब अज्ञानसे ज्ञान छिप जाता है, तब सब जीव मोहमें पड जाते हैं ॥ १५ ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

परंतु ज्ञानसे जिनका अपना अज्ञान नष्ट हो गया होता है; उनका वही ज्ञान, जिस प्रकार सूर्य सब वस्तुओंको प्रकाशित करता है, उसी भांति परमार्थतत्त्वको प्रकाशित करता है ॥ १६ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

जिनकी परमार्थतत्त्व विषयकी बुद्धि, प्रयत्न और निष्ठा है और जो परमार्थतत्त्वको ही परम आश्रयका स्थान मानते हैं, उनको आत्मज्ञान मिलता है, जिससे समस्त दोष धुल जाते हैं; और वे फिर जन्म नहीं लेते ॥ १७ ॥

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

वही ज्ञानी पुरुष विद्या, विनयसे भरे हुए ब्राह्मण, चाण्डाल, हाथी, गउ और कुत्तोंमें समदर्शी होते हैं ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥

जिनका मन समान भावसे स्थिर हो जाता है, वह इसी जन्ममें संसारको जीत लेते हैं; क्योंकि ब्रह्म भी समान भावसे युक्त और निर्दोष है; इसलिए समदर्शी ज्ञानी जन ब्रह्मभावसे युक्त होकर ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं ॥ १९ ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

जो कोई अभिलषित प्रिय वस्तुको पाकर सन्तुष्ट नहीं होता और अप्रिय चीजोंको पाकर दुःखी नहीं होता, तथा मोहके निवृत्त होनेसे जिसकी बुद्धि स्थिर होजाती है उसी ब्रह्मवेत्ताको ब्रह्ममें स्थित हुआ समझो ॥ २० ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

जो बाह्यविषयोंमें अनासक्त चित्तवाला होकर अन्तःकरणके उपशमसे आत्मिक सात्त्विक सुख पाता है; और जिसकी आत्मा ब्रह्मके साथ ऐक्यभाव धारण कर लेती है, उसे अक्षय सुख (मोक्ष) मिलता है ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! इन्द्रिय और विषयोंके संयोगसे जितने भोग होते हैं, वे सभी दुःखके कारण होते हैं; उनका आदि भी होता है और अन्त भी । अतः ज्ञानी उन सब भोगोंमें अनुरक्त नहीं होते ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

शरीरत्यागके पूर्व अर्थात् मरणपर्यन्त जो काम और क्रोधसे उत्पन्न वेगको सहनेमें समर्थ होता है, वही योगी और वही सुखी है ॥ २३ ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

जो इस प्रकार बाह्य सुखोंकी ही अपेक्षा न कर अन्तः सुखी अर्थात् अन्तःकरणमें ही सुखी हो जाता है, जो अपने आपमें ही आराम पाने लग जाता है, और ऐसे ही जिसे यह अंतः-प्रकाश मिल जाता है, वही योगी ब्रह्ममें स्थित होकर ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है ॥ २४ ॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

जिन ऋषियोंकी द्वन्द्वबुद्धि नष्ट हो गई है, तथा जिनके पाप आदिक दोषोंका भी नाश हो चुका है, तथा जो आत्मसंयमी और सब भूतोंके हित करनेमें तत्पर हैं, वे ब्रह्मनिर्वाणको पाते हैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

काम क्रोधसे मुक्त हुए, आत्मसंयमी आत्मतत्त्व जाननेवाले यतियोंको हर तरहसे ब्रह्मनिर्वाण-रूप मोक्ष मिल जाता है ॥ २६ ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

जो लोग संन्यासयुक्त और मोक्षपरायण होकर इच्छा, भय और क्रोधका त्याग करते हैं, तथा इन्द्रिय, मन और बुद्धिका संयम करके तथा रूप, रस आदि बाह्य विषयोंको बाहर करके (अर्थात् जिनसे वे भीतर प्रवेश न कर सकें) उनका चिन्तन छोडकर, नेत्रको अर्द्ध निमीलित करके भ्रूमध्य (नासिकाके अग्रभाग) में दृष्टिको लगाते हैं; और प्राण, अपान, ये दोनों वायु जिस प्रकार नासिकाके भीतर ही तक आवें और जायें, अर्थात् धीरे धीरे श्वास समानरूपसे युक्त हो जावे, इसी भांतिसे सर्वदा स्थित करते हैं; उन्हें मोक्ष मिलता है ॥ २७–२८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ९९२ ॥

यज्ञ और तपस्याका भोक्ता और सब लोगोंका ईश्वर तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका निरपेक्ष उपकारी जो मैं हूं, उस मुझे जाननेसे शान्ति प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ ९९२ ॥

: २८ :

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– कर्मफलका आश्रय छोडकर (अर्थात् मनमें फलाशाको धारण न करके) जो अपने विहित कर्त्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी और वही कर्मयोगी है । निरग्नि अर्थात् अग्निहोत्र आदि कर्मोंका त्याग करनेवाला तथा अक्रिय अर्थात् कोई भी कर्म न करके बैठनेवाला मनुष्य सच्चा संन्यासी और योगी नहीं है ॥ १ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

हे पाण्डव ! जिसे संन्यास कहते हैं, उसीको कर्मयोग समझो । क्योंकि संकल्प अर्थात् फलाशाका त्याग किये विना कोई भी कर्मयोगी नहीं होता ॥ २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

योगारूढ होनेकी इच्छा रखनेवाले मुनिके लिये कर्मको शमका कारण अर्थात् साधन कहा गया है; और उसी पुरुषके योगारूढ अर्थात् पूर्ण योगी हो जानेपर उसके लिये आगे शम कर्मका कारण हो जाता है ॥ ३ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

क्योंकि जब वह इन्द्रियोंके शब्द-स्पर्श आदि विषयोंमें और कर्मोंमें आसक्त नहीं होता तथा सब सङ्कल्प अर्थात् फलाशाका त्याग करता है, तब वह योगारूढ कहा जाता है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

मनुष्य आप ही अपनी आत्माका उद्धार करे । अपने आपको कभी भी गिरने न दे । क्योंकि प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु या स्वयं ही अपना शत्रु होता है ॥ ५ ॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

जिसने अपने आपको जीत लिया, वह स्वयं अपना बन्धु होता है; परन्तु जो अपने आपको नहीं जीतता, वह स्वयं अपने साथ शत्रुके समान वर्ताव करता है ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानावमानयोः ॥ ७ ॥

जिसने अपनी आत्मा अर्थात् अन्तःकरणको जीत लिया है, और जो शान्त हो गया है, तथा जो शीत–उष्ण, सुख-दुःख और मान-अपमानमें समाहित अर्थात् सम एवं स्थिर रहता है । उसके ज्ञानमें परमात्मा रहते हैं ॥ ७ ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ८ ॥

जिसकी आत्मा ज्ञान और विज्ञान अर्थात् विविध ज्ञानसे तृप्त हो जाय, जो अपनी इन्द्रियोंको जीत ले, जो कूटस्थ अर्थात् मूलमें जा पहुँचे और मिट्टी, पत्थर तथा सोनेको समान रूपसे मानने लगे, उसी कर्मयोगी पुरुषको 'युक्त' अर्थात् सिद्धावस्थाको पहुँचा हुआ कहते हैं ॥८॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष करने योग्य, बान्धव, सदाचारी, और दुष्ट-लोगोंके विषयमें भी जिसकी बुद्धि सम हो गई हो, वही पुरुष सबसे योग्य है ॥ ९ ॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

योगी अर्थात् कर्मयोगी एकान्तमें अकेला रहकर चित्त और आत्माका संयम करे, किसी भी काम्य वासनाको छोडकर, परिग्रह अर्थात् पाश छोड करके नित्य अपने योगमें लगा रहे ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

योगाभ्यासी पुरुष पवित्र स्थानपर अपना स्थिर आसन लगा कर, जो कि न बहुत ऊँचा हो और न नीचा, तथा उस पर पहले दर्भ, फिर मृगछाला और फिर वस्त्र बिछावे ॥ ११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

वहां मनको एकाग्र कर चित्त और इंद्रियोंके व्यापारको रोककर आत्मशुद्धिके लिये आसन पर बैठकर योगका अभ्यास करे ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

काय अर्थात् शरीरका मध्यभाग, शिर और गर्दनको सम करके अर्थात् सीधी खडी रेखामें अचल करके, स्थिर होता हुआ, दिशाओंको यानी इधर उधर न देखे; और अपनी नाकके अग्रभागपर दृष्टि एकाग्र करे ॥ १३ ॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

निर्भय हो, शान्त अन्तःकरणसे ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित होकर तथा मनका संयम करके, मुझमें ही चित्त लगाकर, मत्परायण होता हुआ योगी हो जाय ॥ १४ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

इस प्रकार सदा अपना योगाभ्यास जारी रखनेसे मन स्वाधीन होता है, और ऐसे स्वाधीन-चित्तवाले (कर्म) योगीको मुझमें रहनेवाली और अन्तमें निर्वाण-प्रद अर्थात् मेरे स्वरूपमें लीन कर देनेवाली शान्ति प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! अतिशय भोजन करनेवाले, या बिलकुल न खानेवाले और अत्यंत सोनेवाले अथवा जागरण करनेवालेको (यह) योग सिद्ध नहीं होता ॥ १६ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

जिसका आहार विहार नियत है, कर्मोंका आचरण नियमित है और जिसका सोना जागना परिमित है, उसको (यह) योग दुःखघातक अर्थात् सुखावह सिद्ध होता है ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

जब संयत हुआ मन आत्मामें ही स्थिर हो जाता है, और संपूर्ण उपभोगोंके प्रति वह निस्पृह हो जाता है तब कहते हैं, कि वह योगी हो गया ॥ १८ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

वायुसे रहित स्थानमें रखे हुए दीपककी ज्योति जैसी अचल होती है, वही उपमा चित्तको संयत करके अपने योगाभ्यासमें लगे हुए योगीको दी जाती है ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २० ॥

योगानुष्ठानसे निरोधको प्राप्त हुआ चित्त जहाँ रम जाता है, और जहाँ स्वयं आत्माको देखकर आत्मामें ही सन्तुष्ट हो रहता है ॥ २० ॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

जहाँ (केवल) बुद्धिगम्य और इन्द्रियोंके लिए अगोचर अत्यन्त सुखका उसे अनुभव होता है और जहाँ वह (एक बार) स्थिर हुआ फिर तत्त्वसे कभी भी विचलित नहीं होता ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

ऐसे ही जिस स्थितिको प्राप्त करनेपर उसकी अपेक्षा दूसरा कोई भी लाभ उसे अधिक नहीं जँचता, और जहाँ स्थिर होनेसे कोई बडा भारी दुःख भी (उसको) वहाँसे विचलित नहीं कर सकता ॥ २२ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

उस दुःखके संयोगसे वियोगको योग अर्थात् 'योग' नामकी स्थिति कहते हैं; और इस 'योग' का आचरण विषादरहित चित्तसे निश्चयसे करना चाहिए ॥ २३ ॥

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४ ॥

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सब कामनाओंका निःशेष रूपसे त्याग करके मनसे ही सब इन्द्रियोंका चारों ओरसे संयम करे ॥ २४ ॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ २५ ॥

धैर्ययुक्त बुद्धिसे धीरे-धीरे शान्त हो जाये, फिर मनको आत्मामें स्थिर करके मनसे किसीका भी चिंतन न करे ॥ २५ ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

इस रीतिसे धारणा करनेसे भी यह चञ्चल और अस्थिर मन अपनी स्वाभाविक चंचलतासे जिन जिन विषयोंमें जाता है, वहां वहांसे रोक कर उसको आत्मा ही में लगाना चाहिये ॥ २६ ॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार शान्त चित्त, रजसे रहित, निर्दोष और ब्रह्मभूत कर्मयोगीको उत्तम सुख प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

इस रीतिसे निरन्तर अपना योगाभ्यास करनेवाला (कर्म) योगी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्म-संयोगसे प्राप्त होनेवाले अत्यन्त सुखका आनन्दसे उपभोग करता है ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

इस प्रकार जिसकी आत्मा योगयुक्त हो गयी है, वह मनुष्य समदृष्टि होता है और उसे सर्वत्र ऐसा दीख पडने लगता है, कि मैं सब प्राणियोंमें हूं और सब प्राणी मुझमें हैं ॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

जो मुझ परमेश्वर—परमात्माको सब स्थानोंमें तथा सबको मुझमें देखता है, उससे मैं कभी अलग नहीं होता और न वही मुझसे कभी दूर होता है ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

जो कभी एकत्व बुद्धि अर्थात् सर्वभूतात्मैक्य-बुद्धिको मनमें रखकर सब प्राणियोंमें रहनेवाले मुझ परमेश्वरको भजता है, वह कर्मयोगी सब प्रकारसे वर्तन करता हुआ भी मुझमें रहता है।३१।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! सुख हो या दुःख अपने समान दूसरेको भी होता है, जो ऐसी आत्मौपम्य दृष्टिसे सर्वत्र देखता है, वह कर्मयोगी परम अर्थात् उत्कृष्ट माना जाता है ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥ ३३ ॥

अर्जुन बोले— हे मधुसूदन ! साम्य अथवा साम्यबुद्धिसे प्राप्त होनेवाला जो वह कर्म-योग आपने मुझे बतलाया है, मनकी चञ्चलताके कारण उस योगके बहुत समयतक ठहरनेकी संभावना मुझे मालूम नहीं होती ॥ ३३ ॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

क्योंकि, हे कृष्ण ! यह मन स्वभावसेही चंचल, हठीला, बलवान् और दृढ है। वायुके समान अर्थात् हवाकी गठरी बांधनेके समान इसका निग्रह करना मुझे अत्यन्त कठिन दीखता है ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

श्रीभगवान् बोले— हे महाबाहो अर्जुन ! इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि मन चञ्चल है, परन्तु हे कौन्तेय ! अभ्यास और वैराग्यसे वह स्वाधीन किया जा सकता है ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥

मेरे मतमें, जिसका मन अभ्यास और वैराग्यसे स्वाधीन नहीं हो पाया है, उसको इस साम्य-बुद्धिरूप योगका प्राप्त होना बहुत कठिन है, अन्तःकरणको अभ्यास और वैराग्यसे स्वाधीन रखकर प्रयत्न करते रहनेपर उपायसे इस योगको प्राप्त करना सम्भव है ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७ ॥

अर्जुन बोले– हे कृष्ण ! जिस पुरुषमें श्रद्धा तो हो परन्तु प्रकृति–स्वभावसे पूरा प्रयत्न अथवा संयम न होनेके कारण जिसका मन साम्यबुद्धि-रूप कर्मयोगसे विचलित होता है, वह योगसिद्धि न पाकर किस गतिको जा पहुंचता है ? ॥ ३७ ॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो श्रीकृष्ण ! यह पुरुष मोहग्रस्त होकर ब्रह्मप्राप्तिके मार्गमें स्थिर न होनेके कारण दोनों ओरसे भ्रष्ट हो जानेपर छिन्न भिन्न बादलके समान बीचमेंही नष्ट तो नहीं हो जाता ? ॥ ३८ ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! मेरे इस सन्देहको आप निःशेष दूर कर सकते हैं, आपको छोडकर इस संदेहको दूर करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं दीखता ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

श्रीभगवान् बोले– हे पार्थ ! क्या इस लोकमें और क्या परलोकमें, ऐसे पुरुषका विनाश कभी नहीं होता। क्योंकि, हे तात ! कल्याणकारक कर्म करनेवाला कोई भी पुरुष दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

पुण्यकर्मा पुरुषोंको मिलनेवाले स्वर्ग आदि लोकोंको पाकर और वहां बहुत दिनोंतक रहकर फिर यह योगभ्रष्ट पुरुष सदाचारसे युक्त श्रीमान्के घरमें जन्म लेता है ॥ ४१ ॥

अथ वा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

अथवा वह बुद्धिमान् कर्मयोगियोंके ही कुलमें उत्पन्न होता है। योगियोंके कुलमें इसप्रकारका जन्म इस लोकमें बहुत दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

हे कुरुनन्दन ! उसमें अर्थात् इस प्रकार प्राप्त हुए जन्ममें वह पूर्व देहके बुद्धिसंस्कारको पाता है; और वह उससे भूयः अर्थात् अधिक योगसिद्धि पानेका यत्न करता है ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४ ॥

अपने पूर्वजन्मके अभ्याससे ही अवश अर्थात् अपनी इच्छा न रहनेपर भी अपने आपही वह पूर्णसिद्धिकी ओर खिंचा चला जाता है। कर्मयोगकी जिज्ञासा अर्थात् जाननेकी इच्छा जिसे हो गई है, वह भी शब्दब्रह्मके परे चला जाता है ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक उद्योग करते करते पापोंसे शुद्ध होता हुआ कर्मयोगी अनेक जन्मोंके अनन्तर सिद्धि पाकर अन्तमें उत्तम गति पा लेता है ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

तपस्वी लोगोंकी अपेक्षा कर्मयोगी श्रेष्ठ है और ज्ञानी पुरुषोंकी अपेक्षा भी कर्मयोगी श्रेष्ठ है और कर्मकाण्ड करनेवालोंकी अपेक्षा भी कर्मयोगी श्रेष्ठ समझा जाता है; इसलिये, हे अर्जुन ! तुम योगी अर्थात् कर्मयोगी हो ॥ ४६ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ १०३९ ॥

तथापि सब कर्मयोगियोंमें भी मैं उसे ही सबमें उत्तम योगी अर्थात् सिद्ध कर्मयोगी समझता हूं, कि जो मुझमें अन्तःकरण लगाकर श्रद्धासे मुझको भजता है ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ १०३९ ॥

: २९ :

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे पार्थ ! मुझमें मनको लगाकर और मेरे ही आसरेपर कर्मयोगका आचरण करते हुए तुम्हें जिस प्रकारसे या जिस विधिसे मेरा पूर्ण और संशयविरहित ज्ञान होगा, उसे सुनो ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

विज्ञानसमेत इस पूरे ज्ञानको मैं तुमसे कहता हूं, कि जिसके जान लेनेसे इस लोकमें फिर और कुछ भी जानना बाकी नहीं रह जाता ॥ २ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

हजारों मनुष्योंके बीचमें कोई एक सिद्धि पानेका यत्न करता है, और प्रयत्न करनेवाले इन अनेक सिद्ध पुरुषोंमेंसे एकआधको ही मेरा सच्चा ज्ञान हो पाता है ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश (ये पाँच सूक्ष्म भूत), मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ प्रकारोंमें मेरी प्रकृति विभाजित है ॥ ४ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

यह अपरा अर्थात् निम्न श्रेणीकी (प्रकृति) है । हे महाबाहो अर्जुन ! यह जानो कि इससे भिन्न, परा अर्थात् उच्च श्रेणीकी जीवस्वरूप मेरी दूसरी प्रकृति है । जो इस जगत्को धारण करती है ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

तुम यही समझो, कि इन्हीं दोनोंसे सब भूतमात्र उत्पन्न होते हैं । सारे जगत्का प्रभाव अर्थात् उत्पत्ति स्थान और प्रलय अर्थात् अन्त मैं ही हूँ ॥ ६ ॥

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

हे धनंजय ! मुझसे बढकर और कुछ भी नहीं है । जैसे धागेमें मणियां गुथी होती हैं, उसी प्रकारसे मुझमें यह सब गुँथा हुआ है ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

हे कौन्तेय ! मैं ही जलमें रसके रूपमें हूँ, और मैंही चन्द्र-सूर्यमें प्रभाके रूपमें हूँ, सब वेदोंमें प्रणव अर्थात् ॐ कार रूपमें मैं ही हूं, आकाशमें शब्द रूपमें मैं हूँ, और सब पुरुषोंमें पौरुषके रूपमें मैं हूँ ॥ ८ ॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु । ॥ ९ ॥

पृथ्वीमें पुण्यगन्ध अर्थात् सुगन्धि एवं अग्निमें तेज मैं हूँ । सब प्राणियोंकी जीवनशक्ति और तपस्वियोंका तप मैंही हूँ ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

हे पार्थ ! मुझको सब प्राणियोंका सनातन बीज समझो । मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि हूं और तेजस्वियोंका तेज भी हूँ ॥ १० ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

कामवासना और राग अर्थात् विषयासक्ति इन दोनोंसे रहित बलवान् लोगोंका बल मैं हूँ; और हे भरतश्रेष्ठ ! प्राणियोंमें धर्मका अविरोधी काम भी मैं ही हूँ ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

और यह समझो कि जो कुछ सात्त्विक, राजस या तामस भाव अर्थात् पदार्थ हैं, वे सब मुझसे ही हुए हैं; वे मुझमें हैं, परन्तु मैं उनमें नहीं हूँ ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

यह सारा जगत् सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणात्मक भावोंसे अर्थात् पदार्थोंसे मोहित हुआ है, इसलिये यह सारा संसार, इनसे परेके अर्थात् निर्गुण मुझ अव्यय परमेश्वरको नहीं जानता ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥

मेरी यह गुणात्मक और दिव्य माया दुस्तर है, परन्तु जो मेरी शरणमें आते हैं वे इस मायाको पार कर जाते हैं ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

मायाने जिनका ज्ञान नष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ और बुरे कर्म करनेवाले नराधम आसुरी बुद्धिमें पड कर मेरी शरणमें नहीं आते ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन ! चार प्रकारके पुण्यकर्म करनेवाले लोग मेरा भजन करते हैं– १ आर्त अर्थात् रोगादिसे पीडित, २ जिज्ञासु अर्थात् ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले, ३ अर्थार्थी अर्थात् द्रव्य आदि काम्य–वासनाओंको मनमें रखनेवाले और ४ ज्ञानी अर्थात् परमेश्वरका ज्ञान पा कर कृतार्थ हो जानेसे आगे कुछ प्राप्त न करता हो, तो भी निष्काम बुद्धिसे भक्ति करनेवाले ॥ १६ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७ ॥

इनमें एक भक्ति अर्थात् अनन्यभावसे मेरी भक्ति करनेवाले और सदैव युक्त यानी निष्काम बुद्धिसे वर्तनेवाले ज्ञानीकी योग्यता विशेष है ! ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूं और ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवाऽनुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥

ये सभी भक्त उदार अर्थात् अच्छे हैं, परन्तु मेरा मत है, कि इनमें ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है; क्योंकि वह मुझमें ही निष्ठावान् होकर सबसे उत्तम गति जो मैं हूं उस मुझमें ही स्थिति (वास) करता है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

अनेक जन्मोंके अन्तमें यह अनुभव हो जानेसे कि 'जो कुछ है, वह सब वासुदेव ही है," ज्ञानवान् मुझे पा लेता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त ही दुर्लभ है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

अपनी अपनी प्रकृतिके नियमानुसार भिन्न भिन्न स्वर्ग आदि फलोंकी वासनाओंसे पागल हुए लोग, भिन्न भिन्न उपासनाओंके नियमोंका पालन कर दूसरे अनेक देवताओंको भजते रहते हैं ॥ २० ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

जो भक्त जिस रूपकी अर्थात् देवताकी श्रद्धासे उपासना किया चाहता है, मैं उसकी उसी श्रद्धाको अचल कर देता हूं ॥ २१ ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्या राधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ २२ ॥

फिर उस श्रद्धासे युक्त होकर वह देवताकी आराधना करनेकी इच्छा करता है, एवं उसको मेरे द्वारा निश्चित किये गए कामफल मिलते हैं ॥ २२ ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३ ॥

परन्तु हम अल्पबुद्धि लोगोंको मिलनेवाला यह फल विनाशी है, मोक्षके समान स्थिर रहने वाला नहीं है। देवताओंको भजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे पास आते हैं ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

अबुद्धि अर्थात् मूढ लोग, मेरे श्रेष्ठ, उत्तमोत्तम और अव्यय रूपको न जाननेसे मुझ अव्यक्तको व्यक्त हुआ मानते हैं ! ॥ २४ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

मैं अपनी योगरूप मायासे आवृत रहनेके कारण सबको अपने स्वरूपसे प्रकट नहीं दीखता । मूढलोग नहीं जानते हैं, कि मैं अज और अव्यय हूँ ॥ २५ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! भूत, वर्तमान और भविष्यत् (जो हो चुके हैं उन्हें, मौजूद और आगे होनेवाले) सभी प्राणियोंको मैं जानता हूं; परन्तु मुझे कोई भी नहीं जानता ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥ २७ ॥

क्योंकि, हे शत्रुओंको तपानेवाले भारत ! इस सृष्टिमें इन्द्रियोंके इच्छा और द्वेषसे उपजने वाले सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंके मोहसे इस सृष्टिमें समस्त प्राणी भ्रममें फँस जाते हैं ॥ २७ ॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

परन्तु जिन पुण्यात्माओंके पापका अन्त हो गया है, वे सुखदुःख आदि द्वन्द्वोंके मोहसे मुक्त होकर दृढव्रत हो करके मेरा भजन करते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार जो लोग मेरा आश्रय कर बुढापा और मरण अर्थात् पुनर्जन्मके चक्करसे छूटनेके लिये प्रयत्न करते हैं; वे सब ब्रह्म, सब अध्यात्म और सब कर्मको जान लेते हैं ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ १०६९ ॥

और अधिभूत, अधिदैव एवं अधियज्ञ सहित (अर्थात् इस प्रकार कि मैं ही सब हूँ) जो मुझे जानते हैं, वे युक्तचित्त होनेके कारण मरण–कालमें भी मुझे जानते हैं ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ १०६९ ॥

: 30 :

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है ? वह अध्यात्म क्या है ? वह कर्म क्या है ? अधिभूत किसे कहना चाहिये और अधिदैवत किसको कहते हैं ? ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! अधियज्ञ कैसा होता है ? इस देहमें कौन है ? और अन्तकालमें अर्थात् मृत्युके समय इन्द्रियनिग्रह करनेवाले पुरुष तुमको किस रूपसे जान सकते हैं ? ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले-- सबसे परम अक्षर अर्थात् अविनाशी तत्त्व ब्रह्म है, और प्रत्येक वस्तुका स्वभाव अध्यात्म कहा जाता है, अक्षरब्रह्मसे भूतमात्रादि चर अचर भावोंकी अर्थात् पदार्थोंकी उत्पत्ति करनेवाला विसर्ग अर्थात् सृष्टिका व्यापार कर्म है ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! उपजे हुए सब प्राणियोंकी क्षर अर्थात् नामरूपात्मक नाशवान् स्थिति अधिभूत है; और इस पदार्थमें जो पुरुष अर्थात् सचेतन अधिष्ठाता है, वही अधिदैवत है; जिसे अधियज्ञ संपूर्ण यज्ञोंका अधिपति कहते हैं, वह मैं ही हूं और इस देहमें मैं ही अधिदेह हूँ ॥ ४ ॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

अन्तकालमें जो मेरा स्मरण करता हुआ देहत्याग करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है, कि वह मेरे स्वरूपमें मिल जाता है ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

किंवा, हे कौन्तेय ! सदा जन्मभर उसीमें रंगे रहनेसे मनुष्य जिस भावका स्मरण करता हुआ अन्तमें शरीरको छोडता है, वह उसी भावमें जा मिलता है ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

इसलिये तुम सर्वकाल सदैव मेरा ही स्मरण करते रहो, और युद्ध करो। इसी प्रकारसे मुझमें मन और बुद्धि लगाकर युद्ध करनेपर भी तुम मुझे पाओगे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥७॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

हे पार्थ ! चित्तको दूसरी ओर न जाने देकर अभ्यासरूपी उपायसे उसको स्थिर करके दिव्य परमपुरुषका ध्यान करते रहनेसे मनुष्य उसी पुरुषमें मिलता है ॥ ८ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

जो मनुष्य कवि अर्थात् सर्वज्ञ, पुरातन, शास्ता, छोटेसे भी छोटा, सबके धाता अर्थात् आधार या कर्त्ता, आचिन्त्यस्वरूप और अन्धकारसे परे, सूर्यके समान देदीप्यमान पुरुषका अन्तकालमें इन्द्रिय–निग्रहरूप योगके सामर्थ्यसे, भक्तियुक्त होकर मनको स्थिर करके दोनों भौंहोंके बीचमें प्राणको भलीभाँति स्थापित कर स्मरण करता है, वह मनुष्य उसी दिव्य परम पुरुषमें जा मिलता है ॥ ९-१० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

वेदके जाननेवाले जिसे अविनाशी कहते हैं, वीतराग होकर यति लोग जिसमें प्रविष्ट होते हैं और जिसकी चाहके निमित्त ब्रह्मचर्य–व्रतका आचरण करते हैं, वह पद अर्थात् ॐकारब्रह्म तुझे संक्षेपसे बतलाता हूं ॥ ११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

नेत्र आदि इंद्रियरूपी दस दरवाजोंको रोकके मनको हृदयमें स्थिर करके एवं मस्तकमें प्राण ले जाकर समाधियोगमें स्थित होनेवाला इस एकाक्षर ब्रह्म ॐकारका उच्चारण करके तथा बारबार मेरा स्मरण करता हुआ जो मनुष्य देह छोडकर जाता है, वह परम गतिको पाता है ॥ १२–१३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥

हे पार्थ ! जो सब ओरसे चित्तको हटाकर अर्थात् अनन्यभावसे सदा सर्वदा मेरा स्मरण करता रहता है, उस नित्य योगसे युक्त कर्मयोगीको मैं सहज ही में मिल जाता हूं ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

वे परमसिद्धिको प्राप्त हुए महात्मालोग मुझमें मिल जानेपर उस पुनर्जन्मको नहीं पाते, कि जो दुःखोंका घर है और नाशवान् है ॥ १५ ॥

आ ब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

हे कौन्तेय अर्जुन ! ब्रह्मलोकतक स्वर्ग आदि जितने लोक हैं, वहाँसे कभी न कभी इस लोकमें पुनरावर्तन अर्थात् लौटना पडता है; परन्तु, हे कौन्तेय ! मुझे पाकर फिर जन्म नहीं लेना होता ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

अहोरात्रको (तत्त्वतः) जाननेवाले लोग समझते हैं, कि कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंका एक महायुग होता है और ऐसे हजार महायुगोंका समय ब्रह्मदेवका एक दिन होता है, और ऐसे ही हजार युगोंकी उसकी एक रात्रि होती है ॥ १७ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

ब्रह्मदेवके दिनका आरम्भ होनेपर अव्यक्तसे सब व्यक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं और रात्रिका आरम्भ होनेपर वे उसी पूर्वोक्त अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

हे पार्थ ! भूतोंका यही समुदाय इस प्रकार बार बार उत्पन्न होकर अवश होकर अर्थात् इच्छा हो या न हो, रात होते ही लीन हो जाता है और दिन होनेपर फिर जन्म लेता है ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

किन्तु इस ऊपर बतलाये हुए अव्यक्तसे भिन्न एक दूसरा सनातन अर्थात् चिरन्तन अव्यक्त पदार्थ है, कि जो सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

जिस अव्यक्तको ' अक्षर ' भी कहते हैं जो परम अर्थात् उत्कृष्ट या अन्तकी गति कहा जाता है; और जहां जाकर फिर जन्ममें नहीं आना पडता वही मेरा परम धाम है ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

हे पार्थ ! जिसके भीतर सब प्राणी बसते हैं और जिसने इस सबको फैलाया अथवा व्याप्त कर रखा है, वह पर अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष अनन्यभक्तिसे ही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! कर्मयोगी जिस समय देह छोडकर संसारमें फिर जन्म नहीं लेते, अथवा जिस कालमें देहको त्यागनेसे पुनः संसारमें जन्म लेना पडता है, उसे मैं तुमसे कहता हूं ॥२३॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

अग्नि, ज्योति अर्थात् ज्वाला, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायणके छः महिनोंमें मरे हुए ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्मको पाते हैं, लौटकर नहीं आते ॥ २४ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

धुआं, रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके छः महिनोंमें मरा हुआ कर्मयोगी चन्द्रके तेजमें अर्थात् लोकमें जाकर पुण्यांश घटनेपर लौट आता है ॥ २५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ २६ ॥

इस प्रकार जगत्की शुक्ल और कृष्ण अर्थात् प्रकाशमय और अन्धकारमय दो शाश्वत गतियाँ यानी स्थिर मार्ग हैं । एक मार्गसे जानेपर लौटना नहीं पडता और दूसरेसे फिर लौटना पडता है ॥ २६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

हे पार्थ ! इन दोनों सृती अर्थात् मार्गोंको तत्त्वतः जाननेवाला कोई भी कर्मयोगी मोहमें नहीं फँसता; अतएव, हे अर्जुन ! तू सदा सर्वदा कर्मयोगयुक्त हो ॥ २७ ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ १०९७ ॥

इस उक्त तत्त्वको जान लेनेसे वेद, यज्ञ, तप और दानमें जो पुण्यफल बतलाया है, कर्मयोगी उस सबको छोड जाता है और उसके परे आद्यस्थानको पा लेता है ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ १०९७ ॥

श्रीभगवानुवाच

: ३१ :

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– अब तू दोषदर्शी नहीं है, इसलिये गुह्यसे भी गुह्य विज्ञानसहित ज्ञान तुझसे कहूंगा, जिसे जानकर तू अशुभसे अर्थात् पापसे मुक्त हो जाएगा ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

यह ज्ञान राजविद्या अर्थात् विद्याओंमें राजाके समान श्रेष्ठ तथा राजगुह्य अर्थात् गुह्योंमें राजाके समान योग्य है; यह पवित्र, उत्तम और प्रत्यक्ष बोध देनेवाला है; यह सुखसे आचरण करनेमें योग्य, अव्यय और धर्मसे युक्त है ॥ २ ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

हे शत्रुओंको जलानेवाले अर्जुन ! जो लोग इस धर्ममें श्रद्धाहीन हैं, वे मुझको न पाकर मृत्युयुक्त संसारके मार्गमें लौट आते हैं; अर्थात् उन्हें मोक्ष नहीं मिलता ॥ ३ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

मैंने अपने अव्यक्त स्वरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्को फैलाया अथवा व्याप्त किया हुआ है। मुझमें सब भूत रहते हैं, परन्तु मैं उनमें अवस्थित नहीं हूं ॥ ४ ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

तथा मुझमें सब भूत भी नहीं रहते हैं ! देखो, यह कैसी मेरी ईश्वरी करनी या योगसामर्थ्य है ! भूतोंको उत्पन्न करनेवाली मेरी आत्मा उनका पालन करके भी उन भूतोंमें नहीं रहती ॥ ५ ॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

सर्वत्र बहनेवाला महान् वायु जिस प्रकार सर्वदा आकाशमें रहता है, उसी प्रकार सब भूत मुझमें रहते हैं, ऐसा तू समझ ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे कौन्तेय ! कल्पके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिमें आ मिलते हैं और कल्पके आरम्भमें उनको मैं ही फिर निर्माण करता हूं ॥ ७ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

मैं अपनी प्रकृतिके आश्रयसे कर्मोंसे बँधे हुए भूतोंके इस समूचे समुदायको पुनः पुनः उत्पन्न करता हूँ, कि जो उस प्रकृतिके आधीनमें रहनेसे अवश अर्थात् परतन्त्र हैं ॥ ८ ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

परन्तु, हे धनञ्जय ! यह सृष्टि निर्माण करना आदि कर्मोंमें मेरी आसक्ति नहीं है, मैं उदासीन सा रहता हूँ, इस कारण मुझे वे कर्म बन्धक नहीं होते ॥ ९ ॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

हे कौन्तेय ! मैं अध्यक्ष होकर प्रकृतिसे सब चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूँ । इस कारण जगत्का यह बनना और बिगडना हुआ करता है ॥ १० ॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

मूढ लोग मेरे परम स्वरूपको नहीं जानते, कि यह सब भूतोंका महान् ईश्वर है; वे मुझे मानव तनुधारी समझ कर मेरी अवहेलना करते हैं ॥ ११ ॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

उनकी आशा व्यर्थ होती है, कर्मका फल उनको नहीं मिलता, उनका ज्ञान निरर्थक होता है और चित्त भ्रष्ट होता है, वे मोहात्मक राक्षसी और आसुरी स्वभावका आसरा लेकर रहते हैं ॥ १२ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

परन्तु, हे पार्थ ! महात्मा लोग तो दैवी प्रकृतिका आश्रय लेकर सब भूतोंके अव्यय आदि-स्थान मुझको जान कर अनन्यभावसे मुझे भजते हैं ॥ १३ ॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥
वे यत्नशील, दृढव्रत एवं नित्य योग-युक्त होकर सदा मेरा कीर्तन वन्दन करते हुए भक्तिसे मेरी उपासना किया करते हैं ॥ १४ ॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥
ऐसे ही और कुछ लोग एकत्वसे अर्थात् अभेदभावसे, पृथक्त्वसे अर्थात् भेदभावसे या अनेक भांतिके ज्ञानयज्ञसे यजन कर सर्वतोमुख मेरी उपासना किया करते हैं ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥
मैं क्रतु अर्थात् श्रौतयज्ञ हूं, मैं यज्ञ अर्थात् स्मार्तयज्ञ हूं, मैं स्वधा अर्थात् श्राद्धमें पितरोंको अर्पित किया हुआ अन्न हूं, मैं औषध अर्थात् वनस्पतिसे यज्ञके अर्थ उत्पन्न हुआ अन्न हूं, मैं यज्ञमें हवन करते समय पढे जानेवाले मन्त्र हूं, मैं ही घृत, अग्नि और अग्निमें छोडी हुई आहुति हूं ॥ १६ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७ ॥
मैं इस जगत्का पिता, माता, धाता और पितामह हूं, जो कुछ पवित्र या जो कुछ ज्ञेय है वह और ॐकार, ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद भी मैं ही हूँ ॥ १७ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥
सबकी गति, सबका पोषण करनेवाला, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सखा, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान और अव्यय बीज भी मैं ही हूं ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥
हे अर्जुन ! मैं उष्णता देता हूँ, मैं बरसातको रोकता और बरसाता हूँ; अमृत और मृत्यु, सत् और असत् भी मैं ही हूं ॥ १९ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥
जो त्रैविद्य अर्थात् ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदोंके कर्म करनेवाले, सोम पीनेवाले अर्थात् सोमयाजी तथा निष्पाप पुरुष यज्ञसे मेरी पूजा करके स्वर्गलोककी प्राप्तिकी इच्छा करते हैं, वे इन्द्रके पुण्यलोकमें पहुंच कर वहां देवताओंके अनेक दिव्य भोग भोगते हैं ॥ २० ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥

उस विशाल स्वर्गलोकका उपभोग करके, पुण्यका क्षय हो जानेपर वे फिर मृत्युलोकमें लौट आते हैं । इस प्रकार त्रयी धर्म अर्थात् तीनों वेदोंके यज्ञ–याग आदि श्रौत धर्मके पालनेवाले और काम्य उपभोगकी इच्छा करनेवाले लोगोंको स्वर्गका आवागमन प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

जो लोग अनन्य होकर मेरा चिन्तन कर मुझे भजते हैं, उन नित्य योगयुक्त पुरुषोंका योग-क्षेम मैं चलाया करता हूं ॥ २२ ॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

हे कौन्तेय ! श्रद्धायुक्त होकर अन्य देवताओंके भक्त बन करके जो लोग उन उन देवताओंका यजन किया करते हैं यद्यपि उनका वह यजन विधियुक्त नहीं होता है, तथापि वे पर्यायसे मेरा ही यजन करते हैं ॥ २३ ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनाऽतश्च्यवन्ति ते ॥ २४ ॥

क्योंकि सब यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु मैं ही हूँ । किन्तु वे तत्त्वतः मुझे नहीं जानते, इसलिये वे लोग गिर जाया करते हैं ॥ २४ ॥

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ २५ ॥

देवताओंका व्रत करनेवाले देवताओंके पास, पितरोंका व्रत करनेवाले पितरोंके पास, भिन्न भिन्न भूतोंको पूजनेवाले उन भूतोंके पास जाते हैं; और मेरा यजन करनेवाले मेरे पास आते हैं ॥ २५ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

जो मुझे भक्तिसे एक-आध पत्र, पुष्प, फल अथवा यथाशक्ति थोडासा जल भी अर्पण करता है, उस प्रयतात्म अर्थात् नियतचित्त पुरुषकी भक्तिकी भेंटको मैं आनन्दसे ग्रहण करता हूं ॥ २६ ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

हे कौन्तेय ! तू जो कुछ करता है, जो खाता है, जो होमहवन करता है, जो दान करता है (और) जो तप करता है, वह (सब) मुझे अर्पित कर ॥ २७ ॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

इस प्रकार बर्तनेसे-कर्म करके भी कर्मोंके शुभ-अशुभ फलरूप बन्धनोंसे तू मुक्त रहेगा, और (कर्मफलोंके) संन्यास करनेके इस योगसे युक्तात्मा अर्थात् शुद्ध अन्तःकरणवाला होकर मुक्त हो जायेगा, एवं मुझमें मिल जायेगा ॥ २८ ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

मैं सबमें एकसा हूं। न मुझे कोई द्वेष्य अर्थात् अप्रिय है और न कोई प्रिय है। भक्तिसे जो मेरा भजन करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूं ॥ २९ ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥

बडा दुराचारी ही क्यों न हो, यदि वह मुझे अनन्यभावसे भजता है, तो उसे बडा साधु ही समझना चाहिये। क्योंकि उसकी बुद्धि निश्चयात्मक हो चुकी है ॥ ३० ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

वह जल्दी धर्मात्मा हो जाता है और नित्य उसको शान्ति प्राप्त होती है। हे कौन्तेय ! तुम अच्छी तरह समझ लो कि मेरा भक्त कभी भी नष्ट नहीं होता ॥ ३१ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ३२ ॥

क्योंकि, हे पार्थ ! मेरा आश्रय करके स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र अथवा अन्त्यज आदि जो पाप-योनिवाले हैं, वे भी परम गतिको पाते हैं ॥ ३२ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणा पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥

फिर पुण्यवान् ब्राह्मणोंको, मेरे भक्तोंकी और राजर्षियोंकी बात ही क्या कहनी है ? तुम इस अनित्य और असुख अर्थात् दुःखकारक मृत्युलोकमें हो, इस कारण मेरा भजन करो ॥ ३३ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ११३१ ॥

मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त होओ, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो । इस प्रकार मुझमें ही आसक्त होकर योगका अभ्यास करनेसे मुझे ही प्राप्त करोगे ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ ११३१ ॥

: ३२ :

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे महाबाहो ! तुम मेरे वचनोंमें बहुत प्रीति करते हो, इस कारण तुम्हारे हितकी इच्छासे मैं इन उत्तम बातोंको कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ १ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

मेरे अवतारोंको देवता और महर्षिगण भी नहीं जानते, क्योंकि मैं देवता और महर्षियोंका सब प्रकारसे आदिकारण हूं ॥ २ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

जो लोग मुझे जन्ममरणसे रहित अनादि और सब लोकोंका ईश्वर जानते हैं, वे ही सब मनुष्योंके बीच मोहसे छूट कर सब पापोंसे मुक्त होते हैं ॥ ३ ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः क्षमा ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥

बुद्धि, ज्ञान, असंमोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, जन्म, मरण, डर, निर्भयता ॥४॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

अहिंसा, समता, तुष्टि, तपस्या, दान, यश, अयश, यह सम्पूर्ण नाना भांतिके प्राणियोंके भाव मुझसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा । ॥ ६ ॥
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः

भृगु आदि सात महर्षि और उनसे भी पुराने सनक आदि चार महा ऋषि, तथा स्वायंभुव मनु आदिक चौदह मनु मेरे ही प्रभाव तथा संकल्पमात्रसे उत्पन्न हुए हैं, जिनके पुत्र, पौत्र, सन्तान और शिष्य आदिक यह सम्पूर्ण प्रजा इस जगत्में विद्यमान है ॥ ६ ॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः । ॥ ७ ॥
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः

जो मनुष्य भृगु प्रभृति मेरी इस विभूति तथा योग सर्वज्ञतादि ऐश्वर्यको यथार्थ रूपसे जानते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । ॥ ८ ॥
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः

मैं ही सब सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण हूं, मुझसे ही सबकी प्रवृत्ति होती रहती है; ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष मुझमें भावयुक्त होकर मेरी उपासना करते हैं ॥ ८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । ॥ ९ ॥
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च

मुझमें चित्त और प्राणको लगाये हुए, न्यायसे युक्त, श्रुति (वेद) आदिके प्रमाणोंको मानते अर्थात् समझते और दूसरोंको भी समझाते हैं; मेरी कथाको कहते हुए सन्तुष्ट रहते हैं तथा रममाण होते हैं ॥ ९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । ॥ १० ॥
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते

इसप्रकारसे प्रीतिपूर्वक मुझमें चित्त लगानेवालोंको मैं ऐसी निर्मल बुद्धि देता हूं, कि जिससे वे मुझको पाते हैं ॥ १० ॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः । ॥ ११ ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता

इसके अनन्तर मैं उनके ऊपर दया करके उनकी बुद्धि-वृत्तिमें वास करके अज्ञानरूपी अन्धकारको ज्ञानरूपी दीपकसे नष्ट कर देता हूं ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥

अर्जुन बोले– हे केशव ! आप ही परम पवित्र, धाम और परब्रह्म हैं, आपके माहात्म्यको भृगु आदिक समस्त ऋषि लोग जानते हैं और देवऋषि नारद, असित मुनि, देवल तथा व्यास आपको जन्मरहित और व्यापक कहते हैं और आप भी स्वयं मुझसे वही कथा कह रहे हैं ॥ १२-१३ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! आप मुझसे जो कुछ कहते हैं वह सब मैं सत्य ही समझता हूं। हे केशव ! आपका अवतार देवताओंकी रक्षा और दैत्योंके विनाशके निमित्त ही होता है। इसे न देवता ही जानते हैं और न दैत्योंकोही यह तुम्हारा अवतार मालूम है ॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

हे जगत्के उत्पन्न करनेवाले ! हे सबके ईश्वर ! हे देवोंके देव ! हे विश्वपालक ! हे पुरुषोत्तम ! आप ही अपनेको स्वयं जानते हैं ॥ १५ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

आपकी यह सब आत्मविभूतियां अद्भुत हैं; जिनसे आप सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त होकर निवास कर रहे हैं उन्हें पूर्ण रीतिसे आप ही कह सकते हैं ॥ १६ ॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

हे योगेश्वर ! मैं सर्वदा चिन्तनमें मग्न रहता हूं, मैं आपको किस तरह जान सकता हूँ ? हे भगवन् ! मैं आपको किन किन पदार्थोंमें चिन्तन करूं ? ॥ १७ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

हे जनार्दन ! आप अपनी योगविभूतिको विस्तारपूर्वक फिर कहिये, क्योंकि आपके इन अमृतके समान वचनोंको सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! मेरी दिव्य विभूतियोंके विस्तारका अन्त नहीं है, उनमेंसे जो जो दिव्य विभूतियां प्रधान प्रधान हैं, उन्हें प्रसन्नतासे मैं तुमसे कहता हूं ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २० ॥

हे गुडाकेश ! मैं सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें निवास करनेवाला परमात्मा हूं । मैं ही सब भूतोंके जन्म, मध्य और संहारका कारण हूं ॥ २० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

मैं द्वादश आदित्योंमें विष्णु नामक आदित्य हूं; प्रकाश करनेवालोंमें मैं किरणधारी सूर्य हूं । मैं सम्पूर्ण वायुमें मरीचि नामक वायु और मैं ही तारागणोंके बीचमें चन्द्रमा हूं ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चाऽस्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

वेदोंमें सामवेद, देवताओंमें इन्द्र और एकादश इन्द्रियोंके बीचमें मन मेरा ही स्वरूप है। सब जीवोंमें चेतना-विचार और ज्ञानशक्ति मैं ही हूं ॥ २२ ॥

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

एकादश रुद्रोंमें मैं शङ्कर नामक रुद्र हूं, यक्ष, राक्षसोंमें मैं कुबेर हूं; मैं आठों वसुओंमें अग्नि और पर्वतोंमें सुमेरु हूं ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! तुम मुझे पुरोहितोंमें मुख्य बृहस्पति जानो । मैं सेनापतियोंमें स्वामि-कार्तिक हूं, और सम्पूर्ण जलाशयोंमें समुद्र हूं ॥ २४ ॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

मैं महर्षियोंके बीचमें भृगु, वाणियोंके बीचमें एक अक्षर वाला प्रणव, यज्ञोंके बीच जपयज्ञ और पहाडोंमें हिमालय हूं ॥ २५ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥

मैं वृक्षोंमें पीपल, देव–ऋषियोंमें नारद, गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिल मुनि हूं ॥२६॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि मामृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

अमृतके निमित्त समुद्र मथनेपर जो उच्चैःश्रवा घोडा और ऐरावत हाथी निकले, वे भी क्रमशः अश्वोंमें और हाथियोंमें मेरी विभूति हैं । मनुष्योंके बीच मैं ही राजा हूं ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥

शस्त्रोंमें मैं वज्र हूं और गौओंमें कामधेनु हूं; मैं ही प्रजाओंके उत्पन्न करनेका कारण अर्थात् कामदेव हूं । सब सर्पोंके कुलमें मैं ही वासुकि हूं ॥ २८ ॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

मैं नागोंके बीच शेषनाग हूं । जलीय प्राणियोंमें मैं वरुण हूँ । पितरोंमें अर्यमा नामक पितर और नियमसे दण्ड देनेवालोंमें यमराज मैं ही हूं ॥ २९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

दैत्योंमें मैं प्रह्लाद हूं, वश करनेवाले अथवा गिनती करनेवालोंमें काल मैं ही हूं । मैं पशुओंमें सिंह और पक्षियोंमें गरुड हूं ॥ ३० ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥

बडे वेगसे चलनेवालोंमें पवन और शस्त्रधारियों अर्थात् शूरवीरोंमें मैं रामचन्द्र हूं । मैं ही मछलियोंमें मगर और नदियोंमें गङ्गा हूं ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाऽहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! सब संसारका आदि, मध्य और अन्त मेरी ही विभूति जानो, मैं सब विद्याओंमें अध्यात्म–विद्या और वाद करनेवालोंका वाद हूं ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

अक्षरोंमें अकार हूँ, समासोंमें द्वन्द्व और प्रवाह रूपसे नाश न होनेवाला काल मैं ही हूं । सर्वतोमुख अर्थात् चारों ओर मुखवाला धाता ब्रह्मा भी मैं ही हूं ॥ ३३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४ ॥

सबका संहार करनेवाली मृत्यु भी मैं ही हूं; मैं ही होनेवालोंकी उत्पत्ति हूं, मैं ही नारियोंमें कीर्त्ति, लक्ष्मी, सरस्वती, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं ॥ ३४ ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

सामवेदकी ऋचाओंमें बृहत्साम और छन्दोंमें गायत्री छन्द मैं ही हूं । मैं महीनोंमें मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त ऋतु हूं ॥ ३५ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥

छलियोंमें मैं जुआ हूं; तेजवालोंमें तेज हूं, और मैं ही विजयी पुरुषोंमें विजय, निश्चयी पुरुषोंमें निश्चय, तथा सत्त्वगुणी पुरुषोंमें सत्त्वगुण मैं ही हूं ॥ ३६ ॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥

मैं यदुवंशियोंमें वासुदेव और पाण्डवोंमें अर्जुन हूं । मैं मुनियोंमें व्यास और कवियोंमें शुक्राचार्य हूं ॥ ३७ ॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

दण्ड देनेवालोंमें मैं ही दण्ड हूं । जयकी इच्छा करनेवाले लोगोंमें मैं नीति हूं । मैं गोपनीय विषयोंमें मौन और ज्ञानियोंमें ज्ञानरूप मैं ही हूं ॥ ३८ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! सब प्राणियोंका जो कुछ बीज है, वह मैं ही हूं; चराचरमें ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है कि जो मेरे विना उत्पन्न हो सके ॥ ३९ ॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

हे परन्तप ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अंत नहीं है, इस निमित्त सब नहीं कही जा सकती हैं, इससे मैंने तुमसे संक्षेपमें कहा है ॥ ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ ४१ ॥

ऐश्वर्ययुक्त राजश्री, सब प्रकारकी शोभा, बल आदिकी बढती इत्यादि जो कुछ प्रभावशाली वस्तुएं हैं, वह सब मेरे तेजके अंशसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ४१ ॥

अथ वा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ११७३ ॥

हे अर्जुन ! मेरी इन सब विभूतियोंको अलगसे जाननेकी तुम्हें क्या आवश्यकता है ? क्योंकि इस सम्पूर्ण संसारमें मैं अपने एक अंशसे व्याप्त होरहा हूं, इसलिए मुझसे अलग कोई भी वस्तु नहीं है ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ ११७३ ॥

: ३३ :

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो परम गुप्त और जो अध्यात्मसंज्ञक बात बतलाई, उससे 'मैं इन लोगोंका मारनेवाला होऊंगा, और मुझसे ये मारे जायंगे,' इत्यादि मेरा भ्रम नष्ट होगया ॥ १ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

हे कमलनेत्र कृष्ण ! आपसे ही सब जीवोंकी उत्पत्ति और उनका संहार होता है, उसे और आपके नाशरहित महात्म्यको विस्तारसहित मैंने सुना ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर ! आपने जिस प्रकारसे कहा, वह सब सत्य ही है, उसमें मुझे कुछ भी अविश्वास नहीं है । हे पुरुषोंमें उत्तम कृष्ण ! जैसा आप अपनेको कहते हैं, वैसे ही आपके ऐश्वर्यशाली रूपको देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ ३ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! हे योगके ईश्वर ! आप यदि मुझे उस अपने रूपको देखने योग्य समझते हों, तो अपना अव्यय और अविनाशी रूप मुझे दिखाइए ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! तुम अनेक वर्णोंके और नाना आकृतियोंके सैकडों, हजारों तथा अगणित आश्चर्यमय मेरे रूपोंको देखो ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

हे भारत ! तुम मेरे शरीरमें आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार और मरुद्गणको देखो। अनेक प्रकारके आश्चर्योंको जिनको तुमने वा किसीने पहले नहीं देखा होगा, उनको भी देखो ॥६॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

हे गुडाकेश ! मेरे शरीरमें एकत्रित जङ्गम, स्थावर सहित सब जगत्को और जो कुछ देखनेकी इच्छा करते हो, वह सब अभी देख लो ॥ ७ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

परन्तु तुम अपनी इन स्थूल आंखोंसे मेरा दिव्य रूप नहीं देख सकोगे; इस निमित्त मैं तुम्हें अलौकिक ज्ञानका नेत्र देता हूं; उससे मेरे बडे तेजस्वी, प्रकाशमान, योग और ऐश्वर्यको देखो ॥ ८ ॥

संजय उवाच—

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज धृतराष्ट्र ! महायोगेश्वर कृष्णने ऐसा कहकर अर्जुनको परम ऐश्वर्य-युक्त रूपको दिखाया ॥ ९ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

वह रूप अनेक मुख, बहुतसे नेत्रयुक्त, बहुत तरहके अद्भुत दर्शन, अनेक दिव्य भूषणोंसे शोभित, अनेक दिव्य शस्त्रोंको धारण किये हुए था ॥ १० ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

वह शरीर बहुतसी दिव्य माला और वस्त्र पहने हुए तथा दिव्य सुगन्धियाको शरीरमें लगाये, सब तरहके अचरजसे भरे हुए प्रकाशमान अनन्तरूप और संसार भरमें मुंह (सब जगत् और दिशाओंमें जिसका मुंह है) धारण किये, सर्व भूतात्माके रूपमें प्रकाशित हो रहा था ॥ ११ ॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

यदि आकाशमें एक ही समयमें हजार सूर्य प्रकाशित होने लग जाएं और उस समय उन हजार सूर्योंकी जितनी प्रभा हो उतनी प्रभा उन महात्माके उस विराट् रूपकी थी ॥ १२ ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने देवोंके देव कृष्णके शरीरमें देवता, पितर, मनुष्य आदि भेदसे सब जगत्के अनेक जीवोंको देखा ॥ १३ ॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥

तब उस अचरजमयी मूर्तिको देखकर अर्जुन भयसे व्याकुल हो गये; और उनके शरीरके रोएं खडे होगये । तब अर्जुनने सिर झुकाकर और हाथ जोडकर उस मूर्तिको प्रणाम किया और फिर कहने लगे ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

अर्जुन बोले– हे देवेश ! आपके शरीरमें सूर्य आदि सब देवता, जरायुज और अण्डज आदि सम्पूर्ण प्राणी, सब ऋषि तथा दिव्य नागोंको देखता हूं; इन सबके बनानेवाले पद्मासनपर बैठे हुए ब्रह्माको भी देखता हूं ॥ १५ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नाऽन्तं न मध्यं न पुनस्तवाऽऽदिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

हे विश्वरूप जगत्के स्वामी ! मैं आपको बहुतसी भुजाओंसे युक्त अनेक नेत्र तथा बहुतसे मुख-वाला देखता हूं । मुझे आपका आदि, मध्य और अन्त नहीं दीखता है । मैं चारों ओर अनन्तरूपवाले आपको ही देखता हूं ॥ १६ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

मैं किरीट, गदा और चक्र लिये हुए सर्वत्र प्रकाशमान् तेजसे युक्त तथा अग्नि और सूर्यकी ज्योतिके समान प्रकाशमान्, कठिनाईसे निश्चय करने और देखने योग्य आपका रूप चारों ओर देखता हूं ॥ १७ ॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

मैं आपको अविनाशी, परब्रह्म, मुमुक्षु लोगोंसे जानने योग्य, इस संसारके निवासस्थान, कभी क्षीण न होनेवाला, नित्य धर्मका पालन करनेवाला और सनातन पुरुष समझता हूं ॥ १८ ॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥

मैं आपको उत्पत्ति, स्थिति और नाश रहित, अनन्त-प्रभावशाली, बहुतसी भुजाओंसे युक्त तथा चन्द्रमा-सूर्यको आपके नेत्र—स्थानमें देखता हूं। जलती हुई अग्निके सदृश आपका मुंह है और आपके तेजसे यह सारा जगत् प्रकाशित हो रहा है ॥ १९ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमिदं तवोग्रं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष अर्थात् इन दोनोंका मध्य और सब दिशाओंको आप अकेलेने ही व्याप्त कर रखा है। हे परमात्मन्! आपके इस अद्भुत, भयानक और अचरजसे भरे हुए उग्र रूपको देखकर तीनों लोक भयसे व्याकुल हो गये हैं ॥ २० ॥

अमी हि त्वा सुरसङ्घाः विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घा स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

ये सब देवता आपके शरीरमें प्रवेश कर रहे हैं। उनमेंसे कोई कोई तो भयसे दुःखी होकर हाथ जोडकर आपकी स्तुति कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धगण जगत्के कल्याणके निमित्त आपकी अनेक तरहकी स्तुतियोंसे स्तुति कर रहे हैं ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वा विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, सम्पूर्ण देवता, अश्विनीकुमार, मरुत् गण, पितर, गन्धर्व, यक्ष, विरोचन आदि असुर और सिद्धगण विस्मित होकर आपको देख रहे हैं ॥ २२ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥
हे महाबाहो ! आपके बहुत मुख, भुजा, पेट और असंख्य जङ्घाएं हैं, तथा बहुत चरण हैं; और भयानक तीखे दांतवाले सब सामर्थ्यसे पूर्ण आपको इस बडे रूपको देखकर संपूर्ण लोक भयसे व्याकुल और चकित हो गये हैं उसी प्रकार मैं भी व्यथित हो गया हूँ ॥ २३ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥
हे विष्णो ! आपको आकाश भरमें व्याप्त, तेजपुञ्जसे भरे हुए, और नाना रङ्गोंवाले मुंह फाडे हुए और अग्निकी ज्वालाके समान जलते हुए विशाल नेत्रोंको देखकर मेरी अन्तरात्मा व्याकुलतासे दुःखी है; मनकी स्थिरता समझ नहीं पडती; मैं धीरज धारण नहीं कर पाता ॥ २४ ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥
हे देवताओंके ईश्वर ! प्रलयकालकी अग्निके समान प्रकाशमान् और कराल दांतोंसे युक्त आपके बहुतसे मुंहको देख कर मुझे दिशाएं नहीं समझ पडतीं और सुख नहीं मिल पा रहा । हे जगत्के स्वामी ! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥ २५ ॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥
मैं देखता हूं, कि जयद्रथ आदि राजाओंके सहित दुर्योधन आदि सब धृतराष्ट्रके पुत्र और भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा मेरी ओरके मुख्य वीर शिखण्डी, धृष्टद्युम्न आदिक सब ॥ २६ ॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥
बहुत जल्दीसे आपके अनेक दांतोंसे युक्त विकराल मुखमें प्रवेश कर रहे हैं । इन लोगोंमेंसे कोई कोई तो आपके कठोर और भयानक तीखे दांतोंमें अटके रहे हैं; और उनके सिर चूर चूर हुए दिखाई देते हैं ॥ २७ ॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥
जिस प्रकार जलके अधिक होनेसे वेगयुक्त प्रवाहोंवाली नदियां समुद्रमें जा गिरती है, वैसे ही यह समस्त वीर आपके ज्वालायुक्त मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं ॥ २८ ॥

×

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

जिस प्रकारसे जलती हुई अग्निमें पतङ्ग अपने नाशके निमित्त बडे वेगसे चले जाते हैं, वैसे ही ये सब वीर अपने नाशके लिए आपके विकराल दांतोंसे युक्त मुखोंमें बडे वेगसे घुसे जाते हैं ॥ २९ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

हे विष्णु ! आप अपने अग्निके समान मुखोंसे सब लोगोंको ग्रास बनाकर उनका भक्षण कर रहे हैं । आपके तेजसे सम्पूर्ण संसार भर गया है; यह आपका रूप सबको दुःख दे रहा है और कठोर तेजसे सबको सन्तप्त कर रहा है ॥ ३० ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

ऐसे प्रचण्ड तथा विकराल मूर्त्तिवाले आप कौन हैं ? मैं आपको जाननेकी इच्छा करता हूं । हे देवताओंमें उत्तम ! मैं आपको प्रणाम करता हूं; मेरे ऊपर प्रसन्न होइये । किस कारणसे आपकी ऐसे कार्योंमें प्रवृत्ति है, इसे मैं नहीं जान सकता हूं । क्या आप आदि पुरुष हैं ? मैं आपको अच्छी तरहसे जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

श्रीभगवान् बोले— मैं सब लोकोंका नाश करनेवाला काल हूं । सब लोकोंके संहार करनेके निमित्त इस समय प्रवृत्त हुआ हूं । ये सब जितने योद्धा इस सेनामें अलग अलग सेनाके बीच निवास करते हैं उनमेंसे तुम न भी हो तो भी कोई जीते न बचेंगे ॥ ३२ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

अतः हे अर्जुन ! तुम उठकर खडे हो जाओ, शत्रुओंको जीतकर यश प्राप्त करो और बढती हुई राजलक्ष्मीका भोग करो । मैंने पहले हीसे इन सब लोगोंको निश्चयसे मार दिया है, हे सव्यसाचिन् ! इस समय तुम केवल निमित्तमात्र बन जाओ ॥ ३३ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्य, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण, तथा और वीर भी जब मेरे द्वारा पहले ही मार दिए गए हैं, तब तुम इनके मारनेमें क्यों दुःखी होते हो ? इन्हें अवश्य मारो, युद्ध करो तुम युद्धमें अवश्य ही शत्रुओंको जीतोगे ॥ ३४ ॥

संजय उवाच
एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! अर्जुनने कृष्णकी ऐसी बातोंको सुनकर काँपते हुए भयसे दुःखित हो, शिर झुकाकर और दोनों हाथ जोडकर उन्हें प्रणाम किया । और गद्गद वचनसे फिर हाथ जोडकर कहने लगे ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ ३६ ॥

अर्जुन बोले– हे हृषीकेश ! आपके माहात्म्यका वर्णन और स्तुति करनेमें सब जगत् प्रसन्न होता और प्रीति प्राप्त करता है, यह योग्य ही है, राक्षस लोग भयसे दुःखित होकर सब दिशाओंमें भाग जाते हैं, और योग, तपस्या और मन्त्रोंसे सिद्ध लोग आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३६ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

हे महात्मन् ! हे देवेश ! हे जगन्निधान ! हे अनन्त ! ऊपर कहे हुए सिद्धोंके समूह आपको क्यों न प्रणाम करें ? क्योंकि आप ब्रह्मा प्रभृतिके भी आदिकर्त्ता हैं । आप अक्षर हैं और आप सत्, असत् अर्थात् सबके मूल कारण ब्रह्म हैं ॥ ३७ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

हे अनन्त रूपोंवाले भगवन् ! देवताओंके आदि, पुराणपुरुष और जो कुछ जानने योग्य वस्तु हैं, और जो उनको जानता है, वह सब कुछ आप ही हैं; वह परमधाम जिसे विष्णुपद कहते हैं, वह भी आप ही हैं; आपसे सब जगत् व्याप्त हो रहा है ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति तथा प्रपितामह भी आप ही हैं अतः आपको सहस्रों वार प्रणाम करते फिर भी आपको प्रणाम हैं ॥ ३९ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

हे सर्वात्मन् ! आपको सामनेसे नमस्कार, आपको पीछेसे नमस्कार और आपको सब ओरसे प्रणाम है । आपका सामर्थ्य अनन्त और पराक्रम अकनथीय है । आप जगत्में वाहर भीतरसे व्यापक हैं, इस कारण सब वस्तुयें आपके ही रूप हैं ॥ ४० ॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

हे कृष्ण, हे यादव, हे मित्र ! मैं आपकी इस महिमाको न जानकर, आपको अपना मित्र मानकर प्रमाद, प्रीति, उन्मत्तता और हँसीमें जो कुछ अनादर तथा ढिठाई की है ॥ ४१ ॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

तथा चलते, फिरते, खाते, पीते, सोते, बैठते, परिहास करते एवं अकेले अथवा लोगोंके सामने जो कुछ मुझसे बिना जाने अपराध हुआ हो, उसके निमित्त मैं अप्रमेय आपसे क्षमा मांगता हूं ॥ ४२ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

हे अप्रतिम प्रभाववाले ! आप इस सम्पूर्ण चराचर जगत्के पिता, पूज्य, गुरु और गुरुओंसे भी बडे हैं । जब तीनों लोकोंमें भी आपके समान दूसरा कोई नहीं है, तब आपसे वडा दूसरा कोई कहांसे होगा ? ॥ ४३ ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

आप जगत्के नियन्ता और स्तुतिके योग्य हैं । अतः हे देवोंके देव ! मैं आपको दण्डवत् साष्टांग प्रणाम करता हूं; प्रसन्न होनेके निमित्त आपसे प्रार्थना करता हूं । जिस तरहसे पुत्रके अपराधको पिता और मित्रके अपराधको मित्र, तथा प्रियजनोंके अपराधोंको प्रिय मनुष्य क्षमा करते हैं, उसी प्रकार आप मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिए ॥ ४४ ॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

हे देवेश ! हे जगत्‌के निवास स्थान ! आपके इस रूपको, जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था, देखकर मैं प्रसन्न और हर्षित हो गया हूं; साथ ही आपके इस रूपको देखकर भयके कारण मेरा मन व्यथित हो गया है । अतः हे देवोंके देव ! मेरे ऊपर अब प्रसन्न होइये; और मुझे अपना वही पहला स्वरूप दिखलाइये ॥ ४५ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

मैं आपको पहलेकी भांति ही किरीटयुक्त, गदा और चक्रधारी देखनेकी इच्छा करता हूं । हे सहस्र भुजावाले ! हे विश्वमूर्त्ति ! अब इस विराट् रूपको समेट कर वही चतुर्भुजी मूर्तिसे प्रकट होजाइये ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! तुम क्यों डरते हो ? मैंने तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर यह अपने ऐश्वर्यसामर्थ्यके हेतु, आदिभूत, विश्वात्मक, अनन्त और प्रकाशमय अपना रूप तुम्हें दिखाया है, जिसको तुम्हें छोडकर और किसीने कभी इस लोकमें नहीं देखा है ॥ ४७ ॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

हे कुरुकुल प्रवीर ! वेद, यज्ञ, अध्ययन, अग्निहोत्र आदि क्रियाके करनेवाले तथा चान्द्रायण आदि कठोर तपस्या करनेवाले भी मर्त्यलोकमें कोई भी तुम्हें छोडकर मेरे इस रूपका दर्शन करनेमें कभी समर्थ नहीं हुआ ॥ ४८ ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

मेरे इस प्रकारके घोर तथा भयंकर रूपको देखकर तुम्हें भय और मोह उत्पन्न न हो । जिससे तुम्हें भय तथा दुःख न हो, इसलिए मैं तुम्हें वही अपना पूर्वरूप दिखाता हूं; तुम भयरहित होकर प्रीतिपूर्वक वही रूप देखो ॥ ४९ ॥

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

सञ्जय बोले— हे राजा धृतराष्ट्र ! यह कहकर महात्मा श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनको भयभीत देखकर उन्हें शान्त करते हुए अपनी प्रसन्न मूर्ति धारण करके जैसे पहले थे, वैसे ही हो गये, और अर्जुनको आश्वासन दिया ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

[भगवान्‌का सौम्य रूप देखकर] अर्जुन बोले— हे जनार्दन ! अब मैं आपके इस सुकुमार मनुष्यरूपको देखकर सुखी हुआ, और मेरा चित्त भी प्रसन्न हो गया ॥ ५१ ॥

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् बोले— हे अर्जुन ! मेरे उस विश्वरूपको जो तुमने देखा, उसको देखना बहुत ही कठिन है । देवता भी नित्य मेरे उस विराट्‌रूपको देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

हे परन्तप ! तुमने जिस प्रकारसे मेरे रूपका दर्शन किया है, इस भांतिसे वेद पढके, तथा यज्ञ, दान और तपस्यासे भी कोई मनुष्य कभी नहीं देख सकता ॥ ५३ ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ ५४ ॥

हे शत्रुनाशी अर्जुन ! मुझमें ही एकमात्र चित्तको लगाकर कोई महात्मा पुरुष अनन्यभक्तिपूर्वक मेरे उस विश्वरूपको तत्त्वसे जान सकता है तथा देखता है और उसमें प्रवेश कर सकता है ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ १२२८ ॥

हे पाण्डव ! मेरे लिये ही कर्म करनेवाला, मेरा ही आसरा लेनेवाला आसक्तिसे रहित और सब प्राणियोंसे शत्रुताके आचरणसे रहित जो मेरा भक्त है, वह मुझे पाता है ॥ ५५ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ १२२८ ॥

: ३४ :

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– जो लोग इसी प्रकारसे सर्वदा योगयुक्त होकर आपकी उपासना करते हैं; और जो लोग नाशरहित, अक्षर, मूर्तिरहित ब्रह्मकी उपासना करते हैं, इन दोनोंमेंसे अधिक कर्मयोगके जाननेवाले कौन हैं ? ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! जो लोग मुझमें चित्त लगा कर श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करते हैं, वे ही मेरे मतमें पूरे योगी हैं ॥ २ ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

और जो लोग सब प्राणियोंके हितमें रत और सर्वत्र समानबुद्धि रखते हैं, और इन्द्रियोंके समूहको भलीभांतिसे रोककर नाशरहित, इन्द्रियोंसे न जानने योग्य, निराकार, सर्वव्यापक और नित्यरूपकी उपासना करते हैं, वे लोग भी मुझे पाते हैं ॥ ३-४ ॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

किन्तु इसमें विशेष बात यही है, कि रूपरहित अविनाशी ब्रह्ममें चित्त लगानेवालोंको क्लेश अधिक होता है; क्योंकि शरीरधारियोंके लिए निराकार ब्रह्मतक पहुंचना बहुत कष्टसाध्य अर्थात् अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥

जो लोग मुझमें ही आसक्त होकर सब कर्मोंको मुझे समर्पित करते हुए अनन्य योगसे मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं ॥ ६ ॥

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन ! जिनका मन मुझमें सदा लगा रहता है, मैं उनको मृत्युयुक्त संसार-सागरसे शीघ्र ही पार करा देता हूं ॥ ७ ॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

अतः तुम मुझमें ही अपना मन लगाओ और मुझमें ही अपनी बुद्धि लगाओ; ऐसा करनेसे तुम इस शरीरको छोडनेपर मुझमें ही मिल जाओगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ ९ ॥

हे धनञ्जय ! यदि तुम चञ्चलचित्तको मुझमें स्थिर न कर सको; तो अभ्यास-योगसे मुझमें मिलने तथा मुझे पानेकी इच्छा करो ॥ ९ ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

यदि अभ्यास करनेमें भी तुम असमर्थ हो, तो मेरी प्रीतिके निमित्त जो जो भजन स्मरण आदिक कर्म हैं, उन्हींमें लगे रहो । इस प्रकारसे सब कर्मोंको मेरे ही निमित्त करनेसे तुम्हें सिद्धि मिल जाएगी ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

जो यह भी तुमसे न हो सके, तो मदर्पणपूर्वक यानी कर्मयोगका आश्रय करो और यतात्मा अर्थात् चित्तको धीरे धीरे रोकते हुए सब कर्मोंका फल त्याग करो ॥ ११ ॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२ ॥

निश्चय है, कि अभ्याससे ज्ञान उत्तम है, उस ज्ञानसे ध्यान श्रेष्ठतर है, और उससे भी यथोक्त रीतिसे कर्मका त्याग उत्तम है; इसी तरहसे त्यागसे शांति अच्छी है ॥ १२ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥

जो सब भूतोंसे वैररहित हो, जिसे सबपर मैत्री और करुणा हो, और जो ममतारहित हो, तथा अहङ्कारसे रहित, सुख दुःखको समान जाननेवाला और क्षमावान् हो ॥ १३ ॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

जो सतत संतुष्ट, स्थिर-चित्त तथा दृढ निश्चय करनेवाला और जिसका मन, बुद्धि मुझमें लगे हुए हैं; ऐसा जो मेरा (कर्म) योगी भक्त है, वही मुझे प्रिय है ॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

जिससे लोगोंको क्लेश नहीं होता, और जो न लोगोंसे क्लेश पाता है, ऐसे ही जो हर्ष, क्रोध, भय और विषादसे अलिप्त है, ऐसा जो मेरा भक्त है, वही मुझे प्रिय है ॥ १५ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

वही मेरा भक्त मुझे प्यारा होता है, कि जो निरपेक्ष, शुचि और दक्ष है, निरलस होकर जो कर्म करता है, जो फलके विषयोंमें उदासीन है, जिसे कोई भी व्यथा नहीं है, और जिसने काम्यफलके सब उद्योग छोड दिये हैं ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥

जो न प्रिय वस्तु प्राप्त कर आनन्द मानता है, न अप्रिय वस्तुसे द्वेष करता है, जो न दुःखमें शोक करता है, और न कर्मफलकी इच्छा रखता है, जिसने कर्मके शुभ और अशुभ फल छोड दिये हैं, वह भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है ॥ १७ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥

जो शत्रु, मित्र, मान, अपमान, सर्दी गर्मी, सुख और दुःखको समान जानता है, तथा जो संगसे रहित है ॥ १८ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

और स्तुति निन्दाको बराबर जानता है; जिसके वचन परिमित हैं, जो कुछ मिले उसीमें प्रसन्न और सन्तुष्ट रहनेवाला, जिसका कोई घर नहीं ऐसा स्थिरचित्तवाला जो मनुष्य है वही मेरा भक्त और मुझे प्रिय है ॥ १९ ॥

+

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ १२४८ ॥

जो लोग श्रद्धावान् और मुझमें अनुरक्त होकर इस ऊपर कहे हुए अमृतरूपी धर्मका अनुष्ठान तथा मेरी उपासना करते हैं; वे भक्त मुझे बहुत ही प्रिय हैं ॥ २० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ १२४८ ॥

: ३५ :

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे कुन्तीनन्दन ! यह शरीर क्षेत्र कहा गया है, इस शरीरको जो जानता है, तत्त्वके जाननेवाले ज्ञानी लोग उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं ॥ १ ॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

हे भारत ! मुझे ही तुम सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ-रूपसे जानो, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका जो ज्ञान है, मेरी बुद्धिमें वही ज्ञान श्रेष्ठ कहे जानेके योग्य है ॥ २ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारी यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

वह क्षेत्र क्या है ? किस प्रकारका है ? उसके कौन कौनसे विकार हैं, किससे क्या होता है, तथा उसका क्षेत्रज्ञ कौन है ? और उसका प्रभाव क्या है ? उसे मैं संक्षेपसे कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ ३ ॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

उस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके स्वरूपको ऋषियोंने बहुत विस्तारसे वेदोंके अनुकूल कहा है, ऋक् आदि वेदोंमें कई प्रकारके छन्दों और मन्त्रोंमें, तथा भ्रमरहित ब्रह्मसूत्रोंमें अनेक भांतिसे कहा गया है ॥ ४ ॥

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥

भूमि आदि पांच महाभूत, अहङ्कार, ज्ञानात्मक महत्तत्व, मूल प्रकृति, दसों इन्द्रियां, मन और शब्द आदि पांचों विषय— ये चौबीस तत्त्व क्षेत्र हैं ॥ ५ ॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

इच्छा द्वेष, सुख, दुःख, देह तथा इन्द्रियोंका संयोग, चैतन्यता और धीरज धारण करना यह भी क्षेत्रके विषय हैं । मैंने तुमसे संक्षेपसे यह सविकार क्षेत्र कहा ॥ ६ ॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

मान और दंभसे रहित होना, किसीको दुःख न देना, क्षमा, नम्रता, गुरुकी सेवा, स्थिरता पवित्रता, मनका निग्रह ॥ ७ ॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इस लोक और परलोकमें इन्द्रियोंके विषय—भोगसे वैराग्य अर्थात् इन्द्रियोंको जीतना, अहङ्कारसे पूरी निवृत्ति, जन्म लेना, मरना, बुढापा और रोगके निमित्त, दुःखरूपी दोष देखना ॥ ८ ॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

स्त्री, पुत्र, घर तथा अन्य वस्तुओंमें आसक्तिको त्याग देना, प्रिय तथा अप्रिय वस्तुओंके मिलनेपर चित्तको सम रखना ॥ ९ ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मुझमें अनन्य योगसे अव्यभिचारिणी दृढ भक्ति करना, एकान्त स्थानमें रहना और साधारण मनुष्योंकी संगतिसे अलग रहना ॥ १० ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

अध्यात्म-ज्ञानमें निष्ठा रखना और तत्त्वज्ञानके निमित्त नित्य दृष्टि रखना इत्यादि- इन्हींको ज्ञान कहते हैं और इसके विरुद्ध अपने गुणोंकी प्रशंसा आदिको ज्ञानका विरोधी अज्ञान कहा गया है ॥ ११ ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

ऊपर कहे हुए ज्ञानके साधनोंसे जो जानने योग्य अर्थात् ज्ञेय है, उसे कहता हूं, उसको जाननेसे मोक्ष होता है। वह आदि अन्तसे रहित परब्रह्म है। न उसे सत् कहते हैं और न असत् ॥ १२ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

उसके हाथ, पांव, आंख, कान और मुख सब जगहोंमें मौजूद हैं; और वह सब जगत् तथा सब पदार्थोंमें व्यापक है ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

वह सब इन्द्रियों और उनके विषयोंका प्रकाशक है; और इन्द्रियादिओंसे रहित है। वह सङ्गसे अलग है, किन्तु सबका आधार है; वह सत्त्व आदि गुणोंसे रहित होनेपर भी उन गुणोंका उपभोग करता है ॥ १४ ॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चाऽन्तिके च तत् ॥ १५ ॥

वह सम्पूर्ण सृष्टि और चराचरके बाहर भीतर पूर्ण है; बहुत सूक्ष्म रहनेके कारण वह जाना नहीं जाता, वह दूर भी है और निकटसे भी निकट है ॥ १५ ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

वह तत्त्व सब जगत्में मिला हुआ सा भी है और उससे पृथक्की भांति भी रहता है। वह सब प्राणियोंका सृष्टिकर्त्ता; पालनहारा और संहार करनेवाला है। इसीप्रकार उस तत्त्वको जानना चाहिए ॥ १६ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥

उसे सूर्य आदि प्रकाशमान् पदार्थोंमें ज्योति स्वरूप अर्थात् उनका भी प्रकाशक जानना चाहिये। उसे अन्धकारसे परेका कहते हैं, ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानसे विदित होनेवाला भी वही है और वह सबके हृदयमें विराजमान है ॥ १७ ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

यह तुमसे क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेयको मैंने संक्षेपसे कहा है । मेरे भक्त इसे पूरा जानकर मेरे भावको पहुंचते हैं ॥ १८ ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥ १९ ॥

तुम प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि ही समझो । विकार और गुण आदिको प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ ही समझो ॥ १९ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

शरीर और इन्द्रियोंकी क्रियाका निर्वाह करनेवाली प्रकृति है और सुख दुःखका भोक्ता क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष कहा जाता है ॥ २० ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

पुरुष प्रकृतिमें रहकर प्रकृतिके गुणोंका भोग करता है, और यह प्रकृतिके गुणोंका संयोग उत्तम और अधम जन्म पानेका कारण होता है ॥ २१ ॥

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥

जो इस शरीरमें पर पुरुष रहता है, उसीको उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्त्ता, भोक्ता और महेश्वर तथा परमात्मा कहते हैं ॥ २२ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

जो पुरुष और प्रकृतिको गुणोंके सहित जानता है; सब अवस्थाओंमें रहनेसे भी उसे फिर जन्म नहीं लेना पडता ॥ २३ ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

कोई पुरुष अपने आप ही आत्माका ध्यान करते हुए उसका दर्शन करते हैं, कोई कोई सांख्ययोगसे अर्थात् प्रकृति, पुरुषकी आलोचना करते हुए उसका दर्शन करते हैं; और कोई कोई कर्मयोगसे उसे देखते हैं ॥ २४ ॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

कोई कोई पहले कही हुई साधनाओंको न जाननेके कारण दूसरोंसे सुनकर उपासना करनेवाले भी श्रद्धापूर्वक धीरे धीरे मृत्युसे पार हो जाते हैं ॥ २५ ॥

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

हे भारत ! जितनी भी स्थावर अथवा जंगम आदि वस्तुयें उत्पन्न होती हैं, उन्हें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही जानना चाहिये ॥ २६ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

जो जगत्की सब वस्तुओंमें परमेश्वरको विराजमान और उनके विनष्ट होनेपर भी उसे अविनाशी जानता है, वही पूर्णदर्शी कहाता है ॥ २७ ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥

वह ईश्वरको सब जगहमें तथा सब वस्तुओंमें समान रूपसे विराजमान देखता है, वह अपनी आत्मासे सच्चिदानन्द आत्माका तिरस्कार करके उसकी हिंसा नहीं करता और वही देह छोडनेपर मोक्ष पाता है ॥ २८ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

जो यह समझता है कि हर काम प्रकृतिके द्वारा ही किये जा रहे हैं और आत्माको कर्मका कर्त्ता नहीं देखता, वही सच्चा देखनेवाला कहाता है ॥ २९ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३० ॥

जब स्थावर, जङ्गम आदि सृष्टिको पृथक् रूपसे आत्माहीमें देखता और उसी आत्मासे सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न हुआ समझता है, तभी वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥ ३० ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! (जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका आदि भी है,) अतः परमात्माकी उत्पत्ति न होनेसे वह अनादि है; और उसका कोई गुण भी नहीं है, वह अव्यय और अधिकारी है वह शरीरमें निवास करके भी कोई कर्म नहीं करता और न कर्मके फलोंसे लिप्त ही होता है ॥ ३१ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त तो है पर सूक्ष्म होनेसे किसी पदार्थमें लिप्त नहीं होता, उसी प्रकारसे आत्मा उत्तम, मध्यम और अधम शरीरोंमें निवास करके भी शरीरके गुण तथा दोषोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ३२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

हे भारत ! जैसे एक सूर्य सारे जगत्को प्रकाशित करता है, वैसे ही क्षेत्रज्ञ सारे क्षेत्रको अर्थात् देहको प्रकाशित करता है ॥ ३३ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ १२८२ ॥

जो लोग विवेक तथा ज्ञानके नेत्रसे पहले कही हुई रीतिसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेद तथा जो पंचभूतोंकी प्रकृति पहले कही गई है; उनमेंसे मोक्षके उपाय ध्यान आदिको करना जानते हैं, वे परमार्थतत्त्व ब्रह्मको पाते अर्थात् मुक्त हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ १२८२ ॥

: ३६ :

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! परम ज्ञान जो सब ज्ञानोंसे उत्तम है, उसे मैं तुमसे फिर कहता हूं; जिसको जानकर सब मुनि शरीर-बन्धनसे छूटकर उत्तम सिद्धिको अर्थात् मुक्तिको प्राप्त हुए हैं ॥ १ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

इस ज्ञानका आश्रय लेकर मनुष्य मुझे पाते हैं, और सृष्टिकी उत्पत्तिके समयमें भी नहीं जन्मते और न प्रलयकालके दुःखको ही भोगते हैं, तथा उनको बारबार जन्म नहीं लेना पडता ॥ २ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

हे भारत ! बहुत विशाल प्रकृति मेरा क्षेत्र है, उस प्रकृतिमें मैं गर्भ स्थापित करता हूँ । उसी गर्भसे सभी प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! सब योनियोंमें जो स्थावर, जङ्गम आदि मूर्तियां उत्पन्न होती हैं, उन सबके उत्पत्तिका स्थान वही महत् ब्रह्म है, मैं उन सबका पिता अर्थात् प्रकृतिमें बीज डालनेवाला हूं ॥ ४ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

हे महाबाहो ! देहमें आसक्त जो जीव अव्यय है, उसे प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले सत्त्व, रज, तम आदि गुण सुख, दुःख और मोहमें बांध देते हैं ॥ ५ ॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चाऽनघ ॥ ६ ॥

हे पापरहित ! ऊपर कहे हुए तीनोंमेंसे सत्त्वगुण निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला, शान्तभावसे युक्त है । वह मनुष्यको सुख तथा ज्ञानप्राप्तिकी इच्छामें बांध देता है ॥६॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! रजोगुणको इच्छा और रागका स्वरूप तथा तृष्णासे उत्पन्न हुआ समझो; रजोगुणसे अप्राप्तकी इच्छा और प्राप्त विषयोंमें आसक्ति होती है; इसलिये वह देहधारी जीवको स्वर्ग आदि फलोंके कर्मबन्धनमें बांध देता है ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

तमोगुणको अज्ञान शक्तिसे युक्त प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ जानो, इस निमित्त वह सबको मोहनेवाला है वह मनुष्यको उन्माद, निद्रा और आलस्यसे बांध देता है ॥ ८ ॥

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ ९ ॥

हे भारत ! मनुष्यको सत्त्वगुण सुखमें लगा देता है, रजोगुण कर्ममें प्रवृत्त करता है तथा तमोगुण ज्ञानको आवृत करके प्रमादयुक्त करता है ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

हे भारत ! रजोगुण और तमोगुणको दबा करके सत्त्वगुण प्रकाशित होता है; सत्त्वगुण और तमोगुणको दबाकर रजोगुण प्रकट होता है; और रजोगुण तथा सत्त्वगुणको दबा करके तमोगुण व्यक्त होता है ॥ १० ॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

जिस समय सब द्वारों (इन्द्रियों) में ज्ञानका प्रकाश होता हो, उस समय सत्त्वगुणकी वृद्धि समझनी चाहिये ॥ ११ ॥

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

हे भरतकुल श्रेष्ठ ! जिस समय लोभ, प्रवृत्ति, कर्मोंका आरम्भ, कर्मोंका शम न होना और अनेक संकल्पोंका उठना आदि बातें हों, उस समय रजोगुणकी वृद्धि समझनी चाहिए ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

हे कुरुनन्दन ! जब तमोगुण बढता है, तब अंधेरा, किसी कार्यको करनेकी रुचि न होना, प्रमाद और मोह इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदाँल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

जब सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय जीव मर जाता है, तो उत्तम तत्त्व जाननेवालोंके अर्थात् देवता आदिके निर्मल (स्वर्गप्रभृति) लोकोंमें जाता है ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

रजोगुणकी वृद्धिके समय जब जीव मरता है, तो जो कर्ममें आसक्त हों, ऐसे जनोंमें जन्म पाता है; और तमोगुणकी वृद्धिके समय मरनेसे वह पशु आदि मूढ-योनियोंमें जन्म लेता है ॥ १५ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

पुण्य कर्मोंका फल निर्मल और सात्त्विक कहा है, रजोगुणका दुःख और तामसिक कर्मोंका फल अज्ञान है ॥ १६ ॥

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ और तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञान पैदा होते हैं ॥१७॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥

सत्त्वगुणी पुरुष ऊपरके अर्थात् स्वर्ग आदि लोकोंमें जाते हैं । रजोगुणी पुरुष मनुष्य लोकमें रहते हैं; और तमोगुणी पुरुष प्रमाद, मोह आदिसे युक्त होकर अधोगतिको जाते हैं ॥१८॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

जब उदासीनतासे देखनेवाला मनुष्य (प्रकृतिके) गुणोंके अलावा अन्य किसीको भी कर्ता नहीं समझता; और आत्माको गुणोंसे अलग जानता है, तब वह मेरा भाव अर्थात् मुझे पाता है ॥ १९ ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

देव आदि रूपसे जो ये तीनों गुण उत्पन्न होते हैं; उनसे रहित होनेपर शरीरधारी पुरुष जन्म, मृत्यु, बुढापा और दुःखोंसे छूटकर अमृतको पाते अर्थात् मुक्त होते हैं ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ २१ ॥

अर्जुन बोले– हे प्रभो ! किन लक्षणोंसे मनुष्य इन तीनों गुणोंको पार करता है ? किस तरहके आचारवाला मनुष्य किस प्रकार इन गुणोंके पार जाता है ? ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! सत्त्वगुणका कार्य प्रकाशरूपी ज्ञान है; रजोगुणका कार्य कर्ममें प्रवृत्ति और तमोगुणका कार्य मोह आदि है; इनसे अतिरिक्त और दूसरे तामसिक, राजस और सात्त्विक कार्योंके उपस्थित होनेपर उससे न द्वेष करे और न दुःखी हो; इनके निवृत्त होनेपर उनकी फिर इच्छा भी न करे ॥ २२ ॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३ ॥

जो (कर्मफलके सम्बन्धमें) उदासीनकी भांति रहता है, (सत्त्व, रज और तम) गुण जिसे चल–विचल नहीं कर सकते, जो इतना ही मानकर स्थिर रहता है, कि सब गुण अपने अपने कार्योंमें प्रवृत्त होरहे हैं, इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ २३ ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

जिनके लिए सुख, दुःख समान है, जो मिट्टी सोना और पत्थरको बराबर मानते हैं, जो प्रिय और अप्रिय चीजोंमें समबुद्धि रखते हैं, जिनकी अपनी स्तुति और निन्दामें समान दृष्टि है ॥ २४ ॥

मानावमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

जो मान, अपमानको भी समान ही जानते हैं, तथा जिनमें मित्र और शत्रुमें भी भिन्नभाव नहीं है, और जो सम्पूर्ण दृष्टादृष्ट कर्मोंके फलोंके त्याग करनेवाले हैं, ऐसे आचारसे युक्त धीर पुरुषको सत्त्व, रज और तमोगुणसे पृथक् कहा है ॥ २५ ॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

जो लोग केवल मुझमें ही निष्ठावान् होकर भक्तियोगसे मेरी सेवा करते हैं, वे इन सब गुणोंसे पार होकर ब्रह्मपद अर्थात् मोक्ष पानेके योग्य होते हैं ॥ २६ ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ १३०९ ॥

अमृत और अव्यय ब्रह्मका, शाश्वत धर्मका तथा परमावधिके अत्यंत सुखका अन्तिम स्थान मैं ही हूं ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ १३०९ ॥

: ३७ :

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– इस संसाररूपी अश्वत्थ वृक्षका वर्णन ऐसा करते हैं, कि इसकी जडें ऊपर और इसकी अनेक शाखाएं नीचे हैं, इसका कभी भी नाश नहीं होता, और वेदकी ऋचायें इसके पत्ते हैं; जो इसको जानता है, वही वेदका जाननेवाला है ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

इस वृक्षकी ऊपर और नीचे फैली हुई अनेक शाखाएं हैं, ये सम्पूर्ण शाखाएं सत्त्वगुण आदि वृत्तियोंसे बढती हैं, रूप, रस आदि विषयोंसे पल्लवित होती हैं । अन्तमें कर्मका रूप पानेवाली उसकी जडें नीचे मनुष्य लोकमें भी बढती बढती गहरी चली गई हैं ॥ २ ॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

इसका रूप इस लोकमें नहीं पाया जाता; अथवा अन्त, आदि और आधार स्थान भी नहीं मिलता, इसलिये असंग अर्थात् अनासक्ति रूपी शस्त्रसे अत्यंत गहरी जडवाले इस वृक्षको काट कर ॥ ३ ॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

फिर उस स्थानको ढूंढना चाहिये, कि जहां एक बार जाकर फिर लौटकर आना नहीं पडता और यह संकल्प करना उचित है, कि (सृष्टिकर्म की यह) पुरातन प्रवृत्ति जिससे उत्पन्न हुई है, उसी आद्यपुरुषको मैं प्राप्त होता हूं ॥ ४ ॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

जो मान और मोहसे रहित हैं, जिन्होंने सङ्ग अर्थात् आसक्ति दोषको जीत लिया है, और जिनकी आत्म ज्ञानमें निष्ठा है, वह पुरुष सब कामनाओंसे छूटकर और सुख, दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित होकर अविद्याके नाश होनेपर उस अव्यय अविनाशी पदको पाते हैं ॥ ५ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

जिस पदको पानेसे फिर जन्म लेना नहीं पडता, वही परमधाम मेरा परमपद है; उस मेरे धाममें सूर्य चन्द्रमा और अग्निका प्रकाश भी नहीं पहुंच सकता ॥ ६ ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

मेरा सनातन अंश जीवलोक अर्थात् कर्मभूमिमें जीवरूप होकर प्रकृतिमें स्थित मन सहित छः अर्थात् मन और अन्य पांच (सूक्ष्म) इन्द्रियोंको अपनी ओर खींच लेता है (यही लिंग शरीर है ।) ॥ ७ ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८ ॥

जब ईश्वर अर्थात् जीव स्थूल शरीरको धारण करता है, और जब देहको छोडता है; उस समय शरीरमेंसे, जैसे वायु फूलोंसे सुगन्धको उडा ले जाता है; उसी तरह जीवात्मा ऊपर कही हुई इन्द्रियोंको मनके सहित सङ्ग ले जाकर दूसरे शरीरमें जाता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

वह अन्तःकरण और कान, आंख, त्वचा, जिव्हा और घ्राण आदि बाहरी इन्द्रियोंके आसरे शब्द आदि विषयोंको भोगता है ॥ ९ ॥

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

मूढ लोग एक देहसे दूसरे शरीरमें जानेवाले, तथा उसी देहमें वास करनेवाले, अथवा गुणोंसे युक्त होकर भोग भोगनेवाले उस जीवको नहीं देख सकते; परन्तु ज्ञाननेत्रवाले मनुष्य ही उसे देख सकते हैं ॥ १० ॥

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११ ॥

इस जीवात्माको यत्नपूर्वक योगी लोग ध्यान आदिसे अपनेमें स्थित देखते हैं; परन्तु अज्ञानी मलिन बुद्धिवाले यत्न करनेपर भी उसे नहीं देख सकते ॥ ११ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

जो तेज सूर्यमें रहकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है, और जो तेज चन्द्रमा और अग्निमें विद्यमान (मौजूद) है; उसे मेरा ही तेज समझो ॥ १२ ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

मैं पृथ्वीमें प्रवेश करके सब जगत् अर्थात् प्राणियोंको अपनी शक्तिसे धारण करता हूं । मैं रसात्मक चन्द्रमा होकर सब ओषधियोंका पोषण करता हूं ॥ १३ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

मैं जठराग्नि होकर जीवधारियोंके शरीरमें निवास करता हूं, उनके प्राण तथा अपानके साथ मिलकर चारों प्रकारके अन्नको पचाता हूं ॥ १४ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

मैं सब जीवोंके हृदयमें निवास करता हूं, इससे मुझसे ही उनकी स्मृति, इन्द्रियोंके संयोगसे ज्ञान और इन दोनोंका अभाव भी होता है । मैं ही सब वेदान्तज्ञानका करनेवाला हूं, और संपूर्ण वेदोंका जाननेवाला भी मैं ही हूं ॥ १५ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥

इस जगत्में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (नाशरहित) दो पुरुष प्रसिद्ध हैं; उनमेंसे ब्रह्मासे लेकर स्थावर तकको क्षर नाशवान् कहते हैं, और शरीरके विनष्ट होने पर भी जिसका नाश नहीं होता उसको ज्ञानी लोग अक्षर अविनाशी कहते हैं ॥ १६ ॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

इस क्षर और अक्षरसे भी परे एक उत्तम पुरुष और है, जिसे परमात्मा कहते हैं; वह अविनाशी और सर्वसामर्थ्य युक्त है, नियन्ता रूपसे वह तीनों लोकोंमें प्रविष्ट होकर उनका पालन करता है ॥ १७ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

इस निमित्त मैं नित्य मुक्तस्वभाववाला होनेसे जगत्से अलग, क्षर और अक्षर दोनोंसे परे और सबसे उत्तम हूं, इससे मैं लोक और वेदमें पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हूं ॥ १८ ॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

हे भरतवंशी अर्जुन ! जो बुद्धिमान् पुरुष निश्चयपूर्वक ऊपर कही हुई रीतिसे मुझ पुरुषोत्तमको जानता है; वह सर्वज्ञ होकर सर्वभावसे मुझे ही भजता है ॥ १९ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ १३२९ ॥

हे पापरहित अर्जुन ! इस गुप्तसे गुप्त शास्त्रको मैंने तुमसे कहा है; इसको जाननेसे मनुष्य ज्ञानी और कृतकृत्य हो जाता (जो करनेके काम हैं, वह सब कर सकता) है ॥ २० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ १३२९ ॥

: ३८ :

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! निर्भयता, शुद्धसात्त्विकवृत्ति, ज्ञान (मार्ग) और (कर्म) योगके तारतम्यसे व्यवस्था, स्वाध्याय अर्थात् स्वधर्मके अनुसार आचरण, दान, दम, यज्ञ, तप करना, सरलता ॥ १ ॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, कर्मफलका त्याग, शान्ति, परोक्षमें पराये दोषोंको न कहना, भूतोंपर दया, अलोभ, मृदुता–कोमलता, बुरे काम करनेमें लज्जा, अचापल अर्थात् निष्फल कर्मोंका त्याग ॥ २ ॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

तेजस्विता, क्षमा, धीरज धरना, बाहर और भीतरकी पवित्रता, किसीसे द्रोह न करना, अपनेको बडा और पूज्य समझके अभिमान न करना, हे भारत ! इत्यादि ये सब गुण दैवी सम्पत्तिमें जन्मे हुए पुरुषोंमें हुआ करते हैं ॥ ३ ॥

दम्भो दर्पोऽतिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ ४ ॥

हे पार्थ ! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता और अज्ञान यह सब आसुरी सम्पत्तिमें जन्मे हुए पुरुषोंके स्वभाव हैं ॥ ४ ॥

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायाऽऽसुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! (इनमेंसे) दैवी सम्पत्ति मुक्तिका और आसुरी सम्पत्ति बन्धनका कारण होती है । हे भारत ! तुम दैवी सम्पत्तिमें उत्पन्न हुए हो, इस निमित्त तुम शोक मत करो ॥ ५ ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! इस संसारमें दैव और आसुर दो प्रकारके प्राणी हुआ करते हैं; उनमेंसे मैंने दैव श्रेणीका वर्णन विस्तारसे कर दिया है, अब आसुरी श्रेणीका वर्णन सुनो ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

आसुरी स्वभावके मनुष्य प्रवृत्ति क्या है और निवृत्ति क्या है ? अर्थात् कर्तव्य अकर्तव्यको नहीं जानते । उनमें पवित्रता, आचार और सत्य नहीं रहते ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

वे (आसुर लोग) कहते हैं, कि यह सारा जगत् असत्य है, अप्रतिष्ठित अर्थात् निराधार है, और इसका बनानेवाला ईश्वर कोई नहीं है । यह जगत् अपरस्पर संभूत अर्थात् एक दूसरेके बिना ही हुआ है; इसकी उत्पत्तिका और कारण कौन है ? स्त्री–पुरुषकी अभिलाषा विशेष अर्थात् कामसुख ही इस जगत्के प्रवाहरूपसे चले आनेका हेतु है ॥ ८ ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

वह लोग इसी तरहकी दृष्टि ग्रहण करके, मलिनचित्त और तुच्छबुद्धिवाले, दुष्ट कर्म करनेवाले, और हिंसा करनेवाले, जगत्का नाश करनेके निमित्त उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥

वह सांसारिक कामना जो कभी पूरी नहीं होती, उसीका सहारा करके दम्भ, मान और मदसे भरे हुए, मोहसे युक्त होकर झूठमूठ विश्वास अर्थात् मनमानी कल्पना करके, गंदे काम करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं ॥ १० ॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार आमरणान्त (सुख भोगनेकी) अगणित चिन्ताओंसे ग्रसे हुए, कामोपभोगमें डूबे हुए 'कामभोग ही परम पुरुषार्थ है' ऐसा सोचते हैं ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ १२ ॥

सैकड़ों आशाओंके फंदेमें बंधे हुए, काम-क्रोधसे युक्त (ये आसुरी लोग) कामभोगके लिये अन्यायसे बहुतसा अर्थसंचय करनेकी कोशिश करते हैं ॥ १२ ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

आज मुझे यह धन मिला है, कल मेरा अमुक मनोरथ सिद्ध होगा; इस समय इतना मेरा धन है, इसके बाद इतना हो जायेगा ॥ १३ ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चाऽपरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

इस शत्रुको मैंने मारा, दूसरोंको फिर मारूंगा; मैं ईश्वर हूं, भोगोंको भोगनेवाला हूं; तथा मैं सिद्ध, बलाढ्य और सुखी हूं ॥ १४ ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

मैं सम्पन्न और कुलीन हूं; मेरे समान और दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ आदि कर्मोंको करके और दान देकर हर्षित होऊंगा। इत्यादि प्रकारके अज्ञानसे मोहित होकर ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

अनेक मनोरथोंके विषयोंमें चित्त लगाते हैं । ऐसे मोहमय जालसे जकडे और काम आदि भोगोंमें फंसे हुए पुरुष अपवित्र नरकमें गिरते हैं ॥ १६ ॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

वे अपनेको बहुत बडा समझनेवाले, नम्रता-रहित, धन, प्रतिष्ठा और अभिमानमें भरे हुए (आसुरी लोग) दम्भसे शास्त्रविधि छोडकर केवल नामके लिये यज्ञ किया करते हैं ॥१७॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

अहङ्कार, बल, दर्प, काम, तथा क्रोधके आसरे होकर अपनी और पराई देहमें वर्तमान मुझसे द्वेष करते हैं, और मेरी निन्दा भी करते हैं ॥ १८ ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥

उन क्रूर, बुरे कर्मोंके करनेवाले, संसारके शत्रु, नीच लोगोंको आसुरी योनि अर्थात् पापयोनि-योंमें ही डाल देता हूं ॥ १९ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

हे कुन्तीनन्दन ! वे लोग आसुरी योनिमें जाकर प्रतिजन्ममें मुझे पाना तो दूर रहा, पानेका उपाय भी नहीं जान सकते; उन योनियोंसे भी फिर वह नीच योनि अर्थात् कीट पतङ्गकी योनिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥

काम, क्रोध और मोह यह तीनों आत्माके नाश करनेवाले नरकके तीन दरवाजे हैं; इस कारण इन तीनोंको त्यागना उचित है ॥ २१ ॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! जो मनुष्य अंधकारके द्वार इन काम, क्रोध और लोभसे छूटनेपर ऐसा आचरण करता है, कि जिसमें उसका कल्याण हो, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥२२॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

जो शास्त्रोक्त विधिको त्याग कर इच्छानुसार कर्मको करता है, वह सिद्धि नहीं पाता; उसे सुख तथा उत्तम गति नहीं मिलती ॥ २३ ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ १३५२ ॥

इसलिये कार्याकार्यव्यवस्थितिको अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय करनेके लिये तुझे शास्त्रोंका प्रमाण मानना योग्य है, और शास्त्रोंमें जो कुछ कहा है, उसको समझकर, तदनुसार इस लोकमें कर्म करना उचित है ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ १३५२ ॥

: ३९ :

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे कृष्ण ! शास्त्रकी विधिको छोडकर पूर्ण श्रद्धासे जो लोग यज्ञ करते हैं, उनकी निष्ठा, अर्थात् मनकी स्थिति सत्त्वगुणी होती है, रजोगुणी होती है, या तमोगुणी होती है ? ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन ! देहधारियोंकी श्रद्धा स्वभावतः सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीनों प्रकारकी होती है उसे सुनो ॥ २ ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

हे भारत ! सब लोगोंकी श्रद्धा अपने अपने सत्त्वके अनुसार अर्थात् प्रकृति स्वभावके अनुसार होती है । मनुष्य श्रद्धामय है, जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह होता है ॥ ३ ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

जिसका स्वभाव सत्त्वगुण प्रधान है, वे देवताओंका यजन करते हैं, रजोगुण प्रधान प्रकृतिवाले पुरुष यक्ष तथा राक्षस आदिकी उपासना करते हैं; और तामसी प्रकृतिवाले भूतप्रेतोंकी पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

जो लोग दम्भ अहंकारसे युक्त होकर काम तथा आसक्तिके बलपर शास्त्रविधिके विरुद्ध भयंकर तपस्याका आचरण करते हैं ॥ ५ ॥

कर्शयन्तःशरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

तथा जो लोग पांचों भूत और इन्द्रियोंको सुखाते हैं, और जो मैं शरीरके भीतर रहता हूं, उसे दुःख देते हैं, उन्हें अविवेकी और आसुरी बुद्धिका समझना चाहिये ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! जगत्में तीन प्रकारके पुरुषोंको आहार भी तीन तरहका प्रिय होता है, तथा यज्ञ, तप और दानकी भी यही हालत है, उनका भेद भी सुनो ॥ ७ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

जिस आहारसे मनुष्यकी आयु, सत्त्व, सामर्थ्य, आरोग्य, चित्तकी प्रसन्नता, सुख और प्रीति आदिकी वृद्धि हो; जो आहार रसीला, चिकना, बहुत कालतक गुण करनेवाला और मनभावन हो ऐसा आहार सत्त्वगुणी पुरुषोंको प्रिय होता है ॥ ८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

जो बहुत कडवा, तीखा, खारा और अत्यन्त कसैला आहार दुःख, शोक और रोगको बढानेवाला होता है, वह राजसी प्रकृतिके मनुष्योंको प्रिय होता है ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

जिस अन्नको पके हुए पहर काल बीत गया हो; जिसका स्वाद जाता रहे; जो बासी और दुर्गन्धसे युक्त हो, जूठा और खानेके योग्य न हो; इस प्रकारका भोजन तमोगुणी पुरुषोंको प्रिय होता है ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! फलकी आकांक्षाको त्याग कर मनकी एकाग्रतासे शास्त्रकी आज्ञाओंको मानकर जो यज्ञका अनुष्ठान किया जाता है, उसे सात्त्विक यज्ञ कहते हैं ॥ ११ ॥

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

हे भारत ! जो फलकी आकांक्षा करके दम्भ अर्थात् ऐश्वर्यको दिखलानेके वास्ते यज्ञ करते हैं, उसे राजसी यज्ञ कहते हैं ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

जो यज्ञ शास्त्रकी विधिसे पूरा नहीं होता, जिसमें ब्राह्मणोंके निमित्त अन्न सामग्री नहीं लगती, जो यज्ञ मन्त्र, दक्षिणा और श्रद्धासे रहित होता है; उसे पण्डित लोग तामसी यज्ञ कहते हैं ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानियोंकी पूजा, पवित्रता, सीधापन, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इन सबोंका अनुष्ठान शरीरका तप कहाता है ॥ १४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥

जो वचन किसीको उद्वेग देनेवाला न हो तथा सत्य, प्रिय और हितकारक हो, उसीको कहना तथा स्वाध्याय और अपने कर्मके अभ्यासको करना उसीको वाचनिक तप कहते हैं ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

मनकी प्रसन्नता, कठोरपनका त्याग, मुनिके समान वृत्ति रखना, विषयोंसे मनको रोकना, व्यवहारमें छल-रहित होना, इत्यादि सब मानसिक तप कहलाते हैं ॥ १६ ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

कायिक, वाचिक और मानसिक इन तीनों तपस्याओंको यदि मनुष्य योगयुक्त होकर फलकी इच्छा त्यागकर श्रद्धापूर्वक करे, उसी तपको सात्त्विक तपस्या कहते हैं ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

अपना सत्कार मान या पूजाके लिये अथवा दम्भपूर्वक जो तपस्या की जाती है, उसे राजसी तपस्या कहते हैं, यह तपस्या क्षणिक है, स्थिर नहीं रहती ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

अज्ञान और हठसे स्वयं कष्ट करते हुए अपने शरीर और इन्द्रियोंको दुःख देते हुए दूसरोंको पीडा देनेके निमित्त जो तपस्या की जाती है, वह तामसी तपस्या कहलाती है ॥ १९ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥

जो दान कर्तव्य बुद्धिसे किया जाता है, जो योग्य स्थल, काल और पात्रका विचार करके किया जाता है, और जो अपने ऊपर उपकार न करनेवालोंको दिया जाता है, उसे सात्त्विक दान कहते हैं ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥

और प्रत्युपकार (बदले) की इच्छासे, फलकी इच्छासे, दुःखपूर्वक और क्लेशसे जो दान दिया जाता है, उसे राजसी दान कहते हैं ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

अपवित्र स्थानमें, अशुभ कालमें, मूर्ख और दुराचारी आदिको विना सत्कार और अनादर-पूर्वक जो दान दिया जाता है, उसे तामसी दान कहते हैं ॥ २२ ॥

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

ॐ तत् सत् इस तरह तीन प्रकारसे शास्त्रमें ब्रह्मका निर्देश किया जाता है; उन्हींसे जगत्में पहिले पहले वेद ब्राह्मण और यज्ञकी रचना हुई है ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

इसी कारणसे ब्रह्मवादी लोग सब समय 'प्रणव' का उच्चारण करते हुए दान तपस्या और शास्त्रमें कहे हुए कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

तत् इस शब्दका उच्चारण करते हुए इच्छारहित फलकी कामनाओंको त्यागनेवाले तथा मुक्तिकी इच्छावाले भांति भांतिके यज्ञ दान तप आदि कर्मोंको करते हैं ॥ २५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! अस्तित्त्व, साधुता अर्थात् भली भावनाके लिये सत् शब्दका प्रयोग किया जाता है और प्रशस्त कर्मके लिये भी सत् शब्दका प्रयोग किया जाता है ॥ २६ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

यज्ञ, दान और तपस्यामें स्थिति अर्थात् स्थिर भावना रखनेको भी सत् कहते हैं, तथा इनके निमित्त किये जानेवाले कर्मोंके लिए भी सत् शब्द कहा जाता है ॥ २७ ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ १३८१ ॥

हे अर्जुन ! होम, दान, तपस्या तथा और भी जो कर्म श्रद्धारहित किये जाते हैं, वे सब असत् कहाते हैं; क्योंकि वे कर्म निष्प्रयोजन होनेसे वे न इस लोकहीमें फल देते हैं और न परलोकहीमें फलदायक होते हैं ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें उन्तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ १३८१ ॥

: ४० :

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे लम्बी भुजावाले केशिनिषूदन हृषीकेष ! मैं संन्यास और त्यागके विषयको अलग अलग जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले— हे अर्जुन ! सकाम कर्मोंके छोडनेको पण्डितोंने संन्यास कहा है; और कुशललोग सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंके त्यागको त्याग कहते हैं ॥ २ ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

कोई कोई शास्त्र जाननेवाले कर्मको दोष समझकर उसका त्याग करना उचित है ऐसा कहते हैं; और कोई कोई पण्डित यज्ञ, दान और तपस्या आदि कर्मोंको (न त्यागने योग्य) अत्याज्य कहते हैं ॥ ३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

हे भरत कुलश्रेष्ठ ! हे पुरुपेन्द्र ! त्यागके विषयमें मेरा निर्णय तुम श्रवण करो । त्याग तीन प्रकारका है, ऐसा कहा जाता है ॥ ४ ॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

यज्ञ, दान और तपस्याके कर्मका त्याग करना उचित नहीं, उसे तो अवश्य करना चाहिये; क्योंकि यज्ञ, दान और तप ये कर्म विवेकी पुरुषोंकी पवित्रताके हेतु होते हैं ॥ ५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! आसक्ति और फलकी इच्छा छोडकर इन कर्मोंको करना ही चाहिये; यह मेरा पक्का निश्चय है ॥ ६ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

जो कर्म (स्वधर्मके अनुसार) नियत अर्थात् स्थिर कर दिये गए हैं, उन कर्मोंको कभी न छोडना चाहिये, जब मोहसे उनका त्याग होता है, तब उस त्यागको तामसी त्याग कहते हैं ॥ ७ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

शरीरके क्लेशके भयसे जिस कर्मको दुःखका कारण जानकर उसका त्याग किया जाता है, उसे राजसी त्याग कहते हैं, जो इस प्रकारसे कर्मका त्याग करते हैं, वह त्यागका फल नहीं पाते ॥ ८ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! यह कर्म अवश्य कर्तव्य है, ऐसा विचार कर जो सङ्ग और कर्मफलको त्याग कर नियत कर्म किया जाता है, इस प्रकारके त्यागको सात्त्विकी त्याग कहते हैं ॥ ९ ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

जो त्यागी और सत्त्वगुणसे युक्त बुद्धिमान् संशयरहित पुरुष है, वह अकुशल अर्थात् अकल्याणकारक कर्मसे द्वेष नहीं करता और कुशल अर्थात् कल्याणकारक अथवा हितकारी कर्मोंमें आसक्ति नहीं रखता ॥ १० ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

जो देहधारी है, वह संपूर्ण कर्मका त्याग कभी नहीं कर सकता, अतः जो कर्मका अनुष्ठान करता हुआ भी कर्मके फलको त्याग देता है, उसको ही यथार्थ त्यागी कहा जाता है ॥ ११ ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥

अच्छे और बुरे तथा इन दोनोंसे मिले हुए कर्मके फल तीन प्रकारसे प्रसिद्ध हैं; वह सब अत्यागी (कर्मके फलोंको न त्यागनेवाले) सकाम कर्म करनेवालोंको ही मृत्युके अनन्तर मिलते हैं । परन्तु संन्यासी अर्थात् कर्मके फलके त्यागीको नहीं मिलते अर्थात् उसके लिए ये बाधारूप नहीं बन पाते ॥ १२ ॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

हे लम्बी भुजावाले अर्जुन ! सब कर्मोंकी सिद्धिके निमित्त यह पांच कारण जो सांख्य शास्त्रमें कहे गये हैं, उन्हें मुझसे सुनो ॥ १३ ॥

×

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १४ ॥

अधिष्ठान (स्थान), कर्त्ता, भिन्न भिन्न प्रकारका करण अर्थात् साधन, (कर्त्ताकी) अनेक प्रकारकी पृथक् पृथक् चेष्टाएं अर्थात् व्यापार और उसके साथ ही पांचवां कारण दैव है ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

शरीर, वाणी और मनसे मनुष्य जिस कार्यका आरम्भ करता है, चाहे वह कर्म उत्तम हो वा निकृष्ट हो, यही पांच उसीमें हेतु होते हैं ॥ १५ ॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

वास्तविक स्थिति ऐसी होनेपर भी जो मनुष्य संस्कार-हीन बुद्धिवाला होनेके कारण केवल अपनेको ही अपनी मूर्खतासे कर्मका कर्त्ता देखता है, वह बुद्धिहीन पुरुष यथार्थदर्शी नहीं है ॥ १६ ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥

जिसको कर्म करनेका अभिमान नहीं, जिसकी बुद्धि भले, बुरेके ज्ञानसे कर्मोंमें नहीं फंसती, वह शरीर आदिसे अलग आतमदर्शी मनुष्य इन संपूर्ण प्राणियोंको लोक-दृष्टिके क्रमसे मार डालनेपर भी नहीं मारता और न वह कर्मके फलोंमें बंधता है ॥ १७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता यही तीनों कर्म प्रवृत्तिके कारण हैं । करण, कर्म और कार्यका करनेवाला कर्त्ता; ये तीन कर्मसंग्रह हैं ॥ १८ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥

सांख्यशास्त्रमें ज्ञान, कर्म और कर्त्ता सात्त्विक आदि गुणोंके भेदसे तीन प्रकारके कहे गये हैं, उनको भी पूरी तरहसे सुनो ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २० ॥

जिस ज्ञानसे यह ज्ञात होता है कि भिन्न भिन्न सब प्राणियोंमें एकही अविभक्त और अव्यय भाव अर्थात् तत्त्व है, उसे ही सात्त्विक ज्ञान जानना चाहिये ॥ २० ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

जिस ज्ञानसे भिन्नत्वका ज्ञान होता है, और मनुष्य यह सोचता है कि सब प्राणियोंमें अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न भाव हैं, उसे राजस ज्ञान कहते हैं ॥ २१ ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

परन्तु जो निष्कारण और तत्त्वार्थको विना जाने बूझे एकही बातमें यह समझकर आसक्त रहता है कि यही सब कुछ है, वह अल्पज्ञान तामस कहा गया है ॥ २२ ॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

आसक्ति, फलकी कामना और राग, द्वेषको त्याग कर अवश्यकरणीय नियत जो कर्म किया जाता है, उसी कर्मको सात्त्विक कर्म कहते हैं ॥ २३ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

जो कर्म सकाम और अहङ्कारपूर्वक बहुत क्लेश और दुःखसे किया जाता है; उसे राजस कर्म कहते हैं ॥ २४ ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

जो कर्म करनेके पीछे होनेवाला परिणाम, क्षय, दूसरेकी पीडा और अपने आत्माके सामर्थ्य को विना विचारे केवल मोहसे किया आता है, उसे तामसि कर्म कहते हैं ॥ २५ ॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥

आसक्तिको त्यागनेवाला, विना अभिमानके वचन बोलनेवाला, धीरज और उत्साहसे भरा हुआ, कर्मके पूरा होने और अधूरा रहनेमें सुखी, दुःखी न हो,– इस प्रकारके कर्त्ताको पण्डितोंने सत्त्वगुणी कहा है ॥ २६ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

इन्द्रियोंके विषय और पुत्र आदिमें आसक्ति रखनेवाला, कर्मके फलोंकी इच्छा रखनेवाला, पराये धनको लेनेकी अभिलाषा करनेवाला, हिंसकस्वभावी, भीतर और बाहरसे अशुद्ध (अपवित्र) और हानि, लाभमें शोक हर्ष करनेवाला कर्त्ता रजोगुणी कहाता है ॥ २७ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैकृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

चंचलबुद्धिवाला, असभ्य, गर्वसे फूलनेवाला, शठ, धोखा देनेवाला, आलसी, विषादी और दीर्घसूत्री कर्त्ता तामसी कहाता है ॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ २९ ॥

हे धनञ्जय ! सात्त्विक आदि गुणोंके भेदसे बुद्धि और धारणाशक्तिके तीन प्रकारके प्रभेद अलग अलग कहता हूं, तुम सुनो ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३० ॥

हे पार्थ ! जिस बुद्धिसे धर्म विषयमें प्रवृत्ति और अधर्मसे निवृत्ति होती है, जिस समय जहां पर जो कुछ करना वा न करना हो, उसका ठीक ठीक निश्चय करले; किन कार्योंमें भय और किन कर्मोंमें निर्भयता होगी, उसको जाने; तथा किस प्रकारसे बन्धनमें पडना होगा और कैसे मुक्ति होगी, इत्यादि विषयोंका जिससे ज्ञान होता है, उसे सात्त्विकी बुद्धि कहते हैं ॥ ३० ॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

हे अर्जुन ! जिससे धर्म, अधर्म, कार्य तथा न करने योग्य कर्मोंका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, उसे राजसी बुद्धि कहते हैं ॥ ३१ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

जो बुद्धि अज्ञानसे युक्त होकर अधर्मको धर्म और सब जानने योग्य वस्तुओंको उलटी (विपरीत) समझती है, उसे तामसी बुद्धि कहते हैं ॥ ३२ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! जिस धारणा शक्तिसे विषयान्तरोंका धारण नहीं होता और चित्तकी एकाग्रताके निमित्त मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाका कर्मफल त्यागरूपी योगके द्वारा नियमितरूपसे निर्वाह होता है, वह धारणा सत्त्वगुणी है ॥ ३३ ॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

हे पृथापुत्र ! जिस धारणा शक्तिसे मनुष्य धर्म, अर्थ और कामको धारण करके कभी परित्याग नहीं करते, और अहङ्कारपूर्वक फल चाहते हैं, वह रजोगुणी धृति है ॥ ३४ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥

जिससे दुर्बुद्धिसे युक्त होकर मनुष्य स्वप्न, भय, शोक, मद तथा पछतावा नहीं छोडते, उस धृतिको तामसी कहते हैं ॥ ३५ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥

हे भरतर्षभ ! अब तुम तीन प्रकारके सुखोंको मुझसे सुनो । जिसमें अभ्यास करनेसे मन रम जाता है, और दुःख समाप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

जो सुख पहिले विषकी भांति और पीछे अमृतके समान प्रतीत हो, जो आत्मनिष्ठ बुद्धिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न होता है, वह सुख सत्त्वगुणी कहाता है ॥ ३७ ॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

जो सुख इन्द्रिय और विषयोंके संयोगसे पहले अमृतके तुल्यपर बादमें विषके समान दुःखदायी होता है, उसे राजस-सुख कहते हैं ॥ ३८ ॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

जो सुख आदि और अन्तमें भी मन और बुद्धिको मोहमें डालता है; जो निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदिसे उत्पन्न होता है; उसको तामस सुख कहते हैं ॥ ३९ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

मनुष्य लोक, आकाश अथवा स्वर्ग लोकमें भी कोई प्राणी ऐसा नहीं है, कि जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुए तथा ऊपर कहे हुए इन तीनों गुणोंसे मुक्त हो ॥ ४० ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

हे शत्रुओंको जलानेवाले अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके कर्म स्वभावजन्य अर्थात् प्रकृति सिद्ध गुणोंके अनुसार पृथक् पृथक् विभक्त किये गए हैं ॥ ४१ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

शम, दम, पवित्रता, तप, क्षमा, सीधापन, शास्त्रका ज्ञान, अनुभव और आस्तिक्य बुद्धि आदि कर्म ब्राह्मणोंमें स्वभावसे ही होते हैं ॥ ४२ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षत्रकर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

शूरता, तेजस्विता, धैर्य, दक्षता, लडाईमें पीछे न हटना, दान करना और दण्ड देनेका सामर्थ्य इत्यादि कर्म क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म बताये गए हैं ॥ ४३ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

खेती करना, गौरक्ष्य अर्थात् पशुओंको पालना और वाणिज्य अर्थात् व्यापार आदि कर्म वैश्योंमें स्वभावसे ही उत्पन्न कर्म होते हैं; और ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करना शूद्रोंका स्वाभाविक कर्म है ॥ ४४ ॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

मनुष्य लोग अपने अपने कर्मोंमें लगे रहें, तो वे पूरी सिद्धिको प्राप्त कर सकते हैं । निज कर्मोंमें मन लगानेसे जिस प्रकारसे सिद्धि मिलती है, वह सुनो ॥ ४५ ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ ४६ ॥

जिससे सब प्राणियोंकी प्रवृत्ति होती है और जो सब संसारमें व्याप्त है, उसी अन्तर्यामी ईश्वरको अपनी जातिके लिए कहे हुए कर्मोंसे पूजकर मनुष्य सिद्धिको पाते हैं ॥ ४६ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

अपना धर्म अधूरा और अङ्गहीन हो, और दूसरेका धर्म पूरी तरहसे भी अनुष्ठान किया हो, तौ भी अपना धर्म दूसरेके धर्मसे उत्तम और कल्याण करनेवाला है, क्योंकि ऊपर कहे हुए स्वाभाविक धर्मके करनेसे मनुष्य पापग्रस्त नहीं होता ॥ ४७ ॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! अपनी जातिके कर्मको दोषयुक्त होनेपर भी कभी नहीं छोडना चाहिये, क्योंकि धुएंसे ढकी हुई अग्निकी भांति सब कर्मोंमें कुछ न कुछ दोष होता ही है ॥ ४८ ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

अत एव कहीं भी आसक्ति न रख कर, मनको अपने वशमें करके निष्काम बुद्धिसे चलनेपर (कर्मफल) के संन्यास द्वारा परम नैष्कर्म्य – सिद्धि अर्थात् कर्मोंके करके भी कर्मफलके बंधनसे न बंधन रूप सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ४९ ॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥

हे अर्जुन ! वे ही सिद्धिको पाये हुए मनुष्य ज्ञानकी परा निष्ठा-पर ब्रह्मको पाते हैं। वे जिस प्रकारसे ब्रह्मको प्राप्त करते हैं, वह तुम संक्षेपसे मुझसे सुनो ॥ ५० ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१ ॥

शुद्ध बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे आत्मसंयमन कर, शब्द आदि (इंद्रियोंके) विषयोंको छोड करके, प्रीति और द्वेषको दूर कर, ॥ ५१ ॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

एकान्तमें रहकर परिमित भोजन, वाक् संयम, शरीरको वशमें करना, चित्तकी स्थिरता और ध्यानयोगमें तत्पर और वैराग्यसे युक्त होकर ॥ ५२ ॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

अहङ्कार, बल, दर्प, काम, क्रोध, परिग्रह आदिको छोडकर परम शान्तिपद पाकर ब्रह्मभूत होनेके लिये योग्य होजाता है ॥ ५३ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्ममें वास करने योग्य पुरुष प्रसन्नचित्त होकर नष्ट हुई वस्तुओंके लिए शोक नहीं करते; और न अप्राप्त चीजोंको प्राप्त करनेकी इच्छा ही करते हैं। वह सब प्राणियोंमें सम होकर मेरी परम भक्तिको पाते हैं ॥ ५४ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥
उसी भक्तिसे मनुष्य मेरे यथार्थ रूपको जान सकता है, कि मैं कितना हूं, और कौन हूं। मुझको यथार्थ रूपसे जाननेपर वह मुझमें ही प्रवेश करता है ॥ ५५ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥
मेरा ही आसरा ले करके वह सब कर्मोंको करता हुआ ही मेरी प्रसन्नतासे शाश्वत, अव्यय (नाश-रहित) पदको पाता है ॥ ५६ ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥
तुम मनसे सब कर्मोंको मुझे अर्पित करके मुझमें चित्त लगाओ और (साम्य) बुद्धियोगका आसरा करके निरन्तर मेरा ही चिन्तन करो ॥ ५७ ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥
मुझमें चित्त लगानेसे मेरी प्रसन्नतासे सांसारिक सब कठिनाइयोंसे अर्थात् कर्मके शुभाशुभ फलोंसे पार हो जाओगे। पर यदि अहङ्कार करके मेरी इन बातोंको न सुनोगे, तो नष्ट हो जाओगे ॥ ५८ ॥

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥
जो तुम अहङ्कारसे यह समझते हो, कि मैं नहीं लड़ूंगा तो यह तुम्हारा निश्चय या संकल्प निरा झूठा है, और इस विषयमें तुम्हारा यह विचार भी निष्फल होगा, क्योंकि तुम्हारी प्रकृति ही तुम्हें युद्धमें लगा देगी ॥ ५९ ॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ ६० ॥
हे कुन्तीनन्दन ! जो तुम मोहसे युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करते हो, तो स्वभावजन्य अपने कर्मसे बद्ध होनेके कारण उसके वशमें होकर तुम्हें इस युद्धकार्यको करना ही पडेगा ॥६०॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥
हे अर्जुन ! परमेश्वर सबके हृदयमें निवास करता है, वह अपनी मायासे सब भूतोंको (जीवोंको) कठपुतलीकी भांति घुमाता रहता है ॥ ६१ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

हे भारत ! तुम सर्वभावसे उसीके शरणमें जाओ, जिसकी कृपासे तुम परम शान्ति, तथा शाश्वत, नाशरहित, स्थानको पाओगे ॥ ६२ ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

इस गुप्तसे भी गुप्त ज्ञानको मैंने तुमसे कहा है, इसका भलीभान्ति विचार करके जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा कर्म करो ॥ ६३ ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥

हे अर्जुन ! सब गुप्त विषयोंमें भी परम गुप्त मेरी अन्तकी एक बात तुम फिर सुनो, क्योंकि तुम मेरे अत्यंत प्रिय हो, इस निमित्त तुमसे यह हितके वचन कहता हूं ॥ ६४ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥

तुम मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा और यज्ञ करो और मुझको प्रणाम करो; ऐसा करनेसे तुम मुझे पाओगे, इसमें कुछ सन्देह न करना । तुम मेरे प्रिय हो, इस निमित्त मैं तुमसे यह सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूं ॥ ६५ ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥

तुम सब कर्मोंको त्याग कर केवल मेरी ही शरणमें आ जाओ, मैं तुमको सब पापोंसे छुडा दूंगा, कुछ सोच विचार मत करो ॥ ६६ ॥

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

तपस्याहीन, भक्तिहीन, आज्ञा न माननेवाले और मेरी निन्दा करनेवाले पुरुषोंको तुम कभी उस गुह्यका उपदेश मत देना ॥ ६७ ॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

जो मेरे भक्तोंसे इस उत्तम गुह्यको कहेंगे, वे मुझमें परम भक्ति करके निःसन्देह मुझको प्राप्त कर सकेंगे । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ६८ ॥

×

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

जो मेरे भक्तोंके निकट गीता शास्त्रकी व्याख्या करते हैं, उन पढने और सुननेवाले मनुष्योंसे बढकर कोई भी पृथ्वीपर मुझे प्यारा नहीं है और न भविष्यमें होगा तथा न मुझको कोई उससे अधिक प्रसन्न करनेवाला ही है ॥ ६९ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

मेरा यही मत है, कि जो मनुष्य मेरे और तुम्हारे इस धर्मसंवादको पढेगा, वह ज्ञानसे मेरी ही पूजा करनेवाला कहा जायेगा ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य श्रद्धावान् और निन्दासे रहित होकर इस कथाको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर पुण्यात्माओंके पाने योग्य लोकोंमें जाता है ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ ७२ ॥

हे पार्थ ! क्या तुमने इसको एकाग्रचित्तसे सुना है ? हे धनंजय ! बतलाओ तो कि भला अब भी तुम्हारा अज्ञानरूपी मोह छूटा वा नहीं ? ॥ ७२ ॥

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

अर्जुन बोले— हे अच्युत ! आपके प्रसादसे मेरा अज्ञान और मोह छूट गया और मुझे (कर्तव्य धर्मकी) स्मृति हो गई है। मैं (अब) सब सन्देहसे रहित होकर स्थित हूं और अब मैं तुम्हारी आज्ञाको पालन करनेमें तत्पर हूं ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् धृतराष्ट्र ! मैंने महात्मा अर्जुन और कृष्णका यह परम अद्भुत और रोएं खडे कर देनेवाला संवाद अपने कानोंसे सुना था ॥ ७४ ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥

हे राजन् ! परम योगेश्वर साक्षात् कृष्णने इस परम गुप्त–योग अर्थात् कर्मयोगको अर्जुनसे कहा है, मैंने व्यासकी कृपासे अपनी कानोंसे सुना ॥ ७५ ॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

मैं कृष्ण और अर्जुनके पुण्य देनेवाले इस संवादको स्मरण कर करके बारबार प्रसन्न और हर्षित हो रहा हूं ॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! हरिके उस परम अद्भुत रूपको बार बार स्मरण करके मुझे बहुत ही आश्चर्य होता है तथा बार बार मेरे शरीरके रोंएं खडे हुए जाते हैं ॥ ७७ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ समाप्तं भगवद्गीतापर्व ॥ ४० ॥ १४५९ ॥

हे राजन् ! जहां पर परम योगेश्वर श्रीकृष्ण और महाधनुर्धारी अर्जुन हैं, वहीं निश्चय करके राजलक्ष्मी, विजय, शाश्वत ऐश्वर्य और उत्तम नीति भी निवास करती हैं, यही मेरा सुदृढ विचार है ॥ ७८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ भगवद्गीतापर्व समाप्त ॥ ४० ॥ १४५९ ॥

: ४१ :

सञ्जय उवाच

ततो धनञ्जयं दृष्ट्वा बाणगाण्डीवधारिणम् ।
पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– इसके बाद अर्जुनको फिर बाण और गाण्डीव धनुषको धारण किया हुआ देखकर सब महारथी योद्धा बडा कोलाहल करने लगे ॥ १ ॥

पाण्डवाः सोमकाश्चैव ये चैषामनुयायिनः ।
दध्मुश्च मुदिताः शङ्खान्वीराः सागरसम्भवान् ॥ २ ॥

पाण्डव, सोमक तथा जो अन्य वीर उनके अनुगामी थे, वे सब हर्षयुक्त होकर समुद्रसे उत्पन्न हुए अपने अपने शङ्ख बजाने लगे ॥ २ ॥

ततो भेर्यश्च पेशयश्च क्रकचा गोविषाणिकाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त ततः शब्दो महानभूत् ॥ ३ ॥

इसके बाद शंख भेरी, नगाडे, क्रकच, गोशृंग आदि सब बाजे अत्यन्त वेगसे बजने लगे और उसके कारण महा तुमुल शब्द उत्पन्न होने लगा ॥ ३ ॥

अथ देवाः सगन्धर्वाः पितरश्च जनेश्वर ।
सिद्धचारणसङ्घाश्च समीयुस्ते दिदृक्षया ॥ ४ ॥

हे प्रजानाथ ! तब देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध और चारण गण युद्ध देखनेकी इच्छासे वहां आये ॥ ४ ॥

ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
समीयुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद्वैशसं महत् ॥ ५ ॥

महाभाग ऋषि भी इन्द्रको आगे करके उस महाहत्याकी लीला देखनेके निमित्त इकट्ठे होकर आए ॥ ५ ॥

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय सुसमुद्यते ।
ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥ ६ ॥
विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम् ।
अवरुह्य रथात्तूर्णं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! इसके बाद धीरज धारण करनेवाले धर्मराज वीर युधिष्ठिरने समुद्रकी तरह उन दोनों ओरकी सेनाओंको युद्धके निमित्त तैयार और बार बार आगे बढती हुई देखकर, कवच उतारकर अपने धनुषको रख दिया, फिर अपने रथसे शीघ्रताके साथ उतर कर हाथ जोडकर पैदल ही चल पडे ॥ ६-७ ॥

पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ ८ ॥

पितामह भीष्मकी ओर देखते हुए धर्मराज युधिष्ठिर मौन धारण करके शत्रुओंकी ओर पूर्व दिशाकी तरफ चल पडे ॥ ८ ॥

तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥ ९ ॥

कुन्ती पुत्र धनञ्जय महाराज युधिष्ठिरको जाते हुए देखकर रथसे शीघ्र ही उतरे और धर्मराज जिस मार्गसे जा रहे थे, उसी मार्गसे भाइयोंके सहित उनके पीछे पीछे चलने लगे ॥ ९ ॥

वासुदेवश्च भगवान्पृष्ठतोऽनुजगाम ह ।
यथामुख्याश्च राजानस्तमन्वाजग्मुरुत्सुकाः ॥ १० ॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण भी उनके पीछे चले । अन्य राजा भी (यह क्या हो रहा है, यह जाननेके लिए) उत्सुक होकर उनके पीछे चले ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच

किं ते व्यवसितं राजन्यदस्मानपहाय वै ।
पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ ११ ॥

तब अर्जुन धर्मराजको पुकारके बोले– हे राजन् ! आप यह क्या कार्य करते हैं ? आप हम लोगोंको छोडकर शत्रुओंकी सेनाकी तरफ पूर्व दिशामें पैदल ही क्यों चले जा रहे हैं ? ॥ ११ ॥

भीमसेन उवाच

क गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः ।
दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातॄनुत्सृज्य पार्थिव ॥ १२ ॥

भीमसेन बोले– हे पार्थिव राजेन्द्र ! आप कवच और शस्त्रोंको फेंक कर और भाइयोंको भी त्याग कर युद्धके निमित्त खडी हुई शत्रुओंकी सेनाकी ओर क्यों जा रहे हैं ? ॥ १२ ॥

नकुल उवाच

एवंगते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत ।
भीर्मे दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान्क नु ॥ १३ ॥

नकुल बोले– हे भरतनन्दन ! आप हम लोगोंके ज्येष्ठ भ्राता हैं, आपको इस समय इस प्रकारसे जाते हुए देखकर मेरा हृदय भयसे दुःखी हो रहा है। आप कहिये तो सही कि आप कहां जा रहे हैं ? ॥ १३ ॥

सहदेव उवाच

अस्मिन्रणसमूहे वै वर्तमाने महाभये ।
योद्धव्ये क नु गन्तासि शत्रूनभिमुखो नृप ॥ १४ ॥

सहदेव बोले– हे राजन् ! युद्ध करनेके लिए इस भयानक रण-समूहके (सेनाके) इकठ्ठी होनेपर आप युद्ध करनेके बजाए शत्रुओंकी ओर कहां जा रहे हैं ? ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच

एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दन ।
नोवाच वाग्यतः किञ्चिद्गच्छत्येव युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥

सञ्जय बोले— मौनावलम्बी राजा कुरुनन्दन युधिष्ठिर भाइयोंके इस प्रकार बार बार पूछने पर कुछ भी उत्तर न देकर आगे ही बढते गए ॥ १५ ॥

तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः ।
अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव ॥ १६ ॥

महाबुद्धिमान्, महात्मना श्रीकृष्ण हंसते हुए अर्जुन आदि सबसे कहने लगे, कि इनका अभिप्राय मुझे मालूम हो गया ॥ १६ ॥

एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च ।
अनुमान्य गुरून्सर्वान्योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः ॥ १७ ॥

ये भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्य आदि समस्त गुरु-जनोंके निकट जाकर उनसे युद्ध करनेको अनुमति लेंगे और उनकी अनुमति लेकर शत्रुओंसे युद्ध करेंगे ॥ १७ ॥

श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः ।
युद्ध्यते स भवेद्व्यक्तमपध्यातो महत्तरैः ॥ १८ ॥

मैंने पुराने इतिहासोंको सुना है, कि जो मनुष्य गुरुजनोंकी अनुमति न लेकर ही अपनेसे बडोंसे युद्ध करता है, वह गुरुजनोंसे अनुग्रहीत न होनेके कारण यशका भागी नहीं होता ॥ १८ ॥

अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युद्ध्येन्महत्तरैः ।
ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम ॥ १९ ॥

परंतु जो मनुष्य गुरुजनोंकी अनुमति लेकर गुरु, वृद्ध आदिकोंके साथ शास्त्रके अनुसार युद्ध करता है, युद्धमें उसकी विजय निश्चयसे होती है, यही मेरा मत है ॥ १९ ॥

एवं ब्रुवति कृष्णे तु धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ।
हाहाकारो महानासीन्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन् ॥ २० ॥

कृष्णके ऐसा कहने पर कौरवी सेनामें महा हाहाकार शब्द होने लगा, कितने तो निःशब्द होकर ही खडे रहे ॥ २० ॥

दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
मिथः सङ्कथयाञ्चक्रुर्नेशोऽस्ति कुलपांसनः ॥ २१ ॥
व्यक्तं भीत इवाभ्येति राजासौ भीष्मसन्तिकात् ।
युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्रके पक्षवाले कितने ही निष्ठुर सेनाके पुरुष युधिष्ठिरको इस प्रकार जाते हुए देखकर आपसमें कहने लगे, कि देखो यह कुलपांसन युधिष्ठिर यथार्थमें भयभीत होकर भीष्मके पास जा रहा है । यह राजा भाइयोंके सहित शरणके निमित्त याचना करनेके लिये भीष्मके पास जा रहा है ॥ २१-२२ ॥

धनञ्जये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे ।
नकुले सहदेवे च भीतोऽभ्येति च पाण्डवः ॥ २३ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेवकी सहायता पाने पर भी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर किस कारणसे भयभीत होकर वहां जा रहा है ? ॥ २३ ॥

न नूनं क्षत्रियकुले जातः संप्रथिते भुवि ।
यथास्य हृदयं भीतमल्पसत्त्वस्य संयुगे ॥ २४ ॥

इस अल्प पुरुषार्थी युधिष्ठिरका अन्तःकरण जब युद्धके भयसे व्याकुल हो रहा है, तब पृथ्वीमें विख्यात यह युधिष्ठिर निश्चय ही क्षत्रियकुलमें नहीं जन्मा है ॥ २४ ॥

ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे प्रशंसन्ति स्म कौरवान् ।
हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुः पृथक् ॥ २५ ॥

इसके बाद सम्पूर्ण सैनिक अलग अलग रूपसे कौरवोंकी प्रशंसा करने लगे और पुलकित होकर स्वच्छन्दचित्तसे अपने उत्तरीय वस्त्रोंको हिलाने लगे ॥ २५ ॥

व्यनिन्दन्त ततः सर्वे योधास्तत्र विशां पते ।
युधिष्ठिरं ससोदर्यं सहितं केशवेन ह ॥ २६ ॥

हे नरनाथ ! तब वहां इकट्ठे हुए सब वीर कृष्ण और भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिरकी निन्दा करने लगे ॥ २६ ॥

ततस्तत्कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम् ।
निःशब्दमभवत्तूर्णं पुनरेव विशां पते ॥ २७ ॥

हे नरेन्द्र ! फिर कौरवी सेनाके वीर राजा युधिष्ठिरको धिक्कार देकर शीघ्र ही फिर चुप हो गए ॥ २७ ॥

किं नु वक्ष्यति राजासौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति ।
किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति ॥ २८ ॥

(वे यह जानना चाहते थे कि) यह राजा युधिष्ठिर भीष्मसे क्या कहेंगे और भीष्म उसको क्या उत्तर देंगे, युद्धमें अपनी प्रशंसा करनेवाला भीमसेन क्या कहेगा और कृष्ण तथा अर्जुन ही क्या कहेंगे ॥ २८ ॥

विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत् ।
उभयोः सेनयो राजन्युधिष्ठिरकृते तदा ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर भीष्मसे क्या कहना चाहते हैं ? इस प्रकार युधिष्ठिरके निमित्त दोनों ओरकी सेनाओंमें इस प्रकारका बहुत भारी संशय उत्पन्न हो गया था ॥ २९ ॥

स विगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम् ।
भीष्ममेवाभ्ययात्तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३० ॥

महाराज युधिष्ठिर भाइयोंसे घिरे हुए शूर और शक्तिसे युक्त शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट होकर शीघ्र ही भीष्मके समीप जा पहुंचे ॥ ३० ॥

तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः ।
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ३१ ॥

और युद्ध करनेके लिए उद्यत शान्तनुपुत्र भीष्मके दोनों चरणोंको अपने हाथोंसे पकड कर वे पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर उनसे बोले ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष योत्स्ये तात त्वया सह ।
अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे दुर्धर्ष ! मैं आपसे यह अनुमति मांगता हूं, आपके साथ मैं युद्ध करूंगा । हे तात ! इसके लिये आप मुझे अनुमति दीजिए और आशीर्वाद भी दीजिये ॥ ३२ ॥

भीष्म उवाच

यद्येवं नाभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत ॥ ३३ ॥

भीष्म बोले– हे पृथ्वीपति भारत युधिष्ठिर ! यदि तुम युद्धमें हमारे पास इस तरहसे न आते, तो हे महाराज ! मैं तुम्हारे पराजयके निमित्त तुम्हें अभिशाप देता ॥ ३३ ॥

प्रीतोऽस्मि पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव ।
यत्तेऽभिलषितं चान्यत्तदवाप्नुहि संयुगे   ॥ ३४ ॥

हे पुत्र ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं, हे पाण्डव तुम युद्ध करो और युद्धमें जय प्राप्त करो और इस युद्धमें दूसरी जो भी तुम्हारी इच्छा होगी, उसे भी तुम पाओ ॥ ३४ ॥

व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकांक्षसि ।
एवं गते महाराज न तवास्ति पराजयः   ॥ ३५ ॥

हे पृथा पुत्र, तुम मुझसे क्या वर मांगना चाहते हो, उस वरको तुम मुझसे मांग लो, ऐसा कहनेसे तुम्हारे पराजयकी संभावना नहीं रहेगी ॥ ३५ ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः   ॥ ३६ ॥

हे महाराज ! पुरुष अर्थ धनका दास है, और अर्थ धन किसीका दास नहीं है, यही सत्य है । इस धनके कारण मैं कौरवपक्षसे बंधा हुआ हूँ ॥ ३६ ॥

अतस्त्वां क्लीबवद्वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन ।
हृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत्किमिच्छसि ।   ॥ ३७ ॥

इसीलिए तुमसे मैं एक नपुंसकके समान इस वचनको तुमसे कह रहा हूँ, कि मैं धनके द्वारा हर लिया गया हूँ । अतः हे कुरुकुलमें उत्पन्न युधिष्ठिर ! तुम युद्धके अलावा और जो कुछ मांगना चाहते हो तो मांग लो ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

मन्त्रयस्व महाप्राज्ञ हितैषी मम नित्यशः ।
युध्यस्व कौरवस्यार्थे ममैष सततं वरः   ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महाबुद्धिमान् ! आप ही उसका विचार कीजिए, मेरी प्रार्थना आपसे यही है, कि आप नित्य नित्य (रोज ही) हमारे हितके ऊपर दृष्टि रखकर कौरवोंकी ओरसे युद्ध कीजिए ॥ ३८ ॥

भीष्म उवाच

राजन्किमत्र साह्यं ते करोमि कुरुनन्दन ।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे ब्रूहि यत्ते विवक्षितम्   ॥ ३९ ॥

भीष्म बोले– हे नृप ! हे कुरुनन्दन ! कौरवोंके पक्षकी ओरसे तो मैं इच्छानुसार ही युद्ध करूंगा ही, तो भी मैं तुम्हारी यहां क्या सहायता करूं ? तुम्हारी जो कुछ कहनेकी इच्छा हो, वह कहो ॥ ३९ ॥

×

युधिष्ठिर उवाच

कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम् ।
एतन्मे मन्त्रय हितं यदि श्रेयः प्रपश्यसि ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर बोले– आप युद्धमें अपराजित हैं, अतः युद्धमें मैं आपको किस प्रकारसे जीत सकूंगा, इस विषयमें आप यदि मेरा हितकर और कल्याणका मार्ग कुछ देखते हों, तो उसको विचार करके कहिये ॥ ४० ॥

भीष्म उवाच

न तं पश्यामि कौन्तेय यो मां युध्यन्तमाहवे ।
विजयेत पुमान्कश्चिदपि साक्षाच्छतक्रतुः ॥ ४१ ॥

भीष्म बोले– हे कुन्तीनन्दन ! संग्राममें युद्ध करते हुए मुझे कोई पुरुष पराजित कर सके ऐसा वीर मैं किसीको भी यहां नहीं देखता; साक्षात् इन्द्र भी युद्धमें मुझको नहीं जीत सकेंगे ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हन्त पृच्छामि तस्मात्त्वां पितामह नमोऽस्तु ते ।
जयोपायं ब्रवीहि त्वमात्मनः समरे परैः ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! आपको प्रणाम हो मैं इसी कारणसे तो आपसे पूछता हूं, कि आप युद्धमें शत्रुओंके द्वारा किस प्रकारसे जीते जा सकेंगे, उसका उपाय मुझे बताइए ॥४२॥

भीष्म उवाच

न शत्रुं तात पश्यामि समरे यो जयेत माम् ।
न तावन्मृत्युकालो मे पुनरागमनं कुरु ॥ ४३ ॥

भीष्म बोले– हे तात ! ऐसे किसी भी शत्रुको मैं नहीं देखता कि जो युद्धमें मुझे जीत ले और अभी मेरा मृत्युकाल भी नहीं आया है; इसलिए तुम फिर एक बार मेरे पास आना ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच

ततो युधिष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन ।
शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तमभिवाद्य च ॥ ४४ ॥
प्रायात्पुनर्महाबाहुराचार्यस्य रथं प्रति ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां मध्येन भ्रातृभिः सह ॥ ४५ ॥

सञ्जय बोले– हे कुरुनन्दन धृतराष्ट्र ! इसके बाद महाबाहु युधिष्ठिर भीष्मकी वही बात सिरपर चढाकर और उनको फिर प्रणाम करके भाइयोंके सहित सब सेनाके देखते देखते सेनाके बीचसे होते हुए द्रोणाचार्यके रथकी ओर चले ॥ ४४–४५ ॥

स द्रोणमभिवाद्याथ कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
उवाच वाचा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ४६ ॥

महाराज युधिष्ठिरने अपराजेय द्रोणाचार्यके पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें प्रणाम किया, और उसके बाद अपने कल्याणके निमित्त यह वचन बोले ॥ ४६ ॥

आमन्त्रये त्वां भगवन्योत्स्ये विगतकल्मषः ।
जयेयं च रिपून्सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज ॥ ४७ ॥

हे भगवन् द्विजसत्तम ! मैं निर्दोष अन्तःकरणसे आपसे युद्ध करूंगा तथा हे द्विज ! आपसे अनुज्ञा लेकर मैं सारे शत्रुओंको जीत लूं ॥ ४७ ॥

द्रोण उवाच

यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥ ४८ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे महाराज ! यदि तुम युद्धके निमित्त कृतनिश्चय होकर मेरे पास न आते, तो मैं तुम्हारे पराभवके हेतु सब तरहसे अभिशाप देता ॥ ४८ ॥

तद्युधिष्ठिर तुष्टोऽस्मि पूजितश्च त्वयानघ ।
अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि ॥ ४९ ॥

हे निष्पाप युधिष्ठिर ! मैं तुमसे पूजित होकर तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हुआ हूं, मैं तुम्हें अनुज्ञा देता हूं, कि तुम युद्ध करो, विजय प्राप्त करो ॥ ४९ ॥

करवाणि च ते कामं ब्रूहि यत्तेऽभिकांक्षितम् ।
एवं गते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ५० ॥

हे महाराज ! तुम्हारी जो कुछ आकांक्षा हो कहो, मैं उस तुम्हारी कामनाको पूरा करूंगा । इस उपस्थित समयमें तुम युद्धके अतिरिक्त और क्या चाहते हो ॥ ५० ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ५१ ॥

हे महाराज ! पुरुष धनका दास है, और अर्थ किसीका दास नहीं है, यही सत्य है । इस अर्थके कारण ही मैं कौरवोंके पक्षसे बंधा हुआ हूँ ॥ ५१ ॥

अतस्त्वां क्लीबवद्ब्रूमो युद्धादन्यत्किमिच्छसि ।
योत्स्यामि कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मया ॥ ५२ ॥

इसीलिये मैं क्लीबके समान कह रहा हूं, कि 'तुम युद्धके अतिरिक्त और क्या चाहते हो ?' मैं कौरवोंकी ओरसे युद्ध अवश्य करूंगा, परन्तु तुम्हारी जयके निमित्त मैं अन्तःकरणसे प्रार्थना करूंगा ॥ ५२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

जयमाशास्स्व मे ब्रह्मन्मन्त्रयस्व च मद्धितम् ।
युध्यस्व कौरवस्यार्थे वर एष वृतो मया ॥ ५३ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे ब्रह्मन् ! आपसे निकट मैं यही वर मांगता हूं, कि आप कौरवोंकी ओरसे युद्ध कीजिये, परन्तु मेरे विषयमें जय, आशीर्वाद और मेरे हितसाधनके कार्योंमें मन्त्रणा (सलाह) दिया कीजिये ॥ ५३ ॥

द्रोण उवाच

ध्रुवस्ते विजयो राजन्यस्य मन्त्री हरिस्तव ।
अहं च त्वाभिजानामि रणे शत्रून्विजेष्यसि ॥ ५४ ॥

द्रोणाचार्य बोले— हे राजन् ! जब कृष्ण तुम्हारे मन्त्री हैं, तब तुम्हारी विजय अवश्य होगी; मैं भी तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, कि तुम युद्धमें शत्रुओंको जीतोगे ॥ ५४ ॥

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।
युध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते ॥ ५५ ॥

हे कौन्तेय ! जिस पक्षमें धर्म है, उसी पक्षमें कृष्ण रहते हैं; और जिस पक्षमें कृष्ण रहते हैं, उसी पक्षकी विजय होती है । अतः, अब तुम जाओ और युद्ध करनेमें प्रवृत्त होओ । इस समय यदि मुझसे कुछ और पूछना हो तो पूछो, मैं उसका उत्तर दूंगा ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

पृच्छामि त्वां द्विजश्रेष्ठ शृणु मे यद्विवक्षितम् ।
कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम् ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे द्विज प्रधान ! मेरी जो कहनेकी इच्छा है, वह कहता हूं, आप सुनिये; आप युद्धमें अजेय हैं, अतः मैं आपको संग्राममें कैसे जीत सकूंगा ? ॥ ५६ ॥

द्रोण उवाच

न तेऽस्ति विजयस्तावद्यावद्युध्याम्यहं रणे ।
ममाशु निधने राजन्यतस्व सह सोदरैः ॥ ५७ ॥

द्रोणाचार्य बोले— हे राजन् ! मैं जब तक रणभूमिमें युद्ध करता रहूंगा, तबतक तुम्हारे विजयकी सम्भावना नहीं है; इसलिए तुम अपने भाइयोंके सहित शीघ्र ही मुझे मारनेका यत्न करो ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हन्त तस्मान्महाबाहो वधोपायं वदात्मनः ।
आचार्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महाबाहु आचार्य ! आपको प्रणाम हो, इसी कारण मैं आपको नमस्कार करता हूं और आपसे पूछता हूं, कि आप अपने मरनेका उपाय मुझे बताइए ॥ ५८ ॥

द्रोण उवाच

न शत्रुं तात पश्यामि यो मां हन्याद्रणे स्थितम् ।
युध्यमानं सुसंरब्धं शरवर्षौघवर्षिणम् ॥ ५९ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे तात ! मैं रणमें स्थिर होकर उत्साहपूर्वक बाणोंको वर्षाता हुआ यदि युद्ध करता रहूं, तो भी मेरा वध करनेवाला कोई यहां पर हो, ऐसे किसी वीरको मैं नहीं देखता ॥ ५९ ॥

ऋते प्रायगतं राजन्न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
हन्यान्मां युधि योधानां सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६० ॥

जब मैं रणभूमिमें शस्त्रको परित्याग करके योगमें आसक्त और मरनेके निमित्त निष्ठावान् होकर परमेश्वरके ध्यानमें तत्पर होऊंगा, उस समय वैसी अवस्थामें ही कोई वीर मेरा वध कर सकेगा, ये मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ६० ॥

शस्त्रं चाहं रणे जह्यां श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
श्रद्धेयवाक्यात्पुरुषादेतत्सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६१ ॥

जिसके कहनेपर विश्वास किया जा सकता है, ऐसे किसी मनुष्यके मुखसे यदि अत्यन्त अप्रिय वचन मैं सुन लूंगा, तो मैं रणभूमिमें अस्त्रशस्त्रोंका परित्याग कर दूंगा यह भी मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ ॥ ६१ ॥

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाराज भारद्वाजस्य धीमतः ।
अनुमान्य तमाचार्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति ॥ ६२ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज धृतराष्ट्र ! राजा युधिष्ठिर बुद्धिमान् द्रोणाचार्यके ये सब वचन सुन-कर उनको प्रणाम करके शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यके निकट पहुंचे ॥ ६२ ॥

सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
उवाच दुर्धर्षतमं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ६३ ॥

वचन बोलनेवालोंमें उत्तम महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त कोपी कृपाचार्यकी प्रदक्षिणा और उनको प्रणाम करके यह वचन बोले ॥ ६३ ॥

अनुमानये त्वां योत्स्यामि गुरो विगतकल्मषः ।
जयेयं च रिपून्सर्वाननुज्ञातस्त्वयानघ ॥ ६४ ॥

हे विशुद्धात्मन् आचार्य ! मैं आपके पास युद्धकी अनुमति चाहता हूं, जिससे मैं निर्दोष अन्तःकरणसे युद्ध कर सकूं, हे निष्पाप ! आपसे अनुज्ञा पाकर मैं सब शत्रुओंको जीत लूं ॥ ६४ ॥

कृप उवाच

यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥ ६५ ॥

कृपाचार्य बोले– हे महाराज ! यदि तुम युद्ध करनेमें कृतनिश्चय होकर मेरे पास न आते तो मैं तुम्हारे पराजयके निमित्त सब प्रकारसे अभिशाप देता ॥ ६५ ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ६६ ॥

हे महाराज ! पुरुष धनका दास है धन किसीका भी दास नहीं, यह ठीक ही है । मैं धनके कारण ही कौरवोंके वशीभूत हूं ॥ ६६ ॥

तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः ।
अतस्त्वां क्लीबवद्ब्रूमि युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ६७ ॥

हे महाराज ! मेरा यह निश्चय है, कि मैं कौरवोंकी ओरसे युद्ध करूंगा; अतएव तुमसे यह नपुंसकके समान वचन कह रहा हूँ "युद्धके अतिरिक्त और क्या तुम मुझसे चाहते हो ?" ॥ ६७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हन्त पृच्छामि ते तस्मादाचार्य शृणु मे वचः ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे आचार्य ! मैं इसी कारणसे अति दुःखित अन्तःकरणसे आपसे यह पूछता हूं, आप मेरी बातोंको सुनिये ॥ ६८ ॥

सञ्जय उवाच

इत्युक्त्वा व्यथितो राजा नोवाच गतचेतनः ।
तं गौतमः प्रत्युवाच विज्ञायास्य विवक्षितम् ।
अवध्योऽहं महीपाल युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥ ६९ ॥

संजय बोले– ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर व्यथित और मूर्च्छितसे हो गये, और कुछ भी बात न कह सके । कृपाचार्य उनके कहनेका अभिप्राय जान कर बोले, कि हे महाराज ! मुझे कोई नहीं मार सकता, किन्तु तुम युद्ध करो तुम्हारी विजय होगी ॥ ६९ ॥

प्रीतस्त्वभिगमेनाहं जयं तव नराधिप ।
आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७० ॥

हे मनुष्योंके राजा ! तुम जो मेरे पास आये, इससे मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं; मैं प्रतिदिन खडा होकर तुम्हारे जयकी प्रार्थना करूंगा, यह मैं सत्य ही कहता हूं ॥ ७० ॥

एतच्छ्रुत्वा महाराज गौतमस्य वचस्तदा ।
अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट् ॥ ७१ ॥

हे महाराज ! इसके बाद राजा युधिष्ठिर गौतमनन्दन कृपाचार्यके वचनोंको सुनकर उन्हें प्रणाम कर वहांसे विदा होकर जहां मद्रराज शल्य थे, वहां पहुंचे ॥ ७१ ॥

स शल्यमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ७२ ॥

राजा युधिष्ठिरने प्रतापवान् शल्यके निकट खडे होकर उनकी प्रदक्षिणा की और प्रणाम करके अपने कल्याणके निमित्त यह वचन बोले ॥ ७२ ॥

अनुमानये त्वां योत्स्यामि गुरो विगतकल्मषः ।
जयेयं च महाराज अनुज्ञातस्त्वया रिपून् ॥ ७३ ॥

हे गुरो महाराज ! मैं आपके निकट युद्ध करनेकी अनुमति मांगने आया हूं। मैं जिससे दोषरहित होकर युद्ध कर सकूं और आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर मैं युद्धमें सब प्रबल शत्रुओंको पराजित करूं ॥ ७३ ॥

शल्य उवाच

यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय वै रणे ॥ ७४ ॥

शल्य बोले– हे महाराज ! यदि तुम युद्ध करने निश्चय करके मेरे पास न आते तो मैं युद्धमें तुम्हारे पराजयके निमित्त अवश्य अभिशाप देता ॥ ७४ ॥

तुष्टोऽस्मि पूजितश्चास्मि यत्कांक्षसि तदस्तु ते ।
अनुजानामि चैव त्वां युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥ ७५ ॥

तुमने मेरा सम्मान किया है । इससे मैं तुमपर प्रसन्न हूं । तुम जिस बातकी आकांक्षा करते हो, वह सिद्ध होगी, मैं तुमको अनुमति देता हूं, तुम युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो जय पाओगे ॥७५॥

ब्रूहि चैव परं वीर केनार्थः किं ददामि ते ।
एवं गते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ७६ ॥

हे वीर ! तुमको किस बातकी इच्छा है ? मैं तुम्हें क्या प्रदान करूं ? इस वर्तमान अवस्थामें तुम " युद्धके अतिरिक्त और मुझसे क्या चाहते हो " मुझसे स्पष्टरूपसे कहो ॥ ७६ ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ७७ ॥

पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका भी दास नहीं, यह वचन बहुत ठीक है । मैं अर्थके वशमें होकर कौरवोंके पक्षमें बंधा हुआ हूं ॥ ७७ ॥

करिष्यामि हि ते कामं भागिनेय यथेप्सितम् ।
ब्रवीम्यतः क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ७८ ॥

इस कारण तुमको ऐसा निरर्थक वचन कहता हूं, कि तुम्हारी यथाभिलषित कामना पूर्ण करूंगा । बताओ युद्धके अतिरिक्त तुम्हारी और कौनसी अभिलाषा है ? ॥ ७८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

मन्त्रयस्व महाराज नित्यं मद्धितमुत्तमम् ।
कामं युध्य परस्यार्थे वरमेतद्वृणोम्यहम् ॥ ७९ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महाराज ! आप इच्छानुसार शत्रु पक्षमें रहकर युद्ध कीजिये परन्तु मैं आपसे यही वर मांगता हूं, कि मेरा जिसमें अत्यन्त कल्याण हो, उसीकी आप मन्त्रणा (सलाह) दीजियेगा ॥ ७९ ॥

शल्य उवाच

ब्रूहि किमत्र साह्यं ते करोमि नृपसत्तम ।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे वृत्तोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ८० ॥

शल्य बोले– हे नृपसत्तम ! मैं कौरवोंसे धन लेनेसे उनका दास हो रहा हूं, इसलिए उनके पक्षमें रहकर मैं इच्छानुसार ही तुम्हारे विरुद्ध युद्ध करूंगा । ऐसी स्थितिमें रहकर मैं तुम्हारी क्या सहायता करूं; वह मुझसे कहो ॥ ८० ॥

युधिष्ठिर उवाच

स एव मे वरः सत्य उद्योगे यस्त्वया कृतः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे कार्यस्तेजोवधस्त्वया ॥ ८१ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे मातुल ! आपने युद्धके उद्योगके समय जो वर देना स्वीकार किया था, कि संग्रामभूमिमें कर्णके तेजका नाश करूंगा । वही वर मैं आपसे मांगता हूं ॥ ८१ ॥

शल्य उवाच

सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितः ।
गच्छ युध्यस्व विस्रब्धं प्रतिजाने जयं तव ॥ ८२ ॥

शल्य बोले– हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! तुम्हारी यह चाही हुई अभिलाषा पूरी होगी, जाओ निश्चिन्त होकर युद्ध करो, मैं तुम्हारे विजयकी भविष्यवाणी कर रहा हूँ ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच

अनुमान्याथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम् ।
निर्जगाम महासैन्याद्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ८३ ॥

संजय बोले— इसके बाद राजा युधिष्ठिर अपने मामा मद्रराज शल्यकी अनुमति लेकर और उन्हें प्रणाम कर भाइयोंके सहित उस महा सेनाके बीचसे बाहर निकले ॥ ८३ ॥

वासुदेवस्तु राधेयमाहवेऽभिजगाम वै ।
तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे गदाग्रजः ॥ ८४ ॥

गदाग्रज बलदेवके प्रिय भ्राता श्रीकृष्ण युद्धकी भूमिमें सेनासे अलग राधापुत्र कर्णके निकट गये, और पाण्डवोंका प्रयोजन सिद्ध करनेके निमित्त कर्णसे यह वचन बोले ॥ ८४ ॥

श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात्किल न योत्स्यसि ।
अस्मान्वरय राधेय यावद्भीष्मो न हन्यते ॥ ८५ ॥

हे कर्ण ! मैंने सुना है, कि तुम भीष्मके द्वेषसे अभी युद्ध न करोगे; अतः जब तक भीष्म नहीं मारे जाते हैं, तब तक तुम हम लोगोंका पक्ष स्वीकार कर लो ॥ ८५ ॥

हते तु भीष्मे राधेय पुनरेष्यसि संयुगे ।
धार्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत्समम् ॥ ८६ ॥

यदि तुम दोनों ही पक्षको समान मानते हो, तो भीष्मके मरजानेपर फिर दुर्योधनकी सहायता करनेके लिए पाण्डवोंके विरुद्ध फिर युद्ध करने लगना ॥ ८६ ॥

कर्ण उवाच

न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ८७ ॥

कर्ण बोले— हे केशव ! मैं दुर्योधनका अप्रिय कार्य नहीं कर सकता । तुम मुझको दुर्योधनका हितैषी और उसके निमित्त मुझे प्राणत्याग करनेवाला समझो ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्तत भारत ।
युधिष्ठिरपुरोगैश्च पाण्डवैः सह सङ्गतः ॥ ८८ ॥

संजय बोले— हे भारत ! कृष्ण कर्णकी यह बात सुनकर वहांसे लौटे और युधिष्ठिर प्रभृति पाण्डवोंमें आकर मिल गये ॥ ८८ ॥

अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत्पाण्डवाग्रजः ।
योऽस्मान्वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात् ॥ ८९ ॥

इसके बाद राजा युधिष्ठिर सेनाके बीचमें यह वचन उच्च स्वरसे बोले, कि जो इस युद्धमें हमारी सहायताके निमित्त हम लोगोंको वरण करेंगे, मैं उनको वरण करूंगा ॥ ८९ ॥

×

अथ तान्समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत् ।
प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ९० ॥

तब युयुत्सु उन लोगोंको इस प्रकार देखके प्रीतियुक्त चित्तसे कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले ॥ ९० ॥

अहं योत्स्यामि मिषतः संयुगे धार्तराष्ट्रजान् ।
युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥ ९१ ॥

हे निष्पाप धर्मराज ! यदि आप मुझे वरण करेंगे, तो मैं रणभूमिमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे विरुद्ध आपकी ओरसे युद्ध करूंगा ॥ ९१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान् ।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥ ९२ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे युयुत्सु ! चले आओ, हम सब तुम्हारे मूर्ख भाइयोंके साथ युद्ध करेंगे । श्रीकृष्ण और हम सब लोग तुमसे कहते हैं ॥ ९२ ॥

वृणोमि त्वां महाबाहो युध्यस्व मम कारणात् ।
त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥ ९३ ॥

हे महाबाहो ! तुमको युद्ध करनेके निमित्त हम लोग वरण करते हैं; तुम हम लोगोंके निमित्त युद्ध करो; धृतराष्ट्रके पिण्डकी आशा और वंशकी रक्षा तुमसे ही देखी जा रही है ॥ ९३ ॥

भजस्वास्मान्राजपुत्र भजमानान्महाद्युते ।
न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ९४ ॥

हे महा–उज्वल रूप सम्पन्न राजपुत्र ! तुमको हमलोग ग्रहण करनेके अभिलाषी हैं; तुम भी हमलोगोंको ग्रहण करो। अत्यन्त क्रोधी और नीचबुद्धि दुर्योधन अब जीता नहीं बचेगा ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच

ततो युयुत्सुः कौरव्यः परित्यज्य सुतांस्तव ।
जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम् ॥ ९५ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! तब कौरव युयुत्सु आपके पुत्र तथा कौरवोंको परित्याग करके नगाडा बजवाते हुए पाण्डवोंकी सेनामें चले गये ॥ ९५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा सम्प्रहृष्टः सहानुजैः ।
जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत्कनकोज्ज्वलम् ॥ ९६ ॥

इसके बाद महाभुज राजा युधिष्ठिरने भाईयोंके सहित अत्यन्त प्रसन्न और आनंदित होकर प्रकाशमान सोनेके कवचको फिर पहन लिया ॥ ९६ ॥

प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे रथान्स्वान्पुरुषर्षभाः ।
ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥ ९७ ॥

और वे सब पुरुषसिंह अपने अपने रथपर फिर चढे और अपने पहिलेके रचे हुए व्यूहको फिर पहलेके समान बना लिया ॥ ९७ ॥

अवादयन्दुन्दुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान् ।
सिंहनादांश्च विविधान्विनेदुः पुरुषर्षभाः ॥ ९८ ॥

उन सब पुरुषश्रेष्ठोंने सैकडों नगाडे और बहुतसे बाजोंको बजाया, नाना प्रकारके सिंहनाद किए ॥ ९८ ॥

रथस्थान्पुरुषव्याघ्रान्पाण्डवान्प्रेक्ष्य पार्थिवाः ।
धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे मुदा ॥ ९९ ॥

धृष्टद्युम्न आदि सब राजा उस समय पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी पाण्डवोंको रथके ऊपर चढे हुए देखकर प्रसन्न और हर्षित हुए ॥ ९९ ॥

गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान्मानयतां च तान् ।
दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयांचक्रिरे भृशम् ॥ १०० ॥

उन सब मानी, पुरुषोंके सम्मानकी रक्षा करनेवाले पाण्डवोंके गौरवको देख राजागण उनकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ १०० ॥

सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम् ।
दयां च ज्ञातिषु परां कथयांचक्रिरे नृपाः ॥ १०१ ॥

और महात्मा पाण्डवोंके यथा समय पर सुहृद्भाव कृपा स्वभाव और विशेषतः ज्ञातियोंके ऊपर उनके परमदयाकी कथाओंको आपसमें कहने लगे ॥ १०१ ॥

साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः ।
वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षिणीः ॥ १०२ ॥

उन कीर्त्तिमान् पुरुषसिंहोंके प्रति चारों ओरसे "साधु साधु" और स्वस्ति युक्त पुण्य वाक्य सब ओर सुनाई पडने लगे, उससे वहांपर इकट्ठे हुए सबके मन और हृदय हर्षित होने लगे ॥ १०२ ॥

म्लेच्छाश्चार्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तदा ।
वृत्तं तत्पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ १०३ ॥

म्लेच्छ वा आर्य पुरुष या जिन्होंने भी वहांपर पाण्डवोंके चरित्रोंको देखा अथवा सुना, वे लोग गद्गद होकर रोने लगे ॥ १०३ ॥

ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्चैव पुष्करान् ।
शङ्खांश्च गोक्षीरनिभान्दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः ॥ १०४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ १५६३ ॥

इसके बाद वे मनस्वी वीर प्रसन्न होकर सैकडों सहस्रों महाभेरी आदि पुष्कल बाजे और गायके दूधके समान उज्ज्वल शंखोंको बजाने लगे ॥ १०४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ १५६३ ॥

: ४२ :

धृतराष्ट्र उवाच

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवास्तथा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– मेरी और पाण्डवोंकी सेनाका व्यूह इस प्रकारसे जब रचा गया, तब पाण्डवों और कौरवोंमेंसे किसने पहिले प्रहार आरम्भ किया ? ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

भ्रातृभिः सहितो राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– आपका पुत्र दुर्योधन अपने भाईयोंको साथ लेकर भीष्मको आगे करके सेनाके साथ रणभूमिकी ओर बढा ॥ २ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः ।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ ३ ॥

उसी तरहसे पाण्डव भी प्रसन्नचित्त होकर भीमसेनको आगे करके भीष्मके साथ युद्ध करनेकी अभिलाषासे आगे बढे ॥ ३ ॥

क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविषाणिकाः ।
भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिस्वनाः ॥ ४ ॥

इसके बाद क्रकच, गोशृंग, भेरी, मृदङ्ग, मुरज आदि विविध बाजे बजने लगे । उसी समय घोडोंका महाघोर शब्द होने लगा, हाथी चिङ्घाड मारने लगे ॥ ४ ॥

उभयोः सेनयो राजंस्ततस्तेऽस्मान्समाद्रवन्।
वयं प्रतिनदन्तश्च तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ५ ॥

वीरोंका सिंहनाद और किलकिला शब्द, दोनों सेनाओंके बीच होने लगा। इसके बाद वे शत्रु हमारी ओर दौडे, और हमलोग भी उनकी ओर तर्जन गर्जन करते हुए वेगसे दौडे, इससे दोनों सेनाओंके विविध शब्दोंसे महातुमुल कोलाहल होने लगा ॥ ५ ॥

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये समागमे पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ ६ ॥

पाण्डव और धृतराष्ट्र दोनों पक्षोंकी महासेनायें उस महाभयङ्कर समागममें शंख और भेरी आदि शब्दोंसे वायुके कारण कांपते हुए वनके वृक्षोंकी भांति कांपने लगीं ॥ ६ ॥

नरेन्द्रनागाश्वरथाकुलानामभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ७ ॥

उस अशुभ मुहूर्तपर वहांपर आये हुए राजाओंके हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त सैनिक वीरोंका तुमुल शब्द वायुसे क्षुब्ध हुए अनेक समुद्रोंके शब्दोंकी भांति प्रकट होने लगा ॥ ७ ॥

तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद्गोवृषो यथा ॥ ८ ॥

इस प्रकारके रोएं खडे कर देनेवाले शब्दके उठनेपर महाबाहु भीमसेन गो-वृषभकी भांति गर्जने लगे ॥ ८ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वारणानां च बृंहितम्।
सिंहनादं च सैन्यानां भीमसेनरवोऽभ्यभूत् ॥ ९ ॥

भीमसेनकी वह गर्जना शङ्ख, दुन्दुभी (नगाडे) आदिक बाजे, हाथियोंके चिङ्घाड और सेनाके सब पुरुषोंके सिंहनादको भी दबा देनेवाली थी ॥ ९ ॥

हयानां हेषमाणानामनीकेषु सहस्रशः।
सर्वानभ्यभवच्छब्दान्भीमसेनस्य निस्वनः ॥ १० ॥

उन सेनाओंमें हजारोंकी संख्यामें हिनहिनाते हुए घोडोंका जो शब्द हुआ, उस शब्दसे भीमसेनकी गर्जना बढकर हुई ॥ १० ॥

तं श्रुत्वा निनदं तस्य सैन्यास्तव वितत्रसुः।
जीमूतस्येव नदतः शक्राशनिसमस्वनम् ॥ ११ ॥

बादलके समान गर्जता हुआ भीमसेनका वह महाशब्द इन्द्रके वज्रके समान हुआ, उसको सुनकर आपकी सेनाके लोग भयभीत हो गये ॥ ११ ॥

वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
शब्देन तस्य वीरस्य सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ १२ ॥

जिस तरहसे सिंहकी गर्जना सुनकर वनके सब पशु मल-मूत्र करने लगते हैं, उसी तरहसे सम्पूर्ण सवारीके वाहन घोडे और हाथी आदि उस महावीर भीमकी गर्जना सुनकर मल-मूत्र करने लगे ॥ १२ ॥

दर्शयन्घोरमात्मानं महाभ्रमिव नादयन् ।
विभीषयंस्तव सुतांस्तव सेनां समभ्ययात् ॥ १३ ॥

वह वीर भीमसेन बादलोंकी भांति गरजता हुआ भय उत्पन्न करनेवाली अपनी आकृतिको दिखाकर आपके पुत्रोंको भयभीत करता हुआ आपकी सेनाकी ओर वेगसे बढा ॥ १३ ॥

तमायान्तं महेष्वासं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
छादयन्तः शरव्रातैर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १४ ॥

महाधनुर्धारी भीमसेनको आता हुआ देखकर सभी भाईओंने सूर्यको जैसे मेघ आच्छादित करते है उसी तरह बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करते हुए उस भीमको घेर लिया ॥ १४ ॥

दुर्योधनश्च पुत्रस्ते दुर्मुखो दुःसहः शलः ।
दुःशासनश्चातिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृप ॥ १५ ॥

हे राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधन, दुर्मुख, दुःसह, शल, अतिरथ दुःशासन, दुर्मर्षण ॥ १५ ॥

विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महाचापानि धुन्वन्तो जलदा इव विद्युतः ।
आददानाश्च नाराचान्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ १७ ॥

विविंशति, चित्रसेन, महारथ विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज और वीर्यवान् सोमदत्ति आदि सबने जैसे जलसे भरे बादलसे बिजली चमकती है, उसी प्रकारसे धनुषपर टङ्कार देते हुए सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे भीमसेनको घेर लिया ॥ १६-१७ ॥

अथ तान्द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १८ ॥
धार्तराष्ट्रान्प्रतिययुरर्दयन्तः शितैः शरैः ।
वज्रैरिव महावेगैः शिखराणि धराभृताम् ॥ १९ ॥

तब द्रौपदीके पांचों पुत्र और सुभद्रानन्दन महारथी अभिमन्यु तथा नकुल, सहदेव और पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्नने अपने तीखे बाणोंसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको इस प्रकारसे विदारण किया, जैसे इन्द्रने महावेगवान् वज्रोंसे पर्वतके शिखरोंको तोड डाला था । इस प्रकार वे धृतराष्ट्र पुत्रोंकी तरफ बढे ॥ १८-१९ ॥

तस्मिन्प्रथमसंमर्दे भीमज्यातलनिस्वने ।
तावकानां परेषां च नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥ २० ॥

अनेक धनुर्धारियोंके धनुष और करतालियोंके भयानक शब्दसे युक्त उस प्रथम दिनकी लडाईमें तुम्हारे और पाण्डवोंके पक्षका कोई भी वीर पीछे न हटा ॥ २० ॥

लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ ।
निमित्तवेधिनां राजञ्शरानुत्सृजतां भृशम् ॥ २१ ॥

हे भरतसिंह महाराज ! द्रोण-शिष्योंको मैंने बार बार बाण चलाते हुए उनके हस्तकी लाघवता (हाथकी फुर्ती) और लक्षका वेध करते हुए देखा ॥ २१ ॥

नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा ।
विनिश्चेरुः शरा दीप्ता ज्योतींषीव नभस्तलात् ॥ २२ ॥

उस समय टंकारते हुए धनुषोंका शब्द शान्त नहीं हुआ और आकाशमार्गसे बाणोंके झुण्ड प्रकाशमान चमकते हुए पदार्थोंकी भांति चलने लगे ॥ २२ ॥

सर्वे त्वन्ये महीपालाः प्रेक्षका इव भारत ।
ददृशुर्दर्शनीयं तं भीमं ज्ञातिसमागमम् ॥ २३ ॥

हे भारत ! अन्य राजा तो उस समय देखनेवालोंकी तरह खडे होकर उस भयङ्कर लडाईका कौतुक और ज्ञातिवर्गोंका युद्ध देखने लगे ॥ २३ ॥

ततस्ते जातसंरम्भाः परस्परकृतागसः ।
अन्योन्यस्पर्धया राजन्व्यायच्छन्त महारथाः ॥ २४ ॥
कुरुपाण्डवसेने ते हस्त्यश्वरथसङ्कुले ।
शुशुभाते रणेऽतीव पटे चित्रगते इव ॥ २५ ॥

इसके बाद वे महारथी परस्पर अपराधी होनेके कारण क्रोधसे भरकर एक दूसरेके वधके निमित्त इच्छा करते हुए आपसमें युद्ध करने लगे। हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त वह कौरव और पाण्डवोंकी सेना कपडेके ऊपर लिखे हुए चित्रकी भांति रणभूमिमें अत्यन्त शोभायमान हुई ॥ २४-२५ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
सहसैन्याः समापेतुः पुत्रस्य तव शासनात् ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर वे सब राजा तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी आज्ञानुसार अपने अपने धनुष और सेनाको साथ लेकर उस युद्धक्षेत्रमें जा पहुंचे ॥ २६ ॥

युधिष्ठिरेण चादिष्टाः पार्थिवास्ते सहस्रशः ।
विनदन्तः समापेतुः पुत्रस्य तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥

उधरसे हजारों राजा महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे गर्जते हुए आपकी सेनापर टूट पडे ॥ २७ ॥

उभयोः सेनयोस्तीव्रः सैन्यानां स समागमः ।
अन्तर्धीयत चादित्यः सैन्येन रजसावृतः ॥ २८ ॥

दोनों सेनाके पक्षके दलोंका विकराल रूप दीख पडने लगा । उन सब सेनाओंके संमिलित होनेपर वीरोंके चरणोंसे उठी हुई धूलिसे आकाशमें सूर्य छिप गया ॥ २८ ॥

प्रयुद्धानां प्रभग्नानां पुनरावर्तितामपि ।
नात्र स्वेषां परेषां वा विशेषः समजायत ॥ २९ ॥

क्या स्वपक्षीय, क्या शत्रुपक्षीय, किसीके भी युद्ध करने, भागने अथवा फिर युद्धमें प्रवृत्त होनेमें कुछ विशेष बात नहीं दीख पडी ॥ २९ ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ।
अति सर्वाण्यनीकानि पिता तेऽभिव्यरोचत ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ १५९२ ॥

उस महा भयङ्कर तथा बहुत बडे रणभूमिके स्थान पर आपके पिता भीष्म इस प्रकारकी बहुतसी सेनाको लांघकर सेनाके आगे प्रकाशित होने लगे ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें बयालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ १५९२ ॥

: ४३ :

सञ्जय उवाच

पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो विशां पते ।
प्रावर्तत महाघोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! उस भयङ्कर दिनके पूर्व भागसे ही राजाओंके शरीरोंको काटनेवाला महायुद्ध आरम्भ हुआ ॥ १ ॥

कुरूणां पाण्डवानां च संग्रामे विजिगीषताम् ।
सिंहानामिव संह्रादो दिवमुर्वीं च नादयन् ॥ २ ॥

संग्राममें एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करते हुए कौरवों और पाण्डवोंके सिंहनादसे पृथ्वी और आकाश गूंज उठा ॥ २ ॥

आसीत्किलकिलाशब्दस्तलशङ्खरवैः सह ।
जज्ञिरे सिंहनादाश्च शूराणां प्रतिगर्जताम् ॥ ३ ॥

शङ्खोंकी ध्वनि और वीरोंका किलकिल शब्द हो रहा था, उसपर भी वीरोंका सिंहनाद और गर्जनका शब्द होने लगा ॥ ३ ॥

तलत्राभिहताश्चैव ज्याशब्दा भरतर्षभ ।
पत्तीनां पादशब्दाश्च वाजिनां च महास्वनाः ॥ ४ ॥

हे भरतसिंह ! धनुषोंके चढाने और दस्तानोंके शब्द, पैदलोंके पांवके शब्द, घोडोंकी घोर हिनहिनाहट ॥ ४ ॥

तोत्रांकुशनिपाताश्च आयुधानां च निस्वनाः ।
घण्टाशब्दाश्च नागानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ ५ ॥

कोडे और अंकुशोंका चलनेकी आवाज, शस्त्रोंकी आवाज, एक दूसरेकी ओर दौडते हुए हाथियोंके घण्टेके शब्द ॥ ५ ॥

तस्मिन्समुदिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
बभूव रथनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ ६ ॥

और रथोंके चलनेसे बादलकी भांति महा भयङ्कर गम्भीर और रोंएंको खडा कर देनेवाला विकराल शब्द होने लगा ॥ ६ ॥

ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ७ ॥

कौरव जीनेकी आशा छोडकर और अपने मनको क्रूर बनाकर पताकाओंको फहराते हुए पाण्डवोंकी सेनापर टूट पडे ॥ ७ ॥

स्वयं शान्तनवो राजन्नभ्यधावद्धनञ्जयम् ।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं कालदण्डोपमं रणे ॥ ८ ॥

स्वयं शान्तनुपुत्र भीष्म यमराजके दण्डके समान विकराल और भयंकर धनुष लेकर अर्जुनकी ओर वेगसे दौडे ॥ ८ ॥

अर्जुनोऽपि धनुर्गृह्य गाण्डीवं लोकविश्रुतम् ।
अभ्यधावत तेजस्वी गाङ्गेयं रणमूर्धनि ॥ ९ ॥

तेजस्वी अर्जुन भी जगविख्यात गाण्डीव धनुष लेकर रणभूमिमें भीष्मकी ओर वेगसे दौडे ॥ ९ ॥

×

तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थं विद्ध्वा नाकम्पयद्बली ।
तथैव पाण्डवो राजन्भीष्मं नाकम्पयद्युधि ॥ १० ॥

वे दोनों कुरु-शार्दूल एक दूसरेके वधकी इच्छा करने लगे। महाबलवान् गङ्गापुत्र भीष्म युद्धमें अर्जुनको पीछे न हटा सके, और उसी भांति अर्जुन भी भीष्मको युद्धसे पीछे हटानेमें समर्थ न हुए ॥ १० ॥

सात्यकिश्च महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात् ।
तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ११ ॥

महाधनुर्धारी सात्यकि कृतवर्मासे जा भिडे उन दोनोंका रोंएं खडे कर देनेवाला भयङ्कर युद्ध हुआ ॥ ११ ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम् ।
आनर्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम् ॥ १२ ॥

सात्यकि कृतवर्मापर और कृतवर्मा सात्यकिपर अस्त्र शस्त्रोंका प्रहार करते हुए तथा तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरेको घायल करते हुए एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे ॥ १२ ॥

तौ शराचितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ ।
वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १३ ॥

बाणोंसे विद्ध हुए संपूर्ण शरीरवाले वे दो महाबलशाली वीर ऐसे सुशोभित हुए जैसे वसन्त-कालमें किंशुक (पलास) वृक्ष फूला हुआ शोभायमान लगता है ॥ १३ ॥

अभिमन्युर्महेष्वासो बृहद्बलमयोधयत् ।
ततः कोसलको राजा सौभद्रस्य विशां पते ।
ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिं च न्यपातयत् ॥ १४ ॥

महाधनुर्धर अभिमन्यु कोसलपति बृहद्बलसे जा भिडे, तब बृहद्बलने युद्धमें अभिमन्युकी ध्वजाको काटकर गिरा दिया और उनके सारथीको भी मारकर नीचे गिरा दिया। हे महाराज ! रथसारथीके मार दिए जानेपर सुभद्रानन्दन अभिमन्युने महाक्रोध करके नौ बाणोंसे बृहद्बलको घायल किया ॥ १४ ॥

सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथौ ।
बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः ॥ १५ ॥
अथापराभ्यां भल्लाभ्यां पीताभ्यामरिमर्दनः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम् ।
अन्योन्यं च शरैस्तीक्ष्णैः क्रुद्धौ राजंस्ततक्षतुः ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर सोनेसे मढे होनेके कारण पीले दीखनेवाले एक बाणसे बृहद्बलकी पताका काट गिराई। एक बाणसे सारथी और दूसरे बाणसे उनके पृष्ठरक्षकको काट डाला; और हे राजन् ! इस प्रकार दोनों क्रुद्ध होकर एक दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे ॥१५-१६॥

मानिनं समरे हृष्टं कृतवैरं महारथम् ।
भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत् ॥ १७ ॥

हे महाराज ! भीमसेनने युद्ध करनेमें कुशल, महारथी, अभिमानी, शत्रुताकी जडको उत्पन्न करनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनपर आक्रमण किया ॥ १७ ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ ।
अन्योन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे ॥ १८ ॥

वे दोनों नरसिंह, महाबलशाली, कुरुओंमें प्रधान वीर युद्धकी भूमिमें एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥

तौ तु वीक्ष्य महात्मानौ कृतिनौ चित्रयोधिनौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां समपद्यत भारत ॥ १९ ॥

हे भारत ! उन युद्धविद्याके जाननेवाले दोनों महात्माओंको विचित्र युद्ध करते हुए देखकर प्राणियोंको महा विस्मय हुआ ॥ १९ ॥

दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महारथम् ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥

दुःशासनने महारथी नकुलपर आक्रमण करके उसे अत्यन्त तीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे बिद्ध किया ॥ २० ॥

तस्य माद्रीसुतः केतुं सशरं च शरासनम् ।
चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्दयत् ॥ २१ ॥

हे भारत ! तब माद्रीपुत्र नकुलने हंसकर तीक्ष्ण बाणोंसे दुःशासनके धनुषको बाणोंके समेत काटके पृथ्वीमें गिरा दिया और उसकी ध्वजाको भी काट डाला; नकुलने फिर दुःशासनको और पचीस क्षुद्रक बाणोंसे बींध डाला ॥ २१ ॥

पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे ।
युगेषां चिच्छिदे बाणैर्ध्वजं चैव न्यपातयत् ॥ २२ ॥

फिर तेरे पुत्र दुर्धर्ष दुःशासनने अपने बाणोंसे उस युद्धमें नकुलके रथ, घोडे और पताकाको काटकर गिरा दिया ॥ २२ ॥

दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम् ।
विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे ॥ २३ ॥

दुर्मुख उस महायुद्धमें अपनी विजयके लिये बडा प्रयत्न करनेवाले महाबली सहदेवकी ओर अपने बाणोंकी वर्षासे उनको विद्ध करने लगा ॥ २३ ॥

सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महाहवे ।
शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम् ॥ २४ ॥

अनन्तर वीर सहदेवने उस महायुद्धमें अत्यन्त तीक्ष्ण वाणोंसे दुर्मुखके सारथीको मारके गिरा दिया ॥ २४ ॥

तावन्योन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ ।
त्रासयेतां शरैर्घोरैः कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २५ ॥

वे दोनों युद्धमें मतवाले होकर एक दूसरेपर आक्रमण करने लगे और एक दूसरेके प्रतिकारकी कोशिश करते हुए अपने वाणोंके समूहसे सबको भयभीत करने लगे ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजानमभ्ययात् ।
तस्य मद्राधिपश्चापं द्विधा चिच्छेद मारिष ॥ २६ ॥

स्वयं धर्मराज युधिष्ठिरने मद्रराज शल्यपर आक्रमण किया । राजन् ! मद्रराज शल्यने उनकी दृष्टिके संमुख ही युधिष्ठिरके धनुषको काटके दो टुकडे कर दिये ॥ २६ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय वेगवद्बलवत्तरम् ॥ २७ ॥
ततो मद्रेश्वरं राजा शरैः संनतपर्वभिः ।
छादयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २८ ॥

तब कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिरने उस कटे हुए धनुषको फेंक कर शीघ्रतासे दूसरा वेगवान् और दृढतर धनुष ग्रहण किया । और अत्यन्त क्रोध करके पंखयुक्त अपने वाणोंसे मद्रराजको छिपा लिया और 'खडा रह खडा रह' ऐसा वचन कहने लगे ॥ २७-२८ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणमभ्यद्रवत भारत ।
तस्य द्रोणः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ।
त्रिधा चिच्छेद समरे यतमानस्य कार्मुकम् ॥ २९ ॥

हे भरतनन्दन ! अनन्तर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने चढ आये । तब महारथ द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रोध करके पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नके मारनेके साधन दृढ धनुषको तीन जगहमें काट डाला ॥ २९ ॥

शरं चैव महाघोरं कालदण्डमिवापरम् ।
प्रेषयामास समरे सोऽस्य काये न्यमज्जत ॥ ३० ॥
अथान्यद्धनुरादाय सायकांश्च चतुर्दश
द्रोणं द्रुपदपुत्रस्तु प्रतिविव्याध संयुगे ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ चक्रतुः सुभृशं रणम् ॥ ३१ ॥

दूसरे कालदण्डके समान एक भयंकर बाण धृष्टद्युम्नकी ओर चलाया, वह बाण उसके शरीरमें घुस गया। तत्पश्चात् द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर चौदह बाणोंसे उस युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यको विद्ध किया। फिर वे दोनों महावीर क्रोधसे पूरित होकर परस्पर महायुद्ध करने लगे ॥ ३०-३१ ॥

सौमदत्तिं रणे शङ्खो रभसं रभसो युधि ।
प्रत्युद्ययौ महाराज तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३२ ॥

महाराज! शीघ्रगामी विराटपुत्र शंखने सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवापर सत्वर आक्रमण किया और "खडा रह, खडा रह" करके पुकारने लगा ॥ ३२ ॥

तस्य वै दक्षिणं वीरो निर्विभेद रणे भुजम् ।
सौमदत्तिस्तथा शङ्खं जत्रुदेशे समाहनत् ॥ ३३ ॥

फिर उस वीरने अपने बाणसे सोमदत्त नन्दनकी दाहिनी भुजा विद्ध की। फिर सोमदत्तके पुत्रने भी शङ्खका कोष-स्थान विद्ध किया ॥ ३३ ॥

ततोः समभवद्युद्धं घोररूपं विशां पते ।
दृप्तयोः समरे तूर्णं वृत्रवासवयोरिव ॥ ३४ ॥

हे नरनाथ! उन दोनों अभिमानी वीरोंका भयानक युद्ध यथार्थमें पूर्वकालमें वृत्र और इन्द्रका युद्ध जैसा हुआ वैसाही दीखने लगा ॥ ३४ ॥

बाह्लीकं तु रणे क्रुद्धं क्रुद्धरूपो विशां पते ।
अभ्यद्रवदमेयात्मा धृष्टकेतुर्महारथः ॥ ३५ ॥

हे राजन्! अपरिमित आत्मबलसे महात्मा महारथी धृष्टकेतु क्रुद्ध होकर क्रोधी बाह्लिककी ओर रणक्षेत्रमें दौडे ॥ ३५ ॥

बाह्लीकस्तु ततो राजन्धृष्टकेतुममर्षणम् ।
शरैर्बहुभिरानर्छत्सिंहनादमथानदत् ॥ ३६ ॥

अनन्तर, हे राजन्! अमर्षशील बाह्लिकने धृष्टकेतुको अनेक बाणोंसे मोहित कर दिया और फिर सिंहनाद करने लगे ॥ ३६ ॥

चेदिराजस्तु सङ्क्रुद्धो बाह्लीकं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे तूर्णं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३७ ॥

तब चेदिराज धृष्टकेतुने क्रोधके वशमें होकर मतवाला हाथी जैसा मदोन्मत्त गजराजपर हमला करता है, उसीके समान ब्राह्लिकपर तुरंत ही आक्रमण करते हुए उस युद्धभूमिमें नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ३७ ॥

तौ तत्र समरे क्रुद्धौ नर्दन्तौ च मुहुर्मुहुः ।
समीयतुः सुसंक्रुद्धावङ्गारकबुधाविव ॥ ३८ ॥

वे दोनों वीर उस रणभूमिमें क्रुद्ध होकर बार बार तर्जन गर्जन करते हुए मङ्गल और बुध ग्रहोंकी भांति आपसमें क्रोध पूर्वक युद्ध करने लगे ॥ ३८ ॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः ।
अलम्बुसं प्रत्युदियाद्बलं शक्र इवाहवे ॥ ३९ ॥

क्रूर-कर्म करनेवाले घटोत्कच राक्षसने महाक्रूर अलम्बुष राक्षस पर इस प्रकारसे आक्रमण किया, जैसे इन्द्रने युद्धमें बलासुरके ऊपर आक्रमण किया था ॥ ३९ ॥

घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ।
नवत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्दारयामास भारत ॥ ४० ॥

हे भरतनंदन ! घटोत्कचने क्रोधित होकर नब्बे तीक्ष्ण बाणोंसे महाबली राक्षस अलम्बुषको क्षत विक्षत (घायल) कर दिया ॥ ४० ॥

अलम्बुसस्तु समरे भैमसेनिं महाबलम् ।
बहुधा दारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४१ ॥

अलम्बुषने भी महाबली भीमसेनके पुत्र घटोत्कचको अनेक अच्छे नतपर्व बाणोंसे मारके क्षत विक्षत (घायल) किया ॥ ४१ ॥

व्यभ्राजेतां ततस्तौ तु संयुगे शरविक्षतौ ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४२ ॥

वे दोनों वीर संग्रामभूमिमें बाणोंसे जर्जरित होकर इस प्रकारसे शोभित हुए, जैसे देवता और असुरोंके युद्धमें इन्द्र और बलासुरकी शोभा हुई थी ॥ ४२ ॥

शिखण्डी समरे राजन्द्रौणिमभ्युद्ययौ बली।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः शिखण्डिनमवस्थितम् ॥ ४३ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं विद्ध्वा व्यकम्पयत्।
शिखण्ड्यपि ततो राजन्द्रोणपुत्रमताडयत् ॥ ४४ ॥
सायकेन सुपीतेन तीक्ष्णेन निशितेन च।
तौ जघ्नतुस्तदान्योन्यं शरैर्बहुविधैर्मृधे ॥ ४५ ॥

हे महाराज! वलवान् शिखण्डी रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामासे युद्ध करनेके निमित्त आगे बढे। इसके अनन्तर अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर शिखण्डीको अत्यंत तीक्ष्ण नाराच बाणसे अत्यंत विद्ध करके कम्पित किया। महाराज! फिर शिखण्डीने भी तीक्ष्ण और चोखे अच्छी प्रकारसे पानी चढे हुए बाणोंसे द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाको प्रहार किया; अनन्तर वे दोनों अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ ४३-४५ ॥

भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः।
अभ्ययात्त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ४६ ॥

सेनापति विराट् शीघ्रता सहित वीरतासे भरे हुए राजा भगदत्त पर चढ आये; अनन्तर उन दोनोंका घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ४६ ॥

विराटो भगदत्तेन शरवर्षेण ताडितः।
अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाचलम् ॥ ४७ ॥

हे भारत! जिस प्रकारसे बादल पहाडों पर जलकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकारसे राजा विराटने क्रुद्ध होकर अपने बाणोंकी वर्षासे भगदत्तको छिपा दिया ॥ ४७ ॥

भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम्।
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥ ४८ ॥

तब भगदत्तने भी समरभूमिमें जैसे बादलोंसे उदित सूर्य छिपा जाता है, उसी भांति बाणोंसे राजा विराटको शीघ्र ही छिपा दिया ॥ ४८ ॥

बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ।
तं कृपः शरवर्षेण छादयामास भारत ॥ ४९ ॥

शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य केकयाधिपति बृहत्क्षत्रकी ओर चढ धाये और अपने बाणोंकी वर्षासे कृपने उनको छिपा दिया ॥ ४९ ॥

गौतमं केकयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याभ्यपूरयत् ।
तावन्योन्यं हयान्हत्वा धनुषी विनिकृत्य वै ॥ ५० ॥
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ।
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ॥ ५१ ॥

केकय-राजने भी अत्यन्त क्रोधसे अपने बाणोंसे कृपाचार्यको परिपूरित कर दिया । हे राजन्! अनन्तर उन दोनोंमें एक दूसरेके धनुष और अश्व तथा रथ छेदन करके दोनों विना रथके हो गये; अब वे दोनों क्रोधित होकर तलवार खींचकर खडे होके खड्गहीसे युद्ध करने लगे; फिर उन दोनोंका महा घोर एवं दारुण युद्ध उस संग्रामभूमिमें दीखने लगा ॥ ५०-५१ ॥

द्रुपदस्तु ततो राजा सैन्धवं वै जयद्रथम् ।
अभ्युद्ययौ संप्रहृष्टो हृष्टरूपं परन्तप ॥ ५२ ॥

हे शत्रुओंको संताप देनेवाले ! अनन्तर राजा द्रुपदने हर्षित होकर आनंदसे भरे सिन्धुराज जयद्रथपर आक्रमण किया ॥ ५२ ॥

ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं विशिखैस्त्रिभिः ।
ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत ॥ ५३ ॥

इसके बाद समरांगणमें सिन्धुराज जयद्रथने तीन बाण राजा द्रुपदके ऊपर चलाये, द्रुपदने भी उनके ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया ॥ ५३ ॥

तयो समभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ।
ईक्षितृप्रीतिजननं शुक्राङ्गारकयोरिव ॥ ५४ ॥

शुक्र और मङ्गल ग्रहोंकी भांति उन दोनोंका ऐसा दारुण और भयंकर युद्ध होने लगा, कि जो दर्शक लोगोंकी प्रशंसा योग्य था ॥ ५४ ॥

विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम् ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ५५ ॥

आपके पुत्र विकर्ण वेगवान घोडोंसे युक्त रथपर चढके महाबली सुतसोमकी ओर चढ गये, अनन्तर उन दोनोंमें भारी संग्राम होने लगा ॥ ५५ ॥

विकर्णः सुतसोमं तु विद्ध्वा नाकम्पयच्छरैः ।
सुतसोमो विकर्णं च तदद्भुतमिवाभवत ॥ ५६ ॥

विकर्ण सुतसोमको अपने बाणोंसे मार कर उन्हे हटा नहीं सके; और सुतसोम भी विकर्णको युद्धसे विचलित नहीं कर सके; इन दोनोंका यह युद्ध अद्भुत प्रकारसे हुआ ॥ ५६ ॥

सुशर्माणं नरव्याघ्रं चेकितानो महारथः ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धः पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ ५७ ॥

पराक्रमी महारथी चेकितान उत्साहपूर्वक पाण्डवोंकी ओरसे अत्यन्त कुपित होकर नरश्रेष्ठ सुशर्माकी ओर चढ आये ॥ ५७ ॥

सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम् ।
महता शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ५८ ॥

महाराज ! उस युद्धमें सुशर्मा बहुतसे बाणोंसे महारथी चेकितानको निवारण करने लगे ॥५८॥

चेकितानोऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे ।
प्राच्छादयत्तमिषुभिर्महामेघ इवाचलम् ॥ ५९ ॥

अनन्तर चेकितानने भी क्रोधित होकर उस महायुद्धमें सुशर्माको इस प्रकारसे अपने बाणोंकी वर्षासे छा लिया, कि जैसे मोटे बादल पहाडको पानी बरसा कर छा लेता है ॥५९॥

शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यद्रवत राजेन्द्र मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ६० ॥

राजेन्द्र ! पराक्रमी शकुनि पराक्रमशील प्रतिविन्ध्यकी ओर इस प्रकारसे दौडे, जैसे मतवाले हाथीकी ओर सिंह दौडता है ॥ ६० ॥

यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः ।
व्यदारयत संग्रामे मघवानिव दानवम् ॥ ६१ ॥

युधिष्ठिरनन्दन प्रतिविन्ध्यने बहुत ही क्रोधसे भरकर अच्छे पानीसे बुझे हुए अनेक चोखे बाणोंसे सुबल-पुत्र शकुनिको इस प्रकारसे क्षत-विक्षत किया जैसे इन्द्रने दनुपुत्रोंको क्षतविक्षत किया था ॥ ६१ ॥

शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु प्रतिविध्यन्तमाहवे ।
व्यदारयन्महाप्राज्ञः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ६२ ॥

पराक्रमी शकुनि भी युद्धभूमिमें अपनेको वेधनेवाले युधिष्ठिरपुत्र प्रतिविन्ध्यको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे क्षतविक्षत करने लगे ॥ ६२ ॥

सुदक्षिणं तु राजेन्द्र काम्बोजानां महारथम् ।
श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे ॥ ६३ ॥

राजेन्द्र ! श्रुतकर्मा काम्बोज-देशीय महाबल पराक्रमी सुदक्षिणकी ओर रणभूमिमें चढ गये ॥ ६३ ॥

×

सुदक्षिणस्तु समरे साहदेविं महारथम् ।
विध्द्वा नाकम्पयत्त वै मैनाकमिव पर्वतम् ॥ ६४ ॥

तव सुदक्षिण समरांगणमें सहदेवपुत्र महारथ श्रुतकर्माको वाणोंसे विद्ध करने लगे परन्तु जैसे इन्द्र मैनाक पर्वतको कम्पित नहीं कर सके थे, उसी भांतिसे सुदक्षिण भी श्रुतकर्माको नहीं हटा सके ॥ ६४ ॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्दारयन्निव सर्वशः ॥ ६५ ॥

फिर श्रुतकर्माने क्रोध करके अपने अनेक वाणोंसे काम्बोज-देशीय महारथ सुदक्षिणको क्षत-विक्षत करके सब प्रकारसे उन्हें मोहित कर दिया ॥ ६५ ॥

इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषममर्षणम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपतरं ततः ॥ ६६ ॥

अनन्तर शत्रुओंके जलानेवाले अर्जुन-पुत्र इरावान् युद्धमें क्रोधसे पूरित होकर सावधान चित्तसे अमर्षण और प्रयत्नपूर्वक सामना करनेवाले श्रुतायुकी ओर चढ गये ॥ ६६ ॥

आर्जुनिस्तस्य समरे हयान्हत्वा महारथः ।
ननाद सुमहन्नादं तत्सैन्यं प्रत्यपूरयत् ॥ ६७ ॥

अर्जुनपुत्र महारथ वलवान् इरावान्ने युद्धमें श्रुतायुके सव घोडोंको मारकर ऐसा जोरसे शब्द किया, कि उसको सेनाके सव लोगोंने सुन लिया ॥ ६७ ॥

श्रुतायुस्त्वथ संक्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान् ।
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥ ६८ ॥

श्रुतायुने भी यह देखकर क्रोध करके अर्जुनपुत्र इरावान्के घोडोंको गदासे युद्धमें मार डाला, अनन्तर उन दोनोंका घोर युद्ध होने लगा ॥ ६८ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम् ।
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥ ६९ ॥

अवन्ति देशीय राजकुमार विन्द और अनुविन्द अपनी सेना और पुत्रके सहित वीर महारथ कुन्तिभोजके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ६९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम आवन्त्यानां पराक्रमम् ।
यदयुध्यन्स्थिरा भूत्वा महत्या सेनया सह ॥ ७० ॥

उन दोनों अवन्ति देशीयोंका आश्चर्य-रूपी महाघोर पराक्रम दीखने लगा; वह दोनों अपनी वडी सेनाके सहित स्थिर होकर एक दूसरेके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७० ॥

अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत् ।
कुन्तिभोजस्ततस्तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥ ७१ ॥

अनुविन्दने कुन्तिभोजके ऊपर गदाका प्रहार किया; परन्तु कुन्तिभोजने अपने हाथोंकी शीघ्रतासे बाण चलाकर उसे निवारण किया ॥७१ ॥

कुन्तिभोजसुतश्चापि विन्दं विव्याध सायकैः ।
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७२ ॥

साथ ही कुन्तिभोजके पुत्रने सायकसे विन्दको पीडित किया और विन्दने भी अपने बाणोंसे कुन्तिभोजके पुत्रको पीडित करना आरंभ किया । उन दोनों वीरोंका युद्ध अद्भुत रीतिसे होने लगा ॥ ७२ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान्पञ्च मारिष ।
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥ ७३ ॥

केकयराज पांचों भाई अपने सेनाके सहित आकर युद्धमें सेनासे युक्त पांचों वीर गान्धार-राजाओंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ७३ ॥

वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम् ।
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ।
उत्तरश्चापि तं धीरं विव्याध निशितैः शरैः ॥ ७४ ॥

आपके पुत्र वीरबाहु, रथियोंमें श्रेष्ठ विराटपुत्र उत्तरके सङ्ग युद्ध करने लगे और उन्होंने पानीमें बुझे हुए चोखे बाणोंसे उत्तरको घायल कर दिया। उत्तरने भी वीरबाहुको अपने चोखे तीक्ष्ण बाणोंसे वेध डाला ॥ ७४ ॥

चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ।
उलूकश्चापि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥ ७५ ॥

राजन् ! चेदिराज समराङ्गणमें शीघ्रतासे उलूकके संमुख हुए। उलूक भी वैसे ही उनके ऊपर लोम युक्त उत्तम पानीमें बुझे हुए चोखे बाण चलाने लगे ॥ ७५ ॥

तयोर्युद्धं समभवद्धोररूपं विशां पते ।
दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ ॥ ७६ ॥

हे प्रजापते ! वे दोनों ही अपराजित और क्रोधसे पूरित होकर एक दूसरेको पीडित करने लगे; उन दोनोंका भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ ७६ ॥

एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च समरे तव तेषां संकुलम् ॥ ७७ ॥

हे राजन् ! आपके और पाण्डवोंके पक्षके रथी, गजपति, घुडसवार और पैदलोंका इसी प्रकारसे उस घमासान युद्धमें सहस्रों समान वीर एक दूसरेके सन्मुख होकर द्वन्द्वयुद्ध कर रहे थे ॥७७॥

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ७८ ॥

महाराज ! मुहूर्त भरके वास्ते वह युद्ध देखनेमें अत्यन्त सुन्दर और मनोहर हुआ था; फिर वही युद्ध उन्मत्तोंके समान होने लगा; उस समयमें किसीको कुछ भी बोध नहीं होता था ॥७८॥

गजो गजेन समरे रथी च रथिनं ययौ ।
अश्वोऽश्वं समभिप्रेत्य पदातिश्च पदातिनम् ॥ ७९ ॥

उस समरभूमिमें हाथीवाले हाथीवालोंसे, रथी रथीसे, घुडसवार घुडसवारोंके सङ्ग और पैदल चलने वाले वीर लोग पैदलोंके सङ्ग युक्त होकर युद्ध करने लगे ॥ ७९ ॥

ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत ।
शूराणां समरे तत्र समासाद्य परस्परम् ॥ ८० ॥

इसके अनन्तर उस रणक्षेत्रमें एक दूसरेके संमुख होकर लडनेसे उस समय उन सब शूर-वीरोंका महाघोर तथा भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ ८० ॥

तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः ।
प्रैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुररणोपमम् ॥ ८१ ॥

वहां आये हुए सिद्ध, चारण, देवता और देवऋषि पृथ्वीमें होनेवाले देव असुरोंके समान वह महा घोर संग्राम देखने लगे ॥ ८१ ॥

ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चापि मारिष ।
अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥ ८२ ॥

मारिप ! इसके अनन्तर हजारों पुरुष, घोडे, रथ और हाथियोंका द्वंद्वयुद्धके पूर्वोक्त क्रमका उल्लंघन करके सभी विपरीत रीतिसे युद्ध होने लगा ॥ ८२ ॥

तत्र तत्रैव दृश्यन्ते रथवारणपत्तयः ।
सादिनश्च नरव्याघ्र युध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ८३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ १६७६ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! रथी, गजपति, घुडसवार और पैदल सैनिक जगह जगह बार बार युद्ध करते हुए दिखाई देने लगे ॥ ८३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तैंतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ १६७६ ॥

: ४४ :

सञ्जय उवाच

राजञ्शतसहस्राणि तत्र तत्र तदा तदा ।
निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भरतवंशी महाराज ! सहस्रों-लाखों वीर सैनिकोंका मर्यादाको लांघकर जहां तहां युद्ध हुआ था; वह मैं आपके निकटमें यथार्थ वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

न पुत्रः पितरं जज्ञेन पिता पुत्रमौरसम् ।
न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः ॥ २ ॥
मातुलं न च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा ।
आविष्टा इव युध्यन्ते पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३ ॥

उस समयमें पुत्र पिताको, पिता अपने औरस पुत्रको, भाई भाईको, मामा भानूजेको, भानूजा मामाको और सखा सखाको भी नहीं पहचान सकता था। उस समय पाण्डव पक्षीय योद्धालोग कौरव सैनिकोंके साथ आवेशसे ग्रस्तके समान लडने लगे ॥ २–३ ॥

रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन्रथैः ।
अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ ॥ ४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ! कोई कोई पुरुषसिंह अपने रथोंके सहित शत्रुपक्षके रथवालोंकी सेनाके संमुख आ पहुंकर उन पर टूट पडे। कितने ही रथोंके जूए विपक्षी रथोंके दण्डोंसे ही टकराकर टूट पडे ॥ ४ ॥

रथेषाश्च रथेषाभिः कूबरा रथकूबरैः ।
संहताः संहतैः केचित्परस्परजिघांसवः ॥ ५ ॥

रथोंके ईषासे ईषा, और कुबरसे कुबर भिडकर टूटने लगे। कोई कोई वीर योद्धा अनेक वीरोंके साथ एक दूसरेको मारकर जीतने की इच्छासे संगत हुए ॥ ५ ॥

न शेकुश्चलितुं केचित्संनिपत्य रथा रथैः ।
प्रभिन्नास्तु महाकायाः संनिपत्य गजा गजैः ॥ ६ ॥

और कोई कोई रथ अनेक रथोंके बीचमें पड कर चलनेमें असमर्थ हुए। गण्डस्थलसे मद चूते हुए बडे बडे मतवाले हाथी हाथीयोंके सङ्ग मिल कर ॥ ६ ॥

बहुधादारयन्क्रुद्धा विषाणैरितरेतरम् ।
सतोमरपताकैश्च वारणाः परवारणैः ॥ ७ ॥
अभिसृत्य महाराज वेगवद्भिर्महागजैः ।
दन्तैरभिहतास्तत्र चुक्रुशुः परमातुराः ॥ ८ ॥

आपसमें क्रुद्ध होकर टक्कर लेते हुए अपने दांतोंके आघातसे एक दूसरेको नाना प्रकारसे विदीर्ण करने लगे। महाराज! हाथियोंके समूह तोरण और पताकाओंसे युक्त होकर वेगशाली महाकाय और श्रेष्ठ हाथियोंके संमुख जाकर उनके सूंड तथा दांतोंके आघातसे पीडित होकर आतुरताके साथ जोरसे चिंघाड मारने लगे ॥ ७–८ ॥

अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्रांकुशसमाहताः ।
सुप्रभिन्नाः प्रभिन्नानां सम्मुखाभिमुखा ययुः ॥ ९ ॥

अच्छे अनेक प्रकारके शिक्षासे युक्त मतवाले हाथी पीलवानोंके तोत्र और अंकुशसे भी नहीं रुके और बडे बडे मदसे मतवाले हाथियोंके सम्मुख युद्धके लिये जाने लगे ॥ ९ ॥

प्रभिन्नैरपि संसक्ताः केचित्तत्र महागजाः ।
क्रौञ्चवन्निनदं मुक्त्वा प्राद्रवन्त ततस्ततः ॥ १० ॥

कोई कोई बलवान् हाथी मदचूते हुए मतवाले हाथियोंके सङ्ग मिलकर क्रौञ्च पक्षीकी भांति शब्द करते हुए इधर उधर दौडने लगे ॥ १० ॥

सम्यक्प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
ऋष्टितोमरनाराचैर्निर्विद्धा वरवारणाः ॥ ११ ॥
विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ।
प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ १२ ॥

पूर्णरीतिसे शिक्षा पाये हुए वे सब उत्तम हाथी जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा था, ऋष्टि, तोमर और बाणोंके प्रहारसे व्याकुल होने लगे। उनके कई हाथी शस्त्रोंकी चोटसे मर्म भागमें पीडित होनेसे मरके पृथ्वीमें गिरने लगे और कोई कोई हाथी भयङ्कर शब्द करते हुए सब दिशाओंमें वेगसे दौडने लगे ॥ ११-१२ ॥

गजानां पादरक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः ।
ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥ १३ ॥
गदाभिर्मुसलैश्चैव भिण्डिपालैः सतोमरैः ।
आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः ॥ १४ ॥
प्रगृहीतैः सुसंरब्धा धावमानास्ततस्ततः ।
व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥

हे महाराज ! उस समय हाथिओंके पाद-रक्षक योद्धा वडी छातीवाले वीर पुरुप लोग क्रुद्ध होकर ऋष्टि, धनुप, वाण, चमकीले परशु, गदा, तोमर, भिन्दिपाल, मुसल, लोहेके परिघ और उत्तम पानीमें बुझाई हुई तेज धारवाले तलवार लेकर एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे इधर उधर प्रहार करते हुए दौडने लगे ऐसा दिखाई दे रहा था ॥ १३-१५ ॥

राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः ।
प्रत्यदृश्यन्त शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १६ ॥

एक दूसरेकी ओर चढ धाये और उस समय वीरोंकी तलवार युद्ध करनेसे मनुष्योंके रक्तसे सिक्त होकर प्रकाशित होने लगी ॥ १६ ॥

अवाक्षिप्तावधूतानामसीनां वीरबाहुभिः ।
संजज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥ १७ ॥

वीरोंके हाथोंसे चलती, कांपती और दूसरे पुरुषोंके मर्मस्थानोंपर गिरती हुई उन तलवारोंका महाघोर शब्द होने लगा ॥ १७ ॥

गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः ।
दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः ॥ १८ ॥
तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम् ।
शुश्रुवुर्दारुणा वाचः प्रेतानामिव भारत ॥ १९ ॥

उस रणभूमिमें जगह जगह गदा और मुसलके आघातसे कितने मनुष्योंके शरीर विच्छिन्न हो गये थे, कितने अच्छे तलवारोंके प्रहारसे शरीरके अङ्ग कटे हुए थे, पृथ्वीपर पडे हुए कितनोंके शरीर हाथियोंके पैरके नीचे पडके पिसते और उनके दांतोंकी चोटसे और भी पीडित होते हुए इस प्रकार असंख्य मनुष्योंके समूह मृत्युतुल्यसे होकर एक दूसरेको पुकार रहे थे। हे भारत ! उनके वे भयंकर आर्तस्वर नरकमें पडे हुए जीवोंका आर्तनाद तथा रोदनके समान सुनाई पड रहे थे ॥ १८-१९ ॥

हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः ।
हंसैरिव महावेगैरन्योन्यमभिदुद्रुवुः ॥ २० ॥

घुडसवार लोग हंसके समान सफेद व वेगशाली, चंवर और शिरोभूषणसे भूषित घोडोंपर चढके एक दूसरेकी ओर चढ दौडते थे ॥ २० ॥

तैर्विमुक्ता महाप्रासा जाम्बूनदविभूषणाः ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥ २१ ॥

उन लोगोंके हाथसे छूटे हुए सुवर्णभूषित निर्मल और तेज धारवाले महा प्रास विषधारी सर्पके समान युद्धमें इधर उधर चलने लगे ॥ २१ ॥

अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान् ।
शिरांस्याददिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः ॥ २२ ॥

कितने ही वीर घुडसवार अत्यन्त वेगसे दौडनेवाले घोडोंपर चढके रथियोंके संमुख जाकर घोडेसे कूद कर उनके सिरको काटने लगे ॥ २२ ॥

बहूनपि हयारोहान्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
रथी जघान सम्प्राप्य बाणगोचरमागतान् ॥ २३ ॥

कोई कोई रथी बहुतसे घुडसवारोंको संमुखमें आया हुआ देखकर अपने चोखे भल्ल नामक बाणोंसे और अस्त्र शस्त्रोंसे मार कर गिराने लगे ॥ २३ ॥

नवमेघप्रतीकाशाश्चाक्षिप्य तुरगान्गजाः ।
पादैरेवावमृद्नन्त मत्ताः कनकभूषणाः ॥ २४ ॥

नव मेघोंके समान शोभनीय सुवर्णके भूषणोंसे भूषित बहुतसे मतवाले हाथी घोडोंको सूंडसे पकड कर अपने पांवसे मर्दन करने लगे ॥ २४ ॥

पाट्यमानेषु कुम्भेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः ।
प्रासैर्विनिहताः केचिद्विनेदुः परमातुराः ॥ २५ ॥

कितने हाथी वीर पुरुषोंके प्रास आदि अस्त्रोंसे व्याकुल होके कुम्भस्थल और पार्श्वभागोंके विदीर्ण हो जानेपर अत्यंत आतुर हो घोर चिंघाड मारने लगे ॥ २५ ॥

साश्वारोहान्हयान्केचिदुन्मथ्य वरवारणाः ।
सहसा चिक्षिपुस्तत्र संकुले भैरवे सति ॥ २६ ॥

कोई कोई बडे शरीरवाले मतवाले हाथी घुडसवारोंके सहित रणभूमिमें घोडोंको बलपूर्वक पैरोंसे विकल करके सहसा दूर फेंकने लगे ॥ २६ ॥

साश्वारोहान्विषाणाग्रैरुत्क्षिप्य तुरगान्द्विपाः ।
रथौघानभिमृद्नन्तः सध्वजान्परिचक्रमुः ॥ २७ ॥

कितने ही हाथी अपने दांतोंकी नोकसे घुडसवारोंके सहित घोडोंको फेंक कर ध्वजासे युक्त रथसमूहको पैरोंसे मर्दन करते हुए रणभूमिमें घूमने लगे ॥ २७ ॥

पुंस्त्वादभिमदत्वाच्च केचिदत्र महागजाः ।
साश्वारोहान्हयाञ्जघ्नुः करैः सचरणैस्तथा ॥ २८ ॥

हाथियोंके मस्तक, पेट, पंसली और दूसरे अङ्गोंमें सर्पके समान तथा चोखे, निर्मल और तीक्ष्ण बाण वीरोंके धनुषसे छूटे हुए आकर घुसने लगे ॥ २८ ॥

केचिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपि रथान्करैः ।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः समीयुः सर्वशब्दगाः ॥ २९ ॥

कितने ही हाथी अपनी सूंडोंसे घोडोंके सहित रथोंको पकडके फेंकने लगे और रोदन करनेवाले पुरुषोंके शब्दके अनुसार चारों ओर घूमने लगे ॥ २९ ॥

आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ।
नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ॥ ३० ॥
निपेतुर्विमलाः शक्त्यो वीरबाहुभिरर्पिताः ।
महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशां पते ॥ ३१ ॥

हे महाराज ! इधर उधर रणभूमिमें वीर पुरुषोंकी भुजाओंसे छूटी हुई प्रकाशमान बडी उल्काके समान, उत्तम, चोखी और भयानक शक्तियाँ लोहेके कवचको काटकर मनुष्य और घोडोंके शरीरमें प्रवेश करने लगी ॥ ३०-३१ ॥

द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मशयैरपि ।
विकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजघ्नुः परान्रणे ॥ ३२ ॥

अनेक वीर पुरुष अपनी चमकीली तलवारें पहले जो व्याघ्रचर्मकी बनी हुई म्यानोंमें बंद रहतीं थीं उन्हें उन म्यानोंसे निकालकर उनसे शत्रुओंके ऊपर चले ॥ ३२ ॥

अभिप्लुतमभिक्रुद्धमेकपार्श्वावदारितम् ।
विदर्शयन्तः सम्पेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः ॥ ३३ ॥

कोई योद्धा क्रोधसे भरकर अपने दांतोंसे ओठ काटते हुए निडर होके हाथमें तलवार, ढाल और परशु धारण करके एकदम शत्रुओंके बायीं पसलीपर चोट करके उसे विदीर्ण करनेके लिए आपहुंचे ॥ ३३ ॥

×

शक्तिभिर्दारिताः केचित्संछिन्नाश्च परश्वधैः ।
हस्तिभिर्मृदिताः केचित्क्षुण्णाश्चान्ये तुरङ्गमैः ॥ ३४ ॥
रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ता निशितैः शरैः ।
विक्रोशन्ति नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान् ॥ ३५ ॥

हे महाराज ! कोई पुरुष शक्ति और कोई परशु आदि शस्त्रोंसे विदीर्ण और छिन्न भिन्न होकर मारे गये । कितने पुरुष हाथियोंके पांवोंके तले पिसके मर गये; कितने ही घोडोंकी टांपसे कुचल गये और कितने ही रथके पहियोंके नीचे गिरके कट गये थे और कितने ही लोहेकी बाणोंसे काट डाले गये थे । हे राजन् ! रणभूमिमें तहाँ जहाँ गिरे हुए अगणित मनुष्य अपने बन्धु बान्धवोंको पुकारते हुए रोदन करने लगे ॥ ३४–३५ ॥

पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄंश्च सह बान्धवैः ।
मातुलान्भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे ॥ ३६ ॥

उनमेंसे बहुतसे लोगोंने पिता, पुत्र, मामा, भानजे, भाई तथा दूसरे पुरुषोंके नाम लेकर उन लोगोंको पुकार कर विलाप करनेको आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत ।
बाहुभिः सुभुजाच्छिन्नैः पार्श्वेषु च विदारिताः ।
क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः ॥ ३७ ॥

हे भारत ! अनेक मनुष्योंकी आँते बाहर निकलकर बिखर गयी थीं, उनकी भुजाएं, जांघें, कमर, शस्त्रोंकी चोटसे टूट गयीं थीं और घायल अवस्थामें प्यासे हुए वह लोग जीनेकी इच्छासे रोदन करते हुए दीख पडते थे ॥३७॥

तृष्णापरिगताः केचिदल्पसत्त्वा विशां पते ।
भूमौ निपतिताः सङ्ख्ये जलमेव ययाचिरे ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! कोई कोई अल्प पराक्रमसे युक्त मनुष्य शस्त्रके प्रहारसें पृथ्वीमें गिर कर प्यासे होके जल मांगने लगे ॥ ३८ ॥

रुधिरौघपरिक्लिन्नाः क्लिश्यमानाश्च भारत ।
व्यनिन्दन्भृशमात्मानं तव पुत्रांश्च सङ्गतान् ॥ ३९ ॥

भरतनन्दन ! अनेक पुरुष शरीरमें रुधिर लिपटे हुए, बहुत ही दुःखित होकर अपनी तथा आपके दुर्योधनादिक पुत्रोंकी अत्यन्त ही निन्दा करने लगे ॥ ३९ ॥

अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम् ।
नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष ।
तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम् ॥ ४० ॥

महाराज ! आपसमें शत्रुता करनेवाले पराक्रमसे युक्त कितने ही वीर क्षत्रियोंने उस घायल अवस्थामें भी शस्त्रका त्याग तथा रोदन नहीं किया । वरन प्रसन्न होकर आपसमें तर्जन गर्जन करने लगे ॥ ४० ॥

निर्दश्य दशनैश्चापि क्रोधात्स्वदशनच्छदान् ।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ते च परस्परम् ॥ ४१ ॥

क्रोधपूर्वक दांतोंसे ओठ काटते हुए भृकुटी चढाकर तिरछी नजरसे एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ ४१ ॥

अपरे क्लिश्यमानास्तु व्रणार्ताः शरपीडिताः ।
निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्त्वा महाबलाः ॥ ४२ ॥

इसके अति रिक्त कडे चित्तवाले अत्यन्त बलवान् कोई कोई वीर योद्धा लोग बाणोंके लगनेसे अत्यन्त पीडित और क्लेशित होकर भी चुपचाप ही रहे ॥ ४२ ॥

अन्ये तु विरथाः शूरा रथमन्यस्य संयुगे ।
प्रार्थयाना निपतिताः संक्षुण्णा वरवारणैः ।
अशोभन्त महाराज पुष्पित इव किंशुकाः ॥ ४३ ॥

हे महाराज ! कोई कोई वीर योद्धा अपने रथसे हीन होकर पृथ्वी पर गिरकर दूसरे पुरुषके रथको मांग रहे थे । इतनेमें ही मतवाले हाथीयोंके सूंड और पांवोंके आघातसे वे कुचल गये । उस समय उन वीर पुरुषोंके शरीर फूले हुए पलाशके फूलके समान शोभित होने लगे ॥ ४३ ॥

सम्बभूवुरनीकेषु बहवो भैरवस्वनाः ।
वर्तमाने महाभीमे तस्मिन्वीरवरक्षये ॥ ४४ ॥
अहनत्तु पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।
स्वस्त्रीयो मातुलं चापि स्वस्त्रीयं चापि मातुलः ॥ ४५ ॥
सखायं च सखा राजन्सम्बन्धी बान्धवं तथा ।
एवं युयुधिरे तत्र कुरवः पाण्डवैः सह ॥ ४६ ॥

उन सेनाओंके बीचमें बडे जोरसे अनेकानेक भयङ्कर शब्द सुनायी पडते थे । उन महावीर पुरुषोंके नाश करनेवाले उस भयङ्कर युद्धमें पिता पुत्रको और पुत्र पिताको, मामा भानूजेको और भानूजा मामाको, मित्र मित्रको और भाई भाईको वध करने लगा । इसी प्रकारसे कौरवोंका पाण्डवोंके संग युद्ध होने लगा ॥ ४४–४६ ॥

वर्तमाने भये तस्मिन्निर्मर्यादे महाहवे।
भीष्ममासाद्य पार्थानां वाहिनी समकम्पत ॥ ४७ ॥

उस मर्यादा-रहित महा घोर युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाके वीर सेनापति महा योद्धा भीष्मके निकट पहूंचकर कांपने लगे ॥ ४७ ॥

केतुना पञ्चतारेण तालेन भरतर्षभ।
राजतेन महाबाहुरुच्छ्रितेन महारथे।
बभौ भीष्मस्तदा राजंश्चन्द्रमा इव मेरुणा ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ १७२४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जैसे चन्द्रमा सुमेरु पर्वतपर शोभायमान होता है, वैसे ही महाबाहु भीष्म उस समयमें महारथपर प्रकाशित सुवर्णमयी पांच तारोंसे युक्त ताल-ध्वजाके सहित शोभित होने लगे ॥ ४८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ १७२४ ॥

: ४५ :

सञ्जय उवाच

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे।
वर्तमाने महारौद्रे महावीरवरक्षये ॥ १ ॥
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः।
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः ॥ २ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! उस अत्यन्त भयङ्कर दिनमें सवेरेसे बहुत दिन चढेतक वीर पुरुषोंके नाश करनेवाले उस महा भयानक युद्धमें दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविंशति, ये लोग आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार भीष्मके निकट जाकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ १–२ ॥

एतैरतिरथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभ।
पाण्डवानामनीकानि विजगाहे महारथः ॥ ३ ॥

भरत भूषण ! महारथी भीष्म इन पांचों अतिरथी वीरोंसे रक्षित होकर पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे ॥ ३ ॥

चेदिकाशिकरूषेषु पाञ्चालेषु च भारत ।
भीष्मस्य बहुधा तालश्चरन्केतुरदृश्यत ॥ ४ ॥

भीष्मकी ताल-ध्वजा चेदि, काशि, करूष और पाञ्चलदेशीय सेनाओंके बीचमें बहुधा घूमती हुई दीख पडने लगी ॥ ४ ॥

शिरांसि च तदा भीष्मो बाहूंश्चापि सहायुधान् ।
निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५ ॥

वे महा वीरपुरुष अपने तेज भल्लनामक बाणोंसे रथ, रथकी ध्वजा, धुरी, चक्र और वीरोंके सिरोंको और हाथोंको आयुधोंके साथ काटकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ५ ॥

नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ ।
केचिदार्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्मणि ताडिताः ॥ ६ ॥

उस समय वह रथपर चढे हुए नृत्य करते हुएके समान बोध होने लगे । कितने ही हाथी भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर आर्त्तनाद करने लगे ॥ ६ ॥

अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद्भीष्मरथं प्रति ॥ ७ ॥
जाम्बूनदविचित्रेण कर्णिकारेण केतुना ।
अभ्यवर्षत भीष्मं च तांश्चैव रथसत्तमान् ॥ ८ ॥

उसे देखकर अभिमन्यु अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर अपने पिङ्गलवर्णके उत्तम घोडे और सुवर्ण-चित्रित कर्णिकारकी विचित्र ध्वजासे शोभित रथपर चढकर भीष्मके रथकी ओर दौडे आये और उन्होंने भीष्म तथा उनके रक्षक उन पांच अतिरथियोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७–८ ॥

स तालकेतोस्तीक्ष्णेन केतुमाहत्य पत्रिणा ।
भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चानुचरैः सह ॥ ९ ॥

उस वीरने भीष्मकी तालचिह्नित ध्वजामें अपने चोखे बाण मार कर भीष्म तथा उनके पांचों रक्षक वीरोंसे युद्ध करना आरम्भ किया ॥ ९ ॥

कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिरायसैः ।
विद्ध्वा नवभिरानर्छच्छिताग्रैः प्रपितामहम् ॥ १० ॥

उन्होंने कृतवर्माको एक बाणसे तथा शल्यको पांच शीघ्रगामी बाण मारे और पितामह भीष्मके ऊपर उत्तम पानीसे बुझाये हुए चोखे नौ बाण चलाये और चोट पहुंचायी ॥१०॥

पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च ।
ध्वजमेकेन विव्याध जाम्बूनदविभूषितम् ॥ ११ ॥

अनन्तर धनुषको अच्छी प्रकारसे खींचकर पूरे मनोयोगसे चलाए हुए एक बाणसे सुवर्ण-भूषित ध्वजा काटकर गिरा दी ॥ ११ ॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना ।
जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नतपर्वणा ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर कवच आदिको काटनेवाले एक नतपर्व भल्लसे दुर्मुखके सारथीका सिर धडसे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १२ ॥

धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वरविभूषितम् ।
कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः ॥ १३ ॥

फिर उत्तम पानीमें बुझाये चोखे हुए एक भल्लसे कृपाचार्यका स्वर्णभूपित धनुप काटके गिराया ॥ १३ ॥

जघान परमक्रुद्धो नृत्यन्निव महारथः ।
तस्य लाघवमुद्वीक्ष्य तुतुषुर्देवता अपि ॥ १४ ॥

वह महारथी अभिमन्यु अत्यन्त क्रुद्ध होकर मानो नृत्य करता हुआ सबको अपने बाणोंसे मारने लगा, उसके हाथकी फुर्त्ती देखकर देवताओंको भी बडी प्रसन्नता हुई ॥ १४ ॥

लब्धलक्ष्यतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्ममुखा रथाः ।
सत्त्ववन्तममन्यन्त साक्षादिव धनञ्जयम् ॥ १५ ॥

भीष्म आदि सम्पूर्ण रथियोंने अर्जुन पुत्रके लक्ष्यवेध करनेकी निपुणता देखकर उसे अर्जुनके समान पराक्रमी समझा ॥ १५ ॥

तस्य लाघवमार्गस्थमलातसदृशप्रभम् ।
दिशः पर्यपतच्चापं गाण्डीवमिव घोषवत् ॥ १६ ॥

उसका धनुष उस समयमें गाण्डीव धनुषके समान शीघ्रता, खींचे जानेपर अलात चक्रके समान और टङ्कार शब्दसे प्रकाशित होने लगा, और वह धनुष धारण करके चारों ओर घूमने लगा ॥ १६ ॥

तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः ।
विव्याध समरे तूर्णमार्जुनिं परवीरहा ॥ १७ ॥

अत्यन्त पराक्रमी, शत्रुओंके नाश करनेवाले, देवव्रती भीष्मने समरभूमिमें शीघ्र ही अभिमन्युके संमुख होकर अत्यन्त वेगसे युक्त नौ बाण अभिमन्युके शरीरमें मारे ॥ १७ ॥

ध्वजं चास्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान यतव्रतः ॥ १८ ॥

और तीन बाणोंसे परम तेजस्वी वीर अभिमन्युकी ध्वजा काटकर गिरा दी; फिर नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाले भीष्मने तीन बाणोंसे उनके सारथीको भी मारा ॥ १८ ॥

तथैव कृतवर्मा च कृपः शल्यश्च मारिष ।
विध्द्वा नाकम्पयत्कार्ष्णिं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १९ ॥

आर्य ! इसी प्रकारसे कृतवर्मा, शल्य और कृपाचार्य भी अभिमन्युके ऊपर बाणोंका प्रहार करके भी अकम्पित मैनाक पर्वतकी भांति उसे कम्पित न कर सके ॥ १९ ॥

स तैः परिवृतः शूरो धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्चरथान्प्रति ॥ २० ॥

पराक्रमसे युक्त अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु धृतराष्ट्रपक्षीय महारथी वीरोंसे घिरकर भी उन पांच रथियोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २० ॥

ततस्तेषां महास्त्राणि संवार्य शरवृष्टिभिः ।
ननाद बलवान्कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजञ्शरान् ॥ २१ ॥

अनन्तर वह अपने बाणोंकी वर्षासे उन सबके महान् अस्त्रोंका निवारण करके बलवान् अर्जुनकुमार अभिमन्युने भीष्मके ऊपर अपने बाणोंको चलाते हुए बडे जोरका सिंहनाद किया ॥ २१ ॥

तत्रास्य सुमहद्राजन्बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥ २२ ॥

हे राजन् ! जिस समय रणभूमिमें वह अपने बाणोंसे यत्नके सहित भीष्मको पीडित कर रहा था, उस समय उसकी दोनों भुजाओंका खूब ही बल प्रकाशित हुआ था ॥ २२ ॥

पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोऽपि प्राहिणोच्छरान् ।
स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युताञ्शरान् ॥ २३ ॥

ऐसे पराक्रमी वीरके ऊपर भीष्म भी अच्छी प्रकार अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे; और वह भी भीष्मके धनुपसे छूटे हुए उन सब बाणोंको काटने लगा ॥ २३ ॥

ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः ।
चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर उस पराक्रमी अभिमन्युने समरभूमिमें भीष्मकी ध्वजाको अपने अमोघ नौ बाणोंसे काटकर गिरा दिया; उसे देखकर सब लोग अभिमन्युको उच्च स्वरसे धन्य धन्य कहने लगे ॥ २४ ॥

स राजतो महास्कन्धस्तालो हेमविभूषितः ।
सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत ॥ २५ ॥

हे भारत ! रजत निर्मित, सुवर्णसे भूषित हुई बहुत ऊंची वह भीष्मकी तालध्वजा सुभद्रानन्दन अभिमन्युके बाणोंसे कटकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ २५ ॥

ध्वजं सौभद्रविशिखैः पतितं भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा भीमोऽनदद्धृष्टः सौभद्रमभिहर्षयन् ॥ २६ ॥

भरत श्रेष्ठ ! भीष्मकी ध्वजाको अभिमन्युके बाणोंसे कटती हुई देखकर भरतश्रेष्ठ भीम प्रसन्न होकर सुभद्रानन्दन अभिमन्युको हर्षित करनेके निमित्त सिंहनाद करने लगे ॥ २६ ॥

अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ।
प्रादुश्चक्रे महारौद्रः क्षणे तस्मिन्महाबलः ॥ २७ ॥

अनन्तर महाबली महा भयङ्कर भीष्मने उस समय रणभूमिमें बहुतसे दिव्य महान् अस्त्रोंको प्रकट किया ॥ २७ ॥

ततः शतसहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः ।
अवाकिरदमेयात्मा शराणां नतपर्वणाम् ॥ २८ ॥

अनन्तर पंखसे युक्त हजारों बाण अमेय आत्मबलसे संपन्न प्रपितामह महात्मा भीष्मने अभिमन्युके ऊपर चलाये । यह बाणोंकी वर्षाका कार्य बडा आश्चर्यका हुआ ॥ २८ ॥

ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ।
रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः ॥ २९ ॥
विराटः सह पुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशां पते ॥ ३० ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर पाण्डवोंकी ओरसे महा धनुर्धारी महारथ पुत्रोंके सहित विराट, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, भीम, केकयराज पांचों भाई और सात्यकि आदि दस महारथी शीघ्रतासे रथपर चढके वहांपर अभिमन्युकी रक्षा करनेके निमित्त आ पहुंचे ॥ २९-३० ॥

जवेनापततां तेषां भीष्मः शांतनवो रणे ।
पाञ्चाल्यं त्रिभिरानर्छत्सात्यकिं निशितैः शरैः ॥ ३१ ॥

उन लोगोंने शीघ्र आनेके समयमें ही रणभूमिमें शान्तनुपुत्र भीष्मने धृष्टद्युम्नको तीन और सात्यकिको प्रखर बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३१ ॥

पूर्णायतविसृष्टेन क्षुरेण निशितेन च ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद भीमसेनस्य पत्रिणा ॥ ३२ ॥

और धनुष खींचकर एकमात्र क्षुरास्त्रसे भीमसेनकी ध्वजा काटकर पृथ्वीमें गिरा दी ॥ ३२ ॥

जाम्बूनदमयः केतुः केसरी नरसत्तम ।
पपात भीमसेनस्य भीष्मेण मथितो रथात् ॥ ३३ ॥
भीमसेनस्त्रिभिर्विध्द्वा भीष्मं शान्तनवं रणे ।
कृपमेकेन विव्याध कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥

हे राजेन्द्र ! भीमसेनकी सुवर्ण-भूषित सुंदर सिंहचिन्हकी ध्वजा भीष्मके अस्त्रसे रथपरसे कटकर जब पृथ्वीमें गिरी तब भीमसेनने उस रणभूमिमें शान्तनुनन्दन भीष्मको तीन, कृपाचार्यको एक और कृतवर्माको आठ बाण मारे ॥ ३३–३४ ॥

प्रगृहीताग्रहस्तेन वैराटिरपि दन्तिना ।
अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः ॥ ३५ ॥

विराट पुत्र उत्तर मद्रराज शल्यके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त कुण्डलीकृत सूंडवाले एक हाथीपर चढके शल्यके निकट जाने लगे ॥ ३५ ॥

तस्य वारणराजस्य जवेनापततो रथी ।
शल्यो निवारयामास वेगमप्रतिमं रणे ॥ ३६ ॥

जब वह हस्तिराज वेगपूर्वक शल्यके रथकी ओर जाने लगा, तब शल्यने उनके अनोखे वेगको समरांगणमें बाणोंसे निवारण करनेका यत्न करना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

तस्य क्रुद्धः स नागेन्द्रो बृहतः साधुवाहिनः ।
पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरो हयान् ॥ ३७ ॥

परंतु इससे उस हस्तिराजने शल्यपर अत्यंत क्रुद्ध होकर, शल्यके रथके जूएपर अपना पैर रखकर रथको अच्छी तरह वहन करनेवाले चारों उत्तम घोडोंको अपने पांवसे मार डाला ॥ ३७ ॥

स हताश्वे रथे तिष्ठन्मद्राधिपतिरायसीम् ।
उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमाम् ॥ ३८ ॥

राजा शल्यने घोडोंके मारे जानेपर रथमें बैठकर सर्पके समान भयंकर लोहमयी एक शक्ति उत्तरका नाश करनेके निमित्त चलाई ॥ ३८ ॥

×

तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः ।
स पपात गजस्कन्धात्प्रमुक्तांकुशतोमरः ॥ ३९ ॥

वह शक्ति उत्तरके कवचको काटकर शरीरमें पैठ गई और इनके हाथसे अंकुश और तोमर भी छूटकर गिर गया; अनन्तर वह शक्तिके लगनेसे अत्यन्त ही मोहित होकर हाथीसे पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३९ ॥

समादाय च शल्योऽसिमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
वारणेन्द्रस्य विक्रम्य चिच्छेदाथ महाकरम् ॥ ४० ॥

तब शल्यने हाथमें तलवार ग्रहण करके पराक्रमके सहित श्रेष्ठ रथपरसे कूदकर उस गजराजके बडे सूंडको काट डाला ॥ ४० ॥

भिन्नमर्मा शरव्रातैश्छिन्नहस्तः स वारणः ।
भीममार्तस्वरं कृत्वा पपात च ममार च ॥ ४१ ॥

वह हाथी पहिलेसे ही सैकडों बाणोंके लगनेसे अत्यन्त पीडित हो रहा था; फिर सूंडके कटनेसे भयानक आर्तशब्द करता हुआ भूमिपर गिर पडा और मर गया ॥ ४१ ॥

एतदीदृशकं कृत्वा मद्रराजो महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ ४२ ॥

महारथी राजा शल्य ऐसे कठिन कर्मको करके शीघ्रताके सहित कृतवर्माके प्रकाशमान रथपर जा चढे ॥ ४२ ॥

उत्तरं निहतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं शुभम् ।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ।
शङ्खः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव ॥ ४३ ॥

इसके अनन्तर अपने भाई उत्तरको मारा गया हुआ और शल्यको कृतवर्माके सहित रथपर बैठा हुआ देख विराटका दूसरा पुत्र श्वेत क्रोधमें भरकर अग्निमें घीको आहुति डालनेके समान जलने लगा ॥ ४३ ॥

स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं बली ॥ ४४ ॥

वह बलशाली वीर इन्द्रधनुषके समान सोनेसे मढा हुआ बडा धनुष कानोंतक खींच करके मद्रराजको युद्धमें मारनेकी इच्छासे उनकी ओर वेगसे दौडा ॥ ४४ ॥

महता रथवंशेन समन्तात्परिवारितः ।
सृजन्बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति । ॥ ४५ ॥

चारों ओरसे अनेक रथोंके समूहमें घिरकर भी वह अपने बाणोंको बरसाता हुआ शल्यके रथके समीपमें जाने लगा ॥ ४५ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ।
तावकानां रथाः सप्त समन्तात्पर्यवारयन् ।
मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ ४६ ॥

उस मतवाले हाथीके समान पराक्रमी श्वेतको धावा करता हुआ देखकर आपके सात रथियोंने मानो मृत्युके कराल दांतोंके भीतरसे मद्रराज शल्यकी रक्षा करनेके निमित्त उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४६ ॥

ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा ।
तालमात्रं धनुर्गृह्य शङ्खमभ्यद्रवद्रणे ॥ ४७ ॥

इसके अनन्तर महाबाहु भीष्म बादलके समान गर्जते हुए ताल प्रमाण धनुषको धारण करके रणभूमिमें शङ्खकी ओर दौडे ॥ ४७ ॥

तमुद्यतमुदीक्ष्याथ महेष्वासं महाबलम् ।
सन्त्रस्ता पाण्डवी सेना वातवेगहतेव नौः ॥ ४८ ॥

तब महाधनुर्धारी अत्यन्त बली भीष्मको युद्धके लिए आता हुआ देखकर पांडवोंकी सेना भयभीत होकर इस प्रकारसे तितर बितर हो गई, जैसे वायुके वेगसे नौका इधरकी उधर हो जाती है ॥ ४८ ॥

तत्रार्जुनः संत्वरितः शङ्खस्यासीत्पुरःसरः ।
भीष्माद्रक्ष्योऽयमद्येति ततो युद्धमवर्तत ॥ ४९ ॥

उस समय शङ्खकी आज रक्षा करना कर्तव्य कर्म समझकर अर्जुन शीघ्रताके सहित शङ्खके आगे हो गये; तब महान् युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ४९ ॥

हाहाकारो महानासीद्योधानां युधि युध्यताम् ।
तेजस्तेजसि संपृक्तमित्येवं विस्मयं ययुः ॥ ५० ॥

उस समय रणक्षेत्रमें युद्ध करनेवाले वीर योद्धाओंका बहुत बडा हाहाकार शब्द सब ओर होने लगा; एक तेज दूसरे तेजसे मिलने लगा, इसे देखकर सब आश्चर्य करने लगे ॥ ५० ॥

अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महारथात् ।
शङ्खस्य चतुरो वाहानहनद्भरतर्षभ ॥ ५१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! उधर राजा शल्यने हाथमें गदा लेकर कृतवर्माके रथसे उतर कर शङ्खके रथमें जुते हुए चारों घोडोंको मार डाला ॥ ५१ ॥

वीक्षाञ्चक्रुः समन्तात्ते पाण्डवा भयपीडिताः ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥ ५८ ॥

पाण्डव योद्धा भयसे विकल होके सब ओर देखने लगे, परंतु शीतसे दुःखित गौवोंके समूहकी भांति उस समयमें उन लोगोंने चारों ओर किसीको अपना परित्राण करनेवाला नहीं देखा ॥ ५८ ॥

हतविप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते ।
हाहाकारो महानासीत्पाण्डुसैन्येषु भारत ॥ ५९ ॥

भारत ! पाण्डवोंकी सेनाके वीर लोग बहुतसे मारे जाने लगे, बहुतेरे भाग गए और विकल होके उत्साहसे रहित हो आर्त्तनाद करते हुए तितर बितर हो गये; उस समय पाण्डवोंकी सेनाके बीच अत्यन्त ही हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ५९ ॥

ततो भीष्मः शांतनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ ६० ॥

उस समय शान्तनुनन्दन भीष्म अपने धनुषको खींचकर गोल बना देते और लगातार विषधारी सर्पके समान भयंकर प्रज्वलित अग्र भागवाले अपने बाणोंको पाण्डवोंकी सेनापर चलाने लगे ॥ ६० ॥

शरैरेकायनीकुर्वन्दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्यादिश्य भारत ॥ ६१ ॥

भारत ! वह नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत करनेवाले भीष्म बाणोंसे सब दिशाओंमें एक मात्र मार्ग करते हुए पाण्डवोंकी ओरके रथियोंका नाम ले लेकर चुन चुनकर उनका वध करने लगे ॥ ६१ ॥

ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः ।
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ६२ ॥

उससे सब सेना भीष्मके बाणोंसे मथित होकर भाग गई, व्यूह भंग हुआ, अनन्तर सूर्यके अस्त हो जानेपर अंधेरेमें फिर कुछ भी सूझ नहीं पडता था ॥ ६२ ॥

भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे ।
अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ १७८७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय पाण्डवोंने भीष्मको इस महा संग्राममें इस प्रकार प्रचण्ड तेजसे प्रकाशित देखकर सन्ध्याके समय युद्धसे अपनी सेना लौटा ली ॥ ६३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ १७८७ ॥

न तु भीष्मो महातेजाः शक्यो जेतुं महाबलः ।
सोऽहमेवं गते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवः ॥ ८ ॥

परन्तु महाबली, महातेजस्वी अत्यन्त पराक्रमी भीष्मको किसी प्रकारसे भी कोई पराजित नहीं कर सकता है। ऐसी अवस्थामें मैं भीष्म रूपी नौका रहित अथाह जलमें पड कर डूब रहा हूं ॥८॥

आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य केशव ।
वनं यास्यामि गोविन्द श्रेयो मे तत्र जीवितुम् ॥ ९ ॥

केशव ! अपने बुद्धिकी दुर्बलताके कारण मैं रणभूमिमें भीष्मके संमुख हुआ हूं; हे वार्ष्णेय ! वनमें ही मेरे लिये जीवित रहना उत्तम श्रेयस्कर है; इससे अब मैं वनको जानेकी इच्छा करता हूं ॥ ९ ॥

न त्विमान्पृथिवीपालान्दातुं भीष्माय मृत्यवे ।
क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित् ॥ १० ॥

इन राजाओंको व्यर्थ ही भीष्मरूपी यमराजके हाथमें समर्पण करना उचित नहीं है। श्रीकृष्ण ! महाअस्त्रोंके जाननेवाले भीष्म मेरी सेनाका अवश्य ही नाश कर देंगे ॥ १० ॥

यथानलं प्रज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः ।
विनाशायैव गच्छन्ति तथा मे सैनिको जनः ॥ ११ ॥

जैसे पतङ्ग अपने शरीरके नाशके निमित्त ही दौडकर प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करते हैं; वैसे ही मेरे सैनिक पुरुष भी भीष्मके समीपमें गमन कर रहे हैं ॥ ११ ॥

क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः ॥ १२ ॥

हे कृष्ण ! मैं राज्यके निमित्त पराक्रमी होकर अपना नाश कर रहा हूं; मेरे वीर भाई भी बाणोंसे पीडित होकर अत्यन्त कृश होते जा रहे हैं ॥ १२ ॥

मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्याद्भ्रष्टास्तथा सुखात् ।
जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ॥ १३ ॥

ये भ्रातृस्नेहसे युक्त होके मेरे ही निमित्त राज्य और सुखसे रहित होकर दुःखसे विकल हो रहे हैं। इस समयमें जीवन ही दुर्लभ है; जीते रहना ही मैं बहुत श्रेष्ठ समझता हूं ॥१३॥

जीवितस्य हि शेषेण तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ।
न घातयिष्यामि रणे मित्राणीमानि केशव ॥ १४ ॥

केशव ! मैं अपने इस बाकी जीवनके समयमें कठिन तपस्या करूंगा; इन मित्र राजाओंको रणभूमिमें नष्ट न कराऊंगा ॥ १४ ॥

कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्वपार्थिवैः ।
क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः ॥ २२ ॥
हे कृष्ण ! भीष्म ही क्रुद्ध होके अपने पक्षके सब राजाओंके सङ्ग मिलकर निश्चयही अपने पराक्रमके अनुसार क्षत्रियों तथा हम लोगोंका नाश कर देंगे ॥ २२ ॥

स त्वं पश्य महेष्वासं योगीश्वर महारथम् ।
ये भीष्मं शमयेत्संख्ये दावाग्निं जलदो यथा ॥ २३ ॥
हे महाभाग ! हे योगेश्वर ! जिस प्रकारसे बरसाते हुए बादलोंके समूह जलती हुई अग्निको बुझा देता है, वैसे ही युद्धमें भीष्मको निवारण कर सके ऐसे किसी महारथी पुरुषको तुम मेरी सेनामेंसे ढूंढ निकालो ॥ २३ ॥

तव प्रसादाद्गोविन्द पाण्डवा निहतद्विषः ।
स्वराज्यमनुसम्प्राप्ता मोदिष्यन्ति सबान्धवाः ॥ २४ ॥
हे गोविन्द ! ऐसा होनेहीसे पाण्डव लोग तुम्हारी कृपासे शत्रुहीन होकर अपने राज्यको पाकर सुखी हो सकेंगे ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थो ध्यायन्नास्ते महामनाः ।
चिरमन्तर्मना भूत्वा शोकोपहतचेतनः ॥ २५ ॥
महात्मा युधिष्ठिर ऐसा कहकर शोक और दुःखसे चेतनारहित होकर और मनको अन्तर्मुख करके ध्यानमग्न बैठे रहे और अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ २५ ॥

शोकार्तं पाण्डवं ज्ञात्वा दुःखेन हतचेतसम् ।
अब्रवीत्तत्र गोविन्दो हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ॥ २६ ॥
कृष्णने युधिष्ठिरको दुःख तथा शोकसे आर्त्तचित्त देखकर उन्हें सम्बोधन करके सम्पूर्ण पाण्डव पक्षीय वीरोंको आनन्दित करते हुए यह वचन कहा ॥ २६ ॥

मा शुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचितुमर्हसि ।
यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्वलोकस्य धन्विनः ॥ २७ ॥
हे भरतश्रेष्ठ ! तुम शोक मत करो, इस प्रकार शोक करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है; तुम्हारे ये सब भाई, लोकके बीचमें शूरवीर और धनुर्धारी कहके विख्यात हैं ॥ २७ ॥

अहं च प्रियकृद्राजन्सात्यकिश्च महारथः ।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २८ ॥
हे राजन् ! मैं तुम्हारा प्रिय करनेवाला ही हूं । महायशस्वी सात्यकि, वृद्ध विराट, धृष्टद्युम्न, द्रुपद आदि सब लोग तुम्हारे प्रिय कार्यको करनेमें रत हैं ॥ २८ ॥

ततः उद्धर्षयन्सर्वान्धृष्टद्युम्नोऽभ्यभाषत ।
अहं द्रोणान्तकः पार्थ विहितः शम्भुना पुरा ॥ ३६ ॥
तब धृष्टद्युम्न वहांपर सबको हर्षित करते हुए यह वचन कहने लगे। हे पार्थ ! भगवान् शङ्करने पहिलेहीसे मुझको द्रोणाचार्यका वध करनेहीके लिये उत्पन्न किया है ॥ ३६ ॥

रणे भीष्मं तथा द्रोणं कृपं शल्यं जयद्रथम् ।
सर्वानद्य रणे दृप्तान्प्रतियोत्स्यामि पार्थिव ॥ ३७ ॥
हे पृथ्वीपते ! आज मैं युद्धमें सबके सङ्ग मिलकर व्यूह बांधकर अभिमानी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य और जयद्रथ आदि वीरोंके साथ युद्ध करूंगा ॥ ३७ ॥

अथोत्कुष्टं महेष्वासैः पाण्डवैर्युद्धदुर्मदैः ।
समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने ॥ ३८ ॥
शत्रुनाशन नृपश्रेष्ठ द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नके उद्यम और उत्साहके सहित इस वचनको सुनकर युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले पाण्डव पक्षके सम्पूर्ण वीर योद्धा लोग हर्षके सहित सिंहनाद करने लगे ॥ ३८ ॥

तमब्रवीत्ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिम् ।
व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ ३९ ॥
यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत् ।
तं यथावत्प्रतिव्यूह परानीकविनाशनम् ।
अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह ॥ ४० ॥
इसके अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिर सेनापति धृष्टद्युम्नसे फिर यह वचन बोले— हे धृष्टद्युम्न ! क्रौञ्चारुण नामका सब शत्रुओंका नाश करनेवाला एक व्यूह है, जिसको देवअसुरोंके युद्धके समयमें बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा था। शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेके निमित्त विधि पूर्वक तुम उसी क्रौञ्चारुण व्यूहकी रचना करो; कौरव तथा दूसरे राजा लोगोंने जिसको पहिले कभी नहीं देखा था, उस व्यूहको इस समयमें देखें ॥ ३९–४० ॥

तथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता इव ।
प्रभाते सर्वसैन्यानामग्रे चक्रे धनञ्जयम् ॥ ४१ ॥
जैसे वज्रधारी इन्द्र भगवान् विष्णुसे वचन कहते हैं, वैसे ही नरदेव धर्मराज युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नसे इस तरह कहा। अनन्तर सबेरा होते ही धृष्टद्युम्नने अर्जुनको सब सेनाके आगे किया ॥ ४१ ॥

आदित्यपथगः केतुस्तस्याद्भुतमनोरमः ।
शासनात्पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥
अर्जुनके रथकी ध्वजा जिसको इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार साक्षात् विश्वकर्माने बनाया था, वह पताका सूर्यके मार्गसे गमन करनेवाली होकर अद्भुत रूपसे शोभित होने लगी ॥ ४२ ॥

इन्द्रायुधसवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतः।
आकाशग इवाकाशे गन्धर्वनगरोपमः।
नृत्यमान इवाभाति रथचर्यासु मारिष ॥ ४३ ॥

इन्द्रधनुषके समान वर्णवाली वह ध्वजा सब भांतिसे अलंकृत होकर आकाशमें पक्षीकी भांति विना आधारके चलती थी और गन्धर्व नगरकी भांति रथ चलनेके क्रमसे आकाशमण्डलमें मानो नृत्य करती हुई प्रकाशित होने लगी ॥ ४३ ॥

तेन रत्नवता पार्थः स च गाण्डीवधन्वना।
बभूव परमोपेतः स्वयंभूरिव भानुना ॥ ४४ ॥

वह रत्नोंसे युक्त ध्वजा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनसे और अर्जुन रत्नोंसे भूषित उस ध्वजासे परस्पर ऐसे शोभायमान हुए जैसे सूर्यके समीपमें सुमेरु शोभित होते हैं ॥४४॥

शिरोऽभूद्द्रुपदो राजा महत्या सेनया वृतः।
कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुष्यास्तां जनेश्वर ॥ ४५ ॥

हे जनेश्वर ! अपनी बडी सेनाके सहित राजा द्रुपद उस क्रौञ्चारुण व्यूहके मस्तक रूप हुए। कुन्तिभोज और चेदिपति दोनों राजा उस व्यूहके नेत्र हुए ॥ ४५ ॥

दाशार्णकाः प्रयागाश्च दाशेरकगणैः सह।
अनूपगाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! दाशार्णक, दाशेरक वीरोंके सहित प्रयाग, अनूपक और किरात देशीय राजा लोग उसकी ग्रीवा बने ॥ ४६ ॥

पटच्चरैश्च हुण्डैश्च राजन्पौरवकैस्तथा।
निषादैः सहितश्चापि पृष्ठमासीद्युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

राजन् ! पटच्चर, हुण्ड, पौरवक और निषाद आदि विदेशीय वीरोंके सहित स्वयं राजा युधिष्ठिर उस व्यूहके पीठ हुए ॥ ४७ ॥

पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ४८ ॥

भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पांचों पुत्र, अभिमन्यु और महारथी सात्यकि ये लोग उसके दोनों पंखोंके मध्यस्थानमें नियुत हुए ॥ ४८ ॥

पिशाचा दरदाश्चैव पुण्ड्राः कुण्डीविषैः सह।
मडका लडकाश्चैव तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ४९ ॥
बाल्हिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत।
एते जनपदा राजन्दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ ५० ॥

हे भारत ! कुण्डीविषके साथ पिशाच, दरद, पुण्ड्र, मडक, लडक, तङ्गण, परतङ्गण, बाह्लिक, तित्तिर, चोल और पाण्डय इन देशोंके वीर दक्षिणपक्षके स्थानमें नियुक्त हुए ॥४९-५०॥

अग्निवेश्या जगत्तुण्डा पलदाशाश्च भारत ।
शबरास्तुम्बुपाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः ।
नकुलः सहदेवश्च वामं पार्श्वं समाश्रिताः ॥ ५१ ॥

तथा अग्निवेश, जगत्तुण्ड, पलदाश, शबर, तुम्बुप, वत्स, नाकुल इन देशोंके वीरोंके सहित नकुल और सहदेव इस व्यूहके वाम पक्षके स्थानमें स्थित हुए ॥ ५१ ॥

रथानामयुतं पक्षौ शिरश्च नियुतं तथा ।
पृष्ठमर्बुदमेवासीत्सहस्राणि च विंशतिः ।
ग्रीवायां नियुतं चापि सहस्राणि च सप्ततिः ॥ ५२ ॥

उस क्रौंच पक्षीके पक्ष स्थानमें अयुत, सिरके भागमें नियुत, पीठ स्थानमें एक अर्बुद बीस हजार, गर्दनमें एक नियुत सत्तर हजार रथ रक्खे गये ॥ ५२ ॥

पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षान्तेषु च वारणाः ।
जग्मुः परिवृता राजंश्चलन्त इव पर्वताः ॥ ५३ ॥

राजन् ! पक्ष, कोटि, प्रपक्ष और दोनों पंखोंके अन्तमें चलते हुए पर्वतके समान हाथियोंका समूह चलने लगा । वे सब सेनाओंसे घिरे हुए थे ॥ ५३ ॥

जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ।
काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ॥ ५४ ॥

केकय वीरोंके सहित राजा विराट और तीन अयुत रथोंके सहित काशिराज तथा शैब्य उसके जघन स्थानकी रक्षा करने लगे ॥ ५४ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
सूर्योदयनमिच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः ॥ ५५ ॥

हे भरतसत्तम ! पाण्डवोंने इसी प्रकारसे क्रौञ्चारुणनामक महाव्यूहको सजाकर सब कोई मिल कर सूर्य उदय होनेकी अपेक्षा करते हुए युद्धके लिए कवच आदिसे सुसज्जित हो स्थित हुए ॥ ५५ ॥

तेषामादित्यवर्णानि विमलानि महान्ति च ।
श्वेतच्छत्राण्यशोभन्त वारणेषु रथेषु च ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ १८४३ ॥

उस समय उन लोगोंके रथ और हाथियोंपर बडे बडे श्वेतछत्र निर्मल और आदित्यके समान वर्णवाले शोभायमान दीख पडने लगे ॥ ५६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ १८४३ ॥

: ४७ :

सञ्जय उवाच

क्रौञ्चं ततो महाव्यूहमभेद्यं तनयस्तव ।
व्यूढं दृष्ट्वा महाघोरं पार्थेनामिततेजसा ॥ १ ॥
आचार्यमुपसङ्गम्य कृपं शल्यं च मारिष ।
सौमदत्तिं विकर्णं च अश्वत्थामानमेव च ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! अत्यन्त तेजस्वी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरका बनाया हुआ अच्छे प्रकारसे रचित उस क्रौञ्च नामके महाघोर अभेद् व्यूहको देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, सोमदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा ॥ १–२ ॥

दुःशासनादीन्भ्रातॄंश्च स सर्वानेव भारत ।
अन्यांश्च सुबहूञ्शूरान्युद्धाय समुपागतान् ॥ ३ ॥
प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे शस्त्रास्त्रवेदिनः ॥ ४ ॥

और दुःशासन आदि सब भाइयों तथा युद्धके निमित्त आये हुए सब वीर राजाओंको आवाहन करके उन्हें हर्षित करनेके निमित्त समयके अनुसार यह वचन कहा । तुम सब लोग महारथ, शास्त्रके जाननेवाले और नाना प्रकारके शस्त्रोंके चलानेमें समर्थ हो ॥ ३-४ ॥

एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः ।
पाण्डुपुत्रान्रणे हन्तुं ससैन्यान्किमु संहताः ॥ ५ ॥

तुम सब कोई अकेले ही रणक्षेत्रमें पाण्डुपुत्रोंका वध करनेमें समर्थ हो; तब सब मिलकर तथा सेनाके सहित इकट्ठे होकर जो पाण्डवोंको मारोगे, इसमें कहना ही क्या है ? ॥ ५ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं तदमेतेषां बलं पार्थिवसत्तमाः ॥ ६ ॥

और हमारी सेना अधिक अजेय तथा भीष्मपितामहसे रक्षित है । परंतु श्रेष्ठ राजाओंको इन पाण्डवोंकी यह सेना जीतनेमें सुगम है ॥ ६ ॥

संस्थानाः शूरसेनाश्च वेणिकाः कुकुरास्तथा ।
आरेवकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥ ७ ॥
शत्रुञ्जयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च ।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ॥ ८ ॥
चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पाणिभद्रकैः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु सह सैन्यपुरस्कृताः ॥ ९ ॥

इसलिये मेरा कहना है कि संस्थान, शूरसेन, वेणिक, कुकुर, आरेवक, त्रिगर्त, मद्रक और यवनदेशीय वीरलोग शत्रुञ्जय, दुःशासन, वीर विकर्ण, नन्द, उपनन्द, चित्रसेन और पाणि भद्रक वीरोंके सहित जाकर सेनाके सहित भीष्मके अनुगामी होकर उनकी रक्षा करें ॥ ७-९ ॥

ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तव पुत्रश्च मारिष ।
अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधने ॥ १० ॥

हे महाराज ! उस समय द्रोण, भीष्म और तुम्हारे पुत्रने मिलकर अपनी सेनाका पाण्डवोंके व्यूहके विरुद्ध उनके सैनिकोंको बाधा पहुंचानेवाला एक महा व्यूह सज्जित किया ॥ १० ॥

भीष्मः सैन्येन महता समन्तात्परिवारितः ।
ययौ प्रकर्षन्महतीं वाहिनीं सुरराडिव ॥ ११ ॥

बडी सेनासे चारों ओरसे घिरकर भीष्म उस महा सेनाके दलको आकर्षण करते हुए इन्द्रके समान सबके आगे चलने लगे ॥ ११ ॥

तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशां पते ॥ १२ ॥
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि ।
सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ॥ १३ ॥
गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः ।
शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥ १४ ॥

महाराज ! प्रतापवान् महा धनुषधारी द्रोणाचार्यने युद्धके लिये प्रस्थान किया । और उस समय कुन्तल, दशार्ण, मागध, विदर्भ, मेकल और कर्णप्रावरण वीरोंके सहित भीष्मके अनुगामी हुए; और सब सेनाके सहित गान्धार, सिन्धु, सौवीर, शिबि और वसातिदेशीय वीर योद्धा युद्धमें शोभायमान भीष्मके पीछे पीछे चले । शकुनि अपनी सेनाके सहित भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १२–१४ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः ।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा शर्मिलकोसलैः ॥ १५ ॥
दरदैश्चूचुपैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् अपने सब भाइयोंके सहित राजा दुर्योधन हर्षित होकर अश्वातक, विकर्ण, शर्मिल, कोसल, दरद, चूचुप, क्षुद्रक और मालव वीरोंके सहित आनंदसे सुबल पुत्र शकुनिकी सेनाकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १५–१६ ॥

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १७ ॥

भूरिश्रवा, शल, शल्य, आदरणीय राजा भगदत्त, अवन्तिदेशीय राजकुमार विन्द और अनुविन्द, उस सारी सेनाके वामपार्श्वकी रक्षा करने लगे ॥ १७ ॥

सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
शतायुश्च श्रुतायुश्च दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ॥ १८ ॥

सौमदत्ति, सुशर्मा, काम्बोजराज सुदक्षिण, श्रुतायु और शतायु दाहिने पार्श्वकी रक्षामें प्रवृत्त हुए ॥ १८ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥

अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा सात्वत कृतवर्मा अपनी विशाल सेनाके साथ कौरव सेनाके पृष्ठ भागमें खडे हुए ॥ १९ ॥

पृष्ठगोपास्तु तस्यासन्नानादेश्या जनेश्वराः ।
केतुमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ॥ २० ॥

नाना देशके राजा लोग, केतुमान्, वसुदान और काशिराजके पुत्र अभिभू बडी सेनाके सहित सेनाके पीठ स्थानपर स्थित हुए ॥ २० ॥

ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत ।
दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ताः सिंहनादांश्च नादयन् ॥ २१ ॥

हे भारत ! इसके अनन्तर तुम्हारे पक्षके सब वीर प्रसन्न होकर युद्धके निमित्त उत्साहपूर्वक शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ २१ ॥

तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २२ ॥

उन लोगोंके हर्षसूचक सिंहनाद और शङ्खध्वनिको सुनकर कौरवोंके वृद्ध पितामह भीष्मने भी जोरजोरसे सिंहनाद करके अपना शङ्ख बजाया ॥ २२ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पेश्यश्च विविधाः परैः ।
आनकाश्चाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ २३ ॥

तदनन्तर दूसरे सब लोग शङ्ख, भेरी, नाना प्रकारके पेश्य और आनक आदि बाजोंको बजाने लगे, उससे महा घोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ ॥ २४ ॥

अनन्तर सफेद घोडोंसे युक्त विशाल रथपर बैठे हुए हृषीकेश कृष्ण और अर्जुन सुवर्ण-रत्न भूषित अपने अपने श्रेष्ठ शङ्ख बजाने लगे ॥ २४ ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ २५ ॥

श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य और अर्जुनने देवदत्त तथा भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महाशङ्ख बजाया ॥ २५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ २६ ॥

कुन्तीके पुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्त विजय नामक शंख बजाया तथा नकुल और सहदेवने क्रमशः सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाए ॥ २६ ॥

काशिराजश्च शैब्यश्च शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महायशाः ॥ २७ ॥
पांचाल्यश्च महेष्वासो द्रौपद्याः पंच चात्मजाः ।
सर्वे दध्मुर्महाशंखान्सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ २८ ॥

इसी तरह काशीराज, शैब्य, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट और महान् यशवाला सात्यकि, महान् धनुर्धर पांचालराज तथा द्रौपदीके पांचों पुत्र इन सभीने अपने-अपने शंख बजाए और सिंहके समान आवाज करने लगे ॥ २७–२८ ॥

स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत् ॥ २९ ॥

उन सभी वीरोंने वहां रणभूमिमें बहुत बडी आवाज की और उस बडी आवाजने आकाश और पृथ्वीको गुंजा दिया ॥ २९ ॥

एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः ।
पुनर्युद्धाय संजग्मुस्तापयानाः परस्परम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ १८७३ ॥

इस प्रकार हे महाराज धृतराष्ट्र ! कौरव और पांडव दोनों प्रसन्न होकर एक दूसरे पर क्रोध प्रकट करते हुए फिर युद्ध करनेके लिए एकत्रित हो गए ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सैंतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ १८७३ ॥

×

: ४८ :

धृतराष्ट्र उवाच

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– इस प्रकार मेरे (कौरवों) और शत्रुओं (पाण्डवों) की सेनाओंको व्यूहमें खडे हो जानेपर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ उन वीरोंने किस प्रकार एक दूसरे पर प्रहार किया ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

समं व्यूढेष्वनीकेषु सन्नद्धा रुचिरध्वजाः ।
अपारमिव संदृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥ २ ॥
तेषां मध्ये स्थितो राजा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्युध्यध्वमिति दंशिताः ॥ ३ ॥

संजय बोले– इस प्रकार सेनाओंकी व्यूह रचना हो जानेपर तथा सुन्दर–सुन्दर पताकाओंके तैय्यार हो जानेपर उस सागरके समान विशाल सेनाको देखकर सेनाके बीचमें खडे हुए आपके पुत्र राजा दुर्योधनने आपके सब पुत्रों और सेनाओंको आज्ञा दी कि– " तुम सब तैय्यार होकर युद्ध करो " ॥ २–३ ॥

ते मनः क्रूरमास्थाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ४ ॥

वे सभी कौरववीर हाथोंमें पताका उठाये हुए, अपने प्राणोंको हथेली पर रखकर तथा अपने मनोंको कठोर बनाकर पाण्डवों पर चढ दौडे ॥ ४ ॥

ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५ ॥

तब तुम्हारे पुत्रों और शत्रुओंके बीच रथी और हाथियोंका रोंगटे खडे कर देनेवाला महान् युद्ध हुआ ॥ ५ ॥

मुक्तास्तु रथिभिर्बाणा रुक्मपुंखाः सुतेजनाः ।
सन्निपेतुरकुण्ठाग्रा नागेषु च हयेषु च ॥ ६ ॥

रथियोंके द्वारा छोडे गए सुनहरे पंखोंवाले अच्छी तरहसे तीक्ष्ण, तेज नोकोंवाले बाण हाथी और घोडों पर जाकर गिरने लगे ॥ ६ ॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः ।
अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥ ७ ॥

इस प्रकार युद्धके शुरु हो जानेपर भयंकर पराक्रमी महाबाहु भीष्म धनुष हाथमें उठाकर तैय्यार होकर पाण्डवोंकी तरफ दौडे ॥ ७ ॥

सौभद्रे भीमसेने च शैनेये च महारथे ।
केकये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८ ॥
एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाभितः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥ ९ ॥

कौरवोंको पितामह वृद्ध भीष्मने सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, भीमसेन, महारथी शिनिके पुत्र केकेय, विराट, धृष्टद्युम्न, चेदिराज और मत्स्यराज इन सभी नरवीरोंपर चारों ओरसे बाणोंकी बरसात करनी शुरु कर दी ॥ ८-९ ॥

प्राकम्पत महाव्यूहस्तस्मिन्वीरसमागमे ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ १० ॥

उन वीर भीष्मके इस प्रकार आक्रमण करने पर सारी सेनाका व्यूह कांपने लग गया और पाण्डवोंकी सारी सेनामें महान् संकट आ गया ॥ १० ॥

सादितध्वजनागाश्च हतप्रवरवाजिनः ।
विप्रयातरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ११ ॥

पाण्डवोंके घुडसवार, पताकायें, हाथी और श्रेष्ठ घोडे मारे जाने लगे । तब पाण्डवोंकी रथ सेनायें पीछे की तरफ हटने लगीं ॥ ११ ॥

अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥ १२ ॥

महारथी भीष्मको देखकर नरव्याघ्र अर्जुनने क्रोधित होकर वृष्णिकुलमें उत्पन्न श्रीकृष्णसे कहा कि जहां पितामह भीष्म हैं, वहीं चलिए ॥ १२ ॥

एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् ।
नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः ॥ १३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! यह स्पष्ट है कि दुर्योधनके हितमें रत रहनेवाले ये पितामह भीष्म क्रोधित होकर मेरी सेनाका नाश कर देंगे ॥ १३ ॥

एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन ।
धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः ॥ १४ ॥
पाञ्चालान्निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना ।
सोऽहं भीष्मं गमिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन ॥ १५ ॥

दुर्योधन जिनके आगे चल रहा है, ऐसे द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, विकर्ण तथा अन्य कौरवोंके साथ संगठित होकर दृढधनुषको धारण करनेवाले भीष्मसे रक्षित होकर पांचाल-वीरोंको मार डालेंगे, अतः हे जनार्दन ! इन सेनाओंकी रक्षा करनेके लिए मैं भीष्मसे लडने जाऊंगा ॥ १४–१५ ॥

तमब्रवीद्वासुदेवो यत्तो भव धनंजय ।
एष त्वा प्रापये वीर पितामहरथं प्रति ॥ १६ ॥

तब उससे वासुदेव बोले– हे धनंजय अर्जुन ! तुम तैयार हो जाओ, हे वीर ! यह लो, मैं तुम्हें पितामहके रथके प्रति पहुंचाता हूँ ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम् ।
प्रापयामास भीष्माय रथं प्रति जनेश्वर ॥ १७ ॥

हे जनेश्वर धृतराष्ट्र ! शौरी अर्थात् श्रीकृष्ण इस प्रकार कहकर उस संसार प्रसिद्ध रथको भीष्मके रथके प्रति ले गए ॥ १७ ॥

चञ्चद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनादित्यवर्चसा ॥ १८ ॥
विनिघ्नन्कौरवानीकं शूरसेनांश्च पाण्डवः ।
आयाच्छरान्नुदञ्शीघ्रं सुहृच्छोकविनाशनः ॥ १९ ॥

अपने मित्रोंके शोकका नाश करनेवाला कौरवोंकी सेनाको मारता हुआ तथा शूरसेनोंको मारता हुआ, पाण्डुपुत्र अर्जुन जिसके ऊपर बहुतसी पताकायें उड रही हैं, जिसमें बगलेके समान सफेद घोडे जुडे हुए हैं, जिसके ऊपर गर्जनेवाले बहुत भयङ्कर बन्दरकी आकृतिसे चिन्हित ध्वजा उड रही है, जो सूर्यके समान तेजस्वी है, जो मेघके समान गर्जना करता है, ऐसे विशाल रथ पर बैठकर शीघ्र ही आया ॥ १८–१९ ॥

तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ।
त्रासयानं रणे शूरान्पातयन्तं च सायकैः । ॥ २० ॥
सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः प्राच्यसौवीरकेकयैः ।
सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ॥ २१ ॥

फूटे हुए मस्तकवाले हाथीके समान मस्त, रणभूमिमें शूरवीरोंको डराते हुए और उन्हें बाणोंसे गिराते हुए, वेगसे चढकर आते हुए अर्जुनके सामने सिन्धुदेशके प्रमुख-प्रमुख वीर प्राच्य, सुवीर और केकय देशके वीरोंसे सुरक्षित हुए शान्तनुपुत्र भीष्म गए ॥ २०–२१ ॥

को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् ।
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथः संयातुमर्हति ॥ २२ ॥

क्योंकि कौरवोंके पितामह भीष्म, द्रोण और कर्णको छोडकर ऐसा और कौन है जो गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुनका सामना कर सके और उसके रथको रोक सके ॥ २२ ॥

ततो भीष्मो महाराज कौरवाणां पितामहः ।
अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समावृणोत् ॥ २३ ॥

तब इसके बाद, हे महाराज धृतराष्ट्र ! कौरवोंके पितामह भीष्मने अर्जुनको सतहत्तर बाणोंसे ढक दिया ॥ २३ ॥

द्रोणश्च पंचविंशत्या कृपः पंचाशता शरैः ।
दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः ॥ २४ ॥

द्रोणाचार्यने अर्जुनको पच्चीस और कृपाचार्यने पचास, दुर्योधनको चौंसठ और शल्यने नौ बाणोंसे ढक दिया ॥ २४ ॥

सैन्धवो नवभिश्चापि शकुनिश्चापि पंचभिः ।
विकर्णो दशभिर्भल्लै राजन्विव्याध पांडवम् ॥ २५ ॥

सिन्धुराज जयद्रथने नौ, शकुनिने भी पांच, विकर्णने, दस बाणोंसे, हे राजन् ! पाण्डुपुत्र अर्जुनको वींध डाला ॥ २५ ॥

स तैर्विद्धो महेष्वासः समन्तान्निशितैः शरैः ।
न विव्यथे महाबाहुर्भिद्यमान इवाचलः ॥ २६ ॥

महाधनुर्धारी महाबाहु अर्जुन चारों ओरसे तीखे बाणोंसे विद्ध होकर भी भिद्यमान पर्वतके समान तनिक भी विकल नहीं हुए ॥ २६ ॥

स भीष्मं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ।
द्रोणं षष्ट्या नरव्याघ्रो विकर्णं च त्रिभिः शरैः ॥ २७ ॥
आर्तायनिं त्रिभिर्बाणै राजानं चापि पञ्चभिः ।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा किरीटी भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस अमेय, किरीटधारी महातेजस्वी पुरुषसिंह अर्जुनने भीष्मको पचीस, कृपाचार्यको नौ, द्रोणाचार्यको साठ, विकर्णको तीन, आर्तायनिको तीन और राजा दुर्योधनको पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ २७–२८ ॥

तं सात्यकिर्विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ २९ ॥

तब सात्यकि, विराट, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पांचों पुत्र और अभिमन्यु ये सब लोग अर्जुनके निकट आ पहुंचे ॥ २९ ॥

ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम् ।
अभ्यवर्षत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः ॥ ३० ॥

अनन्तर धृष्टद्युम्न सोमकवंशियोंके सहित गङ्गापुत्र भीष्मके प्रियमें रत महाधनुर्धारी द्रोणाचार्यके निकट उपस्थित हुए ॥ ३० ॥

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठस्तूर्णं विव्याध पाण्डवम् ।
अशीत्या निशितैर्बाणैस्ततोऽक्रोशन्त तावकाः ॥ ३१ ॥

राजन् ! परन्तु रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने शीघ्रताके सहित तीक्ष्ण चोखे अस्सी बाण पांडुनंदन अर्जुनके ऊपर चलाये, यह देखकर तुम्हारे पक्षके सब वीर हर्षके सहित कोलाहल करने लगे ॥ ३१ ॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टानां प्रहृष्टवत् ।
प्रविवेश ततो मध्यं रथसिंहः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

अनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रतापवान् अर्जुनने हर्षसे युक्त प्रफुल्लित उन योद्धाओंके सिंहनादको सुनकर उन लोगोंके बीच प्रसन्न चित्तसे उनकी सेनामें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥

तेषां तु रथसिंहानां मध्यं प्राप्य धनञ्जयः ।
चिक्रीड धनुषा राजँल्लक्ष्यं कृत्वा महारथान् ॥ ३३ ॥

राजन् ! उन महारथियोंके भीतर पहुंच कर अर्जुन उन महारथोंको लक्ष्य करके धनुषसे क्रीडा करने लगे ॥ ३३ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः ।
पीड्यमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे ॥ ३४ ॥

हे महाराज ! उस समय प्रजापालक राजा दुर्योधन युद्धमें अपनी सेनाको अर्जुनके बाणोंसे पीडित देखकर भीष्मसे बोले ॥ ३४ ॥

एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ।
यततां सर्वसैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति ।
त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे ॥ ३५ ॥

हे पितामह ! रथियोंमें मुख्य तुम्हारे और द्रोणाचार्यके जीवित रहते ही यह पाण्डुके बलवान् पुत्र अर्जुन कृष्णके सहित आकर हमारी सेनाका प्रयत्नशील होनेपर भी नाश करता हुआ हम लोगोंकी जडको नष्ट कर रहा है ॥ ३५ ॥

त्वत्कृते ह्येष कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो महारथः ।
न युध्यति रणे पार्थं हितकामः सदा मम ॥ ३६ ॥

महारथी कर्ण आपके ही कारणसे अस्त्रशस्त्र त्याग कर युद्धसे अलग हुए हैं और वह रणभूमिमें अर्जुनसे युद्ध नहीं करते हैं । कर्ण हमारे सदाके हितैषी है ॥ ३६ ॥

स तथा कुरु गाङ्गेय यथा हन्येत फल्गुनः ।
एवमुक्तस्ततो राजन्पिता देवव्रतस्तव ।
धिक्क्षत्रधर्ममित्युक्त्वा ययौ पार्थरथं प्रति ॥ ३७ ॥

गांगेय ! इससे जिस प्रकारसे अर्जुन मारा जावे, आप उस ही उपायका विधान करो । महाराज ! आपके पिता देवव्रती भीष्मने दुर्योधनकी बात सुनकर 'क्षत्रिय धर्मको धिकार है' ऐसा कहकर अर्जुनके रथके समीपमें गमन किया ॥ ३७ ॥

उभौ श्वेतहयौ राजन्संसक्तौ दृश्य पार्थिवाः ।
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खशब्दांश्च भारत ॥ ३८ ॥

महाराज ! दोनों श्वेतवाहन पुरुषसिंहोंको युद्धमें मिलता हुआ देखकर राजा लोग अत्यन्त ही जोर जोरसे सिंहनाद करके शंख बजाने लगे ॥ ३८ ॥

द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः ।
परिवार्य रणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष ॥ ३९ ॥

आर्य ! द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा, दुर्योधन और तुम्हारे पुत्र विकर्ण भीष्मको घेरकर युद्धके निमित्त स्थित हुए ॥ ३९ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ।
स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्तत ॥ ४० ॥

वैसे ही सर्व पाण्डव भी अर्जुनको सब ओरसे घेरकर महायुद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; इसके अनन्तर उनमें भारी युद्ध होने लगा ॥ ४० ॥

गाङ्गेयस्तु रणे पार्थमानर्छन्नवभिः शरैः ।
तमर्जुनः प्रत्यविध्यद्दशभिर्मर्मवेधिभिः ॥ ४१ ॥

गङ्गानन्दन भीष्मने उस रणमें नौ बाण अर्जुनको मारे । अर्जुनने भी दसमर्मभेदी बाण भीष्मके ऊपर चलाये ॥ ४१ ॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ।
अर्जुनः समरश्लाघी भीष्मस्यावारयद्दिशः ॥ ४२ ॥

इसके अनन्तर युद्धमें बडाईके योग्य पाण्डुनन्दन अर्जुनने अच्छी तरह छोडे हुए एक सहस्र बाण चलाकर भीष्मको चारों ओरसे छिपा दिया ॥ ४२ ॥

शरजालं ततस्तत्तु शरजालेन कौरव ।
वारयामास पार्थस्य भीष्मः शान्तनवस्तथा ॥ ४३ ॥

हे कौरव श्रेष्ठ ! शान्तनुनन्दन भीष्मने भी उस समय अपने बाणोंके जालसे अर्जुनके चलाये हुए बाणोंको निवारण किया ॥ ४३ ॥

उभौ परमसंहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ ।
निर्विशेषमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ ४४ ॥

वह दोनों ही वीर अत्यंत हर्षसे युद्धमें प्रशंसनीय थे, दोनों परम हर्षके सहित एक दूसरेके शस्त्रोंको निवारण करते हुए समानरूपसे युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥

भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि सङ्घशः ।
शीर्यमाणान्यदृश्यन्त भिन्नान्यर्जुनसायकैः ॥ ४५ ॥

जो सब बाण भीष्मके धनुषसे छूटते थे, वे अर्जुनके बाणोंसे कटकर इधर उधर गिरते दीख पडते थे ॥ ४५ ॥

तथैवार्जुनमुक्तानि शरजालानि भागशः ।
गाङ्गेयशरनुन्नानि न्यपतन्त महीतले ॥ ४६ ॥

उसी प्रकारसे जो सब बाण अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटते थे, वे गंगानंदन भीष्मके बाणोंसे टुकडे होकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ४६ ॥

अर्जुनः पञ्चविंशत्या भीष्ममार्च्छच्छितैः शरैः ।
भीष्मोऽपि समरे पार्थं विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ ४७ ॥

अर्जुनने पचीस तीक्ष्ण बाणोंसे भीष्मको प्रहार किया और फिर भीष्मने भी समरभूमिमें अर्जुनको तीनसो तीक्ष्ण बाण मारे ॥ ४७ ॥

अन्योन्यस्य हयान्विध्द्वा ध्वजौ च सुमहाबलौ ।
रथेषां रथचक्रे च चिक्रीडतुररिन्दमौ ॥ ४८ ॥

वह दोनों शत्रुनाशन तथा बलवान् वीर लीलाके क्रमके अनुसार एक दूसरेके घोडे, रथ, ध्वजा और रथकी धुरी तथा रथके चक्रको अपने बाणोंसे वेधते हुए क्रीडा करने लगे ॥ ४८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीष्मः प्रहरतां वरः ।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ४९ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर योद्धाओंमें मुख्य भीष्मने क्रुद्ध होकर अर्जुनके सारथी श्रीकृष्णकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ ४९ ॥

भीष्मचापच्युतैर्बाणैर्निर्विद्धो मधुसूदनः ।
विरराज रणे राजन्सपुष्प इव किंशुकः ॥ ५० ॥

राजन् ! भगवान् मधुसूदन कृष्ण भीष्मके धनुपसे छूटे हुए उन बाणोंसे विद्ध होकर रणभूमिमें रक्तरंजित हो फूले हुए पलाश वृक्षके समान शोभित हुए ॥ ५० ॥

ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम् ।
गाङ्गेयसारथिं संख्ये निर्विभेद त्रिभिः शरैः ॥ ५१ ॥

अर्जुनने कृष्णको भीष्मके बाणोंसे विद्ध हुआ देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए उन्होंने युद्धमें भीष्मके सारथीको तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५१ ॥

यतमानौ तु तौ वीरावन्योन्यस्य वधं प्रति ।
नाशक्नुतां तदान्योन्यमभिसन्धातुमाहवे ॥ ५२ ॥

उस समयमें वे दोनों वीर एक दूसरेके वधके लिये यत्नवान् होकर भी युद्धमें एक दूसरेको लक्षित करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ५२ ॥

मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ।
अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात् ॥ ५३ ॥

क्योंकि दोनों ही सारथियोंके रथ चलानेकी निपुणतासे रथकी मण्डलाकार विचित्र गति आगे बढने और पीछे हटने आदिको देखने लगे ॥ ५३ ॥

×

अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ महारथौ ।
राजन्नन्तरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः ॥ ५४ ॥

राजन् ! दोनों ही एक दूसरेके प्रहार करनेमें आकाश ढूंढनेके लिए समर्थ थे । वे बार बार मार्गमें स्थित हो छिद्र देखनेमें मग्न थे ॥ ५४ ॥

उभौ सिंहरवोन्मिश्रं शङ्खशब्दं प्रचक्रतुः ।
तथैव चापनिर्घोषं चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ ५५ ॥

वे दोनों महारथी बाणोंका अनुसन्धान करते हुए फिर इधर उधर घूमने लगे और सिंहनादके सहित शंख बजाने लगे; फिर धनुषोंपर टङ्कार देने लगे ॥ ५५ ॥

तयोः शङ्खप्रणादेन रथनेमिस्वनेन च ।
दारिता सहसा भूमिश्चकम्प च ननाद च ॥ ५६ ॥

उन लोगोंके शंखके शब्द और रथोंके निर्घोषसे पृथ्वी सहसा विदारित होकर कम्पित होने लगा तथा पृथ्वीसे प्रतिध्वनि उत्पन्न होने लगी ॥ ५६ ॥

न तयोरन्तरं कश्चिद्ददृशे भरतर्षभ ।
बलिनौ समरे शूरावन्योन्यसदृशावुभौ ॥ ५७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे दोनों ही समान शूरवीर और बलवान् थे; तथा एक दूसरेके अनुरूप थे । दोनोंमें थोडा भी भेद नहीं दीख पडता था ॥ ५७ ॥

चिह्नमात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः ।
तथा पाण्डुसुताः पार्थं चिह्नमात्रेण जज्ञिरे ॥ ५८ ॥

उस समय कौरवोंने केवल ताल ध्वजके चिन्हसे ही भीष्मको पहचान लिया, तथा पाण्डवोंने ही केवल, कपिध्वज चिह्नसे ही अर्जुनको जान लिया ॥ ५८ ॥

तयोर्नृवरयो राजन्दृश्य तादृक्पराक्रमम् ।
विस्मयं सर्वभूतानि जग्मुर्भारत संयुगे ॥ ५९ ॥

हे महाराज ! युद्धमें उन दोनों पुरुष सिंहोंके ऐसे पराक्रमको देखकर सम्पूर्ण प्राणी विस्मित हुए ॥ ५९ ॥

न तयोर्विवरं कश्चिद्रणे पश्यति भारत ।
धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद्वृजिनं क्वचित् ॥ ६० ॥

भारत ! जिस प्रकारसे धर्मात्मा पुरुषका कभी कुछ पापकर्म नहीं दीख पडता, वैसे ही कोई भी रणभूमिमें उन लोगोंके छिद्रको देखनेमें समर्थ नहीं हुआ ॥ ६० ॥

उभौ हि शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः ।
प्रकाशौ च पुनस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे ॥ ६१ ॥

वह दोनों वीर संग्राममें कभी एक दूसरेके बाणोंके जालसे छिप जाते थे और कभी उन्हें छिन्न भिन्न करके शीघ्र ही प्रकट हो जाते थे ॥ ६१ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाश्चारणाश्च सहर्षिभिः ।
अन्योन्यं प्रत्यभाषन्त तयोर्दृष्ट्वा पराक्रमम् ॥ ६२ ॥
न शक्यौ युधि संरब्धौ जेतुमेतौ महारथौ ।
सदेवासुरगन्धर्वैर्लोकैरपि कथञ्चन ॥ ६३ ॥

दोनोंके पराक्रमको देखकर वहांपर युद्ध देखनेवाले देवता, गन्धर्व, चारण और महर्षि लोग आपसमें कहने लगे; इन दोनों पराक्रमी महारथ वीरोंको सम्पूर्ण लोक देवता, असुर और गन्धर्वोंके सङ्ग मिलकर भी युद्धमें किसी प्रकारसे पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ ६२–६३ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेषु युद्धमेतन्महाद्भुतम् ।
नैतादृशानि युद्धानि भविष्यन्ति कथञ्चन ॥ ६४ ॥

लोकके बीच यह युद्ध आश्चर्यरूप अद्भुत प्रकारसे हो रहा है; भविष्यमें ऐसा युद्ध कभी भी होनेकी किसी प्रकार भी संभावना नहीं है ॥ ६४ ॥

नापि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता ।
सधनुश्च रथस्थश्च प्रवपन्सायकान्रणे ॥ ६५ ॥

बुद्धिमान् अर्जुन युद्धमें भीष्मको किसी प्रकारसे भी नहीं जीत सकेंगे । क्योंकि भीष्म घोडोंसे युक्त रथपर बैठके हाथमें धनुष लेकर बाणोंको बीजके भांति छोडते रहे हैं ॥ ६५ ॥

तथैव पाण्डवं युद्धे देवैरपि दुरासदम् ।
न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरम् ॥ ६६ ॥

उसी प्रकारसे भीष्म भी देवताओंसे भी न जीतने योग्य धनुर्धारी पाण्डुपुत्र अर्जुनको युद्धमें नहीं जीत सकेंगे ॥ ६६ ॥

इति स्म वाचः श्रूयन्ते प्रोच्चरन्त्यस्ततस्ततः ।
गाङ्गेयार्जुनयोः संख्ये स्तवयुक्ता विशां पते ॥ ६७ ॥

हे पृथ्वीपति ! इस प्रकार रणभूमिमें भीष्म और अर्जुनके स्तुति वचनयुक्त बातें इधर उधरसे सुनाई देने लगीं ॥ ६७ ॥

त्वदीयास्तु ततो योधाः पाण्डवेयाश्च भारत ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ६८ ॥

हे महाराज ! उन दोनोंके पराक्रम प्रकाश करनेपर युद्धमें तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके योद्धा लोग एक दूसरेको अस्त्रशस्त्रोंसे मारने लगे ॥ ६८ ॥

शितधारैस्तथा खड्गैर्विमलैश्च परश्वधैः ।
शरैरन्यैश्च बहुभिः शस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ।
उभयोः सेनयोर्वीरा न्यकृन्तन्त परस्परम् ॥ ६९ ॥

दोनों ओरके शूरवीर योद्धा लोग युद्धमें उत्तम धारवाले खड्ग चमचमाते हुए परशु, अनेक प्रकारके बाण तथा दूसरे शस्त्रोंसे आपसमें एक दूसरेको काटकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ६९ ॥

वर्तमाने तथा घोरे तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन्महानासीत्समागमः ॥ ७० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ १९४२ ॥

राजन् ! एक ओर इस प्रकार महाभयङ्कर घोर संग्राम चल रहा था; और दूसरी ओर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका भी महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ७० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अडतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ १९४२ ॥

: ४९ :

धृतराष्ट्र उवाच

कथं द्रोणो महेष्वासः पाञ्चाल्यश्चापि पार्षतः ।
रणे समीयतुर्यत्तौ तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! महात्मा द्रोणाचार्य और पाञ्चाल धृष्टद्युम्न किस प्रकारसे यत्नवान् होकर आपसमें युद्ध करनेके निमित्त प्रवृत्त हुए थे; वह तुम मेरे निकट वर्णन करो ॥ १ ॥

दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषादपि संजय ।
यत्र शांतनवो भीष्मो नातरद्युधि पाण्डवम् ॥ २ ॥

हे सञ्जय ! जब शान्तनुनन्दन भीष्म युद्धमें पाण्डुपुत्र अर्जुनसे छुटकारा न पा सके, तब पुरुषार्थकी अपेक्षा प्रारब्धको ही मैं मुख्य मानता हूं और इसीपर विश्वास करता हूं ॥ २ ॥

भीष्मो हि समरे क्रुद्धो हन्याल्लोकांश्चराचरान् ।
स कथं पाण्डवं युद्धे नातरत्सञ्जयौजसा ॥ ३ ॥

संजय ! नहीं तो भीष्म क्रुद्ध रणक्षेत्रमें होकर सम्पूर्ण लोकके प्राणीमात्रका संहार कर सकते हैं; वे फिर युद्धमें पाण्डुकुमार अर्जुन अपने पराक्रमसे समुद्र पार क्यों नहीं हो सके ? ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा युद्धमेतत्सुदारुणम् ।
न शक्यः पाण्डवो जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! इन्द्रके सहित देवता लोग भी पाण्डुपुत्रको युद्धमें नहीं जीत सकते; इससे आप इस महा भयङ्कर युद्धके वृत्तान्तको चित्त लगाकर सुनो ॥ ४ ॥

द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमयोधयत् ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥
द्रोणाचार्यने अनेक भांतिके तीखे बाणोंसे धृष्टद्युम्नको विद्ध किया और भल्लेसे उनके सारथीको मारकर रथसे पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ५ ॥

तस्याथ चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ६ ॥
आर्य ! फिर क्रुद्ध होकर उन्होंने चार उत्तम बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चार घोडोंको पीडित किया ॥ ६ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ७ ॥
अनन्तर वीर धृष्टद्युम्नने हंसकर 'खडा रह ! खडा रह !' कहकर नब्बे बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ ७ ॥

ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान् ।
शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ८ ॥
तब अत्यन्त तेजस्वी महा प्रतापी भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने क्रोधी धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ ८ ॥

आददे च शरं घोरं पार्षतस्य वधं प्रति ।
शक्राशनिसमस्पर्शं मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ ९ ॥
और धृष्टद्युम्नका अन्त कर डालनेकी इच्छासे इन्द्रके वज्र समान स्पर्श करनेवाला तथा दूसरे यमराजके दण्डके समान एक महावोर बाण ग्रहण किया ॥ ९ ॥

हाहाकारो महानासीत्सर्वसैन्यस्य भारत ।
तमिषुं संधितं दृष्ट्वा भारद्वाजेन संयुगे ॥ १० ॥
हे भारत ! युद्धमें द्रोणाचार्यके उस बाणको धनुषपर रखते ही संपूर्ण सेनाके बीचमें अत्यन्त हाहाकार शब्द होने लगा ॥ १० ॥

तत्राद्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम् ।
यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ११ ॥
हे महाराज ! उस समयमें मैंने धृष्टद्युम्नका बहुत पराक्रम देखा, कि वह वीर समरांगणमें अकेला ही पर्वतके समान अचल होकर खडा था ॥ ११ ॥

तं च दीप्तं शरं घोरमायान्तं मृत्युमात्मनः ।
चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह ॥ १२ ॥

और अपने मृत्युस्वरूप आये हुए उस भयङ्कर तेजस्वी बाणको काटकर गिरा दिया; अनन्तर वह द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १२ ॥

तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
धृष्टद्युम्नेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नके इस भांतिके अति कठिन पराक्रमको देखकर पाण्डव सहित सर्व पाञ्चाल लोग सिंहनाद करने लगे ॥ १३ ॥

ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैडूर्यभूषिताम् ।
द्रोणस्य निधानाकांक्षी चिक्षेप स पराक्रमी ॥ १४ ॥

तदनन्तर पराक्रमशील महावीर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके वध करनेकी इच्छासे उनके ऊपर सुवर्ण और वैडूर्यसे भूषित अत्यन्त वेगशील एक शक्ति चलायी ॥ १४ ॥

तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनकभूषणाम् ।
त्रिधा चिक्षेप समरे भारद्वाजो हसन्निव ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्यने हंसते हंसते समरभूमिमें उस सुवर्णभूषित प्रकाशमान शक्तिको सहसा आती देखकर अपने बाणोंसे तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १५ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर ॥ १६ ॥

जनेश्वर ! प्रतापी धृष्टद्युम्नने अपनी शक्तिको खण्डित हुई देखकर द्रोणाचार्यके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ की ॥ १६ ॥

शरवर्षं ततस्तं तु संनिवार्य महायशाः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १७ ॥

महा यशस्वी द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके बाणोंको निवारण करके द्रुपदपुत्रके धनुषका मध्यभाग अपने बाणोंसे काट दिया ॥ १७ ॥

स च्छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वीं महायशाः ।
द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली ॥ १८ ॥

महा यशस्वी बलवान् वीर धृष्टद्युम्नने रणांगणमें धनुषको कटा हुआ देखकर पर्वतके समान एक बहुत बडी और भारी गदा द्रोणाचार्यके ऊपर चलाई ॥ १८ ॥

सा गदा वेगवन्मुक्ता प्रायाद्द्रोणजिघांसया ।
तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य विक्रमम् ॥ १९ ॥

वह गदा उनके हाथसे वेगपूर्वक छूटकर द्रोणाचार्यको नाश करनेके निमित्त जोरसे चली; परन्तु उस ही समय द्रोणाचार्यका अद्भुत पराक्रम देखा गया ॥ १९ ॥

लाघवाद्व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम् ।
व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षते ॥ २० ॥
भल्लान्सुनिशितान्पीतान्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २१ ॥

उन्होंने वाण चलानेकी शीघ्रता और निपुणताके कारण उस सुवर्ण-भूषित गदाको विफल कर दिया । इस प्रकार गदाको विफल करके शिलापर घिसे और उत्तम पानीमें बुझाये हुए सोनेके पंखयुक्त कितने ही भल्ल धृष्टद्युम्नके ऊपर चलाये। वह सब भल्ल धृष्टद्युम्नका कवच काटकर रणक्षेत्रमें उनके रुधिरको पीने लगे ॥ २०-२१ ॥

अथान्यद्धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महामनाः ।
द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २२ ॥

अनन्तर महात्मा धृष्टद्युम्नने उस युद्धमें और एक दूसरा धनुष लेकर पराक्रमपूर्वक पांच वाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ २२ ॥

रुधिराक्तौ ततस्तौ तु शुशुभाते नरर्षभौ ।
वसन्तसमये राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २३ ॥

हे राजन् ! तब वे दोनों ही पुरुषसिंह रुधिरसे भींगकर वसन्त ऋतुके फूले हुए पलाश वृक्षके समान शोभित होने लगे ॥ २३ ॥

अमर्षितस्ततो राजन्पराक्रम्य चमूमुखे ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ २४ ॥

हे महाराज ! अनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सेनाके बीच द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नके धनुषको फिर पराक्रमके सहित अपने वाणसे काटकर गिरा दिया ॥ २४ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः संनतपर्वभिः ।
अवाकिरदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाचलम् ॥ २५ ॥

तब धृष्टद्युम्नका धनुष काटकर अमेय आत्मबलसे संपन्न प्रतापी द्रोणाचार्य पर्वतके ऊपर मेघकी जल वर्षाके समान उनके ऊपर पंखसे युक्त वाणोंको वर्षाने लगे ॥ २५ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥

और एक भल्लेसे उनके रथके सारथीको मारके पृथ्वीमें गिरा दिया । उसके अनन्तर चार शोणित बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंका संहार किया ॥ २६ ॥

पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च ।
ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चापमथाच्छिनत् ॥ २७ ॥

फिर वे रणभूमिमें जोरसे सिंहनाद करने लगे । अनन्तर और एक बाणसे उनके हातमें स्थित दूसरे धनुषको भी काट दिया ॥ २७ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवारोहत्ख्यापयन्पौरुषं महत् ॥ २८ ॥

इस प्रकार धृष्टद्युम्न धनुषके कटने और सारथी तथा घोडोंके मारे जानेपर रथहीन हुए वे अत्यन्त पराक्रमके सहित गदा लेकर उतरने लगे ॥ २८ ॥

तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥

परन्तु रथसे उतरते ही उतरते द्रोणाचार्यने तुरंत ही कई एक बाणोंसे उनकी गदाको टुकडे टुकडे करके गिरा दिया, वह कर्म अद्भुत रूपसे प्रकाशित हुआ ॥ २९ ॥

ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत् ।
खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥ ३० ॥
अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकांक्षया ।
आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर बलवान् महाबाहु धृष्टद्युम्न सौ चन्द्रयुक्त एक मनोहर सुन्दर तेजस्वी ढाल और दिव्य विशाल खड्गको लेकर मतवाले हाथीकी ओर मांसकी इच्छा करनेवाले सिंहके समान द्रोणाचार्यके वध करनेके निमित्त वेगसे दौडे ॥ ३०-३१ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ।
लाघवं चास्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! उस समयमें मैंने भरद्वाजपुत्र द्रोणके दोनों भुजाओंका बल, शस्त्रोंकी शीघ्रता और पराक्रम अद्भुत रूपसे अवलोकन किया ॥ ३२ ॥

यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम् ।
न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥ ३३ ॥

उन्होंने अकेले ही अपने बाणोंकी वर्षासे धृष्टद्युम्नको मार्गमें ही रोक रक्खा, धृष्टद्युम्न ऐसे बलवान् होकर भी युद्धमें द्रोणाचार्यके समीपमें न जा सके ॥ ३३ ॥

तत्र स्थितमपश्याम धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
वारयाणं शरौघांश्च चर्मणा कृतहस्तवत् ॥ ३४ ॥

मैंने देखा, कि उस समय वह महारथ मार्गमें ही खडे होकर अपने हाथकी शीघ्रताके सहित ढालसे उन बाणोंको निवारण करने लगे ॥ ३४ ॥

ततो भीमो महाबाहुः सहसाभ्यपतद्बली ।
साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥ ३५ ॥

अनन्तर महाबलवान् वीर महाबाहु भीमसेन सहसा युद्धमें महात्मा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नकी सहायताके निमित्त वहांपर आ पहूंचे ॥ ३५ ॥

स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन्विव्याध सप्तभिः ।
पार्षतं च तदा तूर्णमन्यमारोपयद्रथम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! उन्होंने भली भांतिसे सात शाणित बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया, फिर शीघ्रता-के सहित धृष्टद्युम्नको दूसरे रथपर चढाया ॥ ३६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा कलिङ्गं समचोदयत् ।
सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥ ३७ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर राजा दुर्योधनने एक बडी सेनाके सहित कलिङ्गराज भानुमान्को द्रोणाचार्यकी सहायताके निमित्त भेजा ॥ ३७ ॥

ततः सा महती सेना कलिङ्गानां जनेश्वर ।
भीमसभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ३८ ॥

जनेश्वर ! कलिङ्गराजकी वीरोंकी बडी सेना आपके पुत्रकी आज्ञाके अनुसार तुरत ही भीमसेनकी ओर दौडी ॥ ३८ ॥

पाञ्चाल्यमभिसन्त्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ योधयामास संगतौ ।
धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजं समभ्ययात् ॥ ३९ ॥

तब रथियोंमें मुख्य द्रोणाचार्य भी धृष्टद्युम्नको छोडकर युद्धस्थलमें विराट और द्रुपद इन दोनों वृद्ध नरेशोंके सङ्ग युद्ध करने लगे। इधर धृष्टद्युम्न भी युद्धमें धर्मराजके समीप गये ॥ ३९ ॥

×

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कलिङ्गानां च समरे भीमस्य च महात्मनः ।
जगतः प्रक्षयकरं घोररूपं भयानकम् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनपंचाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ १९८३ ॥

अनन्तर युद्धभूमिमें महात्मा भीमके सङ्ग कलिङ्ग देशीय सेनाका महाघोर रोएंको खडा करनेवाला, भयङ्कर और जगत् नाश करनेवाला अत्यन्त कठिन संग्राम होने लगा ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें उनपचासवां अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ १९८३ ॥

: ५० :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रतिसमादिष्टः कलिङ्गो वाहिनीपतिः ।
कथमद्भुतकर्माणं भीमसेनं महाबलम् ॥ १ ॥
चरन्तं गदया वीरं दण्डपाणिमिवान्तकम् ।
योधयामास समरे कलिङ्गः सह सेनया ॥ २ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! सेनापति कलिङ्गराजने दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार सेनाको सङ्ग लेकर वीर भीमसेन दण्डधारी यमराजके समान गदा धारण करके सेनाके बीच भ्रमण करते हुए अद्भूत कर्म करनेवाले महा बलवान् भीमसेनके सङ्ग समरांगणमें किस प्रकारके युद्ध किया ॥ १–२ ॥

सञ्जय उवाच

पुत्रेण तव राजेन्द्र स तथोक्तो महाबलः ।
महत्या सेनया गुप्तः प्रायाद्भीमरथं प्रति ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! महाबली कलिङ्गराजने आपके पुत्रके समीप ऐसी आज्ञा पाकर अपनी बडी सेनासे सुरक्षित हो भीमके रथके निकट गमन किया ॥ ३ ॥

तामापतन्तीं सहसा कलिङ्गानां महाचमूम् ।
रथनागाश्वकलिलां प्रगृहीतमहायुधाम् ॥ ४ ॥
भीमसेनः कलिङ्गानामार्छद्भारत वाहिनीम् ।
केतुमन्तं च नैषादिमायान्तं सह चेदिभिः ॥ ५ ॥

भारत ! भीमसेनने चेदिदेशीय वीरोंके सहित रथ, घोडे, हाथीसे युक्त महा अस्त्र शस्त्र ग्रहण करनेवाले कलिङ्गदेशीय बहुत बडे सेनाके दल और निषादतनय केतुमान्को आया हुआ देखकर उनको बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ४–५ ॥

ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राज्ञा केतुमता सह।
आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु ॥ ६ ॥

तब राजा केतुमान्के साथ श्रुतायु भी क्रुद्ध होकर रणक्षेत्रमें निज सेनाका व्यूह बनाके भीमके निकटमें गये। उस समय चेदिदेशीय सेनाएं व्यूहबद्ध थीं ॥ ६ ॥

रथैरनेकसाहस्रैः कलिङ्गानां जनाधिपः।
अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान्।
भीमसेनं रणे राजन्समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ७ ॥

राजन्! केतुमान् राजा कलिंगोंके कई हजार रथियों और निषाद योद्धाओं तथा दश हजार हाथीयोंके सहित भीमसेनको उस रणस्थलमें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥

चेदिमत्स्यकरूषाश्च भीमसेनपुरोगमाः।
अभ्यवर्तन्त सहसा निषादान्सह राजभिः ॥ ८ ॥

चेदि, मत्स्य, करूष, और दूसरे राजाओं जो भीमसेनको अनुसरते थे, उनके साथ भीमसेन उस रणभूमिमें सहसा निषाद राजा वीरोंकी ओर दौडे ॥ ८ ॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम्।
प्रजानन्न च योधान्स्वान्परस्परजिघांसया ॥ ९ ॥

उस समय महाघोर और भयङ्कर युद्ध होने लगा। इसके अनन्तर वीर योद्धा लोग स्वकीय योद्धाओंको न पहचान सके, एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे घोर संग्राम करने लगे ॥ ९ ॥

घोरमासीत्ततो युद्धं भीमस्य सहसा परैः।
यथेन्द्रस्य महाराज महत्या दैत्यसेनया ॥ १० ॥

महाराज! जैसे दैत्योंकी विशाल सेनाके साथ देवराज इन्द्रका युद्ध होता है, वैसे ही कलिंग सेनाके सङ्ग भीमसेनका महाघोर संग्राम होने लगा ॥ १० ॥

तस्य सैन्यस्य संग्रामे युद्ध्यमानस्य भारत।
बभूव सुमहाञ्शब्दः सागरस्येव गर्जतः ॥ ११ ॥

भारत! उस बडी युद्ध करती हुई सेनाके संग्राममें समुद्रकी लहरके समान बडा घोर शब्द होने लगा ॥ ११ ॥

अन्योन्यस्य तदा योधा निकृन्तन्तो विशां पते।
महीं चक्रुश्चितां सर्वां शशशोणितसंनिभाम् ॥ १२ ॥

महाराज! उस समय सेनाके वीरोंने एक दूसरेको खींचकर काटते हुए अपने मांस और रुधिरसे पृथ्वीको पूरित कर दिया। वह भूमि खरगोशके रक्तकी भाँति लाल दिखाई देने लगी ॥ १२ ॥

योधांश्च स्वान्परान्वापि नाभ्यजानञ्जिघांसया ।
स्वानप्याददते स्वांश्च शूराः समरदुर्जयाः ॥ १३ ॥

क्रोधके वशमें होकर परम दुर्जय शूर योद्धा विपक्षीको मार डालनेकी अभिलाषासे अपने और शत्रुपक्षके वीरोंको भी जीत नहीं सकते थे । वह अपने पक्षवाले वीरोंके ही ऊपर प्रहार करने लगे ॥ १३ ॥

विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह ।
कलिङ्गैः सह चेदीनां निषादैश्च विशां पते ॥ १४ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार बहुतसे निषाद और कलिङ्ग वीरोंके संग्राममें थोडेसे चेदिदेशिय योद्धाओंका अत्यन्त ही नाश होने लगा ॥ १४ ॥

कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः ।
भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त चेदयः ॥ १५ ॥

बलवान् चेदिदेशीय योद्धा लोग शक्तिके अनुसार पराक्रम प्रकाशित करनेके अनन्तर भीमसेनको अकेला छोडकर युद्धसे हट गये ॥ १५ ॥

सर्वैः कलिङ्गैरासन्नः संनिवृत्तेषु चेदिषु ।
स्वबाहुबलमास्थाय न न्यवर्तत पाण्डवः ॥ १६ ॥

परन्तु चेदिदेशीय वीरोंके भाग जानेपर महाबली भीमसेन सम्पूर्ण कलिङ्ग-देशीय योद्धाओंसे घिरकर तथा उनसे आक्रान्त होकर भी युद्धसे निवृत्त नहीं हुए, वह अपने बाहुबलके आसरेसे ही रणभूमिमें डटे रहे ॥ १६ ॥

न चचाल रथोपस्थाद्भीमसेनो महाबलः ।
शितैरवाकिरन्बाणैः कलिङ्गानां वरूथिनीम् ॥ १७ ॥

महाराज ! महाबाहु भीमसेन अपने रथके ऊपरसे तनिक भी विचलित नहीं हुए और अपने चोखे बाणोंसे कलिंग सेनाको विकल करने लगे ॥ १७ ॥

कलिङ्गस्तु महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः
शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः ॥ १८ ॥

फिर महाधनुर्द्धर कलिंगराज और उनके महारथी पुत्र शक्रदेव, ये दोनों पाण्डुनन्दन भीमके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगे ॥ १८ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन्रुचिरं धनुः ।
योधयामास कलिङ्गान्स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर महाबाहु भीमसेन अपने बाहुबलके आसरेसे मनोहर धनुषको कंपाते हुए कलिंगोंके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥

शक्रदेवस्तु समरे विसृजन्सायकान्बहून् ।
अश्वाञ्जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः ॥
ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा ॥ २० ॥

शक्रदेवने भी युद्धमें बहुतसे बाण चलाकर भीमसेनके चारों घोडोंको मार डाला। जैसे ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें बादल आकाशसे जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही महाबली शक्रदेव भीमसेनके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ २० ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्भीमसेनो महाबलः ।
शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम् ॥ २१ ॥

महाबली भीमसेनने घोडोंसे रहित रथपर स्थित होके संपूर्ण लोहेकी बनी हुई महा भयङ्करी गदा शक्रदेवके ऊदर चलाई ॥ २१ ॥

स तया निहतो राजन्कलिङ्गस्य सुतो रथात् ।
सध्वजः सह सूतेन जगाम धरणीतलम् ॥ २२ ॥

महाराज ! उस गदासे कलिंगराजके पुत्र ध्वजा और सारथीके सहित मरकर रथसे नीचे पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २२ ॥

हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कालिङ्गानां जनाधिपः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद्दिशः ॥ २३ ॥

हे राजन् ! कलिंगराजने अपने पुत्रको मरा हुआ देखकर कई सहस्रों रथियोंको लेकर भीमसेनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २३ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्गुर्वीं त्यक्त्वा महागदाम् ।
उद्बबर्हाथ निस्त्रिंशं चिकीर्षुः कर्म दारुणम् ॥ २४ ॥

अनन्तर महाबली अत्यन्तपराक्रमी महाबाहु भीमने कठिन कर्म करनेकी इच्छासे भारी और विशाल गदा त्यागकर ॥ २४ ॥

चर्म चाप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ ।
नक्षत्रैरर्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम् ॥ २५ ॥

हे राजन् ! नरश्रेष्ठ ! ऋषभके चमडेकी बनी हुई अनुपम और सुवर्णमयी अर्द्धचंद्र और बहुतसे नक्षत्रोंके चिन्होंसे भूषित उत्तम ढाल और तलवार ग्रहण किया ॥ २५ ॥

कलिङ्गस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवमृज्य ह ।
प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय वधाकांक्षी जनेश्वरः ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर कलिंगराजने क्रोधके वशमें होकर भीमसेनका वध करनेकी इच्छासे धनुषपर टङ्कार देते हुए विषधारी सर्पके समान एक भयङ्कर बाण धनुषपर चढाकर भीमकी ओर चलाया ॥ २६ ॥

तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम् ।
भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ।
उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम् ॥ २७ ॥

राजन् ! उस धनुषसे छूटे हुए बाणको वेगसे आता हुआ देखकर भीमसेनने अपने उस बडे खड्गसे काटके दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया और कलिङ्गोंकी सेनाको भयभीत करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ २७ ॥

कालिङ्गस्तु ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे ।
तोमरान्प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ॥ २८ ॥

इसके अनन्तर कलिंग राजने रणक्षेत्रमें अत्यन्त कुपित हो तुरंत ही शिलापर शाणित चौदह तोमर भीमके ऊपर चलाये ॥ २८ ॥

तानप्राप्तान्महाबाहुः खगतानेव पाण्डवः ।
चिच्छेद सहसा राजन्नसंभ्रान्तो वरासिना ॥ २९ ॥

महाबाहु पाण्डुकुमार भीमने बिना किसी घबराहटसे उन बाणोंको आता हुआ देखकर शरीरमें न लगते ही लगते अपनी अच्छी तलवारसे सहसा उन्हें बीचहीमें आकाशमें काटा ॥२९॥

निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान्वै चतुर्दश ।
भानुमन्तमभिप्रेक्ष्य प्राद्रवत्पुरुषर्षभः ॥ ३० ॥

युद्धमें उन चौदह तोमरोंको काटकर कलिंगराजके पुत्र भानुमान्को लक्ष्य करके पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन उसकी ओर दौडे ॥ ३० ॥

भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण छादयन् ।
ननाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम् ॥ ३१ ॥

भानुमान् भी अपने बाणोंकी वर्षासे भीमसेनको ढांपते हुए आकाशको अपने शब्दसे पूरित करते हुए बलपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ ३१ ॥

न तं स सम्मृषे भीमः सिंहनादं महारणे।
ततः स्वरेण महता विननाद महास्वनम् ॥ ३२॥

परन्तु उस महायुद्धमें भीमसेन भानुमानके सिंहनादको न सहकर बडे उंचे स्वरसे महा घोर शब्द करने लगे ॥ ३२॥

तेन शब्देन वित्रस्ता कलिङ्गानां वरूथिनी।
न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ ॥ ३३॥

हे भरतश्रेष्ठ ! उनके उस शब्दसे कलिंग देशीय सेना भयभीत हो गई और युद्धमें भीमको मनुष्य नहीं समझती थी ॥ ३३॥

ततो भीमो महाराज नदित्वा विपुलं स्वनम्।
सासिर्वेगादवप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम् ॥ ३४॥
आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष।
खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमथाच्छिनत् ॥ ३५॥

महाराज ! अनन्तर तलवार लिये हुए भीमसेन महा घोर शब्द करके वेगके सहित कूदकर भानुमान्के हस्तिराजके दोनों दांत पकडकर उसकी पीठपर जा चढे, तब कालिंगने उसपर शक्ति चलायी। परंतु भीमसेनने उसे काट दिया और उस ही समय अपने उस महा खड्गसे भानुमान्के सहित शरीरको बीचों बीचसे काटकर गिराया ॥ ३४–३५॥

सोऽन्तरायुधिनं हत्वा राजपुत्रमरिंदमः।
गुरुभारसहस्कन्धे नागस्यासिमपातयत् ॥ ३६॥

इस तरह भानुमान्को बीचमें काटकर अनन्तर शत्रुदमन भीमसेनने भार सहनेमें समर्थ उस बडे खड्गको अपने समीप वाले उसके हाथीके कंधेपर चलाया ॥ ३६॥

छिन्नस्कन्धः स विनदन्पपात गजयूथपः।
आरुग्णः सिन्धुवेगेन सानुमानिव पर्वतः ॥ ३७॥

हाथियोंका यूथपति गर्दनके कटनेसे विकल होकर चिंघाड मारता हुआ समुद्रके वेगसे भग्न होकर गिरनेवाले सानुमान पर्वतके समान पृथ्वीमें गिरा ॥ ३७॥

ततस्तस्मादवप्लुत्य गजाद्भारत भारतः।
खड्गपाणिरदीनात्मा अतिष्ठद्भुवि दंशितः ॥ ३८॥

भारत ! हाथीके पृथ्वीमें गिरनेके पहिले ही खड्गपाणि, उदारचित्त पराक्रमी भरतनन्दन भीम तलवार हाथमें लिये हुए हाथीपरसे कूदकर पृथ्वीपर आ गये ॥ ३८॥

स चचार बहून्मार्गान्निर्भीतः पातयन्गजान् ।
अग्निचक्रमिवाविद्धं सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ ३९ ॥

और निर्भय होकर सब हाथियोंको मारते हुए रणभूमिमें बहुतसा मार्ग करके चारों ओर घूमने लगे। उस समय वह घूमते हुए अग्निचक्रके समान सब ओर दिखाई देने लगे ॥३९॥

अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः ।
पदातीनां च सङ्घेषु विनिघ्नञ्शोणितोक्षितः ।
श्येनवद्व्यचरद्भीमो रणे रिपुबलोत्कटः ॥ ४० ॥
छिन्दंस्तेषां शरीराणि शिरांसि च महाजवः ।
खड्गेन शितधारेण संयुगे गजयोधिनाम् ॥ ४१ ॥

कभी घोडे, कभी हाथी और कभी रथ सेना तथा पैदल सेनाके समूहोंमें घुसकर मारते हुए रुधिरसे भींगे हुए शरीरसे सब स्थानोंमें भ्रमण करने लगे। युद्धके समयमें भयङ्कर और महावेगवान् होकर वह घोडे, पैदल, रथी और हाथीयोंके शरीर और शिरको अपनी बडी तलवारसे काटते हुए मानो बाज पक्षीके समान रणभूमिमें घूमने लगे। उस समय हाथीपर आरूढ होकर युद्ध करनेवाले योद्धाओंके मस्तकोंको अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे काटने लगे ॥ ४०-४१ ॥

पदातिरेकः संक्रुद्धः शत्रूणां भयवर्धनः ।
मोहयामास च तदा कालान्तकयमोपमः ॥ ४२ ॥

वह सहायहीन अकेले और पैदल होकर भी क्रोधसे भरकर प्राणियोंका नाश करनेवाले यमराजके समान होकर शत्रुओंको भयभीत करते हुए सब शूरवीरोंको मोहित करने लगे ॥४२॥

मूढाश्च ते तमेवाजौ विनदन्तः समाद्रवन् ।
सासिमुत्तमवेगेन विचरन्तं महारणे ॥ ४३ ॥

जब वह महायुद्धमें अत्यन्त वेगके सहित हाथमें तलवार लेकर भ्रमण कर रहे थे उस समयमें मूढ लोग ही गर्ज गर्जकर उनके सन्मुख युद्धके निमित्त दौडते थे ॥ ४३ ॥

निकृत्य रथिनामाजौ रथेषाश्च युगानि च ।
जघान रथिनश्चापि बलवानरिमर्दनः ॥ ४४ ॥

शत्रुनाशन महावीर भीम रथ, रथकी धुरी और रथके चक्रको तोडने तथा रथपर चढे योद्धओंको तलवारसे काटने लगे ॥ ४४ ॥

भीमसेनश्चरमार्गान्सुबहून्प्रत्यदृश्यत ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम् ।
संपातं समुदीर्यं च दर्शयामास पाण्डवः ॥ ४५ ॥

उनको संग्राममें बहुत स्थानोंमें भ्रमण करते हुए मैंने देखा । वह खड्गयुद्धके घूमना, फिरना, लौटना, दौडना, उछलना, कूदना, वीरोंको मारना आदि गतिविशेष रणभूमिमें दिखाने लगे ॥ ४५ ॥

केचिदग्रासिना छिन्नाः पाण्डवेन महात्मना ।
विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ ४६ ॥

महात्मा पाण्डुनन्दन भीमसेनकी तलवारसे कटकर कितने ही हाथी आर्त्तनाद करने लगे । कोई कोई हाथी मर्म स्थानोंके कटनेसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ४६ ॥

छिन्नदन्ताग्रहस्ताश्च भिन्नकुम्भास्तथापरे ।
वियोधाः स्वान्यनीकानि जघ्नुर्भारत वारणाः ।
निपेतुरुर्व्यां च तथा विनदन्तो महारवान् ॥ ४७ ॥

कितने ही हाथीयोंके दांत गंडस्थल फट गये; और सवार मारे गये । वे सवारसे रहित होकर अपने पक्षके योद्धाओंको ही मारने लगे और महाघोर शब्दसे चिङ्घाड मारते हुए पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ४७ ॥

छिन्नांश्च तोमरांश्चापान्महामात्रशिरांसि च ।
परिस्तोमानि चित्राणि कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ४८ ॥
ग्रैवेयाण्यथ शक्तीश्च पताकाः कणपांस्तथा ।
तूणीराण्यथ यन्त्राणि विचित्राणि धनूंषि च ॥ ४९ ॥
अग्निकुण्डानि शुभ्राणि तोत्राँश्चैवांकुशैः सह ।
घण्टाश्च विविधा राजन्हेमगर्भांस्त्सरूनपि ।
पततः पतितांश्चैव पश्यामः सह सादिभिः ॥ ५० ॥

हे महाराज ! हस्तिपकोंके मस्तक, तोमर, चाप, विचित्र परिस्तोम, सुवर्ण भूषित हाथियोंके हौदे हाथियोंके गलेके भूषण, शक्ति, पताका, कणप, मुद्गर, तूणीर, यन्त्र, विचित्ररूपके धनुष, शुभ्र, अग्निकण्ड, चाबुक, अंकुश, कई प्रकारके घंटे, सुवर्णभूषित तलवारें ये सब चिजें हाथीसवारों सहित गिरी हुई हैं और गिरती जा रही हैं, ऐसा देखा ॥ ४८–५० ॥

छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चापि वारणैः ।
आसीत्तस्मिन्समास्तीर्णा पतितैर्भूर्नगैरिव ॥ ५१ ॥

मरे हुए हाथी, हाथीयोंके कटे शरीर और सूण्डोंका समूह मानों मार्गमें पडे हुए पर्वतके समान उस रणभूमिमें व्याप्त हो गया ॥ ५१ ॥

×

विमृद्यैवं महानागान्ममर्दाश्वान्नरर्षभः ।
अश्वारोहवरांश्चापि पातयामास भारत ।
तद्घोरमभवद्युद्धं तस्य तेषां च भारत ॥ ५२ ॥

महाराज ! पुरुषसिंह भीमसेन इसी प्रकारसे सब हाथियोंका संहार करके फिर घोडे और मुख्य मुख्य घुडसवारोंको मारने लगे । इस प्रकार भीमसेन और कलिंग सैनिकोंका यह युद्ध दोनों ओरसे अत्यन्त भयङ्कर हुआ ॥ ५२ ॥

खलीनान्यथ योक्त्राणि कशाश्च कनकोज्ज्वलाः ।
परिस्तोमाश्च प्रासाश्च ऋष्टयश्च महाधनाः ॥ ५३ ॥
कवचान्यथ चर्माणि चित्राण्यास्तरणानि च ।
तत्र तत्रापविद्धानि व्यदृश्यन्त महाहवे ॥ ५४ ॥

उस महायुद्धमें विचित्र वल्गा, जोत, सुवर्णसे युक्त रस्सियाँ, परिस्तोम, प्रास, महामूल्यवान् ऋष्टि, कवच, ढाल और विचित्र आस्तरण कटते और पृथ्वीमें गिरते हुए दीख पडने लगे ॥ ५३–५४ ॥

प्रोथयन्त्रैर्विचित्रैश्च शस्त्रैश्च विमलैस्तथा ।
स चक्रे वसुधां कीर्णां शबलैः कुसुमैरिव ॥ ५५ ॥

उस वीरने विचित्र प्रास यन्त्र और विमल शस्त्रोंसे पृथ्वीतलको पूर्ण कर दिया। उससे पृथ्वीतल मानो चित्रविचित्र पुष्पोंसे आच्छादित हुआसा दीखने लगा ॥ ५५ ॥

आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ।
पातयामास खड्गेन सध्वजानपि पाण्डवः ॥ ५६ ॥

महाबली पांडुनंदन भीमसेन कूदकर अपने तलवारसे कितने ही रथियोंको ध्वजाके सहित काटकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ५६ ॥

मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ।
मार्गांश्च चरतश्चित्रान्व्यस्मयन्त रणे जनाः ॥ ५७ ॥

यशस्वी भीमसेन रणभूमिमें बार बार उछलते, इधर उधर दौडकर विचित्र मार्ग बनाकर भ्रमण करते हुए सब सैनिक पुरुषोंको विस्मित करने लगे ॥ ५७ ॥

निजघान पदा कांश्चिदाक्षिप्यान्यानपोथयत् ।
खड्गेनान्यांश्च चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन् । ॥ ५८ ॥

कितने ही योद्धाओंको पावोंके आघातसे मारने लगे, कितनोंको पकडके दूर फेंक दिया, कितनोंको तलवारसे काटा, कितने ही वीरोंको गर्जते हुए अपने भयङ्कर शब्दसे भयभीत कर दिया ॥ ५८ ॥

ऊरुवेगेन चाप्यन्यान्पातयामास भूतले ।
अपरे चैनमालोक्य भयात्पञ्चत्वमागताः ॥ ५९ ॥

और कितनोंको छातीके जोरके धक्केसे पृथ्वीमें गिरा दिया । दूसरे कितने ही पुरुष भीमको देखकर ही भयसे मरने लगे ॥ ५९ ॥

एवं सा बहुला सेना कलिङ्गानां तरस्विनाम् ।
परिवार्य रणे भीष्मं भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ६० ॥

तब इस प्रकार मारा जानेपर भी बहुतसी बलवान् वेगशाली कलिङ्गदेशकी सेना रणक्षेत्रमें भीष्मको चारों ओरसे घेरकर भयानक मूर्त्तिवाले भीमसेनकी ओर दौडी ॥ ६० ॥

ततः कलिङ्गसैन्यानां प्रमुखे भरतर्षभ ।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य भीमसेनः समभ्ययात् ॥ ६१ ॥

महाराज ! भीमसेन श्रुतायुको कलिङ्गसेनाके अगाडी देखकर उसकी ओर दौडे ॥ ६१ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कलिङ्गो नवभिः शरैः ।
भीमसेनममेयात्मा प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ६२ ॥

अमेयात्मा कलिङ्गराजने भीमसेनको अपनी ओर वेगसे आता हुआ देखकर नौ बाण उनकी छातीमें मारे ॥ ६२ ॥

कलिङ्गबाणाभिहतस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः ।
भीमसेनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवेन्धनैः ॥ ६३ ॥

भीमसेन कलिंगराज श्रुतायुके बाणोंसे विद्ध होकर अंकुशसे पीडित हाथीके समान क्रोधसे जल उठे, मानो घीकी आहुति पाकर अग्नि प्रज्वलित हो गयी ॥ ६३ ॥

अथाशोकः समादाय रथं हेमपरिष्कृतम् ।
भीमं संपादयामास रथेन रथसारथिः ॥ ६४ ॥

इसी अवसरमें भीमसेनके सारथि अशोक एक सुवर्णभूषित रथको लाकर रथियोंमें प्रधान भीमसेनके समीप उपस्थित हुआ और उनको रथसम्पन्न किया ॥ ६४ ॥

तमारुह्य रथं तूर्णं कौन्तेयः शत्रुसूदनः ।
कलिङ्गमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ६५ ॥

शत्रुनाशन कुन्तीपुत्र भीम शीघ्र ही रथपर चढके " खडा रह ! खडा रह ! " कहते हुए कलिङ्गराज श्रुतायुके सन्मुख दौडे ॥ ६५ ॥

ततः श्रुतायुर्बलवान्भीमाय निशिताञ्शरान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ ६६ ॥

इसके अनन्तर बलवान् श्रुतायुने क्रुद्ध होकर अपने हाथोंकी शीघ्रता दिखाते हुए बहुतसे शाणित बाणोंको भीमके ऊपर चलाया ॥ ६६ ॥

स कार्मुकवरोत्सृष्टैर्नवभिर्निशितैः शरैः ।
समाहतो भृशं राजन्कलिङ्गेन महायशाः ।
संचुक्रुधे भृशं भीमो दण्डाहत इवोरगः ॥ ६७ ॥

महाराज ! महाबली भीमसेन कलिङ्गराजके श्रेष्ठ धनुपसे छूटे हुए नौ चोखे बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर दण्डसे मारे गये सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो गये ॥ ६७ ॥

क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद्बलिनां वरः ।
कलिङ्गमवधीत्पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ॥ ६८ ॥

बलवानोंमें मुख्य भीमसेनने क्रुद्ध होकर एक बडा तथा दृढ धनुप ग्रहण करके लोहमय सात बाण कलिङ्गराजको मारे ॥ ६८ ॥

क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कलिङ्गस्य महाबलौ ।
सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ६९ ॥

और उनके सत्यदेव और सत्यनाम दोनों बलवान् चक्ररक्षकोंको एक एक क्षुरास्त्रसे यमपुरीमें भेज दिया ॥ ६९ ॥

ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः ।
केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद्यमसादनम् ॥ ७० ॥

इसके अनन्तर महापराक्रमी अमेय भीमसेनने तीन शाणित नाराच बाणोंसे रणभूमिमें केतुमानूको यमलोकमें पहुंचाया ॥ ७० ॥

ततः कलिङ्गाः संक्रुद्धा भीमसेनममर्षणम् ।
अनीकैर्बहुसाहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥ ७१ ॥

उस कर्मको देखकर कलिङ्गदेशीय क्षत्रिय वीर क्रोधमें भरकर कई हजार सेना लेकर क्रोधी भीमसेनके सङ्ग संग्राम करके आगे बढनेसे रोकने लगे ॥ ७१ ॥

ततः शक्तिगदाखड्गतोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
कलिङ्गाश्च ततो राजन्भीमसेनमवाकिरन् ॥ ७२ ॥

सैंकडों कलिंगदेशीय योद्धा लोग शक्ति, गदा, तलवार, तोमर, ऋष्टि और परशु धारण करके भीमसेनके ऊपर प्रहार करके उन्हें शस्त्रोंसे तोपने लगे ॥ ७२ ॥

संनिवार्य स तां घोरां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
गदामादाय तरसा परिप्लुत्य महाबलः ।
भीमः सप्तशतान्वीराननयद्यमसादनम् ॥ ७३ ॥

महाबली भीमसेन उन सब वीरोंकी वहाँ होती हुई उस भयंकर शरवृष्टिको निवारण करके वेगके सहित कूदकर गदा ग्रहण करके सात सौ वीरोंको यमपुरीमें भेज दिया ॥ ७३ ॥

पुनश्चैव द्विसाहस्रान्कलिङ्गानरिमर्दनः ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७४ ॥

और फिर थोडे ही समयमें दो हजार वीरोंको मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया। भीमका पराक्रम अद्भुत रूपसे दीख पडा ॥ ७४ ॥

एवं स तान्यनीकानि कलिङ्गानां पुनः पुनः ।
बिभेद समरे वीरः प्रेक्ष्य भीष्मं महाव्रतम् ॥ ७५ ॥

भीम पराक्रमी वीर भीमसेन महाव्रत भीष्मको देखकर इसी प्रकारसे वार वार कलिंगसेनाके बहुतसे वीरोंका समरभूमिमें नाश करने लगे ॥ ७५ ॥

हतारोहाश्च मातङ्गाः पाण्डवेन महात्मना ।
विप्रजग्मुरनीकेषु मेघा वातहता इव ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि विनदन्तः शरातुराः ॥ ७६ ॥

सब हाथी पाण्डुनन्दन महात्मा भीमके शस्त्रोंसे पीडित तथा सब वीरोंसे रहित होनेपर वायुसे छिन्न भिन्न हुए बादलकी भांति सेनाके बीच चिंघाड मारते हुए, निज सेनाको अपने पावोंसे पीसते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ ७६ ॥

ततो भीमो महाबाहुः शङ्खं प्राध्मापयद्बली ।
सर्वकालिङ्गसैन्यानां मनांसि समकम्पयत् ॥ ७७ ॥

तब बलवान् महाबाहु भीमसेनने अपना शङ्ख बजाया। उससे सब कलिंगदेशीय वीर योद्धाओंका चित्त कम्पित कर दिया ॥ ७७ ॥

मोहश्चापि कलिङ्गानामाविवेश परंतप ।
प्राकम्पन्त च सैन्यानि वाहनानि च सर्वशः ॥ ७८ ॥

हे शत्रुओंको तपानेवाले! और उन सब कलिंगदेशियोंपर मोह छा गया। सब ओर भीमसेनके भयसे सब सेना और सब वाहन कांपने लगे ॥ ७८ ॥

भीमेन समरे राजन्गजेन्द्रेणेव सर्वतः ।
मार्गान्बहून्विचरता धावता च ततस्ततः ।
मुहुरुत्पतता चैव संमोहः समजायत ॥ ७९ ॥

राजन्! वह रणभूमिमें गजराजके समान बहुतसे स्थानोंमें इधर उधर घूमते और दौडते हुए और बार बार उछलकर शत्रुओंको मोहित करने लगे ॥ ७९ ॥

भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत ।
क्षोभ्यमाणमसंबाधं ग्राहेणेव महत्सरः ॥ ८० ॥

जिस प्रकारसे वडा तालाब घडियालके दौडनेसे मथित हो जाता है, वैसे ही कलिंगदेशकी सेना भीमसेनसे भयभीत और पीडित होकर तितर वितर होकर काँपने लगी ॥ ८० ॥

त्रासितेषु च वीरेषु भीमेनाद्भुतकर्मणा ।
पुनरावर्तमानेषु विद्रवत्सु च संघशः ॥ ८१ ॥
सर्वकालिङ्गयोधेषु पाण्डूनां ध्वजिनीपतिः ।
अब्रवीत्स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः ॥ ८२ ॥

सम्पूर्ण कलिंगदेशीय योद्धा लोग अद्भुत कर्म करनेवाले भीमसेनसे भयभीत होके दल बनाकर इधर उधर दौडके फिर उनसे युद्ध करनेके निमित्त लौटे तब पाण्डवोंके सेनापति धृष्टद्युम्नने अपनी सेनाको उन लोगोंके संग युद्ध करनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ ८१-८२ ॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा शिखंडिप्रमुखा गणाः ।
भीममेवाभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः ॥ ८३ ॥

शिखण्डी आदि वीर लोग सेनापतिकी बात सुनकर प्रहार करनेमें निपुण रथ-सेनाके सहित भीमसेनके समीपमें आ पहुंचे ॥ ८३ ॥

धर्मराजश्च तान्सर्वानुपजग्राह पाण्डवः ।
महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः ॥ ८४ ॥

पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिर भी बादलके समान हाथियोंकी महासेना लेकर उनके पश्चात् ही वहांपर उपस्थित हुए ॥ ८४ ॥

एवं संचोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः ।
भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषोचिताम् ॥ ८५ ॥

इस प्रकार द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न अपनी ओरकी सब सेनाको युद्धके लिये आज्ञा देके तथा वीर पुरुषोंसे युक्त होके स्वयं भीमसेनके पार्श्व-भागकी रक्षा करने लगे ॥ ८५ ॥

न हि पाञ्चालराज्य लोके कश्चन विद्यते ।
भीमसात्यकयोरन्यः प्राणेभ्यः प्रियकृत्तमः ॥ ८६ ॥

पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नको भीम और सात्यकि प्राणसे भी अधिक प्रिय थे; उनसे बढकर दूसरा और कोई भी जगत्में उनका प्यारा नहीं था ॥ ८६ ॥

सोऽपश्यत्तं कलिङ्गेषु चरन्तमरिसूदनम् ।
भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा ॥ ८७ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर धृष्टद्युम्न कलिंगदेशीय सेनामें महाबाहु भीमको इस प्रकारसे भ्रमण करता हुआ देखा ॥ ८७ ॥

ननर्द बहुधा राजन्हृष्टश्चासीत्परंतपः ।
शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च ॥ ८८ ॥

राजन् ! उन्हें देखते ही परंतप धृष्टद्युम्न हर्षके सहित गर्जते हुए युद्धमें शङ्ख बजाकर सिंहनाद करने लगे ॥ ८८ ॥

स च पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते ।
कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत् ॥ ८९ ॥

भीमसेन धृष्टद्युम्नके बहुत बडे पारावतके समान वर्णवाले घोडोंसे युक्त सुवर्णभूषित रथकी कोविदार वृक्षकी लालवर्णवाली स्वर्णध्वजा देखकर आश्वासित होकर आनन्दित हुए ॥८९॥

धृष्टद्युम्नस्तु तं दृष्ट्वा कलिङ्गैः समभिद्रुतम् ।
भीमसेनममेयात्मा त्राणायाजौ समभ्ययात् ॥ ९० ॥

महात्मा धृष्टद्युम्न भी भीमसेनको कलिंगदेशीय वीरोंसे घिरे हुए देखकर उनकी रक्षाके निमित्त युद्धस्थलमें उनके पास जा पहुंचे ॥ ९० ॥

तौ दूरात्सात्यकिर्दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
कलिङ्गान्समरे वीरौ योधयन्तौ मनस्विनौ ॥ ९१ ॥

महामनवाले वीर भीम और धृष्टद्युम्नको दूसरे सात्यकिने देखा कि उस रणभूमिमें कलिंग-वीरोंसे वे जोरसे युद्ध करते हैं ॥ ९१ ॥

स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः ।
पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥ ९२ ॥

शत्रुनाशन शिनिपौत्र पुरुषसिंह सात्यकि दूरसे ही भीम और धृष्टद्युम्नको कलिंगसेनाके संग युद्ध करता देखकर वहांपर गमन करके दोनोंकी पार्श्व रक्षाके निमित्त युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥९२॥

स कृत्वा कदनं तत्र प्रगृहीतशरासनः ।
आस्थितो रौद्रमात्मानं जघान समरे परान् ॥ ९३ ॥

वह धनुष ग्रहण करके वहां दारुण नाश कर और भयङ्कर स्वरूप प्रकटकर समरांगणमें शत्रुओंका नाश करने लगे ॥ ९३ ॥

कलिङ्गप्रभवां चैव मांसशोणितकर्दमाम् ।
रुधिरस्यान्दिनीं तत्र भीमः प्रावर्तयन्नदीम् ॥ ९४ ॥

तब भीमने भी कलिंगवीरोंके मांस रुधिरसे उद्भूत मानों पङ्कसे युक्त नदी प्रगट कर दी; जो रक्तकी धारा बहा रही थी ॥ ९४ ॥

अन्तरेण कलिङ्गानां पाण्डवानां च वाहिनीम् ।
संततार सुदुस्तारां भीमसेनो महाबलः ॥ ९५ ॥

पाण्डवोंमें महाबली भीम उचित अवसर पाकर कलिंग और पाण्डव सेनाके बीचमें बहनेवाली रक्तकी न तरने योग्य नदीको पार होने लगे ॥ ९५ ॥

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप ।
कालोऽयं भीमरूपेण कलिङ्गैः सह युध्यते ॥ ९६ ॥

महाराज ! भीमसेनको इस भांतिसे कलिंगवीरोंको मारता हुआ देखकर तुम्हारी ओरसे सब योद्धा लोग ऊंचे स्वरसे ऐसा वचन कहने लगे "भीमसेन साक्षात् कालरूप होकर कलिंग-वीरोंका संहार कर रहे हैं ! " ॥ ९६ ॥

ततः शांतनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे ।
अभ्ययात्त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः ॥ ९७ ॥

इसके अनन्तर संग्रामके बीच शान्तनुपुत्र भीष्म उस शब्दको सुनकर चारों ओरसे व्यूहबद्ध सेनासे घिरके शीघ्र ही भीमके रथके समीप उपस्थित हुए ॥ ९७ ॥

तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ९८ ॥

तब सात्यकि, भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न सुवर्णभूपित भीष्मके रथकी ओर दौडे ॥९८॥

परिवार्य च ते सर्वे गाङ्गेयं रभसं रणे ।
त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्छुरञ्जसा ॥ ९९ ॥

उन सब लोगोंने रणक्षेत्रमें सहसा बलवान् गंगानन्दन भीष्मको चारों ओरसे शीघ्र ही घेर कर तीन तीन भयंकर बाणोंसे उनको मारा ॥ ९९ ॥

प्रत्यविध्यत तान्सर्वान्पिता देवव्रतस्तव ।
यतमानान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ १०० ॥

उस समय तुम्हारे पितृतुल्य देवव्रत भीष्मने भी वहां युद्धके लिये प्रयत्न करनेवाले उन महा-धनुर्द्धर वीरोंके ऊपर सीधे जानेवाले तीन तीन बाण चलाये ॥ १०० ॥

ततः शरसहस्रेण संनिवार्य महारथान् ।
हयान्काञ्चनसंनाहान्भीमस्य न्यहनच्छरैः ॥ १०१ ॥

अनन्तर भीष्मने एक सहस्र बाणोंसे महारथ वीरोंको निवारित करके सुवर्णभूपित भीमसेनके घोडोंको अपने बाणोंसे मार डाला ॥ १०१ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्भीमसेनः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप तरसा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥ १०२ ॥

प्रतापी भीमसेनने घोडोंको मारे जानेपर भी उसी रथपर ही बैठकर गङ्गानन्दन भीष्मके रथकी ओर बडे वेगसे एक शक्ति चलाई ॥ १०२ ॥

अप्राप्तामेव तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव ।
त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्यामशीर्यत ॥ १०३ ॥

वह शक्ति अभी पास पहुंची ही नहीं कि आपके पितृतुल्य पिता भीष्मने समरभूमिमें उस शक्तिको अपने बाणोंसे मार्गमें ही तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १०३ ॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवद्गदाम् ।
भीमसेनो रथात्तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ ॥ १०४ ॥

नरश्रेष्ठ ! तब पुरुषसिंह भीमसेन लोहमयी बडी गदा ग्रहण करके शीघ्र ही रथसे कूदे ॥ १०४ ॥

सात्यकोऽपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया ।
सारथिं कुरुवृद्धस्य पातयामास सायकैः ॥ १०५ ॥

इधर सात्यकिने भी उस समयमें भीमके प्यारे कार्यको करनेकी अभिलाषासे अपना बाण चलाकर कौरवोंमें वृद्ध भीष्मके सारथीको मारके गिरा दिया ॥ १०५ ॥

भीष्मस्तु निहते तस्मिन्सारथौ रथिनां वरः ।
वातायमानैस्तैरश्वैरपनीतो रणाजिरात् ॥ १०६ ॥

सारथीके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मके रथके घोडे वायुके समान उस रथको लेकर रणभूमिमें दूसरी ओर चले गये ॥ १०६ ॥

भीमसेनस्ततो राजन्नपनीते महाव्रते ।
प्रजज्वाल यथा वह्निर्दहन्कक्षमिवैधितः ॥ १०७ ॥

महाराज ! महान् व्रतधारी भीष्मके रणभूमिसे पृथक् होनेपर भीमसेन तृणको भस्म करनेवाली अग्निके समान अपने तेजसे प्रज्वलित हो गये ॥ १०७ ॥

स हत्वा सर्वकलिङ्गान्सेनामध्ये व्यतिष्ठत ।
नैनमभ्युत्सहन्केचित्तावका भरतर्षभ ॥ १०८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! सब कलिंगदेशीय योद्धाओंका वध करके भीमसेन सेनाके बीच स्थित हो गये । तुम्हारी ओरका कोई पराक्रमी वीर योद्धा भीमसेनके सङ्ग युद्ध करनेमें उत्साही न हुआ ॥ १०८ ॥

धृष्टद्युम्नस्तमारोप्य स्वरथे रथिनां वरः ।
पश्यतां सर्वसैन्यानामपोवाह यशस्विनम् ॥ १०९ ॥

तत्पश्चात् रथियोंमें मुख्य धृष्टद्युम्नने उसी समय यशस्वी भीमको अपने रथमें चढाकर सब सेनाके सम्मुख ही उस रथको लौटाया ॥ १०९ ॥

×

सम्पूज्यमानः पाञ्चाल्यैर्मत्स्यैश्च भरतर्षभ ।
धृष्टद्युम्नं परिष्वज्य समेयादथ सात्यकिम् ॥ ११० ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह पाञ्चाल और मत्स्य देशीय वीरोंमें पूजित होकर धृष्टद्युम्नको आलिंगन करके सात्यकिके समीप उपस्थित हुए ॥ ११० ॥

अथाब्रवीद्भीमसेनं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
प्रहर्षयन्यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ १११ ॥

यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी सत्यकि धृष्टद्युम्नको हर्षित करते हुए उनके संमुखमें ही भीमसेनसे यह वचन बोले ॥ १११ ॥

दिष्ट्या कलिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान् ।
शक्रदेवश्च कालिङ्गः कलिङ्गाश्च मृधे हताः ॥ ११२ ॥

कलिङ्ग राज भानुमान्, उसके राजपुत्र केतुमान् और कलिङ्गवीर शक्रदेव तथा दूसरे बहुतसे कलिङ्गवीरोंको तुमने प्रारब्धहीसे युद्धमें मारा है ॥ ११२ ॥

स्ववाहुबलवीर्येण नागाश्वरथसंकुलः ।
महाव्यूहः कलिङ्गानामेकेन मृदितस्त्वया ॥ ११३ ॥

कलिङ्ग सेनाका हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त व्यूह तुमने अकेले ही अपने बाहुबल और पराक्रमसे मर्दन किया ॥ ११३ ॥

एवमुक्त्वा शिनेर्नप्ता दीर्घबाहुररिंदमः ।
रथाद्रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम् ॥ ११४ ॥

शत्रुनाशन महाबाहु सात्यकिने ऐसा कहकर निज रथ परसे कूदकर भीमके रथपर जाकर उन्हें आलिङ्गन किया ॥ ११४ ॥

ततः स्वरथमारुह्य पुनरेव महारथः ।
तावकानवधीत्क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत् ॥ ११५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥ २०९८ ॥

और क्रोधमें भरे हुए सात्यकि फिर अपने रथपर आकर भीमसेनको उत्साहित करनेके निमित्त और बल बढाते हुए तुम्हारी ओरके वीर योद्धाओंको मारने लगे ॥ ११५ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ २०९८ ॥

: ५१ :

सञ्जय उवाच

गतापराह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! उस दिन दोपहरके बीतनेतक रथ, घोडे, हाथी पदाति और सवारोंका बहुत ही नाश हुआ ॥ १ ॥

द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना ।
समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः ॥ २ ॥

उस समय द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, शल्य और महात्मा कृपाचार्य इन तीनों महारथियोंके सङ्ग युद्ध करना आरम्भ किया ॥ २ ॥

स लोकविदितानश्वान्निजघान महाबलः ।
द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः ॥ ३ ॥

पाञ्चालराजके पुत्र महाबलवान् धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामाके जगत्विख्यात् घोडोंको अपने शीघ्रगामी उत्तम पानीसे बुझे हुए बाणोंसे मार डाला ॥ ३ ॥

ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः ।
द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः ॥ ४ ॥

घोडोंके मरनेपर अश्वत्थामा तुरंत ही शल्यके रथपर चढके वहींसे धृष्टद्युम्नके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नं तु संसक्तं द्रौणिना दृश्य भारत ।
सौभद्रोऽभ्यपतत्तूर्णं विकिरन्निशिताञ्शरान् ॥ ५ ॥

हे भारत ! सुभद्रापुत्र अभिमन्यु धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके सहित युद्धमें प्रवृत्त हुआ देखकर अपने पैने बाणोंको चलाते हुए तुरंत वहांपर उपस्थित हुए ॥ ५ ॥

स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ।
अश्वत्थामानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभ ॥ ६ ॥

और हे पुरुषरत्न ! उन्होंने शल्यके ऊपर पचीस, कृपाचार्यपर नौ और अश्वत्थामाके ऊपर आठ बाण चलाए ॥ ६ ॥

आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा ।
शल्यो द्वादशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥

तब अश्वत्थामाने शीघ्रताके सहित अभिमन्युको निज बाणोंसे विद्ध किया और शल्यने बारह तथा कृपाचार्यने तीन बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया ॥ ७ ॥

लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु तव पौत्रमवस्थितम् ।
अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ८ ॥

महाराज ! तुम्हारा पौत्र लक्ष्मण अभिमन्युको प्रवृत्त हुआ देखकर हर्ष और उत्साहके सहित उसकी ओर दौडा । अनन्तर उन दोनोंका युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥

दौर्योधनिस्तु संक्रुद्धः सौभद्रं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

राजन् ! लक्ष्मणने अत्यन्त क्रुद्ध होकर समरभूमिमें अपने शाणित नौ बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया, वह अद्भुत प्रकारसे दीख पडा ॥ ९ ॥

अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ ।
शरैः पञ्चाशता राजन्क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत ॥ १० ॥

महाराज ! भरतश्रेष्ठ ! अभिमन्युके क्रुद्ध होकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाकर पचास बाणोंसे अपने भाई लक्ष्मणको विद्ध किया ॥ १० ॥

लक्ष्मणोऽपि ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा ।
मुष्टिदेशे महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ११ ॥

राजन् ! तब लक्ष्मणने भी अपने दृढ बाणोंसे अभिमन्युके धनुषकी मुष्टि काट दी; उसे देखकर सब कोई जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ११ ॥

तद्विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम् ॥ १२ ॥

शत्रुनाशन वीर सुभद्राकुमार अभिमन्युने उस कटे हुए धनुषको त्यागकर और दूसरा एक वेगवान् विचित्र धनुष ग्रहण किया ॥ १२ ॥

तौ तत्र समरे हृष्टौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
अन्योन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ १३ ॥

अनन्तर वह दोनों पुरुषसिंह एक दूसरेके शस्त्रोंके प्रतिकार करते हुए युद्धमें अपने चोखे बाणोंसे आपसमें प्रहार करने लगे ॥ १३ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम् ।
पीडितं तव पौत्रेण प्रायात्तत्र जनेश्वरः ॥ १४ ॥

अनन्तर प्रजाजनोंके राजा दुर्योधनने आपके पौत्र अभिमन्युके शस्त्रोंसे अपने महारथी पुत्रको पीडित देखकर उसके समीपमें गमन किया ॥ १४ ॥

संनिवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः ।
आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १५ ॥

आपके पुत्र दुर्योधनके वहांपर गमन करते ही सब राजाओंने अर्जुनपुत्र अभिमन्युको अपने रथोंके समूहके सहित चारों ओरसे घेर लिया ॥ १५ ॥

स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः ।
न स्म विव्यथते राजन्कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ १६ ॥

राजन् ! कृष्णके समान पराक्रमी महावीर अभिमन्यु उन सब दुर्जन और शूरवीरोंसे घिरकर भी भयभीत न हुआ ॥ १६ ॥

सौभद्रमथ संसक्तं तत्र दृष्ट्वा धनञ्जयः ।
अभिदुद्राव संक्रुद्धस्त्रातुकामः स्वमात्मजम् ॥ १७ ॥

अर्जुन अपने पुत्र अभिमन्युको इस प्रकारसे रथियोंके बीच घिरा हुआ देखके अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके परित्राणके निमित्त शीघ्रतापूर्वक उस ही ओर चले ॥ १७ ॥

ततः सरथनागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः सव्यसाचिनम् ॥ १८ ॥

यह देखकर भीष्म, द्रोणाचार्य आदि सभी राजा रथ, घोडे और हाथियोंकी सेना तथा पदातियोंके सहित अर्जुनकी ओर दौडे ॥ १८ ॥

अद्धूतं सहसा भौमं नागाश्वरथसादिभिः ।
दिवाकरपथं प्राप्य रजस्तीव्रमदृश्यत ॥ १९ ॥

उस सयय हाथी, घोडे, रथ और पदातियोंके पांवकी धूलि सूर्यके पथतक उडनेसे वह छिप गया ॥ १९ ॥

तानि नागसहस्राणि भूमिपालशतानि च ।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ २० ॥

सहस्रों गजपति और सैकडों राजा किसी प्रकारसे भी अर्जुनके बाणोंके पथमें आकर उसका निवारण करके उनके समीप नहीं जा सके ॥ २० ॥

प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः ।
कुरूणामनयस्तीव्रः समदृश्यत दारुणः ॥ २१ ॥

सब प्राणी ही विकल होकर चिल्लाने लगे; सब दिशा अन्धकारसे पूरित हो गई। हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय कौरवोंकी घोर अनीति प्रत्यक्ष प्रकाशित होने लगी ॥ २१ ॥

नाप्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न च भास्करः ।
प्रजज्ञे भरतश्रेष्ठ शरसङ्घैः किरीटिनः ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! किरीटधारी अर्जुनके शस्त्रसमुह और बाणोंसे आकाश, दिशा पृथ्वीतल तथा सूर्य भी नहीं दीख पडता था ॥ २२ ॥

सादितध्वजनागास्तु हताश्वा रथिनो भृशम् ।
विप्रद्रुतरथाः केचिद्दृश्यन्ते रथयूथपाः ॥ २३ ॥

अनेक हाथियोंपरसे ध्वजा कट गई; अनेक रथियोंके रथके घोडे मारे गये और अनेक रथ यूथपतियोंके रथ अत्यन्त वेगसे दौडते हुए दीख पडते थे ॥ २३ ॥

विरथा रथिनश्चान्ये धावमानाः समन्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते सायुधाः साङ्गदैर्भुजैः ॥ २४ ॥

कितने ही रथियोंसो रथहीन होनेपर उनको अंगद युक्त हाथमें शस्त्र लिये हुए मैंने इधर उधर दौडते देखा ॥ २४ ॥

हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजारोहाश्च दन्तिनः ।
अर्जुनस्य भयाद्राजन्समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥

अर्जुनके भयसे बहुतसे घुडसवार अपने घोडोंको छोडकर और हाथीपर आरोहण करनेवाले वीर अपने अपने हाथीसे कूदकर चारों ओर दौडने लगे ॥ २५ ॥

रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनताडिताः ॥ २६ ॥

अर्जुनके बाणोंसे मैंने राजाओंको रथ, हाथी और घोडोंके ऊपरसे गिरते और कितनोंको गिराते हुए देखा ॥ २६ ॥

सगदानुद्यतान्बाहून्सखड्गांश्च विशां पते ।
सप्रासांश्च सतूणीरान्सशरान्सशरासनान् ॥ २७ ॥
साङ्कुशान्सपताकांश्च तत्र तत्रार्जुनो नृणाम् ।
निचकर्त शरैरुग्रै रौद्रं बिभ्रद्वपुस्तदा ॥ २८ ॥

पृथ्वीपति ! अर्जुन मानो रुद्रमूर्त्ति धारण करके शोभित होकर उस रणभूमिमें इधर उधर अपने उग्र बाणों द्वारा योद्धाओंकी ऊपर उठी हुई भुजाको गदा, खड्ग, प्रास, तूणीर, धनुष, बाण, अंकुश, और ध्वजा पताकाके सहित काटकर गिराने लगे ॥ २७–२८ ॥

परिघाणां प्रवृद्धानां मुद्गराणां च मारिष ।
प्रासानां भिण्डिपालानां निस्त्रिंशानां च संयुगे ॥ २९ ॥
परश्वधानां तीक्ष्णानां तोमराणां च भारत ।
वर्मणां चापविद्धानां कवचानां च भूतले ॥ ३० ॥
ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः ।
छत्राणां हेमदण्डानां चामराणां च भारत ॥ ३१ ॥
प्रतोदानां कशानां च योक्त्राणां चैव मारिष ।
राशयश्चात्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ॥ ३२ ॥

आर्य ! उस रणक्षेत्रमें प्रवृद्ध खड्ग परिघ, मुद्गर, प्रास, भिन्दिपाल, तीक्ष्ण फरशे, तीक्ष्ण तोमर, ढाल, तलवार, कवच, ध्वजा और दूसरे सब शस्त्र, छत्र, व्यजन, सुवर्णके दण्ड, अंकुश, चाबुक, जोते, घोडे आदि सब वस्तु छिन्न भिन्न होकर इधर उधर पृथ्वीमें गिरे हुए दिखाई देते थे ॥ २९–३२ ॥

नासीत्तत्र पुमान्कश्चित्तव सैन्यस्य भारत ।
योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात्कथंचन ॥ ३३ ॥

महाराज ! तुम्हारी सेनाके बीच ऐसा कोई भी पुरुष नहीं था, जो उस समय युद्धमें प्रवृत्त हुए अर्जुनके संमुख किसी प्रकारसे ठहर सकता ॥ ३३ ॥

यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशां पते ।
स स वै विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ॥ ३४ ॥

प्रजानाथ ! उस युद्धभूमिमें जो पुरुष युद्धमें अर्जुनके संमुख जाते थे, वे उनके कठोर बाणोंसे मरकर यमलोकमें पहुंचते थे ॥ ३४ ॥

तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः ।
अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥ ३५ ॥

तुम्हारी सेनाके सब वीरोंके सब ओर भाग जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने अपने महाशङ्खको बजाने लगे ॥ ३५ ॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव ।
अब्रवीत्समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव ॥ ३६ ॥

तब तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म सेनाको भागती हुई देखकर संग्रामके बीच वीरवर द्रोणाचार्यसे हंसते हुए यह वचन बोले ॥ ३६ ॥

एष पाण्डुसुतो वीरः कृष्णेन सहितो बली ।
तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद्धनञ्जयः ॥ ३७ ॥

कृष्णके संग मिलकर यह वीर पाण्डुपुत्र बलवान् अर्जुन सैनिक पुरुषोंके संग जैसा कर्म करनेमें समर्थ है, वैसा ही कर रहा है ॥ ३७ ॥

न ह्येष समरे शक्यो जेतुमद्य कथञ्चन ।
यथास्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ ३८ ॥

इसकी मानो प्रलयकालके यमराजके समान मूर्त्ति दिखाई रही है, उसको आज किसी प्रकारसे भी इस युद्धमें जीता जा नहीं सकता ॥ ३८ ॥

न निवर्तयितुं चापि शक्येयं महती चमूः ।
अन्योन्यप्रेक्षया पश्य द्रवतीयं वरूथिनी ॥ ३९ ॥

देखो, यह बडी सेना विकल होकर इधर उधर भाग रही है; इस समय उसे लौटाकर फिर युद्धमें नियुक्त करना भी असाध्य है ॥ ३९ ॥

एष चास्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान्प्रतिपद्यते ।
वपूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा ॥ ४० ॥

और भगवान् सूर्य भी अब इस समय सब लोगोंके शरीरसे रहित होकर गिरिश्रेष्ठ अस्ताचल पर गमन कर रहे हैं ॥ ४० ॥

तत्रावहारं संप्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ ।
श्रान्ता भीताश्च नो योधा न योत्स्यन्ति कथञ्चन ॥ ४१ ॥

हे पुरुषर्षभ ! योद्धा लोग भयभीत हुए तथा थक गये हैं, अब यह लोग किसी प्रकारसे युद्ध नहीं कर सकेंगे; इससे सेनाको युद्धसे निवृत्त करना ही मैं उत्तम समझता हूं ॥ ४१ ॥

एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः ॥ ४२ ॥

महारथी भीष्मने श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे ऐसा कहकर अपनी समस्त सेनाको युद्धसे निवृत्त किया ॥ ४२ ॥

ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ।
अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत्संध्याकाले च वर्तति ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ २१४१ ॥

भारत ! इसके अनन्तर सूर्यके अस्त होनेपर सन्ध्याके समय आपकी और पांडवोंकी ऐसी दोनों ओरकी सेनाएं युद्धसे निवृत्त हुई ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ २१४१ ॥

: ५२ :

सञ्जय उवाच

प्रभातायां तु शर्वर्यां भीष्मः शांतनवस्ततः ।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे भारत ! जब रात्रिके बीतनेपर सवेरा हुआ, तब शान्तनुनन्दन भीष्मने सेनाके पुरुषोंको युद्धके निमित्त सज्जित होनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा ।
पुत्राणां ते जयाकांक्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥ २ ॥

कौरवोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मने तुम्हारे पुत्रोंकी विजयकी अभिलाषा करके उस दिन गरुड नामके महाव्यूहकी रचना की ॥ २ ॥

गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव ।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३ ॥

उस गरुड व्यूहके तुण्डस्थलमें स्वयं पिता देवव्रत भीष्म खडे हुए, दोनों नेत्रोंके स्थानमें द्रोणाचार्य और सात्वत कृतवर्मा नियत हुए ॥ ३ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ ।
त्रिगर्तैर्मत्स्यकैकेयैर्वाटधानैश्च संयुतौ ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण त्रिगर्त्त, मत्स्य, केकय और वाटधान देशीय वीरोंके सहित यशस्वी वीर अश्वत्थामा और कृपाचार्य उनके सिरस्थलमें स्थित हुए ॥ ४ ॥

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
मद्रकाः सिन्धुसौवीरास्तथा पञ्चनदाश्च ये ॥ ५ ॥
जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां संनिवेशिताः ।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदरैः सानुगैर्वृतः ॥ ६ ॥

आर्य ! भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त और जयद्रथ, ये लोग मद्रक, सिन्धु, सौवीर और पञ्चनद देशीय वीरोंके सहित उसकी गर्दनके स्थानमें स्थापित किये । राजा दुर्योधन अनुयायी और भाइयोंके सहित पीठ स्थानमें स्थित हुए ॥ ५–६ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च शकैः सह ।
पुच्छमासन्महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥ ७ ॥

अवन्ति देशीय राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा शकोंके सहित काम्बोज राज और शूरसेन देशके योद्धा उसके पूंछके स्थानमें रक्खे गये ॥ ७ ॥

मागधाश्च कलिङ्गाश्च दाशेरकगणैः सह ।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ८ ॥

मागध और कलिंग देशका योद्धा दाशेरक वीर योद्धाओंके साथ कवच धारण करके उस व्यूहके दाहिने पंखका स्थानमें रहे ॥ ८ ॥

काननाश्च विकुञ्जाश्च मुक्ताः पुण्ड्राविषस्तथा ।
बृहद्बलेन सहिता वामं पक्षमुपाश्रिताः ॥ ९ ॥

और कानन, विकुञ्ज मुक्त और पुण्ड्रीविष देशीय सब योद्धा राजा बृहद्बलके सहित उनके बांये पक्षके स्थानमें स्थित हुए ॥ ९ ॥

×

व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं सव्यसाची परन्तपः ।
धृष्टद्युम्नेन सहितः प्रत्यव्यूहत संयुगे ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहं तमतिदारुणम् ॥ १० ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले सव्यसाची महात्मा अर्जुनने शत्रुओंके व्यूहको इस प्रकारसे सज्जित हुआ देखकर समरभूमिमें धृष्टद्युम्नके सहित मिलकर अपनी सेनाका व्यूह रचित किया । पाण्डव लोगोंने तुम्हारी ओरके गरुड व्यूहके विरुद्धमें अर्धचन्द्र नामक अत्यन्त कठिन व्यूहकी रचना की ॥ १० ॥

दक्षिणं शृङ्गमास्थाय भीमसेनो व्यरोचत ।
नानाशस्त्रौघसंपन्नैर्नानादेश्यैर्नृपैर्वृतः ॥ ११ ॥

उसके दाहिने नोकपर अनेक शस्त्रोंसे युक्त नाना देशीय राजाओंके सहित भीमसेन विराजमान हुए ॥ ११ ॥

तदन्वेव विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ।
तदनन्तरमेवासीन्नीलो नीलायुधैः सह ॥ १२ ॥

उसके पीछे राजा विराट् और महारथी द्रुपद स्थित हुए, उसके अनन्तर नीलायुधसे युक्त नीलराजा ॥ १२ ॥

नीलादनन्तरं चैव धृष्टकेतुर्महारथः ।
चेदिकाशिकरूषैश्च पौरवैश्चाभिसंवृतः ॥ १३ ॥

नीलके अनन्तर चेदी, काशी, करुप और पौरव वीरोंके सहित महारथ धृष्टकेतु स्थित हुए ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ।
मध्ये सैन्यस्य महतः स्थिता युद्धाय भारत ॥ १४ ॥

भारत ! धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चाल और प्रभद्रक योद्धा लोग बहुत बडे सेनादलके सहित उसके मध्यस्थलमें स्थित होके युद्धके निमित्त प्रतीक्षा करने लगे ॥ १४ ॥

तथैव धर्मराजोऽपि गजानीकेन संवृतः ।
ततस्तु सात्यकी राजन्द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥ १५ ॥

राजन् ! राजा युधिष्ठिर भी हाथियोंकी सेनाके सहित उस ही स्थानपर विराजमान हुए । उनके बाद सात्यकि और द्रौपदीके पांचों पुत्र खडे हुए ॥ १५ ॥

अभिमन्युस्ततस्तूर्णमिरावांश्च ततः परम् ।
भैमसेनिस्ततो राजन्केकयाश्च महारथाः ॥ १६ ॥

और इनके बाद ही शूरवीर अभिमन्यु खडे हुए । उन लोगोंके अनन्तर इरावान्, उसके बाद भीमसेनपुत्र घटोत्कच और उसके अनन्तर केकय देशीय योद्धा लोग युद्धके निमित्त शीघ्रताके सहित सजके खडे हो गये ॥ १६ ॥

ततोऽभूद्द्विपदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः ।
सर्वस्य जगतो गोप्ता गोप्ता यस्य जनार्दनः ॥ १७ ॥

उन लोगोंके अनन्तर बायें ढुनगेपर जगत्की रक्षा करनेवाले जनार्दन कृष्णके सहित मनुष्येन्द्र अर्जुन स्थित हुए ॥ १७ ॥

एवमेतन्महाव्यूहं प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ।
वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षं ये च सङ्गताः ॥ १८ ॥

इसी प्रकारसे पाण्डव तथा उनके अनुयायी राजाओंने तुम्हारे पुत्रोंके वध करनेके निमित्त इस महाव्यूहकी रचना की ॥ १८ ॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ १९ ॥

महाराज ! तिसके अनन्तर एक दूसरेपर प्रहार करते हुए आपके और शत्रुपक्षके ऐसे दोनों ओरके रथी और गजारोही पुरुषोंका आपसमें युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥

हयौघाश्च रथौघाश्च तत्र तत्र विशां पते ।
सम्पतन्तः स्म दृश्यन्ते निघ्नमानाः परस्परम् ॥ २० ॥

प्रजापते ! जगह जगहमें रथी और गजपतियोंने युद्धमें प्रवृत्त होकर एक दूसरेको मारना आरम्भ किया ॥ २० ॥

धावतां च रथौघानां निघ्नतां च पृथक्पृथक् ।
बभूव तुमुलः शब्दो विमिश्रो दुन्दुभिस्वनैः ॥ २१ ॥
दिवस्पृङ् नरवीराणां निघ्नतामितरेतरम् ।
सम्प्रहारे सुतुमुले तव तेषां च भारत ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ २१६३ ॥

भारत ! उस महाघोर संग्राममें तुम्हारे और पाण्डवोंके पक्षके वीर लोगोंका युद्धमें प्रवृत्त होना, दूसरेकी ओर दौडना, एकका दूसरेको मारना, तथा सिंहनादका महाघोर शब्द नगाडा आदि जुझाऊ बाजोंके सङ्ग मिलकर आकाशमण्डलको पूरित करने लगा ॥ २१-२२ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ २१६३ ॥

: ७३ :

सञ्जय उवाच

ततो व्यूढेष्वनीकेषु तावकेष्वितरेषु च ।
धनञ्जयो रथानीकमवधीत्तव भारत ।
शरैरतिरथो युद्धे पातयन्रथयूथपान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! आपकी और पाण्डवोंकी दोनों ओरकी व्यूहबद्ध सेना हो जानेपर अतिरथी अर्जुनने आपके रथियोंकी सेनाका संहार शुरू किया। अतिरथी अर्जुनने युद्धस्थलमें अपने बाणोंसे रथ यूथप पुरुषोंको पीडित करते हुए रथ सेनाका वध करने लगे ॥ १ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
धार्तराष्ट्रा रणे यत्ता पाण्डवान्प्रत्ययोधयन् ।
प्रार्थयाना यशो दीप्तं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र–दलका प्रलयकालके भयंकर विनाश समान अर्जुनके बाणोंसे उस युद्धमें हो रहा था। तो भी वे अत्यन्त यत्नके सहित पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करते थे । वह लोग पवित्र यश पानेके अभिलाषी होकर युद्धमें मरना ही उत्तम निवृत्ति समझ कर ॥ २ ॥

एकाग्रमनसो भूत्वा पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
बभञ्जुर्बहुशो राजंस्ते चाभज्यन्त संयुगे ॥ ३ ॥

चित्तको एकाग्र करके युद्धमें डटे रहे । हे राजन् ! सब भांतिसे पाण्डवोंकी सेनाको युद्धमें भग्न करने लगे ॥ ३ ॥

द्रवद्भिरथ भग्नैश्च परिवर्तद्भिरेव च ।
पाण्डवैः कौरवेश्चैव न प्रज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥

उस समय पाण्डव और कौरव पक्षीय सम्पूर्ण सेना ही इधर उधर भागने और फिर युद्धके निमित्त लौटने लगी; तब कुछ भी बोध नहीं होता था ॥ ४ ॥

उदतिष्ठद्रजो भौमं छादयानं दिवाकरम् ।
दिशः प्रतिदिशो वापि तत्र जज्ञुः कथंचन ॥ ५ ॥

वीरोंके पांवके धक्केसे ऐसी धूलि उडी, कि उससे सूर्य छिप गया, किसी प्रकारसे किसी पुरुषको दिशा और प्रतिदिशाका ज्ञान न रहा ॥ ५ ॥

अनुमानेन संज्ञाभिर्नामगोत्रैश्च संयुगे ।
वर्तते स्म तदा युद्धं तत्र तत्र विशां पते ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! उस समय दूसरोंको मारना अशक्य हुआ । रणभूमिमें इधर उधर संज्ञा, नाम तथा गोत्रके उच्चारण और अनुमानहीसे उस समयमें युद्ध होता था ॥ ६ ॥

न व्यूहो भिद्यते तत्र कौरवाणां कथञ्चन ।
रक्षितः सत्यसन्धेन भारद्वाजेन धीमता ॥ ७ ॥

कौरवोंका व्यूह सत्यपराक्रमी भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यसे रक्षित रहनेके कारण पाण्डव लोग उसे नहीं तोड सके ॥ ७ ॥

तथैव पाण्डवेयानां रक्षितः सव्यसाचिना ।
नाभिद्यत महाव्यूहो भीमेन च सुरक्षितः ॥ ८ ॥

उसी भांति पाण्डवोंका व्यूह सव्यसाची अर्जुन और भीमसे रक्षित रहनेसे कौरव लोग भी उसे नहीं तोड सके ॥ ८ ॥

सेनाग्रादभिनिष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः ।
उभयोः सेनयो राजन्व्यतिषक्तरथद्विपाः ॥ ९ ॥

राजन् ! व्यूहके अग्रभागसे निकलकर सैनिक दौड दौड कर युद्ध करने लगे । दोनों सेनासे रथ और हाथीपर चढे हुए पुरुष परस्पर भिड गये ॥ ९ ॥

हयारोहैर्हयारोहाः पात्यन्ते स्म महाहवे ।
ऋष्टिभिर्विमलाग्राभिः प्रासैरपि च संयुगे ॥ १० ॥

उस युद्धमें घुडसवार विमल ऋष्टि और प्रास आदि शस्त्रोंसे शत्रुओंके घुडसवारोंको मारने लगे ॥ १० ॥

रथी रथिनमासाद्य शरैः कनकभूषणैः ।
पातयामास समरे तस्मिन्नतिभयङ्करे ॥ ११ ॥

उस अति भयङ्कर युद्धमें एक रथी दूसरे रथीसे मिलकर उसको सुवर्णभूषित बाणोंसे गिराता था ॥ ११ ॥

गजारोहा गजारोहान्नाराचशरतोमरैः ।
संसक्ताः पातयामास्तुव तेषां च संघशः ॥ १२ ॥

दोनों सैन्योंके गजारोही वीर लोग अपनेसे लडनेवाले दूसरे गजारोहीको शर नाराच और तोमरसे गिराने लगे ॥ १२ ॥

पत्तिसङ्घा रणे पत्तीन्भिण्डिपालपरश्वधैः ।
न्यपातयन्त संहृष्टाः परस्परकृतागसः ॥ १३ ॥

झुण्डके झुण्ड पैदल चलनेवाले वीर योद्धा आपसमें क्रुद्ध होकर उत्साहपूर्वक भिन्डिपाल और फरशेसे बहुतसे पैदल वीरोंका वध करने लगे ॥ १३ ॥

पदाती रथिनं संख्ये रथी चापि पदातिनम् ।
न्यपातयच्छितैः शस्त्रैः सेनयोरुभयोरपि ॥ १४ ॥

दोनों सेनाके पैदल चलनेवाले वीर रथियोंको और रथी लोग पैदल वीरोंको अपने उत्तम तीखे अस्त्रशस्त्रोंसे रणभूमिमें मारने लगे ॥ १४ ॥

गजारोहा हयारोहान्पातयांचक्रिरे तदा ।
हयारोहा गजस्थांश्च तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १५ ॥

गजपति योद्धा घुडसवारोंको और घुडसवार गजपतियोंको मारकर पृथ्वीमें गिराने लगे; वह युद्ध अद्भुतरूपसे दीख पडा ॥ १५ ॥

गजारोहवरैश्चापि तत्र तत्र पदातयः ।
पातिताः समदृश्यन्त तैश्चापि गजयोधिनः ॥ १६ ॥

जगह जगह गजपतियोंको पैदल योद्धा और पैदल वीरोंको गजपति लोग शस्त्रोंसे मारकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ १६ ॥

पत्तिसङ्घा हयारोहैः सादिसङ्घाश्च पत्तिभिः ।
पात्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७ ॥

सैकडों तथा सहस्रों पैदल योद्धाओंके समूह घुडसवारोंसे और घुडसवारोंके समूह पदातियोंके शस्त्रोंसे मरते हुए दीख पडे ॥ १७ ॥

ध्वजैस्तत्रापविद्धैश्च कार्मुकैस्तोमरैस्तथा ।
प्रासैस्तथा गदाभिश्च परिघैः कम्पनैस्तथा ॥ १८ ॥
शक्तिभिः कवचैश्चित्रैः कणपैरंकुशैरपि ।
निस्त्रिंशैर्विमलैश्चापि स्वर्णपुङ्खैः शरैस्तथा ॥ १९ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च कम्बलैश्च महाधनैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ स्रग्दामैरिव चित्रिता ॥ २० ॥

हे महाराज ! ध्वजा, धनुष, तोमर, प्रास, गदा, परिघ, कम्पन, शक्ति, विचित्र कवच, कणप, अंकुश, चमकिले तलवार, सोनेके पङ्खसे युक्त बाण, परिस्तोम शूल, गद्दी, महामूल्य कम्बल, आदि सब गिरी हुई वस्तुओंसे रणभूमि पुष्पमालाओंसे चित्रित होनेके समान दीखने लगी ॥ १८–२० ॥

नराश्वकायैः पतितैर्दन्तिभिश्च महाहवे ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २१ ॥

उस रणभूमिमें मरे हुए हाथी, घोडे और मनुष्योंकी लाशें पडी हुई थी । मांस तथा रुधिरसे पूरित हो गई और वहांकी भूमिमें जाना अशक्य हुआ ॥ २१ ॥

प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः ।
दिशश्च विमलाः सर्वाः संबभूवुर्जनेश्वर ॥ २२ ॥

जनेश्वर ! उस समयमें मनुष्योंके रुधिरसे पृथ्वीके पूरित होनेपर धूलिका उडना बन्द हो गया; इससे सब दिशाएं निर्मल हो गई ॥ २२ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
चिह्नभूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत ॥ २३ ॥

हे भरतर्षभ ! जगत्के नाश होनेके चिन्हस्वरूप रणभूमिमें चारों ओरसे अगणित कबन्ध दौडने लगे ॥ २३ ॥

तस्मिन्युद्धे महारौद्रे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रत्यदृश्यन्त रथिनो धावमानाः समन्ततः ॥ २४ ॥

महाराज ! उस महाघोर अत्यन्त भयङ्कर युद्धमें रथियोंको मैंने चारों ओर दौडते हुए देखा ॥ २४ ॥

ततो द्रोणश्च भीष्मश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
पुरुमित्रो विकर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ २५ ॥
एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्यपराक्रमाः ।
पाण्डवानामनीकानि बभञ्जुः स्म पुनः पुनः ॥ २६ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्य, भीष्म, सिन्धुपति जयद्रथ, पुरुमित्र, विकर्ण, सुबलपुत्र शकुनि;– ये सब सिंहके समान पराक्रमी दुर्जय वीरपुरुष युद्धमें आसक्त होकर पाण्डवोंकी सेनाको बार बार भगाने लगे ॥ २५–२६ ॥

तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत ॥ २७ ॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान्सर्वराजभिः ।
द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव ॥ २८ ॥

भारत ! उधर सब राजाओंके सहित भीमसेन, राक्षस, घटोत्कच, सात्यकि, चेकितान और द्रौपदीके पांचों पुत्र रणभूमिमें आपके समस्त राजाओं सहित पुत्रों तथा कौरव पक्षीय वीरोंको इस प्रकारसे तितर बितर करने लगे, जैसे देवतालोग दानवोंको मारके छिन्न भिन्न करके भगा देते हैं ॥ २७–२८ ॥

तथा ते समरेऽन्योन्यं निघ्नन्तः क्षत्रियर्षभाः ।
रक्तोक्षिता घोररूपा विरेजुर्दानवा इव ॥ २९ ॥

वह सब क्षत्रिय श्रेष्ठ पुरुष युद्धमें एक दूसरेको मारते हुए रुधिरसे पूरित होकर राक्षसोंके समान भयानक रूपसे दीख पडने लगे ॥ २९ ॥

विनिर्जित्य रिपून्वीराः सेनयोरुभयोरपि ।
व्यदृश्यन्त महामात्रा ग्रहा इव नभस्तले ॥ ३० ॥

दोनों ओरके मुख्य मुख्य वीर योद्धालोग विपक्ष वीरोंको जीतकर मानों आकाशमण्डलमें स्थित हुए बडे ग्रहोंकी भांति दिखाई पडने लगे ॥ ३० ॥

ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अभ्ययात्पाण्डवान्युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सहस्र रथियोंके संग मिलकर युद्धमें पाण्डवगण तथा घटोत्कच राक्षसपर आक्रमण किया ॥ ३१ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे महत्या सेनया सह ।
द्रोणभीष्मौ रणे शूरौ प्रत्युद्ययुररिन्दमौ ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण पाण्डवोंने भी बडी सेनाके सहित मिलकर युद्धके लिये तैयार खडे हुए वीर शत्रुनाशन भीष्म और द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ३२ ॥

किरीटी तु ययौ क्रुद्धः समर्थान्पार्थिवोत्तमान् ।
आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं बलम् ॥ ३३ ॥

किरीटधारी अर्जुन भी क्रुद्ध होकर इधर उधर समर्थ मुख्य मुख्य राजाओंसे युद्ध करने लगे। अभिमन्यु और सात्यकिने सुबलराज शकुनिकी सेनाके संग युद्ध करनेके निमित्त आक्रमण किया ॥ ३३ ॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो लोमहर्षणः ।
तावकानां परेषां च समरे विजिगीषताम् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ २१९७ ॥

तिसके अनन्तर एक दूसरेको मारकर युद्धमें विजय चाहनेवाले तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके वीरोंका फिर रोएंको खडा करनेवाला महा भयंकर संग्राम होने लगा ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ २१९७ ॥

५४

सञ्जय उवाच

ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फल्गुनं वीक्ष्य संयुगे ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! अनन्तर उन सब राजाओंने रणभूमिमें अर्जुनको देखकर क्रोधसे भरकर सहस्रों रथियोंके सहित उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

अथैनं रथवृन्देन कोष्ठकीकृत्य भारत ।
शरैः सुबहुसाहस्रैः समन्तादभ्यवारयन् ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! उन राजाओंने अर्जुनको रथोंसे सब ओरसे घेरकर उनके ऊपर कई सहस्र बाणोंसे वृष्टि करके उन्हें छिपा लिया ॥ २ ॥

शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह ।
प्रासान्परश्वधांश्चैव मुद्गरान्मुसलानपि ।
चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ॥ ३ ॥

वे क्रोधमें भरकर युद्धमें प्रकाशमान तीक्ष्ण शक्ति, गदा, परिघ, प्रास, परशु, मुद्गर और मूसल आदि शस्त्रोंको अर्जुनके रथपर वर्षाने लगे ॥ ३ ॥

शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवायतिम् ।
रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः ॥ ४ ॥

अर्जुनने भी सब ओरके शलभ समूहकी भांति उन शस्त्रोंकी वर्षाको देखकर कनकभूषण बाणोंको चलाकर निवारण किया ॥ ४ ॥

तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा बीभत्सोरतिमानुषम् ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
साधु साध्विति राजेन्द्र फल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! उस स्थानमें अर्जुनकी अलौकिक हस्तलघुताको देखकर देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसलोग ' धन्य, धन्य ' कहके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५ ॥

सात्यकिं चाभिमन्युं च महत्या सेनया सह ।
गान्धाराः समरे शूरा रुरुधुः सहसौबलाः ॥ ६ ॥

बडी सेनासे युक्त होकर पराक्रमसे युक्त गांधार सुबलराजके पुत्रों सहित शूर सात्यकि और अभिमन्युको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६ ॥

४

तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम् ।
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥ ७ ॥

अनन्तर सौबल शूरवीरोंने क्रोधसे भरकर सत्यकिके श्रेष्ठ रथको रोषपूर्वक नानाविध शस्त्रोंसे काटकर टुकडे टुकडे कर दिया ॥ ७ ॥

सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने महाभये ।
अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ८ ॥

शत्रुनाशन सात्यकि उस समय छिडे हुए भयङ्कर रणभूमिमें अपने कटे हुए रथको त्यागकर शीघ्रताके सहित अभिमन्युके रथपर जा चढे ॥ ८ ॥

तावेकरथसंयुक्तौ सौबलेयस्य वाहिनीम् ।
व्यधमेतां शितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ९ ॥

फिर वह दोनों एक ही रथपर चढके शीघ्रताके सहित अपने झुकी हुई गांठवाले चोखे बाणोंसे सौबलसेनाके वीरोंको मारने लगे ॥ ९ ॥

द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम् ।
नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ १० ॥

उस युद्धमें युद्धके लिये सदा सावधान रहनेवाले द्रोण और भीष्म धर्मराजकी सेनाको कंक पत्रोंसे युक्त तीक्ष्ण बाणोंसे नष्ट करने लगे ॥ १० ॥

ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मिषतां सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ११ ॥

अनन्तर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तथा माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल और सहदेव सब सेनाके संमुख ही द्रोणसेनाकी ओर दौडे ॥ ११ ॥

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत्सुदारुणम् ॥ १२ ॥

जिस भांतिसे पहिले देवता और असुरोंका महा घोर युद्ध हुआ था; उसी प्रकारसे इन सब वीरोंका महा भयङ्कर रोंएंको खडा करनेवाला घोर संग्राम होने लगा ॥ १२ ॥

कुर्वाणौ तु महत्कर्म भीमसेनघटोत्कचौ ।
दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावभ्यवारयत् ॥ १३ ॥

राजा दुर्योधन भीमसेन और घटोत्कचको संग्राममें बहुत बडे कार्यको करते हुए देखकर उन दोनोंके संमुख गमन करके उन्हें रोकनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १३ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमम् ।
अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत ॥ १४ ॥

महाराज ! इस स्थानपर हिडिम्बापुत्र घटोत्कचका मैंने अद्भुत पराक्रम देखा, कि वह अपने पिता भीमसेनसे भी बढकर रणक्षेत्रमें पराक्रम प्रकाशित करने लगा ॥ १४ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम् ।
हृद्यविध्यत्पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ १५ ॥

पाण्डुनन्दन भीमसेनने भी क्रुद्ध होकर हंसते हुएसे शत्रुनाशन दुर्योधनके हृदयमें एक बाण मारा ॥ १५ ॥

ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरमोहितः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ १६ ॥

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन उस कठिन बाणके आघातसे पीडित, मोहित और मूर्च्छित होकर रथपर बैठ गये ॥ १६ ॥

तं विसंज्ञमथो ज्ञात्वा त्वरमाणोऽस्य सारथिः ।
अपोवाह रणाद्राजंस्ततः सैन्यमभिद्यत ॥ १७ ॥

राजन् ! उनको मूर्छित देखकर उनके सारथिने रणभूमिसे रथको लौटा लिया, उसको देखकर दुर्योधनकी सब सेना भागने लगी ॥ १७ ॥

ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः ।
निघ्नन्भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः ॥ १८ ॥

तब भीमसेन कौरवी सेनाको चारों ओर इधर उधर भागती हुई देखकर चोखे बाणोंसे उन सब वीरोंके ऊपर प्रहार करतेसे हुए उनको पीछे खदेडने लगे ॥ १८ ॥

पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।

द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गाङ्गेयस्य च पश्यतः ।
जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविशातनैः ॥ १९ ॥

दूसरी ओरसे रथियोंमें श्रेष्ठ द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न और धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भीष्म द्रोणके संमुख ही उनकी सेनाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे नाश करने लगे ॥ १९ ॥

द्रवमाणं तु तत्सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे ।
नाशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ ॥ २० ॥

महाराज ! महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्य आपके पुत्र दुर्योधनकी भागती हुई सेनाको उस युद्धमें निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ २० ॥

वार्यमाणं हि भीष्मेण द्रोणेन च विशां पते।
विद्रवत्येव तत्सैन्यं पश्यतोर्द्रोणभीष्मयोः। ॥ २१ ॥

पृथ्वीपते ! वह सब सेना महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्यसे निवारित होनेपर भी उन दोनोंके संमुख ही भागने लगी ॥ २१ ॥

ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः।
तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ।
सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः ॥ २२ ॥

अनन्तर सहस्रों रथोंके समूह शीघ्रताके सहित इधर उधर भाग रहे थे, उसी समय एक ही रथमें बैठे हुए शिनिपौत्र सात्यकि और सुभद्रानन्दन अभिमन्यु सौबली सेनाका संग्रामभूमिमें सब ओरसे संहार करने लगे ॥ २२ ॥

शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ।
अमावास्यां गतौ यद्वत्सोमसूर्यौ नभस्तले ॥ २३ ॥

उस समय वह दोनों सात्यकि और अभिमन्यु ऐसे शोभित हुए, जैसे अमावस्याके दिन सूर्य और चन्द्रमा आकाशमण्डलमें एक ही स्थान पर शोभित हों ॥ २३ ॥

अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तव सैन्यं विशां पते।
ववर्ष शरवर्षेण धाराभिरिव तोयदः ॥ २४ ॥

प्रजापते ! तदनन्तर अर्जुन क्रुद्ध होकर तुम्हारी सेनापर अपने बाणोंको इस प्रकारसे वर्षाने लगे, जैसे बादल आकाशसे जल वर्षाता है ॥ २४ ॥

वध्यमानं ततस्तत्तु शरैः पार्थस्य संयुगे।
दुद्राव कौरवं सैन्यं विषादभयकम्पितम् ॥ २५ ॥

तब कौरवी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर विषाद और भयसे कांपती हुई रणभूमिसे इधर उधर भागने लगी ॥ २५ ॥

द्रवतस्तान्समालोक्य भीष्मद्रोणौ महारथौ।
न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ ॥ २६ ॥

उस सेनाको भागती हुई देखकर दुर्योधनके हितैषी महाबली भीष्म और द्रोणाचार्य क्रोधपूर्वक उसके निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा समाश्वस्य विशां पते।
न्यवर्तयत तत्सैन्यं द्रवमाणं समन्ततः ॥ २७ ॥

पृथ्वीपते ! अनन्तर राजा दुर्योधनने चारों ओर भागती हुई उस सेनाको धीरज देके फिर युद्धके निमित्त लौटायी ॥ २७ ॥

यत्र यत्र सुतं तुभ्यं यो यः पश्यति भारत।
तत्र तत्र न्यवर्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः ॥ २८ ॥
महारथी क्षत्रिय योद्धाओंने जहां जहांसे आपके पुत्र दुर्योधनको देखा, उस ही ओरसे वे युद्धके निमित्त फिर लौट आये ॥ २८ ॥

तान्निवृत्तान्समीक्ष्यैव ततोऽन्येऽपीतरे जनाः।
अन्योन्यस्पर्धया राजँल्लज्जयान्येऽवतस्थिरे ॥ २९ ॥
उन सब वीरोंको लौटता हुआ देखकर सब साधारण वीर लोग इच्छानुसार एक दूसरेकी स्पर्धा तथा कितने ही लज्जित होके फिर युद्धके निमित्त लौटे ॥ २९ ॥

पुनरावर्ततां तेषां वेग आसीद्विशां पते।
पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति ॥ ३० ॥
महाराज! उस सम्पूर्ण सेनाके फिर युद्धके निमित्त लौटनेपर ऐसा वेग हुआ, जैसे पूर्णमासीके दिन चन्द्रमाको देखकर समुद्रकी तरंग अत्यन्त वेगसे उठती है ॥ ३० ॥

संनिवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः।
अब्रवीत्त्वरितो गत्वा भीष्मं शांतनवं वचः ॥ ३१ ॥
तब राजा दुर्योधन सेनाको लौटी हुई देखकर शीघ्रताके सहित शान्तनुनन्दन भीष्मके समीप जाकर यह वचन बोले ॥ ३१ ॥

पितामह निबोधेदं यत्त्वा वक्ष्यामि भारत।
नानुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव ॥ ३२ ॥
द्रोणे चास्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने।
कृपे चैव महेष्वासे द्रवतीयं वरूथिनी ॥ ३३ ॥
हे पितामह! मैं जो कुछ आपसे कहता हूं, उसको सुनो। भारत! आपके शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पुत्र और सुहृद पुरुषोंके सहित तुम्हारे तथा महाधनुर्धर कृपाचार्यके विद्यमान रहते ही, जो यह सब सेना युद्धसे भागती है, मेरे विचारमें यह आप लोगोंके योग्य कार्य नहीं हो रहा है ॥ ३२-३३ ॥

न पाण्डवाः प्रतिबलास्तव राजन्कथञ्चन।
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ ३४ ॥
राजन्! युद्धमें मैं तुम्हारे तथा द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा वा कृपाचार्यके समान बलवान् पाण्डवोंको कभी नहीं समझता हूं ॥ ३४ ॥

अनुग्राह्याः पाण्डुसुता नूनं तव पितामह ।
यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम् ॥ ३५ ॥

हे पितामह ! जब सेनाके वीरोंको मरता देखकर भी आप लोग क्षमा कर रहे हैं; तब निश्चय मुझे यही बोध हो रहा है, कि आपलोग पाण्डवोंके ऊपर कृपा कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन्पूर्वमेव समागमे ।
न योत्स्ये पाण्डवान्संख्ये नापि पार्षतसात्यकी ॥ ३६ ॥

महाराज! इससे युद्ध आरम्भ होनेके पहिले ही आपको यह कहना उचित था, कि 'मैं पाण्डव लोग, सात्यकि वा धृष्टद्युम्नके सङ्ग युद्ध नहीं करूंगा' ॥ ३६ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च ।
कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि ॥ ३७ ॥

ऐसा होनेपर मैं आपके द्रोणाचार्यके और कृपाचार्यके वचनको सुनकर, उसी समय कर्णके साथ विचार करके किसी प्रकारसे अपने कर्तव्य कार्यका निश्चय करता ॥ ३७ ॥

यदि नाहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे ।
विक्रमेणानुरूपेण युध्येतां पुरुषर्षभौ ॥ ३८ ॥

जो हो अब इस उपस्थित युद्धमें यदि मैं आपके और आचार्य द्रोणके परित्याग न किये जानेके योग्य होऊं, तो आप दोनों पुरुषसिंह अपने अपने पराक्रमके अनुसार युद्ध कीजिये ॥ ३८ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन्वै मुहुर्मुहुः ।
अब्रवीत्तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ३९ ॥

दुर्योधनकी यह बात सुनकर भीष्म बार बार हंसकर क्रोधसे नेत्र लाल करके उनसे बोले ॥ ३९ ॥

बहुशो हि मया राजंस्तथ्यमुक्तं हितं वचः ।
अजेयाः पाण्डवा युद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ४० ॥

हे राजन् ! मैंने बहुत बार तुमको हितकारी तथा पथ्य वचन कहा है, कि पाण्डवलोग युद्धमें इन्द्रके सहित देवताओंसे भी न जीतने योग्य हैं ॥ ४० ॥

यत्तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाद्य नृपोत्तम ।
करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबान्धवः ॥ ४१ ॥

नृपोत्तम ! जो हो, अब इस संग्रामभूमिमें मुझ वृद्धकी जहांतक शक्ति है, उसे मैं सामर्थ्यके अनुसार प्रकाशित करता हूं, तुम बन्धुबान्धवोंके सहित मेरे पराक्रमको देखो ॥ ४१ ॥

अद्य पाण्डुसुतान्सर्वान्ससैन्यान्सह बन्धुभिः ।
मिषतो वारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ४२ ॥

आज सब पुरुषोंके संमुख ही सेना और बन्धुओंके सहित सर्व वीर पाण्डवोंको निवारण करूंगा ॥ ४२ ॥

एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर ।
दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ता भेरीश्च जघ्निरे भृशम् ॥ ४३ ॥

जनेश्वर ! आपके पुत्र राजा दुर्योधन भीष्मके ऐसे वचन सुन हर्षके सहित अपना शंख जोरसे बजाने लगे और भेरी, मृदङ्ग, नगाडे आदि बाजोंका शब्द होने लगा ॥ ४३ ॥

पाण्डवापि ततो राजञ्श्रुत्वा तं निनदं महत् ।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च मुरजांश्च व्यनादयन् ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ २२४१ ॥

राजन् ! उन युद्धके बाजोंका महान् शब्द सुनके पाण्डवलोग भी शंख, भेरी, मुरज आदि युद्धके बाजे बजाने लगे ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चौवनवां अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ २२४१ ॥

: ५५ :

धृतराष्ट्र उवाच

प्रतिज्ञाते तु भीष्मेण तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
क्रोधितो मम पुत्रेण दुःखितेन विशेषतः ॥ १ ॥
भीष्मः किमकरोत्तत्र पाण्डवेयेषु सञ्जय ।
पितामहे वा पाञ्चालास्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! उस महाभयङ्कर युद्धमें मेरे विशेष दुःखी हुए पुत्र दुर्योधनकी बातसे विशेष क्रुद्ध होकर, भीष्मने प्रतिज्ञा करके पाण्डवोंसे किस प्रकार युद्ध किया ? और धृष्टद्युम्न आदि पांचाल वीरोंने भी भीष्मके संग कैसा संग्राम किया ? वह सब वृतान्त तुम मुझसे वर्णन करो ॥ १–२ ॥

सञ्जय उवाच

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥ ३ ॥
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
महत्या सेनया गुप्तस्तव पुत्रैश्च सर्वशः ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! उस दिन जब पूर्वाह्ण कालका अधिक भाग व्यतीत हुआ तब महात्मा पाण्डवलोग दुर्योधनकी सेनाको हराकर विजयको प्राप्त होकर प्रसन्न हुए, उस समय विशेष धर्मज्ञ तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म वेगशाली अश्वोंद्वारा तुम्हारे सब पुत्रों और उस बडी सेनासे रक्षित होकर वेगके सहित पाण्डवोंकी ओर दौडे ॥ ३–४ ॥

प्रावर्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अस्माकं पाण्डवैः सार्धमनयात्तव भारत ॥ ५ ॥

हे भारत ! अनन्तर पाण्डवोंके सङ्ग उनका महा भयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा । यह सब घटना आपके अनीति दोषसे ही हुई ॥ ५ ॥

धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाभिहन्यताम् ।
महान्समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम् ॥ ६ ॥

जो हो, तब उस समय पर्वतको भी भेद करनेवाली प्रचण्ड ध्वनि, धनुपटङ्कार और शस्त्रोंके घोर खटपट शब्द होने लगे ॥ ६ ॥

तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्येनं निवर्तस्व स्थिरो भव ।
स्थितोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दाः श्रूयन्त सर्वशः ॥ ७ ॥

और ' खडा रह, यहीं खडा हूं, इनको मारो, उनको निवृत्त करो, चुप रहो, स्थिर ही हूं, शस्त्र चलाओ '; इसी प्रकारके सब ओर शब्द सुनाई देने लगे ॥ ७ ॥

काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च ।
शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूत्स्वनः ॥ ८ ॥

सुवर्णके तनुत्राण, किरीट, ध्वजा आदि शस्त्रोंके लगनेसे कटके गिरने लगे । तब पर्वतोंके ऊपरसे गिरनेवाली शिलाओंके समान उनका शब्द होने लगा ॥ ८ ॥

पतितान्युत्तमाङ्गानि बाहवश्च विभूषिताः ।
व्यचेष्टन्त महीं प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥

सैकडों तथा सहस्रों सिर और भूषणोंसे युक्त वीरोंकी भुजाएं कटकर पृथ्वीमें गिरकर हलचल करने लगीं ॥ ९ ॥

हतोत्तमाङ्गाः केचित्तु तथैवोद्यतकार्मुकाः ।
प्रगृहीतायुधाश्चापि तस्थुः पुरुषसत्तमाः　　　॥ १० ॥

कितने ही पुरुष शिरोमणी वीर हाथमें शस्त्र वा धनुष लिये ही सिर कट जानेपर भी पूर्ववत् खडे ही रहे ॥ १० ॥

प्रावर्तत महावेगा नदी रुधिरवाहिनी ।
मातङ्गाङ्गशिलारौद्रा मांसशोणितकर्दमा　　　॥ ११ ॥
वराश्वनरनागानां शरीरप्रभवा तदा ।
परलोकार्णवमुखी गृध्रगोमायुमोदिनी　　　॥ १२ ॥

रणभूमिमें मरे हुए मनुष्य, घोडे और हाथियोंके शरीरके रुधिरसे गिद्ध, और सियारोंके हर्षको बढानेवाली महाघोर तरङ्गसे युक्त रुधिरकी नदी बह चली; हाथियोंके शरीर इस नदीमें पर्वतकी शिला, मांस कीचड और रुधिर जलरूपी था, वह परलोकरूपी समुद्रकी ओर बहने लगी ॥ ११-१२ ॥

न दृष्टं न श्रुतं चापि युद्धमेतादृशं नृप ।
यथा तव सुतानां च पाण्डवानां च भारत　　　॥ १३ ॥

भारत ! महाराज ! मैंने तुम्हारे पुत्रोंके संग पाण्डवोंका जैसा युद्ध देखा, वैसा पहिले न कभी देखनेमें आया और न मैंने सुना ही था ॥ १३ ॥

नासीद्रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः ।
गजैश्च पतितैर्नीलैर्गिरिशृङ्गैरिवावृतम्　　　॥ १४ ॥

उस रणभूमिमें मरे हुए योद्धाओंके और हाथियोंके शरीर इधर उधर पडे रहनेके कारणसे रथोंके गमन करनेका मार्ग नहीं रहा। मरे हुए हाथियोंके शरीरसे रणभूमि इस प्रकारसे भर गई, मानो नीलगिरिके शिखर पडे हुए हैं ॥ १४ ॥

विकीर्णैः कवचैश्चित्रैर्ध्वजैश्छत्रैश्च मारिष ।
शुशुभे तद्रणस्थानं शरदीव नभस्तलम्　　　॥ १५ ॥

माननीय राजन् ! बहुतसे विचित्र कवच मुकुट ध्वज और छत्रसे रणभूमि इस प्रकारसे शोभित हुई, जैसे शरदृऋतुमें आकाश तारोंसे शोभायमान लगता है ॥ १५ ॥

विनिर्भिन्नाः शरैः केचिद् अन्तपीडाविकर्षिणः ।
अभीताः समरे शत्रूनभ्यधावन्त दंशिताः　　　॥ १६ ॥

कितने ही भयरहित पुरुष शस्त्रोंकी चोटसे जिनकी आंते बाहर निकलकर पीडासे अत्यन्त कष्ट पानेपर भी क्रोधपूर्वक दांत पीसते हुए शत्रुओंकी ओर दौडने लगे ॥ १६ ॥

×

तात भ्रातः सखे बन्धो वयस्य मम मातुल ।
मा मां परित्यजेत्यन्ये चुक्रुशुः पतिता रणे ॥ १७ ॥

कितने ही योद्धा रणभूमिमें शस्त्रकी चोटसे गिरकर पिता, भ्राता, सखा, बन्धु और मामाका नाम लेकर 'मुझे छोडके मत जाओ' ऐसा कहकर रोदन करते हुए दीख पडे ॥ १७ ॥

आधावाभ्येहि मा गच्छ किं भीतोऽसि क यास्यसि ।
स्थितोऽहं समरे मा भैरिति चान्ये विचुक्रुशुः ॥ १८ ॥

बहुतेरे योद्धालोग–चले आओ, मेरे निकट आओ, क्या तुम डर गये हो ? कहां जाओगे ? मैं युद्धहीमें हूं, तुम कुछ भय मत करो; ऐसा कहकर पुकारते चिल्लाते थे ॥ १८ ॥

तत्र भीष्मः शांतनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ १९ ॥

इस प्रकारकी संग्रामभूमिमें शान्तनुपुत्र भीष्म अपने मण्डलाकार धनुपको ग्रहण करके विपधर सर्पके समान सब भयङ्कर एवं प्रकाशमान बाणोंको चला रहे थे ॥ १९ ॥

शरैरेकायनीकुर्वन्दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्यादिश्य भारत ॥ २० ॥

महाराज ! महाव्रत करनेवाले भीष्म अपने बाणोंसे सब दिशाओंका एक मार्ग बनाकर पाण्डवोंकी ओरके रथियोंका नाम ले लेकर उनका वध करते थे ॥ २० ॥

स नृत्यन्वै रथोपस्थे दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
अलातचक्रवद्राजंस्तत्र तत्र स्म दृश्यते ॥ २१ ॥

हे राजन् ! वह अपने हाथकी फ़ुर्ती दिखाते हुए रथकी बैठकपर नृत्यासा कर रहे थे । वे अलात चक्रकी भांति सब ओर घुमते हुए दीख पडते थे ॥ २१ ॥

तमेकं समरे शूरं पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा ।
अनेकशतसाहस्रं समपश्यन्त लाघवात् ॥ २२ ॥

उनके हाथकी फ़ुर्ती और युद्धमें निपुणताके कारण पाण्डव तथा सृञ्जयोंने उन एक ही भीष्मकी सैकडों तथा सहस्रों मूर्ति देखी ॥ २२ ॥

मायाकृतात्मानमिव भीष्मं तत्र स्म मेनिरे ।
पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः ॥ २३ ॥

वहांपर उनकी आत्माको उस समय सब पुरुष ऐन्द्रजालिक समझने लगे । उनको पूर्व दिशामें देखते थे और फिर क्षणभरमें पश्चिम ओर देखते थे ॥ २३ ॥

उदीच्यां चैनमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो ।
एवं स समरे वीरो गाङ्गेयः प्रत्यदृश्यत ॥ २४ ॥

प्रभो! फिर घूमकर उत्तर ओर भी भीष्मको देखते और फिर उस ही समय दक्षिण दिशामें लौटकर उन्हें उस ओर भी देखते थे। इस प्रकार समरभूमिमें वे शूरवीर गङ्गानन्दन भीष्म सब और दिखाई दे रहे थे ॥ २४ ॥

न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति वीक्षितुम् ।
विशिखानेव पश्यन्ति भीष्मचापच्युतान्बहून् ॥ २५ ॥

पाण्डवोंकी सेनामें कोई भी उनको देखनेमें समर्थ न हुआ, केवल उनके धनुषसे छूटे हुए असंख्य बाणोंको ही सब देखने लगे ॥ २५ ॥

कुर्वाणं समरे कर्म सूदयानं च वाहिनीम् ।
व्याक्रोशन्त रणे तत्र वीरा बहुविधं बहु ।
अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव ॥ २६ ॥

उन पितामह भीष्मको उस समय रणक्षेत्रमें सब सेनाका नाश और अमानुष रूपमें विचरकर अत्यन्त कठिन कर्म करते हुए देखकर बहुतेरे पुरुष दुःखित होकर नाना प्रकारके आर्त्तनाद करने लगे ॥ २६ ॥

शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः ।
भीष्माग्निमभि संक्रुद्धं विनाशाय सहस्रशः ॥ २७ ॥

सहस्रों क्षत्रिय वीर योद्धा अमानुषरूपसे रणभूमिमें घूमनेवाले क्रोधसे युक्त भीष्मरूपी अग्निमें विधातासे प्रेरित होकर पतङ्गोंकी भांति अपने विनाशके लिये स्वयं ही गिरते थे ॥ २७ ॥

न हि मोघः शरः कश्चिदासीद्भीष्मस्य संयुगे ।
नरनागाश्वकायेषु बहुत्वाल्लघुवेधिनः ॥ २८ ॥

अत्यन्त शीघ्रताके सहित शस्त्रोंको चलानेपर भी उनका एक भी बाण युद्धमें मनुष्य, हाथी वा घोडोंके शरीरमें लगकर निष्फल नहीं होता था ॥ २८ ॥

भिनत्त्येकेन बाणेन सुमुक्तेन पतत्रिणा ।
गजकङ्कटसंनाहं वज्रेणेवाचलोत्तमम् ॥ २९ ॥

धनुषसे छूटे हुए एक ही पंखयुक्त सीधे बाणसे कवचसे युक्त हाथी मरकर इस भांतिसे पृथ्वीमें गिर पडते थे, जैसे इन्द्रके वज्रसे टुकडे टुकडे होकर पर्वत गिर जाता है ॥ २९ ॥

द्वौ त्रीनपि गजारोहान्पिण्डितान्वर्मितानपि ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन निजघान पिता तव ॥ ३० ॥

उत्तम पानीसे बुझे हुए एक ही तीक्ष्ण नाराच बाणसे वह कवचसे युक्त एकत्रित हुए दो तीन गजारोही पुरुषोंका संहार करते थे ॥ ३० ॥

यो यो भीष्मं नरव्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन ।
मुहूर्तदृष्टः स मया पातितो भुवि दृश्यते ॥ ३१ ॥

युद्धमें जो कोई मनुष्य उस पुरुषसिंहके संमुख जाता था, वह क्षण ही भरमें खडा दिखाई देकर उसी क्षण मरकर पृथ्वीमें गिर पडा दिखाई देता था ॥ ३१ ॥

एवं सा धर्मराजस्य वध्यमाना महाचमूः ।
भीष्मेणातुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा ॥ ३२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरकी वह विशाल महासेना अत्यन्त पराक्रमी भीष्मके बाणोंसे विकल होके सहस्रों भागोंमें बिखर गयी ॥ ३२ ॥

प्रकीर्यत महासेना शरवर्षाभितापिता ।
पश्यतो वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ३३ ॥

महात्मा कृष्ण और अर्जुनके संमुख ही भीष्मके बाणोंसे पीडित वह पाण्डवोंकी महती सेना भयसे भागने लगी ॥ ३३ ॥

यतमानापि ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ।
नाशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडिताः ॥ ३४ ॥

पाण्डवोंके पक्षके वीर लोग महात्मा भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर रणभूमिसे भागने लगे। सेनापति वीर लोग यत्नवान् होकर भी अपनी सेनाको निवारण न कर सके ॥ ३४ ॥

महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ।
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ॥ ३५ ॥

महाराज ! मुख्य सेना भी इन्द्रके समान पराक्रमी भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर भागने लगी। उसके दो सैनिक भी एक साथ नहीं भाग सकते थे ॥ ३५ ॥

आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूबरम् ।
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ॥ ३६ ॥

वीर लोग चेतरहित होने लगे और उनके हाथी, घोडे, रथ, ध्वजा सवारोंसे रहित होके पृथ्वीमें कटकर गिरने लगे। इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ३६ ॥

जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
प्रियं सखायं चाक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ॥ ३७ ॥

इस युद्धमें मानो दैवकी ओरसे प्रेरित होकर पिता पुत्रका और पुत्र पिताका संहार करने लगा और सखा अपने प्यारे सखाको युद्धके निमित्त आवाहन करने लगा ॥ ३७ ॥

विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्रकीर्य केशान्धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त भारत ॥ ३८ ॥

भारत ! पाण्डवपक्षीय अनेक योद्धाओंको कवचरहित बालबिखेरे हुए सिरसे मैंने इधर उधर भागते हुए देखा ॥ ३८ ॥

तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथयूथपम् ।
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ॥ ३९ ॥

उस समय पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी सेना मानो सिंहके भयसे गौओंके समूहकी भांति भयभीत और विकल होकर आर्त्तनाद करती हुई देखी गयी । कितने ही रथयूथपति भी किंकर्तव्यमूढ होकर घूम रहे थे ॥ ३९ ॥

प्रभज्यमानं तत्सैन्यं दृष्ट्वा देवकिनन्दनः ।
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ॥ ४० ॥

यदुकुलभूषण देवकीनन्दन कृष्ण सेनामें इस प्रकार भगदड मची हुई देख, रथको रोककर अर्जुनसे कहने लगे ॥ ४० ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यः काङ्क्षितस्त्वया ।
प्रहरास्मै नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ॥ ४१ ॥

हे पुरुषसिंह अर्जुन ! तुमने जिस समयकी इच्छा की थी, वह समय अब उपस्थित हुआ है। इसी अवसरमें भीष्मके ऊपर प्रहार करो, नहीं तो मोहको प्राप्त होओगे ॥ ४१ ॥

यत्त्वया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे ।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ॥ ४२ ॥
सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संयुगे ।
इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिन्दम ॥ ४३ ॥

हे वीर ! तुमने पहिले राजाओंके समागमके समय यह कहा था, कि भीष्म, द्रोणाचार्य आदि धृतराष्ट्र सेनामेंसे जो पुरुष मेरे सङ्ग युद्ध करेगा, मैं उसका सगेसंबंधि–सेवकोंके सहित युद्धमें नाश करूंगा। शत्रुसूदन कुन्तीनन्दन ! इस समय अब अपना वह वचन सत्य करो ॥ ४२-४३ ॥

बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्यमानं समन्ततः ।
द्रवतश्च महीपालान्सर्वान्यौधिष्ठिरे बले ॥ ४४ ॥

अर्जुन ! यह देखो, तुम्हारी सेना इधर उधर भाग रही है। यह देखो, युधिष्ठिरकी ओरके सब राजालोक रणभूमिसे भाग रहे हैं ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा हि समरे भीष्मं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
भयार्ताः संप्रणश्यन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥ ४५ ॥

वह लोग भीष्मको शस्त्रधारी यमराजके समान जानकर इस प्रकारसे युद्धभूमिसे भाग रहे हैं, जैसे सिंहको देखकर साधारण मृग आदि पशु विकल होके भागते हैं ॥ ४५ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनञ्जयः ।
चोदयाश्वान्यतो भीष्मो विगाह्यैतद्बलार्णवम् ॥ ४६ ॥

अर्जुनने वसुदेवनन्दन कृष्णकी बात सुनकर उनसे कहा, कि जहांपर भीष्म हैं उसी स्थानमें इस सेनारूपी समुद्रको लांघकर तुम मेरे रथको ले चलो ॥ ४६ ॥

ततोऽश्वान्रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ।
यतो भीष्मरथो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिमानिव ॥ ४७ ॥

राजन् ! अनन्तर जहांपर रश्मिवान् सूर्यके समान प्रकाशमान् महात्मा भीष्मका रथ जिसके ओर सूर्यकी भांति आंख उठाकर देखना भी कठिन था, भगवान् श्री कृष्णने वहांपर ही चांदीके समान सफेद अपने रथके घोडोंको चलाया ॥ ४७ ॥

ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यन्तमाहवे ॥ ४८ ॥

अनन्तर युधिष्ठिरकी वह महासेना महाबाहु अर्जुनको भीष्मके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त आगे बढता हुआ देखकर फिर संग्रामके निमित्त लौटी ॥ ४८ ॥

ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
धनञ्जयरथं तूर्णं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४९ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! तब पराक्रमी भीष्मने बार बार सिंहनाद करके अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनके रथको व्याप्त कर दिया ॥ ४९ ॥

क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ।
शरवर्षेण महता संछन्नो न प्रकाशते ॥ ५० ॥

वह रथ क्षणभरमें भीष्मके बहुतसे बाणोंकी वर्षासे ध्वजा और सारथीके सहित ऐसा छिप गया, कि देख भी नहीं पडता था ॥ ५० ॥

वासुदेवस्त्वसंभ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्त्ववान् ।
चोदयामास तानश्वान्वितुन्नान्भीष्मसायकैः ॥ ५१ ॥

परंतु, पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण स्थिर-चित्तसे धीरज धरके भीष्मके बाणोंसे विकल हुए घोडोंको चलाने लगे ॥ ५१ ॥

ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिस्वनम् ।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा त्रिभिः शरैः ॥ ५२ ॥

अनन्तर अर्जुनने बादलके गर्जनके समान शब्दसे युक्त दिव्य धनुष ग्रहण करके तीन बाणोंसे भीष्मके धनुषको काट कर गिरा दिया ॥ ५२ ॥

स छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ।
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ॥ ५३ ॥

धनुष कटनेपर कुरुनन्दन भीष्मने निमेष भरमें दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढा दी ॥ ५३ ॥

विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिस्वनम् ।
अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ॥ ५४ ॥

तब अर्जुनने क्रुद्ध होकर उस मेघके समान गंभीर शब्द करनेवाले महाधनुषको हाथोंसे खींच करके भीष्मके धनुषको फिर काट डाला ॥ ५४ ॥

तस्य तत्पूजयामास लाघवं शंतनोः सुतः ।
साधु पार्थ महाबाहो साधु भो पाण्डुनन्दन ॥ ५५ ॥
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं महत्कर्म धनञ्जय ।
प्रीतोऽस्मि सुदृढं पुत्र कुरु युद्धं मया सह ॥ ५६ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्मने अर्जुनके हाथकी फुर्तीकी प्रशंसा की;– " हे महाबाहो पाण्डुनन्दन अर्जुन ! तुम धन्य हो ! तुम धन्य हो ! ऐसा बडा कर्म करना तुम्हारे ही योग्य है । हे पुत्र ! धनंजय ! तुम्हारे ऊपर मैं बहुत प्रसन्न हूं; अब तुम मेरे सङ्ग दृढ युद्ध करो " ॥ ५५–५६ ॥

इति पार्थं प्रशस्याथ प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ।
मुमोच समरे वीरः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ५७ ॥

उन्होंने इस प्रकारसे अर्जुनकी प्रशंसा करके फिर एक महाधनुष ग्रहण कर युद्धस्थलमें अर्जुनके रथके ऊपर बाण चलाये ॥ ५७ ॥

अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलान्यचरल्लघु ॥ ५८ ॥

तब कृष्ण शीघ्रताके सहित मण्डलाकार रथको चलाकर, भीष्मके चलाये हुए सब बाणोंको विफलकर घोडोंके चलानेकी अत्यन्त निपुणता प्रकाशित करने लगे ॥ ५८ ॥

तथापि भीष्मः सुदृढं वासुदेवधनञ्जयौ ।
विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु मारिष ॥ ५९ ॥

भारत ! परन्तु भीष्मने फिर शीघ्र ही उत्तम पानीमें बुझे हुए बाणोंसे कृष्ण और अर्जुनके सम्पूर्ण शरीरको विद्ध किया ॥ ५९ ॥

शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव नर्दन्तौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ६० ॥

वह दोनों पुरुषसिंह भीष्मके बाणोंसे क्षत विक्षत होकर सींगकी चोटके समान चिन्हित शरीर तथा हांक देनेवाले वृषभोंकी भांति शोभायमान होने लगे ॥ ६० ॥

पुनश्चापि सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ।
कृष्णयोर्युधि संरब्धो भीष्मो व्यावारयद्दिशः ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् भीष्मने क्रुद्ध होकर बार बार सैकडों तथा सहस्रों बाणोंसे युद्धभूमिमें कृष्ण और अर्जुनको संपूर्ण चारों ओरसे छिपा दिया ॥ ६१ ॥

वार्ष्णेयं च शरैस्तीक्ष्णैः कम्पयामास रोषितः ।
मुहुरभ्युत्स्मयन्भीष्मः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ ६२ ॥

और क्रोधसे भरकर भीष्मने सिंहनादके सहित हंसी करके तथा विस्मय उत्पन्न करके वृष्णि-कुलभूषण श्रीकृष्णको कंपाने लगे ॥ ६२ ॥

ततः कृष्णस्तु समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम् ।
सम्प्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ॥ ६३ ॥
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ॥ ६४ ॥
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ॥ ६५ ॥

इसके अनन्तर शत्रुनाशन वीर महाबाहु भगवान् कृष्ण युद्धमें भीष्मका पराक्रम और अर्जुनका सरल संग्राम देखकर चिन्ता करने लगे, कि भीष्म जो दोनों सेनाके बीच प्रचण्ड तेजसे युक्त सूर्यके समान होकर लगातार अपने बाणोंकी वर्षाकर पाण्डवोंकी सेनाके निमित्त प्रलय-कालका समय उपस्थित कर रहे हैं; इस महासेनाके बीचसे मुख्य मुख्य सैनिक पुरुषोंका वध कर रहे हैं; यह सब देखकर और सोचते हुए शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अप्रमेय-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण सहन न कर सके। इस प्रकारसे तो युधिष्ठिरकी सेना अब किसी भांति नहीं बच सकेगी ॥ ६३–६५ ॥

अमृष्यमाणो भगवान्केशवः परवीरहा ।
अचिन्तयदमेयात्मा नास्ति यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ६६ ॥
एकाह्ना हि रणे भीष्मो नाशयेद्देवदानवान् ।
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे सबलान्सपदानुगान् ॥ ६७ ॥

भीष्म एक ही दिनके युद्धमें संपूर्ण देवताओं और दैत्य दानवोंका नाश कर सकते हैं; तब जो सेनाके सहित युद्धमें अनुयायी राजाओंके समेत पाण्डवोंका नाश कर देंगे; उसमें कौनसा सन्देह है ? ॥ ६६–६७ ॥

द्रवते च महत्सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
एते च कौरवास्तूर्णं प्रभग्नान्दृश्य सोमकान् ।
आद्रवन्ति रणे हृष्टा हर्षयन्तः पितामहम् ॥ ६८ ॥

महात्मा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी यह विशाल सेना भाग रही है। ये सब कौरवलोग सोमक-वंशियोंको रणभूमिसे भागता देखकर आनन्दपूर्वक भीष्मको हर्षित करते हुए युद्ध करनेके निमित्त शीघ्रताके सहित आगे बढ रहे हैं ॥ ६८ ॥

सोऽहं भीष्मं निहन्म्यद्य पाण्डवार्थाय दंशितः ।
भारमेतं विनेष्यामि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ६९ ॥

इससे आज मैं महात्मा पाण्डवोंके निमित्त कवच धारण किया हुआ रणभूमिमें स्थित होके भीष्मका नाश करूं। मैं इस कार्यको करके पाण्डवोंका यह भारी दुःख दूर करूंगा ॥६९॥

अर्जुनोऽपि शरैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानो हि संयुगे ।
कर्तव्यं नाभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात् ॥ ७० ॥

क्योंकि अर्जुन युद्धमें तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित होकर भी पितामहके गौरवसे बाध्य होके अपने कर्त्तव्य कार्यको नहीं समझ सकता है ॥ ७० ॥

तथा चिन्तयतस्तस्य भूय एव पितामहः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ७१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकारसे मन ही मन विचार कर रहे थे और उधर पितामह भीष्म क्रुद्ध होकर अर्जुनके रथके ऊपर अपने अनेक बाणोंको चला रहे थे ॥ ७१ ॥

तेषां बहुत्वाद्धि भृशं शराणां दिशोऽथ सर्वाः पिहिता बभूवुः ।
न चान्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न भास्करोऽदृश्यत रश्मिमाली ।
ववुश्च वातास्तुमुलाः सधूमा दिशश्च सर्वाः क्षुभिता बभूवुः ॥ ७२ ॥

भीष्मके धनुषसे छूटे हुए अनेक बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाएं पूरित हो गईं। आकाश, दिशा, पृथ्वीका तलभाग और किरणधारी भगवान् सूर्य भी भीष्मके बाणोंसे ऐसे छिप गये, कि नेत्रसे दिखाई भी नहीं देते थे। उस समय प्रचण्ड वायु बहने लगी, सब दिशाएं धूएंसे युक्त होकर क्षुभित दीखने लगीं ॥ ७२ ॥

x

द्रोणो विकर्णोऽथ जयद्रथश्च भूरिश्रवाः कृतवर्मा कृपश्च ।
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा विन्दानुविन्दौ च सुदक्षिणश्च ॥ ७३ ॥
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे वसातयः क्षुद्रकमालवाश्च ।
किरीटिनं त्वरमाणाभिसस्रुर्निदेशगाः शान्तनवस्य राज्ञः ॥ ७४ ॥

द्रोणाचार्य, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, राजा अम्बष्ठपति, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण, पूर्वदेशीय वीर योद्धा, सौवीर देशीय योद्धा, सम्पूर्ण वसाति, क्षुद्रक और मालव देशके वीरलोग ये सभी शान्तनुनन्दन भीष्मकी आज्ञाके अनुसार शीघ्रताके सहित किरीटधारी अर्जुनके निकट युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित हुए ॥७३-७४॥

तं वाजिपादातरथौघजालैरनेकसाहस्रशतैर्ददर्श ।
किरीटिनं संपरिवार्यमाणं शिनेर्नप्ता वारणयूथपैश्च ॥ ७५ ॥

शिनिपौत्र सात्यकिने किरीटधारी अर्जुनको सैकडों तथा सहस्रों हाथी, घोडे, पदाति और रथियो सहित रथोंके बीच चारों ओरसे घिरा हुआ देखा । गजराज यूथपतियोंनें भी उन्हें सब ओरसे घेर रक्खा था ॥ ७५ ॥

ततस्तु दृष्ट्वार्जुनवासुदेवौ पदातिनागाश्वरथैः समन्तात् ।
अभिद्रुतौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ शिनिप्रवीरोऽभिससार तूर्णम् ॥ ७६ ॥

शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकि शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृष्ण अर्जुनको रथ, घोडे, हाथी और पैदलोंके बीचमें घिरा हुआ देखकर उनके निकट गये ॥ ७६ ॥

स तान्यनीकानि महाधनुष्माञ्शिनिप्रवीरः सहसाभिपत्य ।
चकार साहाय्यमथार्जुनस्य विष्णुर्यथा वृत्रनिषूदनस्य ॥ ॥ ७७ ॥

जिस प्रकारसे भगवान् विष्णु वृत्रासुरका नाश करनेवाले इन्द्रकी सहायता करते हैं, वैसे ही महाधनुर्धर शिनिवीर सात्यकि कौरवोंकी सेनाके बीचसे गमन करके अर्जुनकी सहायता करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ७७ ॥

विशीर्णनागाश्वरथध्वजौघं भीष्मेण वित्रासितसर्वयोधम् ।
युधिष्ठिरानीकमभिद्रवन्तं प्रोवाच संदृश्य शिनिप्रवीरः ॥ ७८ ॥

शिनिवंशके प्रमुखवीर सात्यकि युधिष्ठिरकी सेनाके हाथी, घोडे, रथ, और ध्वजाओंके सहित समुह तितर बितर होते हुए तथा भीष्मके भयसे सेनाको डरकर भागती हुई देखकर कहने लगे; ॥ ७८ ॥

क्व क्षत्रिया यास्यथ नैष धर्मः सतां पुरस्तात्कथितः पुराणैः ।
मा स्वां प्रतिज्ञां जहत प्रवीराः स्वं वीरधर्मं परिपालयध्वम् ॥ ७९ ॥
हे क्षत्रिय वीरो ! तुम लोग किधर जा रहे हो ? प्राचीन लोगोंने कहा है कि रणभूमिसे भागना उत्तम क्षत्रिय पुरुषोंका धर्म नहीं है । हे वीरपुरुषो ! तुम अपनी अपनी प्रतिज्ञाको क्यों परित्याग करते हो ? तुम लोग अपने वीरधर्मका पालन करो ॥ ७९ ॥

तान्वासवानन्तरजो निशम्य नरेन्द्रमुख्यान्द्रवतः समन्तात् ।
पार्थस्य दृष्ट्वा मृदुयुद्धतां च भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम् ॥ ८० ॥
अमृष्यमाणः स ततो महात्मा यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता ।
उवाच शैनेयमभिप्रशंसन्दृष्ट्वा कुरूनापततः समन्तात् ॥ ८१ ॥
सम्पूर्ण दशार्णगणके स्वामी महात्मा यशस्वी इन्द्रके छोटे भाई कृष्ण अर्जुनको इस भांति सरल कोमलताके साथ युद्ध करते और चारों ओर पाण्डवोंकी ओरके मुख्य मुख्य क्षत्रियोंको भागते, भीष्मके प्रज्वलित अग्निके समान सबको तपाते और कौरवोंकी सेनाके योद्धाओंको चारों ओरसे बढाते हुए चले आते देखकर क्रुद्ध होके सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे ॥ ८०–८१ ॥

ये यान्ति यान्त्वेव शिनिप्रवीर येऽपि स्थिताः सात्वत तेऽपि यान्तु ।
भीष्मं रथात्पश्य निपात्यमानं द्रोणं च संख्ये सगणं मयाद्य ॥ ८२ ॥
हे शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकि ! हे सात्वतरत्न जो लोग जाते हैं, वे जावें और जो लोग युद्धमें उपस्थित हैं, वे भी चले जावें, उन लोगोंके रहनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है । देखो, आज मैं अभी रणभूमिमें भीष्म और द्रोणाचार्यको उनके अनुयायियोंके सहित मारकर रथसे गिराता हूं ॥ ८२ ॥

नासौ रथः सात्वत कौरवाणां क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित् ।
तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य ॥ ८३ ॥
सात्वतवीर ! आज कौरवोंकी सेनामें कोई भी रथी पुरुष मेरे क्रोधके सम्मुख रणभूमिमें नहीं बच सकेगा । अब मैं अपना भयङ्कर चक्र ग्रहण करके महान् व्रतधारी भीष्मका प्राण–संहार करूंगा ॥ ८३ ॥

निहत्य भीष्मं सगणं तथाजौ द्रोणं च शैनेय रथप्रवीरम् ।
प्रीतिं करिष्यामि धनंजयस्य राज्ञश्च भीमस्य तथाश्विनोश्च ॥ ८४ ॥
सात्यकि ! महारथ भीष्म और द्रोणाचार्यको उनके रक्षक तथा अनुयायियोंके सहित मारकर राजा युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेवकी प्रीतिका कार्य सम्पन्न करूंगा ॥ ८४ ॥

निहत्य सर्वान्धृतराष्ट्रपुत्रांस्तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः ।
राज्येन राजानमजातशत्रुं संपादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः ॥ ८५ ॥

सब धृतराष्ट्र पुत्रोंको तथा और जितने मुख्य राजालोग उनके पक्षमें हैं, उन सब लोगोंका भी मैं आज संहार करके अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको हर्षके सहित सब राज्यका स्वामी बनाऊँगा ॥ ८५ ॥

ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावम् ।
क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान् ॥ ८६ ॥
संकम्पयन्गां चरणैर्महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम् ।
मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पः सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम् ॥ ८७ ॥

वसुदेव पुत्र महात्मा भगवान् श्री कृष्ण ऐसा कह, घोडोंकी लगाम छोडकर सहस्र वज्रके समान क्षुरधारसे युक्त सूर्यकी भांति प्रकाशमान चक्रको हाथमें घूमाते और रथसे कूदकर अपने पांवोंसे पृथ्वीको कंपाते हुए युद्धस्थलमें भीष्मकी ओर जाने लगे । जैसे अत्यन्त अहंकारी मतवारे गजराजको मारनेकी अभिलाषासे सिंह दौडता है, वैसे ही शत्रुनाशन कृष्ण भीष्मके वध करनेकी इच्छासे उनकी सेनाके बीचसे दौडकर जाने लगे ॥ ८६–८७ ॥

सोऽभ्यद्रवद्भीष्ममनीकमध्ये क्रुद्धो महेन्द्रावरजः प्रमाथी ।
व्यालम्बिपीतान्तपटश्चकाशे घनो यथा खेऽचिरभापिनद्धः ॥ ८८ ॥

देवराज इन्द्रके छोटे भाई श्री कृष्ण सब शत्रुओंका नाश करनेके लिए समर्थ थे । वे उस सेनाके बीचमें क्रोधित होकर भीष्मकी ओर बढे तब जैसे आकाशमण्डलमें बिजलीके तेजसे युक्त श्याम बादल शोभायमान लगता है, वैसे ही वह पीले वर्णके वस्त्रोंके उडनेसे शोभित होने लगे ॥ ८८ ॥

सुदर्शनं चास्य रराज शौरेस्तच्चक्रपद्मं सुभुजोरुनालम् ।
यथादिपद्मं तरुणार्कवर्णं रराज नारायणनाभिजातम् ॥ ८९ ॥

जिस प्रकारसे प्रातःकालीन सूर्यके समान वर्णवाला प्रथम पद्मपुष्प विष्णुकी नाभीसे उत्पन्न होकर प्रकाशित हुआ था, उसी भांतिसे श्री कृष्णका सुदर्शनचक्ररूपी पद्म उनके मनोहर और विशाल भुजमृणालपर शोभित होने लगा ॥ ८९ ॥

तत्कृष्णकोपोदयसूर्यबुद्धं क्षुरान्ततीक्ष्णाग्रसुजातपत्रम् ।
तस्यैव देहोरुसरःप्ररूढं रराज नारायणबाहुनालम् ॥ ९० ॥

वह चक्र-पद्म कृष्णके क्रोध रूपी सूर्यके उदयसे प्रफुल्लित हुआ तथा उसके क्षुरान्तसदृश अग्रभाग पद्मदलके रूपसे प्रकाशित हुए और भगवान् कृष्णका विशाल शरीर मानो उस भुजमृणाल सहित सरोवर रूपसे विराजित होने लगा ॥ ९० ॥

तमात्तचक्रं प्रणदन्तमुच्चैः क्रुद्धं महेन्द्रावरजं समीक्ष्य ।
सर्वाणि भूतानि भृशं विनेदुः क्षयं कुरूणामिति चिन्तयित्वा ॥ ९१ ॥
महेन्द्रके छोटे भाई कृष्णको क्रुद्ध, चक्रधारी और ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करता हुआ देखकर सम्पूर्ण प्राणी, यही अब कौरवके कुलका नाश हुआ ऐसा समझकर अत्यन्त ही विस्मित होके हाहाकार करने लगे ॥ ९१ ॥

स वासुदेवः प्रगृहीतचक्रः संवर्तयिष्यन्निव जीवलोकम् ।
अभ्युत्पतल्ँलोकगुरुर्बभासे भूतानि धक्ष्यन्निव कालवह्निः ॥ ९२ ॥
जैसे प्रलयाग्नि स्थावर जङ्गम जीवोंको भस्म करनेके निमित्त प्रकट होता है, वैसे ही सब लोकोंके स्वामी वसुदेवपुत्र महात्मा कृष्ण हाथमें चक्र ले सब प्राणी तथा लोकोंको जलानेवाली प्रलय-कालकी अग्निके सामन प्रज्वलित होके भीष्मके संमुख गमन करके प्रकाशित होने लगे ॥९२॥

तमापतन्तं प्रगृहीतचक्रं समीक्ष्य देवं द्विपदां वरिष्ठम् ।
असम्भ्रान्तकार्मुकबाणपाणी रथे स्थितः शांतनवोऽभ्युवाच ॥ ९३ ॥
धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ शान्तनुनन्दन भीष्म पुरुषोत्तम कृष्णदेवको हाथमें चक्र ग्रहण किये हुए अपनी ओर आते देखकर निर्भय-चित्तसे अपने धनुषबाणको हाथमें लिए हुए रथमें स्थित यह वचन कहने लगे ॥ ९३ ॥

एह्येहि देवेश जगन्निवास नमोऽस्तु ते शार्ङ्गरथाङ्गपाणे ।
प्रसह्य मां पातय लोकनाथ रथोत्तमाद् भूतशरण्य संख्ये ॥ ९४ ॥
आओ ! आओ ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! तुमको नमस्कार है; हे हाथमें धनुष चक्र धारण करनेवाले ! हे लोकोंके स्वामी ! हे प्राणीयोंको शरण देनेवाले ! तुम युद्धमें इस उत्तम रथसे बलपूर्वक मुझे मारकर पृथ्वीमें गिराओ ॥ ९४ ॥

त्वया हतस्येह ममाद्य कृष्ण श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके ।
संभावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाभियानात् ॥ ९५ ॥
हे कृष्ण ! आज यदि तुम मेरा वध करोगे, तो मेरी इस लोक और परलोकमें कीर्ति होगी । हे अन्धक और वृष्णिवंशियोंके स्वामी ! मैं तुम्हारे हाथसे मरनेसे ही मङ्गलसे युक्त होऊंगा; मेरा प्रभाव तीनों लोकमें विख्यात होगा ॥ ९५ ॥

रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान्पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम् ।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः ॥ ९६ ॥
भीष्म ऐसा ही कह रहे थे और कृष्ण वेगके सहित उनकी ओर चले जाते थे; यह देखकर विशालबाहु अर्जुन शीघ्रताके सहित रथसे उतरकर यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ कृष्णके पीछे अत्यन्त शीघ्रतासे दौडकर उनकी दोनों विशाल तथा उत्तम भुजाओंको पकड लिया ॥ ९६ ॥

निगृह्यमाणश्च तदादिदेवो भृशं सरोषः किल नाम योगी ।
आदाय वेगेन जगाम विष्णुर्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम् ॥ ९७ ॥
परन्तु आदिदेव योगी कृष्ण अत्यन्त ही क्रुद्ध थे, इस ही कारणसे वह अर्जुनसे पकडे जाने तथा निवारण किये जानेपर भी, जैसे प्रबल वायु एक वृक्षको आकर्षण करके उडा ले जाता है, वैसे ही वेगके सहित वे भगवान् विष्णु अर्जुनको आकर्षित करके भीष्मकी ओर शीघ्रताके सहित नौ पग गये ॥ ९७ ॥

पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम् ।
बलान्निजग्राह किरीटमाली पदेऽथ राजन्दशमे कथञ्चित् ॥ ९८ ॥
राजन् ! दशवें पदमें महात्मा किरीटधारी अर्जुनने भीष्मके निकट बडे वेगसे जाते हुए उनके दोनों चरणोंको बलपूर्वक ग्रहण किया और धीरे धीरे बलसे किसी भांति उन्हें रोक रक्खा ॥ ९८ ॥

अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली ।
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति गतिर्भवान्केशव पाण्डवानाम् ॥ ९९ ॥
कृष्णके खडे होनेपर सुवर्णका विचित्र हार पहने हुए अर्जुनने उनको नमस्कार किया और प्रसन्न होकर उनसे विनयपूर्वक कहने लगे । हे केशव ! तुम पाण्डवोंकी गति हो, इससे क्रोध त्याग करो ॥ ९९ ॥

न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च ।
अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां त्वयाहमिन्द्रानुज संप्रयुक्तः ॥ १०० ॥
हे पुरुषोत्तम कृष्ण ! मैं अपने पुत्र और भाइयोंकी शपथ करके कहता हूं, कि अपनी प्रतिज्ञाके अनुयायी कर्मको कभी परित्याग न करूंगा । उपेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञाके अनुसार मैं सब कौरवोंका नाश करूंगा ॥ १०० ॥

ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्मै जनार्दनः प्रीतमना निशम्य ।
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं सचक्रः पुनरारुरोह ॥ १०१ ॥
इसके अनन्तर जनार्दन कृष्ण अर्जुनकी प्रतिज्ञा और शपथको सुनकर हाथमें चक्र लिये हुए प्रसन्न चित्त होकर कौरव श्रेष्ठ अर्जुनके प्रिय साधन करनेके लिये पुनः उसके रथमें आरूढ हुए ॥ १०१ ॥

स तानभीषून्पुनराददानः प्रगृह्य शङ्खं द्विषतां निहन्ता ।
विनादयामास ततो दिशश्च स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥ १०२ ॥
और फिर शत्रुनाशन श्री कृष्णने घोडोंकी लगाम ग्रहण करके पाञ्चजन्य शङ्खको बजाकर उसके शब्दसे सब दिशाओंको पूरित कर दिया ॥ १०२ ॥

व्याविद्धनिष्काङ्गदकुण्डलं तं रजोविकीर्णाञ्चितपक्ष्मनेत्रम् ।
विशुद्धदंष्ट्रं प्रगृहीतशङ्खं विचुक्रुशुः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीराः ॥ १०३ ॥

कौरवोंके पक्षके सब वीरलोग चञ्चल निष्क अंगद और कुण्डलभूषित, धूलिसे पूरित शरीर, कमलनयन और शुद्ध दांतोंसे शोभायमान कृष्णको फिर युद्धके निमित्त शङ्खधारी देखकर ऊंचे स्वरसे आक्रोश करने लगे ॥ १०३ ॥

मृदङ्गभेरीपटहप्रणादा नेमिस्वना दुन्दुभिनिस्वनाश्च ।
ससिंहनादाश्च बभूवुरुग्राः सर्वेष्वनीकेषु ततः कुरूणाम् ॥ १०४ ॥

उन लोगोंकी सेनामें भी मृदंग, भेरी, पटह औरनगाडे बजने लगे; तथा रथोंकी पहियोंका शब्द होने लगा। उन सम्पूर्ण बाजोंका शब्द कौरवोंके वीरोंके सिंहनादके सङ्ग मिलकर महाघोर तुमुल शब्द हो गया ॥ १०४ ॥

गाण्डीवघोषः स्तनयित्नुकल्पो जगाम पार्थस्य नभो दिशश्च ।
जग्मुश्च बाणा विमलाः प्रसन्नाः सर्वा दिशः पाण्डवचापमुक्ताः ॥ १०५ ॥

इसके अनन्तर अर्जुनके गाण्डीव धनुषका शब्द बादलके समान सब दिशा तथा आकाशमण्डलमें व्याप्त हो गया और उनके धनुषसे छूटे हुए तेजबाण सब दिशाओंमें गमन करते दिखाई देने लगे ॥ १०५ ॥

तं कौरवाणामधिपो बलेन भीष्मेण भूरिश्रवसा च सार्धम् ।
अभ्युद्ययावुद्यतबाणपाणिः कक्षं दिधक्षन्निव धूमकेतुः ॥ १०६ ॥

उस समय कौरवराज दुर्योधन हाथमें धनुष बाण ग्रहण कर बडे वेगसे तृणको दहन करनेवाले धूमकेतुके समान भीष्म और भूरिश्रवाके सहित अर्जुनके सम्मुख आये ॥ १०६ ॥

अथार्जुनाय प्रजहार भल्लान्भूरिश्रवाः सप्त सुवर्णपुङ्खान् ।
दुर्योधनस्तोमरमुग्रवेगं शल्यो गदां शांतनवश्च शक्तिम् ॥ १०७ ॥

अनन्तर अर्जुनके ऊपर भूरिश्रवाने सुवर्ण पङ्खयुक्त सात भल्ल बाण, दुर्योधनने प्रचण्ड वेगवान् तोमर, शल्यने गदा और शान्तनुनन्द भीष्मने शक्ति चलाई ॥ १०७ ॥

स सप्तभिः सप्त शरप्रवेकान्संवार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान् ।
शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं क्षुरेण तत्तोमरमुन्ममाथ ॥ १०८ ॥

महाधनुर्द्धारी महात्मा वीर अर्जुनने भूरिश्रवाके चलाए हुए सात भल्ल सात बाणोंसे और दुर्योधनकी भुजासे छूटे हुए तोमरको एक चोखे क्षुरास्त्रसे काट डाला ॥ १०८ ॥

ततः शुभामापततीं स शक्तिं विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्ताम् ।
गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः ॥ १०९ ॥

तत्पश्चात् वीर अर्जुनने शान्तनुनन्दन भीष्मकी चलाई हुई वेगवान् बिजलीके समान प्रकाशित और शोभामयी शक्तिको एक बाण और मद्रराज शल्यकी भुजाओंसे मुक्त हुई गदाको एक बाणसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दी ॥ १०९ ॥

ततो भुजाभ्यां बलवद्विकृष्य चित्रं धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
माहेन्द्रमस्त्रं विधिवत्सुघोरं प्रादुश्चकाराद्भुतमन्तरिक्षे ॥ ११० ॥

इसके अनन्तर महाबलवान् अर्जुनने अप्रमेय शक्तिशाली विचित्र गाण्डीव धनुषको दोनों भुजाओंसे बलपूर्वक खींचकर अत्यन्त भयङ्कर माहेन्द्र अस्त्रको विधिपूर्वक आकाशमें प्रकट किया । वह अद्भुत अस्त्र अन्तरिक्षमें चमक उठा ॥ ११० ॥

तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा सर्वाण्यनीकानि महाधनुष्मान् ।
शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णैर्निवारयामास किरीटमाली ॥ १११ ॥

फिर किरीटधारी महात्मा धनुर्धर अर्जुन उस प्रबल अस्त्रको उत्पन्न करके झुण्डके झुण्ड निर्मल एवं अग्निवर्णवाले सुन्दर बाणोंके जालसे कौरवोंकी सम्पूर्ण सेनाको निवारण करने लगे ॥ १११ ॥

शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता रथान्ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून् ।
निकृत्य देहान्विविशुः परेषां नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्गमाणाम् ॥ ११२ ॥

अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए सब बाण शत्रुओंके रथ, ध्वजा, धनुष, वीरोंकी भुजाओंको काटते हुए राजाओं, गजों तथा घोडोंके शरीरमें प्रवेश करने लगे ॥ ११२ ॥

ततो दिशश्चानुदिशश्च पार्थः शरैः सुधारैर्निशितैर्वितत्य ।
गाण्डीवशब्देन मनांसि तेषां किरीटमाली व्यथयांचकार ॥ ११३ ॥

किरीटधारी अर्जुनने उत्तम पानीमें बुझे हुए चोखे बाणोंसे युद्धस्थलमें सब दिशाओं और कोणोंको पूरित कर और अपने गाण्डीव धनुषके शब्दसे शत्रुओंके अन्तःकरणको पीडित किया ॥ ११३ ॥

तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते शङ्खस्वना दुन्दुभिनिस्वनाश्च ।
अन्तर्हिता गाण्डिवनिस्वनेन बभूवुरुग्राश्च रणप्रणादाः ॥ ११४ ॥

उस महा घोर शस्त्रोंके युद्धमें गाण्डीव धनुषके शब्दसे शंख, नगाडे, अश्व और रथोंके पहियोंके भयंकर शब्द दबा गये ॥ ११४ ॥

गाण्डीवशब्दं तमथो विदित्वा विराटराजप्रमुखा नृवीराः ।
पाञ्चालराजो द्रुपदश्च वीरस्तं देशमाजग्मुरदीनसत्त्वाः ॥ ११५ ॥

तब उस गाण्डीव धनुषका शब्द पहचानकर राजा विराट आदि पुरुषसिंह और पाञ्चालराज द्रुपद निर्भयचित्तसे वहांपर युद्धके निमित्त आ पहुंचे ॥ ११५ ॥

सर्वाणि सैन्यानि तु तावकानि यतो यतो गाण्डिवजः प्रणादः ।
ततस्ततः संनतिमेव जग्मुर्न तं प्रतीपोऽभिससार कश्चित् ॥ ११६ ॥

तुम्हारे पक्षके सारे वीरोंने जहां जहांपर गाण्डीव धनुषके शब्दको सुना, वहां वहांपर ही शिथिल हो गये; उसके विरुद्ध होकर कोई भी युद्धके निमित्त आगे न बढे ॥ ११६ ॥

तस्मिन्सुघोरे नृपसंप्रहारे हताः प्रवीराः सरथाः ससूताः ।
गजाश्च नाराचनिपाततप्ता महापताकाः शुभरुक्मकक्ष्याः ॥ ११७ ॥
परीतसत्त्वाः सहसा निपेतुः किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः ।
दृढाहताः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन भल्लैर्निशितैः शिताग्रैः ॥ ११८ ॥

उस राजाओंके नाश करनेवाले महा घोर युद्धमें रथ, घोडे, सारथीके सहित वीरपुरुष और उत्तम सुवर्णके हौदे और पताकाओंसे युक्त हाथी अर्जुनके नाराच बाणोंसे कवच भिन्न होनेके कारण पीडित होके सहसा मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे। कुन्तीकुमार अर्जुनके भयंकर वेगवाले तीक्ष्ण पंखयुक्त निर्मल भल्ल बाणोंसे पीडित होकर कवच और शरीर विदीर्ण होकर कौरवोंके सैनिक सहसा मरकर गिर जाते थे ॥ ११७–११८ ॥

निकृत्तयन्त्रा निहतेन्द्रकीला ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु ।
पदातिसंघाश्च रथाश्च संख्ये हयाश्च नागाश्च धनंजयेन ॥ ११९ ॥
बाणाहतास्तूर्णमपेतसत्त्वा विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्याम् ।
ऐन्द्रेण तेनास्त्रवरेण राजन्महाहवे भिन्नतनुत्रदेहाः ॥ १२० ॥

सेनामें जिनके यंत्र कट गये और इन्द्रकील नष्ट हुए ऐसे सब राजाओंकी ध्वजा अर्जुनके महा वेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे कटकर गिरने लगी। हे राजन्! उस भयङ्कर युद्धमें अर्जुनके प्रबल ऐन्द्रास्त्रके प्रभावसे पैदल, रथ, घोडे और हाथीवाले सब वीर सत्त्वशून्य होकर कवचके सहित बाणोंसे कट कटके शीघ्र शीघ्र ही मरकर गात्रसंकोचकर पृथ्वीमें छिन्नभिन्न होकर गिरने लगे ॥ ११९–१२० ॥

ततः शरौघैर्निशितैः किरीटिना नृदेहशस्त्रक्षतलोहितोदा ।
नदी सुघोरा नरदेहफेना प्रवर्तिता तत्र रणाजिरे वै ॥ १२१ ॥

इसके अनन्तर उस रणभूमिमें किरीटधारी अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणसमूहोंद्वारा योद्धाओंके शरीरमें लगे हुए आघातसे निकलनेवाली महा घोर रुधिरकी नदी उत्पन्न होकर भयंकर रूपसे जिसमें मनुष्यके देह फेनके समान जान पडते थे। वेगके सहित बहने लगी ॥ १२१ ॥

×

वेगेन सातीव पृथुप्रवाहा प्रसुस्रुता भैरवारावरूपा ।
परेतनागाश्वशरीररोधा नरान्त्रमज्जाभृतमांसपङ्का ॥ १२२ ॥
प्रभूतरक्षोगणभूतसेविता शिरःकपालाकुलकेशशाद्वला ।
शरीरसंघातसहस्रवाहिनी विशीर्णनानाकवचोर्मिसंकुला ॥ १२३ ॥
नराश्वनागास्थिनिकृत्तशर्करा विनाशपातालवती भयावहा ।
तां कङ्कमालावृतगृध्रकङ्कैः क्रव्यादसंघैश्च तरक्षुभिश्च ॥ १२४ ॥

अर्जुनके बाणोंसे कटे हुए पुरुषोंके शरीरका रुधिर ही उस नदीका जल, मनुष्योंका मेद फेन, मरे हुए हाथी घोडोंका शरीर उसके तीर, राजाओंके मज्जा और मांस उस नदीके पङ्क, मनुष्योंके केशयुक्त शिर उसके भंवर, नाना भांतिके विचित्र कवच उसकी तरङ्ग, मनुष्य, हाथी, घोडोंकी हड्डिएं उसके बालू तथा पत्थरके किनके हुए और वह पातालको भी डुबानेवाली भयंकर नदी अनेक राक्षस तथा भूत प्रेतोंसे सेवित तथा रक्षित होकर बहने लगी। सियार, भेडिये, गिद्ध बगुला आदि मांस भक्षण करनेवाले जीव उसके किनारे भ्रमण करने लगे ॥ १२२–१२४ ॥

उपेतकूलां ददृशुः समन्तात्क्रूरां महावैतरणीप्रकाशाम् ।
प्रवर्तितामर्जुनबाणसंघैर्मेदोवसासृक्प्रवहां सुभीमाम् ॥ १२५ ॥

सब पुरुष अर्जुनके बाणोंके प्रभावसे उत्पन्न हुई उस रुधिर, मांस और चर्बीयुक्त बहनेवाली महा भयंकर नदीको वैतरणीकी भांति देखने लगे ॥ १२५ ॥

ते चेदिपाञ्चालकरूषमत्स्याः पार्थाश्च सर्वे सहिताः प्रणेदुः ।
वित्रास्य सेनां ध्वजिनीपतीनां सिंहो मृगाणामिव यूथसंघान् ।
विनेदतुस्तावतिहर्षयुक्तौ गाण्डीवधन्वा च जनार्दनश्च ॥ १२६ ॥

महाराज ! चेदी, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और पाण्डव आदि सम्पूर्ण वीरलोग सहसा सिंहनाद करने लगे। गाण्डीवधनुषको धारण करनेवाले अर्जुन और कृष्ण भी हर्षके सहित सिंह जैसे मृगोंके समूहको भयभीत करता है, वैसे ही कौरवोंके सेनापतियोंकी सेनाको भयसे विकल करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ १२६ ॥

ततो रविं संहृतरश्मिजालं दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः ।
तदैन्द्रमस्त्रं विततं सुघोरमसह्यमुद्वीक्ष्य युगान्तकल्पम् ॥ १२७ ॥
अथापयानं कुरवः सभीष्माः सद्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च ।
चक्रुर्निशां सन्धिगतां समीक्ष्य विभावसोर्लोहितराजियुक्ताम् ॥ १२८ ॥

इसके अनन्तर शस्त्रोंसे आघातके अत्यन्त ही क्षत विक्षत शरीरसे भीष्म, द्रोणाचार्य, दुर्योधन और बाह्लिक आदि कौरवपक्षीय वीरोंने सूर्यको अस्त होता हुआ और अर्जुनके कालदण्डके समान उस भयङ्कर ऐन्द्रास्त्रको न सहने योग्य देखकर सूर्यकी लालीसे युक्त संध्या एवं निशाके आरंभकालका अवलोकन कर अपनी सेनाको युद्धसे निवृत किया ॥ १२७–१२८ ॥

अवाप्य कीर्तिं च यशश्च लोके विजित्य शत्रूंश्च धनञ्जयोऽपि ।
ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च समाप्तकर्मा शिबिरं निशायाम् ।
ततः प्रजज्ञे तुमुलः कुरूणां निशामुखे घोरतरः प्रणादः ॥ १२९ ॥

अर्जुन भी युद्धमें शत्रुओंको मर्दन करके सुयशयुक्त और सुकीर्तियुक्त होके सूर्यको अस्त होता देखकर सब राजाओं तथा सहोदर भाइयोंके सहित सन्ध्याके समय अपने शिबिरमें गये । इसके अनन्तर उस रात्रिके समय कौरवोंकी सेनामें महाघोर तुमुल शब्द होने लगा ॥१२९॥

रणे रथानामयुतं निहत्य हता गजाः सप्तशतार्जुनेन ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे निपातिताः क्षुद्रकमालवाश्च ।
महत्कृतं कर्म धनञ्जयेन कर्तुं यथा नार्हति कश्चिदन्यः ॥ १३० ॥

वे आपसमें कहने लगे आज अर्जुनने दश हजार रथियोंको मारकर सात सौ हाथियोंका संहार किया है और प्राच्य, सौवीर, क्षुद्रक और मालवदेशीय सभी वीरोंका वध किया । अर्जुनने जो आज बहुत बडा पराक्रम किया है, वैसा कर्म दूसरे किसीको भी करनेका सामर्थ्य नहीं है ॥ १३० ॥

श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ।
द्रोणः कृपः सैन्धवबाह्लिकौ च भूरिश्रवाः शल्यशलौ च राजन् ।
स्वबाहुवीर्येण जिताः सभीष्माः किरीटिना लोकमहारथेन ॥ १३१ ॥

हे महाराज ! श्रुतायु, राजा अम्बष्ठपति, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, जयद्रथ, बाह्लिक, भूरिश्रवा, शल्य और शल ये तथा दूसरे सैकडों वीर योद्धा भीष्मके सहित युद्धमें इकठे होनेपर भी पाण्डवोंके एक लोक महारथी, किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुन ही ने उन सबको अपने बाहुबलसे पराजित किया है ॥ १३१ ॥

इति ब्रुवन्तः शिबिराणि जग्मुः सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ।
उल्कासहस्रैश्च सुसम्प्रदीप्तैर्विभ्राजमानैश्च तथा प्रदीपैः ।
किरीटिवित्रासितसर्वयोधा चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम् ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ २२७२ ॥

भारत ! ऐसे ही वचन कहते हुए तुम्हारी सेनाके सब योद्धालोग अपने अपने शिबिरोंमें विश्रामके लिए गये । कुरुसेनाके सम्पूर्ण वीर लोगोंने अर्जुनके भयसे विकल होके सहस्रों लुक तथा दीपक जलाकर अपने शिबिरोंमें प्रवेश किया ॥ १३२ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ २२७२ ॥

: ५६ :

सञ्जय उवाच

व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा ।
ययौ सपत्नान्प्रति जातकोपो वृत्तः समग्रेण बलेन भीष्मः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! महामना भीष्मने रात्रिके बीतनेपर सवेरे ही सब भरतवंशियोंकी सेनाके अग्रभागमें स्थित होकर समग्र सेनाके सहित शत्रुओंके विरुद्ध युद्धके निमित्त यात्रा की। उस समय महात्मा भीष्म क्रोधसे युक्त थे ॥ १ ॥

तं द्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ।
जयद्रथश्चातिबलो बलौघैर्नृपास्तथान्येऽनुययुः समन्तात् ॥ २ ॥

द्रोणाचार्य, दुर्योधन, बाह्लिक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, महाबलवान् जयद्रथ और दूसरे सब राजाओंने विशाल सैन्यके साथ युद्ध करनेके निमित्त भीष्मके सङ्ग गमन किया ॥ २ ॥

स तैर्महद्भिश्च महारथैश्च तेजस्विभिर्वीर्यवद्भिश्च राजन् ।
रराज राजोत्तम राजमुख्यैर्वृतः स देवैरिव वज्रपाणिः ॥ ३ ॥

हे राजश्रेष्ठ ! जैसे देवतोंके राजा वज्रधारी इन्द्र देवताओंके बीच शोभायमान होते हैं; वैसे ही राजा दुर्योधन भी पराक्रमी तेजस्वी बडे बडे तथा महारथी प्रधान राजाओंके बीच विराजमान हुए ॥ ३ ॥

तस्मिन्ननीकप्रमुखे विषक्ता दोधूयमानाश्च महापताकाः ।
सुरक्तपीतासितपाण्डुराभा महागजस्कन्धगता विरेजुः ॥ ४ ॥

उस महासेनाके प्रमुख भागमें बडे बडे हाथियोंके कन्धेपर लगी हुई, लाल, पीली, काली और पाण्डुरवर्णकी फहराती हुई विशाल पताकाएं शोभा पा रही थीं ॥ ४ ॥

सा वाहिनी शान्तनवेन राज्ञा महारथैर्वारणवाजिभिश्च ।
बभौ सविद्युत्स्तनयित्नुकल्पा जलागमे द्यौरिव जातमेघा ॥ ५ ॥

वह सब सेना महारथ शान्तनुनन्दन भीष्म और बडे बडे रथ, हाथी और घोडोंसे युक्त होकर वर्षाकालमें मेघोंकी घटासे आच्छादित आकाश बिजलीके सहित बादलोंकी भांति शोभित होने लगी ॥ ५ ॥

ततो रणायाभिमुखी प्रयाता प्रत्यर्जुनं शान्तनवाभिगुप्ता ।
सेना महोग्रा सहसा कुरूणां वेगो यथा भीम इवापगायाः ॥ ६ ॥

इसके अनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्मसे रक्षित वह कौरवोंकी वह अत्यन्त भयंकर सेना शीघ्र ही अर्जुनसे युद्ध करनेके निमित्त नदीके भयङ्कर वेगके समान गमन करने लगी ॥ ६ ॥

तं व्यालनानाविधगूढसारं गजाश्वपादातरथौघपक्षम् ।
व्यूहं महामेघसमं महात्मा ददर्श दूरात्कपिराजकेतुः ॥ ७ ॥
व्याल अर्थात् हाथी, घोडे, रथ और पदातियोंसे युक्त पक्षके सहित उस व्याल व्यूहको महामना कपिध्वज अर्जुनने दूरहींसे अवलोन किया। व्याल नामक व्यूहमें बद्ध होनेके कारण कौरवसेना अनेक प्रकारकी दिखाई देती थी। सेनाका वह व्यूह महान् मेघघटाके समान जान पडता था ॥ ७ ॥

स निर्ययौ केतुमता रथेन नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः ।
वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा वधे धृतः सर्वसपत्नयूनाम् ॥ ८ ॥
तदनन्तर पुरुषश्रेष्ठ महात्मा अर्जुनने अपनी सेनाके सहित सफेद घोडोंसे जुते हुए ध्वज और आवरणसे युक्त रथपर चढके सेनाके आगे होकर शत्रुओंके सब युवा पुरुषोंके वधकी इच्छासे शत्रुओंकी ओर गमन किया ॥ ८ ॥

सूपस्करं सोत्तरबन्धुरेषं यत्तं यदूनामृषभेण संख्ये ।
कपिध्वजं प्रेक्ष्य विषेदुराजौ सहैव पुत्रैस्तव कौरवेयाः ॥ ९ ॥
तुम्हारे पुत्रोंके सहित सब कौरवलोग अर्जुनके सर्व साहित्य सुंदरतासे सजाकर युक्त, जिसकी ईर्षा अच्छी तरह बंधी होनेके कारण अत्यन्त मनोरम दिखती है। जिसकी ध्वजामें कपि है, ऐसे उत्तम रथ और उनके सारथी यदुकुलतिलक श्री कृष्णको युद्धमें उपस्थित देखकर उत्साह रहित हो गये ॥ ९ ॥

प्रकर्षता गुप्तमुदायुधेन किरीटिना लोकमहारथेन ।
तं व्यूहराजं ददृशुस्त्वदीयाश्चतुश्चतुर्व्यालसहस्रकीर्णम् ॥ १० ॥
पाण्डवोंका जो व्यूह बनाया गया, उसके प्रत्येक दिशाके स्थलमें चार चार हजार मतवाले हाथी थे। ऐसे व्याल व्यूहकी लोकमें विख्यात महारथी किरीटधारी अर्जुन शस्त्र धारण करके रक्षा करते थे; तुम्हारी ओरके सब वीर उस व्यूहको देखने लगे ॥ १० ॥

यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराज्ञा व्यूहः कृतः कौरवनन्दनेन ।
तथा तथोद्देशमुपेत्य तस्थुः पाञ्चालमुख्यैः सह चेदिमुख्याः ॥ ११ ॥
कौरवनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरने पहिले दिन जैसा व्यूह तैयार किया था उस भांतिका वह भी था। इसके अनन्तर सेनापतिकी आज्ञाके अनुसार श्रेष्ठ चेदिवीर मुख्य मुख्य पाञ्चाल वीरोंके सहित अपने अपने स्थानपर खडे हुए ॥ ११ ॥

ततो महावेगसमाहतानि भेरीसहस्राणि विनेदुराजौ ।
शङ्खस्वना दुन्दुभिनिस्वनाश्च सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः ॥ १२ ॥
और रणभूमिमें सम्पूर्ण सेनाके बीच सहस्रों रणभेरियां एक साथ जोरसे बज उठीं। वैसे ही सभी सेनामें शंख, दुंदुभि आदि बाजोंके सङ्ग वीरोंके सिंहनादका शब्द होने लगा ॥ १२ ॥

ततः सबाणानि महास्वनानि विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः ।
क्षणेन भेरीपणवप्रणादानन्तर्दधुः शङ्खमहास्वनाश्च ॥ १३ ॥
अनन्तर क्षण ही भरके बाद वीरोंके द्वारा खींचे जानेवाले बाणसहित धनुष चढानेके शब्द तथा सङ्खकी ध्वनिसे भेरी, प्रणव आदि बाजोंका शब्द छिप गया ॥ १३ ॥

तच्छङ्खशब्दावृतमन्तरिक्षमुद्धूतभौमद्रुतरेणुजालम् ।
महावितानावततप्रकाशमालोक्य वीराः सहसाभिपेतुः ॥ १४ ॥
उस समय शंखके शब्दसे युक्त आकाश वीरोंके पांवकी धूलिसे पूरित होनेके कारण बडे छतसे छाये हुएके समान दीखने लगा । तब महान् प्रभावशाली वीरलोग चिन्ह और सूर्यदेवका प्रकाश देखकर आगे बढने लगे ॥ १४ ॥

रथी रथेनाभिहतः ससूतः पपात साश्वः सरथः सकेतुः ।
गजो गजेनाभिहतः पपात पदातिना चाभिहतः पदातिः ॥ १५ ॥
अनन्तर सारथी, घोडे, रथ और ध्वजाके सहित रथी रथियोंसे, हाथी हाथीसे और पैदल चलनेवाले वीर पैदल योद्धाओंसे लडकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १५ ॥

आवर्तमानान्यभिवर्तमानैर्बाणैः क्षतान्यद्भुतदर्शनानि ।
प्रासैश्च खड्गैश्च समाहतानि सदश्ववृन्दानि सदश्ववृन्दैः ॥ १६ ॥
युद्ध करनेवाले उत्तम उत्तम सवार लोग अच्छे घुडसवारोंके प्रास और तलवारकी चोटसे घायल होकर अद्भुतरूपसे भयङ्कर मूर्ति होकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १६ ॥

सुवर्णतारागणभूषितानि शरावराणि प्रहितानि वीरैः ।
विदार्यमाणानि परश्वधैश्च प्रासैश्च खड्गैश्च निपेतुरुर्व्याम् ॥ १७ ॥
सुवर्णयुक्त अनेक तारोंसे भूषित सूर्यके समान प्रकाशित ढाल, परशु, प्रास और तलवारोंकी चोटसे कटकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १७ ॥

गजैर्विषाणैर्वरहस्तरुग्णाः केचित्ससूता रथिनः प्रपेतुः ।
गजर्षभाश्चापि रथर्षभेण निपेतिरे बाणहताः पृथिव्याम् ॥ १८ ॥
बहुतसे रथी सारथीके सहित दन्तार हाथीयोंके दांत और सूंडोंसे पीडित हुए तथा बडे बडे हाथी भी रथियोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंके बाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ १८ ॥

गजौघवेगोद्धतसादितानां श्रुत्वा निषेदुर्वसुधा मनुष्याः ।
आर्तस्वरं सादिपदातियूनां विषाणगात्रावरताडितानाम् ॥ १९ ॥
कितने ही घुडसवार और पैदल वीर युवक हाथीयोंके समूहके वेगके बीचमें पडकर उनके पांव और सूंडसे पीडित होके अनेक स्थानोंमें आर्तनाद करने लगे। मनुष्य लोग उस आर्तनादको सुनकर दुःखित हो गये ॥ १९ ॥

संभ्रान्तनागाश्वरथे प्रसूते महाभये सादिपदातियूनाम् ।
महारथैः संपरिवार्यमाणं ददर्श भीष्मः कपिराजकेतुम् ॥ २० ॥

इसी प्रकारसे सब सवार और पैदल चलनेवाले वीरोंका अत्यन्त ही नाश हो रहा था और हाथी, घोडे तथा रथी भयसे आतुर हो रहे थे; उस ही समयमें महारथ वीरोंके बीचमें स्थित श्रेष्ठ महात्मा भीष्मने कपिराजकेतुवाले अर्जुनको देखा ॥ २० ॥

तं पञ्चतालोच्छ्रिततालकेतुः सदश्ववेगोद्धतवीर्ययातः ।
महास्त्रबाणाशनिदीप्तमार्गं किरीटिनं शांतनवोऽभ्यधावत् ॥ २१ ॥

जिस भीष्मका रथ पांच तालवृक्षके समान ऊंची ताल ध्वजासे युक्त और उत्तम घोडोंके वेगसे अद्भुत पराक्रमसे युक्त हुआ है। ऐसे रथपर आरूढ हुए शान्तनुपुत्र भीष्मने देखा, कि किरीटधारी अर्जुनके महा अस्त्रोंका वेग वज्रके समान प्रकाशित हो रहा है, यह देखकर भीष्म अर्जुनके संमुख हुए ॥ २१ ॥

तथैव शक्रप्रतिमानकल्पमिन्द्रात्मजं द्रोणमुखाभिसस्रुः ।
कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन् ॥ २२ ॥

राजन् ! उसी प्रकार उस इन्द्रतुल्य प्रभावशाली इन्द्रपुत्र अर्जुनके संमुख कृपाचार्य, शल्य, विविंशति, दुर्योधन और सोमदत्तके पुत्रने द्रोणाचार्यको आगे करके गमन किया ॥ २२ ॥

ततो रथानीकमुखादुपेत्य सर्वास्त्रवित्काञ्चनचित्रवर्मा ।
जवेन शूरोऽभिससार सर्वांस्तथार्जुनस्यात्र सुतोऽभिमन्युः ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर पराक्रमी, सब शस्त्रोंके जाननेवाले, सुवर्णमय विचित्र वर्मको धारण करनेवाले, अर्जुनके पुत्र अभिमन्युका श्रेष्ठ रथ सेनासे निकलकर वेगके सहित उन सब कौरव लोगोंसे युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥

तेषां महास्त्राणि महारथानामसक्तकर्मा विनिहत्य कार्ष्णिः ।
बभौ महामन्त्रहुतार्चिमाली सदोगतः सन्भगवानिवाग्निः ॥ २४ ॥

कठिन कर्म करनेवाला अभिमन्यु कृपाचार्य आदि उन महाबली वीरोंके महा अस्त्रोंको विशेषरूपसे निवारण करके यज्ञमण्डपमें महामन्त्रसे हविष्यकी आहुति पाकर उत्पन्न हुई ज्वालामालाओंसे अलंकृत शिखासे युक्त वेदीकी अग्निके समान प्रकाशित होने लगा ॥ २४ ॥

ततः स तूर्णं रुधिरोदफेनां कृत्वा नदीं वैशसने रिपूणाम् ।
जगाम सौभद्रमतीत्य भीष्मो महारथं पार्थमदीनसत्त्वः ॥ २५ ॥

अनन्तर महा पराक्रमी भीष्मने शत्रुओंकी सेनाके वीरोंको मार उनके रुधिररूपी जल एवं फेनसे नदी बहाकर शीघ्रतापूर्वक अभिमन्युको अतिक्रमकर महारथ अर्जुनके समीप जाकर उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

ततः प्रहस्याद्भुतदर्शनेन गाण्डीवनिर्ह्रादमहास्वनेन ।
विपाठजालेन महास्त्रजालं विनाशयामास किरीटमाली ॥ २६ ॥

अनन्तर कठिन कर्म करनेवाले किरीटधारी महात्मा अर्जुनने हंसते हुए अद्भुत रूपवाले गाण्डीव धनुषके महा घोर टङ्कारके सहित अपने विपाठ नामक बाणोंको चलाकर भीष्मके चलाये हुए महा अस्त्रोंका संहार किया ॥ २६ ॥

तमुत्तमं सर्वधनुर्धराणामसक्तकर्मा कपिराजकेतुः ।
भीष्मं महात्माभिववर्ष तूर्णं शरौघजालैर्विमलैश्च भल्लैः ॥ २७ ॥

और फिर अप्रतिहत पराक्रमवाले महामना कपिध्वज अर्जुन सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ भीष्मके ऊपर तुरंत ही उत्तम भल्ल बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥

एवंविधं कार्मुकभीमनादमदीनवत्सत्पुरुषोत्तमाभ्याम् ।
ददर्श लोकः कुरुसृञ्जयाश्च तद्द्वैरथं भीष्मधनञ्जयाभ्याम् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ २४०१ ॥

कौरव, सञ्जय और दूसरे सब लोग सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीष्म और अर्जुनका इसी प्रकारसे धनुषोंकी भयंकर टंकारसे युक्त, दैन्यरहित, प्रबल शस्त्रों तथा भयंकर सिंहनादके सहित द्वैरथ युद्ध देखने लगे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ २४०१ ॥

: ५७ :

सञ्जय उवाच

द्रौणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिष ।
पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं समयोधयन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और सांयमनिके पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः ।
पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा ॥ २ ॥

सब पुरुष उस एक अत्यन्त तेजस्वी बालकको उन पांच पुरुषसिंहोंके बीच मानो पांच हाथियोंके संग एक सिंहका बच्चा भिडा हुआ हो, उसके समान देखने लगे ॥ २ ॥

नाभिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे ।
बभूव सदृशः कार्ष्णेर्नास्त्रे नापि च लाघवे ॥ ३ ॥

लक्ष्यवेध, वीरता, पराक्रम और अस्त्र चलानेकी फुर्त्ती आदि किसी युद्ध कर्ममें कोई अर्जुनपुत्र अभिमन्युके समान न हुआ ॥ ३ ॥

तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिंदमम्।
दृष्ट्वा पार्थो रणे यत्तः सिंहनादमथोऽनदत् ॥ ४ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुन शत्रुनाशन निजपुत्र अभिमन्युको युद्धमें प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त पराक्रम प्रकाशित करते हुए देखकर सिंहनाद करने लगे ॥ ४ ॥

पीडयानं च तत्सैन्यं पौत्रं तव विशां पते।
दृष्ट्वा त्वदीया राजेन्द्र समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! हे राजेन्द्र ! तुम्हारी ओरके वीरोंने आपके पौत्र अभिमन्युको सेनाका नाश करता हुआ देखकर उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ५ ॥

ध्वजिनीं धार्तराष्ट्राणां दीनशत्रुरदीनवत्।
प्रत्युद्ययौ स सौभद्रस्तेजसा च बलेन च ॥ ६ ॥

जिसके शत्रु सदा दीनताको प्राप्त होते हैं वह सुभद्राकुमार अभिमन्यु निर्भय चित्तसे अपने तेज और बलको दिखाते हुए उन लोगोंसे युद्ध करने लगा ॥ ६ ॥

तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम्।
व्यदृश्यत महच्चापं समरे युध्यतः परैः ॥ ७ ॥

रणभूमिमें शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेके समय हाथकी फुर्तीके कारण उसका विशाल धनुष सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ ७ ॥

स द्रौणिमिषुणैकेन विद्ध्वा शल्यं च पञ्चभिः।
ध्वजं सांयमनेश्चापि सोऽष्टाभिरपवर्जयत् ॥ ८ ॥

उसने अश्वत्थामाको एक और शल्यको पांच बाणोंसे विद्ध करके सांयमनिके रथकी ध्वजा आठ बाणोंसे काटकर गिरा दी ॥ ८ ॥

रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना।
शितेनोरगसंकाशां पत्रिणा विजहार ताम् ॥ ९ ॥

सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाने सुवर्ण दण्डसे युक्त सर्पके समान एक शक्ति चलाई; अभिमन्युने एक शाणित बाणसे उसे काटकर गिरा दिया ॥ ९ ॥

शल्यस्य च महाघोरानस्यतः शतशः शरान्।
निवार्यार्जुनदायादो जघान समरे हयान् ॥ १० ॥

शल्यने सैकडों महा घोर बाण अभिमन्युके ऊपर चलाये, अभिमन्युने अपने बाणोंसे शल्यके बाणोंको निवारण करके उनके घोडोंको युद्धमें मार डाला ॥ १० ॥

×

भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः ।
नाभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णेर्बाहुबलाश्रयात् ॥ ११ ॥

भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, सांयमनि–पुत्र और शल्य, ये सब लोग अत्यन्त क्रोधमें भरे होकर भी अभिमन्युके बाहुबलको सहनेमें असमर्थ हो गये ॥ ११ ॥

ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः ।
पञ्चत्रिंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ १२ ॥
धनुर्वेदविदो मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि ।
सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम् ॥ १३ ॥

हे राजेन्द्र ! तब धनुषविद्याके जाननेवाले, शत्रुओंसे युद्धमें अजेय, सब अस्त्रोंके जाननेवाले त्रिगर्त्त, मद्र और केकयदेशीय पैंतीस हजार योद्धाओंने आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञासे शत्रुओंको मारनेकी इच्छासे पुत्रके सहित किरीटधारी अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १२–१३ ॥

तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ रथर्षभौ ।
ददर्श राजन्पाञ्चाल्यः सेनापतिरमित्रजित् ॥ १४ ॥
स वारणरथौघानां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ।
वाजिभिः पत्तिभिश्चैव वृतः शतसहस्रशः ॥ १५ ॥
धनुर्विस्फार्य संक्रुद्धश्चोदयित्वा वरूथिनीम् ।
ययौ तन्मद्रकानीकं केकयांश्च परंतपः ॥ १६ ॥

हे राजन् ! पाञ्चाल राजकुमार शत्रुनाशन पाण्डवोंके सेनापति धृष्टद्युम्नने पितापुत्र महारथ अर्जुन और अभिमन्युको शत्रुसेनासे घिरे हुए देखकर कई हजार हाथी, रथोंके समूह, सौ सौ हजार पैदल वीर और घुडसवारोंकी विशाल सेना लेकर क्रोधपूर्वक धनुष खींचते हुए उन मद्रदेशीय तथा केकयदेशीय वीरोंसे युद्ध करनेके निमित्त यात्रा की ॥ १४–१६ ॥

तेन कीर्तिमता गुप्तमनीकं दृढधन्वना ।
प्रयुक्तरथनागाश्वं योत्स्यमानमशोभत ॥ १७ ॥

रथ, हाथी और घोडोंसे युक्त वह सेना कीर्तिमान् दृढधनुषधारी धृष्टद्युम्नसे रक्षित और युद्धके निमित्त गमन करती हुई अत्यन्त शोभायमान होने लगी ॥ १७ ॥

सोऽर्जुनं प्रमुखे यान्तं पाञ्चाल्यः कुरुनन्दन ।
त्रिभिः शारद्वतं बाणैर्जत्रुदेशे समर्पयत् ॥ १८ ॥

हे कुरुनन्दन ! कृपाचार्यको अर्जुनके समीप गमन करता हुआ देखकर धृष्टद्युम्नने तीन बाण उनकी पसलीमें मारे ॥ १८ ॥

ततः स मद्रकान्हत्वा दशभिर्दशभिः शरैः ।
हृष्ट एको जघानाश्वं भल्लेन कृतवर्मणः ॥ १९ ॥

तिसके अनन्तर धृष्टद्युम्नने दस मद्रक वीरोंको दस बाणोंसे विद्ध करके शीघ्रताके सहित कृतवर्माके पृष्ठरक्षकको एक भल्लसे मार डाला ॥ १९ ॥

दमनं चापि दायादं पौरवस्य महात्मनः ।
जघान विपुलाग्रेण नाराचेन परंतपः ॥ २० ॥

अनन्तर महात्मा पौरवोंके दायाद दमनको शत्रुओंको संताप देनेवाला पाण्डव सेनापतिने चोखे नाराच बाणोंसे मारा ॥ २० ॥

ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ।
अविध्यत्त्रिंशता बाणैर्दशभिश्चास्य सारथिम् ॥ २१ ॥

अनन्तर सांयमनि–पुत्रने युद्धदुर्मद धृष्टद्युम्नको तीस बाणोंसे विद्ध करके उनके सारथीको भी दस बाणोंने विद्ध किया ॥ २१ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन निचकर्तास्य कार्मुकम् ॥ २२ ॥

महाधनुपधारी धृष्टद्युम्न सांयमनि पुत्रके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर अपने मुंहके दोनों कोनोंको चाटते हुए क्रोधसे युक्त हो एक तीक्ष्ण भल्लसे उनका धनुष काट डाला ॥ २२ ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या क्षिप्रमेव समर्पयत् ।
अश्वांश्चास्यावधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥ २३ ॥

और राजन् ! उन्होंने शीघ्रताके सहित शलपुत्रके ऊपर पच्चीस बाण चलाये; अनन्तर धृष्ट-द्युम्नने उसके घोडे, पृष्ठरक्षक और सारथीको मार डाला ॥ २३ ॥

स हताश्वे रथे तिष्ठन्ददर्श भरतर्षभ ।
पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥ २४ ॥

हे भारत ! सांयमनिपुत्रने घोडोंसे रहित रथपर ही स्थित होके यशस्वी द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नकी ओर देखा ॥ २४ ॥

स संगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् ।
पदातिस्तूर्णमभ्यर्छद्रथस्थं द्रुपदात्मजम् ॥ २५ ॥

और पुरुषश्रेष्ठ शलपुत्र शीघ्र ही महा भयानक लोहमयी बडी तलवार हाथसे ग्रहण करके पैदल ही रथपर बैठे हुए द्रुपद राजकुमार धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे ॥ २५ ॥

तं महौघमिवायान्तं खात्पतन्तमिवोरगम् ।
भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं कालोत्सृष्टमिवान्तकम् ॥ २६ ॥
दीप्यन्तमिव शस्त्राचर्या मत्तवारणविक्रमम् ।
अपश्यन्पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २७ ॥

पाण्डवगण और धृष्टद्युम्न शलपुत्रको मतवारे हाथीके समान पराक्रमशील, शस्त्रमें प्रकाशित, काल–प्रेरित यमराज और आकाशसे उडते हुए महासर्पके समान और खड्ग घुमाते तथा महावेगके सहित आते हुए देखने लगे ॥ २६–२७ ॥

तस्य पाञ्चालपुत्रस्तु प्रतीपमभिधावतः ।
शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरावरणधारिणः ॥ २८ ॥
बाणवेगमतीतस्य रथाभ्याशमुपेयुषः ।
त्वरन्सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥ २९ ॥

उत्तम पानीमें बुझाई हुई शाणित तलवार और हाथमें ढाल लिये विरुद्ध दिशासे दौडते हुए, शत्रुओंके बाणोंका वेग अतिक्रम करके रथके समीप पहुंचते ही सेनापति धृष्टद्युम्नने क्रुद्ध होकर गदासे उसके शिरको टुकडे टुकडे कर दिया ॥ २८–२९ ॥

तस्य राजन्सनिस्त्रिंशं सुप्रभं च शरावरम् ।
हतस्य पततो हस्ताद्वेगेन न्यपतद्भुवि ॥ ३० ॥

हे राजन् ! उनके मरते ही वह प्रकाशित ढाल और तलवार उनके हाथसे छूटकर वेगपूर्वक पृथ्वीमें गिरी और उनका शरीर भी पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ३० ॥

तं निहत्य गदाग्रेण लेभे स परमं यशः ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य महात्मा भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥

महापराक्रमी पाञ्चालराज-पुत्र महात्मा धृष्टद्युम्नने गदाके अग्रभागसे उसका वध करके परम आनंद पाया ॥ ३१ ॥

तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे ।
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ ३२ ॥

आर्य ! उस महाधनुर्द्धर महारथ राजपुत्रके मारे जानेपर तुम्हारी सेनामें महा हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३२ ॥

ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ॥ ३३ ॥

अनन्तर सांयमनि अपने पुत्रको मरा हुआ देखकर क्रोधपूर्वक युद्धदुर्मद पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्नकी ओर वेगसे दौडे ॥ ३३ ॥

तौ तत्र समरे वीरौ समेतौ रथिनां वरौ ।
ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पाण्डवास्तथा ॥ ३४ ॥

और कौरव तथा पाण्डव दोनों पक्षोंके सर्व भूपालके सम्मुख ही वे दोनों रथी वीर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

ततः सांयमनिः क्रुद्धः पार्षतं परवीरहा ।
आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३५ ॥

पहिले शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सांयमनिने क्रुद्ध होकर महागजराजको अंकुशसे पीडित करनेके समान द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नको तीन बाण मारे ॥ ३५ ॥

तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः ।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ २४२७ ॥

और संग्राममें शोभायमान महारथ शल्यने भी क्रुद्ध होकर वीर धृष्टद्युम्नकी छातीमें बाणोंका प्रहार किया; फिर उन लोगोंका महाघोर तुमुल युद्ध होने लगा ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ २४२७ ॥

: ५८ :

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय ।
यत्सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन वध्यते ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! पुरुषार्थसे दैवहीको में श्रेष्ठ समझता हूं; क्योंकि पाण्डवोंकी सेना ही मेरे पुत्रोंकी सेनाका वध कर रही है ॥ १ ॥

नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि ।
अव्यग्रांश्च प्रहृष्टांश्च नित्यं शंससि पाण्डवान् ॥ २ ॥

हे तात ! तुम नित्य ही मेरे पक्षका नाश और पाण्डवोंके पक्षको बहुत प्रबल तथा प्रसन्न वर्णन करते हो ॥ २ ॥

हीनान्पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय ।
पतितान्पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि ॥ ३ ॥

सञ्जय ! तुम इस समय मेरी ओरकी सेनाहीको पराक्रमसे रहित, गिरती, भागती और मरती हुई कहके वर्णन करते हो ॥ ३ ॥

युध्यमानान्यथाशक्ति घटमानाञ्जयं प्रति ।
पाण्डवा विजयन्त्येव जीयन्ते चैव मामकाः ॥ ४ ॥

वह जयकी इच्छासे यथाशक्ति युद्ध करती है, तौ भी पाण्डव लोग उसे पराजित ही करते हैं; और मेरी सेना पराक्रमहीन और पराजित होती है ॥ ४ ॥

सोऽहं तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतानि च ।
अश्रौषं सततं तात दुःसहानि बहूनि च ॥ ५ ॥

हे सूत ! इससे दुर्योधनके कारण मुझे नित्य ही न सहने योग्य अनेक प्रकारसे दुःखके विषय सुनने पडते है ॥ ५ ॥

तमुपायं न पश्यामि जीयेरन्येन पाण्डवाः ।
मामका वा जयं युद्धे प्राप्नुयुर्येन सञ्जय ॥ ६ ॥

हे सञ्जय ! किस उपायसे पाण्डवलोग पराक्रमहीन पराजित और मेरे पक्षवाले वीर जययुक्त हो सकते हैं; वह मैं कुछ भी नहीं देखता हूं ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच

क्षयं मनुष्यदेहानां गजवाजिरथक्षयम् ।
शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा तवैवापनयो महान् ॥ ७ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! बडी भारी आपदा तुम्हारी ओरसे ही उत्पन्न हो रही है। जो हो अब इस समय तुम हाथी, घोडे, रथ और मनुष्योंके नाशका वृत्तान्त स्थिरचित्तसे सुनो ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु शल्येन पीडितो नवभिः शरैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो मद्राधिपतिमायसैः ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नने मद्रराज शल्यके बाणोंसे पीडित होकर क्रोधपूर्वक नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥८॥

तत्राद्भुतमपश्याम पार्षतस्य पराक्रमम् ।
न्यवारयत यत्तूर्णं शल्यं समितिशोभनम् ॥ ९ ॥

उस समय धृष्टद्युम्नका अद्भुत पराक्रम दिखाई देने लगा, वह शीघ्रताके सहित रणभूमिमें शोभा पानेवाले राजा शल्यको निवारण करने लगे ॥ ९ ॥

नान्तरं ददृशे कश्चित्तयोः संरब्धयो रणे ।
मुहूर्तमिव तद्युद्धं तयोः सममिवाभवत् ॥ १० ॥

वे दोनों इस भांतिसे युद्ध करने लगे, कि किसीने उन्हें क्षणभर युद्धसे ठहरते न देखा। उन दोनोंके पराक्रममें कोई अंतर नहीं था। दोनोंमें समानसा युद्ध होता रहा ॥ १० ॥

ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥

हे महाराज! राजा शल्यने युद्धमें उत्तम पानीसे बुझे हुए एक पीले रंगके भल्ल बाणसे धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया ॥ ११ ॥

अथैनं शरवर्षेण छादयामास भारत।
गिरिं जलागमे यद्वज्जलदा जलधारिणः ॥ १२ ॥

भारत! फिर वर्षाकालमें मेघ जैसे पर्वतपर जलकी वर्षा करते हैं, उस मेघके समान अपने बाणोंकी वर्षा कर उन्हें छिपा दिया ॥ १२ ॥

अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो धृष्टद्युम्ने निपीडिते।
अभिदुद्राव वेगेन मद्रराजरथं प्रति ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्न शल्यके बाणोंसे पीडित हुए, तब पराक्रमी अभिमन्युने क्रोधित होकर शल्यके रथके समीप शीघ्रतासे गमन किया ॥ १३ ॥

ततो मद्राधिपरथं कार्ष्णिः प्राप्यातिकोपनः।
आर्तायनिममेयात्मा विव्याध विशिखैस्त्रिभिः ॥ १४ ॥

अनन्तर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए अनन्त आत्मबलसे युक्त अभिमन्युने मद्रराज शल्यके रथके निकट जाकर तीन तीक्ष्ण बाणोंसे ऋतायन पुत्र राजा शल्यको विद्ध किया ॥ १४ ॥

ततस्तु तावका राजन्परीप्सन्तोऽऽर्जुनिं रणे।
मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्यावतस्थिरे ॥ १५ ॥

राजन्! उसे देखकर तुम्हारी ओरके योद्धालोग चारों ओरसे मद्रराज शल्यके रथको घेरकर अभिमन्युको वन्दी करनेकी इच्छासे तुरंत वहां आकर खडे हुए ॥ १५ ॥

दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती।
दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनश्च दुर्मुखः ॥ १६ ॥
सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत।
एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे ॥ १७ ॥

भारत! आपका कल्याण हो। दुर्योधन, महारथ विकर्ण, दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र; ये दस पुरुष मद्रराज शल्यके रथकी रक्षा करनेके लिये युद्धभूमिमें प्रवृत्त हुए ॥ १६–१७ ॥

तान्भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ पाण्डवौ ॥ १८ ॥
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो विशां पते।
अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः।
ते वै समीयुः संग्रामे राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ १९ ॥

हे महाराज! क्रोधमें भरे हुए भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पांचों पुत्र, अभिमन्यु, माद्रीकुमार, पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेव; ये सब लोग नाना प्रकारके शस्त्र-अस्त्रोंका प्रहार कर रहे थे। हे राजन्! तुम्हारी अनीतिसे ही ये सब वीर युद्धमें इकठे होकर एक दूसरेके मारनेकी इच्छासे हर्ष और उत्साहके साथ संग्राम करने लगे ॥ १८-१९ ॥

तस्मिन्दाशरथे युद्धे वर्तमाने भयावहे।
तावकानां परेषां च प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ॥ २० ॥

तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके रथीलोग क्रोधमें भरकर उन आपसमें एक दूसरेके वध करनेकी इच्छासे भयंकर युद्ध करते हुए दस महारथियोंके युद्धको देखने लगे ॥ २० ॥

शस्त्राण्यनेकरूपाणि विसृजन्तो महारथाः।
अन्योन्यमभिनर्दन्तः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ २१ ॥

आपके और पांडवोंके वे अनेक प्रकारके शस्त्रोंको एक दूसरेपर चलाते हुए गर्जना करके युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥

ते यत्ता जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योन्यं जिघांसवः।
महास्त्राणि विमुञ्चन्तः समापेतुरमर्षणाः ॥ २२ ॥

हे राजन्! वे सब परस्पर स्पर्धासे संगत हुए ज्ञातिलोग क्रोधित होकर ईर्ष्यापूर्वक एक दूसरेका वध करनेकी इच्छासे महा अस्त्र चलाने लगे ॥ २२ ॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं महारणे।
विव्याध निशितैर्बाणैश्चतुर्भिस्त्वरितो भृशम् ॥ २३ ॥

दुर्योधनने क्रोधपूर्वक उस महायुद्धमें अपने चार तीखे बाण मारकर तुरंत ही धृष्टद्युम्नको बहुत ही बींध दिया ॥ २३ ॥

दुर्मर्षणश्च विंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैर्दुःसहश्चापि सप्तभिः।
विविंशतिः पञ्चभिश्च त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ॥ २४ ॥

दुर्मर्षणने वीस, चित्रसेनने पांच, दुर्मुखने नौ, दुःसहने सात, विविंशतिने पांच और दुःशासनने तीन बाणोंसे धृष्टद्युम्नको प्रहार किया ॥ २४ ॥

तान्प्रत्यविध्यद्राजेन्द्र पार्षतः शत्रुतापनः ।
एकैकं पञ्चविंशत्या दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २५ ॥

हे राजेन्द्र ! शत्रुनाशन पृषत-कुमार धृष्टद्युम्नने अपने हाथकी फुर्तीके सहित उनमेंसे हरएक वीरको पचीस पचीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ २५ ॥

सत्यव्रतं तु समरे पुरुमित्रं च भारत ।
अभिमन्युरविध्यत्तौ दशभिर्दशभिः शरैः ॥ २६ ॥

भारत ! अभिमन्युने युद्धभूमिमें सत्यव्रत और पुरुमित्रको दस दस बाणोंसे विद्ध किया ॥२६॥

माद्रीपुत्रौ तु समरे मातुलं मातृनन्दनौ ।
छादयेतां शरव्रातैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २७ ॥

माताके आनन्दको बढानेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेवने अपने मामा शल्यको तीक्ष्ण बाणोंसे तोप दिया; वह संग्राम अद्भूतरूपका दीख पडा ॥ २७ ॥

ततः शल्यो महाराज स्वस्रीयौ रथिनां वरौ ।
शरैर्बहुभिरानर्छत्कृतप्रतिकृतैषिणौ
छाद्यमानौ ततस्तौ तु माद्रीपुत्रौ न चेलतुः ॥ २८ ॥

महाराज ! अनन्तर शल्यने किए हुए प्रहारका बदला लेनेकी इच्छा करनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ अपने दोनों भान्जोंके ऊपर बहुतसे बाण चलाये; वे दोनों शल्यके बाणोंसे पीडित होकर भी उनके अस्त्रोंके प्रतिकारकी इच्छासे युद्धसे विचलित नहीं हुए ॥ २८ ॥

अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
विधित्सुः कलहस्यान्तं गदां जग्राह पाण्डवः ॥ २९ ॥

महाराज ! तदनन्तर महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनने दुर्योधनको देखकर शत्रुताका अन्त करनेके निमित्त गदा ग्रहण की ॥ २९ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
भीमसेनं महाबाहुं पुत्रास्ते प्राद्रवन्भयात् ॥ ३० ॥

हाथमें गदा लिये हुए महाबाहु भीमको शिखरसे युक्त कैलास पर्वतके समान देखकर तुम्हारे दूसरे सब पुत्र भयके मारे वहांसे भाग गये ॥ ३० ॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो मागधं समचोदयत् ।
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
मागधं पुरतः कृत्वा भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ३१ ॥

परन्तु दुर्योधनने क्रुद्ध होके मगधदेशीय दस हजार हाथियोंकी वेगशाली सेनासहित मगधराजको नियुक्त किया और उसको आगे करके भीमसेनके सम्मुख हुए ॥ ३१ ॥

×

आपतन्तं च तं दृष्ट्वा गजानीकं वृकोदरः ।
गदापाणिरवारोहद्रथात्सिंह इवोन्नदन् ॥ ३२ ॥

हाथमें गदा लिये हुए भीमसेन हाथियोंकी सेना आती हुई देखकर सिंहनाद करते हुए रथसे उतरे ॥ ३२ ॥

अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अभ्यधावद्गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३३ ॥

वह मुंह पसरे कालके समान होकर अत्यन्त कठोर लोहमयी भारी गदा लेकर हाथियोंकी सेनापर दौडे ॥ ३३ ॥

स गजान्गदया निघ्नन्व्यचरत्समरे बली ।
भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः ॥ ३४ ॥

जैसे वृत्रासुरके नाश करनेवाले इन्द्र दानवोंकी सेनामें भ्रमण करते हैं, वैसे ही बलवान् महाबाहु भीमसेन गदासे हाथियोंको मारते हुए रणभूमिमें चारों ओर घूमने लगे ॥ ३४ ॥

तस्य नादेन महता मनोहृदयकम्पिना ।
व्यत्यचेष्टन्त संहत्य गजा भीमस्य नर्दतः ॥ ३५ ॥

चित्त तथा हृदयको कंपानेवाले भीमसेनका तर्जन गर्जन सुनकर सब हाथी एक स्थानपर एकत्रित होकर भयके मारे अत्यन्त चेष्टा करने लगे ॥ ३५ ॥

ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३६ ॥
पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान् ।
अभ्यधावन्त वर्षन्तो मेघा इव गिरीन्यथा ॥ ३७ ॥

इसके अनन्तर द्रौपदीके पांचों पुत्र, महारथी अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न भीमसेनकी पृष्ठ रक्षामें प्रवृत्त होकर जैसे बादल पर्वतके ऊपर जल वर्षाता है, वैसे ही हाथियोंकी सेनाके ऊपर दौड दौडकर बाणोंको वर्षाने लगे ॥ ३६–३७ ॥

क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पीतैरञ्जलिकैरपि ।
पातयन्तोत्तमाङ्गानि पाण्डवा गजयोधिनाम् ॥ ३८ ॥

अनन्तर शिलापर घिसे हुए चोखे क्षुर, क्षुरप्र, पीले रंगके भल्ल और अञ्जलिकास्त्रसे हाथियों-पर चढे हुए योद्धाओंका सिर काटने लगे ॥ ३८ ॥

शिरोभिः प्रपतद्भिश्च बाहुभिश्च विभूषितैः ।
अश्मवृष्टिरिवाभाति पाणिभिश्च सहाङ्कुशैः ॥ ३९ ॥

गजपतियोंके सिर, बाजूबन्द विभूषित भुजा और अंकुश सहित हाथ बाणोंसे कटकर ऐसे गिरने लगे, कि मानो आकाशसे ओले और पत्थरकी वर्षा हो रही है ॥ ३९ ॥

हृतोत्तमाङ्गाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः ।
अदृश्यन्ताचलाग्रेषु द्रुमा भग्नशिखा इव ॥ ४० ॥

बहुतसे योद्धाओंका सिर कटकर हाथियोंहीकी पीठपर टिके हुए गजारोही योद्धाओंके धड इस प्रकारसे दीखने लगे, जैसे पर्वतके शिखरोंपर स्थित हुए शिखाहीन वृक्ष दीख पडते हैं ॥ ४० ॥

धृष्टद्युम्नहतानन्यानपश्याम महागजान् ।
पतितान्पात्यमानांश्च पार्षतेन महात्मना ॥ ४१ ॥

महात्मा धृष्टद्युम्नको भी बडे बडे हाथियोंका वध करते हुए मैंने देखा । द्रुपदकुमारकी मार खाकर बहुतसे हाथी गिरे और गिराये जा रहे थे ॥ ४१ ॥

मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमम् ।
प्रेषयामास समरे सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ४२ ॥

इसी समय मगध देशके राजाने समरांगणमें ऐरावतके समान एक महागजराज अभिमन्युके रथके ओर चलाया ॥ ४२ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मागधस्य गजोत्तमम् ।
जघानैकेषुणा वीरः सौभद्रः परवीरहा ॥ ४३ ॥

शत्रुनाशन वीर अभिमन्युने उस महागजराजको आता हुआ देखकर एक ही बाणसे उसका प्राण संहार किया ॥ ४४ ॥

तस्यावर्जितनागस्य कार्ष्णिः परपुरंजयः ।
राज्ञो रजतपुङ्खेन भल्लेनापहरच्छिरः ॥ ४४ ॥

मगधराजके हाथीसे रहित होनेपर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला अर्जुनपुत्र अभिमन्युने रजतमय पंखसे युक्त एक भल्ल बाणसे उनका शिर काट डाला ॥ ४४ ॥

विगाह्य तद्गजानीकं भीमसेनोऽपि पाण्डवः ।
व्यचरत्समरे मृद्नन्गजानिन्द्रो गिरीनिव ॥ ४५ ॥

उधर पाण्डुनन्दन भीमसेन भी गजसेनामें घुसकर पर्वतोंको विदीर्ण करनेवाले देवेन्द्रके समान हाथियोंको मारते हुए युद्धक्षेत्रमें विचरने लगे ॥ ४५ ॥

एकप्रहाराभिहतान्भीमसेनेन कुञ्जरान् ।
अपश्याम रणे तस्मिन्गिरीन्वज्रहतानिव ॥ ४६ ॥

उस युद्धक्षेत्रमें हमने वज्रके मारे हुए पर्वतोंकी भांति भीमसेनके एक ही प्रहारसे दन्तार हाथियोंको भी मरते देखा था ॥ ४६ ॥

भग्नदन्तान्भग्नकटान्भग्नसक्थांश्च वारणान् ।
भग्नपृष्ठान्भग्नकुम्भान्निहतान्पर्वतोपमान् ॥ ४७ ॥
नदतः सीदतश्चान्यान्विमुखान्समरे गजान् ।
विमूत्रान्भग्नसंविग्नांस्तथा विशकृतोऽपरान् ॥ ४८ ॥

किन्हींके दांत टूट गये, किन्हींकी सूंड कट गयी, कितनोंकी जांघें टूट गयीं, किन्हींकी पीठ टूट गयी और कितने ही पर्वतोंके समान विशालकाय गजराज मारे गये, कुछ चिंघाड रहे थे, कुछ कष्टसे कराह रहे थे, कुछ युद्धभूमिसे विमुख होकर भागने लगे थे और कुछ भयसे व्याकुल होकर मल–मूत्र कर रहे थे । इन सबको मैंने अपनी आँखोंसे देखा था ॥४७–४८॥

भीमसेनस्य मार्गेषु गतासून्पर्वतोपमान् ।
अपश्याम हतान्नागान्निष्टनन्तस्तथापरे ॥ ४९ ॥

भीमसेनके मार्गोंमें उनके द्वारा मारे गये पर्वतोपम हाथी मरे हुए दिखाई दिये । अन्य बहुतसे हाथियोंको मैंने मुंहसे फेन फेंकते देखा था ॥ ४९ ॥

वमन्तो रुधिरं चान्ये भिन्नकुम्भा महागजाः ।
विह्वलन्तो गता भूमिं शैला इव धरातले ॥ ५० ॥

कितने ही विशालकाय हाथी खून उगल रहे थे और उनके कुम्भस्थल फट गये थे ! बहुतसे व्याकुल होकर इस भूतलपर पर्वतोंके समान पडे थे ॥ ५० ॥

मेदोरुधिरदिग्धाङ्गो वसामज्जासमुक्षितः ।
व्यचरत्समरे भीमो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ५१ ॥

भीमसेनका सारा शरीर मेदा तथा रक्तसे लिप्त हो रहा था । वे वसा और मज्जासे नहा गये थे और हाथमें गदा लिये दण्डपाणि यमराजके समान उस रणभूमिमें विचर रहे थे ॥ ५१ ॥

गजानां रुधिराक्तां तां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
घोरः प्रतिभयश्चासीत्पिनाकीव पिनाकधृक् ॥ ५२ ॥

हाथियोंके खूनसे भीगी हुई गदा धारण किये हुए भीमसेन पिनाकधारी भगवान् रुद्रके समान घोर एवं भयंकर दिखाई देते थे ॥ ५२ ॥

निर्मथ्यमानाः क्रुद्धेन भीमसेनेन दन्तिनः ।
सहसा प्राद्रवञ्शिष्टा मृद्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ५३ ॥

क्रोधमें भरे हुए भीमसेन हाथियोंको मथे डालते थे; और वे आपको शेष सेनाको कुचलते हुए सहसा युद्धस्थलसे वे भाग चले ॥ ५३ ॥

तं हि वीरं महेष्वासाः सौभद्रप्रमुखा रथाः ।
पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवामराः ॥ ५४ ॥

जैसे देवता वज्रधारी इन्द्रकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सुभद्राकुमार आदि पाण्डव योद्धा युद्धमें तत्पर हुए महाधनुर्धर वीर भीमसेनकी सब ओरसे रक्षा करते थे ॥ ५४ ॥

शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितो गजशोणितैः ।
कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥ ५५ ॥

खूनमें सनी तथा हाथियोंके रक्तसे भीगी हुई गदा लिये रौद्ररूपधारी भीमसेन यमराजके समान दिखाई देते थे ॥ ५५ ॥

व्यायच्छमानं गदया दिक्षु सर्वासु भारत ।
नृत्यमानमपश्याम नृत्यन्तमिव शंकरम् ॥ ५६ ॥

भारत ! भीमसेन गदा लेकर संपूर्ण दिशाओंमें व्यायामसा कर रहे थे । समरभूमिमें भीमको हमने ताण्डवनृत्य करते हुए भगवान् शंकरके समान देखा ॥ ५६ ॥

यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥ ५७ ॥

महाराज ! भीमसेनकी भारी और भयंकर गदा सबका संहार करनेवाली है । हमें तो वह यमदण्डके समान दिखाई देती थी । प्रहार करनेपर उससे इन्द्रके वज्रकी गडगडाहटके समान आवाज होती थी ॥ ५७ ॥

विमिश्रां केशमज्जाभिः प्रदिग्धां रुधिरेण च ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ ५८ ॥

रक्तसे भीगी तथा केश और मज्जासे मिली हुई उस गदाको हमने प्रलयकालमें क्रोधसे भरकर समस्त पशुओंका संहार करनेवाले रुद्रके पिनाकके समान समझा था ॥ ५८ ॥

यथा पशूनां संघातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत् ।
तथा भीमो गजानीकं गदया पर्यकालयत् ॥ ५९ ॥

जैसे चरवाहा पशुओंके झुंडको डंडेसे हांकता है, उसी प्रकार भीमसेन हाथियोंके समूहको अपनी गदासे हांक रहे थे ॥ ५९ ॥

गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन्कुञ्जरास्तव ॥ ६० ॥

महाराज ! चारों ओरसे गदा और बाणोंकी मार पडनेपर आपकी सेनाके वे सब हाथी अपने ही सैनिकोंको कुचलते हुए भाग रहे थे ॥ ६० ॥

महावात इवाभ्राणि विधमित्वा स वारणान् ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमः श्मशान इव शूलभृत् ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ २४९८ ॥

जैसे आंधी बादलोंको छिन्न भिन्न करके उडा देती है, उसी प्रकार भीमसेन उस भयंकर युद्धमें हाथियोंकी सेनाको नष्ट करके स्मशानभूमिमें त्रिशूलधारी भगवान् शंकरके समान खडे थे ॥ ६१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ २४९८ ॥

: ५९ :

सञ्जय उवाच

तस्मिन्हते गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! उस सम्पूर्ण हाथियोंकी सेनाका वध होनेपर आपके पुत्र राजा दुर्योधनने भीमसेनका वध करनेके निमित्त सम्पूर्ण सेनाको आज्ञा दी ॥ १ ॥

ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्भीमसेनं नदन्तं भैरवान्रवान् ॥ २ ॥

तदनन्तर रणभूमिमें महाघोर शब्द करनेवाली वह सम्पूर्ण सेना आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञासे भीमसेनकी ओर दौडी ॥ २ ॥

तं बलौघमपर्यन्तं देवैरपि दुरुत्सहम् ।
आपतन्तं सुदुष्पारं समुद्रमिव पर्वणि ॥ ३ ॥

सेनाका वह अनन्तवेग देवताओंके लिये भी दुःसह था । पूर्णिमाको बढे हुए समुद्रके समान अपार जान पडता था ॥ ३ ॥

रथनागाश्वकलिलं शङ्खदुन्दुभिनादितम् ।
अथानन्तमपारं च नरेन्द्रस्तिमितह्रदम् ॥ ४ ॥
तं भीमसेनः समरे महोदधिमिवापरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यं वेलेव समवारयत् ॥ ५ ॥

वह सैन्य-समुद्र अनेक रथ, पैदल, हाथी, घोडोंके सहित भरा हुआ और शंख, ढोल और दुन्दुभीयोंकी ध्वनिसे कोलाहल युक्त, अनंत अपार नरेन्द्र युक्त समुद्रके समान, धूलिसे पूरित उस दूसरे महासागरके समान अक्षोभ्य महासेनाको भीमसेन युद्धमें ऐसे निवारण करने लगे, जैसे समुद्रके वेगको तट रोकता है ॥ ४–५ ॥

तदाश्चर्यमपश्याम श्रद्धेयमपि चाद्भुतम् ।
भीमसेनस्य समरे राजन्कर्मातिमानुषम् ॥ ६ ॥

महाराज ! उस समयमें मैंने समरभूमिमें पाण्डुपुत्र महात्मा भीमसेनका श्रद्धेय, अद्भुत और अलौकिक पराक्रम देखा ॥ ६ ॥

उदीर्णां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ।
असम्भ्रमं भीमसेनो गदया समताडयत् ॥ ७ ॥

घोडे, हाथी तथा रथसे युक्त सम्पूर्ण उत्साहित पृथ्वीको केवल गदाकी सहाय्यतासे भीमसेन विना किसी घबराहटके निवारण करने लगे ॥ ७ ॥

स संवार्य बलौघांस्तान्गदया रथिनां वरः ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाचलः ॥ ८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन गदासे उस सम्पूर्ण सेनाको निवारण करके उस भयंकर युद्धमें मेरु पर्वतकी भांति अविचल भावसे वहां पर स्थिर रहे ॥ ८ ॥

तस्मिन्सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे ।
भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ९ ॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च शिखण्डी च महारथः ।
न प्राजहन्भीमसेनं भये जाते महाबलम् ॥ १० ॥

उस महा भयङ्कर तुमुल भयप्रद युद्धमें भाई, पुत्र, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पांचों पुत्र अभिमन्यु और महारथी शिखण्डी महाबलवान् भीमसेनको भयसे त्यागकर रणभूमिसे पृथक् नहीं हुए ॥ ९–१० ॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अवधीत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवान्तकः ।
पोथयन्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाभिभूः ॥ ११ ॥

शत्रुनाशन भीमसेन उन सब वीरोंसे रक्षित होकर लोहमयी विशाल एवं अत्यन्त भारी गदा हाथमें लेकर दण्डधारी यमराजके समान तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे। रथियों और घोडोंके समूहको उठाके फेंकते हुए नष्ट करने लगे ॥ ११ ॥

व्यचरत्समरे भीमो युगान्ते पावको यथा ।
विनिघ्नन्समरे सर्वान्युगान्ते कालवद्विभुः ॥ १२ ॥

जगत्के अन्तके समय अग्नि जैसी सर्वत्र संचार करती है वैसे भीमसेन युद्धभूमिमें संचार करते थे। युगान्तके समय काल प्रभु जैसे सब प्राणियोंका संहार करते हैं वैसे वे समर-भूमिमें नाश करते थे ॥ १२ ॥

ऊरुवेगेन सङ्कर्षन्रथजालानि पाण्डवः ।
प्रमर्दयन्गजान्सर्वान्नड्वलानीव कुञ्जरः ॥ १३ ॥

पाण्डुनन्दनन भीम अपने महान् वेगसे रथसमूहोंको खींचकर नष्ट कर देते और सब हाथियोंको उसी प्रकार रौंद डालते थे, जैसे हाथी नरकुलके पौंधोको ॥ १३ ॥

मृद्नन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चैव पदातिनः ॥ १४ ॥

महाबाहु भीमसेन रथोंसे रथियोंको, हाथियोंसे हाथीसवारोंको, घोडोंकी पीठोंसे घुडसवारोंको और भूमिपर पैदलोंको मसलते थे ॥ १४ ॥

तत्र तत्र हतैश्चापि मनुष्यगजवाजिभिः ।
रणाङ्गणं तदभवन्मृत्योराघातसंनिभम् ॥ १५ ॥

इधर उधर मरके पडे हुए मनुष्य, हाथी और घोडोंसे सारी रणभूमि यमराजके मृत्यु स्थानके समान हो गई ॥ १५ ॥

पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ।
यमदण्डोपमामुग्रामिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
ददृशुर्भीमसेनस्य रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥ १६ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाली, भीमसेनकी भयंकर गदा यमदण्डके समान भयङ्कर और इन्द्रके वज्रके समान प्रकाशमान हुई । उस गदाको सब लोग पशुओंका नाश करनेवाले क्रुद्ध महादेवके पिनाकके समान देखने लगे ॥ १६ ॥

आविध्यतो गदां तस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
बभौ रूपं महाघोरं कालस्येव युगक्षये ॥ १७ ॥

जिस प्रकार प्रलयकालके समयमें यमराजका विकराल रूप हो जाता है, उस महात्मा कुन्तीनन्दन भीमकी भी गदा लेकर भ्रमण करनेके समयमें वैसी ही मूर्ति दिखाई देने लगी ॥ १७ ॥

तं तथा महतीं सेनां द्रावयन्तं पुनः पुनः ।
दृष्ट्वा मृत्युमिवायान्तं सर्वे विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥

हाथमें गदा लिये हुए, उस महा सेनाको बार बार भगानेवाले भीमसेनको मृत्युके समान सामने आते देखकर सब कोई अत्यन्त ही भयसे व्याकुल होने लगे ॥ १८ ॥

यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत ॥ १९ ॥

हे भारत ! उस समयमें भीमसेन गदा लेकर सेनामें जिस ओर देखते उधर ही सब सेना तितर बितर होने लगती थी ॥ १९ ॥

प्रदारयन्तं सैन्यानि बलौघेनापराजितम् ।
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २० ॥
तं तथा भीमकर्माणं प्रगृहीतमहागदम् ।
दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात् ॥ २१ ॥

महाराज ! भयंकर कर्म करके सेनाको विदीर्ण करनेवाले भीमसेनको सम्पूर्ण सेनाके समूहसे अपराजित और महा भयङ्कर गदा ग्रहण करके सब वीरोंको तितर बितर करते और मानो मुंह पसारे हुए यमराजके समान सेनाके सब वीरोंको ग्रास करते हुए देखकर भीष्म सहसा वहाँ पहुंचे ॥ २०–२१॥

महता मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ।
छादयञ्शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २२ ॥

सूर्यके समान प्रकाशमान बडे रथपर चढके बादलके समान जोरसे गर्जते और मेघकी भांति अपने बाणोंको बर्षाते हुए उन सेनाओंकी ओर दौडे ॥ २२ ॥

तमायान्तं तथा दृष्ट्वा व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
भीष्मं भीमो महाबाहुः प्रत्युदीयादमर्षणः ॥ २३ ॥

महाबाहु भीमसेन मुंह फैलाये हुए क्रुद्ध यमराजके समान भीष्मको आते हुए देखकर क्रोध-पूर्वक उसके सम्मुख हुए ॥ २३ ॥

तस्मिन्क्षणे सात्यकिः सत्यसंधः शिनिप्रवीरोऽभ्यपतत्पितामहम् ।
निघ्नन्नमित्रान्धनुषा दृढेन स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ २४ ॥

तब शिनिवंशके प्रमुखवीर सत्यपराक्रमी सात्यकि आपके पुत्र दुर्योधनकी सेनाको कम्पित करते और अपने दृढ धनुषसे शत्रुओंका वध करते हुए पितामह भीष्मके समीप जाने लगे ॥ २४ ॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैः शरान्धमन्तं धनुषा दृढेन ।
नाशक्नुवन्वारयितुं तदानीं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥ २५ ॥

भारत ! उत्तम पानीसे बुझाये हुए बाणोंको दृढ धनुषसे चलाते और सुवर्णभूषित घोडोंसे युक्त उत्तम रथपर चढे हुए सात्यकिके गमन करनेके समयमें कोई भी तुम्हारी सेनाका वीर निवारण न कर सका ॥ २५ ॥

अविध्यदेनं निशितैः शराग्रैरलम्बुसो राजवरार्ष्यशृङ्गिः ।
तं वै चतुर्भिः प्रतिविध्य वीरो नप्ता शिनेरभ्यपतद्रथेन ॥ २६ ॥

तब अलम्बुस राक्षसने अपने तीक्ष्ण बाणोंके अग्रोंसे सात्यकिको विद्ध किया, परन्तु शिनिके पौत्र अलम्बुसको चार बाणोंसे विद्ध करके, रथके द्वारा भीष्मके पास गमन करने लगे ॥ २६ ॥

×

अन्वागतं वृष्णिवरं निशम्य मध्ये रिपूणां परिवर्तमानम् ।
प्रावर्तयन्तं कुरुपुङ्गवांश्च पुनः पुनश्च प्रणदन्तमाजौ ॥ २७ ॥
नाशक्नुवन्वारयितुं वरिष्ठं मध्यंदिने सूर्यमिवातपन्तम् ।
न तत्र कश्चिन्नविषण्ण आसीदृते राजन्सोमदत्तस्य पुत्रात् ॥ २८ ॥

वृष्णिवंशके वीरश्रेष्ठ सात्यकि आकर शत्रुओंके बीचमें विचर रहे हैं और युद्धमें कौरव सेनाके प्रमुख वीरोंको भगाकर बार बार गर्जना करते हैं, यह सुनकर, मध्याह्न कालके तपते हुए सूर्यके समान तेजस्वी उस महारथ सात्यकिको निवारण करनेमें समर्थ न हुए । हे राजन् ! उस सब सेनाके बीच सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाके अतिरिक्त और कोई भी ऐसा योद्धा नहीं था जो विषादग्रस्त न हुआ हो ॥ २७–२८ ॥

स ह्याददानो धनुरुग्रवेगं भूरिश्रवा भारत सौमदत्तिः ।
दृष्ट्वा रथान्स्वान्व्यपनीयमानान्प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धुमिच्छन् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ २५२७ ॥

भारत ! सोमदत्तकुमार भूरिश्रवा अपनी ओरके रथियोंको सात्यकिके बाणोंसे तितर बितर होते भागते देखकर प्रचण्ड वेगयुक्त धनुष धारण करके सात्यकिसे युद्ध करनेके निमित्त आकर खडे हुए ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ २५२७ ॥

: ६० :

सञ्जय उवाच

ततो भूरिश्रवा राजन्सात्यकिं नवभिः शरैः ।
अविध्यद्भृशसंक्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! अनन्तर भूरिश्रवाने अत्यन्त क्रुद्ध होकर महामत्त हाथीको अंकुशसे प्रहार करनेकी भांति सात्यकिको नौ बाणोंसे प्रहार किया ॥ १ ॥

कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः संनतपर्वभिः ।
अवाकिरदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २ ॥

अत्यन्त पराक्रमी अमेयात्मा सात्यकि भी सब लोगोंके सम्मुख अपने अनेक चोखे बाणोंसे भूरिश्रवाको निवारण करने लगे ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ३ ॥

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन भाइयोंके सहित भूरिश्रवाको चारों ओरसे घेरकर उसकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे ।
परिवार्य स्थिताः संख्ये समन्तात्सुमहौजसः ॥ ४ ॥

और महाबलवान् तेजस्वी पाण्डवोंके पक्षके योद्धा लोग भी युद्धमें वेगपूर्वक आगे बढनेवाले सात्यकिको चारों ओरसे घेरकर उसकी रक्षानिमित्त खडे हुए ॥ ४ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत।
दुर्योधनमुखान्सर्वान्पुत्रांस्ते पर्यवारयत् ॥ ५ ॥

भारत ! भीमसेनने क्रुद्ध हो गदाधारण करके तुम्हारे दुर्योधन आदि सब पुत्रोंको अकेले ही घेर लिया ॥ ५ ॥

रथैरनेकसाहस्रैः क्रोधामर्षसमन्वितः ।
नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलम् ।
विव्याध निशितैः षड्भिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ ६ ॥

कई हजार रथियोंसे युक्त तुम्हारे पुत्र नन्दकने क्रुद्ध और अमर्षयुक्त होकर शिलापर घिसे हुए सुवर्ण पंखसे युक्त तीक्ष्ण छः बाणोंसे महाबली भीमसेनको प्रहार किया ॥ ६ ॥

दुर्योधनस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्निशितैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥

तब दुर्योधनने भी क्रोधपूर्वक तीन बाणोंसे महारथी भीमसेनका उस युद्धमें उनकी छातीको लक्ष्य करके प्रहार किया ॥ ७ ॥

ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अनन्तर अत्यन्त बलवान् महाबाहु भीमसेन अपने उत्तम रथपर बैठकर निज सारथीको विशोकसे यह वचन बोले ॥ ८ ॥

एते महारथाः शूरा धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
मामेव भृशसंक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि ॥ ९ ॥

हे सारथी ! ये सब महारथी बलवान् शूर धृतराष्ट्रपुत्र अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्धमें मेरे वधके निमित्त उद्यत हुए हैं ॥ ९ ॥

एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः ।
तस्मान्ममाश्वान्संग्रामे यत्तः संयच्छ सारथे ॥ १० ॥

आज मैं उन सबको तुम्हारे सम्मुख ही यमपुरीमें भेज दूंगा; इसमें संशय नहीं है। इसलिये सारथे। तुम इस संग्राममें मेरे घोडोंको शीघ्रताके सहित सावधान होके चलाओ ॥ १० ॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थः पुत्रं दुर्योधनं तव ।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः ।
नन्दकं च त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ११ ॥

महाराज ! कुन्तीकुमार भीमने सारथीसे ऐसा कहकर सुवर्णभूषित दस तीक्ष्ण बाणोंने आपके पुत्र दुर्योधनको विद्ध किया । इसके अनन्तर नन्दकके दोनों स्तनोंके बीचमें—छातीमें तीन बाणोंसे प्रहार किया ॥ ११ ॥

तं तु दुर्योधनः षष्ट्या विद्ध्वा भीमं महाबलम् ।
त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत ॥ १२ ॥

तब दुर्योधनने महाबलवान् भीमको साठ बाणोंसे विद्ध करके फिर चोखे तीन बाणोंसे उनके सारथी विशोकको विद्ध किया ॥ १२ ॥

भीमस्य च रणे राजन्धनुश्चिच्छेद भास्वरम् ।
मुष्टिदेशे शरैस्तीक्ष्णैस्त्रिभी राजा हसन्निव ॥ १३ ॥

राजन् ! इसके बाद दुर्योधनने युद्धस्थलमें हंसते हंसते तीन तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे भीमके तेजस्वी धनुषकी मुष्टि काट डाली ॥ १३ ॥

भीमस्तु प्रेक्ष्य यन्तारं विशोकं संयुगे तदा ।
पीडितं विशिखैस्तीक्ष्णैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १४ ॥
अमृष्यमाणः संक्रुद्धो धनुर्दिव्यं परामृशत् ।
पुत्रस्य ते महाराज वधार्थं भरतर्षभ ॥ १५ ॥
समादत्त च संरब्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनम् ।
तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुकमुत्तमम् ॥ १६ ॥

तब भीम निज सारथी विशोकको आपके धनुर्द्धारी पुत्र दुर्योधनके चोखे बाणोंसे पीडित देखकर सह न सके और हे महाराज ! भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त क्रुद्ध होके दुर्योधनके वध करनेके निमित्त दिव्य धनुष और रोऐंको खडे करनेवाले क्षुरप्र अस्त्र ग्रहण करके राजा दुर्योधनके उत्तम धनुषकी मुष्टि काट डाली ॥ १४–१६ ॥

सोऽपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधेन प्रज्वलन्निव ।
अन्यत्कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरम् ॥ १७ ॥

दुर्योधनने क्रोधसे अग्निके समान प्रज्वलित होकर कटा धनुष त्यागकर शीघ्रतापूर्वक एक वेगवान् दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ १७ ॥

संधत्त विशिखं घोरं कालमृत्युसमप्रभम् ।
तेनाजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ १८ ॥

यमदण्डके समान एक तेजस्वी भयंकर बाण धनुषपर चढाकर क्रोधित होकर भीमसेनके दोनों स्तनोंका मध्यस्थल विद्ध किया ॥ १८ ॥

स गाढविद्धो व्यथितः स्यन्दनोपस्थ आविशत् ।
स निषण्णो रथोपस्थे मूर्छामभिजगाम ह ॥ १९ ॥

भीमसेन उस बाणसे अत्यन्त ही विद्ध पीडित होकर रथकी बैकठमें बैठ गये और वहां बैठते ही वह मूर्च्छित हो गये ॥ १९ ॥

तं दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २० ॥

भीमसेनको प्रहारसे पीडित मूर्च्छित देखकर अभिमन्यु आदि पाण्डवोंके महावीर महारथ वीरोंसे यह नहीं सहन हुआ ॥ २० ॥

ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम् ।
पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि ॥ २१ ॥

फिर वे सब आपके पुत्र दुर्योधनके मस्तकके ऊपर निर्भयतासे अपने प्रचण्ड बाणोंको वर्षाने लगे ॥ २१ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २२ ॥

महाबलवान् भीमसेन भी क्षणभरमें सावधान हो गये; उन्होंने पहिले तीन बाणोंसे दुर्योधनको विद्ध करके फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ २२ ॥

शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः स विद्धो व्यपयाद्रणात् ॥ २३ ॥

तब महाधनुर्धर पाण्डुपुत्र भीमने शल्यको स्वर्ण पंखसे युक्त पच्चीस बाणोंसे विद्ध किया। शल्य बाणोंसे पीडित होके युद्धसे पृथक् हुए ॥ २३ ॥

प्रत्युद्ययुस्ततो भीमं तव पुत्राश्चतुर्दश ।
सेनापतिः सुषेणश्च जलसंधः सुलोचनः ॥ २४ ॥
उग्रो भीमरथो भीमो भीमबाहुरलोलुपः ।
दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ॥ २५ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर सेनापति, सुषेण, जलसन्ध, सुलोचन, उग्र, भीमरथ, भीम, वीरबाहु, अलोलुप, दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विवित्सु, विकट और सम ये तुम्हारे चौदह पुत्र इकट्ठे होकर ॥ २४–२५ ॥

विसृजन्तो बहून्बाणान्क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
भीमसेनमभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम् ॥ २६ ॥

क्रोधसे लाल नेत्र कर भीमसेनके समीप जाकर उनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा करके उन्हें दृढ रूपसे विद्ध करने लगे ॥ २६ ॥

पुत्रांस्तु तव संप्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः ।
सृक्किणी विलिहन्वीरः पशुमध्ये वृको यथा ।
सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ २७ ॥

महाबाहु महाबली वीर भीमसेन तुम्हारे पुत्रोंको इस प्रकारसे बाण चलाते देखकर उनकी ओर अपने मुंहके दोनों कोनोंको चाटते हुए ऐसे दौंडे जैसे पशुओंकी ओर भेडिया दौडता है। उनके सम्मुख पहुंचके पाण्डुकुमारने क्षुरप्र अस्त्रसे सेनापतिका सिर काट डाला ॥२७॥

जलसंधं विनिर्भिद्य सोऽनयद्यमसादनम् ।
सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् जलसन्धका संहार करके यमपुरीमें भेज दिया। और सुषेणका भी वध करके मृत्युके हवाले किया ॥ २८ ॥

उग्रस्य सशिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि ।
पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ॥ २९ ॥

उग्रका शिरस्त्राणके सहित दोनों कुण्डलोंसे शोभायमान चन्द्रमाके समान मस्तकको एक भल्लसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २९ ॥

भीमबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुंससारथिम् ।
निनाय समरे भीमः परलोकाय मारिष ॥ ३० ॥

हे आर्य ! भीमने भीमबाहुको घोडे, ध्वज और सारथीके सहित सत्तर बाणोंसे मारकर परलोक पहुंचा दिया ॥ ३० ॥

भीमं भीमरथं चोभौ भीमसेनो हसन्निव ।
भ्रातरौ रभसौ राजन्ननयद्यमसादनम् ॥ ३१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् भीमसेनने वेगशील उन्मत्त भीम और भीमरथ दोनों भाइयोंको मानो हंसते हंसते मारकर यमपुरीमें भेज दिया ॥ ३१ ॥

ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे ।
मिषतां सर्वसैन्यानामनयद्यमसादनम् ॥ ३२ ॥

अनन्तर भीमसेनने तेरे पुत्र सुलोचनको उस महा युद्धमें सर्व सेनाके सम्मुख क्षुरप्रबाणसे यमपुरीमें भेज दिया ॥ ३२ ॥

पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम् ।
शेषा येऽन्येऽभवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः ।
विप्रद्रुता दिशो राजन्वध्यमाना महात्मना ॥ ३३ ॥

राजन् ! इनसे भिन्न और जो सब तुम्हारे पुत्र वहांपर बाकी थे, वे सब उस समय भीमसेन का पराक्रम देख उनके भयसे पीडित हो उन महामना पाण्डुकुमारके बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध होकर इधर उधर भाग गये ॥ ३३ ॥

ततोऽब्रवीच्छांतनवः सर्वानेव महारथान् ।
एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥ ३४ ॥
यथाप्राग्र्यान्यथाज्येष्ठान्यथाशूरांश्च सङ्गतान् ।
निपातयत्युग्रधन्वा तं प्रमथ्नीत पार्थिवाः ॥ ३५ ॥

अनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्मने सब महारथियोंसे कहा; हे महारथी लोगो ! प्रचण्ड धनुषधारी यह भीमसेन रणभूमिमें क्रुद्ध होकर श्रेष्ठ, ज्येष्ठ और महारथि धृतराष्ट्र पुत्रोंको चाहे कोई कैसे ही शूरवीर क्यों न होवें, सबका वध कर रहा है; इससे उसको तुम सब राजा लोग मिलकर शीघ्र ही निवारण करो ॥ ३४–३५ ॥

एवमुक्तास्ततः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलम् ॥ ३६ ॥

तब कौरवोंकी सम्पूर्ण सेना भीष्मकी आज्ञाके अनुसार महाबली भीमसेनकी ओर क्रुद्ध होकर दौडी ॥ ३६ ॥

भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशां पते ।
अपतत्सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ ! राजा भगदत्त मदचूते हुए मतवारे गजराज पर चढे हुए सहसा जहां भीमसेन खडे थे, उस स्थानपर आ पहुंचे ॥ ३७ ॥

आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलाशितैः ।
अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम् ॥ ३८ ॥

उन्होंने भीमके निकट पहुंचकर उन्हें अपने बाणोंसे ऐसा छिपा दिया, जैसे मेघ सूर्यको छिपा देता है ॥ ३८ ॥

अभिमन्युमुखास्तत्र नामृष्यन्त महारथाः ।
भीमस्याच्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः ॥ ३९ ॥

उस समय अभिमन्यु आदि महारथ योद्धाओंने भीमका बाणोंसे छिपना न सहकर, युद्धमें अपने बाहुबलका आश्रय ले ॥ ३९ ॥

त एनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ।
गजं च शरवृष्ट्या तं बिभिदुस्ते समन्ततः ॥ ४० ॥

चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके भगदत्तको रोकने लगे और उनके हाथीको अस्त्रोंसे छिपा दिया ॥ ४० ॥

स शस्त्रवृष्ट्याभिहतः प्राद्रवद्द्विगुणं पदम् ।
प्राग्ज्योतिषगजो राजन्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ॥ ४१ ॥
संजातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद्रणे ।
गभस्तिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४२ ॥

राजन् ! वह प्राग्ज्योतिष नरेश भगदत्तका गजराज उन जो नाना प्रकारके चिह्न धारण करनेवाले और अत्यंत तेजस्वी थे ऐसे सब महारथोंके अनेक चोखे शस्त्रोंसे विद्ध होकर दुगुने पदसे दौडने लगा और मस्तकपर रक्तरंजित हो रणक्षेत्रमें ऐसा शोभित हुआ, जैसे सूर्यके किरणसे बादलके समूहमें अनेक रङ्गसे युक्त महामेघ दीख पडता है ॥ ४१–४२ ॥

स चोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः ।
अभ्यधावत तान्सर्वान्कालोत्सृष्ट इवान्तकः ।
द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम् ॥ ४३ ॥

वह मदचूता हुआ मतवारा हाथी भगदत्तके चलानेपर द्विगुण वेगसे चलकर निज पांवसे पृथ्वीको कंपाता हुआ काल प्रेरित यमराजके समान उन सब योद्धाओंकी ओर दौडा ॥४३॥

तस्य तत्सुमहद्रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः ।
असह्यं मन्यमानास्ते नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ ४४ ॥

सम्पूर्ण महारथ योद्धा उस महा गजराजका अत्यन्त भयानक रूप देखकर अपने लिये असह्य मानकर भयभीत हो गये ॥ ४४ ॥

ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ।
आजघान नरव्याघ्र शरेण नतपर्वणा ॥ ४५ ॥

नरव्याघ्र ! तदनंतर राजा भगदत्तने क्रुद्ध होकर नतपर्व बाणोंसे भीमसेनके दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया ॥ ४५ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः ।
मूर्छयाभिपरीताङ्गो ध्वजयष्टिमुपाश्रितः ॥ ४६ ॥

महा धनुर्धारी महारथ भीमसेन राजा भगदत्तके बाणसे अत्यन्त विद्ध और मूर्छित होकर रथके ध्वजाके दण्डको पकडकर स्थित हुए ॥ ४६ ॥

तांस्तु भीतान्समालक्ष्य भीमसेनं च मूर्छितम् ।
ननाद बलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान् ॥ ४७ ॥

प्रतापी भगदत्तने उन सब महारथ योद्धाओंको भयभीत और भीमसेनको मूर्च्छित देखकर बलपूर्वक सिंहनाद किया ॥ ४७ ॥

ततो घटोत्कचो राजन्प्रेक्ष्य भीमं तथागतम् ।
संक्रुद्धो राक्षसो घोरस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर महा भयानक राक्षस घटोत्कच भीमसेनको मूर्छित देखकर क्रुद्ध होके उस ही स्थानपर अन्तर्हित हुआ ॥ ४८ ॥

स कृत्वा दारुणां मायां भीरूणां भयवर्धिनीम् ।
अदृश्यत निमेषार्धाद्घोररूपं समाश्रितः ॥ ४९ ॥

और थोडे ही समयके अनन्तर कायरोंके भयको बढानेवाली अत्यंत दारुण माया उत्पन्न करके वह आधे निमेषमें ही भयङ्कर रूप धारण करके दृष्टिगोचर हुआ ॥ ४९ ॥

ऐरावतं समारुह्य स्वयं मायामयं कृतम् ।
तस्य चान्येऽपि दिङ्नागा बभूवुरनुयायिनः ॥ ५० ॥
अञ्जनो वामनश्चैव महापद्मश्च सुप्रभः ।
त्रय एते महानागा राक्षसैः समधिष्ठिताः ॥ ५१ ॥
महाकायास्त्रिधा राजन्प्रस्रवन्तो मदं बहु ।
तेजोवीर्यबलोपेता महबलपराक्रमाः ॥ ५२ ॥

घटोत्कच अपनीही माया द्वारा बने हुए ऐरावतके ऊपर चढके भयंकर मूर्ति धारण करके सबके सम्मुख ही प्रकट हुआ । राजन् ! वे सभी विशालकाय दिग्गज तीन स्थानोंसे बहुत मद बहा रहे थे और राक्षसोंके सहित अनेक मदचूते तेजस्वी और बडे बडे चार दांतसे युक्त अंजन, वामन और उत्तम कांतिसे युक्त महापद्म ये तीनों दिग्गज उसके अनुगामी हुए । वे तेज, बल, वीर्य, महावेग और पराक्रमसे युक्त थे ॥ ५०–५२ ॥

घटोत्कचस्तु स्वं नागं चोदयामास तं ततः ।
सगजं भगदत्तं तु हन्तुकामः परंतपः ॥ ५३ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले घटोत्कचने हाथीके सहित भगदत्तका नाश करनेके निमित्त अपने हाथीको चलाया ॥ ५३ ॥

×

ते चान्ये चोदिता नागा राक्षसैस्तैर्महाबलैः ।
परिपेतुः सुसंरब्धाश्चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्दिशम्
भगदत्तस्य तं नागं विषाणैस्तेऽभ्यपीडयन् ॥ ५४ ॥

और दूसरे हाथी भी जिनके चार-चार दांत थे महा बलवान् राक्षसोंके चलानेसे क्रुद्ध होकर भगदत्तके हाथीको चारों ओरसे दांतोंसे पीडित करने लगे ॥ ५४ ॥

संपीड्यमानस्तैर्नागैर्वेदनार्तः शरातुरः
सोऽनदत्सुमहानादमिन्द्राशनिसमस्वनम् । ॥ ५५ ॥

वह हाथी पहिलेहीसे अभिमन्यु आदि महारथ वीरोंके बाणोंसे पीडित था; फिर दिग्हस्तियोंके दांतोंके आघातसे बहुत ही पीडित होकर जोरजोरसे चीत्कार करने लगा । उसकी आवाज इन्द्रके वज्रके गडगडाहटके समान जान पडती थी ॥ ५५ ॥

तस्य तं नदतो नादं सुघोरं भीमनिस्वनम्
श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद्द्रोणं राजानं च सुयोधनम् ॥ ५६ ॥

हे भारत ! भीष्म उस भगदत्तके हाथीका भयंकर आवाजके साथ महा घोर शब्द सुनकर राजा दुर्योधन और द्रोणाचार्यसे बोले ॥ ५६ ॥

एष युध्यति संग्रामे हैडिम्बेन दुरात्मना ।
भगदत्तो महेष्वासः कृच्छ्रेण परिवर्तते ॥ ५७ ॥

महा धनुर्द्धर राजा भगदत्त घटोत्कच राक्षसके सङ्ग युद्ध कर रहे हैं; वह असाध्य कार्यमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ ५७ ॥

राक्षसश्च महामायः स च राजातिकोपनः ।
तौ समेतौ महावीर्यौ कालमृत्युसमावुभौ ॥ ५८ ॥

राक्षस घटोत्कच बडा भारी शरीरवाला है और भगदत्त भी महा क्रोधी है; ये दोनों ही महा वीर युद्धमें एक दूसरेके मृत्यु स्वरूप हैं ॥ ५८ ॥

श्रूयते ह्येष हृष्टानां पाण्डवानां महास्वनः ।
हस्तिनश्चैव सुमहान्भीतस्य रुवतो ध्वनिः ॥ ५९ ॥

यह देखो, पाण्डवोंकी हर्षसूचक महाध्वनि और भयसे विकल भगदत्तके हाथीका अत्यन्त ही आर्त्तनाद सुनाई दे रहा है ॥ ५९ ॥

तत्र गच्छाम भद्रं वो राजानं परिरक्षितुम् ।
अरक्ष्यमाणः समरे क्षिप्रं प्राणान्विमोक्ष्यते ॥ ६० ॥

इससे तुम लोगोंका मङ्गल हो, चलो हम सब लोग राजा भगदत्तकी रक्षा करें; इस समयमें रक्षा न करनेसे वह शीघ्र ही युद्धमें प्राण त्याग करेंगे ॥ ६० ॥

ते त्वरध्वं महावीर्याः किं चिरेण प्रयामहे ।
महान्हि वर्त्तते रौद्रः संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ६१ ॥

हे महाबली महारथगण ! तुम लोग शीघ्र चलो, विलम्ब मत करो; उन दोनोंका अत्यन्त दारुण रोवोंको खडा करनेवाला संग्राम हो रहा है ॥ ६१ ॥

भक्तश्च कुलपुत्रश्च शूरश्च पृतनापतिः ।
युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युताः ॥ ६२ ॥

हे अक्षय पराक्रमी वीर लोग ! राजा भगदत्त उत्तम कुलकी सन्तान, शूरवीर, हमारे भक्त और सेनापति हैं; उनका परित्राण करना हम लोगोंका अत्यन्त ही कर्त्तव्य कार्य है ॥६२॥

भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा भारद्वाजपुरोगमाः ।
सहिताः सर्वराजानो भगदत्तपरीप्सया
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत् ॥ ६३ ॥

भीष्मका यह वचन सुनकर द्रोणाचार्यको आगे करके सम्पूर्ण राजा लोग भगदत्तकी रक्षाके निमित्त शीघ्रताके सहित उनकी ओर गमन करने लगे, जहां भगदत्त थे ॥ ६३ ॥

तान्प्रयातान्समालोक्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
पाञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान् ॥ ६४ ॥

युधिष्ठिरकी ओरके पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा उन सब महारथियोंको घटोत्कचकी ओर जाता हुआ देखकर उन शत्रुओंके पीछे दौडे ॥ ६४ ॥

तान्यनीकान्यथालोक्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
ननाद सुमहानादं विस्फोटमशनेरिव ॥ ६५ ॥

प्रतापी राक्षसेन्द्र घटोत्कचने उस सब सेनाको आते देखकर बडे जोरसे भयानक शब्द करके आकाशमण्डलको पूरित कर दिया, मानो वज्र फट पडा हो ॥ ६५ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा दृष्ट्वा नागांश्च युध्यतः
भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाजमभाषत ॥ ६६ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्म उसका महानाद सुन और उन दिग्हाथियोंको युद्ध करते हुए देखकर द्रोणाचार्यसे फिर बोले; ॥ ६६ ॥

न रोचते मे संग्रामो हैडिम्बेन दुरात्मना ।
बलवीर्यसमाविष्टः ससहायश्च सांप्रतम् ॥ ६७ ॥

इस दुष्टात्मा घटोत्कचके सङ्ग युद्ध करनेमें मेरी इच्छा नहीं होती है, यह दुष्टात्मा उत्तम प्रबल सहायता और बलवीर्य पराक्रमसे युक्त है; ॥ ६७ ॥

नैव शक्यो युधा जेतुमपि वज्रभृता स्वयम् ।
लब्धलक्ष्यः प्रहारी च वयं च श्रान्तवाहनाः ।
पाञ्चालैः पाण्डवेयैश्च दिवसं क्षतविक्षताः ॥ ६८ ॥

इस समय उसे साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी युद्धमें जीतनेमें समर्थ न होंगे । स्वभावहीसे लक्ष्यके वेध और प्रहार करनेमें समर्थ है । विशेष करके हम लोगोंके वाहन अब इस समय थक गये हैं, हम लोग भी आज पाञ्चाल और पाण्डवोंसे क्षत-विक्षत हो रहे हैं ॥ ६८ ॥

तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ॥ ६९ ॥

इस समय पाण्डवोंकी जीत हुई है, उन लोगोंके संग युद्ध करनेमें अब मेरी इच्छा नहीं होती है, इससे अब सेनाको युद्धसे निवृत्त करो । कल शत्रुओंके सङ्ग युद्ध किया जावेगा ॥ ६९ ॥

पितामहवचः श्रुत्वा तथा चक्रुः स्म कौरवाः ।
उपायेनापयानं ते घटोत्कचभयार्दिताः ॥ ७० ॥

घटोत्कचके भयसे पीडित कौरव लोग पितामह भीष्मकी बात सुनकर, रात्री उपस्थित हुई देखके यही एक उपाय अवलम्बन करके हर्ष प्रकाश करते हुए सेनाके युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त घोषणा करने लगे ॥ ७० ॥

कौरवेषु निवृत्तेषु पाण्डवा जितकाशिनः ।
सिंहनादमकुर्वन्त शङ्खवेणुस्वनैः सह ॥ ७१ ॥

कौरवोंके निवृत्त होनेपर जय पाये हुए पाण्डव लोग अपने शंख, वेणु आदि बाजोंके सहित सिंहनाद करने लगे ॥ ७१ ॥

एवं तदभवद्युद्धं दिवसं भरतर्षभ ।
पाण्डवानां कुरूणां च पुरस्कृत्य घटोत्कचम् ॥ ७२ ॥

हे भारत ! उस दिन कौरवों और पाण्डवोंका घटोत्कचको आगे करके इसी प्रकारसे युद्ध हुआ था ॥ ७२ ॥

कौरवास्तु ततो राजन्प्रययुः शिबिरं स्वकम् ।
व्रीडमाना निशाकाले पाण्डवेयैः पराजिताः ॥ ७३ ॥

राजन् ! तदनन्तर निशाके प्रारंभ कालमें पाण्डव लोगोंसे पराजित और लज्जित होकर कौरव लोगोंने अपने शिविरोंमें प्रवेश किया ॥ ७३ ॥

शरविक्षतगात्राश्च पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
युद्धे सुमनसो भूत्वा शिबिरायैव जग्मिरे ॥ ७४ ॥

युद्धमें अस्त्रोंसे क्षतविक्षत शरीर महारथी पाण्डव लोग भी प्रसन्नचित्त होकर अपने शिविरको लौटे ॥ ७४ ॥

पुरस्कृत्य महाराज भीमसेनघटोत्कचौ ।
पूजयन्तस्तदान्योन्यं मुदा परमया युताः ॥ ७५ ॥
नदन्तो विविधान्नादांस्तूर्यस्वनविमिश्रितान् ।
सिंहनादांश्च कुर्वाणा विमिश्राञ्शङ्खनिस्वनैः ॥ ७६ ॥

महाराज ! भीमसेन और घटोत्कचको आगे करके परस्पर एक दूसरेकी प्रशंसा करते हुए पांडव सैनिक बडी प्रसन्नतापूर्वक नानाप्रकारके सिंहनाद करते हुए अपने अपने शिबिरोंमें जाने लगे। उनकी उस गर्जनाके साथ विविध वाद्योंकी ध्वनि तथा शंखोंके शब्द भी मिले हुए थे ॥ ७५–७६ ॥

विनदन्तो महात्मानः कम्पयन्तश्च मेदिनीम् ।
घट्टयन्तश्च मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रयाताः शिबिरायैव निशाकाले परन्तपाः ॥ ७७ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले उन पांडव लोगोंने अत्यन्त आनन्दित होकर आपके पुत्र दुर्योधनके मर्मभेदक शङ्ख, नफीरी आदि विविध बाजोंके सङ्ग सिंहनाद करके पृथ्वीको कंपाते हुए सन्ध्याके समय अपने शिबिरोंमें प्रवेश किया ॥ ७७ ॥

दुर्योधनस्तु नृपतिर्दीनो भ्रातृवधेन च ।
मुहूर्तं चिन्तयामास बाष्पशोकसमाकुलः ॥ ७८ ॥

राजा दुर्योधनने अपने भाइयोंके वधसे दीन चित्तसे नेत्रोंसे आंसू बहाते हुए शोकित होकर मुहूर्त्त भर चिंता की ॥ ७८ ॥

ततः कृत्वा विधिं सर्वं शिबिरस्य यथाविधि ।
प्रदध्यौ शोकसंतप्तो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ ७९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ २६०६ ॥

अनन्तर शिबिरके सब कार्योंका यथाविधिसे विधान करके फिर भाइयोंके मारेजानेके शोकसे दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ॥ ७९ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ २६०६ ॥

: ६१ :

धृतराष्ट्र उवाच

भयं मे सुमहज्जातं विस्मयश्चैव सञ्जय ।
श्रुत्वा पाण्डुकुमाराणां कर्म देवैः सुदुष्करम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! पाण्डुपुत्रोंको देवताओंसे भी दुस्साध्य पराक्रम करते हुए सुनकर, मुझे अत्यन्त ही भय और विस्मय उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

पुत्राणां च पराभवं श्रुत्वा सञ्जय सर्वशः ।
चिन्ता मे महती सूत भविष्यति कथं त्विति ॥ २ ॥

हे सूत सञ्जय ! अपने पुत्रोंका सब भांतिसे पराजयवृत्त सुनकर, " इसके अनन्तर क्या होगा ? " यह बडी भारी चिन्ता मेरे चित्तको व्याकुल कर रही है ॥ २ ॥

ध्रुवं विदुरवाक्यानि धक्ष्यन्ति हृदयं मम ।
यथा हि दृश्यते सर्वं दैवयोगेन सञ्जय ॥ ३ ॥

हे सञ्जय ! जो सब कार्य दैवके आधीन देख रहा हूं, उससे निश्चय ही विदुरकी बात मेरे हृदयको जलाकर सन्तापित करेगी ॥ ३ ॥

यत्र भीष्ममुखाञ्शूरानस्त्रज्ञान्योधसत्तमान् ।
पाण्डवानामनीकानि योधयन्ति प्रहारिणः ॥ ४ ॥

क्योंकि पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोग योद्धाओंमें श्रेष्ठ सब शस्त्रोंके जाननेवाले महावीर भीष्म आदिके संग युद्ध करके उन लोगोंके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार कर रहे हैं ॥ ४ ॥

केनावध्या महात्मानः पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
केन दत्तवरास्तात किं वा ज्ञानं विदन्ति ते
येन क्षयं न गच्छन्ति दिवि तारागणा इव ॥ ५ ॥

हे सूत ! महात्मा महाबलवान् पाण्डव लोग किस कारणसे अवध्य हुए ? जब कि वह लोग आकाशमें रहनेवाले तारोंकी भांति नष्ट नहीं होते हैं, तब उन लोगोंको किसीने वर दिया होगा, अथवा वह लोग कुछ मन्त्र जानते होंगे ॥ ५ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं सैन्यं स्म पाण्डवैः ।
मय्येव दण्डः पतति दैवात्परमदारुणः ॥ ६ ॥

पाण्डव लोग जो बार बार मेरी सेनाका नाश कर रहे हैं इसको मैं नहीं सह सकता हूं। परम दारुण दण्ड दैवकी ओरसे मेरे ही ऊपर पतित हुआ है ॥ ६ ॥

यथावध्याः पाण्डुसुता यथा वध्याश्च मे सुताः ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व यथातत्त्वेन सञ्जय ॥ ७ ॥

हे सञ्जय ! पाण्डव लोग जिस कारणसे अवध्य और मेरे पुत्र जिस हेतुसे वध्य हुए हैं; उसे तुम यथार्थ रूपसे मेरे समीप वर्णन करो ॥ ७ ॥

न हि पारं प्रपश्यामि दुःखस्यास्य कथञ्चन ।
समुद्रस्येव महतो भुजाभ्यां प्रतरन्नरः ॥ ८ ॥

मैं मनुष्यके दोनों भुजाओंके आसरे महा समुद्र पार होनेके समान किसी प्रकारसे भी इस दुःख सागरसे पार होनेका उपाय नहीं देखता हूं ॥ ८ ॥

पुत्राणां व्यसनं मन्ये ध्रुवं प्राप्तं सुदारुणम् ।
घातयिष्यति मे पुत्रान्सर्वान्भीमो न संशयः ॥ ९ ॥

मैं निश्चय ही अपने पुत्रोंमें महा दारुण व्यसनको उपस्थित हुआ समझता हूं। भीम मेरे पुत्रोंका संहार करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥

न हि पश्यामि तं वीरं यो मे रक्षेत्सुतान्रणे ।
ध्रुवं विनाशः समरे पुत्राणां मम सञ्जय ॥ १० ॥

हे सञ्जय ! मैं ऐसा वीर किसीको भी नहीं देखता हूं कि युद्धमें मेरे पुत्रोंकी रक्षा कर सके; इससे मेरे पुत्रोंका निस्सन्देह युद्धमें विनाश होगा ॥ १० ॥

तस्मान्मे कारणं सूत युक्तिं चैव विशेषतः ।
पृच्छतोऽद्य यथातत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ११ ॥

अतः, हे सञ्जय ! मैं तुमसे यह पूछता हूं, कि पाण्डवोंके जय और मेरे पुत्रोंके पराजयके विषयमें युक्ति युक्त कारण क्या है? वह तुम मेरे निकट यथार्थरूपसे आज वर्णन करो ॥ ११ ॥

दुर्योधनोऽपि यच्चक्रे दृष्ट्वा स्वान्विमुखान्रणे ।
भीष्मद्रोणौ कृपश्चैव सौबलेयो जयद्रथः ।
द्रौणिर्वापि महेष्वासो विकर्णो वा महाबलः ॥ १२ ॥
निश्चयो वापि कस्तेषां तदा ह्यासीन्महात्मनाम् ।
विमुखेषु महाप्राज्ञ मम पुत्रेषु सञ्जय ॥ १३ ॥

और दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शकुनि, जयद्रथ, महाधनुर्धर अश्वत्थामा और महाबली विकर्ण आदि सब महा बलवान् वीर, महा धनुर्द्धर योद्धाओंने युद्धसे विमुख होकर क्या किया ? हे महाप्राज्ञ ! मेरे पुत्रोंके युद्धसे पराजित होनेपर उस समयमें उन महामना महारथियोंने क्या निश्चय किया ? ॥ १२–१३ ॥

सञ्जय उवाच

शृणु राजन्नवहितः श्रुत्वा चैवावधारय ।
नैव मन्त्रकृतं किञ्चिन्नैव मायां तथाविधाम् ।
न वै विभीषिकां काञ्चिद्राजन्कुर्वन्ति पाण्डवाः ॥ १४ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! चित्त लगाकर सुनिये और निश्चय कीजिये। पाण्डव लोगोंने न तो कुछ मन्त्र प्रयोग किया, न कुछ मायाका कार्य ही वे जानते हैं और कुछ इन्द्रजाल वा बाजीगरी ही युद्धमें उत्पन्न करते हैं ॥ १४ ॥

युध्यन्ति ते यथान्यायं शक्तिमन्तश्च संयुगे।
धर्मेण सर्वकार्याणि कीर्तितानीति भारत।
आरभन्ते सदा पार्थाः प्रार्थयाना महद्यशः ॥ १५ ॥

वह लोग पराक्रमी हैं, न्यायके अनुसार युद्ध यथा उचित ही करते हैं। हे भारत ! पाण्डव लोग सदा ही अत्यन्त यशकी इच्छासे धर्म कार्योंहीसे जीविका आदि सम्पूर्ण कार्योंका निर्वाह करते हैं ॥ १५ ॥

न ते युद्धान्निवर्तन्ते धर्मोपेता महाबलाः।
श्रिया परमया युक्ता यतो धर्मस्ततो जयः।
तेनावध्या रणे पार्था जययुक्ताश्च पार्थिव ॥ १६ ॥

वह महाबलवान् पाण्डुपुत्र युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं। अपने धर्मके अनुयायी होकर ही युद्धमें प्रवृत्त हुए हैं; इसलिये वे महाबली और उत्तम समृद्धिसे युक्त हैं। "जहां धर्म है, वहां ही जय रहता है" इस ही कारणसे वह कुन्तीके पुत्र सब युद्धमें अवध्य और जयी हो रहे हैं ॥ १६ ॥

तव पुत्रा दुरात्मानः पापेष्वभिरताः सदा।
निष्ठुरा हीनकर्माणस्तेन हीयन्ति संयुगे ॥ १७ ॥

और तुम्हारे पुत्र लोग दुष्ट, निष्ठुर, नीचकर्म करनेवाले और सदा पाप कार्य करनेहीमें रत रहते हैं, इस ही कारणसे वे लोग युद्धमें पराजित होते हैं ॥ १७ ॥

सुबहूनि नृशंसानि पुत्रैस्तव जनेश्वर।
निकृतानीह पाण्डूनां नीचैरिव यथा नरैः ॥ १८ ॥

जनेश्वर ! आपके पुत्रोंने पाण्डवोंके विषयमें नीच पुरुषोंकी भांति अनेक पापकर्मोंका आचरण तथा छल-कपट किया था ॥ १८ ॥

सर्वं च तदनादृत्य पुत्राणां तव किल्बिषम्।
सापह्नवाः सदैवासन्पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
न चैतान्बहु मन्यन्ते पुत्रास्तव विशां पते ॥ १९ ॥

पाण्डुके बडे भाई हे पृथ्वीपते ! परन्तु पाण्डव लोग तुम्हारे पुत्रोंके उन नीचकर्मोंको क्षमा और उसे यत्नपूर्वक गोपन करते थे। इतना होनेपर भी आपके पुत्र पाण्डवोंको अधिक आदर नहीं देते हैं ॥ १९ ॥

तस्य पापस्य सततं क्रियमाणस्य कर्मणः ।
सम्प्राप्तं सुमहद्धोरं फलं किंपाकसंनिभम् ।
स तद्भुंक्ष्व महाराज सपुत्रः ससुहृज्जनः ॥ २० ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंने जो उन लोगोंको सदैव अपमानित किया था, इस समय उन्हीं सब पापकर्मोंका महाकाल रूपी दारुण फल उदय हुआ है । महाराज ! उसे तुम सुहृद और पुत्रोंके सहित भोग करो ॥ २० ॥

नावबुध्यसि यद्राजन्वार्यमाणः सुहृज्जनैः ।
विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २१ ॥

सुहृदोंके तथा महात्मा विदुर, भीष्म और द्रोणाचार्यके निवारण करने पर भी जब तुमने युद्धका परिणाम नहीं समझा, उसपर ध्यान नहीं दिया ॥ २१ ॥

तथा मया चाप्यसकृद्वार्यमाणो न गृह्णसि ।
वाक्यं हितं च पथ्यं च मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
पुत्राणां मतमास्थाय जितान्मन्यसि पाण्डवान् ॥ २२ ॥

मैंने भी तुम्हें यथार्थ हितके वचनोंसे निवारण किया, परन्तु जैसे रोगी पुरुष पथ्य और औषधि नहीं ग्रहण करता है, वैसे ही तुमने भी मेरे कहे हुए उन हितके वचनोंको नहीं ग्रहण किया; पुत्रोंके मतमें सहमत होके ही पाण्डवोंको पराजित समझ लिया था ॥ २२ ॥

शृणु भूयो यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
कारणं भरतश्रेष्ठ पाण्डवानां जयं प्रति ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाश्रुतमरिन्दम । ॥ २३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! तुमने पाण्डवोंके जयके विषयमें मुख्य कारण जो मुझसे पूछा, उसे मैंने जैसा सुन रक्खा है वह फिर तुमसे कहता हूं । तुम भली भांति श्रवण करो ॥ २३ ॥

दुर्योधनेन सम्पृष्ट एतमर्थं पितामहः ।
दृष्ट्वा भ्रातॄन्रणे सर्वान्निर्जितान्सुमहारथान् ॥ २४ ॥

युद्धमें अपने सब महारथी भाईयोंको पराजित हुआ देखकर, यही विषय दुर्योधनने पितामह भीष्मसे पूछा था ॥ २४ ॥

शोकसम्मूढहृदयो निशाकाले स्म कौरवः ।
पितामहं महाप्राज्ञं विनयेनोपगम्य ह ।
यदब्रवीत्सुतस्तेऽसौ तन्मे शृणु जनेश्वर ॥ २५ ॥

उन्होंने दुर्योधनसे जो कुछ कहा, वह मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं । हे प्रजानाथ ! रात्रिके समय राजा दुर्योधन अत्यन्त पराक्रमी भाइयोंको युद्धमें पराजित देखकर शोकित-चित्तसे महा बुद्धिमान् पितामह भीष्मके समीप जाकर विनयपूर्वक यह वचन बोले ॥ २५ ॥

×

दुर्योधन उवाच

त्वं च द्रोणश्च शल्यश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २६ ॥
भूरिश्रवा विकर्णश्च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ २७ ॥

हे पितामह ! तुम, पराक्रमी द्रोणाचार्य, शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, हार्दिक्य, कृतवर्मा, काम्बोजराज, सुदक्षिण, भूरिश्रवा, विकर्ण और पराक्रमी भगदत्त आदि आप सब लोग महारथ और उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं, युद्धमें उत्साह करके प्राण त्यागनेमें आप सब लोग लोकमें विख्यात हैं ॥ २६-२७ ॥

त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ।
पाण्डवानां समस्ताश्च न तिष्ठन्ति पराक्रमे ॥ २८ ॥

मेरी समझमें तीनों लोकके बीच आप लोगोंके समान कोई योद्धा नहीं है; सम्पूर्ण पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा भी आपके पराक्रमको नहीं सह सकते हैं ॥ २८ ॥

तत्र मे संशयो जातस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।
यं समाश्रित्य कौन्तेया जयन्त्यस्मान्पदे पदे ॥ २९ ॥

इससे मेरे मनमें यह सन्देह उत्पन्न हुआ है, कि पाण्डव लोग किसके आसरेसे पद पदमें जयसे युक्त होते हैं ? जिसके आसरेसे वह लोग जयी होते हैं, वह तुम मुझसे वर्णन करो ॥ २९ ॥

भीष्म उवाच

शृणु राजन्वचो मह्यं यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
बहुशश्च ममोक्तोऽसि न च मे तत्त्वया कृतम् ॥ ३० ॥

भीष्म बोले– हे कौरवराज ! मैं जो तुमसे कहता हूं, उसे तुम सुनो; मैंने तुमसे बहुत बार कहा था, परन्तु तुमने मेरी बात नहीं ग्रहण की ॥ ३० ॥

क्रियतां पाण्डवैः सार्धं शमो भरतसत्तम ।
एतत्क्षममहं मन्ये पृथिव्यास्तव चाभिभो ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अब भी कहता हूं, कि पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करो; मेरे विचारमें सन्धिका करना ही तुम्हारे और सम्पूर्ण पृथ्वीके निमित्त मंगलजनक है ॥ ३१ ॥

भुङ्क्ष्वेमां पृथिवीं राजन्भ्रातृभिः सहितः सुखी ।
दुर्हृदस्तापयन्सर्वान्नन्दयंश्चापि बान्धवान् ॥ ३२ ॥

राजन् ! तुम पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करके भाइयोंके सहित सुखी होके, सभी शत्रुओंको संताप देके, सब मित्र और बन्धु बान्धवोंके साथ आनन्दित होके पृथ्वीका भोग करो ॥ ३२ ॥

न च मे कोऽशतस्तात श्रुतवानसि वै पुरा ।
तदिदं समनुप्राप्तं यत्पाण्डूनवमन्यसे ॥ ३३ ॥

हे पुत्र ! तुमने पहिले पाण्डवोंको अपमानित किया था, मैंने उस समय मुक्त कण्ठसे निवारण किया था; तो भी तुमने मेरी बात नहीं सुनी थी; उसहीका फल इस समय तुमको मिल रहा है ॥ ३३ ॥

यश्च हेतुरवध्यत्वे तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
तं शृणुष्व महाराज मम कीर्तयतः प्रभो ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! अनायास ही कठिन कर्मोंके करनेवाले पाण्डवोंके अवध्य होनेका कारण वर्णन करता हूं, उसे तुम सुनो ॥ ३४ ॥

नास्ति लोकेषु तद्भूतं भविता नो भविष्यति ।
यो जयेत्पाण्डवान्संख्ये पालिताञ्शार्ङ्गधन्वना ॥ ३५ ॥

शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णसे रक्षित पाण्डवोंको कोई युद्धमें पराजित करे, ऐसा पुरुष इस लोकके बीचमें कोई भी नहीं है, पहिले न हुआ और न भविष्यहीमें होगा ॥ ३५ ॥

यत्तु मे कथितं तात मुनिभिर्भावितात्मभिः ।
पुराणगीतं धर्मज्ञ तच्छृणुष्व यथातथम् ॥ ३६ ॥

हे पुत्र ! धर्म जाननेवाले पवित्र अंतकरणवाले महात्मा मुनियोंने इस पुरानी कथाको जिस भांति मेरे समीप वर्णन किया था, उसे मैं ज्योंकी त्यों तुमसे कहता हूं ॥ ३६ ॥

पुरा किल सुराः सर्वे ऋषयश्च समागताः ।
पितामहमुपासेदुः पर्वते गन्धमादने ॥ ३७ ॥

पहिले समयमें सब देवता और ऋषि लोग गन्धमादन पर्वतपर जाकर ब्रह्माके समीप विराजमान हुए ॥ ३७ ॥

मध्ये तेषां समासीनः प्रजापतिरपश्यत ।
विमानं जाज्वलद्भासा स्थितं प्रवरमम्बरे ॥ ३८ ॥

उन सबके बीचमें बैठे हुए प्रजापति ब्रह्माने आकाशमें खडा हुआ, अपने तेजसे प्रकाशमान् एक उत्तम विमान देखा ॥ ३८ ॥

ध्यानेनावेद्य तं ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम् ।
नमश्चकार हृष्टात्मा परमं परमेश्वरम् ॥ ३९ ॥

उन्होंने ध्यान करके यथार्थ बात जानकर उस विमानमें विराजमान परम परमेश्वरको जानकर प्रसन्नचित्त होकर स्थिर हो दोनों हाथ जोडके नमस्कार किया ॥ ३९ ॥

ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वा ब्रह्माणमुत्थितम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पश्यन्तो महदद्भुतम् ॥ ४० ॥

ऋषि और सब देवता लोग इस महा अद्भुत तेज और ब्रह्माको उठता हुआ देखकर स्वयं हाथ जोडके खडे होगये ॥ ४० ॥

यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ॥ ४१ ॥

संसारके रचनेवाले परम धर्मके मर्मको जाननेवाले ब्रह्मवेत्ता प्रजापति ब्रह्मा उन परम देव परमेश्वरकी पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥

विश्वावसुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो विष्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च ।
विश्वेश्वरो वासुदेवोऽसि तस्माद्योगात्मानं दैवतं त्वामुपैमि ॥ ४२ ॥

हे देवेश ! तुम विश्वावसु, विश्वकी मूर्त्ति, जगत्के स्वामी, जगत्के पालनकर्ता, सृष्टिकर्ता, वशी, विश्वेश्वर, वासुदेव, योगात्मा और देवता हो, इसमें मैं तुम्हारी शरणमें हूं ॥ ४२ ॥

जय विश्व महादेव जय लोकहिते रत ।
जय योगीश्वर विभो जय योगपरावर ॥ ४३ ॥

हे अखिल भुवनके स्वामी ! तुम्हारी जय हो; तुम स्वाभाविक नित्य उत्कर्ष सम्पन्न करो । हे लोकहितैषी ! तुम्हारी जय हो । हे विभु योगीश्वर ! तुम्हारी जय हो । हे योगपरावार ! तुम्हारी जय हो ॥ ४३ ॥

पद्मगर्भ विशालाक्ष जय लोकेश्वरेश्वर ।
भूतभव्यभवन्नाथ जय सौम्यात्मजात्मज ॥ ४४ ॥

हे पद्मनाभ ! तुम्हारी जय हो । हे विशालाक्ष ! हे लोकेश्वरोंके ईश्वर ! तुम्हारी जय हो । हे भूत भविष्य और वर्त्तमानके प्रभु ! तुम्हारी जय हो । हे सौम्य ! हे आत्माओंके आत्मज ! तुम्हारी जय हो ॥ ४४ ॥

असंख्येयगुणाजेय जय सर्वपरायण ।
नारायण सुदुष्पार जय शार्ङ्गधनुर्धर ॥ ४५ ॥

हे असंख्य गुणोंके आधार ! हे सर्व परायण ! हे नारायण ! हे सुदुष्पार ! हे शार्ङ्ग धनुषके धारण करनेवाले ! तुम्हारी जय हो ॥ ४५ ॥

सर्वगुह्यगुणोपेत विश्वमूर्ते निरामय ।
विश्वेश्वर महाबाहो जय लोकार्थतत्पर ॥ ४६ ॥

हे सब गुह्य गुणोंकी मूर्ति ! हे जगत्की मूर्त्ति ! हे निरामय ! तुम्हारी जय हो ! हे विश्वेश्वर ! हे महाबाहो ! हे लोकके हित करनेवाले ! तुम्हारी जय हो ॥ ४६ ॥

महोरग वराहाद्य हरिकेश विभो जय ।
हरिवास दिशामीश विश्वावासामिताव्यय ॥ ४७ ॥

हे महानाग ! हे वराह ! हे आदि कारण ! हे पिङ्गलकेश ! हे विभो ! हे पीतवास ! हे दिशाओंके स्वामी ! हे विश्ववास ! हे अमित ! हे अव्यय ! तुम्हारी जय हो ॥ ४७ ॥

व्यक्ताव्यक्तामितस्थान नियतेन्द्रिय सेन्द्रिय ।
असंख्येयात्मभावज्ञ जय गम्भीर कामद ॥ ४८ ॥

हे व्यक्त ! हे अव्यक्त ! हे अमित आधार ! हे जितेन्द्रिय ! हे सान्द्रिय ! हे असङ्ख्येय ! हे आत्मभावज्ञ ! हे गम्भीर ! हे कामद ! तुम्हारी जय हो ॥ ४८ ॥

अनन्त विदितप्रज्ञ नित्यं भूतविभावन ।
कृतकार्य कृतप्रज्ञ धर्मज्ञ विजयाजय ॥ ४९ ॥
गुह्यात्मन्सर्वभूतात्मन्स्फुटसंभूतसंभव ।
भूतार्थतत्त्व लोकेश जय भूतविभावन ॥ ५० ॥

हे अनन्त ! हे विदित ! हे ब्रह्मन् ! हे नित्य ! हे भूतभावन ! हे कृतकार्य ! हे धर्मज्ञ ! हे विजयावह ! हे गुह्यात्मन् ! हे सर्वभूतात्मन् ! हे स्फुट सम्भूत ! हे संभव ! हे भूतार्थ तत्त्व ! हे लोकेश ! हे भूतविभावन ! तुम्हारी जय हो ॥ ४९–५० ॥

आत्मयोने महाभाग कल्पसंक्षेपतत्पर ।
उद्भावन मनोद्भाव जय ब्रह्मजनप्रिय ॥ ५१ ॥

हे आत्मयोने ! हे महाभाग ! हे कल्प–संक्षेप तत्पर ! हे उद्भावन ! हे मनोभाव ! हे ब्रह्म ! हे जनप्रिय ! तुम्हारी जय हो ॥ ५१ ॥

निसर्गसर्गाभिरत कामेश परमेश्वर ।
अमृतोद्भव सद्भाव युगाग्ने विजयप्रद ॥ ५२ ॥
प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल ।
आत्मभूत महाभूत कर्मात्मञ्जय कर्मद ॥ ५३ ॥

हे नैसर्गिक–सृष्टि–अभिरत ! हे कामेश ! हे परमेश्वर ! हे अमृतोत्पादक ! हे सद्भाव ! हे युगाग्ने ! हे विजय–प्रद ! हे प्रजापतिके स्वामी ! हे देव ! हे पद्मनाभ ! हे महाबल ! हे आत्मभूत ! हे महाभूत ! हे कर्मात्मन् ! हे कर्मद ! तुम्हारी सर्वदा जय हो ॥ ५२–५३ ॥

पादौ तव धरा देवी दिशो बाहुर्दिवं शिरः ।
मूर्तिस्तेऽहं सुराः कायश्चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ॥ ५४ ॥

पृथ्वी तुम्हारा चरण, सब दिशा तुम्हारी भुजा, अन्तरिक्ष तुम्हारा सिर, मैं तुम्हारी मूर्त्ति, सब देवता तुम्हारे शरीर, सूर्य चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र हैं ॥ ५४ ॥

बलं तपश्च सत्यं च धर्मः कामात्मजः प्रभो ।
तेजोऽग्निः पवनः श्वास आपस्ते स्वेदसंभवाः ॥ ५५ ॥

हे प्रभो ! सत्य और तप तुम्हारा बल है; धर्म और कर्म तुम्हारा स्वरूप है । अग्नि तुम्हारा तेज, वायु तुम्हारा श्वास, जल तुम्हारे शरीरका पसीना है ॥ ५५ ॥

अश्विनौ श्रवणौ नित्यं देवी जिह्वा सरस्वती ।
वेदाः संस्कारनिष्ठा हि त्वयीदं जगदाश्रितम् ॥ ५६ ॥

दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे दोनों कान हैं; सरस्वती देवी तुम्हारी जिह्वा, वेद तुम्हारी संस्कार-निष्ठा और यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे ही आसरेसे विराजमान् है ॥ ५६ ॥

न संख्यां न परीमाणं न तेजो न पराक्रमम् ।
न बलं योगयोगीश जानीमस्ते न संभवम् ॥ ५७ ॥

हे योगेश ! हम सब तुम्हारी संख्या, परिमाण, तेज, पराक्रम, बल और उत्पत्ति कुछ भी नहीं जान सकते ॥ ५७ ॥

त्वद्भक्तिनिरता देव नियमैस्त्वा समाहिताः ।
अर्चयामः सदा विष्णो परमेशं महेश्वरम् ॥ ५८ ॥

हे विष्णो ! हे देव ! तुम महादेव और तुमही परमेश्वर हो । हम सब तुम्हारीही भक्तिमें रत होकर तुम्हारे ही आसरेसे नियमपूर्वक सदा तुम्हारी पूजा तत्परतासे करते रहते हैं ॥ ५८ ॥

ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
पिशाचा मानुषाश्चैव मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ५९ ॥
एवमादि मया सृष्टं पृथिव्यां त्वत्प्रसादजम् ।
पद्मनाभ विशालाक्ष कृष्ण दुःस्वप्ननाशन ॥ ६० ॥

हे पद्मनाभ ! हे विशालाक्ष ! हे कृष्ण ! हे दुःस्वप्नोंके नाश करनेवाले ! ऋषि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, मनुष्य, मृग, पक्षी और सम्पूर्ण जीव जन्तुओं आदि की सृष्टि तुम्हारे प्रसादसे मैंने उत्पन्न की है ॥ ५९–६० ॥

त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वं नेता त्वं जगन्मुखम् ।
त्वत्प्रसादेन देवेश सुखिनो विबुधाः सदा ॥ ६१ ॥

हे देवेश ! तुम सब प्राणियोंकी गति, सबके नेता और सबके आदि कारण हो । देवता लोग सदा तुम्हारे ही प्रसादसे सुखी रहते हैं ॥ ६१ ॥

पृथिवी निर्भया देव त्वत्प्रसादात्सदाभवत् ।
तस्माद्भव विशालाक्ष यदुवंशविवर्धनः ॥ ६२ ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय दैतेयानां वधाय च ।
जगतो धारणार्थाय विज्ञाप्यं कुरु मे प्रभो ॥ ६३ ॥

देव ! पृथ्वी तुम्हारे ही प्रसादसे सदा निर्भय रहती है । हे विशालाक्ष ! इस ही निमित्त तुम पुनः पृथ्वीपर यदुवंशमें उत्पन्न होके उस वंशकी कीर्ति बढाके धर्म स्थापन, दैत्योंका वध और जगत्को धारण करनेके निमित्त, हे प्रभो ! हम लोगोंका यह निवेदन स्वीकार करके सब कार्य पूर्ण करो ॥ ६२–६३ ॥

यदेतत्परमं गुह्यं त्वत्प्रसादमयं विभो ।
वासुदेव तदेतत्ते मयोद्गीतं यथातथम् ॥ ६४ ॥

हे वासुदेव ! हे विभो ! तुम्हारे प्रसादसे मैंने यह परमगुप्त विषय तुम्हारे समीप वर्णन किया है, ॥ ६४ ॥

सृष्ट्वा सङ्कर्षणं देवं स्वयमात्मानमात्मना ।
कृष्ण त्वमात्मनास्राक्षीः प्रद्युम्नं चात्मसंभवम् ॥ ६५ ॥

कि तुमने स्वयं आत्मासे निज आत्माको बलदेव रूपसे उत्पन्न करके फिर आत्माको कृष्ण रूपसे उत्पन्न किया है; फिर आत्मासे प्रद्युम्नको प्रकट किया है ॥ ६५ ॥

प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धं त्वं यं विदुर्विष्णुमव्ययम् ।
अनिरुद्धोऽसृजन्मां वै ब्रह्माणं लोकधारिणम् ॥ ६६ ॥

जिसे सब ज्ञानीजन अव्यय विष्णु रूपसे जानते हैं, उस अनिरुद्धको तुमने प्रद्युम्नसे उत्पन्न किया है और अनिरुद्धने मुझे लोकधारी ब्रह्मा रूपसे उत्पन्न किया है ॥ ६६ ॥

वासुदेवमयः सोऽहं त्वयैवास्मि विनिर्मितः ।
विभज्य भागशोऽऽत्मानं व्रज मानुषतां विभो ॥ ६७ ॥

इससे हे वासुदेव ! तुमसे मैं उत्पन्न हुआ हूं; आपसे अभिन्न होनेके कारण मैं भी वासुदेवमय हूं ! अब तुम अपनेको अंशके क्रमसे विभाग करके मनुष्यत्वको प्राप्त होओ ॥ ६७ ॥

तत्रासुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै ।
धर्मं स्थाप्य यशः प्राप्य योगं प्राप्स्यासि तत्त्वतः ॥ ६८ ॥

तुम मर्त्य लोकमें सब लोगोंके सुखके निमित्त असुरोंका वध कर, धर्म स्थापित करते हुए यशयुक्त होकर तत्त्वके अनुसार योग लाभ करो ॥ ६८ ॥

त्वां हि ब्रह्मर्षयो लोके देवाश्चामितविक्रम ।
तैस्तैश्च नामभिर्भक्ता गायन्ति परमात्मकम् ॥ ६९ ॥

हे अमित पराक्रमी ! सब लोगोंके बीच ब्रह्मर्षि और देवता लोग अपने अपने नामके अनुसार भक्त होकर तुम्हें परमात्मा रूपसे गाया करते हैं ॥ ६९ ॥

स्थिताश्च सर्वे त्वयि भूतसंघाः कृत्वाश्रयं त्वां वरदं सुबाहो ।
अनादिमध्यान्तमपारयोगं लोकस्य सेतुं प्रवदन्ति विप्राः ॥ ७० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ २६७६ ॥

हे सुबाहो ! ब्राह्मण लोग और सम्पूर्ण प्राणी तुममें ही स्थित होकर तुम्हारा ही आसरा करते हुए, तुमको वरप्रद, आदि मध्य और अन्त रहित, अपार-योगसे युक्त और अखिल जगत्का कारण कहके तुम्हारा यश गान करते रहते हैं ॥ ७० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ २६७६ ॥

: ६२ :

भीष्म उवाच

ततः स भगवान्देवो लोकानां परमेश्वरः ।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे पुत्र दुर्योधन ! इसके अनन्तर सब लोगोंके परम ईश्वर देवोंके देव भगवान् स्नेहमधुर गम्भीर स्वरसे ब्रह्मासे यह वचन बोले ॥ १ ॥

विदितं तात योगान्मे सर्वमेतत्तवेप्सितम् ।
तथा तद्भवितेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ २ ॥

हे तात ! तुम्हारा यह अभिलषित विषय मैं योगबलसे जान चुका हूं, वह पूर्ण होगा; ऐसा कहकर भगवान् उस ही स्थानपर अन्तर्द्धान हो गये ॥ २ ॥

ततो देवर्षिगन्धर्वा विस्मयं परमं गताः ।
कौतूहलपराः सर्वे पितामहमथाब्रुवन् ॥ ३ ॥

तब सब देवता, ऋषि और गन्धर्व आदि परम विस्मित हो गये और सब अत्यन्त उत्सुक होकर पितामह ब्रह्मासे पूछने लगे ॥ ३ ॥

को न्वयं यो भगवता प्रणम्य विनयाद्विभो ।
वाग्भिः स्तुतो वरिष्ठाभिः श्रोतुमिच्छाम तं वयम् ॥ ४ ॥

हे लोगोंके विधाता ! तुमने जिनको प्रणाम करके श्रेष्ठवचनों द्वारा विनयपूर्वक स्तुति की, वह कौन हैं; हम सब लोग इस विषयको सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥

एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाच पितामहः ।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान्सर्वान्मधुरया गिरा ॥ ५ ॥

पितामह ब्रह्मा देवता, गन्धर्व और देवर्षियोंके वचनोंको सुनकर मीठे वचनसे बोले ॥ ५ ॥

यत्तत्परं भविष्यं च भवितव्यं च यत्परम् ।
भूतात्मा यः प्रभुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम् ॥ ६ ॥

हे देवगण ! जो "तत्" पदसे ग्रहण किया जाता है, जो उत्कृष्ट है, जो भूत है, इस समयमें वर्तमान है और भविष्यमें भी रहेगा; जो सब प्राणियोंका आत्मा, सर्वशक्तिमान् प्रभु और जो परम पद ब्रह्म है ॥ ६ ॥

तेनास्मि कृतसंवादः प्रसन्नेन सुरर्षभाः ।
जगतोऽनुग्रहार्थाय याचितो मे जगत्पतिः ॥ ७ ॥
मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः ।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्व महीतले ॥ ८ ॥

वह परमात्मा प्रसन्न होकर मुझसे बातचीत करता था; मैंने भी उस जगत्के स्वामी लोकनाथके समीप सब प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये इस प्रकारसे प्रार्थना की, कि हे प्रभो ! तुम वसुदेवके पुत्र रूपसे मनुष्य लोकमें जन्म ग्रहण करो; असुरोंका वध करनेके निमित्त पृथ्वीमें अवतार लो ॥ ७-८ ॥

संग्रामे निहता ये ते दैत्यदानवराक्षसाः ।
त इमे नृषु संभूता घोररूपा महाबलाः ॥ ९ ॥

जो सब दैत्य, दानव और राक्षस लोग युद्धमें मारे गये हैं; वह घोर रूपसे महाबलवान् योद्धा मर्त्य लोकमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ९ ॥

तेषां वधार्थं भगवान्नरेण सहितो वशी ।
मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले ॥ १० ॥

हे भगवन् ! उन सबका वध करनेके निमित्त सबको वशमें करनेवाले तुम बलवान् नरऋषिके सहित मनुष्य जन्म ग्रहण करके पृथ्वीमें भ्रमण करो ॥ १० ॥

नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
सहितौ मानुषे लोके संभूतावमितद्युती ॥ ११ ॥

ऋषियोंमें श्रेष्ठ जो पुरातन महर्षि अमित तेजस्वी नर और नारायण हैं, वे एक साथ मानव-लोकमें अवतीर्ण होंगे ॥ ११ ॥

×

अजेयौ समरे यत्तौ सहितावमरैरपि ।
मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ॥ १२ ॥

ऋषिसत्तम नर और नारायणको सम्पूर्ण देवता लोग यत्नवान् होकर भी युद्धमें उन्हें नहीं जीत सकते । उन महातेजस्वी नर और नारायणके पृथ्वीमें उत्पन्न होनेपर मूढ लोग उन्हें न जान सकेंगे ॥ १२ ॥

तस्याहमात्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पतिः ।
वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १३ ॥

मैं जिसका आत्मज होकर सब जगत्का प्रभु बना हूं; वह सब लोगोंके नाथ वासुदेव तुम सब लोगोंसे पूजित होनेके योग्य हैं ॥ १३ ॥

तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित्सुरसत्तमाः ।
नावज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥

हे देवगण ! उस महा पराक्रमी शङ्ख, चक्र, गदाधारीकी कभी मनुष्य कहके अवज्ञा करनी उचित नहीं है ॥ १४ ॥

एतत्परमकं गुह्यमेतत्परमकं पदम् ।
एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ॥ १५ ॥
एतदक्षरमव्यक्तमेतत्तच्छाश्वतं महत् ।
एतत्पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च ॥ १६ ॥

वह परम गुह्य, परम पद, परब्रह्म, परम यश, अव्यक्त और शाश्वत हैं; उनको ही पुरुष कहके उनहीका मान करते हैं । तथापि उनको यथार्थ रूपसे कोई भी नहीं जान सकता ॥ १५–१६ ॥

एतत्परमकं तेज एतत्परमकं सुखम् ।
एतत्परमकं सत्यं कीर्तितं विश्वकर्मणा ॥ १७ ॥

विश्वकर्मा उनको ही परम तेज, परम सुख और परम सत्य कहके वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥

तस्मात्सर्वैः सुरैः सेन्द्रैर्लोकैश्चामितविक्रमः ।
नावज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः ॥ १८ ॥

उस अमित पराक्रमी प्रभु वासुदेवको इन्द्र आदि सब देवता, असुर तथा कोई भी पुरुष मनुष्य कहकर उनकी अवज्ञा न करें ॥ १८ ॥

यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात्सुमन्दधीः ।
हृषीकेशमवज्ञानात्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ १९ ॥

जो नीचबुद्धि पुरुष उन हृषीकेशको अवज्ञा करके मनुष्य समझता है वह मूर्ख है, उसको पण्डित लोग अधम पुरुष कहते हैं ॥ १९ ॥

योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम् ।
अवमन्येद्वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः ॥ २० ॥

जो उन महात्मा योगीश्वर वासुदेवको मनुष्य शरीर धारण करनेके कारण उनकी अवमानना करते हैं; लोकमें वे तामस कहे जाते हैं ॥ २० ॥

देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्चसम् ।
पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं जनाः ॥ २१ ॥

उन सब प्राणियोंकी आत्मा श्रीवत्साङ्क, उत्तम कान्तिसे युक्त भगवान् पद्मनाभको जो नहीं जान सकता है, वह लोकमें पापी तमोगुणी कहा जाता है ॥ २१ ॥

किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयंकरम् ।
अवजानन्महात्मानं घोरे तमसि मज्जति ॥ २२ ॥

जो कोई उन किरीट कौस्तुभधारी, मित्रोंको अभय देनेवाले महात्माकी अवज्ञा करता है, वह घोर पापमें फंसता है ॥ २२ ॥

एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः ।
वासुदेवो नमस्कार्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः ॥ २३ ॥

हे देवगण ! सब लोक इन तीनों लोकके स्वामी वासुदेवको इसी प्रकारसे तात्त्विक दृष्टिसे जानकर उन्हें नमस्कार करें ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा स भगवान्सर्वान्देवगणान्पुरा ।
विसृज्य सर्वलोकात्मा जगाम भवनं स्वकम् ॥ २४ ॥

पूर्वकालमें सर्व भूतात्मा भगवान् ब्रह्मा देवता और ऋषियोंसे ऐसा कहकर उन लोकोंके समीपसे उठकर विदा करके अपने स्थानपर गये ॥ २४ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽप्सरसोऽपि च ।
कथां तां ब्रह्मणा गीतां श्रुत्वा प्रीता दिवं ययुः ॥ २५ ॥

अनन्तर देवता, गन्धर्व, मुनिलोग और अप्सरा ब्रह्माके मुखसे इस कथाको सुनकर प्रसन्न होकर स्वर्गको गये ॥ २५ ॥

एतच्छ्रुतं मया तात ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
वासुदेवं कथयतां समवाये पुरातनम् ॥ २६ ॥

हे पुत्र दुर्योधन ! शुद्ध अंतःकरणवाले महर्षियोंका एक समाज मिला हुआ था जिसमें वासुदेवकी यह पुरानी कथा मैंने उन पूजनीय महात्मा ऋषियोंके मुखसे सुनी है ॥ २६ ॥

जामदग्न्यस्य रामस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
व्यासनारदयोश्चापि श्रुतं श्रुतविशारद ॥ २७ ॥

हे भरत श्रेष्ठ श्रुत विशारद ! जामदग्न्य राम, बुद्धिमान् मार्कण्डेय, व्यास और नारदके निकटमें भी मैंने इस कथाको सुनी है ॥ २७ ॥

एतमर्थं च विज्ञाय श्रुत्वा च प्रभुमव्ययम् ।
वासुदेवं महात्मानं लोकानामीश्वरेश्वरम् ॥ २८ ॥
यस्यासावात्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता ।
कथं न वासुदेवोऽयमर्च्यश्चेज्यश्च मानवैः ॥ २९ ॥

हे पुत्र दुर्योधन ! संपूर्ण जगत्के पिता ब्रह्मा जिसके आत्मज हैं; उस परमेश्वर, अव्यय, महात्मा लोकेश्वरेश्वर वासुदेवनन्दन भगवान् श्री कृष्णके इस विषयको सुनकर और समझकर कौन मनुष्य उनकी आराधना एवं पूजा नहीं करेगा ? ॥ २८-२९ ॥

वारितोऽसि पुरा तात मुनिभिर्वेदपारगैः ।
मा गच्छ संयुगं तेन वासुदेवेन धीमता ।
मा पाण्डवैः सार्धमिति तच्च मोहान्न बुध्यसे ॥ ३० ॥

पहिले तुमको वेदोंके पारंगत विद्वान् महात्मा ऋषियोंने तथा मैंने निवारण किया था, कि तुम धनुर्द्धारी धीमान् भगवान् कृष्ण और पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त मत गमन करो; परन्तु तुम मोहमें पडकर प्रकृत अर्थ नहीं समझ सकते हो ॥ ३० ॥

मन्ये त्वां राक्षसं क्रूरं तथा चासि तमोवृतः ।
यस्माद्द्विषसि गोविन्दं पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
नरनारायणौ देवौ नान्यो द्विष्याद्धि मानवः ॥ ३१ ॥

इससे मैं तुमको निष्ठुर राक्षस समझता हूं । और तुम्हारा चित्त तमोगुणसे युक्त है, क्योंकि तुम भगवान् गोविंद-कृष्ण, पाण्डव और अर्जुनसे द्वेष करते हो । तुम्हारे सिवा दूसरा कौन पुरुष उन दोनों नर-नारायण देवोंसे द्वेष कर सकता है ? ॥ ३१ ॥

तस्माद्ब्रवीमि ते राजन्नेष वै शाश्वतोऽव्ययः ।
सर्वलोकमयो नित्यः शास्ता धाता धरो ध्रुवः ॥ ३२ ॥

राजन् ! तुम भगवान् श्री कृष्णको शास्वत, अव्यय, सर्वलोकस्वरूप, नित्य, शास्ता, धाता, विश्वाधार, ध्रुव कहके निश्चय करो, यह मैं बता रहा हूं ॥ ३२ ॥

लोकान्धारयते यस्त्रींश्चराचरगुरुः प्रभुः ।
योद्धा जयश्च जेता च सर्वप्रकृतिरीश्वरः ॥ ३३ ॥

ये चराचरगुरु भगवान् श्री कृष्ण तीनों लोकको धारण करते हैं, वही सब प्राणियोंके गुरु, प्रभु, योद्धा, जय, जेता, सबकी प्रकृति तथा सबहीके ईश्वर हैं ॥ ३३ ॥

राजन्सत्त्वमयो ह्येष तमोरागविवर्जितः ।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! वह सत्त्वगुणसे युक्त हैं उनमें रजोगुण और तमोगुण नहीं है । जिस ओर कृष्ण हैं, वहां ही धर्म है; जहां धर्म है, वहां ही जय है ॥ ३४ ॥

तस्य माहात्म्ययोगेन योगेनात्मन एव च ।
धृताः पाण्डुसुता राजञ्जयश्चैषां भविष्यति ॥ ३५ ॥

उनके आत्ममय योगसे तथा योग माहात्म्यसे सब पाण्डव सुरक्षितता धारण किये हुए हैं, राजन् ! इससे पाण्डवोंही की जय होगी ३५ ॥

श्रेयोयुक्तां सदा बुद्धिं पाण्डवानां दधाति यः ।
बलं चैव रणे नित्यं भयेभ्यश्चैव रक्षति ॥ ३६ ॥

वे पाण्डवोंको उत्तम बुद्धि प्रदान करते रहते हैं, वह युद्धमें भी उन लोगोंको बल प्रदान करते तथा भयसे भी उनकी रक्षा किया करते हैं ॥ ३६ ॥

स एष शाश्वतो देवः सर्वगुह्यमयः शिवः ।
वासुदेव इति ज्ञेयो यन्मां पृच्छसि भारत ॥ ३७ ॥

हे भारत ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, उसका कारण मैंने तुमसे वर्णन किया । जो पाण्डवोंके सहाय और वसुदेवके पुत्र कहके विख्यात हैं वह सब गुह्यमय, शाश्वत देव और कल्याणसे युक्त हैं ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
सेव्यतेऽभ्यर्च्यते चैव नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ॥ ३८ ॥

उत्तम लक्षणसे युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने अपने कर्ममें नित्य स्थित होके उनकी सेवा पूजा किया करते हैं ॥ ३८ ॥

द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ।
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन यः ॥ ३९ ॥

सङ्कर्षण बलदेव द्वापर युगके शेष होनेपर कलियुगके पहिले शाश्वत विधि अवलम्बन करके जिनके चरित्रोंको गाया करते हैं ॥ ३९ ॥

स एष सर्वासुरमर्त्यलोकं समुद्रकक्ष्यान्तरिताः पुरीश्च ।
युगे युगे मानुषं चैव वासं पुनः पुनः सृजते वासुदेवः ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ २७१६ ॥

वह जगत्के स्वामी वासुदेव युग युगमें देव–लोक और मर्त्य–लोकके वासियोंका निवास स्थान और समुद्रके बीचकी द्वारिका पुरीको उत्पन्न करते हैं और ये ही बार बार मनुष्य-लोकमें अवतार लेते हैं ॥ ४० ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ २७१६ ॥

: ६३ :

दुर्योधन उवाच

वासुदेवो महद्भूतं सर्वलोकेषु कथ्यते ।
तस्यागमं प्रतिष्ठां च ज्ञातुमिच्छे पितामह ॥ १ ॥

दुर्योधन बोले– हे पितामह ! सब लोकोंके बीच जो श्रीकृष्ण महापुरुष कहके विख्यात हैं, उनकी उत्पत्ति और स्थिति जाननेकी मुझे अभिलाषा हुई है ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

वासुदेवो महद्भूतं संभूतं सह दैवतैः ।
न परं पुण्डरीकाक्षाद्दृश्यते भरतर्षभ ।
मार्कण्डेयश्च गोविन्दं कथयत्यद्भुतं महत् ॥ २ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! वसुदेवनन्दन श्री कृष्ण महा भूत और सब देवताओंके भी देवता हैं । उन पुण्डरीकाक्षसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है । महा मुनि मार्कण्डेय भगवान् गोविंदकी अद्भुत महिमा वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ।
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा वह महात्मा अव्यय पुरुषोत्तम जल, वायु, तेज और समस्त स्थावर जङ्गमको उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

स सृष्ट्वा पृथिवीं देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः ।
सर्वतोयोमयो देवो योगात्सुष्वाप तत्र ह ॥ ४ ॥

सब लोकोंके प्रभु महात्मा पुरुषोत्तम देवने पृथ्वीको उत्पन्न करके जलमें शयन किया । वह सब तेजोंसे युक्त देवोंके स्वामी योगबलसे जलके ऊपर शयन करते रहते हैं ॥ ४ ॥

मुखतः सोऽग्निमसृजत्प्राणाद्वायुमथापि च ।
सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः ॥ ५ ॥

वह महात्मा अच्युत कृष्ण मुखसे अग्नि और प्राणसे वायु, मनसे वाणी और वेदोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

एष लोकान्ससर्जादौ देवांश्चर्षिगणैः सह ।
निधनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवोऽव्ययः ॥ ६ ॥

इसी भांतिसे वह आरम्भमें संपूर्ण लोक, देवता, गणोंके साथ ऋषि और प्रजाओंकी उत्पत्ति, मृत्यु, मृत्युके उपाय और मृत्युके प्रयोजक यमराजको उत्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥

एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः ।
एष कर्ता च कार्यं च पूर्वदेवः स्वयंप्रभुः ॥ ७ ॥

वही धर्म, धर्मात्मा, वर देनेवाले और सर्व कामके दाता हैं; वही कर्त्ता और कार्य हैं, वही स्वयं आदिदेव और सबके प्रभु हैं ॥ ७ ॥

भूतं भव्यं भविष्यच्च पूर्वमेतदकल्पयत् ।
उभे संध्ये दिशः खं च नियमं च जनार्दनः ॥ ८ ॥

पूर्व कालमें वह जनार्दन भूत, भविष्य और वर्त्तमान ये तीनों काल, दोनों सन्ध्या, दस दिशा, आकाश और नियमोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

ऋषींश्चैव हि गोविन्दस्तपश्चैवानु कल्पयत ।
स्रष्टारं जगतश्चापि महात्मा प्रभुरव्ययः ॥ ९ ॥

वह महात्मा अविनाशी अव्यय वरप्रद गोविंद प्रभु ऋषि, तपस्या, विधाता और प्रजापतिकी उत्पत्ति करते हैं ॥ ९ ॥

अग्रजं सर्वभूतानां संकर्षणमकल्पयत् ।
शेषं चाकल्पयद्देवमनन्तमिति यं विदुः ॥ १० ॥
यो धारयति भूतानि धरां चेमां सपर्वताम् ।
ध्यानयोगेन विप्राश्च तं वदन्ति महौजसम् ॥ ११ ॥

और सब प्राणियोंमें अपराजेय अग्रज बलदेवको उत्पन्न करते हैं; जिसको सम्पूर्ण लोक अनन्त समझता है, जो समस्त प्राणियों तथा पर्वतोंके सहित इस पृथ्वीको धारण करता है; उस शेष नागको भी वही उत्पन्न करते हैं । ब्राह्मण लोग उस महा तेजस्वी वासुदेवको ध्यानयोगसे जान सकते हैं ॥ १०–११ ॥

कर्णस्रोतोद्भवं चापि मधुं नाम महासुरम् ।
तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रां बुद्धिं समास्थितम् ।
ब्रह्मणोऽपचितिं कुर्वञ्जघान पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥

उन्हीं पुरुषोत्तम जनार्दनने ब्रह्माजीका समादर करते हुए, निज कानसे उत्पन्न भये, महा प्रचण्ड, उग्र स्वभावका, अत्यन्त क्रूरकर्मा, भयंकर बुद्धिका आश्रय लेकर ब्रह्माको मारनेके निमित्त उद्यत हुए, मधु नामक असुरका वध किया था ॥ १२ ॥

तस्य तात वधादेव देवदानवमानवाः ।
मधुसूदनमित्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ।
वराहश्चैव सिंहश्च त्रिविक्रमगतिः प्रभुः ॥ १३ ॥

तात ! इससे देवता, दानव, मनुष्य और ऋषि लोग उनको मधुसूदन कहते हैं । वही भगवान् समय समयपर वाराह, नृसिंह, त्रिविक्रमगति वामनके रूपमें प्रकट हुए हैं ॥ १३ ॥

एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ।
परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ॥ १४ ॥

वही हरि सबके माता और पिता हैं । उस पुण्डरीकाक्षसे श्रेष्ठ न कोई हुआ और न भविष्य-कालमें होगा ॥ १४ ॥

मुखतोऽसृजद्ब्राह्मणान्बाहुभ्यां क्षत्रियांस्तथा ।
वैश्यांश्चाप्यूरुतो राजञ्शूद्रान्पद्भ्यां तथैव च ।
तपसा नियतो देवो निधानं सर्वदेहिनाम् ॥ १५ ॥
ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च ।
योगभूतं परिचरन्केशवं महदाप्नुयात् ॥ १६ ॥

वह मुखसे ब्राह्मण, दोनों बाहुसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और अपने चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न करते हैं । जो मनुष्य तपस्यामें तत्पर हो संयम–नियमका पालन करते हुए अमावास्या और पूर्णमासीके दिन सबके उत्पन्न करनेवाले आश्रय, ब्रह्म एवं योगात्मा भगवान् केशवकी आराधना करता है वह परम पदको प्राप्त करता है ॥ १५–१६ ॥

केशवः परमं तेजः सर्वलोकपितामहः ।
एवमाहुर्हृषीकेशं मुनयो वै नराधिप ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! वह भगवान् श्रीकृष्ण परम तेजस्वी और स्थावर जङ्गमात्मक सबके पितामह प्रभु हैं । मुनि लोग इन्हें हृषीकेश कहते हैं ॥ १७ ॥

एवमेनं विजानीहि आचार्यं पितरं गुरुम् ।
कृष्णो यस्य प्रसीदेत लोकास्तेनाक्षया जिताः ॥ १८ ॥

इसप्रकार उसको ही आचार्य, पिता और गुरु जानना चाहिये । वह कृष्ण जिस पर प्रसन्न होते हैं; उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

यश्चैवैनं भयस्थाने केशवं शरणं व्रजेत् ।
सदा नरः पठंश्चेदं स्वस्तिमान्स सुखी भवेत् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य भयसे विकल होके यह पढते हुए उनकी शरणमें जाता है उनको मोह नहीं प्राप्त होता; वह कल्याणको प्राप्त होता है और सुखी होता है ॥ १९ ॥

ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते ते न मुह्यन्ति मानवाः ।
भये महति ये मग्नाः पाति नित्यं जनार्दनः ॥ २० ॥

जो मानव भगवान् कृष्णकी शरण लेते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पडते, वही जनार्दन महा भयमें पडे हुए मनुष्योंको परित्राण करते हैं ॥ २० ॥

एतद्युधिष्ठिरो ज्ञात्वा याथातथ्येन भारत ।
सर्वात्मना महात्मानं केशवं जगदीश्वरम् ।
प्रपन्नः शरणं राजन्योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ २७३७ ॥

हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर उस महाभाग जगत्के प्रभु योगेश्वर कृष्णको इसी प्रकारसे अच्छी तरह जानकर, सब भांति तथा सर्व प्रयत्नसे उनके शरणागत हुए हैं ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ २७३७ ॥

: ६४ :

भीष्म उवाच

श्रृणु चेदं महाराज ब्रह्मभूतस्तवं मम ।
ब्रह्मर्षिभिश्च देवैश्च यः पुरा कथितो भुवि ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे महाराज ! ब्रह्मर्षि और देवताओंने पहिले समय पृथ्वीमें श्रीकृष्णको जिस प्रकारसे वर्णन किया था, उस वेद स्वरूप स्तुतिको तुम मुझसे सुनो ॥ १ ॥

साध्यानामपि देवानां देवदेवेश्वरः प्रभुः ।
लोकभावनभावज्ञ इति त्वां नारदोऽब्रवीत् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च मार्कण्डेयोऽभ्युवाच ह ॥ २ ॥

नारद ऋषिने कृष्णको लोकभावनभावज्ञ, साध्य और सब देवताओंका प्रभु और देवताओंका ईश्वर कहके वर्णन किया है । मार्कण्डेय मुनिने आपको भूत, भविष्य और वर्तमान कहा है ॥ २ ॥

यज्ञानां चैव यज्ञं त्वां तपश्च तपसामपि ।
देवानामपि देवं च त्वामाह भगवान्भृगुः ।
पुराणे भैरवं रूपं विष्णो भूतपतेति वै ॥ ३ ॥

यक्षके यज्ञ, तपस्याकी भी तपस्या, भगवान् भृगुने तुम्हें देवोंके देव और हे विष्णो ! उनके रूपहीको पुरातन भैरवरूप भूतपति परमरूप कहा है ॥ ३ ॥

वासुदेवो वसूनां त्वं शक्रं स्थापयिता तथा ।
देवदेवोऽसि देवानामिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

महर्षि द्वैपायनने उन्हें वसुओंमें वासुदेव, इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर स्थापन करनेवाले और देवोंके देव कहके वर्णन किया है ॥ ४ ॥

+

पूर्वे प्रजानिसर्गेषु दक्षमाहुः प्रजापतिम् ।
स्रष्टारं सर्वभूतानामङ्गिरास्त्वां ततोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

अङ्गिरा मुनिने पहिले प्रजापतिकी सृष्टिके समयमें उन्हें सब जगत्के उत्पन्न करनेवाले दक्ष प्रजापति कहके वर्णन किया था ॥ ५ ॥

अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तं ते मनसि स्थितम् ।
देवा वाक्संभवाश्चेति देवलस्त्वासितोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

असित और देवल मुनिने कहा है, कि अव्यक्त तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न हुआ है और व्यक्त तुम्हारे मनमें स्थित हैं, सब देवोंकी उत्पत्तिका स्थान वाक् है ॥ ६ ॥

शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी धृता ।
जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥ ७ ॥
एवं त्वामभिजानन्ति तपसा भाविता नरः ।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चापि सत्तमः ॥ ८ ॥

तपस्यासे जिन पुरुषोंकी आत्मा शुद्ध है, वही तुमको जानते हैं, कि तुम्हारे मस्तकसे अन्तरिक्ष व्याप्त है, तुम्हारी दोनों भुजाओंसे पृथ्वी धारण की हुई है और तुम्हारा जठर तीनों लोक हुआ है, तुम सनातन पुरुष हो। आत्मसाक्षात्कारसे तृप्त हुए ज्ञानि महर्षि भी आप सबसे श्रेष्ठ हैं ऐसा मानते हैं ॥ ७–८ ॥

राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
सर्वधर्मप्रधानानां त्वं गतिर्मधुसूदन ॥ ९ ॥

हे मधुसूदन ! आत्माके दर्शनसे तृप्त जो सब ऋषि हैं, और युद्धमें अपराजित जो सब उदार स्वभावके राजर्षि हैं; उन सब लोगों तथा सम्पूर्ण धर्मात्मा प्रधान पुरुषोंकी तुम ही गति और तुम ही नित्य हो ॥ ९ ॥

एष ते विस्तरस्तात संक्षेपश्च प्रकीर्तितः ।
केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भव केशवे ॥ १० ॥

हे पुत्र ! तुमसे मैंने कृष्णकी कथा विस्तारके क्रमसे और संक्षेप रूप कही; इससे तुम प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्वक कृष्णकी शरणमें जाओ ॥ १० ॥

सञ्जय उवाच

पुण्यं श्रुत्वैतदाख्यानं महाराज सुतस्तव ।
केशवं बहु मेने स पाण्डवांश्च महारथान् ॥ ११ ॥

सञ्जय बोले, महाराज ! आपके पुत्र दुर्योधनने इस पुण्य उपाख्यानको भीष्मके मुखसे सुनकर कृष्ण और महारथ पाण्डवोंको बहुत श्रेष्ठ समझा ॥ ११ ॥

तमब्रवीन्महाराज भीष्मः शांतनवः पुनः ।
माहात्म्यं ते श्रुतं राजन्केशवस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

हे राजन् ! शान्तनुनन्दन भीष्म दुर्योधनसे फिर बोले, हे पुत्र ! तुमने महात्मा कृष्णका महात्म्य सुना ॥ १२ ॥

नरस्य च यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यदर्थं नृषु संभूतौ नरनारायणावुभौ ॥ १३ ॥

और जिस नर पुरुषका विषय तुमने मुझसे अच्छी तरहसे पूछा था, जिस कारणसे नर और नारायण दोनों ऋषि मर्त्य लोकमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥

अवध्यौ च यथा वीरौ संयुगेष्वपराजितौ ।
यथा च पाण्डवा राजन्नगम्या युधि कस्यचित् ॥ १४ ॥

और जिस कारणसे वे दोनों वीर महात्मा युद्धमें अपराजित और अवध्य हैं, और पाण्डव लोग किसीसे भी युद्धमें अगम्य हैं, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुमने सुना ॥ १४ ॥

प्रीतिमान्हि दृढं कृष्णः पाण्डवेषु यशस्विषु ।
तस्माद्ब्रवीमि राजेन्द्र शमो भवतु पाण्डवैः ॥ १५ ॥

हे राजेन्द्र ! भगवान् श्री कृष्ण उन यशस्वी पाण्डवोंसे बहुत ही प्रीतिसे युक्त हैं; इस ही निमित्त मैं कहता हूं, कि तुम पाण्डवोंके संगमें सन्धि करो ॥ १५ ॥

पृथिवीं भुङ्क्ष्व सहितो भ्रातृभिर्बलिभिर्वशी ।
नरनारायणौ देवाववज्ञाय नशिष्यसि ॥ १६ ॥

तुम उन बलवान् भाइयोंके सहित मनको वशमें रखते हुए प्रजाका शासन करते हुए पृथ्वीका भोग करो । भगवान् नरनारायणकी अवज्ञा करनेसे भाइयोंके सहित तुम्हारा नाश हो जावेगा ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तव पिता तूष्णीमासीद्विशां पते ।
व्यसर्जयच्च राजानं शयनं च विवेश ह ॥ १७ ॥

हे प्रजानाथ ! तुम्हारे पिता भीष्म ऐसा वचन कहके चुप हो गये; फिर दुर्योधनके समीपसे जाकर शयन किया ॥ १७ ॥

राजापि शिबिरं प्रायात्प्रणिपत्य महात्मने ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे तां रात्रिं भरतर्षभ ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ २७५५ ॥

भरत श्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनने भी महात्माओंको प्रणाम कर अपने शिविरमें जाके शुभ्र दिव्य शय्यापर शयन करके रात्रि व्यतीत की ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चोंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ २७५५ ॥

: ६७ :

सञ्जय उवाच

व्युषितायां च शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे ।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! जब रात्रि बीत गई और सूर्य उदय हुआ, तब दोनों ओरकी सेनाओंने युद्धके निमित्त यात्रा की ॥ १ ॥

अभ्यधावंश्च संक्रुद्धाः परस्परजिगीषवः ।
ते सर्वे सहिता युद्धे समालोक्य परस्परम् ॥ २ ॥

वह सब रणभूमिमें एकत्रित होकर एक दूसरेको अवलोकन कर क्रोधपूर्वक एक दूसरेकी ओर दौडे ॥ २ ॥

पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।
व्यूहौ च व्यूह्य संरब्धाः सम्प्रयुद्धाः प्रहारिणः ॥ ३ ॥

राजन् ! तुम्हारी अनीतिसे ही कौरव और पाण्डव लोग एक दूसरेको देखकर कुपित हो व्यूह बांधकर प्रसन्नतापूर्वक युद्धमें परस्पर प्रहार करनेको प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥

अरक्षन्मकरव्यूहं भीष्मो राजन्समन्ततः ।
तथैव पाण्डवा राजन्नरक्षन्व्यूहमात्मनः ॥ ४ ॥

राजन् ! भीष्म सेनाका मकरव्यूह बनाकर चारों ओरसे निज सेनाकी रक्षा करने लगे । पाण्डव लोग भी अपनी सेनाका व्यूह बनाकर उसकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ४ ॥

स निर्ययौ रथानीकं पिता देवव्रतस्तव ।
महता रथवंशेन संवृतो रथिनां वरः ॥ ५ ॥

भीष्म पितामह विशाल रथियोंके समूहसे घिरकर अनेक रथ और सेनाके सहित युद्धके निमित्त आगे बढे ॥ ५ ॥

इतरेतरमन्वीयुर्यथाभागमवस्थिताः ।
रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा ॥ ६ ॥

फिर यथाभाग खडे हुए दूसरे सब रथी, गजपति और पैदल चलनेवाले योद्धा लोग, घुडसवार, एक दूसरेका अनुसरण करते हुए उनके अनुगामी हुए ॥ ६ ॥

तान्दृष्ट्वा प्रोद्यतान्संख्ये पाण्डवाश्च यशस्विनः ।
श्येनेन व्यूहराजेन तेनाजय्येन संयुगे ॥ ७ ॥

यशस्वी पाण्डव लोग उनको युद्धके निमित्त उद्यत देखके अपनी सेनाका शत्रुओंसे अजेय श्येनव्यूह बनाकर युद्धमें तैय्यार हुए ॥ ७ ॥

अशोभत मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः ।
नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ८ ॥

उस श्येन-व्यूहके मुख स्थानमें महा बलवान् भीमसेन शोभा पा रहे थे। नेत्र स्थलमें दुर्धर्षवीर महात्मा शिखण्डी और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न खड़े थे ॥ ८ ॥

शीर्षं तस्याभवद्वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विधुन्वन्गाण्डिवं पार्थो ग्रीवायामभवत्तदा ॥ ९ ॥

और सिरके स्थानमें सत्य पराक्रमी वीर सात्यकि हुए। कुन्तीकुमार अर्जुन गाण्डीव धनुष ग्रहण करके उस व्यूहके गर्दनपर स्थित हुए ॥ ९ ॥

अक्षौहिण्या समग्रा या वामपक्षोऽभवत्तदा ।
महात्मा द्रुपदः श्रीमान्सह पुत्रेण संयुगे ॥ १० ॥

महात्मा पाञ्चालराज द्रुपद पुत्रोंसे सहित एक अक्षौहिणी सेना लेकर उसके बायें पक्षपर स्थित हुए ॥ १० ॥

दक्षिणाश्चाभवत्पक्षः कैकेयोऽक्षौहिणीपतिः ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चापि वीर्यवान् ॥ ११ ॥

और केकयराज एक अक्षौहिणी सेनाके सहित उसके दाहिने पक्षपर स्थित हुए। द्रौपदीके पांचों पुत्र और पराक्रमी सुभद्राकुमार अभिमन्यु उसके पृष्ठरक्षक हुए ॥ ११ ॥

पृष्ठे समभवच्छ्रीमान्स्वयं राजा युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभ्यां सहितो धीमान्यमाभ्यां चारुविक्रमः ॥ १२ ॥

उत्तम पराक्रमी राजा युधिष्ठिर स्वयं दोनों भाइयों (नकुल-सहदेव) के सहित उसके पीछे स्थित हुए ॥ १२ ॥

प्रविश्य तु रणे भीमो मकरं मुखतस्तदा ।
भीष्ममासाद्य संग्रामे छादयामास सायकैः ॥ १३ ॥

अनन्तर भीमसेनने रणक्षेत्रमें मकरव्यूहके मुखमें प्रवेश कर भीष्मके समीप गमन कर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके उन्हें छिपा दिया ॥ १३ ॥

ततो भीष्मो महास्त्राणि पातयामास भारत ।
मोहयन्पाण्डुपुत्राणां व्यूढं सैन्यं महाहवे ॥ १४ ॥

भारत ! पराक्रमी भीष्म भी उस महायुद्धमें पाण्डवोंकी व्यूहबद्ध सेनाको मोहित करते हुए महा अस्त्रोंको चलाने लगे ॥ १४ ॥

संमुह्यति तदा सैन्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
भीष्मं शरसहस्रेण विव्याध रणमूर्धनि ॥ १५ ॥

तब अपनी सेनाको भीष्मके बाणोंसे मोहित देखकर अर्जुनने शीघ्रतासे भीष्मके सम्मुख जाके एक सहस्र बाणोंसे उनको प्रहार किया ॥ १५ ॥

परिसंवार्य चास्त्राणि भीष्ममुक्तानि संयुगे ।
स्वेनानीकेन हृष्टेन युद्धाय समवस्थितः ॥ १६ ॥

और संग्राममें भीष्मके चलाये हुए अस्त्रोंको विदारण करके निज हर्षित सेनाके सहित वे युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजमभाषत ।
पूर्वं दृष्ट्वा वधं घोरं बलस्य बलिनां वरः ।
भ्रातृणां च वधं युद्धे त्वरमाणो महारथः ॥ १७ ॥
आचार्य सततं त्वं हि हितकामो ममानघ ।
वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम् ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा दुर्योधन जो पहिले सैनिक पुरुषोंका और कई एक भाइयोंका घोर नाश देख चुके थे, उसही का स्मरण करते हुए वह शीघ्रतापूर्वक भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके निकट जाके बोले, हे धर्मात्मा आचार्य ! तुम सदा हमारे हितकी अभिलाषा करते रहते हो; हम तुम्हारे और पितामह भीष्मके आसरेसे ॥ १७–१८ ॥

देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः ।
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ॥ १९ ॥

देवताओंकी भी युद्धमें जीतनेकी अभिलाषा कर सकते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । तब जो वीर्य और पराक्रमसे हीन पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करूंगा, उसकी बात ही क्या है ? ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष ।
अभिनत्पाण्डवानीकं प्रेक्षमाणस्य सात्यकेः ॥ २० ॥

इससे तुम्हारे पक्षमें शुभ होवे, जिस प्रकारसे पाण्डवोंका वध होवे तुम वही उपाय करो । आर्य ! द्रोणाचार्य रणभूमिमें दुर्योधनकी बात सुनकर सात्यकिके सम्मुखमें ही पाण्डवोंकी सेनापर शस्त्रप्रहार करने लगे ॥ २० ॥

सात्यकिस्तु तदा द्रोणं वारयामास भारत ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २१ ॥

भारत ! तब सात्यकि द्रोणाचार्यको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए; उन दोनों पुरुषोंका महा घोर रोएं खडे करनेवाला युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २१ ॥

शैनेयं तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्जत्रुदेशे हसन्निव ॥ २२ ॥

प्रतापी द्रोणाचार्यने युद्धमें क्रुद्ध होकर हंसते हंसते सात्यकिके हृदयके नीचे कोखेको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २२ ॥

भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत ।
संरक्षन्सात्यकिं राजन्द्रोणाच्छस्त्रभृतां वरात् ॥ २३ ॥

राजन् ! अनन्तर भीमसेन क्रुद्ध होकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे सात्यकिकी रक्षा करनेके निमित्त उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २३ ॥

ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष ।
भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयांचक्रिरे शरैः ॥ २४ ॥

मारिष ! इसके अनन्तर द्रोणाचार्य, भीष्म और शल्यने क्रुद्ध होकर भीमसेनको युद्धस्थलमें अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ २४ ॥

तत्राभिमन्युः संक्रुद्धो द्रौपदेयाश्च मारिष ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः सर्वांस्तानुद्यतायुधान् ॥ २५ ॥

महाराज ! तब अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रलोग क्रुद्ध होकर शस्त्रधारी द्रोणाचार्य आदि सब महारथियोंको शिलापर घिसे हुए चोखे बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ २५ ॥

भीष्मद्रोणौ च संक्रुद्धावापतन्तौ महाबलौ ।
प्रत्युद्ययौ शिखण्डी च महेष्वासो महाहवे ॥ २६ ॥

महाधनुर्द्धारी शिखण्डी भी महाबली भीष्म और द्रोणाचार्यको क्रुद्ध होकर युद्धके निमित्त आया हुआ देखकर उस महायुद्धमें उनके सम्मुख हुए ॥ २६ ॥

प्रगृह्य बलवद्वीरो धनुर्जलदनिस्वनम् ।
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं छादयानो दिवाकरम् ॥ २७ ॥

और बादलके समान गम्भीर घोष करनेवाले अपना धनुष ग्रहण करके उसको बलपूर्वक खींचकर बडी शीघ्रतासे बाणोंकी वर्षा की कि सूर्य भी उन बाणोंसे छिपा दिया गया ॥ २७ ॥

शिखण्डिनं समासाद्य भरतानां पितामहः ।
अवर्जयत संग्रामे स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मरन् ॥ २८ ॥

भरतकुलके पितामह भीष्मने युद्धमें शिखण्डीके स्त्रीत्वका स्मरणकर उसके ऊपर शस्त्र नहीं चलाया ॥ २८ ॥

ततो द्रोणो महाराज अभ्यद्रवत तं रणे ।
रक्षमाणस्ततो भीष्मं तव पुत्रेण चोदितः ॥ २९ ॥

महाराज ! तब आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञासे द्रोणाचार्य वहांपर भीष्मकी रक्षा करनेके निमित्त शिखण्डीके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ २९ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ।
अवर्जयत संग्रामे युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ ३० ॥

शिखण्डीने प्रलयकालकी अग्निके समान शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको सम्मुख आया हुआ देख, भयभीत होके भीष्मको त्यागकर वहांसे प्रस्थान किया ॥ ३० ॥

ततो बलेन महता पुत्रस्तव विशां पते ।
जुगोप भीष्ममासाद्य प्रार्थयानो महद्यशः ॥ ३१ ॥

पृथ्वीपते ! फिर दुर्योधन महान् यशकी इच्छासे बहुतसी सेना लेकर भीष्मके पास पहुंचकर उनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३१ ॥

तथैव पाण्डवा राजन्पुरस्कृत्य धनञ्जयम् ।
भीष्ममेवाभ्यवर्तन्त जये कृत्वा दृढां मतिम् ॥ ३२ ॥

राजन् ! और पाण्डव लोग अर्जुनको आगे करके विजयके निमित्त दृढ निश्चय करके भीष्मके निकट उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥

तद्युद्धमभवद्धोरं देवानां दानवैरिव ।
जयं च काङ्क्षतां नित्यं यशश्च परमाद्भुतम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ २७८८ ॥

सदैव अत्यन्त अद्भुत यश और विजयकी इच्छा करनेवाले दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका देवता और दानवोंके युद्धके समान महाघोर संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ २७८८ ॥

: ६६ :

सञ्जय उवाच

अकरोत्तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
भीमसेनभयादिच्छन्पुत्रांस्तारयितुं तव ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! शान्तनुनन्दन भीष्म तुम्हारे पुत्रोंका भीमसेनके भयसे परित्राण करनेके निमित्त महाघोर युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

पूर्वाह्णे तन्महारौद्रं राज्ञां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च मुख्यशूरविनाशनम् ॥ २ ॥

दिनके पूर्वाह्ण समयमें कौरव और पाण्डवोंकी सेनाका महादारुण युद्ध होने लगा; उससे मुख्य मुख्य वीरोंका प्राण नाश हुआ ॥ २ ॥

तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ।
अभवत्तुमुलः शब्दः संस्पृशन्गगनं महत् ॥ ३ ॥

उस अत्यन्त भयङ्कर घमासान युद्धमें वीरोंका घोर शब्द होने लगा, वह आकाश तक गूंजने लगा ॥ ३ ॥

नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलः समपद्यत ॥ ४ ॥

बडे बडे हाथी चिङ्घाड मारने लगे; घोडोंके हिन हिनाने और भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग आदिके शब्दसे महाघोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥

युयुत्सवस्ते विक्रान्ता विजयाय महाबलाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महर्षभाः ॥ ५ ॥

विजयके लिये युद्धके चाहनेवाले पराक्रमी और महाबली वीरलोग जैसे बडे बैल गोशालाओंमें गरजते हुए एक दूसरेसे भिड जाते हैं, वैसे गरजते हुए एक दूसरेके सामने आये ॥ ५ ॥

शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाकाशे बभूव भरतर्षभ ॥ ६ ॥

भरतर्षभ ! उस समरभूमिमें चोखे बाणोंसे वीरोंके सिर कटके इस भांति पृथ्वीमें गिरने लगे, मानों आकाशसे शिलाकी वर्षा होने लगी ॥ ६ ॥

कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपोज्ज्वलानि च ।
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि भरतर्षभ ॥ ७ ॥

राजन् ! बाणोंके लगनेसे स्वर्णमय मुकुट और कुण्डलोंसे युक्त अगणित सिर धरतीपर कटकर पडे दिखाई देते थे ॥ ७ ॥

विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।
सहस्ताभरणैश्चान्यैरभवच्छादिता मही ॥ ८ ॥

हाथके भूषण और बहुतसे आभूषणोंसे युक्त वीरोंके शरीरसे पृथ्वी छिप गई । सारी पृथ्वी बाणोंसे छिन्नभिन्न हुए कवचयुक्त शरीर, धनुष तथा भूषणोंसे भूषित कटी हुई भुजाओंसे पट गयी थी ॥ ८ ॥

×

कवचोपहितैर्गात्रैर्हस्तैश्च समलंकृतैः ।
मुखैश्च चन्द्रसङ्काशै रक्तान्तनयनैः शुभैः ॥ ९ ॥
गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैश्च भूपते ।
आसीत्सर्वा समाकीर्णा मुहूर्तेन वसुंधरा ॥ १० ॥

भूपते ! कवचसे ढके हुए शरीरों, आभूषणोंसे विभूषित हाथों, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुखों, लाल सुन्दर नेत्रसे युक्त मस्तक तथा हाथी, घोडे और मनुष्योंके शरीरोंसे मुहूर्त भरमें सम्पूर्ण रणभूमि भर गई ॥ ९–१० ॥

रजोमेघैश्च तुमुलैः शस्त्रविद्युत्प्रकाशितैः ।
आयुधानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥ ११ ॥

बहुतसे धूलिरूप भयंकर मेघ, शस्त्ररूपी बिजलीसे प्रकाशित होते थे। अस्त्रशस्त्रोंका गंभीर शब्द मानों मेघ गर्जनाके शब्दके समान बोध होने लगा ॥ ११ ॥

स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः ।
प्रावर्तत कुरूणां च पाण्डवानां च भारत ॥ १२ ॥

हे भारत ! कुरुपाण्डवोंके उस महाघोर कटु युद्धमें मानो शोणितका तालाव उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

तस्मिन्महाभये घोरे तुमुले लोमहर्षणे ।
ववर्षुः शरवर्षाणि क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ १३ ॥

उस महान् भयानक, घोर, तुमुल और रोवोंके खडे करनेवाले युद्धमें रणदुर्मद क्षत्रिय बहुतसे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १३ ॥

क्रोशन्ति कुञ्जरास्तत्र शरवर्षप्रतापिताः ।
तावकानां परेषां च संयुगे भरतोत्तम ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आपके और पाण्डवोंकी सेनाओंके हाथी शूरवीरोंके बाण और शस्त्रोंकी चोटसे विकल होके उस युद्धमें चिङ्घाड मारने लगे। सवारोंसे रहित घोडे बाणोंसे विद्ध होकर चारों ओर भागने लगे ॥ १४ ॥

उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरघातप्रपीडिताः ।
तावकानां परेषां च योधानां भरतर्षभ ॥ १५ ॥

भरतर्षभ ! आपके और शत्रुपक्ष दोनों सेनाके योद्धाओंमेंसे बहुतेरे पुरुष बाण-शस्त्रोंकी चोटसे अत्यन्त पीडित होकर पृथ्वीमें उछलकर गिरने लगे ॥ १५ ॥

अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां चातिवर्ततताम् ।
संघाताः स्म प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र विशां पते ॥ १६ ॥

पृथ्वीपते ! उस रणभूमिमें जगह जगह दौडते हुए घोडे, हाथी और युद्धसे न हटनेवाले रथोंका आपसमें टक्कर होने लगे ॥ १६ ॥

गदाभिरसिभिः प्रासैर्बाणैश्च नतपर्वभिः ।
जघ्नुः परस्परं तत्र क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १७ ॥

क्षत्रिय लोग कालके वशमें होकर गदा, खड्ग, प्रास, शक्ति, तलवार और चोखे बाणोंसे एक दूसरेका वध करने लगे ॥ १७ ॥

अपरे बाहुभिर्वीरा नियुद्धकुशला युधि ।
बहुधा समसज्जन्त आयसैः परिघैरिव ॥ १८ ॥

कितनेही दूसरे मल्ल युद्धकुशल वीर उस युद्धस्थलमें लोहमय परिघके समान मोटी भुजाओंसे ठोर ठोर युद्ध करने लगे ! ॥ १८ ॥

मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव तलैश्चैव विशां पते ।
अन्योन्यं जघ्निरे वीरास्तावकाः पाण्डवैः सह ॥ १९ ॥

प्रजापते ! आपके वीर सैनिक पाण्डवोंके साथ युद्ध करते समय मुक्कों घुटनों और थप्पडोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ १९ ॥

विरथा रथिनश्चात्र निस्त्रिंशवरधारिणः ।
अन्योन्यमभिधावन्त परस्परवधैषिणः ॥ २० ॥

बहुतसे रथी रथ रहित होकर उत्तम तलवार मियानसे खींच एक दूसरेके वध करनेकी इच्छासे दौडने लगे ॥ २० ॥

ततो दुर्योधनो राजा कलिङ्गैर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं पाण्डवानभ्यवर्तत ॥ २१ ॥

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधनने बहुतसे कलिंग-देशीय वीरोंसे युक्त होकर भीष्मको आगेकर पाण्डवोंकी ओर गमन किया ॥ २१ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
भीष्ममभ्यद्रवन्क्रुद्धा रणे रभसवाहनाः ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ २८१० ॥

इसी प्रकार पाण्डव लोग भी क्रुद्ध होकर भीमसेनको आगे करके वेगशील वाहनोंपर चढके भीष्मके सम्मुख आपहुंचे ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ २८१० ॥

: ६७ :

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा भीष्मेण संसक्तान्भ्रातॄनन्यांश्च पार्थिवान्।
तमभ्यधावद्गाङ्गेयमुद्यतास्त्रो धनञ्जयः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन्! अर्जुन अपने भाइयों तथा दूसरे राजाओंको भीष्मके संग युद्ध करते हुए देखकर धनुष ग्रहण करके गंगानंदन भीष्मकी ओर आपहुंचे ॥ १ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं धनुषो गाण्डिवस्य च।
ध्वजं च दृष्ट्वा पार्थस्य सर्वान्नो भयमाविशत् ॥ २ ॥

पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द अर्जुनके गाण्डीव धनुषका टङ्कार सुनके और उनके रथकी ध्वजाको देखकर हमारे सब सैनिक भयभीत हो गये ॥ २ ॥

असज्जमानं वृक्षेषु धूमकेतुमिवोत्थितम्।
बहुवर्णं च चित्रं च दिव्यं वानरलक्षणम्।
अपश्याम महाराज ध्वजं गाण्डिवधन्वनः ॥ ३ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनकी दिव्य, चित्रित और हनुमानसे युक्त अनेक रंगोंसे सुशोभित, वृक्ष आदिसे कहीं भी न रुकनेवाली, आकाशमें उदित हुए धूमकेतुके समान स्थित, उस अलौकिक ध्वजाको मैंने अवलोकन किया ॥ ३ ॥

विद्युतं मेघमध्यस्थां भ्राजमानामिवाम्बरे।
ददृशुर्गाण्डिवं योधा रुक्मपृष्ठं महारथे ॥ ४ ॥

उस संग्राममें महारथमें योद्धा लोग उनके सुवर्ण चर्चित गाण्डीव धनुषको आकाशमें बादलोंके बीच रहनेवाली बिजली की भांति देखने लगे ॥ ४ ॥

अशुश्रुम भृशं चास्य शक्रस्येवाभिगर्जतः।
सुघोरं तलयोः शब्दं निघ्नतस्तव वाहिनीम् ॥ ५ ॥

तुम्हारी सेनाका वध करनेके समय वह बहुत ही गर्जने लगे और उनके दोनों पद त्राणका शब्द सुनाई देने लगा ॥ ५ ॥

चण्डवातो यथाः मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान्।
दिशः संप्लावयन्सर्वाः शरवर्षैः समन्ततः ॥ ६ ॥

जिस भांति प्रचण्ड वायुकी सहायतासे गर्जता हुआ बिजलीसे युक्त मेघ सब ओर पानीकी वर्षा करता है, उसी भांतिसे वह बाणोंकी वर्षासे सब दिशाओंको पूरित करने लगे ॥ ६ ॥

अभ्यधावत गाङ्गेयं भैरवास्त्रो धनञ्जयः ।
दिशं प्राचीं प्रतीचीं च न जानीमोऽस्त्रमोहिताः ॥ ७ ॥

वह भयङ्कर अस्त्रोंको वर्षाते हुए गंगानंदन भीष्मकी ओर दौडे, उनके चलाये हुए अस्त्रोंसे मोहित होकर हम लोगोंको पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओंका भी ज्ञान न रहा ॥ ७ ॥

कांदिग्भूताः श्रान्तपत्रा हतास्त्रा हतचेतसः ।
अन्योन्यमभिसंश्लिष्य योधास्ते भरतर्षभ ॥ ८ ॥
भीष्ममेवाभिलीयन्त सह सर्वैस्तवात्मजैः ।
तेषामार्तायनमभूद्भीष्मः शांतनवो रणे ॥ ९ ॥

हे भारत ! तुम्हारी सेनाके योद्धाओंमें कितनोंके वाहन थक गये और कितनोंके वाहन शस्त्रोंसे मरके पृथ्वीपर गिर गये, उन सबका हार्दिक उत्साह नष्ट हुआ था, वह लोग भय-भीत होके आपसमें एक दूसरेको मारते और मरते हुए दिशाके ज्ञानसे रहित होकर तुम्हारे सब पुत्रोंके सहित भीष्मके शरणागत हुए । उस युद्धमें भीष्म ही उन लोगोंके परित्राण करनेवाले हुए ॥ ८–९ ॥

समुत्पतन्त वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा ।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः ॥ १० ॥

उस समय भयभीत होके रथी रथसे, घुडसवार घोडोंकी पीठसे और पैदल चलनेवाले वीर शस्त्रोंकी चोटसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ १० ॥

श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
सर्वसैन्यानि भीतानि व्यवलीयन्त भारत ॥ ११ ॥

हे भारत ! वज्रके समान गाण्डीव धनुषका शब्द सुनकर सम्पूर्ण सेना भयसे पीडित होकर किसी उत्तम भांतिसे रक्षित स्थानपर जाके ठहरी ॥ ११ ॥

अथ काम्बोजमुख्यैस्तु वृहद्भिः शीघ्रगामिभिः ।
गोपानां बहुसाहस्रैर्बलैर्गोवासनो वृतः ॥ १२ ॥

तदनन्तर काम्बोजराज सुदक्षिण काम्बोजदेशीय मुख्य मुख्य एवं बहुत शीघ्रगामी बहुतसे घोडोंपर आरूढ हो युद्धके लिये चले और उनके साथ गोवासन नामवाले कई हजार गोप सैनिक थे ॥ १२ ॥

मद्रसौवीरगान्धारैस्त्रिगर्तैश्च विशां पते ।
सर्वकालिङ्गमुख्यैश्च कलिङ्गाधिपतिर्वृतः ॥ १३ ॥

हे प्रजानाथ ! तब मद्र, सैवीर, गान्धार, त्रिगर्त्त और सम्पूर्ण कालिङ्ग देशीय मुख्य मुख्य योद्धाओंसे घिरे हुए कलिङ्गराज भी युद्धके लिये आगे चले ॥ १३ ॥

नागा नरगणौघाश्च दुःशासनपुरःसराः ।
जयद्रथश्च नृपतिः सहितः सर्वराजभिः । ॥ १४ ॥

राजा जयद्रथ नाना भांतिके मनुष्योंके समूहसे युक्त होकर सम्पूर्ण राजाओंके सहित दुःशासनको आगे करके चला ॥ १४ ॥

हयारोहवराश्चैव तव पुत्रेण चोदिताः ।
चतुर्दश सहस्राणि सौबलं पर्यवारयन् ॥ १५ ॥

चौदह हजार मुख्य मुख्य घुडसवार दुर्योधनकी आज्ञासे सुवलपुत्र शकुनिको घेर कर उनकी रक्षा करनेके निमित्त स्थित हुए ॥ १५ ॥

ततस्ते सहिताः सर्वे विभक्तरथवाहनाः ।
पाण्डवान्समरे जग्मुस्तावका भरतर्षभ ॥ १६ ॥

हे भारत ! अनन्तर तुम्हारी सेनाओंके वीर रथ तथा दूसरे वाहनोंपर चढके एकत्रित हो तथा पृथक् पृथक् होके पाण्डवोंके ऊपर युद्धमें शस्त्रोंका प्रहार करने लगे ॥ १६ ॥

रथिभिर्वारणैरश्वैः पदातैश्च समीरितम् ।
घोरमायोधनं जज्ञे महाभ्रसदृशं रजः । ॥ १७ ॥

उस रणभूमिमें रथी, हाथी, घोडे और पैदलोंके वेगसे चलनेसे ऐसी धूली उडी, कि मानो आकाशमें बादलोंका समूह दिखाई दे रहा हो । इससे वह युद्ध भयंकर दिखने लगा ॥ १७ ॥

तोमरप्रासनाराचगजाश्वरथयोधिनाम् ।
बलेन महता भीष्मः समसज्जत्किरीटिना ॥ १८ ॥

भीष्म तोमर, प्रास, नाराच बाण, हाथी, घोडे और रथियोंकी विशाल सेना सङ्ग लेके किरीटधारी अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥

आवन्त्यः काशिराजेन भीमसेनेन सैन्धवः ।
अजातशत्रुर्मद्राणामृषभेण यशस्विना
सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत । ॥ १९ ॥

अवन्तिराज काशिराजसे, सिन्धुराज जयद्रथसे भीमसेन, पुत्र और सेवकोंके सहित अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर यशस्वी मद्रराज शल्यसे युद्ध करने लगे ॥ १९ ॥

विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना ।
मत्स्या दुर्योधनं जग्मुः शकुनिं च विशां पते ॥ २० ॥

विकर्ण सहदेवसे और चित्रसेन शिखण्डीसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए । हे प्रजानाथ ! मत्स्यदेशीय योद्धा दुर्योधन और शकुनिके संग युद्ध करने लगे ॥ २० ॥

द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः ।
द्रोणेन समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना ।
कृपश्च कृतवर्मा च धृष्टकेतुमभिद्रुतौ ॥ २१ ॥

द्रुपद, चेकितान और महारथ सात्यकि पुत्र सहित महात्मा द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; कृपाचार्य और कृतवर्मा ये दोनों धृष्टकेतुसे युद्ध करनेके निमित्त आगे बढे ॥ २१ ॥

एवं प्रजविताश्वानि भ्रान्तनागरथानि च ।
सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः ॥ २२ ॥

इसी भांतिसे जगह जगह दलके दल रणभूमिमें भ्रमण करनेवाले, घोडे, हाथी और रथीयोंने आपसमें युद्ध करना आरंभ किया ॥ २२ ॥

निरभ्रे विद्युतस्तीव्रा दिशश्च रजसावृताः ।
प्रादुरासन्महोल्काश्च सनिर्घाता विशां पते ॥ २३ ॥

हे राजन् ! उस समय विना बादलके दुःसह बिजली चमकने लगी, सब दिशाएं धूलसे भर गयीं और भयानक शब्दके सहित उल्कापात होने लगा ॥ २३ ॥

प्रववौ च महावातः पांसुवर्षं पपात च ।
नभस्यन्तर्दधे सूर्यः सैन्येन रजसावृतः ॥ २४ ॥

वायु बडे वेगसे बहने लगा और धूलीकी वर्षा होने लगी । सूर्य सेनाके पांवकी धूलिसे आकाशमें छिप गये ॥ २४ ॥

प्रमोहः सर्वसत्त्वानामतीव समपद्यत ।
रजसा चाभिभूतानामस्त्रजालैश्च तुद्यताम् ॥ २५ ॥

सब दिशाओंमें धूलि व्याप्त हो गई । शूरवीरोंके अस्त्रोंके सङ्ग वायुसे उडती हुई वह सम्पूर्ण धूलि अस्त्रोंके आघातसे पीडित सैनिक पुरुषोंको मोहित करने लगी ॥ २५ ॥

वीरबाहुविसृष्टानां सर्वावरणभेदिनाम् ।
संघातः शरजालानां तुमुलः समपद्यत ॥ २६ ॥

वीरोंकी भुजाओंसे छूटे हुए और सब प्रकारके आवरणोंका भेदन करनेवाले सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंका भयङ्कर शब्द होने लगा ॥ २६ ॥

प्रकाशं चक्रुराकाशमुद्यतानि भुजोत्तमैः ।
नक्षत्रविमलाभानि शस्त्राणि भरतर्षभ ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तारोंके समान निर्मल और प्रकाशमान शस्त्र वीरोंकी उत्तम भुजाओंसे छूटकर आकाशमण्डलको प्रकाशित करने लगे ॥ २७ ॥

आर्षभाणि विचित्राणि रुक्मजालावृतानि च ।
संपेतुर्दिक्षु सर्वासु चर्माणि भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतर्षभ ! सुवर्णकी जालीसे भूषित और ऋषभचर्मकी बनी हुई विचित्र ढाल सब ओर रणभूमिमें कटकर गिरने लगी ॥ २८ ॥

सूर्यवर्णैश्च निस्त्रिंशैः पात्यमानानि सर्वशः ।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त शरीराणि शिरांसि च ॥ २९ ॥

योद्धाओंके शरीर और शिर सूर्यके समान प्रकाशमान तलवारोंसे कटके पृथ्वीमें गिरने लगे; ॥ २९ ॥

भग्नचक्राक्षनीडाश्च निपातितमहाध्वजाः ।
हताश्वाः पृथिवीं जग्मुस्तत्र तत्र महारथाः ॥ ३० ॥

महारथियोंके रथके चक्के, धुरी और भीतरकी बैठकें आदि टूटके गिरने लगीं । रथकी बडी बडी ध्वजाएं कटने लगीं और घोडोंके मरनेसे महारथी योद्धा लोग जगह जगह पृथ्वीपर पैदल चलते हुए दिखाई देने लगे ॥ ३० ॥

परिपेतुर्हयाश्चात्र केचिच्छस्त्रकृतव्रणाः ।
रथान्विपरिकर्षन्तो हतेषु रथयोधिषु ॥ ३१ ॥

बहुतसे रथियोंके मारे जानेपर उनके रथके घोडे शस्त्रोंसे क्षत विक्षत शरीर होके खाली ही रथको लेके दौडते हुए पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३१ ॥

शराहता भिन्नदेहा बद्धयोक्त्रा हयोत्तमाः ।
युगानि पर्यकर्षन्त तत्र तत्र स्म भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! जगह जगह बहुतसे उत्तम घोडे बाणोंसे पीडित होके क्षत-विक्षत हो गये थे तो भी रथके साथ रस्सीमें बंधे हुए थे, इस लिये रथोंको इधर उधर खीचने लगे ॥ ३२ ॥

अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथयोधिनः ।
एकेन बलिना राजन्वारणेन हता रथाः ॥ ३३ ॥

राजन् ! उस रणभूमिमें एक बलवान् हाथीसे मैंने सारथी, घोडे और रथके सहित बहुतसे रथियोंको मरते हुए देखा ॥ ३३ ॥

गन्धहस्तिमदस्रावमाघ्राय बहवो रणे ।
संनिपाते बलौघानां वीतमादददिरे गजाः ॥ ३४ ॥

युद्धके निमित्त तैयार हुई सेनाओंके बीचसे हाथी दूसरे मद चूते हुए हाथियोंके मदकी गंधको सूंघके भ्रमसे मद रहित हाथीके साथ ही युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

सतोमरमहामात्रैर्निपतद्भिर्गतासुभिः ।
बभूवायोधनं छन्नं नाराचाभिहतैर्गजैः ॥ ३५ ॥
ध्वजा तथा तोमरके सहित मरे हुए पीलवान और नाराच बाणोंकी चोटसे मरे हुए बहुतसे हाथियोंसे वह रणभूमिकी पृथ्वी भर गई ॥ ३५ ॥

संनिपाते बलौघानां प्रेषितैर्वरवारणैः ।
निपेतुर्युधि संभग्नाः सयोधाः सध्वजा रथाः ॥ ३६ ॥
सैनिकोंके उस भयंकर संग्राममें बहुतसे बहुत बडे हाथियोंसे चलाये जानेपर बहुतेरे रथ युद्धमें शस्त्रोंसे कटकर योद्धा और ध्वजाओंके रहित पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३६ ॥

नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे ।
व्यदृश्यन्त महाराज संभग्ना रथकूबराः ॥ ३७ ॥
हे राजन् ! उस युद्धमें अनेक हाथी नागराजके समान सूंडसे खींचकर फेंके हुए रथोंके ध्वज और कूबर पांवसे चूर्ण करते थे ॥ ३७ ॥

विशीर्णरथजालाश्च केशेष्वाक्षिप्य दन्तिभिः ।
द्रुमशाखा इवाविध्य निष्पिष्टा रथिनो रणे ॥ ३८ ॥
और कितने ही दन्तार हाथी रथसमूहोंको तोडफाडकर उनमें बैठे हुए रथियोंको उनके केशोंमें पकडकर उठाकर दूर फेंकने लगे और वृक्षकी शाखाके समान तोडकर युद्धमें चूर्ण करने लगे ॥ ३८ ॥

रथेषु च रथान्युद्धे संसक्तान्वरवारणाः ।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः सर्वशब्दगाः ॥ ३९ ॥
बडे बडे अनेक हाथी रथसमूहोंमें घुसकर युद्धमें उलझे हुए दूसरे रथोंको तोडने और नाना भांतिसे भयानक शब्द करते हुए सब दिशाओंमें उन रथोंको खींचे गमन करने लगे ॥ ३९ ॥

तेषां तथा कर्षतां च गजानां रूपमाबभौ ।
सरःसु नलिनीजालं विषक्तमिव कर्षताम् ॥ ४० ॥
उन सम्पूर्ण हाथियोंकी रथ आकर्षण करते हुए गमन करनेके समयमें ऐसी शोभा हुई, जैसे मतवारे हाथी तालावमें कमलोंके समूहको तोडते हुए प्रकाशित होते हैं ॥ ४० ॥

एवं संछादितं तत्र बभूवायोधनं महत् ।
सादिभिश्च पदातैश्च सध्वजैश्च महारथैः ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ २८५१ ॥

इसी प्रकारसे वह विशाल रणभूमि घोडे, हाथी, पैदल और रथोंकी ध्वजा उथा रथियोंके मरके गिरनेसे पूरित होगई ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ २८५१ ॥

×

: ६८ :

सञ्जय उवाच

शिखण्डी सह मत्स्येन विराटेन विशां पते ।
भीष्ममाशु महेष्वासमाससाद सुदुर्जयम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! शिखण्डीने मत्स्यराज विराटके सहित अत्यन्त पराक्रमी महाधनुर्धर भीष्मके समीप गमन किया ॥ १ ॥

द्रोणं कृपं विकर्णं च महेष्वासान्महाबलान् ।
राज्ञश्चान्यान्रणे शूरान्बहूनार्च्छद्धनञ्जयः ॥ २ ॥

उस समय अर्जुनने रणभूमिमें महाधनुर्धर और महाबलवान् द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण तथा दूसरे बहुतसे शूरवीर नरेशोंको अपने बाणोंसे पीडा पहुंचायी ॥ २ ॥

सैन्धवं च महेष्वासं सामात्यं सह बन्धुभिः ।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च भूमिपान्भूमिपर्षभ ॥ ३ ॥

अनुयायी मंत्री और बन्धुओंसे युक्त महाधनुर्द्धारी सिन्धुराज जयद्रथ, पूर्व, पश्चिम और दक्षिणदेशीय राजाओं तथा और बहुतसे महाधनुर्द्धारी बलवान् शूरवीर क्षत्रियोंके संग युद्ध करनेके निमित्त आगे बढे ॥ ३ ॥

पुत्रं च ते महेष्वासं दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःसहं चैव समरे भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥ ४ ॥

भीमसेन तुम्हारे पुत्र क्रुद्धस्वभाव महा धनुर्द्धर दुर्योधन और दुःसहके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ ४ ॥

सहदेवस्तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ।
पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यवर्तत दुर्जयौ ॥ ५ ॥

सहदेव शकुनी और उनके पुत्र महारथी उलूक-इन दोनों दुर्जय महाधनुर्द्धारी पिता-पुत्रोंके संग युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरो महाराज गजानीकं महारथः ।
समवर्तत संग्रामे पुत्रेण निकृतस्तव ॥ ६ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्रसे दुःखित हुए महाराज युधिष्ठिरने दुर्योधनकी हाथियोंकी सेनाके संग युद्ध करनेके निमित्त गमन किया ॥ ६ ॥

माद्रीपुत्रस्तु नकुलः शूरः संक्रन्दनो युधि ।
त्रिगर्तानां रथोदारैः समसज्जत पाण्डवः ॥ ७ ॥

युद्धमें शत्रुओंको रुलानेवाले माद्रीपुत्र नकुलने त्रिगर्त्त देशीय रथी योद्धाओंके संग युद्ध आरम्भ किया ॥ ७ ॥

अभ्यवर्तन्त दुर्धर्षाः समरे शाल्वकेकयान् ।
सात्यकिश्चेकितानश्च सौभद्रश्च महारथः ॥ ८ ॥

युद्धमें पराक्रम करनेवाले बलवान् सात्यकि, चेकितान और महारथी अभिमन्यु शाल्व और केकय देशीय योद्धाओंके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुश्च समरे राक्षसश्च घटोत्कचः ।
पुत्राणां ते रथानीकं प्रत्युद्याताः सुदुर्जयाः ॥ ९ ॥

धृष्टकेतु और राक्षस घटोत्कच इन अत्यन्त दुर्जय वीरोंने समरांगणमें दुर्योधनकी रथसेनाके सङ्ग युद्ध करनेके लिये आक्रमण किया ॥ ९ ॥

सेनापतिरमेयात्मा धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
द्रोणेन समरे राजन्समियायेन्द्रकर्मणा ॥ १० ॥

राजन् ! अमेयात्मा सेनापति महारथ धृष्टद्युम्न महापराक्रमी द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १० ॥

एवमेते महेष्वासास्तावकाः पाण्डवैः सह ।
समेत्य समरे शूराः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ११ ॥

इसी प्रकारसे आपकी ओरके महाधनुर्धर शूरवीर योद्धा लोग पाण्डवोंके साथ रणभूमिमें एक दूसरेके सम्मुख होकर युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥

मध्यंदिनगते सूर्ये नभस्याकुलतां गते ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च निजघ्नुरितरेतरम् ॥ १२ ॥

जिस समय दोपहरके अनन्तर सूर्यके तेजसे सम्पूर्ण आकाशमण्डल तप रहा था, उस ही समय कौरव और पाण्डव लोग आपसमें एक दूसरेका वध करने लगे ॥ १२ ॥

ध्वजिनो हेमचित्राङ्गा विचरन्तो रणाजिरे ।
सपताका रथा रेजुर्वैयाघ्रपरिवारणाः ॥ १३ ॥

ध्वजा पताकासे युक्त सुवर्ण-चर्चित रथ तथा व्याघ्रचर्मका आवरण किये हुए, ऐसे अनेक रथ रणभूमिमें भ्रमण करते हुए प्रकाशित होने लगे ॥ १३ ॥

समेतानां च समरे जिगीषूणां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दः सिंहानामिव नर्दताम् ॥ १४ ॥

और युद्धमें एक दूसरेसे भिडकर परस्पर विजय पानेकी इच्छावाले शूरवीर सिंहके समान गर्जना कर रहे थे और उनका वह तुमुल शब्द सब ओर गूंज रहा था ॥ १४ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम संप्रहारं सुदारुणम् ।
यमकुर्वन्रणे वीराः सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ १५ ॥

राजन् ! हमने वहां, महाभयंकर और अद्भुत संग्राम जिसे रणशूर सृंजयोंने कौरवोंके साथ किया, देखा ॥ १५ ॥

नैव खं न दिशो राजन्न सूर्यं शत्रुतापन ।
विदिशो वाप्यपश्याम शरैर्मुक्तैः समन्ततः ॥ १६ ॥

शत्रुतापन ! चारों ओरसे बाणोंके चलनेसे उनसे आच्छादित हो जानेके कारण आकाश, सूर्य, दिशा, विदिशा कुछ भी नहीं दीख पडता था ॥ १६ ॥

शक्तीनां विमलाग्राणां तोमराणां तथास्यताम् ।
निस्त्रिंशानां च पीतानां नीलोत्पलनिभाः प्रभाः ॥ १७ ॥
कवचानां विचित्राणां भूषणानां प्रभास्तथा ।
खं दिशः प्रदिशश्चैव भासयामासुरोजसा ।
विरराज तदा राजंस्तत्र तत्र रणाङ्गणम् ॥ १८ ॥

शूरवीरोंके चलाये हुए उत्तम तोमर, विमल शक्ति और पीत निस्त्रिंशोंके नीलकमलके समान प्रकाश और विचित्र कवच तथा भूपणोंके प्रकाशसे आकाश, दिशा और विदिशा अपने तेजसे प्रकाशित होने लगीं । राजन् ! उस समय वह रणभूमिमें सब ओरसे प्रकाशित होने लगी ॥ १७--१८ ॥

रथसिंहासनव्याघ्राः समायान्तश्च संयुगे ।
विरेजुः समरे राजन्ग्रहा इव नभस्तले ॥ १९ ॥

राजन् ! रणमें आते हुए पुरुप सिंह और रथोंका स्वरूप आकाश मण्डलके तारा पुञ्जकी भांति प्रकाशित हुआ ॥ १९ ॥

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनं महाबलम् ।
अवारयत संक्रुद्धः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ २० ॥

हे भारत ! रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्म क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण सेनाके संमुख ही भीमसेनको निवारण करने लगे ॥ २० ॥

ततो भीष्मविनिर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
अभ्यघ्नन्समरे भीमं तैलधौताः सुतेजनाः ॥ २१ ॥

भीष्मके चलाये हुए रुक्म पुङ्ख, शिला पर घिसकर तेज किए और तेलसे मांजे हुए तीक्ष्ण बाण समरभूमिमें भीमसेनको पीडित करने लगे ॥ २१ ॥

तस्य शक्तिं महावेगां भीमसेनो महाबलः ।
क्रुद्धाशीविषसङ्काशां प्रेषयामास भारत ॥ २२ ॥

भारत ! महा बलवान् भीमसेनने क्रुद्ध होकर भीष्म पितामहके ऊपर विषधर सर्पके समान भयंकर महावेगशालिनी शक्ति चलाई ॥ २२ ॥

तामापतन्तीं सहसा रुक्मदण्डां दुरासदाम् ।
चिच्छेद समरे भीष्मः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २३ ॥

उस रुक्म दण्डवाली दुःसह प्रचण्ड शक्तिको सहसा संमुख आती हुई देखकर भीष्मने तीक्ष्ण बाणोंसे उसे काटकर गिरा दिया ॥ २३ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत ॥ २४ ॥

भारत! और दूसरे एक तीक्ष्ण और पानीदार भल्ल बाणसे उन्होंने भीमसेनका धनुष दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २४ ॥

सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे ।
शरैर्बहुभिरानर्छत्पितरं ते जनेश्वर । ॥ २५ ॥

जनेश्वर ! इसके अनन्तर सात्यकिने युद्धमें भीष्मके समीप शीघ्रतासे जाके तीक्ष्ण, चोखे और तेजस्वी बाणोंसे उनको विद्ध करना आरम्भ किया ॥ २५ ॥

ततः संधाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम्
वार्ष्णेयस्य रथाद्भीष्मः पातयामास सारथिम् ॥ २६ ॥

अनन्तर भीष्मने महाकठोर तीक्ष्ण एक बाण चलाके सात्यकिके रथसे सारथीको मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २६ ॥

तस्याश्वाः प्रद्रुता राजन्निहते रथसारथौ ।
तेन तेनैव धावन्ति मनोमारुतरंहसः । ॥ २७ ॥

राजन् ! सारथीके मारे जानेपर मन और वायुके समान वेगसे चलानेवाले घोडे सात्यकिके रथको लेकर इधर उधर दौडने लगे ॥ २७ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य निस्वनस्तुमुलोऽभवत् ।
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् । ॥ २८ ॥

उसे देखकर महात्मा पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनामें तुमुल शब्द और हाहाकार होने लगा ॥ २८ ॥

अभिद्रवत गृह्णीत हयान्यच्छत धावत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युयुधानरथं प्रति । ॥ २९ ॥

और " दौडो दौडो पकडो, घोडोंको रोको; जलदी दौडो " ऐसा ही शब्द सात्यकिके रथकी ओर होने लगा ॥ २९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
व्यहनत्पाण्डवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा । ॥ ३० ॥

इस ही अवसरमें शान्तनुनन्दन भीष्म पाण्डवोंकी सेनाका इस प्रकार वध करने लगे, जैसे इन्द्र असुरोंकी सेनाका नाश करते हैं ॥ ३० ॥

ते वध्यमाना भीष्मेण पाञ्चालाः सोमकैः सह ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा भीष्ममेवाभिदुद्रुवुः । ॥ ३१ ॥

पाञ्चाल और सोमकवंशीय क्षत्रिय भीष्मके वाणोंसे पीडित होकर भी युद्धमें दृढताके सहित उनकी ओर बढने लगे ॥ ३१ ॥

धृष्टद्युम्नमुखाश्चापि पार्थाः शांतनवं रणे ।
अभ्यधावञ्जिगीषन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् । ॥ ३२ ॥

तेरे पुत्रकी सेनाको जीतनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्न आदि सब पाण्डवपक्षीय वीर भी शान्तनुनन्दन भीष्मकी ओर दौडे ॥ ३२ ॥

तथैव तावका राजन्भीष्मद्रोणमुखाः परान् ।
अभ्यधावन्त वेगेन ततो युद्धमवर्तत ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ॥ २८८४ ॥

राजन् ! तथा तुम्हारी ओरसे भीष्म और द्रोणाचार्य आदि वीर भी पाण्डवोंकी सेनापर वेगपूर्वक दौडे, अनन्तर फिर आपसमें भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ २८८४ ॥

: ६९ :

सञ्जय उवाच

विराटोऽथ त्रिभिर्बाणैर्भीष्ममार्छन्महारथम् ।
विव्याध तुरगांश्चास्य त्रिभिर्बाणैर्महारथः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले,– हे भारत ! इसके अनन्तर राजा विराटने महारथी भीष्मको तीन बाणोंसे विद्ध करके फिर उनके घोडोंको भी तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ १ ॥

तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शांतनवः शरैः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः कृतहस्तो महाबलः ॥ २ ॥

तब महाबलवान् महा धनुर्धारी शान्तनुपुत्र भीष्मने हाथकी शीघ्रताके सहित रुक्म पङ्खवाले दस बाणोंसे विराटको विद्ध किया ॥ २ ॥

द्रौणिर्गाण्डीवधन्वानं भीमधन्वा महारथः ।
अविध्यदिषुभिः षड्भिर्दृढहस्तः स्तनान्तरे ॥ ३ ॥

भयानक धनुषको धारण करनेवाले द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने दृढ हस्तलघुताके साथ गाण्डीवधारी अर्जुनके दोनों स्तनोंके बीचमें छः बाण मारे ॥ ३ ॥

कार्मुकं तस्य चिच्छेद फल्गुनः परवीरहा ।
अविध्यच्च भृशं तीक्ष्णैः पत्रिभिः शत्रुकर्शनः ॥ ४ ॥

शत्रुवीरनाशन वीर अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाके धनुषको काटकर फिर चोखे बाणोंसे उन्हें खूब ही विद्ध किया ॥ ४ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगवत्क्रोधमूर्छितः ।
अमृष्यमाणः पार्थेन कार्मुकच्छेदमाहवे ॥ ५ ॥
अविध्यत्फल्गुनं राजन्नवत्या निशितैः शरैः ।
वासुदेवं च सप्तत्या विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥

अश्वत्थामाने युद्धमें अर्जुनके द्वारा अपने धनुषका काटना न सहकर क्रोधसे मूर्च्छित हो, तुरंत ही दूसरा धनुष ग्रहण करके उत्तम पानीमें बुझे हुए नौवे बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करके फिर सत्तर प्रबल बाणोंसे कृष्णको विद्ध किया ॥ ५–६ ॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षः सह कृष्णेन फल्गुनः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य चिन्तयित्वा मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर अर्जुनने कृष्णके सहित क्रोधसे लालनेत्र करके गर्म और लम्बी सांस लेते हुए बार बार चिन्ता कर ॥ ७ ॥

धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ।
गाण्डीवधन्वा संक्रुद्धः शितान्संनतपर्वणः ।
जीवितान्तकरान्घोरान्समादत्त शिलीमुखान् ॥ ८ ॥
तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद्द्रौणिं बलवतां वरम् ।
तस्य ते कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ ९ ॥

शत्रुओंको नाश करनेवाले अत्यन्त बलवान् गाण्डीवधारी अर्जुनने बांये हाथसे धनुष खींच करके क्रोधित होकर झुकी हुई गांठवाले, जीवनको नाश करनेवाले कालके समान भयङ्कर बाणोंको चलाकर युद्धभूमिमें बलवानोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाको शीघ्र ही विद्ध किया । वे सब बाण अश्वत्थामाके कवचको काटकर उस रणभूमिमें रुधिर पीने लगे ॥ ८–९ ॥

न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना ।
तथैव शरवर्षाणि प्रतिमुञ्चन्नविह्वलः
तस्थौ स समरे राजंस्त्रातुमिच्छन्महाव्रतम् ॥ १० ॥

राजन् ! परन्तु अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे इस प्रकारसे विद्ध होकर भी पीडित न हुए; वरन महाव्रत करनेवाले भीष्मकी रक्षा करनेकी अभिलाषासे युद्धमें विह्वल हुए विना ही स्थित होके अर्जुनके ऊपर पूर्ववत् बाणोंको चलाने लगे ॥ १० ॥

तस्य तत्सुमहत्कर्म शशंसुः पुरुषर्षभाः
यत्कृष्णाभ्यां समेताभ्यां नापत्रपत संयुगे ॥ ११ ॥

वह जो इस भांतिसे रणभूमिमें कृष्णार्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त थे, उस महा दारुण कर्मको देखकर सम्पूर्ण पुरुषश्रेष्ठ कौरव उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ११ ॥

स हि नित्यमनीकेषु युध्यतेऽभयमास्थितः ।
अस्त्रग्रामं ससंहारं द्रोणात्प्राप्य सुदुर्लभम् ॥ १२ ॥

उन्होंने पिता द्रोणाचार्यसे अत्यन्त दुर्लभ अस्त्रोंका चलाना तथा उपसंहार करना आदि सब अस्त्र शिक्षा प्राप्त की थी; इसीसे वह सदा सर्वदा निर्भय चित्तसे सेनाके बीच युद्ध करते थे ॥ १२ ॥

ममायमाचार्यसुतो द्रोणस्यातिप्रियः सुतः ।
ब्राह्मणश्च विशेषेण माननीयो ममेति च ॥ १३ ॥
समास्थाय मतिं वीरो बीभत्सुः शत्रुतापनः ।
कृपां चक्रे रथश्रेष्ठो भारद्वाजसुतं प्रति ॥ १४ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ महा पराक्रमी अर्जुनने विचारा, कि यह मेरे गुरुके पुत्र हैं; द्रोणाचार्यके प्यारे पुत्र और विशेष करके ब्राह्मण हैं, और हमारे पूज्य हैं; ऐसा विचारकर उनके ऊपर कृपा प्रकाशित की ॥ १३–१४ ॥

द्रौणिं त्यक्त्वा ततो युद्धे कौन्तेयः शत्रुतापनः ।
युयुधे तावकान्निघ्नंस्त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १५ ॥

अनन्तर शत्रुओंका संताप देनेवाले कुन्तीकुमार अर्जुनने युद्धसे उनके सम्मुखसे हटकर, शीघ्रतासे गमन करके आपके दूसरे सैनिकोंका संहार करते हुए उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

दुर्योधनस्तु दशभिर्गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भीमसेनं महेष्वासं रुक्मपुङ्खैः समर्पयत् ॥ १६ ॥

इधर दुर्योधनने महा धनुर्द्धारी भीमसेनको शिलापर घिसे हुए रुक्मपुङ्ख तथा गिद्धपंखसे युक्त दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ १६ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः परासुकरणं दृढम्
चित्रं कार्मुकमादत्त शरांश्च निशितान्दश ॥ १७ ॥

भीमसेनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक विचित्र धनुष जो अत्यन्त सुदृढ और शत्रुओंके प्राण लेनेमें समर्थ था, ग्रहण करके उसपर दस चोखे बाण रखकर ॥ १७ ॥

आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्वेगितैस्तिग्मतेजनैः ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रः कुरुराजं महोरसि ॥ १८ ॥

धनुषको कानतक खींचकर वे बाण छोडे । उन सीधे जानेवाले वेगवान् और तीक्ष्ण बाणों द्वारा भीमने अव्यग्रतासे तुरंत ही कुरु राजा दुर्योधनकी चौडी छातीमें गहरी चोट पहुंचायी ॥ १८ ॥

तस्य काञ्चनसूत्रस्तु शरैः परिवृतो मणिः ।
रराजोरसि वै सूर्यो ग्रहैरिव समावृतः ॥ १९ ॥

दुर्योधनकी विशाल छातीके ऊपर सुवर्ण सूत्रमें गुफित मणि बाणोंसे आच्छादित होनेके कारण ऐसे शोभित हुए, जैसे आकाशमें ग्रहोंके बीच सूर्य शोभायमान होता है ॥ १९ ॥

पुत्रस्तु तव तेजस्वी भीमसेनेन ताडितः ।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ २० ॥

मतवारे हाथी जिस भांतिसे मनुष्यके तलत्राणका शब्द नहीं सहता, वैसे ही आपके पुत्र तेजस्वी दुर्योधनने भीमसेनके बाणोंकी चोट नहीं सही ॥ २० ॥

ततः शरैर्महाराज रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
भीमं विव्याध संक्रुद्धस्त्रासयानो वरूथिनीम् ॥ २१ ॥

महाराज ! तब उन्होंने क्रुद्ध होके पाण्डव सैनिक पुरुषोंको भयभीत करते हुए सुवर्णपुङ्खसे युक्त शिलापर घिसे हुए बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया ॥ २१ ॥

तौ युध्यमानौ समरे भृशमन्योन्यविक्षतौ ।
पुत्रौ ते देवसंकाशौ व्यरोचेतां महाबलौ ॥ २२ ॥

आपके दोनों महाबलवान् पुत्र भीम और दुर्योधन युद्धमें परस्पर युद्ध करके एक दूसरेके अस्त्रोंसे अत्यन्त ही क्षतविक्षत शरीर होकर रणभूमिमें देवोंके समान शोभित हुए ॥ २२ ॥

चित्रसेनं नरव्याघ्रं सौभद्रः परवीरहा ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैः पुरुमित्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥

शत्रुनाशन महावीर सुभद्राकुमार अभिमन्युने पुरुषसिंह चित्रसेनको दस और पुरुमित्रको सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ २३ ॥

×

सत्यव्रतं च सप्तत्या विद्ध्वा शक्रसमो युधि ।
नृत्यन्निव रणे वीर आर्तिं नः समजीजनत् ॥ २४ ॥

युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी वीर अभिमन्युने सत्यव्रतके ऊपर सत्तर बाण चलाये; जिस प्रकार इन्द्र युद्धके समय दानवोंको पीडित करते हुए रणभूमिमें घूमते हैं; वैसे ही अभिमन्यु युद्धमें चारों ओर मानो नृत्य करता हुआ शत्रुओंको पीडित करने लगा ॥ २४ ॥

तं प्रत्यविध्यद्दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः ।
सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः ॥ २५ ॥

फिर चित्रसेनने दस, सत्यव्रतने नौ और पुरुमित्रने सात बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया ॥ २५ ॥

स विद्धो विक्षरन्रक्तं शत्रुसंवारणं महत् ।
चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः
भित्त्वा चास्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत् । ॥ २६ ॥

अभिमन्युके शरीरसे उन दोनोंके द्वारा घायल होकर रुधिर गिर रहा था, उसी अवस्थामें उसने चित्रसेनके बाण निवारण करके उनके शत्रुनिवारक महान् विचित्र धनुष और कवचको अपने बाणोंसे काटकर फिर उनकी छातीमें बाण मारा ॥ २६ ॥

ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः ।
समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः ।
तांश्च सर्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैर्जघान परमास्त्रवित् ॥ २७ ॥

अनन्तर तुम्हारी ओर के महारथ वीर राजपुत्र क्रुद्ध होके युद्धमें एकत्रित हुए और उत्तम पानीमें बुझाये हुए बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध करने लगे, परम अस्त्रोंके जाननेवाले अभिमन्यु उन सब महारथ वीरोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे निवारण करने लगे ॥ २७ ॥

तस्य दृष्ट्वा तु तत्कर्म परिवव्रुः सुतास्तव ।
दहन्तं समरे सैन्यं तव कक्षं यथोल्बणम् ॥ २८ ॥
अपेतशिशिरे काले समिद्धमिव पावकः ।
अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि शातयन् ॥ २९ ॥

तुम्हारे पुत्रोंने अभिमन्युका ऐसा कठिन कर्म देखकर उसे चारों ओरसे घेर लिया। जैसे शिशिर ऋतुके समाप्त होनेपर प्रचंड अग्नि सूखे तृण और काठोंको भस्म कर देती है, वैसे ही अभिमन्यु तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे समर भूमिमें जलाने लगे; सुभद्राकुमार अभिमन्यु कौरवोंकी सेनाका संहार करता हुआ रणभूमिमें अत्यन्त ही शोभित होने लगा ॥ २८–२९ ॥

तत्तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशां पते।
लक्ष्मणोऽभ्यपतत्तूर्णं सात्वतीपुत्रमाहवे ॥ ३० ॥

हे राजन् ! सुभद्रापुत्र अभिमन्युका ऐसा कठिन कर्म देखकर तुम्हारा पौत्र लक्ष्मण शीघ्र ही उसके समीपमें गया ॥ ३० ॥

अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
विव्याध विशिखैः षड्भिः सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥

अभिमन्युने क्रुद्ध होकर छः तीक्ष्ण बाणोंसे उत्तम लक्षणोंसे युक्त वीर लक्ष्मणको और तीन बाणोंसे उसके सारथीको विद्ध किया ॥ ३१ ॥

तथैव लक्ष्मणो राजन्सौभद्रं निशितैः शरैः।
अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥

राजन् ! इसी प्रकार लक्ष्मण भी सुभद्राकुमार अभिमन्युको उत्तम पानीमें बुझे हुए बाणोंसे विद्ध करने लगे; महाराज ! वह युद्ध अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगा ॥ ३२ ॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिं च महाबलः।
अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥

शत्रुनाशन वीर सुभद्राकुमार अभिमन्युने लक्ष्मणके रथके चारों घोडे और सारथीको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर उसकी ओर बढे ॥ ३३ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठल्लँक्ष्मणः परवीरहा।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ३४ ॥

शत्रुओंके नाश करनेवाले लक्ष्मणने घोडोंसे रहित रथपर स्थित होके क्रोधमें भरकर अभिमन्युके रथकी ओर एक शक्ति चलाई ॥ ३४ ॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदाम्।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम् ॥ ३५ ॥

अभिमन्युने उस घोररूपा एवं सर्पिणीके समान महा शक्तिको सहसा संमुख आती हुई देखकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३५ ॥

ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा।
अपोवाह रथेनाजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥

अनन्तर कृपाचार्यने लक्ष्मणको अपने रथपर चढाके युद्धभूमिमें सम्पूर्ण सेनाके संमुखहीमें उन्हें वहांसे दूसरी ओर कर दिया ॥ ३६ ॥

ततः समाकुले तस्मिन्वर्तमाने महाभये ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः परस्परवधैषिणः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर उस महा भयङ्कर युद्धमें सब वीर लोग एक दूसरेके वध करनेकी इच्छासे क्रुद्ध होकर इधर उधर दौडने लगे ॥ ३७ ॥

तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः ।
जुह्वन्तः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ३८ ॥

प्राणकी आशा छोडकर भी तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण महारथ शूरवीर योद्धा समरांगणमें आपसमें एक दूसरेका वध करने लगे ॥ ३८ ॥

मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ ३९ ॥

सृञ्जयगण खुले हुए शिर, कवच और रथसे रहित तथा धनुषके कट जानेपर भी कौरवोंकी सेनाके वीरोंसे बाहु युद्ध करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो भीष्मो महाबाहुः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सेनां जघान संक्रुद्धो दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ ४० ॥

अनन्तर महा बलवान् महाबाहु भीष्म क्रुद्ध होकर अपने दिव्य अस्त्रोंसे महात्मा पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे ॥ ४० ॥

हतैश्वरैर्गजैस्तत्र नरैरश्वैश्च पातितैः ।
रथिभिः सादिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ २९२५ ॥

तब पृथ्वी मरे और गिराये हुए सवार, घोडे, रथ, हाथी, रथी और मनुष्योंके शरीरसे पूरित हो गई ॥ ४१ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ २९२५ ॥

: ७० :

सञ्जय उवाच

अथ राजन्महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
विकृष्य चापं समरे भारसाधनमुत्तमम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! युद्धमें महाबाहु, युद्धदुर्मद, पराक्रमी सात्यकि उस रणभूमिमें एक समर्थ और उत्तम धनुष ग्रहण करके उसको बलपूर्वक खींचकर ॥ १ ॥

प्रामुञ्चत्पुङ्खसंयुक्ताञ्शरानाशीविषोपमान् ।
प्रकाशं लघु चित्रं च दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ २ ॥

अपना प्रगाढ, शिघ्रगामी और विचित्र अस्त्रलाघव दिखाते हुए उत्तम पानीमें बुझाये विषधारी सर्पके समान भयानक पंखयुक्त बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः ।
आददानस्य भूयश्च संदधानस्य चापरान् ॥ ३ ॥
क्षिपतश्च शरानस्य रणे शत्रून्विनिघ्नतः ।
ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः ॥ ४ ॥

रणभूमिमें शत्रुओंका वध करनेके समय वह बहुत ही शीघ्रतासे धनुषको खींचकर अनेकानेक बाणोंको चलाकर शत्रुओंका नाश करने लगे; जब वह बाणोंको ग्रहण करते, चलाते और शत्रुओंके बाणोंको निवारण करते थे, उस समयमें उनकी मूर्ति अत्यन्त वर्षा करनेवाले बादलके समान अद्भुत दीख पडती थी ॥ ३–४ ॥

तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः ।
रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥

हे भारत ! उस समय राजा दुर्योधनने सात्यकिको ऐसा कठिन कर्म करते देखकर दस हजार रथ उनके समीप भेज दिये ॥ ५ ॥

तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान परमेष्वासो दिव्येनास्त्रेण वीर्यवान् ॥ ६ ॥

महाधनुर्धारी सत्य पराक्रमी शक्तिशाली सात्यकिने अपने दिव्य अस्त्रोंसे उन सब शूरवीर रथियोंका वध किया ॥ ६ ॥

स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे ॥ ७ ॥

धनुषधारी महावीर सात्यकि ऐसा कठिन कर्म करके फिर धनुष लेकर भूरिश्रवाके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

स हि संदृश्य सेनां तां युयुधानेन पातिताम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ८ ॥

कौरवोंके कुलकी कीर्ति बढानेवाले भूरिश्रवा निज सेनाको युयुधानसे पीडित देखकर क्रोधित होकर उनकी ओर बढे ॥ ८ ॥

इन्द्रायुधसवर्णं तत्स विस्फार्य महद्धनुः ।
व्यसृजद्वज्रसंकाशाञ्शरानाशीविषोपमान् ।
सहस्रशो महाराज दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ ९ ॥

और इन्द्रधनुषके समान बडा धनुष जढा कर हस्त लाघव दिखाते हुए वज्र तथा विषधर सर्पके समान भयंकर सहस्रों बाण उनके ऊपर छोडने लगे ॥ ९ ॥

शरांस्तान्मृत्युसंस्पर्शान्सात्यकेस्तु पदानुगाः ।
न विषेहुस्तदा राजन्दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
विहाय समरे राजन्सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥ १० ॥

उन बाणोंका स्पर्श मृत्युके समान था । राजन् ! उस समय सात्यकिके अनुयायी लोगोंने कालके समान उन बाणोंको न सह कर, नरेश्वर ! युद्धभूमिमें वे रणदुर्मद सात्यकिको वहां पर छोडकर इधर उधर युद्धसे पृथक् हो गये ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः ।
महारथाः समाख्याताश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥ ११ ॥
समासाद्य महेष्वासं भूरिश्रवसमाहवे ।
ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणे ॥ १२ ॥

भूरिश्रवाको देखकर युयुधानके महाबली महारथ विचित्र वर्म, शस्त्र और ध्वजाओंसे युक्त, विख्यात दस पुत्र क्रुद्ध होकर यूपकेतु भूरिश्रवाके समीप गमन करके उनसे यह वचन बोले ॥ ११–१२ ॥

भो भो कौरवदायाद सहास्माभिर्महाबल ।
एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा ॥ १३ ॥

हे महाबली कौरवदायाद भूरिश्रवा ! आओ, तुम इस संग्राममें हम सब लोगोंसे अथवा एक एकके सङ्ग युद्ध करो ॥ १३ ॥

अस्मान्वा त्वं पराजित्य यशः प्राप्नुहि संयुगे ।
वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं दास्यामहे पितुः ॥ १४ ॥

या तो तुम ही हमलोगोंको जीतकर यश प्राप्त करोगे अथवा हम ही लोग तुमको युद्धमें पराजित करके पिताकी प्रीतिका कार्य पूर्ण करेंगे ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तदा शूरस्तानुवाच महाबलः ।
वीर्यश्लाघी नरश्रेष्ठस्तान्दृष्ट्वा समुपस्थितान् ॥ १५ ॥

अपने पराक्रमकी स्तुति करनेवाला महाबलवान् पुरुषसिंह भूरिश्रवाने उन शूरवीर लोगोंकी बात सुन और उन्हें युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित देखकर कहा ॥ १५ ॥

साध्विदं कथ्यते वीरा यदेवं मतिरद्य वः ।
युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे ॥ १६ ॥

हे वीरपुरुषो ! तुम लोगोंने उत्तम वचन कहा है, यदि तुम लोगोंकी ऐसी ही इच्छा है, तो तुम सब इकठे होकर मेरे सङ्ग युद्ध करो; मैं आज तुम सब लोगोंका युद्धमें वध करूंगा ॥ १६॥

एवमुक्ता महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः ।
महता शरवर्षेण अभ्यवर्षन्नरिंदमम् ॥ १७ ॥

महावीर भूरिश्रवाने जब शीघ्रता करनेवाले उन महाधनुर्धर वीरोंसे ऐसा वचन कहा; तब उन सबने अपने बाणोंको शत्रुनाशन भूरिश्रवाके ऊपर वर्षाना आरम्भ किया ॥ १७ ॥

अपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ।
एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥ १८ ॥

महाराज ! सन्ध्याके समय भूरिश्रवाके सङ्ग उन दस वीरोंका—एकत्र हुए बहुतसे वीरोंके साथ एक वीरका—महाघोर युद्ध होने लगा ॥ १८ ॥

तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरवर्षैरवाकिरन् ।
प्रावृषीव महाशैलं सिषिचुर्जलदा नृप ॥ १९ ॥

हे नृप ! उन लोगोंने रथियोंमें मुख्य भूरिश्रवाके ऊपर इस प्रकारसे बाणोंकी वर्षा की, जैसे वर्षा ऋतुमें बादल शैल पर्वतके ऊपर पानीकी वर्षा करता है ॥ १९ ॥

तैस्तु मुक्ताञ्शरौघांस्तान्यमदण्डाशनिप्रभान् ।
असंप्राप्तानसंप्राप्तांश्चिच्छेदाशु महारथः ॥ २० ॥

महारथ भूरिश्रवाने, उन लोगोंके चलाये हुए यमदण्ड और वज्रके समान प्रकाशित होनेवाले भयंकर बाणोंको समीप न आते ही मार्गहीमें शीघ्रतापूर्वक काटकर गिरा दिया ॥ २० ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम् ।
यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत् ॥ २१ ॥

मैंने उस समय सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि वह अकेले ही कई महारथियोंके सङ्ग निर्भय चित्तसे युद्ध कर रहे थे ॥ २१ ॥

विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन्महारथाः ।
परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः ॥ २२ ॥

राजन् ! उन दस महारथियोंने मिलकर बाणोंकी वर्षा करके उस महाबाहु भूरिश्रवाको घेर-कर उनके संहार करनेकी तैयारी की ॥ २२ ॥

सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत ।
चिच्छेद दशभिर्बाणैर्निमेषेण महारथः ॥ २३ ॥

भारत ! परन्तु सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने क्रुद्ध होकर निमेष भरमें उन दसों महारथियोंके धनुष दस बाणोंसे काटकर गिरा दिये ॥ २३ ॥

अथैषां छिन्नधनुषां भल्लैः संनतपर्वभिः ।
चिच्छेद समरे राजञ्शिरांसि निशितैः शरैः ।
ते हता न्यपतन्भूमौ वज्रभग्ना इव द्रुमाः ॥ २४ ॥

महाराज ! उनके धनुषको काट कर फिर अपने तेज भल्ल बाणोंसे उनके सिर काटके पृथ्वीमें गिरा दिये । राजन् ! वे सब वज्रकी चोटसे टूटे हुए वृक्षके समान मरके पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २४ ॥

तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरान्रणे पुत्रान्महाबलान् ।
वार्ष्णेयो विनदन्राजन्भूरिश्रवसमभ्ययात् । ॥ २५ ॥

राजन् ! वृष्णिवंशीय सात्यकि अपने महाबलवान् पुत्रोंको युद्धमें मरते हुए देखकर गर्जते हुए भूरिश्रवाकी ओर दौडे ॥ २५ ॥

रथं रथेन समरे पीडयित्वा महाबलौ
तावन्योन्यस्य समरे निहत्य रथवाजिनः ।
विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥ २६ ॥

वह दोनों महारथ महाबलवान् समरांगणमें अपने रथके द्वारा दूसरेके रथको पीडा देने लगे । उन्होंने आपसमें एक दूसरेके रथ और घोडोंको नष्ट कर दिया । रथहीन होकर वे दोनों महारथी उछलते कूदते हुए एक दूसरेका सामना करने लगे ॥ २६ ॥

प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ ।
शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥ २७ ॥

वे दोनों नरव्याघ्र हाथमें बडी बडी तलवार और सुंदर ढाल ग्रहण करके युद्धके निमित्त रण-भूमिमें खडे होकर अत्यन्त ही शोभित हुए ॥ २७ ॥

ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
भीमसेनस्त्वरन्राजन्रथमारोपयत्तदा ॥ २८ ॥

राजन् ! तब भीमसेनने उत्तम तलवार ग्रहण किए हुए सात्यकिके समीपमें शीघ्रही आके उन्हें अपने रथ पर बैठाया ॥ २८ ॥

तवापि तनयो राजन्भूरिश्रवसमाहवे ।
आरोपयद्रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २९ ॥

राजन् ! और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने भी सब धनुर्द्धारियोंके सम्मुखहीमें युद्धस्थलमें शीघ्र ही भूरिश्रवाको रथ पर उठाके बैठा लिया ॥ २९ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने रणे भीष्मं महारथम् ।
अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ३० ॥

भरतर्षभ ! उस युद्धमें पाण्डव लोग क्रुद्ध होकर महा तेजस्वी भीष्मके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥ ३१ ॥

जब सूर्य अस्ताचलके पास पहुंचकर लाल होने लगे, तब अर्जुनने बडी शीघ्रतासे पचीस हजार महारथियोंका वध किया ॥ ३१ ॥

ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिबर्हणे ।
संप्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥ ३२ ॥

वह सब दुर्योधनकी आज्ञासे अर्जुनका नाश करनेके लिये उनकी ओर युद्ध करनेको बढे थे; परन्तु फतिङ्गे अग्निमें न पहुंचकर उनके समीप जाते ही नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही वह सब वीर अर्जुनको प्राप्त न होकर ही उनके निकट जाते ही नष्ट होगये ॥ ३२ ॥

ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः ।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम् ॥ ३३ ॥

तिसके अनन्तर धनुषविद्याको जाननेवाले मत्स्य और केकय देशीय वीरोंने पुत्रके साहित महारथ अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति ।
सर्वेषामेव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥ ३४ ॥

उस समयमें सूर्य अस्ताचलको चले गये । तब सम्पूर्ण सेना मोहित हो गई ॥ ३४ ॥

अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
सन्ध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः ॥ ३५ ॥

महाराज ! उस समय तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्मके घोडे भी थक गये थे, और सन्ध्याका समय भी उपस्थित हुआ था, इसीसे उन्होंने सेनाको युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ ३५ ॥

×

पाण्डवानां कुरूणां च परस्परसमागमे ।
ते सेने भृशसंविग्ने ययतुः स्वं निवेशनम् ॥ ३६ ॥

पाण्डव और कौरवोंकी सेना इस परस्परिक युद्धसे ही अत्यन्त ही विकल थी; वह विश्राम करनेके निमित्त अपने अपने शिविरोंमें गई ॥ ३६ ॥

ततः स्वशिबिरं गत्वा न्यविशंस्तत्र भारत ।
पाण्डवाः सृञ्जयैः सार्धं कुरवश्च यथाविधि ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ २९६२ ॥

भारत अनन्तर सृञ्जयों सहित पाण्डव और कौरव लोग अपने शिविरोंमें जाकर वहांपर यथाविधि विश्राम करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ २९६२ ॥

: ७१ :

सञ्जय उवाच

विहृत्य च ततो राजन्सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! इसके अनन्तर कौरव और पाण्डवलोग रात्रिके समय विश्राम करके सवेरा होते ही फिर युद्धके निमित्त शिविरोंसे निकलके तैयार हुए ॥ १ ॥

तत्र शब्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
युज्यतां रथमुख्यानां कल्प्यतां चैव दन्तिनाम् ॥ २ ॥

भारत ! उस समय वहां आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंमें बडा कोलाहल मचा । कुछ लोग उत्तम रथोंको जोत रहे थे, कुछ लोग हाथियोंको सज्जित करते थे ॥ २ ॥

संनह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत ।
शङ्खदुन्दुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥

कहीं पैदल सैनिक और घोडे कवच बांधकर सजधजकर तैयार किये जा रहे थे । युद्धके निमित्त तैयार होनेपर उनके सिंहनाद और शङ्ख, नगाडे आदिके बडे जोरके शब्दसे तुमुल शब्द होके सब दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥ ३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत ।
व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुतापनम् ॥ ४ ॥

तब राजा युधिष्ठिर धृष्टद्युम्नसे बोले, हे महाबाहो ! शत्रुओंको संताप देनेवाले, मकरव्यूहकी रचना करो ॥ ४ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः ॥ ५ ॥

महाराज ! रथियोंमें मुख्य धृष्टद्युम्नने कुंतीपुत्र राजा युधिष्ठरकी ऐसी आज्ञा सुन सम्पूर्ण रथियोंको मकरव्यूह बनानेकी आज्ञा दी ॥ ५ ॥

शिरोऽभूद्द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः ।
तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः ॥ ६ ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः ॥ ७ ॥

महाराज ! पांडुपुत्र अर्जुन और राजा द्रुपद उसके मस्तक, महारथी नकुल और सहदेव उसके नेत्र, महाबली भीमसेन उससे तुण्ड, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाचों पुत्र, राक्षस घटोत्कच, सात्यकि और धर्मराज राजा युधिष्ठिर उसकी गर्दनके भागमें स्थित हुए ॥ ६–७ ॥

पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः ।
धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः ॥ ८ ॥

राजन् ! सेनापति विराट बडी सेना लेकर धृष्टद्युम्नके सङ्ग मिलकर उसके पीठस्थानपर स्थित हुए ॥ ८ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च वामं पार्श्वं समाश्रिताः ।
धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रः करकर्षश्च वीर्यवान् ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य रक्षणे ॥ ९ ॥

केकय देशीय राजा पांचों भाई उसके वांयें पक्ष और पुरुषसिंह धृष्टकेतु और पराक्रमी करकर्ष उसके दहिने पक्षपर स्थित होकर उसकी रक्षा करते थे ॥ ९ ॥

पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान्महारथः ।
कुन्तिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः ॥ १० ॥

महाराज ! महारथ श्रीमान् कुन्तिभोज और शतानीक बडी सेनाके साहित उसके दोनों पांवोंके स्थानोंपर खडे थे ॥ १० ॥

शिखण्डी तु महेष्वासः सोमकैः संवृतो बली ।
इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ ॥ ११ ॥

और सोमकवंशीय क्षत्रियोंसे युक्त होकर महाधनुर्धर शिखण्डी और महाबलवान् इरावान उस मकरव्यूहके पूंछ पर स्थित हुए ॥ ११ ॥

एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥ १२ ॥

हे भारत ! महाराज ! पाण्डवलोग कवच बांधकर इसी प्रकारसे उस महान् व्यूहको बनाकर सूर्य उदयके समय ही पुनः युद्धके निमित्त तैयार हो गये ॥ १२ ॥

कौरवानभ्ययुस्तूर्णं हस्त्यश्वरथपत्तिभिः।
समुच्छ्रितैर्ध्वजैश्चित्रैः शस्त्रैश्च विमलैः शितैः ॥ १३ ॥

उंची उंची और चित्र विचित्र ध्वजा, छत्र, उत्तम पानीमें बुझाये हुए बाण और अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त हाथी, घोडे, रथ और पैदल सेनाके सहित पाण्डवोंने कौरवोंकी ओर युद्ध करनेके निमित्त शीघ्रतापूर्वक गमन किया ॥ १३ ॥

व्यूहं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव।
क्रौञ्चेन महता राजन्प्रत्यव्यूहत वाहिनीम् ॥ १४ ॥

राजन् ! तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्मने पाण्डवोंका वह मकरव्यूह देखके उसके विरुद्धमें अपनी सेनाको बडे क्रौञ्चव्यूहमें एकत्रित किया ॥ १४ ॥

तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरास्तां नरेश्वर ॥ १५ ॥

महाधनुर्धारी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य उसकी चोंचके स्थानमें सुशोभित हुए। नरेश्वर ! अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसके नेत्रोंके स्थानमें खडे हुए ॥ १५ ॥

कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजारहबाह्लिकैः।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १६ ॥

सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह कृतवर्मा काम्बोज देशीय राजा और बाह्लिक देशीय उत्तम सैनिकोंके सहित उसके शिर स्थलपर स्थित हुए ॥ १६ ॥

ग्रीवायां शूरसेनस्तु तव पुत्रश्च मारिष।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ॥ १७ ॥

मारिष ! महाराज ! अनेक राजाओंसे युक्त तुम्हारे पुत्र महाराज दुर्योधन और शूरसेन उसकी गर्दनके स्थानमें स्थित हुए ॥ १७ ॥

प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः ॥ १८ ॥

नरश्रेष्ठ ! मद्र, सौवीर और केकय देशीय वीर योद्धाओंके सहित प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त बडी सेनाको लेकर उसके वक्ष स्थानपर स्थित हुए ॥ १८ ॥

स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः ।
वामं पक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥ १९ ॥

प्रस्थलाधिपति सुशर्माने अपनी सेनाके सहित वर्म धारण करके उसका बांयां पक्ष ग्रहण किया ॥ १९ ॥

तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत ॥ २० ॥

भारत ! तुषार, यवन, शक और चूचुप देशीय योद्धा लोग उसके दहिने पक्षपर स्थित हुए ॥ २० ॥

श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम् ॥ २१ ॥

मारिष ! श्रुतायु, शतायु, और सोमदत्त कुमार भूरिश्रवा ये लोग आपसमें एक दूसरेसे रक्षित होकर उसके जघन स्थानपर स्थित हुए ॥ २१ ॥

ततो युद्धाय संजग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत् ॥ २२ ॥

महाराज ! तब सूर्यके उदय होनेके समय पाण्डवोंने कौरवोंके साथ युद्धके लिये उनकी सेनापर आक्रमण किया, इसके अनन्तर महाघोर युद्ध होने लगा ॥ २२ ॥

प्रतीयू रथिनो नागान्नागाश्च रथिनो ययुः ।
हयारोहा हयारोहान्रथिनश्चापि सादिनः ॥ २३ ॥

रथियोंकी ओर हाथीवाले, हाथियोंकी ओर रथी बढे । घुडसवारोंपर रथारोही तथा रथारोहियोंपर घुडसवार दौडे ॥ २३ ॥

सारथिं च रथी राजन्कुञ्जरांश्च महारणे ।
हस्त्यारोहा रथारोहान्रथिनश्चापि सादिनः ॥ २४ ॥

राजन् ! उस महायुद्धमें रथी सारथियों और गजारोहियोंपर चढ दौडे । रथारोही और घुडसवार हाथीसवारों और रथारोहियोंपर भी टूट पडे ॥ २४ ॥

रथिनः पत्तिभिः सार्धं सादिनश्चापि पत्तिभिः ।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रत्यधावन्नमर्षिताः ॥ २५ ॥

राजन् ! फिर रथी लोग पैदल चलनेवाले वीरोंसे और घुडसवार भी पदाति सेनाके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए । इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए ये सब सैनिक एक दूसरेपर आक्रमण करने लगे ॥ २५ ॥

भीमसेनार्जुनयमैर्गुप्ता चान्यैर्महारथैः ।
शुशुभे पाण्डवी सेना नक्षत्रैरिव शर्वरी ॥ २६ ॥

जिस प्रकारसे तारोंके उदय होनेसे रात्रि शोभायमान लगती है, वैसे ही पाण्डवोंकी सेना भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव तथा अन्य महारथियोंसे रक्षित होकर शोभित होने लगी ॥ २६ ॥

तथा भीष्मकृपद्रोणशल्यदुर्योधनादिभिः ।
तवापि विबभौ सेना ग्रहैर्द्यौरिव संवृता ॥ २७ ॥

और कौरवी सेना भी ग्रहोंसे युक्त आकाशकी भांति भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य और दुर्योधन आदि महारथियोंसे रक्षित होकर शोभायमान हुई ॥ २७ ॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम् ॥ २८ ॥

पराक्रमी कुन्तीकुमार भीमसेनने द्रोणाचार्यको देखकर वेगवान् घोडोंसे युक्त रथपर चढके द्रोणकी सेनाके सम्मुख गमन किया ॥ २८ ॥

द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ।
विव्याध समरे राजन्मर्माण्युद्दिश्य वीर्यवान् ॥ २९ ॥

राजन् ! पराक्रमी द्रोणाचार्यने युद्धमें क्रुद्ध होकर भीमसेनके मर्मस्थानोंको भेद करनेकी इच्छासे लोहके नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २९ ॥

दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ३० ॥

तब युद्धमें भीमसेनने द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनके सारथीको अपने अस्त्रोंसे मारकर यमपुरीमें भेज दिया ॥ ३० ॥

स संगृह्य स्वयं वाहान्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
व्यधमत्पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवानलः ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार अग्नि रूईके ढेरको भस्म कर देती है, वैसे ही प्रतापी द्रोणाचार्य स्वयं ही घोडोंकी बागडोर संभालते हुए पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे ॥ ३१ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तम ।
सृञ्जयाः केकयैः सार्धं पलायनपराभवन् ॥ ३२ ॥

हे नरोत्तम ! सृञ्जयगण केकय-दशीय योद्धाओंके सहित भीष्म और द्रोणाचार्यके बाणोंसे विकल होके रणभूमिसे भागने लगे ॥ ३२ ॥

तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम् ।
मुह्यते तत्र तत्रैव सम्रदेव वराङ्गना ॥ ३३ ॥

तुम्हारी सेना भी भीमसेन और अर्जुनके अस्त्रोंसे क्षत-विक्षत शरीर होकर मतवाली वराङ्गनाके समान जहां की तहां ही मोहित होकर खडी रही ॥ ३३ ॥

अभिद्येतां ततो व्यूहौ तस्मिन्वीरवरक्षये ।
आसीद्व्यतिकरो घोरस्तव तेषां च भारत ॥ ३४ ॥

भारत ! उस बडे बडे वीरोंका नाश करनेवाले भयङ्कर युद्धमें दोनों सेनाओंके व्यूह टूट गये और तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाओंका भयंकर संकर होने लगा ॥ ३४ ॥

तदद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह ।
एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत ॥ ३५ ॥

दोनों ओरके योद्धा एक पंक्तिमें एकत्रित होके विपक्ष सेनासे युद्ध करने लगे; मैंने आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ अद्भुत रूपसे पराक्रम अवलोकन किया ॥ ३५ ॥

प्रतिसंवार्य चास्त्राणि तेऽन्योन्यस्य विशां पते ।
युयुधुः पाण्डवाश्चैव कौरवाश्च महारथाः ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ २९९८ ॥

पृथ्वीपते ! महारथी कौरव और पाण्डव-पक्षीय वीर योद्धालोग आपसमें अस्त्रोंको चलाते हुए एक दूसरेका वध करने लगे ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ २९९८ ॥

: ७२ :

धृतराष्ट्र उवाच

एवं बहुगुणं सैन्यमेवं बहुविधं परम् ।
व्यूढमेवं यथाशास्त्रममोघं चैव सञ्जय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! हमारे अनेक प्रकारके सेनाके सब पुरुष उत्तम हैं और सब गुणोंसे पूर्ण हैं; अनेक अंगोंसे युक्त और अनेक प्रकारसे संगठित हैं । उन लोगोंका व्यूह भी शास्त्रकी रीतिसे अमोघ होता है ॥ १ ॥

पुष्टमस्माकमत्यन्तमभिकामं च नः सदा ।
प्रह्वमव्यसनोपेतं पुरस्ताद्दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥

वह सब हम लोगोंके ऊपर सदा पुष्ट, अत्यन्तही अनुरक्त, विनयसे युक्त और व्यसनसे रहित हैं; पहिले उन लोगोंके बल पराक्रमकी परीक्षा करके तब सेनामें नियुक्त किया हैं ॥ २ ॥

नातिवृद्धमबालं च न कृशं न च पीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥

वे लोग न तो बहुत बूढे और न अत्यन्त बाल अवस्थाके हैं, न वे लोग कृश वा बहुत मोटे हैं; वे लोग शीघ्र गमन करनेवाले, प्रायः ऊँचे शरीरवाले, मजबूत और रोगरहित हैं ॥३॥

आत्तसंनाहशस्त्रं च बहुशस्त्रपरिग्रहम् ।
असियुद्धे नियुद्धे च गदायुद्धे च कोविदम् ॥ ४ ॥

ये सब कवच और अस्त्रशस्त्र धारण करनेवाले, व्यूह रचना जाननेवाले और बहुतसे शस्त्रोंके जाननेवाले शूरवीर योद्धा हैं। वह सब लोग तलवार युद्ध, बाहुयुद्ध और गदायुद्धके जानने-वाले हैं ॥ ४ ॥

प्रासर्ष्टितोमरेष्वाजौ परिघेष्वायसेषु च ।
भिण्डिपालेषु शक्तीषु मुसलेषु च सर्वशः ॥ ५ ॥
कम्पनेषु च चापेषु कणपेषु च सर्वशः ।
क्षेपणीषु च चित्रासु मुष्टियुद्धेषु कोविदम् ॥ ६ ॥

और प्रास, ऋष्टि, तोमर, लोहमयी परिघ, भिन्डिपाल, शक्ति, मूसल, लगुड, धनुष, कणप और ढेले आदिको जानते तथा विचित्र मुष्टि युद्धके करनेमें समर्थ हैं ॥ ५–६ ॥

अपरोक्षं च विद्यासु व्यायामेषु कृतश्रमम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु सर्वासु परिनिष्ठितम् ॥ ७ ॥

धनुर्वेद जाननेवाले, कसरत करनेमें निपुण, सब शस्त्रोंके ग्रहण करनेकी विद्या जाननेवाले हैं ॥ ७ ॥

आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ८ ॥

हाथी, घोडे आदि वाहनोंपर चढने, उतरने, पृथक् जाने, बीचमें आने, आगे गमन करने, पीछे जाने और अच्छी रीतिसे शत्रुओंके ऊपर प्रहार करनेमें निपुण हैं ॥ ८ ॥

नागाश्वरथयानेषु बहुशः सुपरीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ९ ॥

हाथी, घोडे, रथोंकी भी उत्तम रीतिसे परीक्षा की गई है। सेनाके योद्धाओंकी भली भांतिसे परीक्षा करके उचित रीतिसे उन्हें वेतन दिया जाता है ॥ ९ ॥

न गोष्ठया नोपचारेण न च बन्धुनिमित्ततः ।
न सौहृदबलैश्चापि नाकुलीनपरिग्रहैः ॥ १० ॥

उन लोगोंको किसी सामाजिक सम्बन्ध वा मित्रताके कारण अथवा और कोई नाता तथा सम्बन्धसे अथवा सौहृर्दवश वा बलप्रयोग करके सेनामें नहीं नियुक्त किया गया है; जो कुलीन नहीं हैं, ऐसे पुरुषोंका इस सेनामें संग्रह नहीं हुआ है । वे सब लोग मानी, यशस्वी और श्रेष्ठ पुरुषोंके स्वभावसे युक्त हैं ॥ १० ॥

समृद्धजनमार्यं च तुष्टसत्कृतबान्धवम् ।
कृतोपकारभूयिष्ठं यशस्वि च मनस्वि च ॥ ११ ॥

हमारे यहांसे उनके सब घरके लोग धनसे युक्त और श्रेष्ठ हैं; उनके बन्धुबान्धव सगे-संबंधी भी सन्तुष्ट हैं, तथा सत्कार पाते हैं और उन सब लोगोंका बहुत प्रकारसे उपकार किया गया है । ये सभी यशस्वी और मनस्वी हैं ॥ ११ ॥

सजयैश्च नरैर्मुख्यैर्बहुशो मुख्यकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं लोकविश्रुतैः ॥ १२ ॥

हे सूत ! इनका कार्य और व्यवहारको कई बार देखा गया है, लोकमें विख्यात लोकपालके समान कर्म करनेवाले बलवान् मुख्य पुरुष उन लोगोंका पालन करते रहते हैं ॥ १२ ॥

बहुभिः क्षत्रियैर्गुप्तं पृथिव्यां लोकसम्मतैः ।
अस्मानभिगतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥ १३ ॥

भूमण्डलमें विख्यात जो सब क्षत्रिय बलवान् और इच्छाके अनुसार हमारे अनुरक्त हैं और पृथ्वीके बीच सब लोग जिनका सम्मान किया करते हैं, वे सब बहुतसे अनुयायियोंके सहित सब योद्धाओंकी रक्षा करते रहते हैं ॥ १३ ॥

महोदधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षसङ्काशै रथैर्नागैश्च संवृतम् ॥ १४ ॥

पक्ष रहित तो भी पक्षियोंके समान शीघ्र गतिसे चलनेवाले रथ, और हाथियोंसे युक्त जैसे महसागरमें सब ओरसे मिलनेवाली नदियां आकर गिरती हैं वैसी यह हमारी सेना सब ओरसे परिपूर्ण है ॥ १४ ॥

नानायोधजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्राससमाकुलम् ॥ १५ ॥

तथा यह सैन्यसागर नाना प्रकारके योद्धारूपी जलसे युक्त; उठती हुई अनेक छोटी बडी तरङ्गरूपी वाहनोंसे भयानक; क्षेपणी, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और प्रास आदि अस्त्र रूपी पत्थरोंसे युक्त है ॥ १५ ॥

+

ध्वजभूषणसम्बाधं रत्नपट्टेन सञ्चितम् ।
वाहनैः परिसर्पद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १६ ॥
अपारमिव गर्जन्तं सागरप्रतिमं महत् ।
द्रोणभीष्माभिसंगुप्तं गुप्तं कृतवर्मणा ॥ १७ ॥

ध्वजा, वस्त्र और भूषणरूपी बांधके सहित रत्नोंकी पाताकाओंसे अत्यन्त शोभित वायुके वेगसे लहराती हुई, दौडनेवाले वाहनोंसे पूर्ण; सागर सदृश यह सब सेना देखनेमें अपार और सदैव गर्जन करती रहती है । अपार समुद्रके समान गर्जनेवाली वह महा सेना द्रोणाचार्य, भीष्म, कृतवर्मासे सदा संरक्षित है ॥ १६–१७ ॥

कृपदुःशासनाभ्यां च जयद्रथमुखैस्तथा ।
भगदत्तविकर्णाभ्यां द्रौणिसौबलबाह्लिकैः ॥ १८ ॥
गुप्तं प्रवीरैर्लोकस्य सारवद्भिर्महात्मभिः ।
यदहन्यत संग्रामे दिष्टमेतत्पुरातनम् ॥ १९ ॥

कृपाचार्य, दुःशासन, जयद्रथ, भगदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि और बाह्लिक आदि प्रमुख पराक्रमी लोकमें विख्यात महात्मा वीरोंसे रक्षित होकर भी जब संग्राममें मारी जा रही है, तब उसका कारण केवल पूर्वजन्मके कर्म अर्थात् भाग्य ही कहना पडता है ॥ १८–१९ ॥

नैतादृशं समुद्योगं दृष्टवन्तोऽथ मानुषाः ।
ऋषयो वा महाभागाः पुराणा भुवि सञ्जय ॥ २० ॥

हे सञ्जय ! इतनी बडी सेनाका जमाव मनुष्योंने कभी पृथ्वीपर नहीं देखा होगा अथवा प्राचीन महात्मा पुरुष तथा ऋषियोंने भी ऐसा उद्योग कभी नहीं देखा था ॥ २० ॥

ईदृशो हि बलौघस्तु युक्तः शस्त्रास्त्रसम्पदा ।
वध्यते यत्र संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ २१ ॥

इस प्रकारसे बलवान्, शास्त्रकी विधिको जाननेवाले अर्थ और सम्पत्तिसे युक्त होने पर भी जब शत्रुओंसे मेरी सेनाके लोग वध्य हो रहे हैं, तब इसका कारण भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? ॥ २१ ॥

विपरीतमिदं सर्वं प्रतिभाति स्म सञ्जय ।
यत्रेदृशं बलं घोरं नातरद्युधि पाण्डवान् ॥ २२ ॥

संजय ! इस प्रकारकी महाघोर सेना भी जब युद्धमें पाण्डवरूपी समुद्रके पार नहीं जा सकती है, तब मेरे निकट सब विपरीत कार्य प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २२ ॥

अथ वा पाण्डवार्थाय देवास्तत्र समागताः ।
युध्यन्ते मामकं सैन्यं यद्वध्यन्त सञ्जय ॥ २३ ॥

हे सञ्जय ! मुझे बोध होता है, देवता लोग पाण्डवोंके हितसाधनके निमित्त रणभूमिमें आकर जिस प्रकारसे मेरी सेना नष्ट होवे, वैसा ही उत्पात करके युद्ध करते होंगे ॥ २३ ॥

उक्तो हि विदुरेणेह हितं पथ्यं च संजय ।
न च गृह्णाति तन्मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ २४ ॥

पहिले विदुरने हितकारी और जो सब पथ्य वचन मुझे कहे थे, मेरे बुद्धि-हीन पुत्र दुर्योधनने उन वातोंको नहीं ग्रहण किया ॥ २४ ॥

तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः ।
आसीद्यथागतं तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥ २५ ॥

तात ! इस समयमें जो सब घटना उपस्थित हो रही है, उसे मुझे निश्चय बोध होता है, कि महात्मा विशेषज्ञ विदुरने इन सब घटनाओंको पहिले ही जान लिया था । इसही कारणसे उनका ऐसा विचार हुआ था ॥ २५ ॥

अथ वा भाव्यमेवं हि सञ्जयैतेन सर्वथा ।
पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत्तथा न तदन्यथा ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ३०२४ ॥

हे सञ्जय ! यह होनहार व्यापार पहिलेहीसे ब्रह्माने उत्पन्न कर रक्खा है, वह अवश्य ही होवेगा; कोई इसे अन्यथा नहीं कर सकेगा ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ ३०२४ ॥

: ७३ :

सञ्जय उवाच

आत्मदोषात्त्वया राजन्प्राप्तं व्यसनमीदृशम् ।
न हि दुर्योधनस्तानि पश्यते भरतर्षभ ।
यानि त्वं दृष्टवान्राजन्धर्मसङ्करकारिते ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तुम अपने ही दोषसे ऐसे व्यसनमें फंसे हुए हो । हे भारत ! धर्मके उलट पुलटसे जो दोष होता है, उसको दुर्योधन नहीं देख सकता; परन्तु तुम वह जानते थे ॥ १ ॥

तव दोषात्पुरा वृत्तं द्यूतमेतद्विशां पते ।
तव दोषेण युद्धं च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः ।
त्वमेवाद्य फलं भुङ्क्ष्व कृत्वा किल्बिषमात्मना ॥ २ ॥

महाराज ! तुम्हारे ही दोषसे पहिले जुएका खेल हुआ और तुम्हारे ही दोषसे इस समय पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध हो रहा है; इससे तुम ही इस समय अपने किये हुए पाप कर्मोंके फलको भोग करो ॥ २ ॥

आत्मना हि कृतं कर्म आत्मनैवोपभुज्यते ।
इह वा प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम् ॥ ३ ॥

राजन् ! अपने किये हुए कर्मोंका फलभोग तुमहीको करना होगा इससे तुम इस लोक अथवा पर लोकमें निज कर्मोंके फलको भोग करोगे । अतः तुमको जैसेका तैसा प्राप्त हुआ है ॥ ३ ॥

तस्माद्राजन्स्थिरो भूत्वा प्राप्येदं व्यसनं महत् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं शंसतो मम मारिष ॥ ४ ॥

राजन् ! मारिष ! जो हो, अब मैं यथावत् युद्धका वृत्तान्त वर्णन करता हूं; तुम इस उपस्थित व्यसनके निमित्त शोकित होके भी चित्त देके युद्धका वृत्तान्त सुनो ॥ ४ ॥

भीमसेनस्तु निशितैर्बाणैर्भित्त्वा महाचमूम् ।
आससाद ततो वीरः सर्वान्दुर्योधनानुजान् ॥ ५ ॥

बलवान् भीमसेनने अपने तेज बाणोंसे महासेना भेद करके दुर्योधनके सब भाइयोंपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥

दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम् ।
जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनम् ॥ ६ ॥
चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च ।
एतानन्यांश्च सुबहून्समीपस्थान्महारथान् ॥ ७ ॥
धार्तराष्ट्रान्सुसंक्रुद्धान्दृष्ट्वा भीमो महाबलः ।
भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम् ॥ ८ ॥

महा बलवान् भीमसेनने दुःशासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुचित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण और कर्ण— इन और इससे अन्य सब महारथ धृतराष्ट्र-पुत्रों और उनकी ओरके बहुतसे महारथियोंको क्रुद्ध और समीपमें स्थित देखकर समरभूमिमें भीष्मसे रक्षित महासेनाके बीच प्रवेश किया ॥ ६–८ ॥

अथाह्वयन्त तेऽन्योन्यमयं प्राप्तो वृकोदरः ।
जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः ॥ ९ ॥

भीमसेनको सेनाके बीच प्रवेश करते हुए देखकर तुम्हारे सब पुत्र एक दूसरेको बुलाकर कहने लगे, हे क्षत्रिय वीरो ! आओ, भीमसेन यहां प्राप्त हुआ है, हम लोग इस भीमसेनको आज जीवितही पकडकर बंदी बना लें ॥ ९ ॥

स तैः परिवृतः पार्थो भ्रातृभिः कृतनिश्चयैः ।
प्रजासंहरणे सूर्यः क्रूरैरिव महाग्रहैः ॥ १० ॥

उन सब भाईयोंने ऐसा निश्चय करके कुन्तीकुमार भीमसेनको चारों ओरसे घेर लिया; जैसे सूर्य सब प्राणियोंका नाश करनेके समय क्रूर ग्रहोंसे घिर जाते हैं, वैसे ही भीमसेन भी तुम्हारे पुत्रोंके बीचमें घिर गये ॥ १० ॥

सम्प्राप्य मध्यं व्यूहस्य न भीः पाण्डवमाविशत् ।
यथा देवासुरे युद्धे महेन्द्रः प्राप्य दानवान् ॥ ११ ॥

जैसे देवता और असुरोंके युद्धमें दानवोंके बीच स्थित इन्द्रको कुछ भय नहीं होता, वैसे ही शत्रुओंके व्यूहमें प्रवेश करते हुए भीमसेनके मनमें भी कुछ भय नहीं हुआ ॥ ११ ॥

ततः शतसहस्राणि रथिनां सर्वशः प्रभो ।
छादयानं शरैर्घोरैस्तमेकमनुवव्रिरे ॥ १२ ॥

प्रभो ! सैकडों तथा सहस्रों रथियोंने सब प्रकारके शस्त्रोंको धारण करके युद्धके निमित्त उपस्थित होकर अकेले भीमसेनको चारों ओरसे घोर बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया ॥ १२ ॥

स तेषां प्रवरान्योधान्हस्त्यश्वरथसादिनः ।
जघान समरे शूरो धार्तराष्ट्रानचिन्तयन् ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्रपुत्रोंकी कुछ भी पर्वाह न करके पराक्रमसे युक्त भीमसेन हाथी, घोडे, रथ और रथपर बैठकर युद्ध करनेवाले मुख्य मुख्य उन सब शूरवीरोंका युद्धमें वध करने लगे ॥१३॥

तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम् ।
समस्तानां वधे राजन्मतिं चक्रे महामनाः ॥ १४ ॥

राजन् ! उन्हें कैद करनेकी इच्छा करनेवाले उन रथियोंके अभिप्रायको जानकर महामना भीमसेनने उन सब लोगोंके वध करनेकी इच्छा की ॥ १४ ॥

ततो रथं समुत्सृज्य गदामादाय पाण्डवः ।
जघान धार्तराष्ट्राणां तं बलौघजमहार्णवम् ॥ १५ ॥

अनन्तर पाण्डुनन्दन भीमसेनने गदा लेके रथसे उतरकर धृतराष्ट्र-पुत्रोंके सेना-सागरमें प्रवेश करके उस महासागर तुल्य सैन्यसमुदायपर प्रहार करना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः।
द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥ १६ ॥
जब भीमसेनने शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया, तब पृषतनन्दन धृष्टद्युम्न अकस्मात् द्रौणाचार्यको त्यागकर जहांपर रणभूमिमें सुबलपुत्र शकुनि थे, वहां जाने लगे ॥ १६ ॥

विदार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः।
आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥ १७ ॥
वह नरश्रेष्ठ तुम्हारी महा सेनाको निवारण करते हुए युद्धमें भीमसेनके छोडे रथके समीप पहुंचे ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम्।
धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः ॥ १८ ॥
महाराज ! उन्होंने उस रणभूमिमें भीमसेनके सारथी विशोकको अकेला देखकर वे मनमें दुःखित और चेतरहित हो गये ॥ १८ ॥

अपृच्छद्बाष्पसंरुद्धो निस्वनां वाचमीरयन्।
मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः ॥ १९ ॥
और मलिनचित्तसे शोकित होकर लम्बी सांस लेते हुए और आंसू बहाते हुए गद्गदकण्ठसे भीमके सारथीसे यह पूछा; हे विशोक ! मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे भीमसेन कहां है ? इतना कहकर वे बहुत दुःखी हो गये ॥ १९ ॥

विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः।
संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः प्रतापवान् ॥ २० ॥
प्रविष्टो धार्तराष्ट्राणामेतद्बलमहार्णवम्।
मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्र प्रीतियुक्तमिदं वचः ॥ २१ ॥
तब विशोकने हाथ जोडके धृष्टद्युम्नसे कहा, कि महा बलवान् और प्रतापी पाण्डुनन्दन भीमसेनने मुझको इसी स्थानपर रखके धृतराष्ट्रपुत्रोंकी महासेनामें अकेले ही प्रवेश किया है। जाते समय पुरुषसिंह भीमसेनने मुझे यह प्यारा वचन कहा है, कि ॥ २०–२१ ॥

प्रतिपालय मां सूत नियम्याश्वान्मुहूर्तकम्।
यावदेतान्निहन्म्याशु य इमे मद्वधोद्यताः ॥ २२ ॥
"हे सारथी ! जो लोग मेरा वध करनेके निमित्त उद्यत हुए हैं, मैं जबतक उन सबका वध करके नहीं लौटूंगा, तबतक अर्थात् मुहूर्त्त भर तुम इस ही स्थानपर इन घोडोंको रोकते हुए ठहरकर मेरी बाट जोहना" ॥ २२ ॥

ततो दृष्ट्वा गदाहस्तं प्रधावन्तं महाबलम् ।
सर्वेषामेव सैन्यानां संघर्षः समजायत ॥ २३ ॥

अनन्तर उस महाबलवान् भीमसेनको हाथमें गदा लेकर शत्रुओंकी ओर दौडते देखके सब सेनाके वीर हर्षित हुए ॥ २३ ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
भित्त्वा राजन्महाव्यूहं प्रविवेश सखा तव ॥ २४ ॥

राजन् ! उसी महा भयङ्कर घोर युद्धमें तुम्हारे सखा बलवान् भीमसेनने शत्रुओंके महा व्यूहको भेद करके उस महासेनाके बीच प्रवेश किया है ॥ २४ ॥

विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः ।
प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः ॥ २५ ॥

महा बलवान् द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने युद्धभूमिमें विशोककी यह बात सुनकर फिर उससे कहने लगे ॥ २५ ॥

न हि मे विद्यते सूत जीवितेऽद्य प्रयोजनम् ।
भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः ॥ २६ ॥

हे सूत ! आज रणभूमिमें भीमसेनको छोडकर और पाण्डवोंके स्नेहकी अपेक्षा करके मेरे जीनेसे कोई प्रयोजन नहीं है ॥ २६ ॥

यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति ।
एकायनगते भीमे मयि चावस्थिते युधि ॥ २७ ॥

रणभूमिमें मेरे स्थित रहतेही भीमसेनने अकेले ही सेनाके बीचमें मार्ग बनाकर गमन किया है; इस समय यदि मैं उनको छोडकर यहांसे चला जाऊं, तो सब क्षत्रिय वीर योद्धा मुझे क्या कहेंगे ?

अस्वस्ति तस्य कुर्वन्ति देवाः साग्निपुरोगमाः ।
यः सहायान्परित्यज्य स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहान् ॥ २८ ॥

जो मनुष्य सहायता चाहनेवाले पुरुषोंको युद्धमें छोडके सुखसे घर लौट जाता है, अग्नि आदिक देवता उसका कल्याण नहीं होने देते ॥ २८ ॥

मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः ।
भक्तोऽस्मान्भक्तिमांश्चाहं तमप्यरिनिषूदनम् ॥ २९ ॥

महाबली भीमसेन मेरे सखा, सम्बन्धी और हम लोगोंके भक्त हैं; मेरी भी उस शत्रुनाशन भीमसेनमें भक्ति है ॥ २९ ॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः ।
निघ्नन्तं मामरीन्पश्य दानवानिव वासवम् ॥ ३० ॥

इससे जहांपर भीमसेन गये हैं मैं भी उसी स्थानपर जाऊंगा, देखो, मेरे वहां जानेपर तुम मुझे इस भांतिसे शत्रुओंका संहार करते हुए देखोगे जैसे इन्द्र दानवोंका नाश करते हैं ॥ ३० ॥

एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारतीम् ।
भीमसेनस्य मार्गेषु गदाप्रमथितैर्गजैः ॥ ३१ ॥

भारत ! वीर धृष्टद्युम्न विशोकसे ऐसा कह कर कौरव सेनाके भीतर भीमसेनकी गदासे मरे हुए हाथियोंके चिन्ह देखते हुए, उस ही मार्गसे जाने लगे ॥ ३१ ॥

स ददर्श ततो भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीम् ।
वातं वृक्षानिव बलात्प्रभञ्जन्तं रणे नृपान् ॥ ३२ ॥

उन्होंने देखा कि भीमसेन शत्रुओंकी सेनाका अपनी गदासे वध कर रहे हैं, और बहुतसे राजाओंको युद्धभूमिमें इस भांतिसे मारके पृथ्वीमें गिराते हैं, जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षोंको बल-पूर्वक उखाडके गिरा देता है ॥ ३२ ॥

ते हन्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा ।
पादाता दन्तिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत् ॥ ३३ ॥

रथी, घुडसवार, पैदल चलनेवाली सेना और हाथी भीमसेनके प्रहारसे पीडित होकर समरांगणमें आर्त्तनाद करने लगी ॥ ३३ ॥

हाहाकारश्च सञ्जज्ञे तव सैन्यस्य मारिष ।
वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना ॥ ३४ ॥

मारिष ! जब आश्चर्यकारक युद्ध करनेवाले कुशल भीम योद्धाओंको मारने लगे, तब तुम्हारी सेनामें अत्यन्त ही हाहाकार मच रहा था ॥ ३४ ॥

ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या समन्ततः ॥ ३५ ॥

अनन्तर सब शस्त्रविद्याके जाननेवाले शूरवीर योद्धा भयको छोडकर चारों ओरसे भीमसेनको घेरकर उनके ऊपर अपने शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

अभिद्रुतं शस्त्रभृतां वरिष्ठं समन्ततः पाण्डवं लोकवीरैः ।
सैन्येन घोरेण सुसंगतेन दृष्ट्वा बली पार्षतो भीमसेनम् ॥ ३६ ॥

पृषतनन्दन बलवान् धृष्टद्युम्न शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, वीरोंके अग्रणी, लोक विख्यात, महाघोर सेनामें सब ओरसे घिरे हुए, पाण्डुनन्दन भीमसेनको देखकर, ॥ ३६ ॥

अथोपगच्छच्छरविक्षताङ्गं पदातिनं क्रोधविषं वमन्तम् ।
आश्वासयन्पार्षतो भीमसेनं गदाहस्तं कालमिवान्तकाले ॥ ३७ ॥
प्रलयकालके दण्डधारी यमराजके समान गदा लिये हुए, शस्त्रोंकी चोटसे क्षत विक्षत शरीर, क्रोधरूपी विष उगलते और पांवसे ही पृथ्वीपर गमन करनेवाले भीमसेनको धीरज देते हुए उनके निकट उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥

निःशल्यमेनं च चकार तूर्णमारोपयच्चात्मरथे महात्मा ।
भृशं परिष्वज्य च भीमसेनमाश्वासयामास च शत्रुमध्ये ॥ ३८ ॥
उस महात्मा धृष्टद्युम्नने शीघ्र ही उन्हें अपने रथपर चढाया और उनके शरीरमेंसे धंसे हुए शल्योंको निकालके बाहर किया। शत्रुओंके मण्डलमें ही भीमसेनको दृढ आलिङ्गन करके पूर्णतः धीरज दिया ॥ ३८ ॥

भ्रातॄनथोपेत्य तवापि पुत्रस्तस्मिन्विमर्दे महति प्रवृत्ते ।
अयं दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्रः समागतो भीमसेनेन सार्धम् ।
तं यात सर्वे सहिता निहन्तुं मा वो रिपुः प्रार्थयतामनीकम् ॥ ३९ ॥
तुम्हारे पुत्र दुर्योधन भी वीरोंके उस संहारके स्थान पर सहसा उपस्थित होके भाइयोंके निकट जाकर यह वचन बोले, यह दुष्टात्मा द्रुपदपुत्र भीमसेनके सहित यहांपर उपस्थित हुआ है; इस समय वह शत्रु जबतक हम लोगोंको युद्धके निमित्त आवाहन न करे तब तक चलो हम सब मिलकर उसका संहार करें ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यं तममृष्यमाणा ज्येष्ठाज्ञया चोदिता धार्तराष्ट्राः ।
वधाय निष्पेतुरुदायुधास्ते युगक्षये केतवो यद्वदुग्राः ॥ ४० ॥
तुम्हारे सब वीर पुत्रोंने अपने बडे भाईकी आज्ञा सुनकर और धृष्टद्युम्नका आगमन न सह कर, शीघ्रही क्रोधपूर्वक शस्त्रग्रहण करके जिस प्रकार प्रलय कालके समयमें भयानक केतु प्रकाशित होता है, उसी भांतिसे धृष्टद्युम्नके वधके निमित्त आके उपस्थित हुए ॥ ४० ॥

प्रगृह्य चित्राणि धनूंषि वीरा ज्यानेमिघोषैः प्रविकम्पयन्तः ।
शरैरवर्षन्द्रुपदस्य पुत्रं यथाम्बुदा भूधरं वारिजालैः ।
निहत्य तांश्चापि शरैः सुतीक्ष्णैर्न विव्यथे समरे चित्रयोधी ॥ ४१ ॥
उन सब वीर सुवर्ण चर्चित धनुष ग्रहण करके धनुष टङ्कार और अपने रथके शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नके ऊपर इस प्रकार अपने अस्त्रोंको वर्षाने लगे, जैसे वर्षाकालमें मेघ पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं। विचित्र युद्ध करनेवाले महाबलवान् महारथ पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न तुम्हारे पुत्रोंको समरांगणमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध करके तनिक भी दुःखित नहीं हुए ॥ ४१ ॥

×

समभ्युदीर्णांश्च तवात्मजांस्तथा निशाम्य वीरानभितः स्थितान्रणे ।
जिघांसुरुग्रं द्रुपदात्मजो युवा प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथः ।
क्रुद्धो भृशं तव पुत्रेषु राजन्दैत्येषु यद्वत्समरे महेन्द्रः ॥ ४२ ॥

आपके वीर पुत्रोंको रणभूमिमें सन्मुख आये हुए तथा युद्धमें निमित्त प्रचण्ड होते हुए उपस्थित देख, राजन् ! नवयुवक महारथी द्रुपदकुमारने तुम्हारे पुत्रोंके नाश करनेकी इच्छासे प्रमोहनास्त्रका प्रयोग किया । जैसे देवताओंके स्वामी इन्द्र दानवोंपर कुपित होते हैं उसी प्रकार आपके पुत्रोंपर धृष्टद्युम्नका क्रोध बहुत बढा हुआ था ॥ ४२ ॥

ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीराः प्रमोहनास्त्राहतबुद्धिसत्त्वाः ।
प्रदुद्रुवुः कुरवश्चैव सर्वे सवाजिनागाः सरथाः समन्तात् ।
परीतकालानिव नष्टसंज्ञान्मोहोपेतांस्तव पुत्रान्निशाम्य ॥ ४३ ॥

वे सब वीरपुरुष धृष्टद्युम्नके प्रमोहन अस्त्रसे मोहित होकर रणभूमिमें चेतरहित तथा शक्तिहीन हो गये । तब सम्पूर्ण सेना तुम्हारे पुत्रोंको मोहित अर्थात् चेतरहितके समान देखकर घोडे, हाथी और रथोंके सहित चारों ओर भागने लगी ॥ ४३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
द्रुपदं त्रिभिरासाद्य शरैर्विव्याध दारुणैः ॥ ४४ ॥

इसी समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने युद्धमें द्रुपदके पास जाकर उनको महा कठोर तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४४ ॥

सोऽतिविद्धस्तदा राजन्रणे द्रोणेन पार्थिवः ।
अपायाद्द्रुपदो राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४५ ॥

राजन् ! तब रणभूमिमें वह द्रोणाचाके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर पहिलेके वैरको स्मरण करते हुए रणभूमिसे हट गये ॥ ४५ ॥

जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।
तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः ॥ ४६ ॥

प्रतापी द्रोणाचार्यने द्रुपदको पराजित करके अपना शङ्ख बजाया, उस शंखके शब्दको सुनकर सब सोमक वंशीय क्षत्रिय भयभीत हो गये ॥ ४६ ॥

अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
प्रमोहनास्त्रेण रणे मोहितानात्मजांस्तव ॥ ४७ ॥

अनन्तर सब शस्त्रोंके जाननेवालेमें श्रेष्ठ, तेजस्वी द्रोणाचार्यने तुम्हारे पुत्र प्रमोहन अस्त्रसे मोहित होकर युद्धभूमिमें पडे हैं ऐसा सुना ॥ ४७ ॥

ततो द्रोणो राजगृद्धी त्वरितोऽभिययौ रणात्।
तत्रापश्यन्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान्
धृष्टद्युम्नं च भीमं च विचरन्तौ महारणे ॥ ४८ ॥

तब यह सुनतेही राजहितैषी, महाधनुर्धारी प्रतापी भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने शीघ्रताके सहित युद्धस्थलसे वहांपर जाके देखा, कि धृष्टद्युम्न और भीमसेन रणभूमिमें भ्रमण कर रहे हैं ॥४८॥

मोहाविष्टांश्च ते पुत्रानपश्यत्स महारथः।
ततः प्रज्ञास्त्रमादाय मोहनास्त्रं व्यशातयत् ॥ ४९ ॥

और आपके पुत्र सब धृष्टद्युम्नके अस्त्रसे मोहित हो गये हैं ऐसे देखा। अनन्तर उन्होंने प्रज्ञास्त्र लेकर उससे मोहनास्त्रका निवारण किया ॥ ४९ ॥

अथ प्रत्यागतप्राणास्तव पुत्रा महारथाः।
पुनर्युद्धाय समरे प्रययुर्भीमपार्षतौ ॥ ५० ॥

तब तुम्हारे सब महारथी पुत्र फिर सावधान होकर रणभूमिमें पुनः युद्धके लिये भीमसेन और धृष्टद्युम्नसे युद्ध करने चले ॥ ५० ॥

ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान्।
गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि ॥ ५१ ॥

इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर अपनी सेनाके पुरुषोंको आवाहन करके यह वचन बोले। रणभूमिमें तुम सब यथाशक्ति पराक्रम प्रकाश करते हुए भीमसेन और धृष्टद्युम्नके पथका अनुसरण करो ॥ ५१ ॥

सौभद्रप्रमुखा वीरा रथा द्वादश दंशिताः।
प्रवृत्तिमधिगच्छन्तु न हि शुध्यति मे मनः ॥ ५२ ॥

इससे अभिमन्यु आदि बारह वीर महारथी अस्त्रशस्त्र तथा वर्म धारण करके सुसज्जित हो भीमसेन और धृष्टद्युम्नके वृत्तान्तको मालूम करें। भीमसेन और धृष्टद्युम्नके निमित्त मेरा चित्त व्याकुल हो रहा हैं ॥ ५२ ॥

त एवं समनुज्ञाताः शूरा विक्रान्तयोधिनः।
बाढमित्येवमुक्त्वा तु सर्वे पुरुषमानिनः।
मध्यंदिनगते सूर्ये प्रययुः सर्व एव हि ॥ ५३ ॥

राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार पराक्रम पूर्वक युद्ध करनेवाले, वे पुरुषोंमें अभिमानी सब शूरवीर ‘ बहुत अच्छा ’ कहकर मध्याह्नके समय वहांसे जाने लगे ॥ ५३ ॥

केकया द्रौपदेयाश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः ॥ ५४ ॥
ते कृत्वा समरे व्यूहं सूचीमुखमरिंदमाः ।
बिभिदुर्धार्तराष्ट्राणां तद्रथानीकमाहवे ॥ ५५ ॥

अभिमन्युको आगे करके बडी सेनाके सहित केकयराज पांचों भाई, द्रौपदीके पांचों पुत्र और पराक्रमी धृष्टकेतु ये शत्रुओंका दमन करनेवाले शूरवीर सूचीमुख नामक समर व्यूह बना कर युद्धभूममें कौरवोंकी रथसेनाको भेद करने लगे ॥ ५४–५५ ॥

तान्प्रयातान्महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता ॥ ५६ ॥
न संधारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप ।
मदमूर्छान्वितात्मानं प्रमदेवाध्वनि स्थिता ॥ ५७ ॥

जनाधिप ! जैसे मदसे मूर्च्छित प्रमदा स्त्री अपनेको निवारण करनेमें समर्थ नहीं होती, वैसे ही भीमसेनके डरसे भयभीत और धृष्टद्युम्नके बाणोंसे मोहित हुई वह कौरवोंकी सेना पाण्डवोंकी ओरके आक्रमण करनेवाले अभिमन्यु आदि महा धनुर्धारियोंको नहीं निवारण कर सकी और मार्गमें चुपचाप खडी रही ॥ ५६–५७ ॥

तेऽभियाता महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ॥ ५८ ॥

सुवर्ण ध्वजाओंसे युक्त पाण्डवोंकी सेनाके महाधनुर्धारी कुलीन वीर लोग धृष्टद्युम्न और भीमसेनके समीप रक्षाके लिए जानेकी इच्छासे शत्रुओंका वध करते हुए वेगसे आगे बढे ॥ ५८ ॥

तौ च दृष्ट्वा महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम् ॥ ५९ ॥

वे दोनों महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न और भीमसेन शत्रु सेनाका नाश करते हुए अभिमन्यु आदि महाधनुर्धर वीरोंको सहायताके लिये आते हुए देखकर आनन्दित हुए ॥ ५९ ॥

दृष्ट्वा च सहसायान्तं पाञ्चाल्यो गुरुमात्मनः ।
नाशंसत वधं वीरः पुत्राणां तव पार्षतः ॥ ६० ॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने अपने गुरु द्रोणाचार्यको सहसा सम्मुख आते हुए देखकर फिर तुम्हारे पुत्रोंके वध करनेकी इच्छा नहीं की ॥ ६० ॥

तती रथं समारोप्य केकयस्य वृकोदरम्।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो द्रोणमिष्वस्त्रपारगम् ॥ ६१ ॥
और भीमसेनको केकयराजके रथपर चढाकर क्रुद्ध होकर धृष्टद्युम्न धनुर्वेदके जाननेवाले विद्वान् द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ६१ ॥

तस्याभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान्।
क्रुद्धश्चिच्छेद भल्लेन धनुः शत्रुनिषूदनः ॥ ६२ ॥
शत्रुओंके नाश करनेवाले प्रतापी द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको सम्मुख आते देखकर क्रोधित होकर उनका धनुष एक ही भल्लास्त्रसे तुरंत काट डाला ॥ ६२ ॥

अन्यांश्च शतशो बाणान्प्रेषयामास पार्षते।
दुर्योधनहितार्थाय भर्तृपिण्डमनुस्मरन् ॥ ६३ ॥
और दुर्योधनके हितके लिये स्वामीके अन्न तथा सेवाको स्मरण करके दूसरे सैकडों बाण धृष्टद्युम्नके ऊपर चलाने लगे ॥ ६३ ॥

अथान्यद्धनुरादाय पार्षतः परवीरहा।
द्रोणं विव्याध सप्तत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ६४ ॥
अनन्तर शत्रुनाशन वीर धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष ग्रहण करके पत्थरपर रगडकर तेज किये हुए सोनेकी पांखवाले सात बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ ६४ ॥

तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदामित्रकर्शनः।
हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६५ ॥
वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास वीर्यवान्।
सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ६६ ॥
तब शत्रुओंको पीडित करनेवाले वीरवर द्रोणाचार्यने फिर उनके धनुषको काटके चार उत्तम बाणोंसे उनके चारों घोडोंको तुरंत ही भयानक यमलोकको भेज दिया; और एक बाणसे उनके सारथिको भी मृत्युके हवाले कर दिया ॥ ६५–६६ ॥

हताश्वात्स रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः।
आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम् ॥ ६७ ॥
महाबाहु महारथ धृष्टद्युम्न घोडे और सारथीसे रहित रथके ऊपरसे तुरंत कूदके अभिमन्युके बडे रथपर जा चढे ॥ ६७ ॥

ततः सरथनागाश्वा समकम्पत वाहिनी।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ६८ ॥
इसके अनन्तर पाण्डवोंकी सेना रथ, हाथी और घोडोंके सहित भीम और धृष्टद्युम्नके संमुखहीमें द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित होके कांपने लगी ॥ ६८ ॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेनामिततेजसा ।
नाशक्नुवन्वारयितुं समस्तास्ते महारथाः ॥ ६९ ॥

अमित तेजस्वी आचार्य द्रोणके द्वारा अपनी सेनाको भंग हुआ देखकर भी वे सब पाण्डवोंके महारथी लोग द्रोणाचार्यके संमुखसे भागती हुई अपनी सेनाको प्रयत्न करनेपर भी निवारण करनेमें समर्थ न हुए ॥ ६९ ॥

वध्यमानं तु तत्सैन्यं द्रोणेन निशितैः शरैः ।
व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव क्षोभ्यमाण इवार्णवः ॥ ७० ॥

वह सब सेना महा तेजस्वी द्रोणाचार्यके तीक्ष्ण बाणोंसे इस भांतिसे तितर बितर होगई जैसे प्रबल वायुके जोरसे समुद्रका जल झकोरा खाने लगता है ॥ ७० ॥

तथा दृष्ट्वा च तत्सैन्यं जहृषे च बलं तव ।
दृष्ट्वाचार्यं च संक्रुद्धं दहन्तं रिपुवाहिनीम् ।
चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत ॥ ७१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रिसततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ३०९५ ॥

तुम्हारी ओरके सब वीर योद्धा लोग अत्यन्त कुपित होकर द्रोणाचार्यको इस प्रकारसे शत्रुओंकी सेनाको नाश करते हुए देखकर आनन्दित हुए; और धन्य धन्य कहके ऊंचे स्वरसे उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७१ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ ३०९५ ॥

: ७४ :

सञ्जय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा मोहात्प्रत्यागतस्तदा ।
शरवर्षैः पुनर्भीमं प्रत्यवारयदच्युतम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे भारत ! अनन्तर राजा दुर्योधन मोहसे जगनेपर युद्धभूमिसे पीछे न हटनेवाले महापराक्रमी भीमसेनका फिर अपने बाणोंकी वर्षासे निवारण करने लगे ॥ १ ॥

एकीभूताः पुनश्चैव तव पुत्रा महारथाः ।
समेत्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः ॥ २ ॥

और तुम्हारे सब महारथी पुत्र भी फिर युद्धमें मिलकर इकट्ठे होके भीमसेनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २ ॥

भीमसेनोऽपि समरे संप्राप्य स्वरथं पुनः ।
समारुह्य महाबाहुर्ययौ येन तवात्मजः ॥ ३ ॥

महाबाहु भीमसेन भी युद्धमें फिर अपने रथपर चढके जिस मार्गसे आपका पुत्र दुर्योधन गया था, उधर गये ॥ ३ ॥

प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम् ।
चित्रं शरासनं संख्ये शरैर्विव्याध ते सुतान् ॥ ४ ॥

और उन्होंने शत्रुओंके प्राणका नाश करनेवाला एक बडा वेगवान् विचित्र धनुष ग्रहण करके तुम्हारे पुत्रोंको अनेक बाणोंसे युद्धस्थलमें विद्ध किया ॥ ४ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम् ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत् ॥ ५ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधनने भी महाबली भीमसेनके मर्म स्थानमें अत्यन्त तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे प्रहार किया ॥ ५ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना ।
क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनोत्क्षिप्य कार्मुकम् ॥ ६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स तथाभिहतो राजा नाचलद्गिरिराडिव ॥ ७ ॥

महा धनुर्धर भीमसेनने आपके धनुर्धर पुत्रसे चलाये हुए बाणसे अत्यन्त विद्ध होके क्रोधसे लाल नेत्र करके, शीघ्रतासे धनुष खींचके तीन बाणोंसे दुर्योधनकी दोनों भुजा और छातीमें प्रहार किया । दुर्योधन भीमसेनके बाणोंसे उस प्रकार विद्ध होकर भी गिरिराजके समान तनिक भी चलित नहीं हुए ॥ ६–७ ॥

तौ दृष्ट्वा समरे क्रुद्धौ विनिघ्नन्तौ परस्परम् ।
दुर्योधनानुजाः सर्वे शूराः संत्यक्तजीविताः ॥ ८ ॥
संस्मृत्य मन्त्रितं पूर्वं निग्रहे भीमकर्मणः ।
निश्चयं मनसा कृत्वा निग्रहीतुं प्रचक्रमुः ॥ ९ ॥

उन दोनों क्रुद्ध वीरोंको समरभूमिमें इस प्रकारसे एक दूसरेपर प्रहार करते हुए देखकर दुर्योधनके शूरवीर सब छोटे भाई पहिले विचारको स्मरण करके प्राणकी आशा छोडकर भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनको पराजित करनेका मनसे दृढ निश्चय कर उनको जीवित पकडनेके साधनके निमित्त यत्नवान् हुए ॥ ८–९ ॥

तानापतत एवाजौ भीमसेनो महाबलः ।
प्रत्युद्ययौ महाराज गजः प्रतिगजानिव ॥ १० ॥

महाराज ! महाबली भीमसेन उन लोगोंको रणभूमिमें युद्धके निमित्त समीप आते हुए देखके इस प्रकारसे उनकी ओर दौडे, जैसे एक मतवाला हाथी अनेक हाथियोंकी ओर दौडता है ॥ १० ॥

भृशं क्रुद्धश्च तेजस्वी नाराचेन समर्पयत् ।
चित्रसेनं महाराज तव पुत्रं महायशाः ॥ ११ ॥

राजन् ! महा यशस्वी तेजस्वी भीमसेनने अत्यंत क्रुद्ध होकर तुम्हारे पुत्र चित्रसेनको चोखे एक नाराच बाणसे विद्ध किया ॥ ११ ॥

तथेतरांस्तव सुतांस्ताडयामास भारत ।
शरैर्बहुविधैः संख्ये रुक्मपुङ्खैः सुवेगितैः ॥ १२ ॥

भारत ! इसी प्रकार युद्धमें अनेक प्रकारके स्वर्णपुङ्खसे युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण और बहुत तेजस्वी बाणोंसे तुम्हारे और दूसरे पुत्रोंके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ १२ ॥

ततः संस्थाप्य समरे स्वान्यनीकानि सर्वशः ।
अभिमन्युप्रभृतयस्ते द्वादश महारथाः ॥ १३ ॥
प्रेषिता धर्मराजेन भीमसेनपदानुगाः ।
प्रत्युद्ययुर्महाराज तव पुत्रान्महाबलान् ॥ १४ ॥

महाराज ! तब धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनकी रक्षाके निमित्त अपनी सेनाओंको सब प्रकारसे समरभूमिमें स्थापित करके, भीमसेनके पदचिह्नोंपर चलनेवाले उन अभिमन्यु आदि बारह महारथिओंने तुम्हारी सेनाको कस्पाते हुए तुम्हारे महाबलवान् पुत्रोंपर धावा किया ॥ १३–१४ ॥

दृष्ट्वा रथस्थांस्ताञ्शूरान्सूर्याग्निसमतेजसः ।
सर्वानेव महेष्वासान्भ्राजमानाञ्श्रिया वृतान् ॥ १५ ॥
महाहवे दीप्यमानान्सुवर्णकवचोज्ज्वलान् ।
तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः ॥ १६ ॥

उस समय तुम्हारे महा बलवान् पराक्रमी पुत्रलोग, रथमें स्थित, शूरवीर, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी, महाधनुर्धारी, प्रकाशमान् श्रीसे युक्त, महा युद्धमें प्रकाशमान् सुवर्ण कवचसे शोभित और अत्यन्त क्रान्तिमान् अभिमन्यु आदि शूरवीरोंको उस महासमरमें आते हुए देखकर, भीमसेनको छोडकर वहांसे जाने लगे ॥ १५–१६ ॥

तान्नामृष्यत कौन्तेयो जीवमाना गता इति ।
अन्वीय च पुनः सर्वांस्तव पुत्रानपीडयत् ॥ १७ ॥

तुम्हारे पुत्र लोग जो जीते ही वहांसे जाने लगे वह कुन्तीपुत्र भीमसेनसे नहीं सहा गया; वह फिर उन तुम्हारे पुत्र लोगोंका पीछा करते हुए उन्हें पीडित करने लगे ॥ १७ ॥

अथाभिमन्युं समरे भीमसेनेन सङ्गतम् ।
पार्षतेन च संप्रेक्ष्य तव सैन्ये महारथाः ॥ १८ ॥
दुर्योधनप्रभृतयः प्रगृहीतशरासनाः ।
भृशमश्वैः प्रजवितैः प्रययुर्यत्र ते रथाः ॥ १९ ॥

तब धनुषधारी दुर्योधन आदि तुम्हारे सब महारथी अपनी सेनाके बीच उस समरभूमिमें भीमसेन और धृष्टद्युम्नके सहित इकट्ठे हुए अभिमन्युको देखकर शीघ्र गमन करनेवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके जहां अभिमन्यु आदि महारथी थे, वहांपर गमन किया ॥ १८–१९ ॥

अपराह्णे ततो राजन्प्रावर्तत महान्रणः ।
तावकानां च बलिनां परेषां चैव भारत ॥ २० ॥

महाराज ! भारत ! तिसके अनन्तर अपराह्ण समयमें तुम्हारी ओरके वीरों और बलवान् शत्रुओंसे महाघोर युद्ध होने लगा ॥ २० ॥

अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान्हत्वा महाजवान् ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समाचिनोत् ॥ २१ ॥

हे भारत ! अभिमन्युने उस युद्धमें विकर्णके सब वेगवान् घोडोंको मारकर उनके ऊपर पचीस क्षुद्रक अस्त्र चलाये ॥ २१ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य विकर्णस्तु महारथः ।
आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भास्वरम् । ॥ २२ ॥

महारथ विकर्ण घोडोंसे रहित रथको त्यागकर चित्रसेनके प्रकाशमान रथपर जा चढे ॥ २२ ॥

स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुरुवर्धनौ ।
आर्जुनिः शरजालेन छादयामास भारत ॥ २३ ॥

भारत ! विकर्ण और चित्रसेन दोनों कुल वर्धन भाइयोंके एक ही रथपर चढनेके अनन्तर अर्जुनपुत्र अभिमन्युने अपने बाणोंकी वर्षासे उन दोनोंको छिपा दिया ॥ २३ ॥

दुर्जयोऽथ विकर्णश्च कार्ष्णिं पञ्चभिरायसैः ।
विव्यधाते न चाकम्पत्कार्ष्णिर्मेरुरिवाचलः ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर दुर्जय और विकर्णने अभिमन्युको लोहेके पांच बाणोंसे विद्ध किया, उससे अभिमन्यु तनिक भी विचलित नहीं हुए, वरन मेरु गिरिके समान युद्धमें अडिग खडे रहे ॥ २४ ॥

+

दुःशासनस्तु समरे केकयान्पञ्च मारिष ।
योधयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥

मारिष ! राजेन्द्र ! दुःशासनने अकेलेही युद्धभूमिमें केकयराज पांचों भाइयोंके सङ्ग युद्ध करना आरम्भ किया; वह युद्ध अद्भुत रूपसे दिखाई देने लगा ॥ २५ ॥

द्रौपदेया रणे क्रुद्धा दुर्योधनमवारयन् ।
एकैकस्त्रिभिरानर्छत्पुत्रं तव विशां पते ॥ २६ ॥

पृथ्वीपते ! युद्धमें द्रौपदीके पांचों पुत्रोंने क्रुद्ध होकर दुर्योधनको निवारण करते हुए प्रत्येकने सर्पके समान तीन बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २६ ॥

पुत्रोऽपि तव दुर्धर्षो द्रौपद्यास्तनयान्रणे ।
सायकैर्निशितै राजन्नाजघान पृथक्पृथक् ॥ २७ ॥

राजन् ! तब आपके पुत्र महाक्रोधी दुर्योधन भी तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धमें उन सब द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको अलग अलग पीडित करने लगे ॥ २७ ॥

तैश्चापि विद्धः शुशुभे रुधिरेण समुक्षितः ।
गिरिप्रस्रवणैर्यद्वद्गिरिर्धातुविमिश्रितैः ॥ २८ ॥

और उन लोगोंके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर रुधिर बहते हुए शरीरसे ऐसे शोभित हुए, जैसे बहते हुए गेरू आदि धातुकी जलधारासे पहाड शोभायमान लगता है ॥ २८ ॥

भीष्मोऽपि समरे राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कालयामास बलवान्पालः पशुगणानिव ॥ २९ ॥

राजन् ! उस महा संग्राममें महा बलवान् भीष्म भी पाण्डवोंकी सेनाके वीरोंका इस प्रकारसे वध करके युद्धसे भगाने लगे, जैसे पशुपालक लोग पशुओंको ताडना देते हैं ॥ २९ ॥

ततो गाण्डीवनिर्घोषः प्रादुरासीद्विशां पते ।
दक्षिणेन वरूथिन्याः पार्थस्यारीन्विनिघ्नतः ॥ ३० ॥

पृथ्वीपते ! उस समय अर्जुन जहांपर शत्रुओंका वध कर रहे थे, उस दक्षिण ओरसे उनके गाण्डीव धनुषका शब्द सुनाई पडने लगा ॥ ३० ॥

उत्तस्थुः समरे तत्र कबन्धानि समन्ततः ।
कुरूणां चापि सैन्येषु पाण्डवानां च भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! वहां युद्ध भूमिमें कौरव और पाण्डवोंकी सेनामें सब ओर कबंध उठने लगे ॥ ३१ ॥

शोणितोदं रथावर्तं गजद्वीपं हयोर्मिणम् ।
रथनौभिर्नरव्याघ्राः प्रतेरुः सैन्यसागरम् ॥ ३२ ॥

तथा उस समुद्ररूपी सेनामें रुधिरका समुद्र दिखाई देने लगा । उसमें रथ भंवर, सब मरे हाथी द्वीप और घोडे तरङ्ग रूपी दीख पडने लगे । पुरुषसिंह रथरूपी नौकासे उस सैन्य-सागरसे पार होते हुए दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥

छिन्नहस्ता विकवचा विदेहाश्च नरोत्तमाः ।
पतितास्तत्र दृश्यन्ते शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥

सैकडों और सहस्रों श्रेष्ठ पुरुषोंको हस्त रहित, कवचहीन और शरीरसे छिन्नभिन्न विकल हुए पृथ्वीपर पडे हुए मैंने अवलोकन किया ॥ ३३ ॥

निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा ॥ ३४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! रुधिरसे युक्त मरे हुए मतवारे हाथी पहाडके समान दीख पडते थे । उनसे वहांकी भूमि ढकी हुई थी ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव तेषां च भारत ।
न तत्रासीत्पुमान्कश्चिद्यो युद्धं नाभिकाङ्क्षति ॥ ३५ ॥

भारत ! वहांपर मैंने यह आश्चर्य देखा, कि तुम्हारी सेना तथा पाण्डवोंकी सेनामें ऐसा कोई भी पुरुष न था, जो युद्धकी अभिलाषा न करता हो ॥ ३५ ॥

एवं युयुधिरे वीराः प्रार्थयाना महद्यशः ।
तावकाः पाण्डवैः सार्धं काङ्क्षमाणा जयं युधि ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ ३१३१ ॥

इसी प्रकारसे तुम्हारी सेनाके वीर लोग युद्धमें जयकी अभिलाषा करते हुए पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ ३१३१ ॥

: ७५ :

सञ्जय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।
संग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले,— हे महाराज ! इसके अनन्तर अस्त होनेके समयमें जब सूर्यदेवपर संध्याकी लाली छाने लगी, तब उत्साही राजा दुर्योधन भीमसेनके वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥ १ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य त्वधीरं दृढवैरिणम् ।
भीमसेनः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

भीमसेन उस अपने दृढ-शत्रु पुरुषसिंह दुर्योधनको आते हुए देखकर क्रुद्ध होकर उनसे यह वचन बोले ॥ २ ॥

अयं स कालः संप्राप्तो वर्षपूगाभिकाङ्क्षितः ।
अद्य त्वां निहनिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥

हे गान्धारीपुत्र ! मेरे कई वर्षकी की हुई अभिलाषाका समय आज उपस्थित हुआ; यदि तुम रणभूमिको छोडके भाग न जाओगे, तो आज मैं तुम्हारा वध करूंगा ॥ ३ ॥

अद्य कुन्त्याः परिक्लेशं वनवासं च कृत्स्नशः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं प्रणोत्स्यामि हते त्वयि ॥ ४ ॥

आज मैं तुमको मारकर, माता कुन्तीके क्लेश, वनवाससे उत्पन्न हुए हम लोगोंके सब कष्ट और द्रौपदीके दुःखोंको आज ही दूर कर दूंगा ॥ ४ ॥

यत्त्वं दुरोदरो भूत्वा पाण्डवानवमन्यसे ।
तस्य पापस्य गान्धारे पश्य व्यसनमागतम् ॥ ५ ॥

गान्धारीपुत्र ! तुमने पहिले मत्सरतासे युक्त जुआरी होकर जो हम पाण्डवोंको अवमानित किया था उसी पापका फल अब तुमको यह संकट उपस्थित हुआ है, देख ॥ ५ ॥

कर्णस्य मतमाज्ञाय सौबलस्य च यत्पुरा ।
अचिन्त्य पाण्डवान्कामाद्यथेष्टं कृतवानसि ॥ ६ ॥

पहले कर्ण और शकुनिके सलाहसे तुमने पाण्डवोंके विषयमें कुछ भी विचार न करके जो अपनी इच्छाके अनुसार सब कार्योंको किया था ॥ ६ ॥

याचमानं च यन्मोहाद्दाशार्हमवमन्यसे ।
उलूकस्य समादेशं यद्ददासि च हृष्टवत् ॥ ७ ॥

और भगवान् श्रीकृष्ण सन्धिके निमित्त तुम्हारे समीप प्रार्थना करने आये थे, तब तुमने मोहवश वहांपर उनका भी अपमान किया था; इसके अतिरिक्त तुमने आनन्दित होके उलूकको भेजकर हम लोगोंके विषयमें जो कटूक्ति कही थी, ॥ ७ ॥

अद्य त्वा निहनिष्यामि सानुबन्धं सबान्धवम् ।
समीकरिष्ये तत्पापं यत्पुरा कृतवानसि ॥ ८ ॥

आज मैं तुमको बन्धु-बान्धव और अनुयायियोंके सहित नाश करके तुम्हारे उन पहिलेके किये हुए पापोंकी शान्ति करूंगा और उन सबका बदला चुकाकर बराबर कर दूंगा ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा धनुर्घोरं विकृष्योद्भ्राम्य चासकृत् ।
समादाय शरान्घोरान्महाशनिसमप्रभान् ॥ ९ ॥

भीमसेनसे ऐसा वचन कहके अपना महाघोर धनुष घुमाकर उसे बलपूर्वक खींचकर बार बार टङ्कार करते हुए वज्रके समान तेजस्वी भयानक बाणोंको उसके ऊपर रक्खा ॥ ९ ॥

षड्विंशत्तरसा क्रुद्धो मुमोचाशु सुयोधने ।
ज्वलिताग्निशिखाकारान्वज्रकल्पानजिह्मगान् ॥ १० ॥

अग्निकी शिखाके समान जलते हुए सरल गमन करनेवाले वज्रके समान छब्बीस चोखे बाणोंको कुपित हुए भीमसेनने दुर्योधनके ऊपर शीघ्र चलाया ॥ १० ॥

ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्यां च विव्यधे ।
चतुर्भिरश्वाञ्जवनाननयद्यमसादनम् ॥ ११ ॥

फिर दो बाणोंसे उनके धनुष और दो बाणोंसे सारथीको विद्ध करके। फिर चार बाणोंसे उनके वेगवान् घोडोंको मारके यमलोक भेज दिया ॥ ११ ॥

द्वाभ्यां च सुविकृष्टाभ्यां शराभ्यामरिमर्दनः ।
छत्रं चिच्छेद समरे राज्ञस्तस्य रथोत्तमात् ॥ १२ ॥

नरोत्तम ! फिर शत्रुमर्दन भीमने धनुषको अच्छी तरह खींचकर छोडे हुए दो बाणोंको चलाकर राजा दुर्योधनके उत्तम रथसे उनके छत्रको रणभूमिमें काटके गिराया ॥ १२ ॥

त्रिभिश्च तस्य चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम् ।
छित्त्वा तं च ननादोच्चैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ १३ ॥

और तीन बाणोंसे अपनी प्रभासे प्रकाशित होनेवाली उनकी उत्तम ध्वजाको रथपरसे काटके, आपके पुत्रके संमुख ही में ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १३ ॥

रथाच्च स ध्वजः श्रीमान्नानारत्नविभूषितः ।
पपात सहसा भूमिं विद्युज्जलधरादिव ॥ १४ ॥

जैसे बादलसे निकल कर बिजली पृथ्वीपर गिरती है, वैसे ही दुर्योधनके रथसे नाना रत्नोंसे भूषित सुवर्ण युक्त उत्तम शोभावाली ध्वजा कटके गिर पडी ॥ १४ ॥

ज्वलन्तं सूर्यसङ्काशं नागं मणिमयं शुभम् ।
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण राजा लोग कुरुराज दुर्योधनकी सूर्यके समान प्रकाशमान मणियोंसे युक्त शोभायमान हाथीके चिन्हसे युक्त उस उज्वल ध्वजाको कटी हुई देखने लगे ॥ १५ ॥

अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्त्रैरिव महागजम् ।
आजघान रणे भीमः स्मयन्निव महारथः ॥ १६ ॥

अनन्तर महारथ भीमसेनने हंसते हंसते अंकुशसे गजराजको पीडित करनेके समान दस बाणोंसे रणभूमिमें कुरुराज दुर्योधनके ऊपर प्रहार किया ॥ १६ ॥

ततस्तु राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो जयद्रथः ।
दुर्योधनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषोचिताम् ॥ १७ ॥

अनन्तर रथियोंमें प्रधान सिन्धुराज जयद्रथ मुख्य मुख्य सत्पुरुष वीरोंके सहित दुर्योधनकी पृष्ठ-रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १७ ॥

कृपश्च रथिनां श्रेष्ठः कौरव्यममितौजसम् ।
आरोपयद्रथं राजन्दुर्योधनममर्षणम् ॥ १८ ॥

राजन् ! महारथ कृपाचार्यने अत्यन्त तेजस्वी महाक्रोधी कुरुराज दुर्योधनको अपने रथपर चढा लिया ॥ १८ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो भीमसेनेन संयुगे ।
निषसाद रथोपस्थे राजा दुर्योधनस्तदा ॥ १९ ॥

उस समय राजा दुर्योधन युद्धमें भीमसेनके बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध और पीडित होकर रथपर बैठे ॥ १९ ॥

परिवार्य ततो भीमं हन्तुकामो जयद्रथः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद्दिशः ॥ २० ॥

तब सिन्धुराज जयद्रथने भीमसेनके वध करनेकी इच्छासे चारों ओरसे सहस्रों रथियोंको सङ्ग लेकर उन्हें घेर लिया और बाणोंकी वर्षासे छिपा लिया ॥ २० ॥

धृष्टकेतुस्ततो राजन्नभिमन्युश्च वीर्यवान् ।
केकया द्रौपदेयाश्च तव पुत्रानयोधयन् ॥ २१ ॥

राजन् ! तब धृष्टकेतु, पराक्रमी अभिमन्यु, केकय राज पांचों भाई और द्रौपदीके पांचों पुत्र तुम्हारे पुत्रोंसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥

चित्रसेनः सुचित्रश्च चित्राश्वश्चित्रदर्शनः ।
चारुचित्रः सुचारुश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ २२ ॥
अष्टावेते महेष्वासाः सुकुमारा यशस्विनः ।
अभिमन्युरथं राजन्समन्तात्पर्यवारयन् ॥ २३ ॥

उस युद्धमें चित्रसेन, सुचित्र, चित्राश्व, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारु, नन्द और उपनन्द ये आठ यशस्वी तुम्हारे सुकुमार और महा धनुषधारी पुत्रोंने अभिमन्युके रथको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २२–२३ ॥

आजघान ततस्तूर्णमभिमन्युर्महामनाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
वज्रमृत्युप्रतीकाशैर्विचित्रायुधनिःसृतैः ॥ २४ ॥

अनन्तर महातेजस्वी अभिमन्युने अपने विचित्र धनुषसे छूटे हुए झुकी हुई गांठवाले वज्र और मृत्युके समान घोर और अनेक आयुधोंसे निकल पांच पांच बाणोंसे उन सबको विद्ध किया ॥ २४ ॥

अमृष्यमाणास्ते सर्वे सौभद्रं रथसत्तमम् ।
ववर्षुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवाम्बुदाः ॥ २५ ॥

उन बाणोंके आघातको आपके पुत्र सहन न कर सके । वे सब लोग क्रुद्ध होकर रथियोंमें श्रेष्ठ सुभद्राकुमार अभिमन्युके ऊपर इस प्रकारसे तीखे बाणोंको वर्षाने लगे जैसे बादल मेरु पर्वतपर पानी बर्षाते हैं ॥ २५ ॥

स पीड्यमानः समरे कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
अभिमन्युर्महाराज तावकान्समकम्पयत् ।
यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान् ॥ २६ ॥

महाराज ! सब अस्त्रोंको जाननेवाला और युद्धमें उन्मत्त होकर लडनेवाला अभिमन्यु उन सब वीरोंके बाणोंसे पीडित होकर भी जैसे देव असुरोंके युद्धमें देवताओंके स्वामी वज्रधारी इन्द्रने महा घोर असुरोंको कम्पित किया था, वैसे ही उन सबको अपने बाणोंसे कंपाने लगा ॥ २६ ॥

विकर्णस्य ततो भल्लान्प्रेषयामास भारत ।
चतुर्दश रथश्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान् ।
ध्वजं सूतं हयांश्चास्य छित्त्वा नृत्यन्निवाहवे ॥ २७ ॥

भारत ! रथियोंमें मुख्य अभिमन्यु मानो युद्धमें नृत्य करता हुआ विकर्णकी ओर विषधारी सर्पके समान भयङ्कर चौदह भल्ल बाण चलाकर उनके रथकी ध्वजा काट दी, सारथी और घोडोंको भी मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २७ ॥

पुनश्चान्याञ्शरान्पीतानकुण्ठाग्राञ्शिलाशितान् ।
प्रेषयामास सौभद्रो विकर्णाय महाबलः ॥ २८ ॥

फिर दूसरी बार उस बलवान् सुभद्राकुमार अभिमन्युने निर्भय होकर उत्तम पानीसे बुझाये हुए अप्रतिहत धारवाले पानीदार बाणोंसे विकर्णके ऊपर प्रहार किया ॥ २८ ॥

ते विकर्णं समासाद्य कङ्कबर्हिणवाससः ।
भित्त्वा देहं गता भूमिं ज्वलन्त इव पन्नगाः ॥ २९ ॥

वे सब कङ्क और मोरपङ्खसे युक्त बाण विकर्णके शरीरको भेदकर प्रकाशमान सर्पके समान पृथ्वीमें प्रवेश कर गये ॥ २९ ॥

ते शरा हेमपुङ्खाग्रा व्यदृश्यन्त महीतले ।
विकर्णरुधिरक्लिन्ना वमन्त इव शोणितम् ॥ ३० ॥

उस समय पुच्छ और अग्र भाग जिनके सुवर्णभूपित थे ऐसे वे सब बाण विकर्णके रुधिरसे युक्त होकर पृथ्वीमें वमन करनेके समान रुधिर गिराने लगे ॥ ३० ॥

विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवान्ये सहोदराः ।
अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान्रथान् ॥ ३१ ॥

विकर्णके दूसरे भाई उन्हें बाणोंसे क्षत विक्षत देखकर रणभूमिमें अभिमन्यु आदि वीरोंकी ओर वेगसे दौडे ॥ ३१ ॥

अभियात्वा तथैवाशु रथस्थान्सूर्यवर्चसः ।
अविध्यन्समरेऽन्योन्यं संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥ ३२ ॥

वे लोग युद्धदुर्मद वीर युद्धमें शीघ्रताके सहित सूर्यके समान तेजस्वी अभिमन्यु आदि रथियोंके निकट जाके उन महारथियों, तथा अभिमन्युसे क्रोधमें भरकर युद्ध करके एक दूसरेको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ३२ ॥

दुर्मुखः श्रुतकर्माणं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ३३ ॥

दुर्मुखने सात शीघ्रगामी बाणोंसे श्रुतकर्माको विद्ध करके एक बाणसे उनकी ध्वजा काट दी और फिर सात बाणोंसे उनके सारथीको घायल कर दिया ॥ ३३ ॥

अश्वाञ्जाम्बूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान्वातरंहसः ।
जघान षड्भिरासाद्य सारथिं चाभ्यपातयत् ॥ ३४ ॥

उनके सुवर्ण जालसे भूषित वायुके समान गमन करनेवाले चारों घोडोंको छः बाणोंसे मारकर सारथिको भी रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ३४ ॥

स हताश्वे रथे तिष्ठञ्श्रुतकर्मा महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३५ ॥

महारथी बलवान् श्रुतकर्माने क्रुद्ध होकर घोडोंसे रहित रथपरसे ही एक प्रकाशमान जलती हुई उल्काके समान शक्ति दुर्मुखके ऊपर चलाई ॥ ३५ ॥

सा दुर्मुखस्य विपुलं वर्म भित्त्वा यशस्विनः ।
विदार्य प्राविशद्भूमिं दीप्यमाना सुतेजना ॥ ३६ ॥

वह तेजस्वी उद्दीप्त शक्ति दुर्मुखके विपुल वर्मको भेद करके पृथ्वीको चीरती हुई उसमें प्रवेश कर गई ॥ ३६ ॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र सुतसोमो महाबलः ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां रथमारोपयत्स्वकम् ॥ ३७ ॥

श्रुतकर्माको विरथ देखकर महारथ सुतसोमने उस सेनाके सम्मुख ही उन्हें अपने रथपर चढा लिया ॥ ३७ ॥

श्रुतकीर्तिस्तथा वीरो जयत्सेनं सुतं तव ।
अभ्ययात्समरे राजन्हन्तुकामो यशस्विनम् ॥ ३८ ॥

राजन् ! वीर श्रुतकीर्ति तुम्हारे यशस्वी पुत्र जयत्सेनके नाश करनेकी इच्छासे उनके समीप उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥

तस्य विक्षिपतश्चापं श्रुतकीर्तेर्महात्मनः ।
चिच्छेद समरे राजञ्जयत्सेनः सुतस्तव ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत ॥ ३९ ॥

हे भारत ! आपके पुत्र जयत्सेनने महात्मा श्रुतकीर्तिको धनुष चढाते हुए देखकर हंसते हंसते अपने तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणोंसे रणभूमिमें उनके धनुषको काट दिया ॥ ३९ ॥

तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम् ।
अभ्यपद्यत तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ४० ॥

तेजस्वी शतानीक अपने भाईका धनुप कटा हुआ देखकर बार बार सिंहके समान गर्जता हुआ जयत्सेनके समीप आया ॥ ४० ॥

शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः ॥ ४१ ॥

और शतानीकने रणभूमिमें अत्यन्त जोरसे शीघ्रतापूर्वक धनुप खींचकर दस बाणोंसे जयत्सेनको विद्ध किया ॥ ४१ ॥

अथान्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।
शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम् ॥ ४२ ॥

फिर सब आवरणोंको भेदनेवाले समर्थ एक तीक्ष्ण बाणसे शतानीकने जयत्सेनके हृदयमें प्रहार किया ॥ ४२ ॥

+

तथा तस्मिन्वर्तमाने दुष्कर्णो भ्रातुरन्तिके ।
चिच्छेद समरे चापं नाकुलेः क्रोधमूर्छितः ॥ ४३ ॥

उसके इस प्रकार करनेपर उस युद्धमें दुष्कर्णने क्रोधसे मूर्छित होके अपने भाई जयत्सेनके समीप ही स्थित होके नकुल पुत्र शतानीकके धनुपको काट डाला ॥ ४३ ॥

अथान्यद्धनुरादाय भारसाधनमुत्तमम् ।
समादत्त शितान्बाणाञ्शतानीको महाबलः ॥ ४४ ॥

महाबली शतानीकने और एक दूसरा बडा दृढ धनुप ग्रहण करके उसपर भयंकर तीक्ष्ण बाणोंका अनुसंधान किया ॥ ४४ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति चामन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः ।
मुमोच निशितान्बाणाञ्ज्वलितान्पन्नगानिव ॥ ४५ ॥

और दुष्कर्णको उनके भाईके सम्मुख ही " खडा रह, खडा रह ! " कहके प्रज्वलित सर्पके समान तीक्ष्ण बाण उनके ऊपर चलाने लगे ॥ ४५ ॥

ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतं च मारिष ।
चिच्छेद समरे तूर्णं तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ४६ ॥

मारिष ! अनन्तर एक बाणसे उनके धनुप और दो बाणोंसे सारथीको काटकर, उस युद्ध-स्थलमें उनको तुरंत सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४६ ॥

अश्वान्मनोजवांश्चास्य कल्माषान्वीतकल्मषः ।
जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान्द्वादशभिः शरैः ॥ ४७ ॥

फिर उनके मनके समान शीघ्र गमन करनेवाले चित्रित घोडोंको उत्तम पानीमें बुझे हुए बारह बाणोंसे तुरंत मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ४७ ॥

अथापरेण भल्लेन सुयुक्तेन निपातिना ।
दुष्कर्णं समरे क्रुद्धो विव्याध हृदये भृशम् ॥ ४८ ॥

फिर लक्ष्यको शीघ्र गिरानेवाले एक अत्यन्त भयङ्कर भल्ल बाणसे क्रोधमें भरे हुए शतानीकने दुष्कर्णके हृदयमें विद्ध किया ॥ ४८ ॥

दुष्कर्णं निहतं दृष्ट्वा पञ्च राजन्महारथाः ।
जिघांसन्तः शतानीकं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ४९ ॥

हे महाराज ! दुष्कर्णको गिरते देखकर दुर्मुख, दुर्जय, दुर्मर्पण, शत्रुञ्जय और शत्रुसह– तुम्हारे इन पांचों महारथ पुत्रोंने शतानीकको मार डालनेकी इच्छासे उसे सब ओरसे घेर लिया ॥ ४९ ॥

छाद्यमानं शरव्रातैः शतानीकं यशस्विनम् ।
अभ्यधावन्त संरब्धाः केकयाः पञ्च सोदराः ॥ ५० ॥

और उसको अपने बाणोंसे छिपा दिया। केकयराज पांचों भाई यशस्वी शतानीकको बाणोंसे छिपा हुआ देखकर क्रुद्ध होकर शत्रुओंकी ओर दौडे ॥ ५० ॥

तानभ्यापततः प्रेक्ष्य तव पुत्रा महारथाः ।
प्रत्युद्ययुर्महाराज गजा इव महागजान् ॥ ५१ ॥

महाराज ! तुम्हारे महारथ पुत्रलोग उन्हें आते हुए देखके जैसे हाथी मतवारे हाथियोंकी ओर गमन करते हैं, वैसे ही उनके सम्मुख सामना करनेके लिये गये ॥ ५१ ॥

दुर्मुखो दुर्जयश्चैव तथा दुर्मर्षणो युवा ।
शत्रुंजयः शत्रुसहः सर्वे क्रुद्धा यशस्विनः ।
प्रत्युद्याता महाराज केकयान्भ्रातरः समम् ॥ ५२ ॥

महाराज ! दुर्मुख, दुर्जय, युवा वीर दुर्मर्षण, शत्रुञ्जय और शत्रुसह– ये सब यशस्वी वीर क्रोधित होकर केकयराज पांचों भाईओंका सामना करनेके लिए मिलकर आगे बढे ॥५२॥

रथैर्नगरसंकाशैर्हयैर्युक्तैर्मनोजवैः ।
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतैः ॥ ५३ ॥
वरचापधरा वीरा विचित्रकवचध्वजाः ।
विविशुस्ते परं सैन्यं सिंहा इव वनाद्वनम् ॥ ५४ ॥

नगरके समान रथपर चढके, नाना वर्णकी चित्रित पताकाओंसे शोभित होके, मन तथा वायुके समान वेगसे गमन करनेवाले घोडोंसे युक्त, सुंदर धनुषधारी, विचित्र कवच और ध्वजाओंसे युक्त वे दुर्मुख आदि यशस्वी पांचों भाई, केकयराज पांचों भाइयोंके सपीप जानेके निमित्त जैसे सिंह एक वनसे दूसरे वनके भीतर प्रवेश करता है वैसे ही शत्रुओंकी सेनामें जाकर प्रवेश किया ॥ ५३–५४ ॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
अवर्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम् ।
अन्योन्यागस्कृतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ५५ ॥

तब उन सब महारथी लोगोंका महाभयङ्कर तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ। रथी और गजपतियोंने क्रुद्ध होकर एक दूसरेके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करना आरम्भ किया। राजन् ! एक दूसरेपर प्रहार करनेवाले उन महारथीयोंका वह युद्ध यमलोककी वृद्धि करनेवाला था ॥५५॥

मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ।
रथिनः सादिनश्चैव व्यकीर्यन्त सहस्रशः ॥ ५६ ॥

सूर्यके अस्त होते समय मुहूर्त भरके बीचमें सहस्रों रथी और घुडसवार लोग भयंकर युद्ध करके रणभूमिमें एक दूसरेके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ५६ ॥

ततः शान्तनवः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ।
नाशयामास सेनां वै भीष्मस्तेषां महात्मनाम् ।
पाञ्चालानां च सैन्यानि शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ५७ ॥

इसके अनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्मने क्रोधित होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर उन महामना वीरोंकी सेनाका नाश किया; पाञ्चाल वीरोंकी सेनाको अपने बाणोंद्वारा यमलोक पहुंचा दिया ॥ ५७ ॥

एवं भित्त्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कृत्वावहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं नृप ॥ ५८ ॥

राजन् ! महाधनुर्धारी भीष्म इसी प्रकारसे पाण्डवोंकी सेनाको तितर बितर कर संहार करके सन्ध्याके समय अपनी सेनाको निवृत्त होनेकी आज्ञा देकर निज शिबिरमें गये ॥ ५८ ॥

धर्मराजोऽपि संप्रेक्ष्य धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय संहृष्टः शिबिरं ययौ ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ३१९० ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न और भीमसेनको देखकर उनका मस्तक सूंघ हर्षपूर्वक अपने शिबिरको जानेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ५९ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥ ३१९० ॥

: ७६ :

सञ्जय उवाच

अथ शूरा महाराज परस्परकृतागसः ।
जग्मुः स्वशिबिराण्येव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! रक्त पूरित शरीरसे आपसमें एक दूसरेको पराजित करके तथा एक दूसरेको मारकर दोनों सेनाके शूरवीर अपने अपने शिबिरोंमें गये ॥ १ ॥

विश्रम्य च यथान्यायं पूजयित्वा परस्परम् ।
संनद्धाः समदृश्यन्त भूयो युद्धचिकीर्षया ॥ २ ॥

वे सब लोग शिबिरमें विश्राम करके न्यायके अनुसार एक दूसरेका सत्कार कर फिर युद्धकी इच्छासे कवच पहरके तैयार हुए ॥ २ ॥

ततस्तव सुतो राजंश्चिन्तयाभिपरिप्लुतः ।
विस्रवच्छोणिताक्ताङ्गः पप्रच्छेदं पितामहम् ॥ ३ ॥

राजन् ! इसके अनन्तर रुधिर झरते हुए शरीरसे तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने चिन्ता करके पितामह भीष्मसे पूछा, कि ॥ ३ ॥

सैन्यानि रौद्राणि भयानकानि व्यूढानि सम्यग्बहुलध्वजानि ।
विदार्य हत्वा च निपीडय शूरास्ते पाण्डवानां त्वरिता रथौघाः ॥ ४ ॥

हे सत्य पराक्रमी पितामह ! पाण्डवोंकी ओरके महारथ शूरवीर शीघ्रताके सहित हमारी बहुतसी ध्वजा पताकाओंसे युक्त व्यूहबद्ध महाघोर सेनाको भेदकर, अनेक वीरोंको युद्धमें मारकर और पीडित करके चले जाते हैं ॥ ४ ॥

संमोह्य सर्वान्युधि कीर्तिमन्तो व्यूहं च तं मकरं वज्रकल्पम् ।
प्रविश्य भीमेन निबर्हितोऽस्मि घोरैः शरैर्मृत्युदण्डप्रकाशैः ॥ ५ ॥

उन्होंने हमारी सेनाको मोहित करके बहुत ही कीर्ति प्राप्त की है । भीमसेनने वज्रके समान वैसे कठिन मकर व्यूहमें प्रवेश करके यमदण्डके समान भयानक बाणोंसे मुझे युद्धमें क्षत-विक्षत किया है ॥ ५ ॥

क्रुद्धं तमुद्वीक्ष्य भयेन राजन्संमूर्छितो नालभं शान्तिमद्य ।
इच्छे प्रसादात्तव सत्यसंध प्राप्तुं जयं पाण्डवेयांश्च हन्तुम् ॥ ६ ॥

राजन् ! उसको क्रुद्ध देखकर मैं भयसे मूर्छित हो रहा हूं; आज अबतक भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है । सत्य प्रतिज्ञ पितामह ! जो हो; इस समय मैं तुम्हारे प्रसादसे पाण्डवोंका नाश करके जयकी अभिलाषा करता हूं ॥ ६ ॥

तेनैवमुक्तः प्रहसन्महात्मा दुर्योधनं जातमन्युं विदित्वा ।
तं प्रत्युवाचाविमना मनस्वी गङ्गासुतः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ७ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ मनस्वी महात्मा गङ्गापुत्र भीष्म दुर्योधनकी ऐसी बात सुन और उनको क्रोधमें भरा हुआ दुःखित देखकर स्थिर चित्तसे हंसते हुए बोले ॥ ७ ॥

परेण यत्नेन विगाह्य सेनां सर्वात्मनाहं तव राजपुत्र ।
इच्छामि दातुं विजयं सुखं च न चात्मानं छादयेऽहं त्वदर्थे ॥ ८ ॥

हे राजपुत्र ! मैं सब प्रकारसे यत्न पूर्वक पूरी शक्तिसे पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके उस सेनाका नाश करके तुम्हारे विजय और सुखके निमित्त इच्छा करता हूं । तुम्हारे वास्ते मैं अपने पराक्रमको छिपा नहीं रखता ॥ ८ ॥

एते तु रौद्रा बहवो महारथा यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः ।
ये पाण्डवानां समरे सहाया जितक्लमाः क्रोधविषं वमन्ति ॥ ९ ॥

परन्तु जो लोग पाण्डवोंके सहायक हुए हैं, वे सब भी बहुतसे महारथी और भयानक वीर योद्धा हैं । वे सब यशस्वी, शस्त्रोंको जाननेवाले और शूरवीर हैं । वे सब थकावटको जीत कर मानो युद्धमें क्रोध रूपी विष उगलते हैं, और संग्राममें शान्त नहीं होते ॥ ९ ॥

ते नेह शक्याः सहसा विजेतुं वीर्योन्नद्धाः कृतवैरास्त्वया च ।
अहं ह्येतान्प्रतियोत्स्यामि राजन्सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर ॥ १० ॥
विशेष करके वे लोग बल और पराक्रमसे बहुत बढे हुए हैं, और तुमने उन लोगोंके सङ्ग शत्रुता की है; इससे वे सब लोग सहसा पराजित होनेके योग्य नहीं हैं। राजन् ! वीर ! जो हो, मैं अपने प्राणकी आशाको छोडकर सब प्रकारसे उन लोगोंके सङ्ग युद्ध करूंगा ॥ १० ॥

रणे तवार्थाय महानुभाव न जीवितं रक्ष्यतमं ममाद्य ।
सर्वांस्तवार्थाय सदेवदैत्याल्लँोकान्दहेयं किमु शत्रूंस्तवेह ॥ ११ ॥
हे महानुभाव ! आज मैं तुम्हारे कार्यसिद्धिके निमित्त युद्धमें अपने प्राणकी रक्षा भी अत्यन्त आवश्यक नहीं मानता हूं। मैं तुम्हारे निमित्त तुम्हारे यहांके शत्रुओंकी सेनाकी तो क्या बात है, देवता और दानवोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर सकता हूं ॥ ११ ॥

तत्पाण्डवान्योधयिष्यामि राजन्प्रियं च ते सर्वमहं करिष्ये ।
श्रुत्वैव चैतत्परमप्रतीतो दुर्योधनः प्रीतमना बभूव ॥ १२ ॥
राजन् ! आज मैं उन पाण्डवोंके संग युद्ध करके तुम्हारा सब प्रियकार्य करूंगा। उस समय दुर्योधन पितामह भीष्मकी यह बात सुनकर शान्तचित्तसे बहुतही प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

सर्वाणि सैन्यानि ततः प्रहृष्टो निर्गच्छतेत्याह नृपांश्च सर्वान् ।
तदाज्ञया तानि विनिर्ययुर्द्रुतं रथाश्वपादातगजायुतानि ॥ १३ ॥
तब हर्षित होकर दुर्योधन सब राजाओं और सारी सेनाके वीरोंसे बोले, कि तुम लोग युद्धके निमित्त गमन करो। रथ, घोडे पैदल वीरोंसे युक्त, हाथी और सेनाके सब पुरुष उनकी आज्ञा सुनते ही युद्ध करनेके निमित्त शीघ्र ही तैयार होकर शिबिरसे निकले ॥ १३ ॥

प्रहर्षयुक्तानि तु तानि राजन्महान्ति नानाविधशस्त्रवन्ति ।
स्थितानि नागाश्वपदातिमन्ति विरेजुराजौ तव राजन्बलानि ॥ १४ ॥
राजन् ! नाना भांतिके अस्त्र-शस्त्रोंके सहित वह महा सेनाका दल अत्यन्त हर्ष और उत्साह-पूर्वक युद्धभूमिमें आकर विराजमान हुआ। हाथी, घोडे और पैदलोंसे युक्त हो रणभूमिमें खडी हुई उन सेनाओंकी बडी शोभा होती थी ॥ १४ ॥

वृन्दैः स्थिताश्चापि सुसंप्रयुक्ताश्चकाशिरे दन्तिगणाः समन्तात् ।
शस्त्रास्त्रविद्भिर्नरदेव योधैरधिष्ठिताः सैन्यगणास्त्वदीयाः । ॥ १५ ॥
चारों ओर दन्तार हाथी झुंडके झुंड खडे हुए शोभा पा रहे थे। उनका संचालन सुंदर हो रहा था। आपकी सेनाओंके सेनापति अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता और युद्धविद्याके जाननेवाले नरदेव-राजा योद्धा थे ॥ १५ ॥

रथैश्च पादातगजाश्वसङ्घैः प्रयाद्भिराजौ विधिवत्प्रणुन्नैः ।
समुद्धतं वै तरुणार्कवर्णं रजो बभौ छादयत्सूर्यरश्मीन् ॥ १६ ॥

यथाविधिसे अनुशासित हो रथ, घोडे, पैदल वीरोंके और हाथीओंके समुदाय जब युद्धभूमिमें जाने लगे तब उनके पैरोंसे उठी हुई धूल सूर्यकी किरणोंको आच्छादित करके प्रातःकालीन सूर्यकी प्रभाके समान प्रकाशित होने लगी ॥ १६ ॥

रेजुः पताका रथदन्तिसंस्था वातेरिता भ्राम्यमाणाः समन्तात् ।
नानारङ्गाः समरे तत्र राजन्मेघैर्युक्ता विद्युतः खे यथैव ॥ १७ ॥

जैसे आकाशमें बादलोंके बीच बिजली प्रकाशित होती है, वैसे ही रथ और हाथियोंपर स्थित नाना भांतिकी पताकाएं चारों ओर वायुकी लहरोंसे फहराती हुई युद्धभूमिमें बडी शोभा पा रही थीं ॥ १७ ॥

धनूंषि विस्फारयतां नृपाणां बभूव शब्दस्तुमुलोऽतिघोरः ।
विमथ्यतो देवमहासुरौघैर्यथार्णवस्यादियुगे तदानीम् ॥ १८ ॥

जैसे सत्ययुगमें देवता और असुरोंके समूहद्वारा मथनेपर समुद्रमें महा घोर शब्द हुआ था, वैसे ही राजाओंके धनुष्टंकारका अत्यन्त भयानक शब्द घोर होने लगा ॥ १८ ॥

तदुग्रनादं बहुरूपवर्णं तवात्मजानां समुदीर्णमेवम् ।
बभूव सैन्यं रिपुसैन्यहन्तृ युगान्तमेघौघनिभं तदानीम् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ॥ ३२०९ ॥

शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाली, भयानक हाथीयोंसे युक्त, अनेक वर्ण और रूपसे युक्त शीघ्रतासे आगे बढनेवाली तुम्हारे पुत्रोंकी महा सेना उस समय प्रलयकालके बादलोंके समान दिखाई देने लगी ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ ३२०९ ॥

: ७७ :

सञ्जय उवाच

अथात्मजं तव पुनर्गाङ्गेयो ध्यानमास्थितम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठः संप्रहर्षकरं वचः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे भारत ! भरतश्रेष्ठ गङ्गापुत्र भीष्म तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको चिन्तायुक्त देखकर फिर उनको हर्षित करनेके निमित्त यह वचन बोले ॥ १ ॥

अहं द्रोणश्च शल्यश्च कृतवर्मा च सात्वतः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ सैन्धवः ॥ २ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिकः सह बाह्लिकैः ।
त्रिगर्तराजश्च बली मागधश्च सुदुर्जयः ॥ ३ ॥
बृहद्बलश्च कौसल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
रथाश्च बहुसाहस्राः शोभमाना महाध्वजाः ॥ ४ ॥
देशजाश्च हया राजन्स्वारूढा हयसादिभिः ।
गजेन्द्राश्च मदोद्वृत्ताः प्रभिन्नकरटामुखाः ॥ ५ ॥
पादाताश्च तथा शूरा नानाप्रहरणायुधाः ।
नानादेशसमुत्पन्नास्त्वदर्थे योद्धुमुद्यताः ॥ ६ ॥

मैं, द्रोणाचार्य, शल्य, सात्वत कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, सुबलपुत्र शकुनि, अवन्तिदेशीय राजा विन्द और अनुविन्द, सम्पूर्ण बाह्लिक वीरोंके सहित बाह्लिकराज, बलवान् त्रिगर्त्तराज, पराक्रमी दुर्जय मगधराज, बृहद्बल, कोशलाधिपति, चित्रसेन, विविंशति, सब शोभाओंसे युक्त विशाल ध्वज और कई हजार रथ तथा महा बलवान् अश्वोंपर चढनेवाले सब योद्धा, मतवारे मदसे चूते हुए बडे बडे अनेक हाथी तथा नाना देशीय अनेक शस्त्रोंके जाननेवाले शूरवीर पैदल चलनेवाले सब योद्धा लोग और हम सब लोग तुम्हारे निमित्त युद्ध करनेको उद्यत हैं ॥ २–६ ॥

एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः ।
देवानपि रणे जेतुं समर्था इति मे मतिः ॥ ७ ॥

ये तथा और दूसरे बहुतसे योद्धा लोग भी तुम्हारे वास्ते प्राणकी आशा छोडके युद्धके निमित्त खडे हैं; मेरे मतसे ये सब मिलकर युद्धमें देवताओंको भी जीतनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥

अवश्यं तु मया राजंस्तव वाच्यं हितं सदा ।
अशक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ।
वासुदेवसहायाश्च महेन्द्रसमविक्रमाः ॥ ८ ॥

राजन् ! परन्तु तुमसे सदा अत्यन्त हितकारी बात मुझे अवश्य कहनी चाहिये, इसलिये यह वचन कहता हूं, कि देवराज इन्द्रके समान वे पाण्डव पराक्रमी हैं और साक्षात् भगवान् श्री कृष्णकी सहायतासे युक्त हैं, इसलिये पाण्डवोंको सब देवताओंके सहित इन्द्र भी युद्धमें नहीं जीत सकते ॥ ८ ॥

सर्वथाहं तु राजेन्द्र करिष्ये वचनं तव ।
पाण्डवानां रणे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! जो हो, मैं सब प्रकारसे तुम्हारे वचनको पालन करूंगा । या तो हम लोग पाण्डवोंको युद्धमें जीतेंगे अथवा वे लोग हम लोगोंको ही जीतेंगे ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा ददौ चास्मै विशल्यकरणीं शुभाम् ।
ओषधीं वीर्यसंपन्नां विशल्यश्चाभवत्तदा ॥ १० ॥

शान्तनुपुत्र भीष्मने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर बलको बढानेवाली, तथा शस्त्रोंकी पीडा दूर करनेवाली विशल्यकरणी नामक उत्तम औषधि उन्हे प्रदान की; दुर्योधन उस औषधिको सेवन करके उसके प्रभावसे उसी समय अस्त्रोंकी चोटसे उत्पन्न हुई सब पीडासे रहित हो गये ॥ १० ॥

ततः प्रभाते विमले स्वेनानीकेन वीर्यवान् ।
अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः ॥ ११ ॥

हे भारत ! तदनंतर निर्मल सवेरा होते ही व्यूह रचना जाननेवाले महा पराक्रमी भीष्मने अपनी सेनाके द्वारा स्वयं ही एक व्यूहका निर्माण किया ॥ ११ ॥

मण्डलं मनुजश्रेष्ठ नानाशस्त्रसमाकुलम् ।
संपूर्णं योधमुख्यैश्च तथा दन्तिपदातिभिः ॥ १२ ॥

मनुजश्रेष्ठ ! मण्डल नामक यह व्यूह नाना प्रकारसे अस्त्रशस्त्रोंसे पूर्ण था । वैसे ही हाथी और पैदल आदि मुख्य मुख्य वीर योद्धाओंसे भरा हुआ था ॥ १२ ॥

रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्परिवारितम् ।
अश्ववृन्दैर्महद्भिश्च ऋष्टितोमरधारिभिः ॥ १३ ॥

कई सहस्रों रथोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया था । ऋष्टि और तोमर धारण करनेवाले घुडसवारोंके बडे समुदायोंसे वह व्यूह भरा था ॥ १३ ॥

नागे नागे रथाः सप्त सप्त चाश्वा रथे रथे ।
अन्वश्वं दश धानुष्का धानुष्के सप्त चर्मिणः ॥ १४ ॥

प्रत्येक हाथीके समीप सात सात रथी, हरएक रथीके निकट सात सात घुडसवार और प्रति घुडसवारोंके पास दस दस धनुषधारी और प्रति धनुषधारी योद्धाके पास सात--सात ढाल तलवार ग्रहण करनेवाले योद्धा पुरुष स्थित हुए ॥ १४ ॥

एवंव्यूहं महाराज तव सैन्यं महारथैः ।
स्थितं रणाय महते भीष्मेण युधि पालितम् ॥ १५ ॥

महाराज ! इसी प्रकारसे सब महारथोंके सहित तुम्हारी व्यूह बद्ध सेनाकी जो महायुद्धके लिये खडी थी, उसकी युद्धस्थलमें महात्मा भीष्म रक्षा करने लगे ॥ १५ ॥

×

दशाश्वानां सहस्राणि दन्तिनां च तथैव च ।
रथानामयुतं चापि पुत्राश्च तव दंशिनाः ।
चित्रसेनादयः शूरा अभ्यरक्षन्पितामहम् ॥ १६ ॥

दस हजार घुडसवार, दस हजार गजपति, दस हजार रथी और तुम्हारे चित्रसेन आदि शूर वीर पुत्र कवच धारण करके पितामह भीष्मकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥

रक्ष्यमाणश्च तैः शूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
संनद्धाः समदृश्यन्त राजानश्च महाबलाः ॥ १७ ॥

वे सब शूरवीर भीष्मकी रक्षा करने लगे, और वे सब महाबली योद्धा लोग व्यूहबद्ध होकर भीष्मसे रक्षित दिखाई देने लगे । बहुतसे महाबलवान् राजाओं कवच बांधकर युद्धके लिये तैय्यार दिखाई देते थे ॥ १७ ॥

दुर्योधनस्तु समरे दंशितो रथमास्थितः ।
व्यभ्राजत श्रिया जुष्टो यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ १८ ॥

शोभायमान् तेजस्वी राजा दुर्योधन भी युद्धस्थलमें वर्म धारण करके रथपर आरूढ होकर, देवराज इन्द्र स्वर्गमें अपनी दिव्य प्रभासे जैसे प्रकाशित होते हैं, वैसे ही शोभित होने लगे ॥ १८ ॥

ततः शब्दो महानासीत्पुत्राणां तव भारत ।
रथघोषश्च तुमुलो वादित्राणां च निस्वनः ॥ १९ ॥

भारत ! इसके अनन्तर रथोंके चलनेका तुमुल शब्द, जुझाऊ बाजे और तुम्हारे पुत्रोंका महान् सिंहनाद सुनाई देने लगा ॥ १९ ॥

भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूढः प्रत्यङ्मुखो युधि ।
मण्डलः सुमहाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातिनाम् ।
सर्वतः शुशुभे राजन्रणेऽरीणां दुरासदः ॥ २० ॥

शत्रुओंसे न भेदने योग्य युद्धस्थलमें कौरव सैनिकोंका भीष्मने बनाया हुआ बहुत ही बडा वह शत्रुनाशक मण्डल नामक व्यूह पश्चिमाभिमुख था । हे राजन् ! शत्रुओंसे अभेद्य वह मण्डल व्यूह उस समरभूमिमें सब ओरसे अत्यन्त ही शोभित होने लगा ॥ २० ॥

मण्डलं तु समालोक्य व्यूहं परमदारुणम् ।
स्वयं युधिष्ठिरो राजा व्यूहं वज्रमथाकरोत् ॥ २१ ॥

राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंके महादारुण तथा अभेद्य मण्डल व्यूहको देखकर स्वयं अपनी सेनाके लिये वज्रव्यूहकी रचना की ॥ २१ ॥

तथा व्यूढेष्वनीकेषु यथास्थानमवस्थिताः ।
रथिनः सादिनश्चैव सिंहनादमथानदन् ॥ २२ ॥

इस प्रकार सेनाओंकी व्यूहरचना हो जानेपर रथी, घुडसवार और सेनाके सब शूर वीर योद्धा यथारीति स्थानोंपर स्थित होके सिंहनाद करने लगे ॥ २२ ॥

बिभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणः ।
इतरेतरतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः ॥ २३ ॥

सेनाके रणभूमिमें उपस्थित होने पर दोनों ओरके शस्त्रधारी योद्धा आपसमें युद्धकी अभिलाषा करते हुए एक दूसरेके व्यूहको भेद करनेकी इच्छासे आगे बढने लगे ॥ २३ ॥

भारद्वाजो ययौ मत्स्यं द्रौणिश्चापि शिखण्डिनम् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ २४ ॥

भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने विराटपर और अश्वत्थामाने शिखण्डीपर धावा किया । स्वयं राजा दुर्योधनने धृष्टद्युम्नपर चढाई की ॥ २४ ॥

नकुलः सहदेवश्च राजन्मद्रेशमीयतुः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ ॥ २५ ॥

राजन् ! नकुल और सहदेवने मद्रराज शल्यपर धावा किया । अवन्ति देशके राजा विन्द और अनुविन्दने इरावानूपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

सर्वे नृपास्तु समरे धनंजयमयोधयन् ।
भीमसेनो रणे यत्तो हार्दिक्यं समवारयत् ॥ २६ ॥

और सब दूसरे राजाओंने समरभूमिमें अर्जुनके साथ युद्ध किया, भीमसेनने युद्धमें प्रयत्न-पूर्वक हार्दिक्यको आगे बढनेसे रोका ॥ २६ ॥

चित्रसेनं विकर्णं च तथा दुर्मर्षणं विभो ।
आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत् ॥ २७ ॥

और राजन् ! अर्जुनकुमार अभिमन्यु चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण तुम्हारे इन तीनों पुत्रोंके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त उनकी ओर युद्धभूमिमें वेगसे आया ॥ २७ ॥

प्राग्ज्योतिषं महेष्वासं हैडिम्बो राक्षसोत्तमः ।
अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २८ ॥

हिडिम्बापुत्र राक्षसोंमें श्रेष्ठ घटोत्कच प्राग्ज्योतिषपुरके राजा महाधनुर्धर भगदत्तके संमुख इस प्रकारसे चला, जैसे एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीकी ओर जाता है ॥ २८ ॥

अलम्बुसस्ततो राजन्सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
सतैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समभिद्रवत् ॥ २९ ॥

राजन् ! अनन्तर राक्षस अलम्बुस क्रुद्ध होकर युद्धमें युद्ध दुर्मद होकर लडनेवाले सेनाके सहित पराक्रमी सात्यकिकी ओर दौडा ॥ २९ ॥

भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत् ।
श्रुतायुषं तु राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥

भूरिश्रवा समरमें यत्नवान् होके धृष्टकेतुसे और धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर श्रुतायुसे युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

चेकितानस्तु समरे कृपमेवान्वयोधयत् ।
शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम् ॥ ३१ ॥

और युद्धभूमिमें चेकितान कृपाचार्यसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए । बाकी सब वीर योद्धाओंने महारथी भीष्मपर प्रयत्नपूर्वक आक्रमण किया ॥ ३१ ॥

ततो राजसहस्राणि परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।
शक्तितोमरनाराचगदापरिघपाणयः ॥ ३२ ॥

इसके अनन्तर सहस्र राजाओंने शक्ति, तोमर, त्रिशूल, नाराच बाण, परिघ, धनुष और गदा धारण करके कुन्तीपुत्र अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३२ ॥

अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ।
पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥ ३३ ॥

तब अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होके भगवान् श्री कृष्णसे इस प्रकार बोले, हे कृष्ण ! यह देखो, व्यूहरचना जाननेवाले महात्मा गङ्गापुत्र भीष्मने युद्ध स्थलमें दुर्योधनसेनाके इस दृढ व्यूहको रचा है ॥ ३३ ॥

युद्धाभिकामाञ्शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् ।
त्रिगर्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव ॥ ३४ ॥

माधव ! देखो, पराक्रमसे युक्त राजा लोग कवच धारण करके मेरे सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित हुए हैं । हे केशव ! भाईयोंके सहित आये हुए त्रिगर्त राजको देखो ॥ ३४ ॥

अद्यैतान्पातयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन ।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥ ३५ ॥

हे जनार्दन ! यदुश्रेष्ठ ! इस रणभूमिमें मेरे सङ्ग युद्धकी अभिलाषा करके जो लोग यहांपर आये हैं, आज तुम्हारे देखते ही देखते मैं उन सबका संहार करूंगा ॥ ३५ ॥

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान्प्रति ॥ ३६ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुनने कृष्णसे ऐसा वचन कहकर अपने धनुषपर रोदा चढाया; और उन सब राजाओंके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाने लगे ॥ ३६ ॥

तेऽपि तं परमेष्वासाः शरवर्षैरपूरयन् ।
तडागमिव धाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥ ३७ ॥

जैसे वर्षाके समयमें बादल तालाओंको जलसे पूर्ण कर देता है, वैसे ही उन सब राजाओंने भी अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनको पूरित कर दिया ॥ ३७ ॥

हाहाकारो महानासीत्तव सैन्ये विशां पते ।
छाद्यमानौ भृशं कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे ॥ ३८ ॥

हे महाराज ! उस महायुद्धमें कृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे छिपे हुए देखकर तुम्हारी सेनाके बीच अत्यन्त ही जोरसे हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ३८ ॥

देवा देवर्षयश्चैव गन्धर्वाश्च महोरगाः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा कृष्णौ तथागतौ ॥ ३९ ॥

देवता, देव ऋषि, गन्धर्व और नाग आदि कृष्ण और अर्जुनको इस प्रकारसे देखकर अत्यन्त ही विस्मित हुए ॥ ३९ ॥

ततः क्रुद्धोऽर्जुनो राजन्नैन्द्रमस्त्रमुदीरयत् ।
तत्राद्भुतमपश्याम विजयस्य पराक्रमम् ॥ ४० ॥

राजन् ! तब अर्जुनने क्रुद्ध होकर ऐन्द्र अस्त्र चलाया, इस अवसरपर मैंने अर्जुनका यह अद्भुत पराक्रम देखा ॥ ४० ॥

शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यदवारयत् ।
न च तत्राप्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद्विशां पते ॥ ४१ ॥

उन्होंने सब शत्रु राजाओंकी वैसी बाणोंकी वर्षाका भी अपने बाणसमूहोंसे निवारण किया । महाराज ! तब उस सेनामें उनके बाणोंसे विद्ध हुए के विना कोई भी योद्धा शेष न रहा ॥ ४१ ॥

तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा ।
द्वाभ्यां त्रिभिः शरैश्चान्यान्पार्थो विव्याध मारिष ॥ ४२ ॥

मारिष ! कुन्तीकुमार अर्जुनने घोडे, हाथी, सहस्र सहस्र राजाओं तथा प्रत्येक योद्धाओंको दो दो तथा तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४२ ॥

ते हन्यमानाः पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः ।
अगाधे मज्जमानानां भीष्मस्त्राताभवत्तदा ॥ ४३ ॥

वे सब अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके शान्तनुनन्दन भीष्मके समीप उनकी शरणमें चले गये। तब अथाह जलमें डूबते हुए मनुष्योंको बचानेके निमित्त नौकाके समान भीष्म ही उन सबको अर्जुनके बाणोंसे बचानेवाले हुए ॥ ४३ ॥

आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम् ।
संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ३२५३ ॥

हे महाराज! जैसे वायुके प्रबल वेगसे समुद्रका जल बहुत दूर तक उठता है, वैसे ही पाण्डवोंके आक्रमण करनेपर तुम्हारी सब सेनाका व्यूह भङ्ग हो गया और वह अर्जुनके संमुखसे भागकर महापराक्रमी भीष्मकी सेनामें वेगसे पहुंचकर वहांपर स्थित हुई ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ ३२५३ ॥

: ७८ :

सञ्जय उवाच

तथा प्रवृत्ते संग्रामे निवृत्ते च सुशर्मणि ।
प्रभग्नेषु च वीरेषु पाण्डवेन महात्मना ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र! इस भांतिके युद्धके समयमें महात्मा अर्जुनसे पराजित हो सुशर्मा युद्धसे निवृत्त हुए, और सब वीर योद्धा महात्मा अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर भागकर जब भीष्मके समीप आये ॥ १ ॥

क्षुभ्यमाणे बले तूर्णं सागरप्रतिमे तव ।
प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ॥ २ ॥

तब अपनी समुद्रके समान अपार सेनामें तुरंतही हलचल मच गयी। उस समय गंगापुत्र भीष्मने अर्जुनके ऊपर युद्धके निमित्त शीघ्रतापूर्वक आक्रमण किया ॥ २ ॥

दृष्ट्वा दुर्योधनो राजन्रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वांस्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३ ॥

राजन्! तब राजा दुर्योधनने रणभूमिमें अर्जुनका पराक्रम देखकर शीघ्रताके सहित सब राजाओंके समीप जाकर उन सब राजाओंसे कहा ॥ ३ ॥

तेषां च प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महाबलम् ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्वचः ॥ ४ ॥

उन सब वीरोंके संमुख सम्पूर्ण सेनाके बीचमें शूरवीर महाबलवान् सुशर्माको अत्यंत हर्षित करनेवाला वचन बोले ॥ ४ ॥

एष भीष्मः शांतनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् ।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५ ॥

यह कौरवोंमें श्रेष्ठ शान्तनुपुत्र भीष्म अपने प्राणकी आशा छोडकर सब प्रयत्नके सहित अर्जुनके संग युद्ध करनेके अभिलाषी हुए हैं ॥ ५ ॥

तं प्रयान्तं परानीकं सर्वसैन्येन भारतम् ।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् ॥ ६ ॥

तुम सब लोग सम्पूर्ण सेनाके सहित शत्रुओंसे युद्ध करनेवाले पितामह भरतनन्दन भीष्मकी सब प्रकारसे यत्नपूर्वक रक्षा करो ॥ ६ ॥

बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः ।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम् ॥ ७ ॥

महाराज ! सब राजाओंकी सेना दुर्योधनकी आज्ञाको सुनते ही 'बहुत अच्छा' कहकर पितामह भीष्मकी रक्षा करनेके लिये उनके पास गयी ॥ ७ ॥

ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शांतनवोऽर्जुनम् ।
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलम् ॥ ८ ॥

अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म रणभूमिमें सहसा अर्जुनके निकट गये । भरतवंशी महाबली भीष्मको आते देखकर अर्जुन उनके सामने गये ॥ ८ ॥

महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनाति विराजत ॥ ९ ॥

अत्यन्त सफेद बडे घोडोंसे युक्त भयानक वानरसे उपलक्षित रथकी ध्वजासे शोभित, महाघोर बादलके समान गम्भीर गर्जनसे युक्त रथ और शङ्खके शब्दसे पूर्ण अत्यन्त प्रकाशमान रथपर आते हुए अर्जुनको देखकर भीष्म उनके निकट गये ॥ ९ ॥

समरे सर्वसैन्यानामुपयातं धनञ्जयम् ।
अभवत्तुमुलो नादो भयाद्दृष्ट्वा किरीटिनम् ॥ १० ॥

किरीटधारी अर्जुनको इस प्रकारसे निकट आया हुआ देखकर सम्पूर्ण सेना भयसे व्याकुल हो तुमुल शब्द करने लगी ॥ १० ॥

अभीशुहस्तं कृष्णं च दृष्ट्वादित्यमिवापरम् ।
मध्यंदिनगतं संख्ये न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ११ ॥

मध्यान्ह समयके दूसरे सूर्यके समान घोडोंकी बागडोर ग्रहण करनेवाले तेजस्वी श्रीकृष्णको युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर उनकी ओर कोई भी योद्धा देखनेमें समर्थ न हुआ ॥ ११ ॥

तथा शांतनवं भीष्मं श्वेताश्वं श्वेतकार्मुकम् ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं श्वेतग्रहमिवोदितम् ॥ १२ ॥

और पाण्डवोंकी ओरके वीर भी श्वेत धनुप तथा सफेद घोडोंके रथपर चढे हुए महाबलवान् शान्तनुनन्दन भीष्मको आकाशमें उदय हुए श्वेतग्रहके समान देखकर कोई भी उनकी ओर न ताक सका ॥ १२ ॥

स सर्वतः परिवृतस्त्रिगर्तैः सुमहात्मभिः ।
भ्रातृभिस्तव पुत्रैश्च तथान्यैश्च महारथैः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण त्रिगर्त्त देशीय महामना वीर योद्धाओंनें अपने भाइयों, तुम्हारे पुत्रों और दूसरे बहुतसे महारथियोंके साथ उपस्थित होकर भीष्मको सब ओरसे घेर लिया था ॥ १३ ॥

भारद्वाजस्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा ।
ध्वजं चास्य शरेणाजौ धनुश्चैकेन चिच्छिदे ॥ १४ ॥

इधर भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे मत्स्यराज विराटको युद्धमें विद्ध किया और एक एक बाणसे उनके धनुप और रथकी ध्वजा काट दी ॥ १४ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनीपतिः ।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढम् ।
शरांश्चाशीविषाकाराञ्ज्वलितान्पन्नगानिव ॥ १५ ॥

सेनापति विराटने कटा धनुष त्यागके वेगपूर्वक एक दूसरा दृढ धनुप जो भार सहन करनेमें समर्थ था– लेकर, प्रज्वलित सर्पके समान विषैले नागोंकीसी आकृतिवाले, ॥ १५ ॥

द्रोणं त्रिभिः प्रविव्याध चतुर्भिश्चास्य वाजिनः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य पञ्चभिः ।
धनुरेकेषुणाविध्यत्तत्राक्रुध्यद्द्विजर्षभः ॥ १६ ॥

तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यके ऊपर प्रहार किया । फिर चार बाणोंसे उनके चारों घोडे, एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा, पांच बाणोंसे सारथी और एक बाणसे उनका धनुष विद्ध किया । तब ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य बहुत क्रुद्ध हुए ॥ १६ ॥

तस्य द्रोणोऽवधीदश्वाञ्शरैः संनतपर्वभिः ।
अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा ॥ १७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अपने आठ तीक्ष्ण बाणोंसे विराटके रथके घोडोंका और एक बाणसे उनके सारथीका वध किया ॥ १७ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं शङ्खस्य रथिनां वरः ॥ १८ ॥

रथियोंमें मुख्य विराट घोडे और सारथीके मारे जानेपर निज रथसे तुरन्त कूदके अपने पुत्र शंखके रथपर जा चढे ॥ १८ ॥

ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ ।
महता शरवर्षेण वारयामासतुर्बलात् ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर वे पितापुत्र एक ही रथपर स्थित होके बहुतसे बाणोंको वर्षाकर द्रोणाचार्यका बलपूर्वक निवारण करने लगे ॥ १९ ॥

भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम् ।
चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वर ॥ २०॥

जनेश्वर ! तब द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर समरभूमिमें विषधर सर्पके समान एक भयंकर बाण विराट–पुत्र शङ्खके ऊपर शीघ्र ही चलाया ॥ २० ॥

स तस्य हृदयं भित्त्वा पीत्वा शोणितमाहवे ।
जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रीकृतच्छविः ॥ २१ ॥

वह बाण शङ्खके हृदयका भेद करके युद्धमें उसका रुधिर पीता हुआ रक्तसे भींगके लाल हुआ पृथ्वीमें गिरा ॥ २१ ॥

स पपात रथात्तूर्णं भारद्वाजशराहतः ।
धनुस्त्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्यके बाणोंसे घायल होकर शंख, धनुष्य और बाणोंको त्यागकर पिताके निकटहीमें तुरंत ही रथसे गिर पडे ॥ २२ ॥

हतं स्वमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद्भयात् ।
उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवान्तकम् । ॥ २३ ॥

राजा विराट अपने पुत्र शङ्खको मारा हुआ देखकर भयभीत होके मुख पसारे कालके समान द्रोणाचार्यको रणभूमिमें छोडकर भाग गये ॥ २३ ॥

×

भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम् ।
दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित पाण्डवोंकी विशाल सेनाको विदीर्ण करने लगे । सैकडों तथा सहस्रों वीर युद्धमें मारे गये ॥ २४ ॥

शिखण्ड्यपि महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैस्त्रिभिराशुगैः ॥ २५ ॥

महाराज ! शिखण्डीने युद्धमें अश्वत्थामाके निकट जाकर शीघ्रगामी तीन नाराच बाणोंसे उनके भौंहके बीचका स्थान अर्थात् ललाट विद्ध किया ॥ २५ ॥

स बभौ नरशार्दूलो ललाटे संस्थितैस्त्रिभिः ।
शिखरैः काञ्चनमयैर्मेरुस्त्रिभिरिवोच्छ्रितैः ॥ २६ ॥

उन तीन बाणोंसे ललाटमें विद्ध होनेपर, सुवर्णमय तीन शिखरोंसे युक्त मेरु पर्वतकी भांति नरवीर अश्वत्थामा शोभा पाने लगा ॥ २६ ॥

अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो निमेषार्धाच्छिखण्डिनः ।
सूतं ध्वजमथो राजंस्तुरगानायुधं तथा ।
शरैर्बहुभिरुद्दिश्य पातयामास संयुगे ॥ २७ ॥

राजन् ! तब अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर आधे निमेष भरमें बहुतसे बाणोंद्वारा लक्ष्य करके शिखण्डीके रथके घोडों और सारथीको मारकर उनके रथकी ध्वजा और उनका धनुष रण-भूमिमें काट डाला ॥ २७ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य रथाद्वै रथिनां वरः ।
खड्गमादाय निशितं विमलं च शरावरम् ।
श्येनवद्व्यचरत्क्रुद्धः शिखण्डी शत्रुतापनः ॥ २८ ॥

घोडोंके मारेजानेपर शत्रुनाशन रथियोंमें मुख्य शिखण्डी क्रुद्ध होकर उत्तम शाणित चमकीली तलवार और ढाल ग्रहण करके रथसे कूदके बाज पक्षीकी भांति रणभूमिमें सब ओर भ्रमण करने लगे ॥ २८ ॥

सखड्गस्य महाराज चरतस्तस्य संयुगे ।
नान्तरं ददृशे द्रौणिस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥

हे राजन् ! तलवार ग्रहण करके युद्धभूमिमें घूमनेवाले शिखण्डीके अन्तरको द्रोणपुत्र अश्व-त्थामा नहीं देख सका; वह अद्भुत दृश्य दीख पडने लगा ॥ २९ ॥

ततः शरसहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ।
प्रेषयामास समरे द्रौणिः परमकोपनः ॥ ३० ॥

भरतर्षभ ! तब अश्वत्थामा अत्यन्यत क्रुद्ध होकर समरभूमिमें उनके ऊपर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३० ॥

तामापतन्तीं समरे शरवृष्टिं सुदारुणाम् ।
असिना तीक्ष्णधारेण चिच्छेद बलिनां वरः ॥ ३१ ॥

रथियोंमें मुख्य बलवानोंमें श्रेष्ठ शिखण्डी भी समरभूमिमें होनेवाली उस दारुण बाणवर्षाको अपने तीक्ष्ण धारवाले तलवारसे काटने लगे ॥ ३१ ॥

ततोऽस्य विमलं द्रौणिः शतचन्द्रं मनोरमम् ।
चर्माच्छिनदसिं चास्य खण्डयामास संयुगे ।
शितैः सुबहुशो राजंस्तं च विव्याध पत्रिभिः ॥ ३२ ॥

तब अश्वत्थामाने सौ चन्द्राकार चिन्होंसे सुशोभित शिखण्डीकी अत्यंत सुंदर ढाल और चमकीली तलवारको युद्धस्थलमें टूक टूक कर दिया । राजन् ! अपने बहुतसे तीक्ष्ण बाणोंसे शिखण्डीको भी विद्ध किया ॥ ३२ ॥

शिखण्डी तु ततः खड्गं खण्डितं तेन सायकैः ।
आविध्य व्यसृजत्तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥ ३३ ॥

शिखण्डीने अश्वत्थामाके बाणोंसे खण्डित उस आधे तलवारके टुकडेको जो उसके हाथमें था, घुमाकर तुरंतही अश्वत्थामाके ऊपर जलते हुए सर्पके समान चलाया ॥ ३३ ॥

तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम् ।
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शिखण्डिनं च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः ॥ ३४ ॥

अश्वत्थामाने प्रलयकालकी अग्निके समान प्रकाशमान खण्डित तलवारको सहसा संमुख आते हुए देखकर अपने हाथोंकी शीघ्रतासे बाण चलाकर उसे भी काटके गिरा दिया । और शिखण्डीको भी लोहमय अनेक बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३४ ॥

शिखण्डी तु भृशं राजंस्ताडयमानः शितैः शरैः ।
आरुरोह रथं तूर्णं माधवस्य महात्मनः ॥ ३५ ॥

राजन् ! तब शिखण्डी अश्वत्थामाके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यंत विद्ध होकर शीघ्रताके सहित वृष्णिवंशीय महात्मा सात्यकिके रथपर जा चढे ॥ ३५ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे ।
अलम्बुसं शरैर्घोरैर्विव्याध बलिनं बली ॥ ३६ ॥

हे भारत ! पराक्रमी बलवान् सात्यकिने क्रुद्ध होकर अत्यन्त क्रूर बलवान् राक्षस अलम्बुसको रणभूमिमें अपने घोर बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३६ ॥

राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद भारत ।
अर्धचन्द्रेण समरे तं च विव्याध सायकैः ।
मायां च राक्षसीं कृत्वा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३७ ॥

भारत ! तब राक्षसेन्द्र अलम्बुसने समरमें अर्धचन्द्र बाणसे सात्यकिके धनुषको काटकर, अपने बाणोंसे उन्हें विद्ध किया; फिर राक्षसी माया उत्पन्न करके बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपा दिया ॥ ३७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयस्य पराक्रमम् ।
नासंभ्रमद्यत्समरे वध्यमानः शितैः शरैः ॥ ३८ ॥

उस युद्धमें मैंने सात्यकिका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि वह समरभूमिमें अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध होकर भी युद्धसे विचलित नहीं हुए ॥ ३८ ॥

ऐन्द्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो योजयामास भारत ।
विजयाद्यदनुप्राप्तं माधवेन यशस्विना ॥ ३९ ॥

भारत ! वरन अर्जुनके निकट जो उन यशस्वी यदुकुलरत्न सात्यकिने ऐन्द्र अस्त्र प्राप्त किया था, उसे चलाया ॥ ३९ ॥

तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा मायां तां राक्षसीं तदा ।
अलम्बुसं शरैर्घोरैरभ्याकिरत सर्वशः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४० ॥

तब उस दिव्य ऐन्द्र अस्त्रसे उस राक्षसी मायाको तत्काल जला करके जैसे बादल वर्षाकालमें जलकी वर्षासे पर्वतको पूर्ण करते हैं, वैसे ही घोर बाणोंकी सब ओरसे वर्षा करके सात्यकिने अलम्बुसको छिपा दिया ॥ ४० ॥

तत्तथा पीडितं तेन माधवेन महात्मना ।
प्रदुद्राव भयाद्रक्षो हित्वा सात्यकिमाहवे ॥ ४१ ॥

वह राक्षस महात्मा मधुवंशी सात्यकिके बाणोंसे इस प्रकारसे पीडित होके डरकर रणभूमिमें उन्हें छोडकर भाग गया ॥ ४१ ॥

तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता अपि ।
शैनेयः प्राणदज्जित्वा योधानां तव पश्यताम् ॥ ४२ ॥

सात्यकिने इन्द्रसे भी युद्धमें अजेय उस राक्षसराजको तुम्हारी सेनाके योद्धाओंके संमुखहीमें पराजित करके सिंहनाद किया ॥ ४२ ॥

न्यहनत्तावकांश्चापि सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
निशितैर्बहुभिर्बाणैस्तेऽद्रवन्त भयार्दिताः ॥ ४३ ॥

और फिर सत्य पराक्रम प्रगटनेवाले सात्यकि तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका उत्तम पानीसे बुझाये हुए बाणोंसे नाश करने लगे; वे सब योद्धा भयभीत होकर भागने लगे ॥ ४३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदस्यात्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रं जनेश्वरम् ।
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४४ ॥

राजन् ! उधर द्रुपद-पुत्र बलवान्, धृष्टद्युम्नने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनको समरभूमिमें तीक्ष्ण बाणोंसे छिपा दिया ॥ ४४ ॥

संछाद्यमानो विशिखैर्धृष्टद्युम्नेन भारत ।
विव्यथे न च राजेन्द्र तव पुत्रो जनेश्वरः ॥ ४५ ॥

भारत ! हे राजन् ! जनेश्वर ! आपके पुत्र राजा दुर्योधन धृष्टद्युम्नके बाणोंसे आच्छादित होकर भी मनमें पीडित न हुए ॥ ४५ ॥

धृष्टद्युम्नं च समरे तूर्णं विव्याध सायकैः ।
षष्ट्या च त्रिंशता चैव तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४६ ॥

और उसने युद्धस्थलमें नौवें बाणोंसे धृष्टद्युम्नको शीघ्र ही विद्ध किया; वह युद्ध अद्भुत रूपसे दीख पडने लगा ॥ ४६ ॥

तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महारथः ।
शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः ॥ ४७ ॥

मारिष ! महारथी सेनापति धृष्टद्युम्नने क्रुद्ध होकर दुर्योधनके धनुषको काटकर शीघ्र ही उसके चारों घोडोंको भी मार डाला, फिर अत्यन्त तीक्ष्ण सात बाणोंसे उनको शीघ्र विद्ध किया ॥४७॥

स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद्बली ।
पदातिरसिमुद्यम्य प्राद्रवत्पार्षतं प्रति ॥ ४८ ॥

तब महाबाहु बलवान्, राजा दुर्योधन घोडोंसे रहित रथसे कूदकर, तलवार ढाल ग्रहण करके पैदल ही धृष्टद्युम्नकी ओर दौडे ॥ ४८ ॥

शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः ।
राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत्स्वकम् ॥ ४९ ॥

उस समय महाबली राजहितैषी शकुनिने समीप आकर सब वीरोंके संमुखहीमें सम्पूर्ण जगत्के अधिपति दुर्योधनको अपने रथपर चढा लिया ॥ ४९ ॥

ततो नृपं पराजित्य पार्षतः परवीरहा ।
न्यहनत्तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवासुरम् ॥ ५० ॥

शत्रु वीर नाशन वीर धृष्टद्युम्न राजा दुर्योधनको इस प्रकारसे पराजित करके वज्रधारी इन्द्र जैसे असुरोंका विनाश करते हैं उसी समान तुम्हारी सेनाका वध करने लगे ॥ ५० ॥

कृतवर्मा रणे भीमं शरैरार्छन्महारथम् ।
प्रच्छादयामास च तं महामेघो रविं यथा ॥ ५१ ॥

कृतवर्माने महारथी भीमसेनको युद्धमें अपने बाणोंसे बहुत पीडित किया और इस प्रकारसे आच्छादित कर दिया, जैसे बडे बादल सूर्यको छिपा देता है ॥ ५१ ॥

ततः प्रहस्य समरे भीमसेनः परंतपः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्कृतवर्मणे ॥ ५२ ॥

तब शत्रुनाशन भीमसेन युद्धमें हंसते हुए अत्यंत क्रुद्ध होकर कृतवर्माके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगे ॥ ५२ ॥

तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः शस्त्रकोविदः ।
नाकम्पत महाराज भीमं चार्छच्छितैः शरैः ॥ ५३ ॥

महाराज ! अतिरथी, शस्त्रोंकी विद्या जाननेवाले सात्वतवंशी वीर कृतवर्मा भीमसेनके बाणोंसे विद्ध होकर भी कम्पित नहीं हुए, और उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥५३॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा भीमसेनो महाबलः ।
सारथिं पातयामास ध्वजं च सुपरिष्कृतम् ॥ ५४ ॥

महाबलवान् भीमसेनने कृतवर्माके चारों घोडे और सारथीको मारकर अपने बाणोंसे सुसज्जित रथकी ध्वजाको काट गिराया ॥ ५४ ॥

शरैर्बहुविधैश्चैनमाचिनोत्परवीरहा ।
शकलीकृतसर्वाङ्गः श्वाविद्वत्समदृश्यत ॥ ५५ ॥

अनन्तर शत्रुवीरोंको मारनेवाले भीमसेनने अनेक प्रकारके बाणोंसे कृतवर्माके सारे शरीरको क्षतविक्षत कर दिया । वह बाणोंसे क्षत-विक्षत शरीर होकर दिखाई देने लगे ॥ ५५ ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णं वृषकस्य रथं ययौ ।
स्यालस्य ते महाराज तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ५६ ॥

महाराज ! शीघ्र ही जिसके घोडे मारे गये है ऐसे रथसे उतर कर तुम्हारे साले वृषकके रथपर तुम्हारे पुत्रोंके संमुखहीमें जा चढे ॥ ५६ ॥

भीमसेनोऽपि संक्रुद्धस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
निजघान च संक्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ॥ ३३१० ॥

तब भीमसेन भी अत्यन्त क्रुद्ध होके तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे; और दण्डधारी यमराजके समान उन सब सनिक-पुरुषोंका वध करने लगे ॥ ५७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अठत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ ३३१० ॥

: ७९ :

धृतराष्ट्र उवाच

बहूनीह विचित्राणि द्वैरथानि स्म सञ्जय ।
पाण्डूनां मामकैः सार्धमश्रौषं तव जल्पतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! अबतक अपनी सेनाके सङ्ग पाण्डवोंके जो बहुत विचित्र द्वैरथ युद्ध हुए हैं, उनका वर्णन मैंने तुम्हारे मुखसे सुना ॥ १ ॥

न चैव मामकं कंचिद्धृष्टं शंससि सञ्जय ।
नित्यं पाण्डुसुतान्हृष्टानभग्नांश्चैव शंससि ॥ २ ॥

संजय ! तुम मेरी ओरके किसी वीरको प्रसन्न और हर्षित कहकर प्रशंसा नहीं करते हो । सदा पाण्डवोंको और उनके योद्धाओंको ही आनन्दित और युद्धमें उत्साही अभग्न (अपराजित) कहके प्रशंसा करते हो ॥ २ ॥

जीयमानान्विमनसो मामकान्विगतौजसः ।
वदसे संयुगे सूत दिष्टमेतदसंशयम् ॥ ३ ॥

मेरी सेनाके योद्धाओंको तेजहीन, मनमालिन और युद्धमें पराजित कहके वर्णन करते हो; हे सूत ! इसका कारण प्रारब्ध ही है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

यथाशक्ति यथोत्साहं युद्धे चेष्टन्ति तावकाः ।
दर्शयानाः परं शक्त्या पौरुषं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तुम्हारी ओरके सब योद्धा ही श्रेष्ठ और बलवान् हैं, वह सब उत्साह और शक्तिके अनुसार पराक्रम प्रकाशित करके युद्धमें सफलता प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं ॥ ४ ॥

गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादुभूतं यथोदकम् ।
महोदधिगुणाभ्यासाल्लवणत्वं निगच्छति ॥ ५ ॥
तथा तत्पौरुषं राजंस्तावकानां महात्मनाम् ।
प्राप्य पाण्डुसुतान्वीरान्व्यर्थं भवति संयुगे ॥ ६ ॥

राजन् ! परन्तु जिस प्रकारसे देवनदी गङ्गाका जल मीठा होकर भी महासमुद्रमें जाकर उसके संयोगसे उसीके गुणका संमिश्रण होनेके कारण खारा हो जाता है, वैसे ही तुम्हारे सब महात्मा वीरोंका पराक्रम युद्धमें वीर पाण्डवोंके समीपमें निष्फल हो जाता है ॥ ५–६ ॥

घटमानान्यथाशक्ति कुर्वाणान्कर्म दुष्करम् ।
न दोषेण कुरुश्रेष्ठ कौरवान्गन्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! तुम्हारी ओरके सब योद्धा अत्यन्त चेष्टा करके शक्तिके अनुसार कठिन कर्मोंका अनुष्ठान करते रहते हैं; इससे तुम उन लोगोंके ऊपर दोषारोपण मत करो ॥ ७ ॥

तवापराधात्सुमहान्सपुत्रस्य विशां पते ।
पृथिव्याः प्रक्षयो घोरो यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे तथा दुर्योधन आदि आपके पुत्रोंके दोषहीसे यमराजके राज्यको बढाने-वाला सब लोगोंके अत्यन्त ही घोर और महान् नाशका समय उपस्थित हुआ है ॥ ८ ॥

आत्मदोषात्समुत्पन्नं शोचितुं नार्हसे नृप ।
न हि रक्षन्ति राजानः सर्वाथान्नापि जीवितम् ॥ ९ ॥

राजन् ! यह तुम्हारे किये हुए दोषोंसे जो फल प्राप्त हुए हैं; उनके निमित्त शोक करना तुमको उचित नहीं है । राजा लोग भी इस पृथ्वीमें सर्वथा अपने जीवनकी रक्षा नहीं कर सकते हैं ॥ ९ ॥

युद्धे सुकृतिनां लोकानिच्छन्तो वसुधाधिपाः ।
चमूं विगाह्य युध्यन्ते नित्यं स्वर्गपरायणाः ॥ १० ॥

क्षत्रिय योद्धा राजा लोग सम्पूर्ण अर्थ और जीवन रक्षाकी आशा छोडकर स्वर्गप्राप्तिके निमित्त युद्धमें मरकर पुण्य लोकमें जानेकी अभिलाषा करके नित्य सेनाको मथ करके युद्ध करते हैं ॥ १० ॥

पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्तत जनक्षयः ।
तन्ममैकमना भूत्वा शृणु देवासुरोपमम् ॥ ११ ॥

हे महाराज ! उस दिन पूर्वाह्ण समयमें देवता और असुरोंके संग्रामके समान जो वीरोंका बडा भारी संहार होने लगा, उस भयंकर युद्धका वृत्तान्त तुम एकाग्र चित्त होके मुझसे सुनो ॥ ११ ॥

आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महात्मानौ महाबलौ।
इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ।
तेषां प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १२ ॥

युद्धमें भयानक कर्म करनेवाले महारथी, महाधनुर्धर, तेजस्वी और विशाल सेनासे युक्त अवन्तिराज दोनों भाई अर्जुनपुत्र इरावान्को देखकर उनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। उनका महाघोर रोवेंको खडे करनेवाला युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १२ ॥

इरावांस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरौ देवरूपिणौ।
विव्याध निशितैस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः।
तावेनं प्रत्यविध्येतां समरे चित्रयोधिनौ ॥ १३ ॥

इरावान् अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे देवरूपी उन दोनों भाईयोंको शीघ्रताके सहित विद्ध करने लगे। वे विचित्र योद्धा दोनों भाई भी इरावान्को अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

युध्यतां हि तथा राजन्विशेषो न व्यदृश्यत।
यततां शत्रुनाशाय कृतप्रतिकृतैषिणाम् ॥ १४ ॥

राजन्! वे लोग शत्रुका नाश करनेके निमित्त प्रयत्नशील होकर, एक दूसरेके अस्त्रोंका निवारण करनेकी इच्छा रखकर, आपसमें जिस प्रकारसे युद्ध करने लगे, उसमें कोई दूसरेसे अधिक न दीख पडा ॥ १४ ॥

इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः।
चतुर्भिश्चतुरो वाहाननयद्यमसादनम् ॥ १५ ॥

राजन्! उस समय इरावान्ने चार बाणोंसे अनुविन्दके चारों घोडोंका वध करके यमलोक पहुंचा दिया ॥ १५ ॥

भल्लाभ्यां च सुतीक्ष्णाभ्यां धनुः केतुं च मारिष।
चिच्छेद समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १६ ॥

मारिष! राजन्! फिर चोखे दो भल्ल बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा और धनुषको काट दिया। यह अद्भुतसी बात हुई ॥ १६ ॥

त्यक्त्वानुविन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः।
धनुर्गृहीत्वा नवमं भारसाधनमुत्तमम् ॥ १७ ॥

तब अनुविन्दने अपने रथको छोडके विन्दके रथपर चढके भार वहन करनेमें समर्थ उत्तम एक दृढ धनुष ग्रहण किया ॥ १७ ॥

तावेकस्थौ रणे वीरावावन्त्यौ रथिनां वरौ ।
शरान्मुमुचतुस्तूर्णमिरावति महात्मनि ॥ १८ ॥

फिर रथियोंमें श्रेष्ठ अवन्तिदेशीय वीर विन्द और अनुविन्द दोनों भाई रणभूमिमें एकही रथ-पर बैठकर शीघ्र महात्मा इरावान्‌के ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥

ताभ्यां मुक्ता महावेगाः शराः काञ्चनभूषणाः
दिवाकरपथं प्राप्य छादयामासुरम्बरम् ॥ १९ ॥

उनके धनुषोंसे छूटे हुए महान् वेगशाली सुवर्णभूषित बाण सूर्यके पथपर पहुंचकर आकाशको छिपाने लगे ॥ १९ ॥

इरावांस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरौ तौ महारथौ ।
ववर्ष शरवर्षेण सारथिं चाप्यपातयत् ॥ २० ॥

तब क्रुद्ध इरावान्‌ने भी उन दोनों महारथी बन्धुओंके ऊपर बाणवर्षा करके उनके सारथीको मारके गिरा दिया ॥ २० ॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ गतसत्त्वेऽथ सारथौ ।
रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः ॥ २१ ॥

सारथीके प्राणशून्य होकर भूमिपर गिर जानेपर उस रथके घोडे घबराकर रथ लेकर इधर उधर घूमने लगे । इस प्रकार वह रथ सब ओर दौडने लगा ॥ २१ ॥

तौ स जित्वा महाराज नागराजसुतासुतः ।
पौरुषं ख्यापयंस्तूर्णं व्यधमत्तव वाहिनीम् ॥ २२ ॥

सर्पोंके राजा ऐरावत नागके दौहित्र राजा इरावान् अवन्ति राज दोनों भाइयोंको इस प्रकारसे जीत करके अपने पराक्रमको प्रकाशित करते हुए शीघ्रताके सहित तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ २२ ॥

सा वध्यमाना समरे धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
वेगान्बहुविधांश्चक्रे विषं पीत्वेव मानवः ॥ २३ ॥

समरभूमिमें तुम्हारी विशाल सेनाके योद्धा इरावान्‌के बाणोंसे पीडित होकर जैसे मनुष्य विषपान करके मूर्च्छित हो जाते हैं; वैसे ही चारों ओर वेगपूर्वक घूमने लगे ॥ २३ ॥

हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत् ।
रथेनादित्यवर्णेन सध्वजेन महाबलः ॥ २४ ॥

इधर महाबलवान् पराक्रमी राक्षसेन्द्र घटोत्कच सूर्यके समान प्रकाशित और ध्वजासे शोभित रथपर चढके भगदत्तकी ओर दौडा ॥ २४ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा नागराजं समास्थितः।
यथा वज्रधरः पूर्वं संग्रामे तारकामये ॥ २५ ॥
जैसे पहिले समयमें वज्रधारी इन्द्र तारकामयके युद्धमें ऐरावतपर चढके शोभित हुए थे, वैसे ही प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त अपने हस्तिराजपर चढके घटोत्कचके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च समागताः।
विशेषं न स्म विविदुर्हैडिम्बभगदत्तयोः ॥ २६ ॥
वहां युद्ध देखनेवाले देवता, गन्धर्व और ऋषियोंने घटोत्कचके सङ्ग भगदत्तके युद्धमें किसी-को एक दूसरेसे अधिक पराक्रम करते नहीं देखा ॥ २६ ॥

यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान्।
तथैव समरे राजंस्त्रासयामास पाण्डवान् ॥ २७ ॥
जैसे देवताओंके राजा इन्द्र दानवोंकी सेनाको भयभीत करते हैं, वैसे ही राजा भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाको अपने अस्त्रोंसे मारकर तितर बितर करने लगे ॥ २७ ॥

तेन विद्राव्यमाणास्ते पाण्डवाः सर्वतोदिशम्।
त्रातारं नाभ्यविन्दन्त स्वेष्वनीकेषु भारत ॥ २८ ॥
भारत! भगदत्तने खदेडे हुए पाण्डवोंकी सेनाके योद्धा लोग सब ओर इधर उधर दौडने लगे, और अपनी सेनाके बीचमें किसीको भी अपनी रक्षा करनेवाला न देखा ॥ २८ ॥

भैमसेनिं रथस्थं तु तत्रापश्याम भारत।
शेषा विमनसो भूत्वा प्राद्रवन्त महारथाः ॥ २९ ॥
भारत! वहां हम लोगोंने केवल भीमपुत्र घटोत्कचको ही रथपर स्थिरभावसे बैठा देखा और शेष सब पाण्डवोंकी ओरके योद्धा उनके संमुखसे खिन्नचित्त होकर भाग गये ॥ २९ ॥

निवृत्तेषु तु पाण्डूनां पुनः सैन्येषु भारत।
आसीन्निष्टानको घोरस्तव सैन्येषु संयुगे ॥ ३० ॥
भारत! जब पाण्डवोंकी सेना फिर युद्धभूमिमें लौट आयी, तब उस समरभूमिमें आपकी सेनाके बीच महा कोलाहल होने लगा ॥ ३० ॥

घटोत्कचस्ततो राजन्भगदत्तं महारणे।
शरैः प्रच्छादयामास मेरुं गिरिमिवाम्बुदः ॥ ३१ ॥
राजन्! अनन्तर घटोत्कचने अपने बाणोंकी वर्षासे भगदत्तको इस प्रकारसे छिपा दिया, जैसे बादल मेरु पहाडपर जलकी वर्षा करते हैं ॥ ३१ ॥

निहत्य ताञ्शरान्राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान्।
भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ३२ ॥

राजा भगदत्तने राक्षस घटोत्कचके धनुपसे छूटे हुए सब बाणोंको काटकर समरमें तुरंत ही अपने बाणोंसे उसके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंको विद्ध किया ॥ ३२ ॥

स ताड्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः।
न विव्यथे राक्षसेन्द्रो भिद्यमान इवाचलः ॥ ३३ ॥

जिस प्रकार वज्रसे पहाड भेदित होता है, वैसे ही राक्षसराज घटोत्कच भगदत्तके अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित होकर भी दुःखित एवं विचलित नहीं हुए ॥ ३३ ॥

तस्य प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान्स चतुर्दश।
प्रेषयामास समरे तांश्च चिच्छेद राक्षसः ॥ ३४ ॥

तब प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्तने क्रुद्ध होके राक्षस घटोत्कचके ऊपर चौदह तोमर चलाये; परंतु घटोत्कचने समरभूमिमें उनको अपने बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ ३४ ॥

स तांश्छित्त्वा महाबाहुस्तोमरान्निशितैः शरैः।
भगदत्तं च विव्याध सप्तत्या कङ्कपत्रिभिः ॥ ३५ ॥

उस महाबाहु घटोत्कचने उत्तम पानीमें बुझाये हुए तीक्ष्ण बाणोंसे उन सब तोमरोंको काटकर कङ्कपत्रसे युक्त सत्तर बाणोंसे भगदत्तको विद्ध किया ॥ ३५ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजन्प्रहसन्निव भारत।
तस्याश्वांश्चतुरः संख्ये पातयामास सायकैः ॥ ३६ ॥

भारत ! तब प्राग्जोतिप भगदत्तने हंसते हुए उस युद्धमें अपने बाणोंसे घटोत्कचके चारों घोडोंको मार डाला ॥ ३६ ॥

स हताश्वे रथे तिष्ठन्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥ ३७ ॥

घोडोंके मारे जानेपर घोडोंसे रहित रथपरसे ही प्रतापी राक्षसराज घटोत्कचने एक शक्ति भगदत्तके हाथीके ऊपर बडे वेगसे चलाई, ॥ ३७ ॥

तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां सुवेगिताम्।
त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीम् ॥ ३८ ॥

भगदत्तने उस अत्यन्त वेगवान् सुवर्णदण्डसे युक्त शक्तिको सहसा संमुख आती देखकर अपने बाणोंसे तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३८ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिम्बः प्राद्रवद्भयात् ।
यथेन्द्रस्य रणात्पूर्वं नमुचिर्दैत्यसत्तमः । ॥ ३९ ॥

हिडिम्बापुत्र घटोत्कच अपनी चलाई हुई शक्तिको निष्फल होती देखकर, भयभीत होके राजा भगदत्तके संमुखसे इस भांति भाग गया, जैसे इन्द्रके युद्धमें दैत्योंमें श्रेष्ठ नमुचि समरभूमिसे भाग गया था ॥ ३९ ॥

तं विजित्य रणे शूरं विक्रान्तं ख्यातपौरुषम् ।
अजेयं समरे राजन्यमेन वरुणेन च ॥ ४० ॥
पाण्डवीं समरे सेनां संममर्द सकुञ्जरः ।
यथा वनगजो राजन्मृद्नंश्चरति पद्मिनीम् ॥ ४१ ॥

भगदत्तका गजराज, यम और वरुणसे भी समरभूमिमें अजेय, महापराक्रमी, पौरुषके लिये विख्यात, शूरवीर घटोत्कचको वहां रणक्षेत्रमें पराजित करके जैसे वनका हाथी सरोवरमें कमलको कुचलता हुआ घूमता है, वैसे ही पाण्डवोंकी सेनाको मर्दन करता हुआ चारों ओर रणभूमिमें भ्रमण करने लगा ॥ ४०–४१ ॥

मद्रेश्वरस्तु समरे यमाभ्यां सह संगतः ।
स्वस्त्रीयौ छादयांचक्रे शरौघैः पाण्डुनन्दनौ ॥ ४२ ॥

मद्रराज शल्यने अपने पाण्डुकुलको आनन्दित करनेवाले दोनों भानुजों नकुल और सहदेवके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होकर उन्हें अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ ४२ ॥

सहदेवस्तु समरे मातुलं वीक्ष्य सङ्गतम् ।
अवारयच्छरौघेण मेघो यद्वद्दिवाकरम् ॥ ४३ ॥

सहदेवने समरमें अपने मामा मद्रराजको युद्धमें उपस्थित देख उनको अपने बाणोंसे इस भांति छिपा दिया जैसे बादल सूर्यको छिपा देता है और आगे बढनेसे रोक दिया ॥ ४३ ॥

छाद्यमानः शरौघेण हृष्टरूपतरोऽभवत् ।
तयोश्चाप्यभवत्प्रीतिरतुला मातृकारणात् ॥ ४४ ॥

मद्रराज शल्य भानुजोंके बाणोंसे छिपकर भी बहुत ही आनन्दित हुए और नकुल सहदेव भी मामाके बाणोंसे छिपकर भी उनके ऊपर प्रसन्न हुए। माताके सम्बन्धके कारण उनके मनमें मामाके प्रति अनुपम प्रीतिभाव था ॥ ४४ ॥

ततः प्रहस्य समरे नकुलस्य महारथ ।
अश्वान्वै चतुरो राजंश्चतुर्भिः सायकोत्तमै ।
प्रेषयामास समरे यमस्य सदनं प्रति । ॥ ४५ ॥

राजन् ! तब महारथी राजा शल्यने समरभूमिमें हंसकर चार उत्तम बाणोंसे नकुलके चारों घोडोंको युद्धमें यमराजके घर भेज दिया ॥ ४५ ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
आरुरोह ततो यानं भ्रातुरेव यशस्विनः ॥ ४६ ॥

महारथी नकुल घोडोंके मारे जानेपर उस रथसे शीघ्रतासे कूद कर अपने यशस्वी भाई सहदेवके रथपर जा चढे ॥ ४६ ॥

एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुके ।
मद्रराजरथं क्रुद्धौ छादयामासतुः क्षणात् ॥ ४७ ॥

दोनों भाई शूरवीरोंने एकही रथपर चढके अपने सुदृढ धनुषको चढाकर युद्धभूमिमें बाणोंकी वर्षासे क्षण भरमें मद्रराज शल्यके रथको क्रोधित होकर छिपा दिया ॥ ४७ ॥

स च्छाद्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स्वस्रीयाभ्यां नरव्याघ्रो नाकम्पत यथाचलः ।
प्रहसन्निव तां चापि शरवृष्टिं जघान ह ॥ ४८ ॥

पुरुषसिंह शल्यने दोनों भानजोंके तीक्ष्ण बाणोंसे छिपकर भी पर्वतके समान कम्पित न हुए और हंसते हुए उनके बाणोंकी वर्षाको निवारण किया ॥ ४८ ॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धः शरमुद्यम्य वीर्यवान् ।
मद्रराजमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास भारत ॥ ४९ ॥

भारत ! तब पराक्रमी सहदेवने क्रुद्ध होकर एक महाभयङ्कर बाण ग्रहण करके मद्रराज शल्यके लक्ष्य करके उनके ऊपर चलाया ॥ ४९ ॥

स शरः प्रेषितस्तेन गरुत्मानिव वेगवान् ।
मद्रराजं विनिर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ५० ॥

वह सहदेवके धनुषसे छूटा हुआ बाण गरुडके समान वेगवान् होकर मद्रराजके शरीरको भेद करके पृथ्वीमें जा गिरा ॥ ५० ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः ।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह ॥ ५१ ॥

महाराज ! महारथ शल्य उसके अत्यन्त गहरे आघातसे विद्ध और पीडित होके रथपर बैठ गये और मूर्च्छित हो गये ॥ ५१ ॥

तं विसंज्ञं निपतितं सूतः सम्प्रेक्ष्य संयुगे ।
अपोवाह रथेनाजौ यमाभ्यामभिपीडितम् ॥ ५२ ॥

तब समरभूमिमें उनका सारथी उन्हें नकुल और सहदेवके बाणोंसे पीडित और मूर्च्छित हो रथपर गिरा हुआ देखकर उनको रथसे लेके रणभूमिसे पृथक् हुआ ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखम् ।
सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥ ५३ ॥

तब धृतराष्ट्रकी सेनाके सब योद्धा मद्रराज शल्यके रथको युद्धसे पराङ्मुख जानकर दुःखित हुए और कदाचित् अब शल्यका जीवन शेष नहीं है, ऐसा सोचने लगे ॥ ५३ ॥

निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ सिंहनादं विनेदतुः ॥ ५४ ॥

महारथ माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव अपने मामाको युद्धमें पराजित करके हर्षसे प्रफुल्लित होकर शङ्ख बजाके सिंहनाद करने लगे ॥ ५४ ॥

अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशां पते ।
यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवामरौ ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ३३६५ ॥

हे राजन् ! जिस प्रकार इन्द्र और उपेन्द्र दोनों देवता दैत्योंको तितर बितर कर देते हैं, वैसे ही नकुल–सहदेव दोनों भाई हर्षित होकर तुम्हारी सेनाको मार भगाने लगे ॥ ५५ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें उनासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥ ३३६५ ॥

: ८० :

सञ्जय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य चोदयामास वाजिनः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने मध्यान्ह समयमें श्रुतायुको देखकर उनकी ओर अपने घोडोंको बढाया ॥ १ ॥

अभ्यधावत्ततो राजा श्रुतायुषमरिन्दमम् ।
विनिघ्नन्सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

अनन्तर उत्तम पानीसे बुझे हुए नौ तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर शत्रुनाशन श्रुतायुको विद्ध करते हुए राजा युधिष्ठिर उनकी ओर दौडे ॥ २ ॥

स संवार्य रणे राजा प्रेषितान्धर्मसूनुना ।
शरान्सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समर्पयत् ॥ ३ ॥

तब महाधनुर्धर राजा श्रुतायुने युद्धमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके चलाये हुए बाणोंको निवारण करके उन कुन्तीकुमारके ऊपर सात बाणोंको

ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

समरमें वह वाण महात्मा युधिष्ठिरके कवचको भेदके मानों उनके प्राणोंको ढूंढते हुए उनका रुधिर पान करने लगे ॥ ४ ॥

पाण्डवस्तु भृशं विद्धस्तेन राज्ञा महात्मना ।
रणे वराहकर्णेन राजानं हृदि विव्यधे ॥ ५ ॥

पाण्डुनंदन युधिष्ठिरने महात्मा राजा श्रुतायुके वाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर रणक्षेत्रमें वराह-कर्णनाम एक वाणसे राजा श्रुतायुका हृदयस्थान विद्ध किया ॥ ५ ॥

अथापरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः ।
रथश्रेष्ठो रथात्तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत् ॥ ६ ॥

और रथियोंमें श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने एक भल्ल वाणसे महामना श्रुतायुके रथकी ध्वजा काटके तुरंत ही रथसे पृथ्वीमें गिरा दी ॥ ६ ॥

केतुं निपातितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः ।
पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णै राजन्विव्याध सप्तभिः ॥ ७ ॥

राजन् ! राजा श्रुतायुने अपनी ध्वजा कटती हुई देखके अपने सात तीक्ष्ण वाणोंसे फिर पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरको विद्ध किया ॥ ७ ॥

ततः क्रोधात्प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यथा युगान्ते भूतानि धक्ष्यन्निव हुताशनः ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर जैसे प्रलय कालमें अग्नि प्रज्वलित होकर सम्पूर्ण जीव जन्तुओंको भस्म कर देती है; वैसे ही क्रोधसे प्रज्वलित हो गये ॥ ८ ॥

क्रुद्धं तु पाण्डवं दृष्ट्वा देवगन्धर्वराक्षसाः ।
प्रविव्यथुर्महाराज व्याकुलं चाप्यभूज्जगत् ॥ ९ ॥

हे महाराज ! देवता, गन्धर्व और राक्षस आदि पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरको इस भांतिसे क्रुद्ध हुए देखकर व्यथित हुए और सम्पूर्ण जगत् भी व्याकुल हुआ ॥ ९ ॥

सर्वेषां चैव भूतानामिदमासीन्मनोगतम् ।
त्रीँल्लोकानद्य संक्रुद्धो नृपोऽयं धक्ष्यतीति वै ॥ १० ॥

तब सम्पूर्ण प्राणियोंके मनमें यह विचार आया कि आज निश्चय ही धर्मराज युधिष्ठिर क्रोधित होकर तीनों लोकोंको भस्म कर देंगे ॥ १० ॥

ऋषयश्चैव देवाश्च चक्रुः स्वस्त्ययनं महत्।
लोकानां नृप शान्त्यर्थं क्रोधिते पाण्डवे तदा ॥ ११ ॥

हे महाराज ! तब देव और ऋषि लोग धर्मराज युधिष्ठिरको क्रोधित देखकर सब लोगोंमें शान्ति स्थापन करनेके लिये महत् स्वस्तिकर्म करने लगे ॥ ११ ॥

स च क्रोधसमाविष्टः सृक्किणी परिलेलिहन्।
दधारात्मवपुर्घोरं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ १२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने क्रोधित होकर मुखके दोनों कोनोंको चाटते हुए अपने शरीरकी प्रलय कालके सूर्यके समान अत्यन्त भयंकर मूर्त्ति धारण की ॥ १२ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि तावकानि विशां पते।
निराशान्यभवंस्तत्र जीवितं प्रति भारत ॥ १३ ॥

पृथ्वीपते ! हे महाराज ! तब तुम्हारी सेनाके सब योद्धा अपने जीवनकी आशासे निराश हो गये ॥ १३ ॥

स तु धैर्येण तं कोपं संनिवार्य महायशाः।
श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महद्धनुः ॥ १४ ॥

परन्तु महायशस्वी धर्मराज युधिष्ठिरने धीरज धरके अपने क्रोधको शान्त किया। तब राजा युधिष्ठिरने श्रुतायुके बडे धनुपकी मूष्टि काट दी ॥ १४ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे।
निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १५ ॥

उन्हें धनुप रहित करके, सब सेनाके सम्मुखहीमें युद्धमें उनके दोनों स्तनोंके बीचका स्थान राजा युधिष्ठिरने अपने नाराच बाणोंसे विद्ध किया ॥ १५ ॥

सत्वरं चरणे राजंस्तस्य वाहान्महात्मनः।
निजघान शरैः क्षिप्रं सूतं च सुमहाबलः ॥ १६ ॥

और राजन् ! महाबली युधिष्ठिरने शीघ्रताके सहित महामना श्रुतायुके चारों घोडे और सारथीको भी मार डाला ॥ १६ ॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञस्तु पौरुषम्।
विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा ॥ १७ ॥

तब श्रुतायु युद्धमें राजा युधिष्ठिरके पराक्रमको देखकर घोडोंसे रहित हो, रथ छोडकर वेग पूर्वक रणभूमिसे भाग गये ॥ १७ ॥

तस्मिञ्जिते महेष्वासे धर्मपुत्रेण संयुगे ।
दुर्योधनबलं राजन्सर्वमासीत्पराङ्मुखम् ॥ १८ ॥

राजन् ! संग्राममें धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे उस महा धनुर्द्धारी श्रुतायुके पराजित हो जानेपर दुर्योधनकी सब सेना पीठ दिखाकर युद्धसे भागने लगी ॥ १८ ॥

एतत्कृत्वा महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
व्यात्ताननो यथा कालस्तव सैन्यं जघान ह ॥ १९ ॥

महाराज ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर इस प्रकारसे कठिन कर्म करके मुंह पसरे हुए यमराजके समान तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ १९ ॥

चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनां वरम् ।
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः ॥ २० ॥

वृष्णिवंशीय चेकितानने रथियोंमें मुख्य कृपाचार्यको सब सेनाके सम्मुखहीमें अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ २० ॥

संनिवार्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि ।
चेकितानं रणे यत्तं राजन्विव्याध पत्रिभिः ॥ २१ ॥

राजन् ! शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने युद्धमें शीघ्रताके सहित उन सब बाणोंको निवारण करके फिर अपने पंखवाले बाणोंसे सावधानतासे युद्ध करनेवाले चेकितानको विद्ध किया ॥ २१ ॥

अथापरेण भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं चास्य समरे क्षिप्रहस्तो न्यपातयत् ।
हयांश्चास्यावधीद्राजन्नुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २२ ॥

मारिष ! फिर एक भल्ल बाणसे उनके धनुषको काट दिया और अपने हाथोंकी कुशलता दिखाते हुए युद्धमें दूसरे एक बाणसे उनके सारथीको मार डाला । राजन् ! इसके अनन्तर उनके घोडोंको अपने अस्त्रोंसे मारकर पृष्ठरक्षकोंके दो सारथियोंका संहार किया ॥ २२ ॥

सोऽवप्लुत्य रथात्तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः ।
स तया वीरघातिन्या गदया गदिनां वरः
गौतमस्य हयान्हत्वा सारथिं च न्यपातयत् ॥ २३ ॥

तब सात्वतवंशी चेकितानने शीघ्र ही रथसे कूदकर गदा ग्रहण की । फिर उस वीरोंके नाश करनेवाले गदासे गदाधारियोंमें श्रेष्ठ चेकितानने कृपाचार्यके चारों घोडोंको मारकर उनके सारथीको भी मारके गिरा दिया ॥ २३ ॥

भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेप षोडश ।
ते शराः सात्वतं भित्त्वा प्राविशन्त धरातलम् ॥ २४ ॥

तब कृपाचार्यने पृथ्वीमें खडे होकर चेकितानके ऊपर सोलह बाण चलाये । वह सब बाण चेकितानको भेद करके पृथ्वीमें प्रवेश कर गये ॥ २४ ॥

चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदाम् ।
गौतमस्य वधाकाङ्क्षी वृत्रस्येव पुरन्दरः ॥ २५ ॥

जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके ऊपर वज्र चलाया था, वैसे ही क्रोधमें भरे हुए चेकितानने कृपाचार्यके वधकी इच्छा करके पुनः उस भयङ्कर गदाको उनके ऊपर चलाया ॥ २५ ॥

तामापतन्तीं विमलामश्मगर्भां महागदाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः ॥ २६ ॥

गौतमनन्दन कृपाचार्यने उस निर्मल और महाकठोर प्रचण्ड लोहेकी गदाको अपने ऊपर आती देख कई हजार बाणोंसे उसका निवारण किया ॥ २६ ॥

चेकितानस्ततः खड्गं कोशादुद्धृत्य भारत ।
लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत् ॥ २७ ॥

हे भारत! तब चेकितान कुपित होकर मियानसे तलवार खींचकर बडी फुर्तीके साथ कृपाचार्यकी ओर वेगसे दौडे ॥ २७ ॥

गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्यासिं सुसंशितम् ।
वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत् ॥ २८ ॥

राजन्! कृपाचार्य भी धनुष त्यागकर अत्यंत तीक्ष्ण तलवार ग्रहण करके चेकितानकी ओर बडे वेगसे दौडे ॥ २८ ॥

तावुभौ बलसम्पन्नौ निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योन्यं सन्ततक्षतुः ॥ २९ ॥

वे दोनों बलवान् पराक्रमी महारथ योद्धा उत्तम तलवार धारण करके अपनी तीक्ष्ण धारवाले तलवारोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २९ ॥

निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ ।
धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम् ।
मूर्छयाभिपरीताङ्गौ व्यायामेन च मोहितौ ॥ ३० ॥

वे दोनों वीर श्रेष्ठ प्रहार करते, तथा पैंतरा बदलते हुए एक दूसरेके प्रहारसे अत्यंत पीडित होकर सब लोगोंके निवासस्थान पृथ्वीके ऊपर गिर पडे। उनके संपूर्ण शरीरोंमें बेहोशी आयी थी। दोनों ही अधिक मेहनतके कारण मोहित हो गये ॥ ३० ॥

ततोऽभ्यधावद्वेगेन करकर्षः सुहृत्तया ।
चेकितानं तथाभूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदम् ।
रथमारोपयच्चैनं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३१ ॥

तब करकर्ष नामक एक पुरुष जो युद्ध दुर्मद चेकितानका मित्र था, उनको इस अवस्थामें देखकर मित्रताके वशमें होकर वेगसे दौडा और वहांपर पहुंचकर सब सेनाके सामने ही उन्हें अपने रथपर चढा लिया ॥ ३१ ॥

तथैव शकुनिः शूरः स्यालस्तव विशां पते ।
आरोपयद्रथं तूर्णं गौतमं रथिनां वरम् ॥ ३२ ॥

पृथ्वीपते ! वैसे ही तुम्हारे साले पराक्रमी शकुनिने भी रथियोंमें मुख्य कृपाचार्यको शीघ्र ही अपने रथपर चढा लिया ॥ ३२ ॥

सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः ।
नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन्विव्याध वक्षसि ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! बलवान् धृष्टकेतुने युद्धमें क्रुद्ध होकर सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाकी छातीमें नव्वे बाण शीघ्र मारकर उनको घायल किया ॥ ३३ ॥

सौमदत्तिरुरःस्थैस्तैर्भृशं बाणैरशोभत ।
मध्यन्दिने महाराज रश्मिभिस्तपनो यथा ॥ ३४ ॥

जैसे सूर्य मध्यान्ह कालमें अपनी प्रकाशमान किरणोंसे शोभित होते हैं; वैसे ही छातीमें लगे हुए उन सब तेजस्वी बाणोंसे भूरिश्रवा शोभायमान हुए ॥ ३४ ॥

भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम् ।
हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः ॥ ३५ ॥

सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवाने भी युद्धभूमिमें अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर धृष्टकेतुके घोडों और उनके सारथीका वध करके उन्हें रथहीन कर दिया ॥ ३५ ॥

विरथं चैनमालोक्य हताश्वं हतसारथिम् ।
महता शरवर्षेण छादयामास संयुगे ॥ ३६ ॥

तब उनको घोडे और सारथीके मारे जानेसे रथरहित देखकर युद्धस्थलमें अपने बाणोंकी बडी वर्षासे भूरिश्रवाने छिपा दिया ॥ ३६ ॥

स च तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः ।
आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष ॥ ३७ ॥

मारिष ! तब महात्मा धृष्टकेतु उस रथको त्यागकर शतानीकके रथपर जा चढे ॥ ३७ ॥

चित्रसेनो विकर्णश्च राजन्दुर्मर्षणस्तथा ।
रथिनो हेमसंनाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण तुम्हारे ये तीनों रथी पुत्र सुवर्णवर्म धारणकर सुभद्रापुत्र अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३८ ॥

अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्तत ।
शरीरस्य यथा राजन्वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ ३९ ॥

नराधिप ! जैसे वात, कफ और पित्त इन तीनोंके सङ्ग शरीरका युद्ध होता है, वैसे ही अभिमन्युका उन तीनों वीरोंके सङ्ग महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥

विरथांस्तव पुत्रांस्तु कृत्वा राजन्महाहवे।
न जघान नरव्याघ्रः स्मरन्भीमवचस्तदा ॥ ४० ॥

राजन् ! उस महाघोर युद्धमें तुम्हारे तीनों पुत्रोंको रथहीन करनेके अनन्तर नरव्याघ्र अभिमन्युको भीमसेनकी प्रतिज्ञाकी सुध हुई, इसहीसे इन्होंने तुम्हारे तीनों पुत्रोंका वध नहीं किया ॥ ४० ॥

ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः।
संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम् ॥ ४१ ॥
प्रयान्तं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव।
अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम्।
वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ४२ ॥

इसके अनन्तर श्वेतवाहन कुन्ती पुत्र अर्जुन गजपति, घुडसवार और रथी आदि वीरोंसे युक्त असंख्य राजाओंसे घिरे हुए, देवतासे भी अजेय भीष्मको तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करनेके निमित्त एकमात्र बालक महारथी अभिमन्युको लक्ष्य करके शीघ्र जाते हुए देखकर वासुदेव-नन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ ४१–४२ ॥

चोदयाश्वान्हृषीकेश यत्रैते बहुला रथाः।
एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः।
यथा न हन्युर्नः सेनां तथा माधव चोदय ॥ ४३ ॥

हे हृषीकेश ! जहांपर ये बहुतसे रथ दीख पडते हैं, तुम उसी स्थानमें अपने घोडोंको ले चलो। माधव ! वे सब बडे शूरवीर, अस्त्रविद्या जाननेवाले और युद्धके अभिलाषी हैं; जिससे वे लोग मेरी सेनाका नाश न करें, तुम उस ही रीतिसे मेरे रथको वहांपर ले चलो ॥ ४३ ॥

एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनामितौजसा।
रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥ ४४ ॥

अत्यन्त पराक्रमी तेजस्वी कुन्तीकुमार अर्जुनने जब कृष्णसे इस प्रकार कहा, तब वृष्णि कुलनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने युद्धमें उन सफेद घोडोंसे युक्त रथको उसी ओर चलाया ॥ ४४ ॥

निष्टानको महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष।
यदर्जुनो रणे क्रुद्धः संयातस्तावकान्प्रति ॥ ४५ ॥

मारिष ! युद्धभूमिमें अर्जुन जो क्रुद्ध होकर तुम्हारी सेनाकी ओर गमन करने लगे, उससे तुम्हारी सेनामें महा कोलाहल होने लगा ॥ ४५ ॥

समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः ।
सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

राजन् ! कुन्तीनन्दन अर्जुनने भीष्मकी रक्षा करनेवाले उन सब राजाओंके निकट जाकर सुशर्मासे इस प्रकार कहा ॥ ४६ ॥

जानामि त्वां युधि श्रेष्ठमत्यन्तं पूर्ववैरिणम् ।
पर्यायस्याद्य सम्प्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम् ।
अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥ ४७ ॥

तुम युद्धमें एक मुख्य वीर और हम लोगोंके पुराने शत्रु हो, तुमको मैं विशेषरूपसे जानता हूं; तुम अपने उस अनीतिका दारुण फल आज अनुभव करोगे । देखो ! आज मैं तुमको तुम्हारे पहलेके मरे हुए पितामहोंका दर्शन कराऊंगा ॥ ४७ ॥

एवं संजल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुघातिनः ।
श्रुत्वापि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः ।
न चैनमब्रवीत्किंचिच्छुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ४८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सुशर्माने शत्रुनाशन अर्जुनकी कठोर बातोंको सुन भला या बुरा कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ ४८ ॥

अभि गत्वार्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्तात्पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः ॥ ४९ ॥
परिवार्यार्जुनं संख्ये तव पुत्रैः सहानघ ।
शरैः संछादयामास मेघैरिव दिवाकरम् ॥ ५० ॥

उस महारथीने तुम्हारे पुत्रों और बहुतसे राजाओंके सहित युद्धमें अर्जुनके समीप गमन किया और उन्होंने आगे, पीछे तथा पार्श्वभाग– सब ओरसे घेर लिया और बादल जैसे सूर्यको छिपा देते हैं, वैसे ही बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको छिपा दिया ॥ ४९–५० ॥

ततः प्रवृत्तः सुमहान्संग्रामः शोणितोदकः ।
तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ २४१६ ॥

भारत ! अनन्तर युद्धभूमिमें आपके पुत्रों और पाण्डवोंमें महाघोर रुधिर बहानेवाला भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ५१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ २४१६ ॥

८१

सञ्जय उवाच

स तुद्यमानस्तु शरैर्धनञ्जयः पदा हतो नाग इव श्वसन्बली ।
बाणेन बाणेन महारथानां चिच्छेद चापानि रणे प्रसह्य ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! इस प्रकार जब सब राजाओंने अपने बाणोंसे बलवान् अर्जुनको पीडित किया, तब उन्होंने पैरसे पोंछ दबनेसे सर्पके समान क्रोधसे लम्बी सांस लेते हुए बलपूर्वक एक एक बाणोंसे युद्धमें उन सब महारथियोंके धनुषको काट दिया ॥ १ ॥

संछिद्य चापानि च तानि राज्ञां तेषां रणे वीर्यवतां क्षणेन ।
विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा निःशेषतां तेष्वथ मन्यमानः ॥ २ ॥

क्षणभरमें उन सब पराक्रमी राजाओंके धनुषको काटकर महात्मा अर्जुनने उनका पूर्णरूपसे नाश करनेकी इच्छासे एक सङ्ग ही सबको बाणोंसे विद्ध किया ॥ २ ॥

निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धास्ते ताडिताः शक्रसुतेन राजन् ।
विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा गतासवश्छिन्नतनुत्रकायाः ॥ ३ ॥

इन्द्रपुत्र अर्जुनने जब उन महारथियोंके ऊपर इस भांतिसे बाणोंका प्रहार किया, तब किसी किसीका शरीर क्षत विक्षत होकर रुधिरसे पूरित हो युद्धभूमिमें गिर पडे और कितनोंका शरीर कवच रहित हो गया। किसीका शिर कट गया और कोई अर्जुनके बाणोंसे मरकर विचित्र रूपसे नष्ट हो गये। वे सब एक ही समयमें कालके कराल ग्रासमें जा पडे ॥ ३ ॥

महीं गताः पार्थबलाभिभूता विचित्ररूपा युगपद्विनेशुः ।
दृष्ट्वा हतांस्तान्युधि राजपुत्रांस्त्रिगर्तराजः प्रययौ क्षणेन ॥ ४ ॥

अर्जुनके बलसे चढाई होकर विचित्ररूपधारी उन राजपुत्रोंको युद्धमें एक साथ ही पृथ्वीपर गिरकर मरते हुए देखकर, त्रिगर्त्तराज सुशर्मा क्षणमें रथपर चढके अर्जुनके संमुख आके उपस्थित हुए ॥ ४ ॥

तेषां रथानामथ पृष्ठगोपा द्वात्रिंशदन्येऽभ्यपतन्त पार्थम् ।
तथैव ते संपरिवार्य पार्थं विकृष्य चापानि महारवाणि ।
अवीवृषन्बाणमहौघवृष्ट्या यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः ॥ ५ ॥

उन राजपुत्रोंके रथोंके दूसरे बत्तीस पृष्ठरक्षकोंने भी अर्जुनपर धावा किया । जैसे मेघ पर्वतपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे सब लोग अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर महान् टंकारध्वनि करनेवाले अपने धनुष खींचकर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५ ॥

संपीड्यमानस्तु शरौघवृष्ट्या धनञ्जयस्तान्युधि जातरोषः ।
षष्ट्या शरैः संयति तैलधौतैर्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान् ॥ ६ ॥

यशस्वी अर्जुन युद्धभूमिमें उनके बाणोंकी वर्षासे पीडित होकर बहुत क्रुद्ध हुए, और उन पृष्ठरक्षक वीरोंको उन्होंने शिलापर घिसे और तेलसे साफ किये हुए साठ बाणोंसे मार डाला ॥ ६ ॥

षष्टिं रथांस्तानवजित्य संख्ये धनञ्जयः प्रीतमना यशस्वी ।
अथात्वरद्भीष्मवधाय जिष्णुर्बलानि राज्ञां समरे निहत्य ॥ ७ ॥

फिर युद्धभूमिमें साठ रथियोंको पराजित करके प्रसन्न चित्तसे यशस्वी विजयी अर्जुन राजाओंकी सेनाका युद्धमें नाश करते हुए भीष्मके वधके निमित्त शीघ्रतासे आगे बढने लगे ॥७॥

त्रिगर्तराजो निहतान्समीक्ष्य महारथांस्तानथ बन्धुवर्गान् ।
रणे पुरस्कृत्य नराधिपांस्ताञ्जगाम पार्थं त्वरितो वधाय ॥ ८ ॥

त्रिगर्त्तराज सुशर्माने बन्धुवान्धवोंको महात्मा अर्जुनके बाणोंसे मारा हुआ देखकर पहिले पराजित हुए उन सब रथी राजाओंको युद्धमें आगे कर शीघ्रताके सहित अर्जुनके वधके निमित्त फिर उनके संमुख गमन किया ॥ ८ ॥

अभिद्रुतं चास्त्रभृतां वरिष्ठं धनञ्जयं वीक्ष्य शिखण्डिमुख्याः ।
अभ्युद्ययुस्ते शितशस्त्रहस्ता रिरक्षिषन्तो रथमर्जुनस्य ॥ ९ ॥

शिखंडी आदि वीर त्रिगर्त्तराज आदि वीरोंसे अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर अर्जुनको आक्रान्त देखकर उनकी रथ रक्षा करनेकी अभिलाषासे अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके वहांपर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥

पार्थोऽपि तानापततः समीक्ष्य त्रिगर्तराज्ञा सहितान्नृवीरान् ।
विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान्गाण्डीवमुक्तैर्निशितैः पृषत्कैः ।
भीष्मं यियासुर्युधि संददर्श दुर्योधनं सैन्धवादींश्च राज्ञः ॥ १० ॥

भीष्मके समीप जानेकी इच्छा करनेवाले महाधनुर्धारी अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन त्रिगर्तराजके सहित उन नर वीरोंको फिर संमुख आते हुए देख, संग्रामभूमिमें गांडीव धनुषसे छूटे हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन सबको तितर बितर कर वेगसे गमन करने लगे। फिर राजा दुर्योधन और सिन्धुराज जयद्रथ आदिको संमुख आये हुए देखा ॥ १० ॥

आवारयिष्णूनभिसंप्रयाय मुहूर्तमायोध्य बलेन वीरः ।
उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो जयद्रथादींश्च नृपान्महौजाः ।
ययौ ततो भीमबलो मनस्वी गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः ॥ ११ ॥

दुर्योधन, जयद्रथ आदि योद्धा अर्जुनको रोकनेमें प्रयत्नशील थे, इसलिये अनन्त पराक्रमी, महातेजस्वी वीर अर्जुनने उनके सङ्ग भी मुहूर्त भर बलपूर्वक युद्ध किया और उन सबको रोक दिया। फिर उन्हें त्याग कर, महाबली, मनस्वी महात्मा अर्जुन धनुषबाण हाथमें ग्रहण करके युद्धस्थलमें गंगानन्दन भीष्मकी ओर जाने लगे ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरश्चोग्रबलो महात्मा समाययौ त्वरितो जातकोपः ।
मद्राधिपं समभित्यज्य संख्ये स्वभागमाप्तं तमनन्तकीर्तिः ।
सार्धं स माद्रीसुतभीमसेनैर्भीष्मं ययौ शान्तनवं रणाय ॥ १२ ॥

अनन्तर कीर्तिमान् महाबलसे युक्त महात्मा राजा युधिष्ठिर भी क्रुद्ध होके शीघ्रतापूर्वक युद्धमें अपने भागके रूपमें प्राप्त हुए मद्रराज शल्यको त्यागकर वीर भीमसेन, नकुल और सहदेवके सहित शान्तनुपुत्र भीष्मके निकट युद्ध करनेके निमित्त जाने लगे ॥ १२ ॥

तैः सम्प्रयुक्तः स महारथाग्र्यैर्गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी ।
न विव्यथे शान्तनवो महात्मा समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः ॥ १३ ॥

समरमें विचित्र युद्ध करनेवाले महाबलवान् गङ्गापुत्र शान्तनुनन्दन महात्मा भीष्म सम्पूर्ण महारथियोंमें अग्रगण्य सब पाण्डुपुत्र एकत्र होकर वहां आ पहुंचे, तो भी विचलित न हुए ॥ १३ ॥

अथैत्य राजा युधि सत्यसन्धो जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी ।
चिच्छेद चापानि महारथानां प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण ॥ १४ ॥

सत्यप्रतिज्ञ, अत्यंत शक्तिशाली, मनस्वी, महापराक्रमी राजा जयद्रथने एक प्रचण्ड उत्तम धनुष ग्रहण करके समरमें उन महारथीयोंके समीप जाकर सहसा उन सब लोगोंके धनुष काट दिये ॥ १४ ॥

युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ च पार्थं तथा युधि सञ्जातकोपः ।
दुर्योधनः क्रोधविषो महात्मा जघान बाणैरनलप्रकाशैः ॥ १५ ॥

महात्मा दुर्योधन क्रोधरूपी विषसे पूर्ण होकर युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव और अर्जुन-को युद्धमें अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

+

कृपेण शल्येन शलेन चैव तथा विभो चित्रसेनेन चाजौ ।
विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपैर्देवा यथा दैत्यगणैः समेतैः ॥ १६ ॥
हे राजन् ! जैसे क्रोधमें भरे हुए दैत्योंने मिलकर देवताओंको अपने अस्त्रोंसे विद्ध किया था, वैसे ही कृपाचार्य, शल्य, शल और चित्रसेन अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्धस्थलमें पाण्डवोंको अपने वाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

छिन्नायुधं शान्तनवेन राजा शिखण्डिनं प्रेक्ष्य च जातकोपः ।
अजातशत्रुः समरे महात्मा शिखण्डिनं क्रुद्ध उवाच वाक्यम् ॥ १७ ॥
महाराज ! अजातशत्रु महात्मा राजा युधिष्ठिर शान्तनुनन्दन भीष्मके वाणसे शिखण्डीके आयुधों को कटते और उसे युद्धसे भागते हुए देखकर क्रुद्ध होकर उससे क्रोध पूर्वक यह वचन बोले ॥ १७ ॥

उक्त्वा तथा त्वं पितुरग्रतो मामहं हनिष्यामि महाव्रतं तम् ।
भीष्मं शरौघैर्विमलार्कवर्णैः सत्यं वदामीति कृता प्रतिज्ञा ॥ १८ ॥
हे महावीर द्रुपदपुत्र ! तुमने अपने पिताके संमुखहीमें मुहसे यह कहकर प्रतिज्ञा की थी, कि मैं सत्य कहता हूं, निर्मल सूर्यके समान प्रकाशमान वाणोंसे महाव्रत करनेवाले भीष्मका वध करूंगा ॥ १८ ॥

त्वया न चैनां सफलां करोषि देवव्रतं यन्न निहंसि युद्धे ।
मिथ्याप्रतिज्ञो भव मा नृवीर रक्षस्व धर्मं च कुलं यशश्च ॥ १९ ॥
इस समय देवव्रत भीष्मको विना युद्धमें मारे तुम्हारी वह प्रतिज्ञा सफल नहीं होती है, इससे हे नरवीर ! जिसमें तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी न हो जावे, तुम वैसा ही कार्य करो, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके धर्म, यश और कुलकी रक्षा करो ॥ १९ ॥

प्रेक्षस्व भीष्मं युधि भीमवेगं सर्वांस्तपन्तं मम सैन्यसंघान् ।
शरौघजालैरतितिग्मतेजैः कालं यथा मृत्युकृतं क्षणेन ॥ २० ॥
देखो ! भयानक वेगशील भीष्म जैसे सबके नाश करनेवाले यमराज समयानुसार आकर क्षणभरमें मनुष्यका नाश कर देते हैं, वैसे ही मेरी सम्पूर्ण सेनाको अपने प्रचंड वेगवाले वाणोंसे नाश किये डालते हैं ॥ २० ॥

निकृत्तचापः समरानपेक्षः पराजितः शान्तनवेन राज्ञा ।
विहाय बन्धूनथ सोदरांश्च क्व यास्यसे नानुरूपं तवेदम् ॥ २१ ॥
युद्धमें राजा शान्तनुनन्दन भीष्मने तुम्हारा धनुष काटकर तुम्हें पराजित कर दिया; और फिर भी तुम उनकी ओरसे उदासीन हो रहे हो। बन्धु बान्धव तथा अपने सहोदर भाइयोंको छोडकर कहां भागे जाते हो ? ऐसा कार्य करना तुमको उचित नहीं है ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा हि भीष्मं तमनन्तवीर्यं भग्नं च सैन्यं द्रवमाणमेवम्।
भीतोऽसि नूनं द्रुपदस्य पुत्र तथा हि ते मुखवर्णोऽप्रहृष्टः ॥ २२ ॥
हे द्रुपदपुत्र ! तुम भीष्मको अत्यन्त ही बलवान् और सब सेनाको उनके बाणोंसे तितर बितर होती तथा भागती देखकर अवश्य ही भयभीत हो गये हो, क्योंकि तुम्हारे मुखका वर्ण मलिन और अप्रसन्न हो गया है ॥ २२ ॥

आज्ञायमानेऽपि धनञ्जयेन महाहवे संप्रसक्ते नृवीर।
कथं हि भीष्मात्प्रथितः पृथिव्यां भयं त्वमद्य प्रकरोषि वीर ॥ २३ ॥
नरवीर ! अर्जुनने महायुद्धमें भीष्मसे युद्ध करनेके निमित्त आज्ञा देकर, महायुद्धमें संयुक्त होकर भी इस समय, विशेष करके तुम पृथ्वीमें विख्यात वीर प्रसिद्ध होकर आज किस कारणसे भीष्मसे डरते हो ? ॥ २३ ॥

स धर्मराजस्य वचो निशम्य रूक्षाक्षरं विप्रलापानुबद्धम्।
प्रत्यादेशं मन्यमानो महात्मा प्रतत्वरे भीष्मवधाय राजन् ॥ २४ ॥
राजन् ! महात्मा शिखण्डी धर्मराज युधिष्ठिरके इस प्रकार रूखे और अर्थ युक्त वचन सुन, उसे उपदेशात्मक आदेश मानकर, भीष्मके वधके निमित्त शीघ्रतासे फिर उनकी ओर गमन करने लगे ॥ २४ ॥

तमापतन्तं महता जवेन शिखण्डिनं भीष्ममभिद्रवन्तम्।
आवारयामास हि शल्य एनं शस्त्रेण घोरेण सुदुर्जयेन ॥ २५ ॥
राजा शल्य शिखण्डीको बडे वेगसे आता हुआ और भीष्मकी ओर धावा करता हुआ देखकर अपने महा घोर एवं दुर्जय अस्त्रोंसे उन्हें निवारण करने लगे ॥ २५ ॥

स चापि दृष्ट्वा समुदीर्यमाणमस्त्रं युगान्ताग्निसमप्रभावम्।
नासौ व्यमुह्यद्द्रुपदस्य पुत्रो राजन्महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ॥ २६ ॥
राजन् ! महाधनुर्धारी देवराज इन्द्रके समान प्रभावशाली द्रुपदकुमार शिखण्डी प्रलयकालकी अग्निके समान प्रभावित उस अस्त्रको देखकर विचलित नहीं हुए ॥ २६ ॥

तस्थौ च तत्रैव महाधनुष्मांश्शरैस्तदस्त्रं प्रतिबाधमानः।
अथाददे वारुणमन्यदस्त्रं शिखण्डयथोग्रं प्रतिघाताय तस्य।
तदस्त्रमस्त्रेण विदार्यमाणं खस्थाः सुरा ददृशुः पार्थिवाश्च ॥ २७ ॥
वरन वह महाधनुर्धारी वीर अपने प्रचण्ड बाणोंसे उस अस्त्रका निवारण करनेकी इच्छासे वहांपर ही स्थिर हुए; अनन्तर शिखण्डीने उसके प्रतिकारके निमित्त अन्य उग्र वारुणास्त्र चलाकर उस महाघोर आग्नेयास्त्रका निवारण किया। आकाशमें स्थित देवता लोग और रणक्षेत्रके सब वीर योद्धा उस आग्नेयास्त्रको शिखण्डीके दिव्य वारुणास्त्रसे विदीर्ण होते हुए देखने लगे ॥ २७ ॥

भीष्मस्तु राजन्समरे महात्मा धनुः सचित्रं ध्वजमेव चापि ।
छित्त्वानदत्पाण्डुसुतस्य वीरो युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥ २८ ॥

हे भारत ! अत्यन्त पराक्रमी महात्मा भीष्म युद्धस्थलमें अजमीढकुलनन्दन पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरके अत्यन्त विचित्र ध्वजा और धनुषको बाणोंसे काटकर सिंहनाद करने लगे ॥ २८ ॥

ततः समुत्सृज्य धनुः सबाणं युधिष्ठिरं वीक्ष्य भयाभिभूतम् ।
गदां प्रगृह्याभिपपात संख्ये जयद्रथं भीमसेनः पदातिः ॥ २९ ॥

तब युधिष्ठिरको धनुष और बाणोंको त्यागकर भयभीत हुए देखकर भीमसेन गदा ग्रहण करके युद्धमें राजा जयद्रथकी ओर पैदल ही दौडे ॥ २९ ॥

तमापतन्तं महता जवेन जयद्रथः सगदं भीमसेनम् ।
विव्याध घोरैर्यमदण्डकल्पैः शितैः शरैः पञ्चशतैः समन्तात् ॥ ३० ॥

सिन्धुराज जयद्रथने हाथमें गदा लिये हुए भीमसेनको दण्डधारी यमराजके समान अत्यन्त वेगसे संमुख आता हुआ देखकर, उसको चारों ओरसे यमदण्डके समान भयानक उत्तम पानीसे बुझे हुए पांचसौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३० ॥

अचिन्तयित्वा स शरांस्तरस्वी वृकोदरः क्रोधपरीतचेताः ।
जघान वाहान्समरे समस्तानारट्टजान्सिन्धुराजस्य संख्ये ॥ ३१ ॥

अत्यन्त वेगसे दौडते हुए भीमसेनने उन बाणोंकी कुछ भी पर्वाह न करके क्रुद्ध होकर, उन्होंने समरभूमिमें सिन्धुराजके रथके पञ्चनदीय चारों घोडोंको मार डाला ॥ ३१ ॥

ततोऽभिवीक्ष्याप्रतिमप्रभावस्तवात्मजस्त्वरमाणो रथेन ।
अभ्याययौ भीमसेनं निहन्तुं समुद्यतास्त्रः सुरराजकल्पः ॥ ३२ ॥

तब अत्यन्त तेजस्वी देवराज इन्द्रके समान तुम्हारे पुत्र चित्रसेन भीमको देखकर अस्त्र ग्रहण कर उनके वध करनेके निमित्त शीघ्रताके सहित रथ पर चढके भीमसेनके संमुख उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥

भीमोऽप्यथैनं सहसा विनद्य प्रत्युद्ययौ गदया तर्जमानः ।
समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात् ॥ ३३ ॥

तब भीमसेनने भी सहसा गर्जते हुए चित्रसेनके समीप जाकर उनके ऊपर गदा चलाई । उस मनुष्योंको नाश करनेवाली यमदण्डके समान महाघोर गदाको उठी हुई देखकर सब कौरव वहांसे, ॥ ३३ ॥

विहाय सर्वे तव पुत्रमुग्रं पातं गदायाः परिहर्तुकामाः ।
अपक्रान्तास्तुमुले संविमर्दे सुदारुणे भारत मोहनीये ॥ ३४ ॥
आपके पुत्रको वहीं छोडकर, गदाके उग्र आघातसे बचनेके निमित्त शीघ्र ही डरके हट गये। भारत ! मोहमें डालनेवाले उस अत्यंत दारुण और भयंकर जनसंहारमें, ॥ ३४ ॥

अमूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य ।
रथं समुत्सृज्य पदातिराजौ प्रगृह्य खड्गं विमलं च चर्म ।
अवप्लुतः सिंह इवाचलाग्राज्जगाम चान्यं भुवि भूमिदेशम् ॥ ३५ ॥
चित्रसेन उस आती हुई महाघोर गदाको देखकर भयभीत न हुए, और उत्तम तलवार और बडी ढाल ग्रहण करके जैसे पर्वतके शृंगसे सिंह कूदकर गमन करता है, वैसे ही रथसे कूदकर पैदलही पृथ्वीपर गमन करते हुए युद्धस्थलके दूसरे प्रदेशमें चले गये ॥ ३५ ॥

गदापि सा प्राप्य रथं सुचित्रं साश्वं ससूतं विनिहत्य संख्ये ।
जगाम भूमिं ज्वलिता महोल्का भ्रष्टाम्बराद्गामिव सम्पतन्ती ॥ ३६ ॥
उधर वह भीमकी चलाई हुई गदा चित्रसेनके घोडे और सारथीके सहित उत्तम रथको नष्ट करती हुई आकाशसे टूटकर पृथ्वीपर गिरनेवाली जलती हुई विशाल उल्काके भांति रणभूमिमें जा गिरी ॥ ३६ ॥

आश्चर्यभूतं सुमहत्त्वदीया दृष्ट्वैव तद्भारत सम्प्रहृष्टाः ।
सर्वे विनेदुः सहिताः समन्तात्पुपूजिरे तव पुत्रं ससैन्याः ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ॥ ३४५२ ॥

भारत ! तुम्हारी सेनाके सब योद्धा चित्रसेनका वह महान् आश्चर्यकारक कार्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए । सब वीर मिलकर सब ओरसे उस अद्भुत कर्मको देखकर सिंहनाद करके तुम्हारे पुत्र चित्रसेनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इक्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥ ३४५२ ॥

: ८२ :

सञ्जय उवाच

विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं मनस्विनम् ।
रथमारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव ॥ १ ॥
सञ्जय बोले– राजन् ! तुम्हारे पुत्र विकर्णने पराक्रमी मनस्वी चित्रसेनको रथरहित देखकर उनके पास जाकर, उन्हें अपने रथपर चढा लिया ॥ १ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले संकुले भृशम् ।
भीष्मः शांतनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ २ ॥

इस प्रकारके महाघोर तुमुल युद्धके समयमें शान्तनुपुत्र भीष्म शीघ्रताके सहित राजा युधिष्ठिरकी ओर चले ॥ २ ॥

ततः सरथनागाश्वाः समकम्पन्त सृञ्जयाः ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मेनिरे च युधिष्ठिरम् ॥ ३ ॥

तब रथी, गजपति और घुडसवारोंके सहित सब सृञ्जयोंकी सेना कांपने लगी; सबोंने समझा, कि युधिष्ठिर यमराजके मुखमें पडे ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ ॥ ४ ॥

परन्तु अपने नकुल, सहदेव दोनों भाईयोंके सहित कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिरने भी महाधनुर्धर पुरुषसिंह शान्तनुनन्दन भीष्मके संमुख गमन किया ॥ ४ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन्पाण्डवो युधि ।
भीष्मं संछादयामास यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५ ॥

जैसे बादल सूर्यको छिपा देते हैं, वैसे ही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भीष्मको युद्धमें अपने सहस्रों बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया ॥ ५ ॥

तेन सम्यक्प्रणीतानि शरजालानि भारत ।
प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥

भारत ! गङ्गापुत्र भीष्म उनके अच्छी तरह चलाये हुए सौ सौ सहस्र सहस्र बाणोंको सैकडों तथा सहस्रों बाणोंसे काट काट गिराने लगे ॥ ६ ॥

तथैव शरजालानि भीष्मेणास्तानि मारिष ।
आकाशे समदृश्यन्त खगमानां व्रजा इव ॥ ७ ॥

मारिष ! इसी प्रकार भीष्मके चलाये हुए वे सब बाणोंके समूह आकाशमें पक्षियोंके समूहकी भांति दिखाई देने लगे ॥ ७ ॥

निमेषार्धाच्च कौन्तेयं भीष्मः शान्तनवो युधि ।
अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः ॥ ८ ॥

पराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्मने आधे निमेष भरमें ही कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरको युद्धमें अपने पृथक् पृथक् बाणोंसे अदृश्य कर दिया ॥ ८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः ।
नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशीविषोपमम् ॥ ९ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने क्रोधित होकर कुरुकुल-भूषण महात्मा भीष्मके ऊपर विषधर सर्पके समान एक नाराच बाण चलाया ॥ ९ ॥

असम्प्राप्तं ततस्तं तु क्षुरप्रेण महारथः ।
चिच्छेद समरे राजन्भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम् ॥ १० ॥

हे महाराज ! महारथ भीष्मने युधिष्ठिरके धनुषसे छूटे हुए उस बाणको समीप न आते ही मार्गहीमें समरभूमिमें क्षुरप्रबाणसे काटके गिरा दिया ॥ १० ॥

तं तु छित्त्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसंमितम् ।
निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान्काञ्चनभूषणान् ॥ ११ ॥

इस प्रकार युद्धमें कालके समान भयानक उस नाराच बाणको काटकर भीष्मने कौरवराज युधिष्ठिरके रथके सुवर्ण भूषित सब घोडोंको मार डाला ॥ ११ ॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर उसी समय घोडोंसे रहित रथको त्यागके तुरंतही महात्मा नकुलके रथपर चढ गये ॥ १२ ॥

यमावपि सुसंक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा ।
शरैः संछादयामास भीष्मः परपुरंजयः ॥ १३ ॥

तब शत्रुओंके देशको जीतनेवाले भीष्म अत्यन्त क्रुद्ध होकर नकुल और सहदेवके समीप जाकर युद्धमें उनको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपाने लगे ॥ १३ ॥

तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मबाणप्रपीडितौ ।
जगामाथ परां चिन्तां भीष्मस्य वधकाङ्क्षया ॥ १४ ॥

महाराज ! राजा युधिष्ठिर नकुल और सहदेवको भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त पीडित देखकर भीष्मके वध करनेके निमित्त गहन चिन्ता करने लगे ॥ १४ ॥

ततो युधिष्ठिरो वश्यान्राज्ञस्तान्समचोदयत् ।
भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान् ॥ १५ ॥

फिर युधिष्ठिर अपने अनुयायी राजाओं और सुहृद लोगोंसे बोले, " तुम सब लोग युद्धमें शान्तनुनन्दन भीष्मका वध करो " ॥ १५ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम् ॥ १६ ॥

तब उन सब वीर राजाओंने कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरका वह वचन सुनकर बहुतसे रथियोंके सहित पितामह भीष्मको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १६ ॥

स समन्तात्परिवृतः पिता देवव्रतस्तव ।
चिक्रीड धनुषा राजन्पातयानो महारथान् ॥ १७ ॥

राजन् ! तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्म चारों ओरसे रथियोंके समूहमें घिरकर मानो धनुषसे क्रीडा करते हुए महारथियोंका वध करने लगे ॥ १७ ॥

तं चरन्तं रणे पार्था ददृशुः कौरवं युधि ।
मृगमध्यं प्रविश्येव यथा सिंहशिशुं वने ॥ १८ ॥

कुन्तीकुमार पाण्डव लोग जैसे महावनके बीच हरिणोंके झुण्डमें सिंहका बच्चा खेलता है, उसी प्रकार कुरुवंशी भीष्मको रणभूमिमें भ्रमण करते हुए देखने लगे ॥ १८ ॥

तर्जयानं रणे शूरांस्त्रासयानं च सायकैः ।
दृष्ट्वा त्रेसुर्महाराज सिंहं मृगगणा इव ॥ १९ ॥

महाराज ! क्षत्रिय लोग रणभूमिमें उनको तर्जन गर्जन करते तथा बाणोंसे सब शूरवीर योद्धाओंको भयभीत करते हुए देखकर इस प्रकारसे डर गये, जैसे सिंहको देखकर मृगोंका झुण्ड भयसे विकल हो जाता है ॥ १९ ॥

रणे भरतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम् ।
अग्नेर्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः ॥ २० ॥

और वायुकी सहायतासे तृणको दग्ध करनेवाले अग्निके समान उस भरतवंशी पुरुषसिंहके तेज और पराक्रमको उस रणक्षेत्रमें क्षत्रियोंने देखा ॥ २० ॥

शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे ।
तालेभ्य इव पक्वानि फलानि कुशलो नरः ॥ २१ ॥

जैसे निपुण पुरुष तालके वृक्षसे पके हुए फलोंको गिराता है, वैसे ही पराक्रमी बलवान् भीष्म रथियोंके शिरको युद्धस्थलमें काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ २१ ॥

पतद्भिश्च महाराज शिरोभिर्धरणीतले ।
बभूव तुमुलः शब्दः पततामश्मनामिव ॥ २२ ॥

महाराज ! वह सब कटे हुए सिर आकाशसे पडनेवाले पत्थरके टुकडोंके समान घोर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २२ ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने सुदारुणे ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ २३ ॥

उस महा दारुण तुमुल संग्रामके समय सभी सेनाके बीच महा कोलाहलमय संघर्ष होने लगा ॥ २३ ॥

भिन्नेषु तेषु व्यूहेषु क्षत्रिया इतरेतरम् ।
एकमेकं समाहूय युद्धायैवोपतस्थिरे ॥ २४ ॥

उनका व्यूह छिन्न भिन्न हो गया; क्षत्रिय योद्धा आपसमें एक दूसरेको आवाहन करके युद्ध करने लगे ॥ २४ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २५ ॥

शिखण्डीने भरतवंशके पितामह भीष्मके सम्मुख पहुंचकर " खडा रह ! खडा रह ! " कहके वेगपूर्वक उनपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

अनादृत्य ततो भीष्मस्तं शिखण्डिनमाहवे ।
प्रययौ सृञ्जयान्क्रुद्धः स्त्रीत्वं चिन्त्य शिखण्डिनः ॥ २६ ॥

तब भीष्मने शिखण्डीके स्त्रीत्वका विचार कर युद्धमें उसकी अवहेलना कर दी और उसके ऊपर शस्त्र नहीं चलाया, और क्रुद्ध होकर सृञ्जयोंकी ओर गमन किया ॥ २६ ॥

सृञ्जयास्तु ततो हृष्टा दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् ।
सिंहनादान्बहुविधांश्चक्रुः शङ्खविमिश्रितान् ॥ २७ ॥

तब सृञ्जय योद्धा लोग महारथ भीष्मको देखकर शङ्ख बजाकर प्रसन्न चित्तसे नाना प्रकारसे सिंहनाद करने लगे ॥ २७ ॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
अपरां दिशमास्थाय स्थिते सवितरि प्रभो ॥ २८ ॥

प्रभो ! उस समय सूर्य पश्चिम दिशामें गमन कर रहे थे । उस ही अवसरमें रथी और गजपतियोंके सङ्ग भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २८ ॥

धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।
पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः ।
शस्त्रैश्च बहुभी राजञ्जघ्नतुस्तावकान्रणे ॥ २९ ॥

पाञ्चालराज द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न और महारथी सात्यकि शक्ति, तोमर तथा अनेक प्रकारके बाणोंकी वर्षा कर तुम्हारी सेनाके पुरुषोंको अत्यन्त पीडा देने लगे । राजन् ! उन दोनोंने युद्धमें नानाविध प्रकारके अस्त्र–शस्त्रोंसे [illegible] ोंका वध करना शुरू किया ॥ २९ ॥

ते हन्यमानाः समरे तावकाः पुरुषर्षभ ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा न त्यजन्ति स्म संयुगम् ।
यथोत्साहं च समरे जघ्नुर्लोकं महारथाः ॥ ३० ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारी ओरके महारथ योद्धा सात्यकि और धृष्टद्युम्नके बाणोंसे युद्धमें पीडित होकर भी युद्धसे न हटे; वे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय करके संग्राम छोडकर भाग नहीं गये । वरन आपके महारथी सैनिक योद्धा समरमें बडे उत्साहित होकर शत्रुओंका संहार करने लगे ॥ ३० ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत्तावकानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन्पार्षतेन महात्मना ॥ ३१ ॥

राजन् ! समरभूमिमें जब महात्मा धृष्टद्युम्न तुम्हारे योद्धाओंका वध कर रहे थे, तब उन महामना वीरोंका आर्तनाद बडे जोरसे सुनाई देता था ॥ ३१ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ ॥ ३२ ॥

तुम्हारे सैनिकोंके उस घोर आर्तनादको सुनके तुम्हारी ओरके राजाओंके बीचसे अवन्ति नगरके राजा विन्द और अनुविन्द दोनों महारथी भाई धृष्टद्युम्नके निकट सामना करनेके लिए उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥

तौ तस्य तुरगान्हत्वा त्वरमाणौ महारथौ ।
छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम् ॥ ३३ ॥

उन दोनों महारथियोंने शीघ्रताके साथ धृष्टद्युम्नके रथके घोडोंको मारकर फिर अपने बाणोंकी वर्षासे उनको छिपा दिया ॥ ३३ ॥

अवप्लुत्याथ पाञ्चाल्यो रथात्तूर्णं महाबलः ।
आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेः सुमहात्मनः ॥ ३४ ॥

तब महाबली धृष्टद्युम्न तुरंत ही घोडोंसे रहित अपने रथसे कूदकर महात्मा सात्यकिके रथपर शीघ्र ही चढ गये ॥ ३४ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः ।
आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात्स परन्तपौ ॥ ३५ ॥

तब राजा युधिष्ठिर बडी सेनाके सहित शत्रुनाशन और क्रोधमें भरे हुए अवन्तिराज विन्द और अनुविन्दकी ओर वेगसे चले ॥ ३५ ॥

तथैव तव पुत्रोऽपि सर्वोद्योगेन मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ परिवार्योपतस्थिवान् ॥ ३६ ॥

मारिष ! इसी प्रकार तुम्हारे पुत्र दुर्योधन भी सब अस्त्रशस्त्र ग्रहण करके युद्धमें अवन्तीके विन्द और अनुविन्दकी रक्षा करनेके निमित्त उन्हें सब ओरसे घिरकर खडा हो गये ॥ ३६ ॥

अर्जुनश्चापि संक्रुद्धः क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभ ।
अयोधयत संग्रामे वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ३७ ॥

क्षत्रियश्रेष्ठ ! अर्जुन भी अत्यंत क्रुद्ध होकर संग्राममें इस प्रकारसे क्षत्रियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे, जैसे वज्रधारी इन्द्रने असुरोंके साथ संग्राम किया था ॥ ३७ ॥

द्रोणश्च समरे क्रुद्धः पुत्रस्य प्रियकृत्तव ।
व्यधमत्सर्वपाञ्चालांस्तूलराशिमिवानलः ॥ ३८ ॥

तुम्हारे पुत्रोंके हितैषी द्रोणाचार्य भी युद्धमें क्रुद्ध होकर जैसे अग्नि रुईके ढेरको भस्म करता है, वैसे ही सम्पूर्ण पाञ्चालोंकी सेनाका विनाश करने लगे ॥ ३८ ॥

दुर्योधनपुरोगास्तु पुत्रास्तव विशां पते ।
परिवार्य रणे भीष्मं युयुधुः पाण्डवैः सह ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! दुर्योधनके सहित तुम्हारे सब पुत्रलोग समरमें भीष्मको चारों ओरसे घेरकर पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वांस्त्वरध्वमिति भारत ॥ ४० ॥

भारत ! तब सूर्यके लाल वर्ण होनेपर राजा दुर्योधनने अपनी सेनाके सब वीरोंसे कहा, कि शीघ्रता करो ॥ ४० ॥

युध्यतां तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम् ।
अस्तं गिरिमथारूढे नप्रकाशति भास्करे ॥ ४१ ॥

तब फिर वह सम्पूर्ण राजा और वीर योद्धा लोग वेगसे महा कठिन पराक्रम प्रकट करने लगे। तब सूर्यके अस्त होते हुए सन्ध्याके समय उनका प्रकाश लुप्त हो गया ॥ ४१ ॥

प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
गोमायुगणसंकीर्णा क्षणेन रजनीमुखे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार सायंकाल होते होते क्षणभरमें वीरोंके रुधिरसे तरङ्गयुक्त और गिद्ध तथा सियारोंसे पूर्ण महाघोर नदी उत्पन्न हुई ॥ ४२ ॥

शिवाभिरशिवाभिश्च रुवद्भिर्भैरवं रवम् ।
घोरमायोधनं जज्ञे भूतसङ्घसमाकुलम् ॥ ४३ ॥

चारों ओरसे महा भयङ्कर शब्द करनेवाली सियारिनों और भूतगणोंसे व्याप्त होकर वह युद्धभूमि अत्यन्त भयानक हो गयी ॥ ४३ ॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च तथान्ये पिशिताशनाः ।
समन्ततो व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥

सैंकडों तथा सहस्रों राक्षस और पिशाच तथा [illegible] छावाले जन्तु उसके चारों ओर दिखाई देने लगे ॥ ४४ ॥

अर्जुनोऽथ सुशर्मादीन्राज्ञस्तान्सपदानुगान्।
विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥ ४५ ॥

हे राजेन्द्र ! अनन्तर अर्जुनने सेनाके वीर सुशर्मा आदि राजाओंको अनुयायियोंके सहित सेनामें पराजित करके निज शिबिर जानेके वास्ते प्रस्थान किया ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो भ्रातृभ्यां सहितस्तदा।
ययौ स्वशिबिरं राजा निशायां सेनया वृतः ॥ ४६ ॥

सेनासे घिरे हुए कुरुकुलभूषण राजा युधिष्ठिर सन्ध्याके समय अपने दोनों भाईयों नकुल सहदेवके सहित अपने शिबिरमें गये ॥ ४६ ॥

भीमसेनोऽपि राजेन्द्र दुर्योधनमुखान्रथान्।
अवजित्य ततः संख्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥ ४७ ॥

राजेन्द्र ! भीमसेनने भी दुर्योधन आदि रथियोंको युद्धमें पराजित करके शिबिरमें जानेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥

दुर्योधनोऽपि नृपतिः परिवार्य महारणे।
भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिबिरं प्रति ॥ ४८ ॥

राजा दुर्योधन भी शान्तनव भीष्मको घेरकर शीघ्र रणभूमिसे अपने शिबिरमें गये ॥ ४८ ॥

द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः।
परिवार्य चमूं सर्वां प्रययुः शिबिरं प्रति ॥ ४९ ॥

द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और सात्वत कृतवर्मा,– ये सब लोग अपनी अपनी सेनाके सहित अपने शिबिरोंमें गये ॥ ४९ ॥

तथैव सात्यकी राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
परिवार्य रणे योधान्ययतुः शिबिरं प्रति ॥ ५० ॥

राजन् ! इसी प्रकार सात्यकि और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न सेनाके योद्धाओंसे युक्त होकर अपने शिबिरोंमें गये ॥ ५० ॥

एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह।
पर्यवर्तन्त सहिता निशाकाले परंतपाः ॥ ५१ ॥

महाराज ! इसी प्रकारसे तुम्हारे शत्रुओंको संताप देनेवाले सब योद्धा पाण्डवोंके साथ रात्रीके समय युद्धसे निवृत्त होकर रणभूमिसे लौटकर अपने शिबिरोंमें आये ॥ ५१ ॥

ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा।
न्यविशन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ॥ ५२ ॥

महाराज ! फिर पाण्डव और तुम्हारी ओरके सब कौरव योद्धालोग अपने शिबिरोंपर आकर आपसमें एक दूसरेका यथायोग्य सत्कार और पूजाकर विश्राम करने लगे ॥ ५२ ॥

रक्षां कृत्वात्मनः शूरा न्यस्य गुल्मान्यथाविधि ।
अपनीय च शल्यांस्ते स्नात्वा च विविधैर्जलैः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर अपनी अपनी सेनाके पुरुषोंका दर्शन करके आत्मरक्षाके लिये चौकीहार स्थान स्थानपर रखकर शरीरोंसे शल्य निकालकर विविध भांतिके जलसे स्नान किया ॥ ५३ ॥

कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे संस्तूयन्तश्च बन्दिभिः ।
गीतवादित्रशब्देन व्यक्रीडन्त यशस्विनः ॥ ५४ ॥

उन सब यशस्वी महारथ योद्धाओंने ब्राह्मणोंके स्वस्त्ययन और बन्दियोंकी स्तुति सुनते हुए गीत और बाजोंके शब्दसे मुहूर्त भर क्रीडा की ॥ ५४ ॥

मुहूर्तमिव तत्सर्वमभवत्स्वर्गसंनिभम् ।
न हि युद्धकथां काश्चित्तत्र चक्रुर्महारथाः ॥ ५५ ॥

वह मुहूर्त भरका समय उन सब पुरुषोंको स्वर्ग–सुखके समान बोध हुआ। तब फिर उन महारथी लोगोंमें युद्ध सम्बन्धीय कुछ बातचीत नहीं हुई ॥ ५५ ॥

ते प्रसुप्ते बले तत्र परिश्रान्तजने नृप ।
हस्त्यश्वबहुले राजन्प्रेक्षणीये बभूवतुः ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ३५०९ ॥

हे राजन् ! दोनों ओरके बहुतसे घोडे, हाथी और मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण सेना थक गई थी; वह निद्रित होकर अत्यन्त मनोहर दिखाई देने लगी ॥ ५६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८२ ॥ ३५०९ ॥

: ८३ :

सञ्जय उवाच

परिणाम्य निशां तां तु सुखसुप्ता जनेश्वराः ।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे कुरुराज ! कौरव और पाण्डवोंकी ओरके सब राजा वीरोंने सुखसे सोकर उस रात्रिको व्यतीत किया। सवेरेके समय फिर युद्धके निमित्त शिविरोंसे बाहर निकले ॥ १ ॥

ततः शब्दो महानासीत्सेनयोरुभयोरपि ।
निर्गच्छमानयोः संख्ये सागरप्रतिमो महान् ॥ २ ॥

वे दोनों सेनाके युद्धके लिये शिविरोंसे निकलनेके समय संग्रामभूमिमें महा समुद्रके गर्जनाके समान अत्यन्त महान् शब्द होने लगा ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनो राजा चित्रसेनो विविंशतिः ।
भीष्मश्च रथिनां श्रेष्ठो भारद्वाजश्च वै द्विजः ॥ ३ ॥
एकीभूताः सुसंयत्ताः कौरवाणां महाचमूः ।
व्यूहाय विदधू राजन्पाण्डवान्प्रति दंशिताः ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्म और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य– इन सब महारथ कौरवोंने एकत्रित, तथा यत्नवान् होकर और वर्म धारण करके पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त कौरवोंके महान् सैन्यकी व्यूह रचना की ३–४ ॥

भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशां पते ।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ॥ ५ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पिता शान्तनुपुत्र भीष्मने समुद्रके समान बडा और घोर महान्व्यूह बनाया, इसमें हाथी, घोडे आदि वाहन भयानक तरंगोंके समान प्रतीत हुए ॥ ५ ॥

अग्रतः सर्वसैन्यानां भीष्मः शान्तनवो ययौ ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥ ६ ॥

सेनाके आगे मालव, दाक्षिणात्य और अवन्ति देशीय योद्धाओंसे युक्त होकर शान्तनुनन्दन भीष्मने युद्धके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ६ ॥

ततोऽनन्तरमेवासीद्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
पुलिन्दैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ॥ ७ ॥

उनके पश्चात् प्रतापी द्रोणाचार्यने पुलिन्द, पारद, क्षुद्रक और मालव देशीय योद्धाओंके सहित यात्रा की ॥ ७ ॥

द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान् ।
मागधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशां पते ॥ ८ ॥

पृथ्वीपते ! द्रोणके पीछे प्रबल प्रतापी राजा भगदत्तने मगध, कलिङ्ग और पिशाच वीरोंसे युक्त होकर युद्धके निमित्त गमन किया ॥ ८ ॥

प्राग्ज्योतिषादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः ।
मेकलैस्त्रैपुरैश्चैव चिच्छिलैश्च समन्वितः ॥ ९ ॥

प्राग्ज्योतिषपुर नरेशके पीछे कोसलराज बृहद्बल मेकल, त्रिपुर और चिच्छिल योद्धाओंके सहित युद्धके वास्ते प्रस्थान करने लगे ॥ ९ ॥

बृहद्बलात्ततः शूरस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥

बृहद्बलके पीछे शूर प्रस्थलराज त्रिगर्त्त, बहुतसे काम्बोज और सहस्रों यवन वीर योद्धाओंसे युक्त होकर चले ॥ १० ॥

द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रिगर्तादनु भारत ।
प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम् ॥ ११ ॥

भारत ! त्रैगर्तके पीछे अत्यन्त पराक्रमी वेगशाली अश्वत्थामा सिंहनादसे पृथ्वीको पूर्ण करते हुए युद्धके निमित्त चले ॥ ११ ॥

तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा ।
द्रौणेरनन्तरं प्रायात्सोदर्यैः परिवारितः ॥ १२ ॥

अश्वत्थामाके पीछे राजा दुर्योधनने सहोदर भाईयोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण सेनाके सहित युद्धके निमित्त यात्रा की ॥ १२ ॥

दुर्योधनादनु कृपस्ततः शारद्वतो ययौ ।
एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः ॥ १३ ॥

और दुर्योधनके पीछे शारद्वतपुत्र कृपाचार्यने युद्धके निमित्त प्रस्थान किया । इस प्रकार यह सागरके समान महाव्यूह युद्धके लिये प्रस्थान कर रहा था ॥ १३ ॥

रेजुस्तत्र पताकाश्च श्वेतच्छत्राणि चाभिभो ।
अङ्गदान्यथ चित्राणि महार्हाणि धनूंषि च ॥ १४ ॥

हे भारत ! समुद्रके समान उस महाव्यूहके गमन करनेके समय पताका, श्वेतछत्र, चित्र विचित्र अंगद, कवच और धनुष आदि अस्त्र शस्त्र प्रकाशित होने लगे ॥ १४ ॥

तं तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीत्तूर्णं पार्षतं पृतनापतिम् ॥ १५ ॥

महाराज ! युधिष्ठिरने तुम्हारी ओरका ऐसा महाव्यूह देखकर तुरंतही सेनापति धृष्टद्युम्नसे कहा ॥ १५ ॥

पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मितं सागरोपमम् ।
प्रतिव्यूहं त्वमपि हि कुरु पार्षत माचिरम् ॥ १६ ॥

हे महाधनुर्धर द्रुपदकुमार ! यह देखो, शत्रुओंने समुद्रके समान महाव्यूह बनाया है; तुम भी उसके विरुद्ध शीघ्र ही अपनी सेनाका व्यूह तैयार करो ॥ १६ ॥

ततः स पार्षतः शूरो व्यूहं चक्रे सुदारुणम् ।
शृङ्गाटकं महाराज परव्यूहविनाशनम् ॥ १७ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर पराक्रमी धृष्टद्युम्नने शत्रुव्यूहके नाश करनेवाले महादारुण शृङ्गाटक व्यूह बनाया ॥ १७ ॥

शृङ्गेभ्यो भीमसेनश्च सात्यकिश्च महारथः ।
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा हयपदातिभिः ॥ १८ ॥

भीमसेन और महारथी सात्यकि कई हजार रथी, घुडसवार और पैदल योद्धाओंके सहित उसके दोनों शृङ्गस्थानोंपर स्थित हुए ॥ १८ ॥

नाभ्यामभून्नरश्रेष्ठः श्वेताश्वो वानरध्वजः ।
मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥

पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्वेतवाहन वानरध्वज अर्जुन कृष्णके सहित उनके नाभिस्थानपर विराजमान हुए। राजा युधिष्ठिर और माद्रीपुत्र पाण्डुनन्दन नकुल सहदेव उसके मध्यस्थलपर स्थित हुए ॥ १९ ॥

अथेतरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः ।
व्यूहं तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः ॥ २० ॥

व्यूह रचना जाननेवाले दूसरे महाधनुर्द्धारी योद्धाओंने सेना सहित उस शृङ्गाटक व्यूहके यथायोग्य स्थानोंपर स्थित होके उसे पूर्ण किया ॥ २० ॥

अभिमन्युस्ततः पश्चाद्विराटश्च महारथः ।
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ २१ ॥

उस व्यूहके पीछे अभिमन्यु, महारथी विराट, हर्षमें भरे हुए द्रौपदीके पांचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच स्थित हुए ॥ २१ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
अतिष्ठन्समरे शूरा योद्धुकामा जयैषिणः ॥ २२ ॥

हे भारत ! पराक्रमसे युक्त पाण्डव लोग अपनी सेनाके इसी प्रकारसे व्यूह बनाकर जयकी अभिलाषा करते हुए युद्धके निमित्त रणभूमिमें गये ॥ २२ ॥

भेरीशब्दाश्च तुमुला विमिश्राः शङ्खनिस्वनैः ।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैः सुभीमाः सर्वतोदिशम् ॥ २३ ॥

शङ्खनादके सङ्ग मिलकर भेरी, मृदङ्ग, बांसुरी और नरसिंहोंके सिंहनादसे महाघोर शब्द होकर सब दिशा पूर्ण हुई ॥ २३ ॥

ततः शूराः समासाद्य समरे ते परस्परम् ।
नेत्रैरनिमिषै राजन्नवैक्षन्त प्रकोपिताः ॥ २४ ॥

राजन् ! शूरवीर योद्धा लोग आपसमें शत्रुओंके समीप जाकर समरभूमिमें पलक रहित नेत्रोंसे एक दूसरेको क्रोधित होकर देखने लगे ॥ २४ ॥

मनोभिस्ते मनुष्येन्द्र पूर्वं योधाः परस्परम् ।
युद्धाय समवर्तन्त समाहूयेतरेतरम् ॥ २५ ॥

हे प्रजानाथ ! उन शूरवीरोंने पहिले आपसमें एक दूसरेका नाम लेकर आवाहन किया और फिर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ २६ ॥

तब उन वीरोंका महा भयानक घोर युद्ध होने लगा । तुम्हारे और पाण्डवोंके— दोनों सेनाके योद्धा लोग एक दूसरेपर अस्त्रोंसे आघातकर एक दूसरेके अस्त्रोंसे पीडित होने लगे ॥ २६ ॥

नाराचा निशिताः संख्ये संपतन्ति स्म भारत ।
व्यात्ताननाः भयकरा उरगा इव सङ्घशः ॥ २७ ॥

भारत ! उस समय युद्धमें उत्तम पानीसे बुझे हुए नाराच बाण मुख फैलाये हुए भयंकर सर्पके समान रणभूमिमें चारों ओर गिरने लगे ॥ २७ ॥

निष्पेतुर्विमलाः शक्त्यस्तैलधौताः सुतेजनाः ।
अम्बुदेभ्यो यथा राजन्भ्राजमानाः शतह्रदाः ॥ २८ ॥

राजन् ! तेलसे धोई एवं तेजसे चमकदार की हुई निर्मल प्रकाशमान शक्ति मानो बिजलीके समान बादलोंसे निकलकर रणभूमिमें चारों ओर गिरने लगी ॥ २८ ॥

गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषिताः ।
पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिशृङ्गोपमाः शुभाः ।
निस्त्रिंशाश्च व्यराजन्त विमलाम्बरसंनिभाः ॥ २९ ॥

सुवर्णयुक्त निर्मल लोह दण्डसे भूषित पर्वतके शृङ्गके समान सुंदर गदाएं वहां गिरती दिखायी देती थीं और स्वच्छ आकाशके सदृश दूसरे अस्त्र रणभूमिसे चलते हुए शोभा देने लगे ॥२९॥

आर्षभाणि च चर्माणि शतचन्द्राणि भारत ।
अशोभन्त रणे राजन्पतमानानि सर्वशः ॥ ३० ॥

और सैकडों तारे और चन्द्रमाके रूपसे भूषित ऋषभचर्मकी उत्तम ढाल युद्धक्षेत्रमें सब ओर शोभित होने तथा शस्त्रोंसे कटकर पृथ्वीमें गिरने लगीं ॥ ३० ॥

तेऽन्योन्यं समरे सेने युध्यमाने नराधिप ।
अशोभेतां यथा दैत्यदेवसेने समुद्यते ।
अभ्यद्रवन्त समरे तेऽन्योन्यं वै समन्ततः ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! दोनों ओरकी सेना युद्धमें उत्साही होकर एक दूसरीसे जूझ रही थीं । उस समय परस्पर युद्धके लिये उद्यत हुई दैत्यों और देवताओंकी सेनाके समान वे शोभित होने लगी । चारों ओर रणभूमिमें शूरवीर योद्धा एक दूसरेकी ओर वेगसे दौडने लगे ॥ ३१ ॥

+

रथास्तु रथिभिस्तूर्णं प्रेषिताः परमाहवे ।
युगैर्युगानि संश्लिष्य युयुधुः पार्थिवर्षभाः ॥ ३२ ॥
उस तुमुल युद्धमें क्षत्रियश्रेष्ठ रथियोंने अपने रथोंको तुरंतही लाया । और उन श्रेष्ठ नरेशोंने शत्रुओंके रथके जुओंसे जुए भिडाकर युद्ध करना आरम्भ किया ॥ ३२ ॥

दन्तिनां युध्यमानानां सङ्घर्षात्पावकोऽभवत् ।
दन्तेषु भरतश्रेष्ठ सधूमः सर्वतोदिशम् ॥ ३३ ॥
भरतश्रेष्ठ! सब ओर युद्ध करते हुए मतवारे दन्तार हाथियोंके दांतोंकी आपसमें रगडसे सब दिशाओंमें धूएंसे युक्त अग्नि उत्पन्न होने लगी ॥ ३३ ॥

प्रासैरभिहताः केचिद्गजयोधाः समन्ततः ।
पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिशृङ्गान्नगा इव ॥ ३४ ॥
कितने ही गजपति योद्धा प्रास आदि अस्त्रोंकी चोटसे घायल होकर हाथियोंकी पीठोंसे इस भांति पृथ्वीपर गिरने लगे, जैसे पर्वतशिखरपरसे बडे बडे पत्थरके टूकडे गिरते हैं ॥ ३४ ॥

पादाताश्चाप्यदृश्यन्त निघ्नन्तो हि परस्परम् ।
चित्ररूपधराः शूरा नखरप्रासयोधिनः ॥ ३५ ॥
शूरवीर पैदल योद्धा लोग गदा, प्रास, बाघनख आदि अस्त्रोंसे युद्ध करके एक दूसरेपर प्रहार करते हुए विचित्र मूर्तिवाले दीख पडते थे ॥ ३५ ॥

अन्योन्यं ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः ।
शस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम् ॥ ३६ ॥
इस प्रकार कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके वीर समरभूमिमें शत्रुओंके समीप जाकर अपने नाना प्रकारके भयंकर शस्त्रोंसे एक दूसरेका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेजने लगे ॥ ३६ ॥

ततः शान्तनवो भीष्मो रथघोषेण नादयन् ।
अभ्यागमद्रणे पाण्डून्धनुःशब्देन मोहयन् ॥ ३७ ॥
इसके अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्मने अपने रथके शब्दसे पृथ्वीको अनुनादित और अपने धनुषके टङ्कार शब्दसे सबको मोहित हुए पाण्डवोंकी ओर समरभूमिमें गमन किया ॥३७॥

पाण्डवानां रथाश्चापि नदन्तो भैरवस्वनम् ।
अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ३८ ॥
उस समय धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवोंके महारथी योद्धा भी यत्नपूर्वक अपने रथके घोर शब्दके सहित युद्धके लिये उद्युक्त होकर भीष्मकी ओर दौडे ॥ ३८ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम् ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ ॥ ३५४८ ॥

भारत ! इसके अनन्तर तुम्हारे और पांडवोंके योद्धाओंमें परस्पर घमासान युद्ध होने लगा । पैदल, घुडसवार, रथी और हाथियोंका आपसमें महा भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ ३५४८ ॥

: ८४ :

सञ्जय उवाच

भीष्मं तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! जब भीष्म युद्धमें क्रुद्ध होकर सब ओर शत्रुसेनाको भस्म करने लगे, उस समय पाण्डव लोग सूर्यके समान तेजस्वी भीष्मकी ओर देखनेको भी समर्थ नहीं हुए ॥ १ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः ॥ २ ॥

अनन्तर पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार उत्तम अस्त्रशस्त्रोंको ग्रहण करके तीक्ष्ण बाणोंसे सेनाका नाश करनेवाले गंगापुत्र भीष्मकी ओर दौडी ॥ २ ॥

स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान्सहसृञ्जयान् ।
पाञ्चालांश्च महेष्वासान्पातयामास सायकैः । ॥ ३ ॥

युद्धमें प्रशंसित भीष्म महाधनुर्धारी सोमकवंशी, सञ्जय और पाञ्चाल वीरोंका अपने बाणोंसे एक ही समयमें वध करने लगे ॥ ३ ॥

ते वध्यमाना भीष्मेण पाञ्चालाः सोमकैः सह ।
भीष्ममेवाभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयम् ॥ ४ ॥

सोमकवंशीय वीरोंके सहित पाञ्चाल योद्धा लोग भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर भी मृत्युका भय छोडकर उनकी ओर शीघ्रतासे बढने लगे ॥ ४

स तेषां रथिनां वीरो भीष्मः शान्तनवो युधि ।
चिच्छेद सहसा राजन्बाहूनथ शिरांसि च ॥ ५ ॥

राजन् ! महा पराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्म उस युद्धमें सहसा अनेक रथियोंके बाहू और सिरको अपने बाणोंसे काटने लगे ॥ ५ ॥

विरथान्रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम् ॥ ६ ॥

और आपके पिता देवव्रतने कितनोंको रथ रहित कर दिया । उस समयमें भीष्मके अस्त्रोंसे घुडसवारोंके सिर घोडोंपरसे कटके गिरने लगे ॥ ६ ॥

निर्मनुष्यांश्च मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ।
अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान् ॥ ७ ॥

महाराज ! और पर्वतके समान शरीरवाले, मनुष्योंसे रहित और भीष्मके अस्त्रोंसे मोहित होकर सोते हुए हाथियोंको मैं देखने लगा ॥ ७ ॥

न तत्रासीत्पुमान्कश्चित्पाण्डवानां विशां पते ।
अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद्भीमसेनान्महाबलात् ॥ ८ ॥

हे राजन् ! रथियोंमें श्रेष्ठ महाबलवान् भीमसेनके अतिरिक्त पाण्डवोंकी सेनामें ऐसा कोई भी पुरुष उस समयमें न था, जो भीष्मको युद्धसे निवारण कर सकता हो ॥ ८ ॥

स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे ।
ततो निष्टानको घोरो भीष्मभीमसमागमे ॥ ९ ॥
बभूव सर्वसैन्यानां घोररूपो भयानकः ।
तथैव पाण्डवा हृष्टाः सिंहनादमथानदन् ॥ १० ॥

भीमसेन युद्धमें भीष्मके समीप जाकर उन्हें अपने बाणोंसे निवारण करने लगे । भीष्म और भीमसेनका युद्ध देखकर सब सेनाके बीच महा घोर कोलाहल होने लगा और पाण्डव लोग हर्षित होकर जोर जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ९–१० ॥

ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये ॥ ११ ॥

उस मनुष्योंका नाश करनेवाले महा घोर युद्धमें राजा दुर्योधन सहोदर भाईयोंसे युक्त होकर वहां आकर भीष्मकी रक्षा करने लगा ॥ ११ ॥

भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः ।
विद्रुताश्वे रथे तस्मिन्द्रवमाणे समन्ततः ।
सुनाभस्य शरेणाशु शिरश्चिच्छेद चारिहा ॥ १२ ॥

रथियोंमें मुख्य भीमसेनने भीष्मके सारथीको मार डाला; उससे भीष्मके घोडे उस रथको लेकर चारों ओर कूदते हुए इधर उधर दौडने लगे ॥ १२ ॥

क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ।
हते तस्मिन्महाराज तव पुत्रे महारथे
नामृष्यन्त रणे शूराः सोदर्याः सप्त संयुगे । ॥ १३ ॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः ।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः ॥ १४ ॥

तब शत्रुओंका नाश करनेवाले भीमसेनने क्षुरप्र अस्त्रोंको धनुषपर चढाकर उससे शीघ्र ही सुनाभका सिर काट डाला; तब वह हत होकर भूमिपर गिर गया। महाराज! तुम्हारे उस पुत्र महारथी सुनाभके मारे जानेपर आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और अत्यन्त दुर्जय वीर विशालाक्ष ये उसके सात रणशूरभाई भीमसेनका यह अपराध सहन न कर सके ॥ १३–१४ ॥

पाण्डवं चित्रसंनाहा विचित्रकवचध्वजाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारिमर्दनाः ॥ १५ ॥

विचित्र वेशभूषासे सुसज्जित हो, विचित्र कवच, ध्वजा तथा शस्त्रोंको धारण करनेवाले शत्रु-मर्दन ये सातों भाई क्रुद्ध होकर युद्धकी अभिलाषासे संग्राममें भीमसेनके संमुख गये ॥१५॥

महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
नवभिर्वज्रसङ्काशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥ १६ ॥

हे राजन्! जैसे वृत्रनाशन इन्द्रने नमुचि नामक दैत्यके ऊपर प्रहार किया था, वैसे ही महोदरने समरभूमिमें वज्रके समान नौ बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया ॥ १६ ॥

आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चापि पञ्चभिः ।
नवत्या कुण्डधारस्तु विशालाक्षश्च सप्तभिः ॥ १७ ॥

और आदित्यकेतुने सत्तर, बह्वाशीने पांच, कुण्डधारने नौबे विशालाक्षने सात ॥ १७ ॥

अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथः ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्भीमसेनं महाबलम् ॥ १८ ॥

और महाराज! शत्रुओंको जीतनेवाले महारथ अपराजितने भीमसेनको पराजित करनेकी इच्छासे अनेक बाणोंसे उनको विद्ध किया ॥ १८ ॥

रणे पण्डितकश्चैनं त्रिभिर्बाणैः समर्दयत् ।
स तन्न ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे ॥ १९ ॥

अनन्तर पण्डितकने भी युद्धमें तीन बाणोंसे भीमसेनपर प्रहार किया। तब भीमसेन युद्ध-भूमिमें शत्रुओंसे किए हुए प्रहारको अधिक न सह सके ॥ १९ ॥

धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ।
शिरश्चिच्छेद समरे शरेण नतपर्वणा ॥ २० ॥
अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे ।
पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम् ॥ २१ ॥

शत्रुनाशन भीमने बायें हाथसे धनुष लेकर अच्छी तरह दबाकर नतपर्व बाणसे समरभूमिमें तुम्हारे पुत्र अपराजितके सुन्दर नासिकासे शोभित सिरको काट दिया। अपराजित भीमसेनके शस्त्रसे पराजित होकर मारे गये और उनका शिर कटकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २०-२१ ॥

अथापरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २२ ॥

इसके अनन्तर भीमसेनने एक दूसरे भल्ल बाणसे सब सेनाके संमुख ही महारथ कुण्डधारी को भी यमपुरीमें भेज दिया ॥ २२ ॥

ततः पुनरमेयात्मा प्रसंधाय शिलीमुखम् ।
प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत ॥ २३ ॥

भारत! फिर अमेयात्मा महाबलवान् भीमसेनने युद्धमें पुनः एक बाण साधके पण्डितकके ऊपर चलाया, ॥ २३ ॥

स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम् ।
यथा नरं निहत्याशु भुजगः कालचोदितः ॥ २४ ॥

जैसे कालप्रेरित सर्प किसी मनुष्यको शीघ्र ही डंसकर नाश करके पृथ्वीमें प्रवेश करता है, वैसे ही भीमसेनके उस बाणने पण्डितकका संहार करके पृथ्वीमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

विशालाक्षशिरश्छित्त्वा पातयामास भूतले ।
त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन्क्लेशं पुरातनम् ॥ २५ ॥

फिर अदीनात्मा पराक्रमी भीमने अपने पहिले क्लेशको स्मरण करते हुए तीन बाणोंसे विशालाक्षका सिर काट पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २५ ॥

महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विव्याध समरे राजन्स हतो न्यपतद्भुवि ॥ २६ ॥

राजन्! अनन्तर उन्होंने महाधनुर्धर महोदरके दोनों स्तनोंके बीचको एक एक नाराच बाणसे विद्ध किया; उससे ही महोदर युद्धमें मारा जाकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २६ ॥

आदित्यकेतोः केतुं च छित्त्वा बाणेन संयुगे ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद चारिहा ॥ २७ ॥

फिर शत्रुनाशन भीमसेनने युद्धमें एक बाणसे आदित्यकेतुका केतु काटकर अत्यन्त तीक्ष्ण भल्ल बाणसे उनका सिर काट डाला ॥ २७ ॥

बह्वाशिनं ततो भीमः शरेण नतपर्वणा ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २८ ॥
तब क्रुद्ध होकर भीमसेनने एक उत्तम बाणसे बह्वासीको भी यमपुरीमें पहुंचा दिया ॥२८॥

प्रदुद्रुवुस्ततस्तेऽन्ये पुत्रास्तव विशां पते ।
मन्यमाना हि तत्सत्यं सभायां तस्य भाषितम् ॥ २९ ॥
हे पृथ्वीपते ! तब तुम्हारे दूसरे सब पुत्र भीमसेनकी सभामें की हुई उस प्रतिज्ञाको सत्य जानकर उनके संमुखसे भाग गये ॥ २९ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भ्रातृव्यसनकर्शितः ।
अब्रवीत्तावकान्योधान्भीमोऽयं युधि वध्यताम् ॥ ३० ॥
इसके अनन्तर राजा दुर्योधनने भाइयोंके वधसे बडे दुःखित होकर, तुम्हारे सब सेनाके योद्धाओंसे कहा, कि " तुम लोग इस भीमसेनका युद्धमें वध करो " ॥ ३० ॥

एवमेते महेष्वासाः पुत्रास्तव विशां पते ।
भ्रातॄन्संदृश्य निहतान्प्रास्मरंस्ते हि तद्वचः ॥ ३१ ॥
महाराज ! तुम्हारे महाधनुर्द्धर पुत्रोंने इस भांति भाइयोंको मरते देखकर उस समयमें सत्य-वादी बुद्धिमान् विदुर जो सब वचन पहिले कहे थे, उनको स्मरण किया ॥ ३१ ॥

यदुक्तवान्महाप्राज्ञः क्षत्ता हितमनामयम् ।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दिव्यदर्शिनः ॥ ३२ ॥
वे सोचने लगे कि दिव्यदर्शी विदुरने हमारे कुशल और हितके लिये जो बात कही थी, वह आज सत्य हो रही है ॥ ३२ ॥

लोभमोहसमाविष्टः पुत्रप्रीत्या जनाधिप ।
न बुध्यसे पुरा यत्तत्तथ्यमुक्तं वचो महत् ॥ ३३ ॥
हे प्रजानाथ ! पहिले विदुरके उन हितकर और यथार्थ वचनोंको जिसे तुम पुत्रोंके स्नेह और लोभ, मोहके वशमें होकर नहीं समझ सके थे, इस समय वह प्रत्यक्ष हो रहा है ॥३३॥

तथैव हि वधार्थाय पुत्राणां पाण्डवो बली ।
नूनं जातो महाबाहुर्यथा हन्ति स्म कौरवान् ॥ ३४ ॥
महाबाहु, बलवान् पाण्डुपुत्र भीमसेन जिस प्रकारसे कौरवोंका वध कर रहे हैं, उससे यह निश्चय बोध होता है, कि बलवान् भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंके वधके निमित्त ही जन्म लिया है ॥ ३४ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य मारिष।
दुःखेन महताविष्टो विललापातिकर्शितः ॥ ३५ ॥

मारिष ! अनन्तर राजा दुर्योधन अत्यन्त शोकित और दुःखित होकर भीष्मके निकट जाकर आंसू भरे हुए नेत्रसे युक्त होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे ॥ ३५ ॥

निहता भ्रातरः शूरा भीमसेनेन मे युधि।
यतमानास्तथान्येऽपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः ॥ ३६ ॥

हे पितामह ! मेरे बलवान् भाई भीमसेनके हाथसे युद्धमें मारे गये हैं और दूसरे सब सेनाके वीर योद्धा भी मेरी जयके निमित्त यत्नवान् होकर भी भीमसेनके शस्त्रोंसे नष्ट हो रहे हैं ॥ ३६ ॥

भवांश्च मध्यस्थतया नित्यमस्मानुपेक्षते।
सोऽहं कापथमारूढः पश्य दैवमिदं मम ॥ ३७ ॥

तुम सदा मानो मध्यस्थकी भांति हमारे विषयमें उपेक्षा कर रहे हो; इससे मेरे इस अभाग्यको देखो, कि मैं युद्धमें प्रवृत्त होकर कुमार्गमें गमन कर रहा हूं ॥ ३७ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पिता देवव्रतस्तव।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्साश्रुलोचनम् ॥ ३८ ॥

महाराज ! तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्म दुर्योधनके इस प्रकार निष्ठुर वचन सुनकर आंखोंमें आंसू भरकर उनसे बोले ॥ ३८ ॥

उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च।
गान्धार्या च यशस्विन्या तत्त्वं तात न बुद्धवान् ॥ ३९ ॥

हे पुत्र ! द्रोणाचार्य, विदुर, यशस्विनी गान्धारी और मैंने पहिले ही यह सब तुमको कहा था; परन्तु तुमने हम लोगोंकी बात न मानी ॥ ३९ ॥

समयश्च मया पूर्वं कृतो वः शत्रुकर्शन।
नाहं युधि विमोक्तव्यो नाप्याचार्यः कथञ्चन ॥ ४० ॥

हे शत्रुनाशन ! मैंने पहिले ही यह सिद्धान्त प्रगट कर रक्खा था, कि तुम्हें मुझे तथा द्रोणाचार्यको किसी प्रकारसे भी इस युद्धमें लगाना नहीं चाहिये ॥ ४० ॥

यं यं हि धार्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे।
हनिष्यति रणे तं तं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४१ ॥

मैं तुमसे यह सत्य कहता हूं कि भीम धृतराष्ट्रकी ओरके वीरोंमें जिस जिसकी ओर देखेगा, उसका ही संग्राममें वध कर सकेगा ॥ ४१ ॥

स त्वं राजन्स्थिरो भूत्वा दृढां कृत्वा रणे मतिम्।
योधयस्व रणे पार्थान्स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ ४२ ॥

अतः राजन् ! इससे तुम स्वर्ग लोक पानेकी अभिलाषा करके युद्धके विषयमें दृढ होकर धीरज धारणकर रणभूमिमें पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करो ॥ ४२ ॥

न शक्याः पाण्डवा जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः।
तस्माद्युद्धे मतिं कृत्वा स्थिरां युध्यस्व भारत ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ॥ ३५९१ ॥

भारत ! देवता और असुर लोग इन्द्रके सङ्ग मिलकर भी पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं; इससे तुम रणभूमिमें स्थिर बुद्धि होकर युद्ध करो ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ ३५९१ ॥

: ८५ :

धृतराष्ट्र उवाच

दृष्ट्वा मम हतान्पुत्रान्बहूनेकेन सञ्जय।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव किमकुर्वत संयुगे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदिने अकेले भीमसेनसे युद्धमें मेरे कई पुत्रोंको मरता हुआ देखकर क्या किया ? ॥ १ ॥

अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति सञ्जय।
मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम् ॥ २ ॥

हे सूत ! जब मेरे पुत्र प्रतिदिन ही युद्धमें मारे जा रहे हैं, तब मैं सब भांतिसे यही विचार करता हूं, कि वे सब निश्चय ही दैवकी इच्छासे मर रहे हैं ॥ २ ॥

यत्र मे तनयाः सर्वे जीयन्ते न जयन्त्युत।
यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥

जब मेरे सब पुत्र पराजित हो रहे हैं, किसी प्रकारसे भी युद्धमें जयी नहीं होते हैं; विशेष करके भीष्म, द्रोणाचार्य, महात्मा कृपाचार्य ॥ ३ ॥

सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः।
अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणां सुमहात्मनाम् ॥ ४ ॥

सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, वीरोंमें श्रेष्ठ भगदत्त और अश्वत्थामा आदि युद्धमें अत्यंत उदाराधि महात्मा शूरवीर योद्धा ॥ ४ ॥

×

अन्येषां चैव वीराणां मध्यगास्तनया मम ।
यदहन्यन्त संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ ५ ॥

तथा दूसरे बहुतसे बलवान् वीर योद्धाओंके बीचमें रहकर भी जब संग्राममें मारे जा रहे हैं, तब दुर्भाग्यके अतिरिक्त और क्या कारण कहा जायगा ? ॥ ५ ॥

न हि दुर्योधनो मन्दः पुरा प्रोक्तमबुध्यत ।
वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च ॥ ६ ॥

हे सूत ! मैं, भीष्म और विदुरने पहिले मन्दबुद्धि दुर्योधनको कई वार निवारण किया था, परन्तु उसने हम लोगोंकी बात ग्रहण नहीं की ॥ ६ ॥

गान्धार्या चैव दुर्मेधाः सततं हितकाम्यया ।
नावबुध्यत्पुरा मोहात्तस्य प्राप्तमिदं फलम् ॥ ७ ॥

और गान्धारीने भी पहिले उस नीचबुद्धिवाले दुर्योधनके सदा हितकी इच्छासे युद्ध करनेसे निवारण किया, परन्तु वह दुष्ट दुर्योधन मोहमें पडके उसकी बातको भी नहीं समझ सका; उसका ही फल अब इस समयमें उपस्थित हुआ है, ॥ ७ ॥

यद्भीमसेनः समरे पुत्रान्मम विचेतसः ।
अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम् ॥ ८ ॥

भीमसेन समरभूमिमें क्रुद्ध होकर विशेषरूपसे मेरे मूर्ख पुत्रोंको ही प्रतिदिन यमपुरीमें भेज रहा है ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच

इदं तत्समनुप्राप्तं क्षत्तुर्वचनमुत्तमम् ।
न बुद्धवानसि विभो प्रोच्यमानं हितं तदा ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् तुमने जो उस समय विदुरके कहे हुए हितकर तथा यथार्थ वचनोंको नहीं सुना, उसका ही फल इस समयमें उपस्थित हो रहा है ॥ ९ ॥

निवारय सुतान्द्यूतात्पाण्डवान्मा द्रुहेति च ।
सुहृदां हितकामानां ब्रुवतां तत्तदेव च ॥ १० ॥

विदुरने उस समय कहा था, " अपने पुत्रोंको जुएके खेलसे रोको, पाण्डवोंके अनिष्ट करनेका विचार मत करो । " आपका हित चाहनेवाले अन्य सुहृदोंने भी आपसे वे ही बातें कहीं थीं ॥ १० ॥

न शुश्रूषसि यद्वाक्यं मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
तदेव त्वामनुप्राप्तं वचनं साधु भाषितम् ॥ ११ ॥

हे महाराज ! मृत्युके वशमें हुआ मनुष्य जैसे पथ्य औषधि नहीं ग्रहण करता, वैसे ही तुमने भी हितैषी सुहृद पुरुषोंकी हितकर बातें नहीं सुनी; अतः उन्ही सज्जनोंके वचनोंका विषय–परिणाम इस समय तुम्हारे निकट उपस्थित हुआ है ॥ ११ ॥

विदुरद्रोणभीष्माणां तथान्येषां हितैषिणाम् ।
अकृत्वा वचनं पथ्यं क्षयं गच्छन्ति कौरवाः ॥ १२ ॥

विदुर, द्रोणाचार्य, भीष्म और दूसरे हितैषी पुरुषोंकी हितकर बातें न सुनने ही से कौरवोंका नाश हो रहा है ॥ १२ ॥

तदेतत्समतिक्रान्तं पूर्वमेव विशां पते ।
तस्मान्मे शृणु तत्त्वेन यथा युद्धमवर्तत ॥ १३ ॥

महाराज ! पहिले जब तुमने सुहृद्लोगोंकी बातोंको नहीं ग्रहण किया, तबहीसे ये सब व्यसन उपस्थित हुआ है । जो हो, उस समय जिस प्रकारसे युद्ध हुआ, इस वृत्तान्तको मेरे मुखसे विस्तार पूर्वक सुनो ॥ १३ ॥

मध्याह्ने सुमहारौद्रः संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १४ ॥

राजन् ! मध्याह्न समयमें जिस प्रकार महाभयङ्कर वीर पुरुषोंका नाश करनेवाला युद्ध आरम्भ हुआ, उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो ॥ १४ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
संरब्धान्यभ्यधावन्त भीष्ममेव जिघांसया ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर पाण्डवोंकी सारी सेना धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार क्रुद्ध होकर भीष्मकी ओर उनके वध करनेकी इच्छासे दौडी ॥ १५ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥ १६ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और महारथी सात्यकि सेनाके सहित भीष्मकी ओर वेगसे दौडे ॥ १६ ॥

अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टान्राज्ञः सर्वान्समभ्ययुः ॥ १७ ॥

अर्जुन, द्रौपदीके पांचों पुत्र और चेकितानने युधिष्ठिरकी आज्ञासे, दुर्योधनके भेजे हुए सेनाके सब राजाओंपर युद्धमें आक्रमण किया ॥ १७ ॥

अभिमन्युस्तथा वीरो हैडिम्बश्च महारथः ।
भीमसेनश्च संक्रुद्धस्तेऽभ्यधावन्त कौरवान् ॥ १८ ॥

पराक्रमी अभिमन्यु, महारथी राक्षस घटोत्कच और क्रुद्ध भीमसेन कौरवोंके सङ्ग युद्धके निमित्त रणभूमिमें उपस्थित हुए ॥ १८ ॥

त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि ।
तथैव कौरवै राजन्नवध्यन्त परे रणे ॥ १९ ॥

राजन् ! पाण्डवोंके सब योद्धा तीन हिस्सोंमें बंटकर कौरवोंकी सेनाका वध करने लगे; और इसी प्रकार कौरवोंकी सेनाके वीर भी रणभूमिमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे ॥ १९ ॥

द्रोणस्तु रथिनां श्रेष्ठः सोमकान्सृञ्जयैः सह ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन्यमक्षयम् ॥ २० ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर सोमक वंशियों और सृञ्जयोंको यमपुरीमें भेजनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥ २० ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत्सृञ्जयानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन्भारद्वाजेन धन्विना ॥ २१ ॥

राजन् ! महात्मा सृञ्जयगण समरभूमिमें धनुर्द्धारी द्रोणाचार्यके बाणोंसे मारे जाते हुए महाघोर आर्त्तनाद करने लगे ॥ २१ ॥

द्रोणेन निहतास्तत्र क्षत्रिया बहवो रणे ।
विवेष्टन्तः स्म दृश्यन्ते व्याधिक्लिष्टा नरा इव ॥ २२ ॥

रणभूमिमें द्रोणाचार्यके बाणोंसे मारे हुए अनेक क्षत्रिय रोगी पुरुषोंकी भांति छटपटाते हुए दिखायी देते थे ॥ २२ ॥

कूजतां क्रन्दतां चैव स्तनतां चैव संयुगे ।
अनिशं श्रूयते शब्दः क्षुत्कृशानां नृणामिव ॥ २३ ॥

भूकसे व्याकुल हुए पुरुषोंके समान कितने ही पुरुषोंकी रणभूमिमें चिल्लाहट, कितनोंका रोना और कितनोंहीका गर्जना निरन्तर सुन पडने लगा ॥ २३ ॥

तथैव कौरवेयाणां भीमसेनो महाबलः ।
चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवापरः ॥ २४ ॥

इसी प्रकार महाबली भीमसेन क्रुद्ध होके मानो दूसरे यमराजके समान रूप धारण करके कौरवोंकी सेनाका घोर नाश करने लगे ॥ २४ ॥

वध्यतां तत्र सैन्यानामन्योन्येन महारणे ।
प्रावर्तत नदी घोरा रुधिरौघप्रवाहिनी ॥ २५ ॥

सम्पूर्ण सेनाके वीरोंके आपसमें लडकर मरनेपर उन लोगोंके रुधिरसे रणभूमिमें महाघोररूपिणी नदी उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥

स संग्रामो महाराज घोररूपोऽभवन्महान् ।
कुरूणां पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २६ ॥

हे राजन् ! कौरवों और पाण्डवोंका घोररूपका वह महासंग्राम यमपुरीकी वृद्धिका कारण हुआ ॥ २६ ॥

ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः ।
गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २७ ॥

इसके अनन्तर भीमसेन क्रुद्ध होकर विशेषरूपसे वेगके सहित हाथियोंकी सेनाकी ओर दौडे और उनका वध करके यमपुरीमें भेजने लगे ॥ २७ ॥

तत्र भारत भीमेन नाराचाभिहता गजाः ।
पेतु सेदुश्च नेदुश्च दिशश्च परिबभ्रमुः ॥ २८ ॥

भारत ! सब हाथी भीमके नाराच बाणोंसे पीडित होकर कितने ही मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे, बैठने लगे, चिंघाड मारने लगे और कितने ही चारों ओर दौडने लगे ॥ २८ ॥

छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नपादाश्च मारिष ।
क्रौञ्चवद्व्यनदन्भीताः पृथिवीमधिशिश्यिरे ॥ २९ ॥

मारिष ! बडे बडे हाथी सूंड तथा और शरीर–पावोंके कटनेपर भयभीत होकर क्रौञ्चपक्षीके समान शब्द करते हुए पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २९ ॥

नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ ।
ते हयाः काञ्चनापीडा रुक्मभाण्डपरिच्छदाः ।
वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३० ॥

नकुल और सहदेव घुडसवारोंकी सेनाकी ओर दौडे; राजन् ! सोनेकी कलंगी और सुवर्णमय अन्य भूषणोंसे भूषित सौ सौ सहस्र सहस्र घोडे नकुल और सहदेवके अस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३० ॥

पतद्भिश्च हयै राजन्समास्तीर्यत मेदिनी ।
निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः ।
हयैर्बभौ नरश्रेष्ठ नानारूपधरैर्धरा ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! उस समय वहांपर पृथ्वी मरे हुए घोडोंके शरीरसे पूर्ण हो गई । कितने ही घोडोंकी जीभ कट गई, कितने ही लम्बी सांस लेते हुए हांफने लगे; कितने ही घोडे अव्यक्त शब्द करने लगे । कितने ही मर गये और इस प्रकार विभिन्न रूपधारी बहुतसे घोडोंसे आच्छादित होनेके कारण पृथ्वीकी अद्भुत शोभा दिखती थी ॥ ३१ ॥

अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत वाजिभिः ।
प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशां पते ॥ ३२ ॥

हे भारत ! प्रजापते ! रणभूमिमें नाना स्थानोंपर अर्जुनके हाथसे मारे गये सब राजाओंसे भरी हुई वह रणभूमि बडी भयङ्कर दिखाई देने लगी ॥ ३२ ॥

रथैर्भग्नैर्ध्वजैश्छिन्नैश्छत्रैश्च सुमहाप्रभैः ।
हारैर्निष्कैः सकेयूरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ ३३ ॥

टूटे रथ, कटी ध्वजा, छिन्न भिन्न अत्यन्त प्रकाशमान छत्र, सोनेके हार, निष्क–केयूर, कुण्डलसे शोभायमान मस्तक ॥ ३३ ॥

उष्णीषैरपविद्धैश्च पताकाभिश्च सर्वशः ।
अनुकर्षैः शुभै राजन्योक्त्रैश्चाप्यसुरश्मिभिः ।
संछन्ना वसुधा भाति वसन्ते कुसुमैरिव ॥ ३४ ॥

गिरे हुए उष्णीष, पताका, रथके नीचेकी सुंदर लकडी, बागडोर सहित चाबूक आदि इन सब वस्तुओंसे आच्छादित हुई वह पृथ्वी ऐसी जान पडती थी, जैसे वसन्त ऋतुमें वन फूलोंसे शोभायमान लगता है ॥ ३४ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डूनामपि भारत ।
क्रुद्धे शान्तनवे भीष्मे द्रोणे च रथसत्तमे ॥ ३५ ॥
अश्वत्थाम्नि कृपे चैव तथैव कृतवर्मणि ।
तथेतरेषु क्रुद्धेषु तावकानामपि क्षयः ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ३६२७ ॥

हे भारत ! शान्तनुनन्दन भीष्म, रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्माके क्रुद्ध होनेपर पाण्डवोंकी सेनाके वीरोंका इसी प्रकारसे नाश होने लगा। और पाण्डवोंके पक्षके सब वीरोंके क्रुद्ध होनेपर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका भी इसही प्रकार नाश होने लगा ॥ ३५–३६ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ ३६२७ ॥

: ८६ :

सञ्जय उवाच

वर्तमाने तथा रौद्रे राजन्वीरवरक्षये ।
शकुनिः सौबलः श्रीमान्पाण्डवान्समुपाद्रवत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! उस बडे बडे वीरोंके नाश करनेवाले भयङ्कर संग्रामके उपस्थित होनेपर सुबलपुत्र श्रीमान् राजा शकुनि पाण्डवोंकी ओर दौडे ॥ १ ॥

तथैव सात्वतो राजन्हार्दिक्यः परवीरहा।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २ ॥

राजन् ! इसी प्रकार महाबलवान् शत्रुवीरनाशन सात्वत हार्दिक्य भी उस युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश करनेके वास्ते वेगसे आगे बढे ॥ २ ॥

ततः काम्बोजमुख्यानां नदीजानां च वाजिनाम्।
आरट्टानां महीजानां सिन्धुजानां च सर्वशः ॥ ३ ॥
वनायुजानां शुभ्राणां तथा पर्वतवासिनाम्।
ये चापरे तित्तिरजा जवना वातरंहसः ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर काम्बोज देशके अच्छे घोडे, नदीज, आरट्ट, महीज, सिन्धुदेशीय, सफेद रंगके वनायुदेशीय और पर्वतीय प्रान्तोंमें होनेवाले सुंदर घोडे— इन सबकी बहुत बडी सेना तथा उनके साथ वायुके समान गमन करनेवाले तित्तिर प्रदेशके शीघ्रगामी घोडे भी थे ॥ ३–४ ॥

सुवर्णालंकृतैरेतैर्वर्मवद्भिः सुकल्पितैः
हयैर्वातजवैर्मुख्यैः पाण्डवस्य सुतो बली।
अभ्यवर्तत तत्सैन्यं हृष्टरूपः परन्तपः ॥ ५ ॥

वे सब सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित, शरीरोंमें कवच बंधे हुए और सुन्दर साजबाजसे सजाये हुए थे। पवनके समान वेगगामी मुख्य मुख्य घोडोंके सहित पाण्डुनन्दन अर्जुनका पुत्र शत्रुनाशन पराक्रमी बलवान् इरावान् हर्षित होकर उस सम्पूर्ण सेनासे युद्ध करनेके निमित्त आकर उपस्थित हुए ॥ ५ ॥

अर्जुनस्याथ दायाद इरावान्नाम वीर्यवान्।
सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥

अर्जुनका पराक्रमी पुत्र इरावान् नामका नागराज कौरव्यकी पुत्रीके गर्भसे बुद्धिमान् अर्जुन-द्वारा उत्पन्न किया गया था ॥ ६ ॥

ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥ ७ ॥

पक्षियोंके राजा गरुडने जब महातमा ऐरावतके पुत्रीके पतिको मार डाला था तब उन्होंने वह पुत्रहीन, अत्यन्त दीन और दुःखित देखकर अर्जुनको अर्पित की थी ॥ ७ ॥

भार्यार्थे तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगाम्।
एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः ॥ ८ ॥

अर्जुनने भी कामके अधीन हुई उस नागराज पुत्रीको अपनी भार्या बनाई; इसी प्रकारसे इरावान् दूसरेके क्षेत्रमें अर्जुनसे उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥

स नागलोके संवृद्धो मात्रा च परिरक्षितः ।
पितृव्येण परित्यक्तः पार्थद्वेषाद्दुरात्मना ॥ ९ ॥

वह नागलोकमें माताके पोषणसे बडे हुए थे और सब प्रकारसे वहीं उसकी रक्षा की गयी थी। उनके दुष्टात्मा पितृव्यने अर्जुनके ऊपर द्वेष करके उन्हें त्याग दिया ॥ ९ ॥

रूपवान्वीर्यसंपन्नो गुणवान्सत्यविक्रमः ।
इन्द्रलोकं जगामाशु श्रुत्वा तत्रार्जुनं गतम् ॥ १० ॥

इरावान् रूपवान्, बलवान्, गुणवान् और सत्य पराक्रमी हो गये। बडे होनेपर उन्होंने सुना कि उनके पिता अर्जुन इन्द्रलोकमें गये हुए हैं, तब वे शीघ्रही वहां गये ॥ १० ॥

सोऽभिगम्य महात्मानं पितरं सत्यविक्रमम् ।
अभ्यवादयदव्यग्रो विनयेन कृताञ्जलिः ।
इरावानस्मि भद्रं ते पुत्रश्चाहं तवाभिभो ॥ ११ ॥

इन्द्रलोकमें इरावान्ने सत्य पराक्रमी महात्मा अपने पिता अर्जुनके निकट गमन करके, स्थिर चित्तसे उन्हें प्रणाम कर, विनयपूर्वक हाथ जोडके निवेदन किया कि " हे महाराज! तुम्हारा कल्याण होवे; मैं इरावान् नामक तुम्हारा पुत्र हूं; ॥ ११ ॥

मातुः समागमो यश्च तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ।
तच्च सर्वं यथावृत्तमनुसस्मार पाण्डवः ॥ १२ ॥

और जिस भांतिसे उनकी माताके साथ अर्जुनका जो समागम हुआ था, इरावान्ने उसे भी वर्णन किया। तब पाण्डुनन्दन अर्जुनको पुराना वृत्तान्त सब पूर्ण रीतिसे स्मरण हो गया ॥ १२ ॥

परिष्वज्य सुतं चापि सोऽऽत्मनः सदृशं गुणैः ।
प्रीतिमानभवत्पार्थो देवराजनिवेशने ॥ १३ ॥

यह इन्द्रके स्थानपर आत्मसदृश गुणयुक्त इरावान् पुत्रको आलिङ्गन करके अर्जुन प्रसन्न हुए और उनको देवराजके भवनमें ले गये ॥ १३ ॥

सोऽर्जुनेन समाज्ञप्तो देवलोके तदा नृप ।
प्रीतिपूर्वं महाबाहुः स्वकार्यं प्रति भारत
युद्धकाले त्वयास्माकं साह्यं देयमिति प्रभो । ॥ १४ ॥

हे राजन्! भारत! अर्जुन उस समय देवलोकमें प्रीतिपूर्वक अपने महाबाहु पुत्र इरावान्को अपना सब कार्य बताते हुए, यह वचन बोले, " शक्तिशाली पुत्र! तुम युद्धके समयमें हमारी सहायता करना। " ॥ १४ ॥

बाढमित्येवमुक्त्वा तु युद्धकाल उपागतः ।
कामवर्णजवैरश्वैः संवृतो बहुभिर्नृप ॥ १५ ॥

तब इरावान्‌ने बहुत अच्छा कहकर अर्जुनकी उस आज्ञाको स्वीकार किया। हे महाराज! अब युद्धका समय उपस्थित होनेपर, वह इच्छानुसार उत्तम रूप और वेगवान् घोडोंके समूहसे घिरकर रणभूमिमें उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

ते हयाः काञ्चनापीडा नानावर्णा मनोजवाः ।
उत्पेतुः सहसा राजन्हंसा इव महोदधौ ॥ १६ ॥

सुवर्णभूपित शिरोभूषण धारण करनेवाले, नाना वार्णोसे युक्त और मनके समान वेगशाली उनके सब घोडे सहसा मानो महासमुद्रके बीच उडनेवाले हंसोंके समान रणभूमिमें उपस्थित हुए ॥ १६ ॥

ते त्वदीयान्समासाद्य हयसङ्घान्महाजवान् ।
क्रोडैः क्रोडानभिघ्नन्तो घोणाभिश्च परस्परम् ।
निपेतुः सहसा राजन्सुवेगाभिहता भुवि ॥ १७ ॥

ये सब घोडे तुम्हारे मनके समान महा वेगवान् घोडोंके बीच गमन करके आपसमें छातीसे छाती, नाकसे नाक, शिरसे शिर लगाकर चोट करने लगे। वे सहसा वेगपूर्वक टकराते हुए रणभूमिमें गिरने लगे ॥ १७ ॥

निपतद्भिस्तथा तैश्च हयसङ्घैः परस्परम् ।
शुश्रुवे दारुणः शब्दः सुपर्णपतने यथा ॥ १८ ॥

जैसे गरुडपक्षियोंके अकस्मात् गिरनेसे भयानक शब्द होता है, वैसे ही घोडोंके समुदाय परस्पर टकराकर गिरनेसे घोर शब्द होने लगा ॥ १८ ॥

तथैव च महाराज समेत्यान्योन्यमाहवे ।
परस्परवधं घोरं चक्रुस्ते हयसादिनः ॥ १९ ॥

हे राजन्! इसी प्रकार तुम्हारी और पांडवोंकी सेनाके घोडोंके सवार लोग युद्धमें परस्पर वीरोंपर आक्रमण करके घोर रूपसे एक दूसरेका वध करने लगे ॥ १९ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम् ।
उभयोरपि संशान्ता हयसङ्घाः समन्ततः ॥ २० ॥

इस प्रकार उस महा घोर तुमुल संग्राममें चारों ओर दोनों सेनाके घोडोंके समुदाय नष्ट होने लगे ॥ २० ॥

प्रक्षीणसायकाः शूरा निहताश्वाः श्रमातुराः ।
विलयं समनुप्राप्तास्तक्षमाणाः परस्परम् ॥ २१ ॥

शूरवीर योद्धाओंके पास बाण समाप्त हो गये, और उनके घोडे भी मर गये। वे परिश्रमसे पीडित हो परस्पर आघात करते हुए पृथ्वीमें गिर गये ॥ २१ ॥

ततः क्षीणे हयानीके किंचिच्छेषे च भारत ।
सौबलस्यात्मजाः शूरा निर्गता रणमूर्धनि ॥ २२ ॥

भारत ! इसके अनन्तर उस घोडोंकी सेनाका नाश होनेमें और कुछ बाकी रहनेपर शकुनिके शूरवीर पुत्र युद्धके लिये निकले ॥ २२ ॥

वायुवेगसमस्पर्शा जवे वायुसमांस्तथा ।
आरुह्य शीलसंपन्नान्वयःस्थांस्तुरगोत्तमान् ॥ २३ ॥
गजो गवाक्षो वृषकश्चर्मवानार्जवः शुकः ।
षडेते बलसंपन्ना निर्ययुर्महतो बलात् ॥ २४ ॥

पराक्रमी, युद्ध जाननेवाले, भयङ्कर रूपवाले गव, गवाक्ष, वृषभ, चर्मवान्, आर्जव और शुक नामक महाबलवान् शकुनिके छः पुत्र राजा शकुनि और अपनी महाबलवान् सेनाके सहित जिनका स्पर्श वायुवेगके समान दुःसह, वायुके समान वेगवान्, शीलसंपन्न नयी अवस्थावाले उत्तम घोडोंपर चढके उस महा सेनासे निकलकर इरावान्की ओर दौडे ॥ २३–२४ ॥

वार्यमाणाः शकुनिना स्वैश्च योधैर्महाबलैः ।
संनद्धा युद्धकुशला रौद्ररूपा महाबलाः ॥ २५ ॥

शकुनिने उन्हें मना किया, उसी प्रकार दूसरें योद्धाओंने भी उन्हें रोका, तथापि वे युद्ध कुशल, महाबलवान् भयंकर रूपवाले कवच आदिसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये निकल पडे ॥२५॥

तदनीकं महाबाहो भित्त्वा परमदुर्जयम् ।
बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः ।
विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्धदुर्मदाः ॥ २६ ॥

हे राजन् ! युद्धमें पराक्रमी युद्धदुर्मद गान्धार देशी उन वीरोंने स्वर्गप्राप्तिके निमित्त हर्षित और विजयके अभिलाषी होकर बडी सेनाके सहित उस महाघोर दुर्जय सेनाव्यूहको भेद करके हर्ष और उत्साहसे भरकर उसमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥

तान्प्रविष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान् ।
अब्रवीत्समरे योधान्विचित्राभरणायुधान् ॥ २७ ॥

तब पराक्रमी इरावान उनको सेनाके बीच प्रवेश करते देखकर, समरभूमिमें विचित्र कवच धारण करनेवाले और भयंकर शस्त्रधारी योद्धाओंसे बोले ॥ २७ ॥

यथैते धार्तराष्ट्रस्य योधाः सानुगवाहनाः ।
हन्यन्ते समरे सर्वे तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २८ ॥

हे योद्धा लोगो ! ये सब दुर्योधनके योद्धा लोग जिस प्रकारसे अपने सेवको और वाहनोंके सहित मारे जावें, तुम लोग वही उपाय करो ॥ २८ ॥

बाढमित्येवमुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः ।
जघ्नुस्ते वै परानीकं दुर्जयं समरे परैः ॥ २९ ॥

इरावान्की सेनाके सब योद्धाओंने उनकी आज्ञा सुनते ही ' बहुत अच्छा ' कहकर, अपने शत्रुओंकी सब सेनाको जो रणभूमिमें दूसरोंके लिये दुर्जय थी, मार डाला ॥ २९ ॥

तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम्
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्यात्मजा रणे ।
इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३० ॥

अपनी सब सेनाको युद्धभूमिमें इरावान्की सेनाके वीरोंसे मरती हुई देखके सुबलके सभी पुत्र इसे सह नहीं सके और क्रुद्ध होकर इरावान् पर धावा करके समीप जाकर उनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥

ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परम् ।
ते शूराः पर्यधावन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ३१ ॥

और वे सब वीर प्रास आदि तीक्ष्ण अस्त्रोंसे प्रहार करके और एक दूसरेको प्रोत्साहन देते हुए, इरावान् पर आक्रमण करके उनको अत्यंत पीडित करने लगे ॥ ३१ ॥

इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः ।
स्रवता रुधिरेणाक्तस्तोत्त्रैर्विद्ध इव द्विपः ॥ ३२ ॥

इरावान उन महात्मा वीरोंके प्रास आदि तीक्ष्ण अस्त्रोंसे विद्ध होकर बहते हुए रुधिरसे पूरित हो गये । अंकुशसे घायल हुए हाथीके समान व्याकूल हो गये ॥ ३२ ॥

उरस्यपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः ।
एको बहुभिरत्यर्थं धैर्याद्राजन्न विव्यथे ॥ ३३ ॥

राजन् ! अकेले इरावान् उन सबके अस्त्रोंके प्रहारसे आगे-पीछे अगल-बगलमें सब स्थानोंमें अत्यन्त विद्ध होकर भी अत्यन्त धीरज अवलम्बन करनेके कारणसे दुःखित नहीं हुए ॥ ३३ ॥

इरावानथ संक्रुद्धः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः ।
मोहयामास समरे विद्ध्वा परपुरंजयः ॥ ३४ ॥

बरन शत्रु नगरीपर विजय पानेवाले इरावानने क्रुद्ध होकर समरमें उत्तम पानीसे बुझे हुए बाणोंसे उन सबको विद्ध करके मोहित कर दिया ॥ ३४ ॥

प्रासानुद्धृत्य सर्वांश्च स्वशरीरादरिन्दमः ।
तैरेव ताडयामास सुबलस्यात्मजान्रणे ॥ ३५ ॥

और शत्रुदमन इरावानने अपने शरीरमें विद्ध हुए प्रास आदि अस्त्रोंको वेगपूर्वक निकाल कर उससे ही युद्धभूमिमें सुबलपुत्रोंके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ३५ ॥

निकृष्य निशितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम् ।
पदातिस्तूर्णमागच्छज्जिघांसुः सौबलान्युधि ॥ ३६ ॥

अनन्तर सुबलपुत्रोंका नाश करनेके निमित्त मियानसे तीखी तलवार खींचके और ढाल लेकर शीघ्रताके सहित पैदल ही उनकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥

ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः ।
भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमथाद्रवन् ॥ ३७ ॥

तब सुबलपुत्रोंमें प्राणशक्ति पुनः प्राप्त हुई और उन्होंने सावधान होनेपर फिर क्रोध युक्त होकर इरावान्के समीप गमन किया ॥ ३७ ॥

इरावानपि खड्गेन दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
अभ्यवर्तत तान्सर्वान्सौबलान्बलदर्पितः ॥ ३८ ॥

बलवान् इरावान् भी तलवार ग्रहण करके हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उन सब सुबलपुत्रोंकी ओर वेगसे गमन करने लगे ॥ ३८ ॥

लाघवेनाथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः ।
अन्तरं नाध्यगच्छन्त चरन्तः शीघ्रगामिनः ॥ ३९ ॥

वह अकेले बडी फुर्तीसे चलते थे और वे सब सुबलपुत्रलोग शीघ्र गमन करनेवाले होते हुए भी, इरावानका कोई छिद्र न देख सके ॥ ३९ ॥

भूमिष्ठमथ तं संख्ये सम्प्रदृश्य ततः पुनः ।
परिवार्य भृशं सर्वे ग्रहीतुमुपचक्रमुः ॥ ४० ॥

उन सबोंने पुनः इरावान्को पृथ्वीपर गमन करते देखकर उन्हें भलीभांति घेर कर जीते ही ग्रहण करनेका विचार किया ॥ ४० ॥

अथाभ्याशगतानां स खड्गेनामित्रकर्शनः ।
उपहस्तावहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्यकृन्तत ॥ ४१ ॥

जब वे लोग उनके समीप पहुंचे, तब शत्रुनाशन इरावान्ने कभी दाहिने कभी बायें हाथसे तलवार घुमाकर उनके अंगोंको विच्छिन्न कर दिया ॥ ४१ ॥

आयुधानि च सर्वेषां बाहूनपि च भूषितान् ।
अपतन्त निकृत्ताङ्गा गता भूमिं गतासवः ॥ ४२ ॥

उन सबके शस्त्र और भूषणोंके सहित भुजाओंको काटने लगे। इस प्रकार प्रत्येक अवयव कट जानेसे वे प्राणशून्य हो मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ४२ ॥

वृषकस्तु महाराज बहुधा परिविक्षतः ।
अमुच्यत महारौद्रात्तस्माद्वीरावकर्तनात् ॥ ४३ ॥

महाराज ! वृषक क्षत विक्षत शरीर होकर बहुत घायल हुआ था, तो भी वीरोंका नाश करनेवाले उस महाभयंकर इरावान्के संग्रामसे किसी भांति जीवित बचे ॥ ४३ ॥

तान्सर्वान्पतितान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्ततः ।
अभ्यभाषत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ४४ ॥

सुबलपुत्रोंको इरावान्के हाथसे मरते देखकर राजा दुर्योधन भयभीत हो गये और अत्यंत क्रुद्ध होकर महाघोर शत्रुनाशन राक्षस अलम्बुसके पास दौडते गये ॥ ४४ ॥

आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं मायाविनमरिन्दमम् ।
वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बकवधेन वै ॥ ४५ ॥

ऋष्यशृङ्गका पुत्र राक्षस अलम्बुस महाधनुर्द्धर, मायावी और शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ था; पूर्वकालमें भीमसेनने जबसे बकासुरका संहार किया था, तबसे वह उनसे शत्रुता रखता था ॥ ४५ ॥

पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली ।
मायावी विप्रियं घोरमकार्षीन्मे बलक्षयम् ॥ ४६ ॥

उसके पास जाकर दुर्योधनने कहा, हे वीर ! देखो, अर्जुनका पुत्र मायावी बलवान् इरावानने मेरा अप्रिय करनेके लिए मेरी सेनाका नाश करके महादारुण कर्म किया है ॥ ४६ ॥

त्वं च कामगमस्तात मायास्त्रे च विशारदः ।
कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि ॥ ४७ ॥

हे तात ! तुम इच्छानुसार गमन करनेवाले, माया अस्त्रोंके जाननेवाले हो और कुन्तीकुमार भीमसेनके साथ तुम्हारी शत्रुता है, इससे तुम युद्धमें इस इरावान्का शीघ्र वध करो ॥४७॥

बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः ।
प्रययौ सिंहनादेन यत्रार्जुनसुतो युवा ॥ ४८ ॥

'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर महाभयङ्कर रूपवाला राक्षस अलम्बुस दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर सिंहनाद करता हुआ नवयुवक अर्जुनपुत्र इरावान्के निकट गया ॥ ४८ ॥

स्वारूढैर्युद्धकुशलैर्विमलप्रासयोधिभिः ।
वीरैः प्रहारिभिर्युक्तः स्वैरनीकैः समावृतः ।
निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महाबलम् ॥ ४९ ॥

अलम्बुस अपने वाहन पर चढके, युद्ध विद्याके जाननेवाले, विमल प्रासयोधी तथा प्रहार करनेमें समर्थ वीरोंके सङ्ग, अपनी सेनाके सहित होकर जो सवारियोंसे युक्त थी, समरभूमिमें महाबलवान् इरावान्के वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर वेगसे दौडा ॥ ४९ ॥

इरावानपि संक्रुद्धस्त्वरमाणः पराक्रमी ।
हन्तुकामममित्रघ्नो राक्षसं प्रत्यवारयत् ॥ ५० ॥

पराक्रमी शत्रुनाशन इरावान् भी क्रुद्ध होकर उनके मारनेकी इच्छा रखनेवाले उस राक्षस अलम्बुसको निवारण करनेमें बडी शीघ्रतासे प्रवृत्त हुए ॥ ५० ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसः सुमहाबलः ।
त्वरमाणस्ततो मायां प्रयोक्तुमुपचक्रमे ॥ ५१ ॥

अत्यन्त पराक्रमी अलम्बुसने इरावान्को संमुख आते देखके शीघ्रताके सहित मायाका विस्तार किया ॥ ५१ ॥

तेन मायामयाः क्लृप्ता हयास्तावन्त एव हि ।
स्वारूढा राक्षसैर्घोरैः शूलपट्टिशपाणिभिः ॥ ५२ ॥

उसने मायासे जिनपर शूल और पट्टिश हाथमें धारण करनेवाले घोर राक्षस बैठे हैं, ऐसे दो हजार घोडोंको उत्पन्न कर दिया ॥ ५२ ॥

ते संरब्धाः समागम्य द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
अचिराद्गमयामासुः प्रेतलोकं परस्परम् ॥ ५३ ॥

वे दो हजार प्रहारकुशल योद्धा क्रोधमें भरकर इरावान्के सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे। तब उन दोनों ओरके सेनाओंका परस्पर युद्ध होकर उसमें शीघ्रही दोनोंहीका नाश हो गया ॥ ५३ ॥

तस्मिंस्तु निहते सैन्ये तावुभौ युद्धदुर्मदौ ।
संग्रामे व्यवतिष्ठेतां यथा वै वृत्रवासवौ ॥ ५४ ॥

इसप्रकार जब दोनों ओरकी सब सेना मारी गई, तब दोनों युद्धदुर्मद बलवान् योद्धा इरावान् और अलम्बुस, वृत्रासुर और इन्द्रके समान समरभूमिमें डटकर युद्ध करने लगे ॥ ५४ ॥

आद्रवन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्धदुर्मदम् ।
इरावान्क्रोधसंरब्धः प्रत्यधावन्महाबलः ॥ ५५ ॥

महाबली इरावान् क्रोधित होकर युद्धदुर्मद राक्षस अलम्बुसको अपने संमुख आते देखकर शीघ्रताके सहित उनकी ओर दौडे ॥ ५५ ॥

समभ्याशगतस्याजौ तस्य खड्गेन दुर्मतेः ।
चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावापं च पञ्चकम् ॥ ५६ ॥

अनन्तर दुष्टबुद्धि राक्षस अलम्बुसके समीप आनेपर इरावान्‌ने तलवारसे उसके प्रकाशमान् धनुष भाथेको पांच खण्ड कर डाला ॥ ५६ ॥

स निकृत्तं धनुर्दृष्ट्वा खं जवेन समाविशत् ।
इरावन्तमभिक्रुद्धं मोहयन्निव मायया ॥ ५७ ॥

राक्षस अलम्बुस धनुषको कटता हुआ देखकर वेगपूर्वक आकाशमें गया, और उसने अत्यन्त क्रुद्ध इरावान्‌को अपनी मायासे मोहित कर दिया ॥ ५७ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य इरावानपि राक्षसम् ।
विमोहयित्वा मायाभिस्तस्य गात्राणि सायकैः
चिच्छेद सर्वमर्मज्ञः कामरूपो दुरासदः ॥ ५८ ॥

सब कर्मको जाननेवाले, पराक्रमी दुर्जय इरावान् भी माया विद्या जानते थे, और वह भी इच्छाके अनुसार रूप धारण कर सकते थे। जब राक्षस अलम्बुस आकाशमें गया, तब वह भी आकाशमें जाके अपनी मायासे उसे मोहित करके उसके शरीरको अपने अस्त्रोंसे काटने लगे ॥ ५८ ॥

तथा स राक्षसश्रेष्ठः शरैः कृत्तः पुनः पुनः ।
संबभूव महाराज समवाप च यौवनम् ॥ ५९ ॥

अलम्बुस बार बार कटकर भी फिर ज्योंका त्यों होने लगा। हे राजन्! वह नयी जवानी प्राप्त कर लेता था ॥ ५९ ॥

माया हि सहजा तेषां वयो रूपं च कामजम् ।
एवं तद्राक्षसस्याङ्गं छिन्नं छिन्नं व्यरोहत ॥ ६० ॥

क्योंकि राक्षसोंमें मायाका बल स्वाभाविक होता है, अनेक व्यापार सहज और अवस्था तथा सब प्रकारका मूर्ति धारण कार्य भी उनकी इच्छानुसार हो सकता है; इसी कारणसे उसका शरीर बार बार कटके भी फिर पहिलेके समान होने लगा ॥ ६० ॥

इरावानपि संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ।
परश्वधेन तीक्ष्णेन चिच्छेद च पुनः पुनः ॥ ६१ ॥

इरावान् भी अत्यंत कुपित होकर उस महा बलवान् राक्षसको तीक्ष्ण फरसेसे वार वार काटने लगे ॥ ६१ ॥

स तेन बलिना वीरश्छिद्यमान इव द्रुमः ।
राक्षसो व्यनदद्धोरं स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ ६२ ॥

वह वीर राक्षस बलवान् इरावानूके अस्त्रोंसे कटकर भयानक आर्तनाद करने लगा; उसका वह महाघोर शब्द भयंकर प्रतीत होता था ॥ ६२ ॥

परश्वधक्षतं रक्षः सुस्राव रुधिरं बहु ।
ततश्चुक्रोध बलवांश्चक्रे वेगं च संयुगे ॥ ६३ ॥

बलवान् राक्षस परश्वध अस्त्रसे क्षत विक्षत शरीर होकर बहुतही रुधिर बहाता हुआ, समर-भूमिमें अत्यन्त क्रोधपूर्वक वेग प्रकट करने लगा ॥ ६३ ॥

आर्श्यशृङ्गिस्ततो दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितम् ।
कृत्वा घोरं महद्रूपं ग्रहीतुमुपचक्रमे ।
संग्रामशिरसो मध्ये सर्वेषां तत्र पश्यताम् ॥ ६४ ॥

और रणभूमिमें अपने शत्रुको प्रबल हुआ देखकर अत्यन्त भयानक तथा विशाल रूप धारण करके उसे ग्रहण करनेकी इच्छा की। युद्धके समय सबके संमुखमें ही देखते देखते वह इरावानूको पकडना चाहता था ॥ ६४ ॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं मायां राक्षसस्य महात्मनः ।
इरावानपि संक्रुद्धो मायां स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ ६५ ॥

इरावानूने भी क्रोधित होकर उस महामना राक्षसकी ऐसी माया प्रगट करना आरम्भ किया ॥ ६५ ॥

तस्य क्रोधाभिभूतस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः ।
योऽन्वयो मातृकस्तस्य स एनमभिपेदिवान् ॥ ६६ ॥

जब वह युद्धसे पीछे न हटके अत्यन्त क्रुद्ध हुए, तब उनके मातृवंशीय सब नाग उनके समीप उनकी सहायताके लिये आ पहुंचे ॥ ६६ ॥

स नागैर्बहुशो राजन्सर्वतः संवृतो रणे ।
दधार सुमहद्रूपमनन्त इव भोगवान् ।
ततो बहुविधैर्नागैश्छादयामास राक्षसम् ॥ ६७ ॥

राजन्! समरभूमिमें बहुतसे नागोंसे घिरे हुए इरावान् अनेक फणोंसे युक्त होकर विशाल शरीरवाले शेष नागके समान बडा रूप धारण करके शोभित होने लगे; और राक्षस अलम्बुसको नाना भांतिके नागोंने जाकर छिपा लिया ॥ ६७ ॥

छाद्यमानस्तु नागैः स ध्यात्वा राक्षसपुङ्गवः ।
सौपर्णं रूपमास्थाय भक्षयामास पन्नगान् ॥ ६८ ॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ अलम्बुसने अनेक नागोंके वेगसे छिपके क्षणभर सोच करके गरुडरूप धारण करके उन सब सर्पोंको भक्षण कर डाला ॥ ६८ ॥

मायया भक्षिते तस्मिन्नन्वये तस्य मातृके ।
विमोहितमिरावन्तमसिना राक्षसोऽवधीत् ॥ ६९ ॥

जब राक्षस अलम्बुसने इरावान्‌के मातृवंशके सब नागोंको भक्षण कर डाला, तब अत्यन्त ही मोहित हुए इरावान्‌को तलवारसे मार डाला ॥ ६९ ॥

सकुण्डलं समुकुटं पद्मेन्दुसदृशप्रभम् ।
इरावतः शिरो रक्षः पातयामास भूतले ॥ ७० ॥

इरावान्‌के कुण्डल और मुकुट भूषित तथा कमल और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान् शिरको काटकर राक्षसने पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ७० ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे राक्षसेनार्जुनात्मजे ।
विशोकाः समपद्यन्त धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ७१ ॥

हे प्रजानाथ ! इस प्रकार अर्जुन पुत्र वीर इरावान्‌को राक्षस अलम्बुसके हाथसे मरते हुए देखकर, राजा दुर्योधन सहित आपके सभी पुत्र और तुम्हारी सब सेनाके योद्धा राजाओंके सहित शोकसे रहित हुए ॥ ७१ ॥

तस्मिन्महति संग्रामे तादृशे भैरवे पुनः ।
महान्व्यतिकरो घोरः सेनयोः समपद्यत ॥ ७२ ॥

फिर उस महाभङ्कर संग्रामभूमिमें दोनों सेनाके बीच महा घोर संमिश्रण होने लगा ॥ ७२ ॥

हया गजाः पदाताश्च विमिश्रा दन्तिभिर्हताः ।
रथाश्च दन्तिनश्चैव पत्तिभिस्तत्र सूदिताः ॥ ७३ ॥
तथा पत्तिरथौघाश्च हयाश्च बहवो रणे ।
रथिभिर्निहता राजंस्तव तेषां च संकुले ॥ ७४ ॥

राजन् ! आपके और पाण्डवोंके उस संकुल युद्धमें दोनों पक्षोंके मिले हुए हाथी, घोडे और पैदल सेनाके सब योद्धा दन्तार हाथियोंसे मारे गये । रथ, घोडे और हाथियोंको पैदल योद्धाओंने मारा, और बहुतसे पैदल, रथियोंके समूह और घुडसवार रथी योद्धाओंसे मारे गये ॥ ७३–७४ ॥

अजानन्नर्जुनश्चापि निहतं पुत्रमौरसम् ।
जघान समरे शूरान्राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः ॥ ७५ ॥

अर्जुनने अपने औरस पुत्र इरावान्‌के वधका वृत्तान्त नहीं सुना था, वह समरांगणमें भीष्मकी रक्षा करनेवाले शूर राजा क्षत्रियोंका नाश कर रहे थे ॥ ७५ ॥

तथैव तावका राजन्सृञ्जयाश्च महाबलाः ।
जुह्वतः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ७६ ॥

हे राजन् ! इसी प्रकार महाबलवान् तुम्हारी ओरके योद्धा ओर सृञ्जय प्राणकी आशा छोडकर समरभूमिमें एक दूसरेका वध करने लगे ॥ ७६ ॥

मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त समवेताः परस्परम् ॥ ७७ ॥

अनेक योद्धा खुले केश, कवच और रथसे हीन और धनुषके कटने पर केवल आपसमें भिडकर बाहुयुद्ध करने लगे ॥ ७७ ॥

तथा मर्मातिगैर्भीष्मो निजघान महारथान् ।
कम्पयन्समरे सेनां पाण्डवानां महाबलः ॥ ७८ ॥

महाबलवान् भीष्म युद्धभूमिमें पाण्डवोंकी सेनाको कंपाते हुए अपने मर्मभेदी बाणोंसे उनके महारथियोंका वध करने लगे ॥ ७८ ॥

तेन यौधिष्ठिरे सैन्ये बहवो मानवा हताः ।
दन्तिनः सादिनश्चैव रथिनोऽथ हयास्तथा ॥ ७९ ॥

उन्होंने युधिष्ठिरकी सेनाके अनेक पैदलों, सवारों सहित हाथियों, घुडसवारों और रथियोंका नाश किया ॥ ७९ ॥

तत्र भारत भीष्मस्य रणे दृष्ट्वा पराक्रमम् ।
अत्यद्भुतमपश्याम शक्रस्येव पराक्रमम् ॥ ८० ॥

हे भारत ! उस युद्धमें मैं भीष्मका इन्द्रके समान अद्भुत पराक्रम देखने लगा ॥ ८० ॥

तथैव भीमसेनस्य पार्षतस्य च भारत ।
रौद्रमासीत्तदा युद्धं सात्वतस्य च धन्विनः ॥ ८१ ॥

भारत ! इसी प्रकार भीमसेन, धृष्टद्युम्न और धनुर्धारी सात्यकिका भी अद्भुत पराक्रम युक्त भयंकर युद्ध चल रहा था ॥ ८१ ॥

दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रान्तं पाण्डवान्भयमाविशत् ।
एक एव रणे शक्तो हन्तुमस्मान्ससैनिकान् ॥ ८२ ॥
किं पुनः पृथिवीशूरैर्योधव्रातैः समावृतः ।
इत्यब्रुवन्महाराज रणे द्रोणेन पीडिताः ॥ ८३ ॥

द्रोणाचार्यके पराक्रमको देखकर जो पाण्डवलोग मनमें भयभीत हो गये, महाराज ! युद्धस्थलमें वह सब द्रोणाचार्यके अस्त्रोंसे पीडित होकर कहने लगे, कि " समरभूमिमें द्रोणाचार्य अकेले ही हम लोगोंका सेनाके सहित वध करनेकी शक्ति रखते हैं । उस पर भी वह पृथ्वीमें विख्यात शूरवीर योद्धाओंके समुदायोंसे युक्त हैं; इससे वह क्या नहीं कर सकेंगे ? " ॥८२-८३॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे भरतर्षभ ।
उभयोः सेनयोः शूरा नामृष्यन्त परस्परम् ॥ ८४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसे भयानक संग्राममें दोनों ओरके वीर आपसमें एक दूसरेके प्रहारको न सह सके; ॥ ८४ ॥

आविष्टा इव युध्यन्ते रक्षोभूता महाबलाः ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च संरब्धास्तात धन्विनः ॥ ८५ ॥

तात ! आपके और पाण्डव पक्षके बलवान् धनुर्धर वीर क्रुद्ध होकर मानो राक्षस और पिशाचोंकी भांति एक दूसरेसे युद्ध करने लगे ॥ ८५ ॥

न स्म पश्यामहे कंचिद्यः प्राणान्परिरक्षति ।
संग्रामे दैत्यसङ्काशे तस्मिन्योद्धा नराधिप ॥ ८६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ३७१२ ॥

नराधिप ! देव असुरोंके युद्धके समान उस वीरोंके महाघोर युद्धमें किसीको भी मैंने प्राणकी रक्षाके निमित्त यत्न करते हुए नहीं देखा ॥ ८६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥ ३७१२ ॥

: ८७ :

धृतराष्ट्र उवाच

इरावन्तं तु निहतं दृष्ट्वा पार्था महारथाः ।
संग्रामे किमकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! महारथी कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने इरावान्‌को युद्धमें मरा हुआ देखकर क्या किया; वह तुम मुझसे वर्णन करो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

इरावन्तं तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः ।
व्यनदत्सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! भीमसेन-पुत्र राक्षस घटोत्कच इरावान्‌को युद्धमें मरते देखकर बडे जोरसे भयंकर शब्द करने लगा ॥ २ ॥

नदतस्तस्य शब्देन पृथिवी सागराम्बरा ।
सपर्वतवना राजंश्चचाल सुभृशं तदा ।
अन्तरिक्षं दिशश्चैव सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ॥ ३ ॥

राजन् ! उस समय उसकी महाघोर गर्जनासे समुद्र, आकाश, पर्वत और वनों सहित पृथ्वी जोर जोरसे हिलने लगी । अन्तरिक्ष, सम्पूर्ण दिशाएं और समस्त कोणोंके प्रदेश भी कम्पित होने लगे ॥ ३ ॥

तं श्रुत्वा सुमहानादं तव सैन्यस्य भारत ।
ऊरुस्तम्भः समभवद्वेपथुः स्वेद एव च ॥ ४ ॥

भारत ! उस महाघोर शब्दको सुनकर तुम्हारी सेनाके वीरोंकी जांघे अकड गयीं, उनके शरीर कांपने लगे और उनके शरीरसे पसीना निकलने लगा ॥ ४ ॥

सर्व एव च राजेन्द्र तावका दीनचेतसः ।
सर्पवत्समवेष्टन्त सिंहभीता गजा इव ॥ ५ ॥

हे राजन् ! तुम्हारी ओरके सब वीर दीनचित्त हो सिंहसे डरे हुए हाथियोंकी भांति भयभीत होकर सर्पवत् व्याकुल हो गये ॥ ५ ॥

निनदत्सुमहानादं निर्घातमिव राक्षसः ।
ज्वलितं शूलमुद्यम्य रूपं कृत्वा विभीषणम् ॥ ६ ॥

राक्षस घटोत्कचने वज्रके समान महाघोर शब्द करके भयंकर मूर्ति धारण कर प्रकाशमान् एक प्रचण्ड शूल ग्रहण करके ॥ ६ ॥

नानाप्रहरणैर्घोरैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः ।
आजगाम सुसंक्रुद्धः कालान्तकयमोपमः ॥ ७ ॥

नाना भांतिके घोर अस्त्र शस्त्र धारण करनेवाले बडे बडे राक्षसोंके सहित युद्धके निमित्त रणभूमिमें आकर, काल, अन्तक और यमके समान क्रुद्ध होकर आपकी सेनाका संहार किया ॥ ७ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
स्वबलं च भयात्तस्य प्रायशो विमुखीकृतम् ॥ ८ ॥

भयङ्कर मूर्त्तिवाले अत्यन्त क्रुद्ध घटोत्कचको आक्रमण करते देखकर अपनी सेना उसके भयसे विकल होकर प्रायः युद्धसे विमुख होकर भागने लगी ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा घटोत्कचमुपाद्रवत्।
प्रगृह्य विपुलं चापं सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ९ ॥

तब राजा दुर्योधन अपना दृढ धनुष ग्रहण करके, बार बार सिंहके समान गर्जना करते हुए घटोत्कचकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

पृष्ठतोऽनुययौ चैनं स्रवद्भिः पर्वतोपमैः।
कुञ्जरैर्दशसाहस्रैर्वङ्गानामधिपः स्वयम् ॥ १० ॥

स्वयं वङ्ग देशके राजा मदकी धारा बहानेवाले पर्वताकार दस हजार हाथियोंकी सेनाके सहित दुर्योधनके अनुगामी हुए ॥ १० ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य गजानीकेन संवृतम्।
पुत्रं तव महाराज चुकोप स निशाचरः ॥ ११ ॥

महाराज ! राक्षस घटोत्कच हाथियोंकी सेनासे युक्त तुम्हारे पुत्रको आते हुए देखकर उनके ऊपर अत्यन्त ही क्रुद्ध हुआ ॥ ११ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
राक्षसानां च राजेन्द्र दुर्योधनबलस्य च ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! इसके अनन्तर राक्षसोंसे दुर्योधनकी सेनाका महाघोर, भयङ्कर रोमांचकारी युद्ध होने लगा ॥ १२ ॥

गजानीकं च सम्प्रेक्ष्य मेघवृन्दमिवोद्यतम्।
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा राक्षसाः शस्त्रपाणयः ॥ १३ ॥

अस्त्रशस्त्रधारी राक्षसोंने घिरी हुई बादलकी घटाके समान हाथीयोंकी सेनाको आई हुई देखकर क्रोधपूर्वक उसकी ओर धावा किया ॥ १३ ॥

नदन्तो विविधान्नादान्मेघा इव सविद्युतः।
शरशक्त्यृष्टिनाराचैर्निघ्नन्तो गजयोधिनः ॥ १४ ॥

मानो बिजलीके सहित बादलोंके समान विविध भांतिसे गर्जते हुए, धनुष-बाण, ऋष्टि और शक्ति, तथा नाराच ग्रहण करके हाथियोंकी सेनापर प्रहार करना आरम्भ किया ॥ १४ ॥

भिण्डिपालैस्तथा शूलैर्मुद्गरैः सपरश्वधैः।
पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च निजघ्नुस्ते महागजान् ॥ १५ ॥

फिर भिन्डिपाल, त्रिशूल, मुद्गर, परशु, पहाडके शिखर और वृक्षोंसे बडे बडे हाथियोंका वध करने लगे ॥ १५ ॥

भिन्नकुम्भान्विरुधिरान्भिन्नगात्रांश्च वारणान् ।
अपश्याम महाराज वध्यमानान्निशाचरैः ॥ १६ ॥

हे भारत ! जब वे सब राक्षस हाथियोंका वध करने लगे, तब उन हाथियोंसे कितनोंके कुम्भस्थल दो खंडोंमें बंट गये, कितनोंका पेट फट गया, कितने रुधिर वमन करने लगे और कितने ही हाथियोंके शरीर क्षतविक्षत होगये ॥ १६ ॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु भग्नेषु गजयोधिषु ।
दुर्योधनो महाराज राक्षसान्समुपाद्रवत् ॥ १७ ॥

महाराज ! जब इस प्रकारसे हाथियोंकी सेनाका नाश होने लगा और गजयोधी पुरुष भग्न हुए, तब राजा दुर्योधन राक्षसोंकी ओर दौडे ॥ १७ ॥

अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
मुमोच निशितान्बाणान्राक्षसेषु महाबलः ॥ १८ ॥

महाबलवान् राजा दुर्योधन क्रोधके वशमें होकर अपने प्राणके त्यागनेका निश्चय करके उन राक्षसोंके ऊपर उत्तम पानीमें बुझे हुए चोखे बाणोंको वर्षाने लगे ॥ १८ ॥

जघान च महेष्वासः प्रधानांस्तत्र राक्षसान् ।
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! महाधनुर्द्धर क्रोधमें भरे हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने उनमेंसे मुख्य मुख्य राक्षसोंका वध किया ॥ १९ ॥

वेगवन्तं महारौद्रं विद्युज्जिह्वं प्रमाथिनम् ।
शरैश्चतुर्भिश्चतुरो निजघान महारथः ॥ २० ॥

महारथी दुर्योधनने वेगवान्, महारौद्र, विद्युज्जिह्व और प्रमाथी, इन चार राक्षसोंको चार चार बाणोंसे मार डाला ॥ २० ॥

ततः पुनरमेयात्मा शरवर्षं दुरासदम् ।
मुमोच भरतश्रेष्ठ निशाचरबलं प्रति ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर पराक्रमी अमेयात्मा दुर्योधन राक्षसोंकी सेना पर बार बार तीक्ष्ण दुर्धर्ष बाणोंको वर्षाने लगे ॥ २१ ॥

तत्तु दृष्ट्वा महत्कर्म पुत्रस्य तव मारिष ।
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल भैमसेनिर्महाबलः ॥ २२ ॥

मारिष ! भीमसेनका महाबलवान् पुत्र घटोत्कच आपके पुत्र दुर्योधनके ऐसे कठिन कर्मको देखकर क्रोधसे जलने लगा ॥ २२ ॥

विस्फार्य च महच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
अभिदुद्राव वेगेन दुर्योधनमरिंदमम् ॥ २३ ॥

वह इन्द्रके वज्रके समान शब्द करनेवाला अपना प्रचण्ड धनुष खींच करके शत्रुनाशन दुर्योधनकी ओर वेगसे दौडा ॥ २३ ॥

तमापतन्तमुद्वीक्ष्य कालसृष्टमिवान्तकम् ।
न विव्यथे महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २४ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन उसे कालप्रेरित दण्डधारी यमराजके समान संमुख आते देखकर भी विकल नहीं हुए ॥ २४ ॥

अथैनमब्रवीत्क्रुद्धः क्रूरः संरक्तलोचनः ।
ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः
यच्च ते पाण्डवा राजंश्छलद्यूते पराजिताः ॥ २५ ॥

भीमसेनका अत्यन्त क्रूर पुत्र राक्षस घटोत्कच क्रोधसे लाल नेत्र करके राजा दुर्योधनसे बोला, रे दुष्ट क्षत्रिय ! तूने जो जो नीच कर्म करके मेरे पिता आदिको छलसे जुएमें पराजित करके बहुत दिनोंतक वनवासी किया था, ॥ २५ ॥

यच्चैव द्रौपदी कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ।
सभामानीय दुर्बुद्धे बहुधा क्लेशिता त्वया ॥ २६ ॥

दुर्बुद्धि नरेश ! द्रुपदकुमारी कृष्णा एक वस्त्रधारिणी, रजस्वला यशस्विनीको सभामें बुलाकर अत्यन्त क्लेश दिया था; ॥ २६ ॥

तव च प्रियकामेन आश्रमस्था दुरात्मना ।
सैन्धवेन परिक्लिष्टा परिभूय पितॄन्मम । ॥ २७ ॥

और मेरे पिता आदिके वनवासी होनेपर दुरात्मा सिन्धुराज जयद्रथने तेरे प्रियकार्य करनेकी इच्छासे, जब द्रौपदी आश्रममें निवास करती थी, तब उसे ग्रहण करके जो जो मेरे पितरोंकी अवहेलना करके अत्यन्त क्लेश दिया था, ॥ २७ ॥

एतेषामवमानानामन्येषां च कुलाधम ।
अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ २८ ॥

कुलाधर्म ! यदि तू आज युद्धमें मेरे संमुखसे नहीं भाग जावेगा तो आज ही मैं तुझको इन सब अपमान और जुएकी खेल तथा दूसरे सब पापोंका प्रतिफल अवश्य ही प्रदान करूंगा ॥२८॥

एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
संदश्य दशनैरोष्ठं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ २९ ॥
शरवर्षेण महता दुर्योधनमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ॥ ३७४३ ॥

हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने ऐसा कहकर क्रोधसे होटोंको काटता, दांत कटकटाता हुआ और जीभसे मुंहके कोनोंको चाटता हुआ, अपने महाप्रचण्ड धनुषको चढाकर जैसे वर्षाकालमें बादल जलकी वर्षासे पर्वतको छिपा देता है, वैसेही बाणोंकी बडी वृष्टिसे दुर्योधनको छिपा दिया ॥ २९–३० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सतासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥ ३७४३ ॥

: ८८ :

सञ्जय उवाच

ततस्तद्बाणवर्षं तु दुःसहं दानवैरपि ।
दधार युधि राजेन्द्रो यथा वर्षं महाद्विपः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! इसके अनन्तर राजा दुर्योधनने दानवगणसे भी न सह्य होने योग्य उस बाणवर्षाको युद्धमें इस प्रकारसे धारण किया, जैसे महान् गजराज जलकी वर्षाको धारण करता है ॥ १ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो निःश्वसन्निव पन्नगः ।
संशयं परमं प्राप्तः पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ २ ॥

फिर आपका पुत्र दुर्योधन क्रुद्ध होकर सर्पके समान लम्बी सांस छोडते हुए अत्यन्तही शंकित हुए ॥ २ ॥

मुमोच निशितांस्तीक्ष्णान्नाराचान्पञ्चविंशतिम् ।
तेऽपतन्सहसा राजंस्तस्मिन्राक्षसपुङ्गवे ।
आशीविषा इव क्रुद्धाः पर्वते गन्धमादने ॥ ३ ॥

अनन्तर उसने पच्चीस तीक्ष्ण नाराच बाण घटोत्कचके ऊपर चलाये । राजन् ! वे सब बाण गन्ध मादन पर्वतपर क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके गिरनेके समान सहसा घटोत्कचके शरीरपर जाकर गिरे ॥ ३ ॥

स तैर्विद्धः स्रवन्रक्तं प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
दध्रे मतिं विनाशाय राज्ञः स पिशिताशनः ।
जग्राह च महाशक्तिं गिरीणामपि दारणीम् ॥ ४ ॥

राक्षसेन्द्र घटोत्कच उन बाणोंसे विद्ध होकर मदचूते हुए हाथीके समान शरीरसे रुधिरकी धारा बहाने लगा । फिर उन्होंने राजा दुर्योधनका नाश करनेकी दृढ इच्छासे पत्थरको भी तोडनेवाली एक महाशक्ति ग्रहण की ॥ ४ ॥

सम्प्रदीप्तां महोल्काभामशनीं मघवानिव ।
समुद्यच्छन्महाबाहुर्जिघांसुस्तनयं तव ॥ ५ ॥

महाबाहु राक्षस घटोत्कचने आपके पुत्र दुर्योधनके वधकी अभिलाषासे इंद्रके वज्र तथा लुकके समान प्रकाशमान् उस महाशक्तिको चलानेका विचार किया ॥ ५ ॥

तामुद्यतामभिप्रेक्ष्य वङ्गानामधिपस्त्वरन् ।
कुञ्जरं गिरिसङ्काशं राक्षसं प्रत्यचोदयत् ॥ ६ ॥

बलवान् वङ्गराजने उस शक्तिको आती देखकर शीघ्रताके साथ पर्वतके समान एक मतवारे हाथीको उस राक्षसकी ओर बढाया ॥ ६ ॥

स नागप्रवरेणाजौ बलिना शीघ्रगामिना ।
यतो दुर्योधनरथस्तं मार्गं प्रत्यपद्यत ।
रथं च वारयामास कुञ्जरेण सुतस्य ते ॥ ७ ॥

और उस महाबली शीघ्रगामी हाथीपर चढके युद्धके भूमिमें जहाँ दुर्योधनका रथ था, उसी मार्गपर चले । उन्होंने अपने हाथीसे आपके पुत्रका मार्ग रोक दिया ॥ ७ ॥

मार्गमावारितं दृष्ट्वा राज्ञा वङ्गेन धीमता ।
घटोत्कचो महाराज क्रोधसंरक्तलोचनः ।
उद्यतां तां महाशक्तिं तस्मिंश्चिक्षेप वारणे ॥ ८ ॥

महाराज ! क्रोधसे लाल नेत्र किये हुए घटोत्कचने दुर्योधनका रथ बुद्धिमान् वङ्गराजके हाथीसे रुका हुआ देखकर, उस महाशक्तिको वङ्गराजके हाथीपर ही चलाया ॥ ८ ॥

स तयाभिहतो राजंस्तेन बाहुविमुक्तया ।
संजातरुधिरोत्पीडः पपात च ममार च ॥ ९ ॥

राजन् ! वह गजराज घटोत्कचकी भुजाओंसे छूटी हुई महाशक्तिके लगते ही उससे रुधिर स्रोत बहने लगा । फिर वह पृथ्वीमें गिरकर मर गया ॥ ९ ॥

×

पतत्यथ गजे चापि वङ्गानामीश्वरो बली ।
जवेन समभिद्रुत्य जगाम धरणीतलम् ॥ १० ॥

हाथीके पृथ्वीमें गिरनेके समय बलवान् वङ्गराज उसपरसे वेगसे कूदके पृथ्वीपर खडे हुए ॥ १० ॥

दुर्योधनोऽपि सम्प्रेक्ष्य पातितं वरवारणम् ।
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा जगाम परमां व्यथाम् ॥ ११ ॥

राजा दुर्योधन उस मुख्य गजराजको मरते और अपनी सेनाको भागती देखके बहुत दुःखित हुए ॥ ११ ॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य आत्मनश्चाभिमानिताम् ।
प्राप्तेऽपक्रमणे राजा तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १२ ॥

अपनी सेनाको भागती जानकर और पलायनका अवसर प्राप्त होनेपर भी, निज अभिमानको और क्षत्रिय धर्मको स्मरण करके राजा दुर्योधन अचल पर्वतके समान रणभूमिमें खडे रहे ॥ १२ ॥

संधाय च शितं बाणं कालाग्निसमतेजसम् ।
मुमोच परमक्रुद्धस्तस्मिन्घोरे निशाचरे ॥ १३ ॥

फिर उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रलय कालकी अग्निके समान जलते हुए एक तेजस्वी तीक्ष्ण भयङ्कर बाणको धनुष पर चढाके घोर राक्षस घटोत्कचके ऊपर चलाया ॥ १३ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य बाणमिन्द्राशनिप्रभम् ।
लाघवाद्वञ्चयामास महाकायो घटोत्कचः ॥ १४ ॥

मायावी महाकाय घटोत्कचने इन्द्रके वज्रके समान उस प्रकाशमान बाणको अपनी ओर आते हुए देखके शीघ्रताके सहित घूमनेकी फुर्तीसे उसे निष्फल किया ॥ १४ ॥

भूय एव ननादोग्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
त्रासयन्सर्वभूतानि युगान्ते जलदो यथा ॥ १५ ॥

और क्रोधसे लाल नेत्र करके, वह पुनः भयंकर गर्जना करने लगा और प्रलयकालके बादलके समान सब लोगोंको डराता हुआ कंपित करने लगा ॥ १५ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तस्य भीमस्य रक्षसः ।
आचार्यमुपसङ्गम्य भीष्मः शांतनवोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥

शान्तनुपुत्र भीष्म उस भयानक राक्षस घटोत्कचके दारुण गर्जनाको सुन द्रोणाचार्यके निकट जाकर इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥

यथैष निनदो घोरः श्रूयते राक्षसेरितः ।
हैडिम्बो युध्यते नूनं राज्ञा दुर्योधनेन ह ॥ १७ ॥

राक्षस घटोत्कचकी जैसी घोर गर्जना सुन पडती है, उससे मुझे निश्चय बोध होता है, हिडिम्बाका पुत्र घटोत्कच राजा दुर्योधनके सङ्गमें युद्ध कर रहा है ॥ १७ ॥

नैष शक्यो हि संग्रामे जेतुं भूतेन केनचित् ।
तत्र गच्छत भद्रं वो राजनं परिरक्षत ॥ १८ ॥

उसको संग्राममें जीतनेमें कोई भी प्राणी समर्थ नहीं है, इससे तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम लोग वहांपर जाकर राजा दुर्योधनकी रक्षा करो ॥ १८ ॥

अभिद्रुतं महाभागं राक्षसेन दुरात्मना ।
एतद्धि परमं कृत्यं सर्वेषां नः परन्तपाः ॥ १९ ॥

जब महाभाग दुर्योधनसे महाकाय बलवान् राक्षस युद्ध कर रहा है, शत्रुओंको संताप देनेवाले, तब ऐसे समयमें राजाकी रक्षा करना ही हम सब लोगोंका कर्त्तव्य कार्य है ॥ १९ ॥

पितामहवचः श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ।
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र कौरवः ॥ २० ॥

सब महारथ योद्धा पितामह भीष्मकी आज्ञा सुनके शीघ्रताके सहित कुरुराज दुर्योधनकी रक्षा करनेके निमित्त जहां वह थे उस स्थानपर प्रस्थान करने लगे ॥ २० ॥

द्रोणश्च सोमदत्तश्च बाह्लीकश्च जयद्रथः ।
कृपो भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः ॥ २१ ॥

द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लिक, जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और विविंशति ॥ २१ ॥

अश्वत्थामा विकर्णश्च आवन्त्यश्च बृहद्बलः ।
रथाश्चानेकसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः ।
अभिद्रुतं परीप्सन्तः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ २२ ॥

अश्वत्थामा, विकर्ण अवन्तिराज, बृहद्बल– ये सब महारथी योद्धा और उनके अनुयायी सेनाके वीर योद्धा तथा कई हजार रथी शीघ्रताके सहित तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके निकट उनकी रक्षा करनेके लिये लगे ॥ २२ ॥

तदनीकमनाधृष्यं पालितं लोकसत्तमैः ।
आततायिनमायान्तं प्रेक्ष्य राक्षससत्तमः ।
नाकम्पत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ॥ २३ ॥

उन श्रेष्ठ पुरुषोंसे पालित होकर वह अजेय सेनाको आततायी रूपसे आते देख राक्षसोत्तम महाबाहु घटोत्कच मैनाक पर्वतके समान रणभूमिमें अचल होके स्थित हुआ ॥ २३ ॥

प्रगृह्य विपुलं चापं ज्ञातिभिः परिवारितः ।
शूलमुद्गरहस्तैश्च नानाप्रहरणैरपि ॥ २४ ॥

त्रिशूल, मुद्गर और अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण करनेवाले ज्ञातिबन्धु राक्षसोंसे बलवान् घटोत्कच सब ओरसे घिरा हुआ था । उसने एक प्रचण्ड धनुष धारण किया था ॥ २४ ॥

ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
राक्षसानां च मुख्यस्य दुर्योधनबलस्य च ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर दुर्योधनकी उस सेनाके सङ्ग राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कचका महाभयङ्कर रोएंको खडे करनेवाला युद्ध होने लगा ॥ २५ ॥

धनुषां कूजतां शब्दः सर्वतस्तुमुलोऽभवत् ।
अश्रूयत महाराज वंशानां दह्यतामिव ॥ २६ ॥

महाराज ! रणभूमिमें सब ओर धनुषोंका टङ्कार और शस्त्रोंका शब्द इस प्रकारसे होने लगा, जैसे वनमें आग लगानेसे बांसोंके फटनेका शब्द होता है ॥ २६ ॥

शस्त्राणां पात्यमानानां कवचेषु शरीरिणाम् ।
शब्दः समभवद्राजन्नद्रीणामिव दीर्यताम् ॥ २७ ॥

राजन् ! कवचधारी योद्धाओंके शरीरपर गिरते हुए शस्त्रोंका शब्द पर्वत भेदनेके समान सुनाई देने लगा ॥ २७ ॥

वीरबाहुविसृष्टानां तोमराणां विशां पते ।
रूपमासीद्वियत्स्थानां सर्पाणां सर्पतामिव ॥ २८ ॥

पृथ्वीपते ! वीर योद्धाओंकी भुजाओंसे छूटे हुए तोमर जब आकाशमें आते, तब उनका स्वरूप आकाशमें तीव्र गतिसे गमन करनेवाले सर्पोंके समान दिखाई देने लगा ॥ २८ ॥

ततः परमसंक्रुद्धो विस्फार्य सुमहद्धनुः ।
राक्षसेन्द्रो महाबाहुर्विनदन्भैरवं रवम् ॥ २९ ॥

तदनन्तर महाबाहु राक्षसराज घटोत्कचने परम क्रुद्ध होकर, अपने विशाल धनुषको चढाकर, घोर गर्जना करके ॥ २९ ॥

आचार्यस्यार्धचन्द्रेण क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
सोमदत्तस्य भल्लेन ध्वजमुन्मथ्य चानदत् ॥ ३० ॥

अर्द्धचन्द्र बाणसे द्रोणाचार्यका धनुष काट डाला और फिर एक भल्ल बाणसे सोमदत्तके रथकी ध्वजाको काट कर सिंहनाद करने लगा ॥ ३० ॥

बाह्लिकं च त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
कृपमेकेन विव्याध चित्रसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥

अनन्तर तीन बाणोंसे बाह्लिकके दोनों स्तनोंके बीचका स्थान और एक बाणसे कृपाचार्य और तीन बाणोंसे चित्रसेनको विद्ध किया ॥ ३१ ॥

पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च ।
जत्रुदेशे समासाद्य विकर्णं समताडयत् ।
न्यषीदत्स रथोपस्थे शोणितेन परिप्लुतः ॥ ३२ ॥

इसके बाद धनुषको पूर्ण रूपसे खींचकर, उत्तम रीतिसे बाणोंका संधान करके विकर्णको गलेमें विद्ध किया । विकर्ण बाणके लगनेसे रुधिरयुक्त होकर रथका दण्ड पकडके बैठ गये ॥ ३२ ॥

ततः पुनरमेयात्मा नाराचान्दश पञ्च च ।
भूरिश्रवसि संक्रुद्धः प्राहिणोद्भरतर्षभ ।
ते वर्म भित्वा तस्याशु प्राविशन्मेदिनीतलम् ॥ ३३ ॥

हे भारत ! अनन्तर बडे शरीरवाले अमेयात्मा राक्षस घटोत्कचने क्रुद्ध होकर भूरिश्रवाके ऊपर पन्दरह नाराच बाण चलाये; वे सब बाण भूरिश्रवाके कवचको भेदकर शीघ्रही पृथ्वीमें प्रविष्ट हुए ॥ ३३ ॥

विविंशतेश्च द्रौणेश्च यन्तारौ समताडयत् ।
तौ पेततू रथोपस्थे रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् ॥ ३४ ॥

फिर उनसे विविंशति और अश्वत्थामाके सारथियोंपर आघात किया । वे दोनों सारथी घोडोंकी बागडोर छोडकर रथपर गिर पडे ॥ ३४ ॥

सिन्धुराज्ञोऽर्धचन्द्रेण वाराहं स्वर्णभूषितम् ।
उन्ममाथ महाराज द्वितीयेनाच्छिनद्धनुः ॥ ३५ ॥

महाराज ! अनन्तर अर्द्धचन्द्रबाणसे सुवर्ण भूषित वराह चिन्हसे युक्त सिन्धुराज जयद्रथकी ध्वजा काटकर दूसरे बाणसे उनका धनुष काट दिया ॥ ३५ ॥

चतुर्भिरथ नाराचैरावन्त्यस्य महात्मनः ।
जघान चतुरो वाहान्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३६ ॥

अनन्तर, घटोत्कचने क्रोधसे लाल नेत्र करके चार नाराच बाणोंसे महात्मा अवन्तिराजके चारों घोडोंको मारा ॥ ३६ ॥

पूर्णायतविसृष्टेन पीतेन निशितेन च ।
निर्बिभेद महाराज राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ३७ ॥

राजेन्द्र ! फिर धनुष पूर्ण रूपसे खींचकर छोडे गये एक पानीदार तीक्ष्ण बाणसे राजपुत्र बृहद्बलके शरीरको विद्ध किया । बृहद्बल उस बाणसे अत्यन्त विद्ध होके रथपर बैठ गये ॥ ३७ ॥

भृशं क्रोधेन चाविष्टो रथस्थो राक्षसाधिपः ।
चिक्षेप निशितांस्तीक्ष्णाञ्शरानाशीविषोपमान् ।
बिभिदुस्ते महाराज शल्यं युद्धविशारदम् ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ३७८१ ॥

अनन्तर रथमें बैठे हुए राक्षसराज घटोत्कचने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, विषधर सर्पके समान कई एक तीक्ष्ण बाण धनुर्द्धारी शल्यके ऊपर चलाये । उन बाणोंसे महात्मा शल्यको विद्ध किया ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥ ३७८१ ॥

: ८९ :

सञ्जय उवाच

विमुखीकृत्य तान्सर्वांस्तावकान्युधि राक्षसः ।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ दुर्योधनमुपाद्रवत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! राक्षस घटोत्कच युद्धमें तुम्हारे सब महारथियोंको संग्राममें विमुख करके दुर्योधनके नाश करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडा ॥ १ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राजानं प्रति वेगितम् ।
अभ्यधावञ्जिघांसन्तस्तावका युद्धदुर्मदाः ॥ २ ॥

तुम्हारे सब महारथ योद्धा घटोत्कचको दुर्योधनके ओर बडे वेगसे दौडते देख, शीघ्रताके सहित उसके वधकी इच्छासे उसके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ २ ॥

तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
तमेकमभ्यधावन्त नदन्तः सिंहसङ्घवत् ॥ ३ ॥

उन सब महाबलवान् वीरोंने सिंहोंके समुदायके समान गर्जते हुए ताल प्रमाण धनुष चढाके उस अकेले राक्षसकी ओर धावा किया ॥ ३ ॥

अथैनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ।
पर्वतं वारिधाराभिः शरदीव बलाहकाः ॥ ४ ॥

जैसे शरद् ऋतुमें बादल जलधाराएं वर्षाकर पर्वतको पूर्ण कर देते हैं, वैसे ही उन्होंने अपने अपने बाणोंकी वर्षासे चारों ओरसे घटोत्कचको छिपा दिया ॥ ४ ॥

स गाढविद्धो व्यथितस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः ।
उत्पपात तदाकाशं समन्ताद्वैनतेयवत् ॥ ५ ॥

उन बाणोंसे वह अंकुशसे पीडित हाथीके समान अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर, विनता-नन्दन गरुडकी भांति आकाश मार्गमें सब ओर उडने लगा ॥ ५ ॥

व्यनदत्सुमहानादं जीमूत इव शारदः ।
दिशः खं प्रदिशश्चैव नादयन्भैरवस्वनः ॥ ६ ॥

महाबलवान् राक्षस घटोत्कचने आकाशमें जाके शरदृऋतुके बादलके समान घोर गर्जन करके अन्तरिक्ष, सब दिशाओं तथा विदिशाओंको अपने भयङ्कर शब्दसे पूरित कर दिया ॥ ६ ॥

राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
उवाच भरतश्रेष्ठो भीमसेनमिदं वचः ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर राक्षस घटोत्कचकी उस घोर गर्जनाको सुनकर भीमसेनसे इस प्रकार बोले ॥ ७ ॥

युध्यते राक्षसो नूनं धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
यथास्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवं स्वनम् ।
अतिभारं च पश्यामि तत्र तात समाहितम् ॥ ८ ॥

हे महाबाहो ! भैरवनाद करते हुए राक्षस घटोत्कचका जैसा घोर शब्द सुन पडता है, उससे यही बोध होता है, कि धृतराष्ट्रकी महारथी सेनाके सङ्ग निश्चय ही उसका युद्ध हो रहा है। तात ! बोध होता है, वह युद्ध राक्षस घटोत्कचके पक्षमें अत्यन्त ही कठिन हो रहा है ॥८॥

पितामहश्च संक्रुद्धः पाञ्चालान्हन्तुमुद्यतः ।
तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फल्गुनः परैः ॥ ९ ॥

उधर पितामह भीष्म क्रुद्ध होकर पाञ्चाल वीरोंके नाश करनेको उद्यत हुए हैं; उन सबकी रक्षा करनेके निमित्त वहांपर अर्जुन शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम् ।
गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम् ॥ १० ॥

हे महाबाहु भीम ! इस समय अपने ऊपर यह दो कार्य उपस्थित हैं, उन्हें जानकर तुम अत्यन्त शंकित घटोत्कचकी रक्षाके निमित्त ही शीघ्र गमन करो ॥ १० ॥

भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः।
प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन्सर्वपार्थिवान्।
वेगेन महता राजन्पर्वकाले यथोदधिः ॥ ११ ॥

भाई धर्म-पुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञा मानकर भीमसेन सिंहनाद करके, सब राजाओंको भयभीत करते हुए बडी शीघ्रतासे वहांसे चल दिये। जैसें पूर्णिमाको समुद्र बडे वेगसे बढता है उसीके समान घटोत्कचकी रक्षा करनेके वास्ते भीमसेन प्रस्थान करने लगे ॥ ११ ॥

तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ॥ १२ ॥

उनके पीछे सत्यधृति, पराक्रमी युद्धदुर्मद सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराजपुत्र अभिभू ॥ १२ ॥

अभिमन्युमुखाश्चैव द्रौपदेया महारथाः।
क्षत्रदेवश्च विक्रान्तः क्षत्रधर्मा तथैव च ॥ १३ ॥

अभिमन्यु आदि योद्धा, द्रौपदीके पांचों महारथी पुत्र, क्षत्रदेव, पराक्रमी क्षत्रधर्मा ॥ १३ ॥

अनूपाधिपतिश्चैव नीलः स्वबलमास्थितः।
महता रथवंशेन हैडिम्बं पर्यवारयन् ॥ १४ ॥

और अपनी सेनाके सहित अनूप देशके नील राजा, ये सब महारथी योद्धाओंने विशाल रथसेना सहित हिडिम्बाकुमार घटोत्कचको सब ओरसे घेर लिया ॥ १४ ॥

कुञ्जरैश्च सदा मत्तैः षट्सहस्रैः प्रहारिभिः।
अभ्यरक्षन्त सहिता राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ १५ ॥

वे सब लोग सदैव उन्मत्त, प्रहारकुशल छः हजार बडे हाथियोंकी सेना सहित आकर एक साथ मिलकर राक्षसराज घटोत्कचकी रक्षा करने लगे ॥ १५ ॥

सिंहनादेन महता नेमिघोषेण चैव हि।
खुरशब्दनिनादैश्च कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ १६ ॥

और बहुतसे रथोंसे युक्त होके महान् सिंहनाद करते हुए, रथके पहियोंके शब्द और घोडोंकी टापसे पृथ्वीको कँपाते हुए राक्षस घटोत्कचके समीप पहुंचे और चारों ओरसे घेर कर उसकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥

तेषामापततां श्रुत्वा शब्दं तं तावकं बलम्।
भीमसेनभयोद्विग्नं विवर्णवदनं तथा।
परिवृत्तं महाराज परित्यज्य घटोत्कचम् ॥ १७ ॥

महाराज! तुम्हारी ओरकी सेना उन सब वीरोंके आनेसे जो विविध भांतिके शब्दोंकी आवाज हुई उसे सुन और भीमसेनके भयसे विकल हो, उदास मुख हो गई। महाराज! रक्षकोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए घटोत्कचको त्याग कर, ॥ १७ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तत्र तत्र महात्मनाम्।
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥ १८ ॥

इन सब योद्धाओंसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुई। आपके तथा शत्रुपक्षके किसी ओरके महात्मा योद्धा युद्धमें निवृत्त होनेवाले नहीं थे; इससे उन दोनों सेनाओंका महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १८ ॥

नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः।
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे।
व्यतिषक्तं महारौद्रं युद्धं भीरुभयावहम् ॥ १९ ॥

महारथ योद्धा एक दूसरेकी ओर दौडते हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए भीषण युद्ध करने लगे। इस प्रकार भयंकर युद्ध छिड जानेपर युद्धमें डरपोक पुरुष भयसे ग्रस्त हुए ॥ १९ ॥

हया गजैः समाजग्मुः पादाता रथिभिः सह।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रार्थयाना महद्यशः ॥ २० ॥

राजन्! घुडसवार गजपतियोंके और पैदल वीर योद्धा रथियोंके साथ भिड गये। युद्ध-भूमिमें एक दूसरेको आवाहन करके महत् यशकी इच्छा करके युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥२०॥

सहसा चाभवत्तीव्रं सन्निपातान्महद्रजः।
रथाश्वगजपत्तीनां पदनेमिसमुद्धतम् ॥ २१ ॥

उस भीषण संघर्षसे सहसा बडे जोरकी धूल उठी, जो रथ, घोडे, हाथी और पैदलोंके युद्धमें उन सबके पांव और रथोंके पहियोंके चलनेसे उठायी गई थी ॥ २१ ॥

धूम्रारुणं रजस्तीव्रं रणभूमिं समावृणोत्।
नैव स्वे न परे राजन्समजानन्परस्परम् ॥ २२ ॥

राजन्! काले और लाल रंगकी उस असह्य धूलने रणभूमिको ढक दिया, सर्वत्र अन्धकार हो गया। तब उस समय किसीको भी अपने वा शत्रु पक्षका ज्ञान न रहा ॥ २२ ॥

पिता पुत्रं न जानीते पुत्रो वा पितरं तथा।
निर्मर्यादे तथा भूते वैशसे लोमहर्षणे ॥ २३ ॥

वीरोंके नाश करनेवाले उस असर्याद भयङ्कर युद्धमें पिता पुत्रको और पुत्र पिताको भी नहीं जान सकता था ॥ २३ ॥

शस्त्राणां भरतश्रेष्ठ मनुष्याणां च गर्जताम्।
सुमहानभवच्छब्दो वंशानामिव दह्यताम् ॥ २४ ॥

भरत श्रेष्ठ! गर्जनेवाले पुरुषों और शस्त्रोंका महाघोर शब्द जलनेवाले मनुष्योंके शब्दके समान सुनाई देने लगा ॥ २४ ॥

×

गजवाजिमनुष्याणां शोणितान्त्रतरङ्गिणी ।
प्रावर्तत नदी तत्र केशशैवलशाद्वला ॥ २५ ॥

हाथी, घोडे और मनुष्योंके रुधिर और आंतोंकी भयंकर नदी बह चली, जिसमें केश सेंवार और घासके समान जान पडते थे ॥ २५ ॥

नराणां चैव कायेभ्यः शिरसां पततां रणे ।
शुश्रुवे सुमहाञ्शब्दः पततामश्मनामिव ॥ २६ ॥

जैसे पत्थरके टुकडोंके गिरनेसे शब्द होता है, वैसे ही मनुष्योंकी देहसे शिर कटके गिरनेका महान् शब्द सुन पडता था ॥ २६ ॥

विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च छिन्नगात्रैश्च वारणैः ।
अश्वैः संभिन्नदेहैश्च सङ्कीर्णाभूद्वसुन्धरा ॥ २७ ॥

शिर-रहित मनुष्य और कटे हुए अङ्गोंवाले हाथी तथा छिन्न भिन्न घोडोंके शरीरसे वह सब रणभूमि छिप गई ॥ २७ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ २८ ॥

महारथ योद्धा लोग एक दूसरेके ऊपर अपने नाना प्रकारके शस्त्रोंको वर्षाते हुए सर्वथा युद्धके लिये उद्यत होकर वेगसे दौडने लगे ॥ २८ ॥

हया हयान्समासाद्य प्रेषिता हयसादिभिः ।
समाहत्य रणेऽन्योन्यं निपेतुर्गतजीविताः ॥ २९ ॥

घोडे घुडसवारोंके चलानेसे घोडोंके समीप जाकर आपसमें टक्कर लेकर वीरोंके शस्त्रोंके प्रहारसे युद्धमें मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २९ ॥

नरा नरान्समासाद्य क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ।
उरांस्युरोभिरन्योन्यं समाश्लिष्य निजघ्निरे ॥ ३० ॥

पैदल वीर योद्धा लाल नेत्र करके पैदलोंके समीप जाकर छातीसे छाती भिडाकर आपसमें युद्ध करके एक दूसरेका वध करने लगे ॥ ३० ॥

प्रेषिताश्च महामात्रैर्वारणाः परवारणाः ।
अभिघ्नन्ति विषाणाग्रैर्वारणानेव संयुगे ॥ ३१ ॥

हाथी पीलवानोंके अंकुशसे चलाये जानेपर विपक्षी हाथियोंके संमुख जाके टक्कर लेकर अपने दांत और सूंडोंसे हाथियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ३१ ॥

ते जातरुधिरापीडाः पताकाभिरलंकृताः ।
संसक्ताः प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ३२ ॥

पताकाओंसे शोभित परस्पर भिडे हुए वे सब हाथी रुधिरसे युक्त होकर ऐसे शोभायमान हुए जैसे बादलोंके बीच बिजली शोभित होती है ॥ ३२ ॥

केचिद्भिन्ना विषाणाग्रैर्भिन्नकुम्भाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त गर्जन्तो जलदा इव ॥ ३३ ॥

कितने ही हाथी दांतोंके अग्रभागसे विदीर्ण हुए, कितने ही हाथी तोमर अस्त्रोंके प्रहारसे गंडस्थल भिन्न होनेके कारण पीडित होकर, बादलके समान चीत्कार करते हुए रणभूमिमें इधर उधर दौडने लगे ॥ ३३ ॥

केचिद्धस्तैर्द्विधा छिन्नैश्छिन्नगात्रास्तथापरे ।
निपेतुस्तुमुले तस्मिंश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३४ ॥

कितने ही हाथियोंके सूंडोंके दो टुकडे हो गये, कितनोंकी गर्दन कट गई और कितने ही हाथियोंके सब शरीर छिन्न भिन्न हो गये; वह सब हाथी उस भयंकर युद्धमें पंख कटे पर्वतके समान मरके गिरने लगे ॥ ३४ ॥

पार्श्वैस्तु दारितैरन्ये वारणैर्वरवारणाः ।
मुमुचुः शोणितं भूरि धातूनिव महीधराः ॥ ३५ ॥

बडे बडे हाथियोंके पार्श्वभाग दूसरे हाथियोंके दांतोंसे फटनेपर, उनके शरीरसे इस प्रकार अपना रुधिर बहाने लगे, जैसे पहाड गेरू आदि धातुओंकी धारा बहाते हो ॥ ३५ ॥

नाराचाभिहतास्त्वन्ये तथा विद्धाश्च तोमरैः ।
हतारोहा व्यदृश्यन्त विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ३६ ॥

कितने ही हाथी नाराच बाणोंसे घायल हुए थे और कितने ही तोमरोंसे विद्ध हो गये थे । कितने ही हाथियोंके सवारोंके मारे जानेपर शृङ्गहीन पर्वतके समान दिखाई देने लगे ॥ ३६ ॥

केचित्क्रोधसमाविष्टा मदान्धा निरवग्रहाः ।
रथान्हयान्पदातांश्च ममृदुः शतशो रणे ॥ ३७ ॥

कितने ही मदान्ध हाथी बाणोंसे पीडित होके क्रुद्ध होनेके कारण काबूमें नहीं रहे और वे रण-भूमिमें सैकडों रथ, घोडे और पैदल योद्धाओंको सूंडसे पकडकर पांवसे मर्दन करने लगे ॥ ३७ ॥

तथा हया हयारोहैस्ताडिताः प्रासतोमरैः ।
तेन तेनाभ्यवर्तन्त कुर्वन्तो व्याकुला दिशः ॥ ३८ ॥

इसी प्रकार अनेक घोडे घुडसवारोंके प्रास और तोमरोंकी मारसे विद्ध होकर सब दिशाओंको व्याकुल करते हुए इधर उडर दौडने लगे ॥ ३८ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धं कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
परां शक्तिं समास्थाय चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ३९ ॥

वीरकुलमें उत्पन्न हुए सब वीर रथी योद्धा अपने शरीरोंको निछावर करके, भारी शक्ति लगाकर निर्भय चित्तसे विपक्षी रथियोंके सङ्ग बडे जोरसे युद्ध करके पराक्रम प्रगट करने लगे ॥ ३९ ॥

स्वयंवर इवामर्दे प्रजन्हुरितरेतरम् ।
प्रार्थयाना यशो राजन्स्वर्गं वा युद्धशालिनः ॥ ४० ॥

राजन् ! योद्धा लोग उस युद्धभूमिमें स्वयंवर-स्थलके समान यश वा स्वर्ग गमनके अभिलाषी होकर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ४० ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
धार्तराष्ट्रं महत्सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतम् ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ३८२२ ॥

इस प्रकार होनेवाले रोमाञ्चकारी महाघोर युद्धमें कौरवोंकी महासेना प्रायः युद्धसे विमुख होने लगी ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें नवासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ ३८२२ ॥

: ९० :

सञ्जय उवाच

स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! स्वयं राजा दुर्योधन अपनी सेनाको नष्ट होती देखकर क्रुद्ध होके शत्रुनाशन भीमसेनकी ओर दौडे ॥ १ ॥

प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ॥ २ ॥

उन्होंने इन्द्रवज्रके समान भयंकर टंकार करनेवाले प्रचण्ड धनुष ग्रहण करके अपने बाणोंकी वर्षासे पांडुनंदन भीमसेनको छिपा दिया ॥ २ ॥

अर्धचन्द्रं च सन्धाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम् ।
भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोधसमन्वितः ॥ ३ ॥

और उसने क्रोधित होकर पंखयुक्त अत्यंत एक तीक्ष्ण अर्धचन्द्र बाण चलाकर भीमसेनका धनुष काट दिया ॥ ३ ॥

तदन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः ।
संदधे निशितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ।
तेनोरसि महाबाहुर्भीमसेनमताडयत् ॥ ४ ॥

इसी अवसरमें महारथी महाबाहु दुर्योधनने बडी शीघ्रतासे पर्वतोंको भी काटनेवाले एक तीक्ष्ण बाणका संधान करके उससे भीमसेनकी छातीमें गहरा प्रहार किया ॥ ४ ॥

स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
समालम्बे तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ॥ ५ ॥

तेजस्वी भीमसेन दुर्योधनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर दांत पीसते हुए मुंहके दोनों कोनोंको चाटते हुए सुवर्णभूषित रथकी ध्वजाको पकडकर स्थित हुए ॥ ५ ॥

तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः ।
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः ॥ ६ ॥

घटोत्कच भीमसेनको इस प्रकार पीडित और व्यथितचित्त देखकर, जलाकर भस्म करनेकी इच्छावाले अग्निके समान क्रोधसे जलने लगा ॥ ६ ॥

अभिमन्युमुखाश्चैव पाण्डवानां महारथाः ।
समभ्यधावन्क्रोशन्तो राजानं जातसम्भ्रमाः ॥ ७ ॥

और पाण्डवोंकी ओरके अभिमन्यु आदि महारथी शङ्कित होके ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करके राजा दुर्योधनकी ओर दौडे ॥ ७ ॥

सम्प्रेक्ष्य तानापततः संक्रुद्धाञ्जातसम्भ्रमान् ।
भारद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान् ॥ ८ ॥

भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य अभिमन्यु आदि महारथोंको क्रुद्ध और शङ्कित होकर, वेगपूर्वक धावा करते देखकर, तुम्हारे सेनाके महारथियोंसे बोले ॥ ८ ॥

क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ।
संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥ ९ ॥

हे महारथ वीरो ! तुम लोगोंका कल्याण होवे, तुम लोग शीघ्रतासे गमन करके, राजा दुर्योधन इस समय संकटरूपी समुद्रमें डूबकर महान् प्राण संशयमें पडे हुए हैं, उनकी रक्षा करो ॥९॥

एते क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपद्रुताः ॥ १० ॥
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये रताः ।
नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिमाम् ॥ ११ ॥

ये सब महाधनुर्धर पाण्डवोंकी सेनाके महारथी योद्धा क्रुद्ध होकर, जयकी दृढ अभिलाषासे भीमसेनको आगे करके अपने सिंहनादसे क्षत्रिय वीरोंको भयभीत करते, त्रास पहुंचाते और अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंको चलाते हुए, राजा दुर्योधनकी ओर दौडे चले आरहे हैं ॥१०-११॥

तदाचार्यवचः श्रुत्वा सोमदत्तपुरोगमाः ।
तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १२ ॥

सोमदत्त आदि तुम्हारी ओरके सब प्रमुख राजाओंने द्रोणाचार्यकी यह बात सुनकर पाण्डवोंकी सेनाके समीप आक्रमणके लिये गमन किया ॥ १२ ॥

कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः ।
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन् ॥ १३ ॥

कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, सिन्धुराज जयद्रथ, बृहद्बल और महाधनुर्धर अवन्तिराज— इन सबने शीघ्रतासे गमन करके चारों ओरसे दुर्योधनको उसकी रक्षाके लिये घेरकर खडे हुए ॥ १३ ॥

ते विंशतिपदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसवः ॥ १४ ॥

वे सब महारथ योद्धा वीर बीस कदम आगे बढके पाण्डवोंकी सेनापर प्रहार करने लगे। अनन्तर पाण्डव और कौरव योद्धा एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे युद्ध करने लगे ॥१४॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ १५ ॥

महाबाहु भरद्वाज नन्दन, द्रोणाचार्यने, सब महारथ वीरोंको दुर्योधनकी रक्षाके निमित्त पूर्वोक्त बात कहकर, अपना महा धनुष चढाकर छब्बीस बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया ॥ १५ ॥

भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः शरदीव बलाहकः ॥ १६ ॥

और फिर शीघ्रताके सहित उन महाबाहुने भीमसेनके ऊपर इस प्रकारसे अपने बाणोंको बर्षाने लगे, जैसे वर्षाऋतुमें बादल आकाशसे पर्वतके ऊपर जलकी धारा वर्षाता है ॥१६॥

तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।
त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः ॥ १७ ॥

तब महाबलवान् धनुषधारी भीमसेनने भी बडी शीघ्रतासे दस बाणोंसे द्रोणाचार्यका वाम-पार्श्व विद्ध किया ॥ १७ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत ।
प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १८ ॥

भारत ! अवस्थामें बूढे द्रोणाचार्य उन बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित तथा नष्टसंज्ञ होकर रथपर बैठ गये ॥ १८ ॥

गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ ॥ १९ ॥

तब स्वयं राजा दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों अपने गुरु द्रोणाचार्यको व्यथासे पीडित देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होके भीमसेनकी ओर दौडे ॥ १९ ॥

तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ ।
भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरः ॥ २० ॥

महाबाहु भीमसेनने उन दोनों महारथी वीरोंको प्रलयकालके यमराजके समान आते देखकर शीघ्रताके सहित गदा हाथमें ले ली ॥ २० ॥

अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाचलः ।
समुद्यम्य गदां गुर्वीं यमदण्डोपमां रणे ॥ २१ ॥

और रथसे कूद पडे, और रणभूमिमें उस यमदण्डके समान भारी गदाको उठाकर पर्वतके समान पृथ्वीपर अचल स्थित हुए ॥ २१ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् ॥ २२ ॥

कुरुराज दुर्योधन और अश्वत्थामाने शृङ्गयुक्त कैलास पर्वतके समान भीमसेनको गदाधारी देखकर शीघ्रताके सहित एक साथ उनके ऊपर धावा किया ॥ २२ ॥

तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनां वरौ ।
अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः ॥ २३ ॥

भीमसेन भी उन दोनों पराक्रमी महारथी वीरोंको एक साथ शीघ्रतापूर्वक आते देख उनकी ओर वेगसे दौडे ॥ २३ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः ॥ २४ ॥

कौरव महारथी क्रोधमें भरकर भयंकर दिखाई देनेवाले भीमसेनको इस प्रकार दौडते देख शीघ्रताके सहित उनकी ओर वेगसे चले ॥ २४ ॥

भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया ।
नानाविधानि शस्त्राणि भीमस्योरस्यपातयन् ।
सहिताः पाण्डवं सर्वे पीडयन्तः समन्ततः ॥ २५ ॥

और द्रोणाचार्य आदि सभी योद्धा भीमसेनके वध करनेकी इच्छासे सबने मिलकर भीमसेनकी छातीमें नाना प्रकारके शस्त्रोंसे और बाणोंसे विद्ध करना आरम्भ किया । वे सब मिलकर चारों ओरसे पाण्डुकुमार भीमसेनको पीडा देने लगे ॥ २५ ॥

तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तं पीडयमानं महारथम् ।
अभिमन्युप्रभृतयः पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यधावन्परीप्सन्तः प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ २६ ॥

अभिमन्यु आदि पाण्डवोंकी ओरके महारथी योद्धा महारथी भीमसेनको पीडित और उनके प्राणोंको संकटमें पडा देखकर, उनकी रक्षा करनेके निमित्त अपने दुस्त्यज प्राणकी आशा छोडके वेगपूर्वक दौडे ॥ २६ ॥

अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दयितः सखा ।
नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात् ।
स्पर्धते हि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन यः ॥ २७ ॥

भीमसेनके प्यारे मित्र अनूपदेशके शूरवीर राजा नील, जिसकी अङ्गकान्ति श्याम मेघके समान सुंदर थी, अत्यन्त क्रुद्ध होकर अश्वत्थामाके संमुख हुए। महाधनुर्द्धर नील सदा ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके सङ्ग युद्धमें ईर्ष्या करते थे ॥ २७ ॥

स विस्फार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ।
यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् ॥ २८ ॥

महाराज ! उन्होंने अपना विशाल धनुप चढाकर एक पङ्खयुक्त बाणसे अश्वत्थामाको उसी प्रकार विद्ध किया जैसे इन्द्रने पूर्वकालमें दानवको घायल किया था ॥ २८ ॥

विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयङ्करम् ।
येन लोकत्रयं क्रोधात्त्रासितं स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥

विप्राचित्ति नामक एक दुर्धर्ष और देवताओंको भय देनेवाला दानव था, और उसने अपने क्रोधसे और तेजसे तीनों लोकोंको भयभीत किया था ॥ २९ ॥

तथा नीलेन निर्भिन्नः सुमुखेन पतत्रिणा ।
सञ्जातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः ॥ ३० ॥

वैसे ही नील राजाने अपने छोडे हुए उस पंखयुक्त एक बाणसे अश्वत्थामाको विद्ध किया। बुद्धिमान् अश्वत्थामा उस बाणसे पीडित हुआ और उसके शरीरसे रुधिर बहने लगा। इससे अश्वत्थामा क्रोधित हुआ ॥ ३० ॥

स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
दध्रे नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः ॥ ३१ ॥

तदन्तर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने इन्द्रके वज्र समान शब्द करनेवाले अपने विचित्र धनुपको चढाकर राजा नीलके नाश करनेका विचार किया ॥ ३१ ॥

ततः संधाय विमलान्भल्लान्कर्मारपायितान् ।
जघान चतुरो वाहान्पातयामास च ध्वजम् ॥ ३२ ॥

इसके अनन्तर उन्होंने लोहारके मांजे हुए सात चमकीले भल्ल बाणोंको धनुषपर रखकर उनमेंसे चार तीक्ष्ण बाणोंसे नील राजाके चारों घोडे, एकसे उनके सारथी, एक बाणसे रथकी ध्वजा काटके गिराई ॥ ३२ ॥

सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि ।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ३३ ॥

फिर नील राजाके ऊपर सातवें भल्ल बाणसे प्रहार करके उनका वक्षस्थल विद्ध किया । उससे वह अत्यन्त विद्ध हो जानेके कारण व्यथित होकर रथपर बैठ गये ॥ ३३ ॥

मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ।
घटोत्कचोऽपि संक्रुद्धो भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३४ ॥

नील मेघसमूहके समान श्याम वर्णवाले नील राजाको मोहित देखकर, राक्षस घटोत्कच भी क्रुद्ध होकर अपने सब राक्षस बन्धुओंके सहित घिरकर, ॥ ३४ ॥

अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ।
तथेतरे अभ्यधावन्राक्षसा युद्धदुर्मदाः ॥ ३५ ॥

वेगपूर्वक युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाकी ओर दौडा । उसके साथ ही अन्य रणदुर्मद राक्षसोंने भी उसपर धावा किया ॥ ३५ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ।
अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन् ॥ ३६ ॥

तेजस्वी अश्वत्थामा महा भयङ्कर राक्षस घटोत्कचको संमुख आते देख शीघ्रताके सहित उसकी ओर बढे ॥ ३६ ॥

निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान्भीमदर्शनान् ।
येऽभवन्नग्रतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः ॥ ३७ ॥

जो सब राक्षस क्रुद्ध होकर घटोत्कचके आगे खडे होकर युद्ध कर रहे थे, अश्वत्थामाने क्रोधित होकर उन सब भयंकर राक्षसोंका संहार किया ॥ ३७ ॥

विमुखांश्चैव तान्दृष्ट्वा द्रौणिचापच्युतैः शरैः ।
अक्रुध्यत महाकायो भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ ३८ ॥

विकराल शरीरवाला भीमसेनकुमार राक्षस घटोत्कच उन राक्षसोंको अश्वत्थामाके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे विद्ध होकर विमुख हुए देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥ ३८ ॥

×

प्रादुश्चक्रे महामायां घोररूपां सुदारुणाम् ।
मोहयन्समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः ॥ ३९ ॥

राक्षसेन्द्र मायावी घटोत्कचने समरमें अश्वत्थामाको मोहित करनेके निमित्त महाघोर दारुण माया उत्पन्न की ॥ ३९ ॥

ततस्ते तावकाः सर्वे मायया विमुखीकृताः ।
अन्योन्यं समपश्यन्त निकृत्तान्मेदिनीतले ।
विचेष्टमानान्कृपणाञ्शोणितेन समुक्षितान् ॥ ४० ॥

इसके अनन्तर तुम्हारी सेनाके सब वीर घटोत्कचकी मायासे मोहित होकर युद्धसे विमुख हो गये । वे आपसमें एक दूसरेको देखने लगे कि सबके सब छिन्न भिन्न हो पृथ्वीपर गिरकर तडफ रहे हैं और रक्तसे खूब भींगकर दयनीय दशाको पहुंच गये हैं ॥ ४० ॥

द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च ।
प्रायशश्च महेष्वासा ये प्रधानाश्च कौरवाः ॥ ४१ ॥

और सबने देखा, कि द्रोणाचार्य, दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा तथा और भी दूसरे अनेक कौरवोंमें जो महान् धनुर्धर और प्रधान वीर हैं प्रायः वे सभी ॥ ४१ ॥

विध्वस्ता रथिनः सर्वे गजाश्च विनिपातिताः ।
हयाश्च सहयारोहा विनिकृत्ताः सहस्रशः ॥ ४२ ॥

रथी विध्वंसको प्राप्त हो गये हैं । सब हाथी मार गिराये गये हैं तथा सहस्रों घोडे और घुडसवार कटके पृथ्वीमें गिरे हुए हैं ॥ ४२ ॥

तद्दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिबिरं प्रति ।
मम प्राक्रोशतो राजंस्तथा देवव्रतस्य च ॥ ४३ ॥

यह देखकर तुम्हारी सब सेना शिविरमें जानेके निमित्त वेगसे दौडने लगी । राजन् ! उन सब महारथी वीरोंको भागते देखकर भीष्म और मैंने ऊंचे स्वरसे पुकारकर कहा ॥४३॥

युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे ।
घटोत्कचप्रयुक्तेति नातिष्ठन्त विमोहिताः ।
नैव ते श्रद्दधुर्भीता वदतोरावयोर्वचः ॥ ४४ ॥

वीर लोग हो ! युद्ध करो ! तुम लोग क्यों भागते हो ? भागो मत ! तुम लोग जो कुछ रणभूमिमें देखकर भयभीत हुए हो, वह सब असत्य है, वह सम्पूर्ण घटोत्कच द्वारा छोडी हुई राक्षसी मायाका कार्य है । वे सब योद्धा मोहित होकर खडे नहीं हुए, वे इतने भयभीत हो गये थे कि हम दोनोंकी वातों पर विश्वास न रखकर, शंकित चित्तसे भागने ही लगे ॥ ४४ ॥

तांश्च प्रद्रवतो दृष्ट्वा जयं प्राप्ताश्च पाण्डवाः ।
घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान्प्रचक्रिरे ।
शङ्खदुन्दुभिघोषाश्च समन्तात्सस्वनुर्भृशम् ॥ ४५ ॥

उन सब वीरोंको भागते देख घटोत्कच और पाण्डव लोग युद्धमें विजयी होकर सिंहनाद करने लगे; और शङ्ख, नगाडे आदि वाजोंको जोरसे बजाकर पृथ्वीको अनुनादित करने लगे ॥ ४५ ॥

एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना ।
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ॥ ३८६८ ॥

महाराज ! इस प्रकार तुम्हारी सब सेना दुष्टात्मा घटोत्कचकी मायासे सूर्य अस्त होनेके समय चारों ओर इधर उधर भाग गई ॥ ४६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें नव्वेवां अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ ३८६८ ॥

: ९१ :

सञ्जय उवाच

तस्मिन्महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा ।
गाङ्गेयमुपसंगम्य विनयेनाभिवाद्य च ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! उस महाघोर भयङ्कर संग्राममें राजा दुर्योधनने पितामह गंगानंदन भीष्मके समीप जाकर उन्हें विनीतभावसे प्रणाम करके ॥ १ ॥

तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे ।
घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥ २ ॥

नियमपूर्वक यथातथ्य रूपसे घटोत्कचके विजयका और अपने पराजयका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया ॥ २ ॥

कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।
अब्रवीच्च तदा राजन्भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ३ ॥

राजन् ! बलवान् दुर्धर्ष राजा दुर्योधन बार बार लम्बी सांस लेते हुए, सब समाचार सुनाकर फिर वह कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्मसे बोले ॥ ३ ॥

भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः ।
पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥ ४ ॥

हे पितामह ! जैसे मेरे शत्रु पाण्डवोंने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका आसरा करके विग्रह आरम्भ किया है, वैसे ही मैंने भी केवल तुम्हारे आसरेसे पाण्डवोंके साथ घोर युद्ध आरम्भ किया है ॥ ४ ॥

एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम ।
निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परन्तप ॥ ५ ॥

हे परन्तप ! मैं इस प्रसिद्ध ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके सहित तुम्हारी आज्ञा पालनमें तत्पर हूं ॥ ५ ॥

सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः ।
घतोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तौ भी भीमसेन आदि पाण्डवोंने जो घटोत्कचके आसरे मुझे युद्धमें पराजित किया, ॥ ६ ॥

तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवानलः ।
तदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात्परन्तप ॥ ७ ॥
राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह ।
त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ८ ॥

महाभाग ! उससे जैसे अग्नि सूखे वृक्षको जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही अपमानके क्रोधसे मेरा शरीर जला जाता है; हे परन्तप पितामह ! इससे तुम्हारे प्रसादसे स्वयं ही इस दुष्ट तथा दुर्धर्ष राक्षसका वध करना चाहता हूं, आपका सहारा लेकर उसपर विजयी होना चाहता हूं, अतः वही मेरी इच्छा तुम पूर्ण करो ॥ ७-८ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! शान्तनुनन्दन भीष्म राजा दुर्योधनकी ऐसी बात सुनकर उनसे इस प्रकार बोले ॥ ९ ॥

शृणु राजन्मम वचो यत्त्वा वक्ष्यामि कौरव ।
यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परन्तप ॥ १० ॥

हे राजन् ! कुरुनन्दन ! मैं तुमसे जो कहता हूं, उसे तुम सुनो । महाराज ! परंतप ! इस युद्धमें तुम्हारा जो कर्तव्य है, वह भी सुनो ॥ १० ॥

आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिन्दम ।
धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदानघ ॥ ११ ॥

हे शत्रुदमन पुत्र ! युद्धमें तथा सब अवस्थाओंमें तुमको अपनी रक्षा करनी उचित है । हे अनघ ! धर्मराज युधिष्ठिरके साथ ही तुम्हें सदा युद्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥

अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः ।
राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमृच्छति ॥ १२ ॥

अर्जुन, नकुल, सहदेव वा भीमसेन– इनमेंसे किसी एकके साथ युद्ध करना तुमको उचित है; क्योंकि राजा लोग राजधर्मके अनुगामी होकर राजाहीके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं ॥ १२ ॥

अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः ।
शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथः ॥ १३ ॥
तव च भ्रातरः शूरा दुःशासनपुरोगमाः ।
त्वदर्थं प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥ १४ ॥

हे पुत्र ! यदि भयंकर राक्षस घटोत्कचके वधके वास्ते तुम इच्छा करते हो, तो द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सात्वत कृतवर्मा, शल्य, भूरिश्रवा, महारथ विकर्ण तथा दुःशासन आदि तुम्हारे शूर भाई और मैं, हम सब लोग तुम्हारे निमित्त उस महाबलवान् राक्षसके सङ्ग युद्ध करेंगे ॥ १३–१४ ॥

तस्मिन्रौद्रे राक्षसेन्द्रे यदि ते हृच्छयो महान् ।
अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः ।
भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि ॥ १५ ॥

अथवा इन्द्रके समान पराक्रमी राजा भगदत्त, उस भयंकर राक्षसराज घटोत्कचपर तुम्हारा अधिक क्रोध है तो, उस दुष्ट बुद्धिके साथ युद्ध करनेके निमित्त गमन करेंगे ॥ १५ ॥

एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाब्रवीत् ।
समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १६ ॥

भाषण करनेमें चतुर बुद्धिमान् भीष्म राजेन्द्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर उनके सम्मुख ही राजा भगदत्तसे यह बोले ॥ १६ ॥

गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ।
वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥ १७ ॥

हे महाराज ! तुम युद्धकी इच्छा करनेवाले राक्षस घटोत्कचके समीप सामना करनेके लिये शीघ्र गमन करो ! जैसे पहिले समयमें इन्द्रने तारकासुरको रोक दिया था, वैसे ही तुम सब धनुर्द्धारियोंके सम्मुख यत्नपूर्वक उस क्रूरकर्मा दुष्ट राक्षसको युद्धसे निवारण करो ॥ १७ ॥

तव दिव्यानि चास्त्राणि विक्रमश्च परन्तप ।
समागमश्च बहुभिः पुराभूदसुरैः सह ॥ १८ ॥

हे शत्रुनाशन ! सब दिव्य अस्त्र और पराक्रम तुममें विद्यमान हैं और पहिले अनेक असुरोंके सङ्ग तुमने युद्ध भी किया था ॥ १८ ॥

त्वं तस्य राजशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
स्वबलेन वृतो राजञ्जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥ १९ ॥

राजश्रेष्ठ ! इससे तुम ही इस महायुद्धमें, भयङ्कर राक्षसके सङ्ग युद्ध करनेके योग्य पराक्रमशील योद्धा हो; राजन् ! तुम अपने बलको प्रकाशित करके उस दुष्ट राक्षस श्रेष्ठका संहार करो ॥ १९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २० ॥

राजा भगदत्तने सेनापति भीष्मका यह वचन सुनके शत्रुओंकी ओर सिंहनाद करते हुए शीघ्रतासे गमन किया ॥ २० ॥

तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २१ ॥
भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥ २२ ॥
चेदियो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
सुप्रतीकेन तांश्चापि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत् ॥ २३ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके महारथ भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदीके पांचों पुत्र, सत्यधृति, क्षत्रदेव, चेदिराज धृष्टकेतु, वसुदान और दशार्ण देशके राजाओंने राजा भगदत्तको गर्जते हुए बादलके समान सिंहनाद करते हुए सम्मुख आते देखकर, क्रुद्ध हो उनकी ओर सामना करनेके लिये गमन किया । राजा भगदत्त भी सुप्रतीक नामक गजराजपर चढके उन सब लोगोंकी ओर दौडे ॥ २१–२३ ॥

ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर राजा भगदत्तके सङ्ग पाण्डवोंका यमके राष्ट्रको बढानेवाला महाभयङ्कर और घोर संग्राम होने लगा ॥ २४ ॥

प्रमुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः ।
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥ २५ ॥

महाराज ! महा वेगवान् अत्यन्त चोखे तेज बाण वीर रथियोंके धनुषसे छूटकर हाथियों और रथोंके ऊपर गिरने लगे ॥ २५ ॥

प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः ।
परस्परं समासाद्य संनिपेतुरभीतवत् ॥ २६ ॥

मस्तकसे मदचूते हुए बडे मतवारे हाथी निर्भय चित्तसे महावतोंके अंकुशसे प्रेरित होकर, एक दूसरे हाथियोंके समीप जाकर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ २६ ॥

मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे
बिभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ २७ ॥

उस महायुद्धमें महामतवारे हाथी क्रुद्ध होकर अपने मूषलके समान दांतोंसे दूसरे हाथियोंको आक्रमण करके उन्हें क्षतविक्षत करने लगे ॥ २७ ॥

हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः ।
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥ २८ ॥

चंवर भूषित घोडे प्रासधारी घुडसवारोंसे प्रेरित होकर शीघ्रताके सहित रणभूमिमें एक दूसरे-पर आक्रमण करने लगे ॥ २८ ॥

पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः ।
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २९ ॥

सैकडों सहस्रों पैदल वीर योद्धा पैदलवीरोंके शक्ति, तोमर आदि अस्त्रोंसे घायल हो, मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २९ ॥

रथिनश्च तथा राजन्कर्णिनालीकसायकैः ।
निहत्य समरे वीरान्सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३० ॥

राजन् ! रथी योद्धा रथपर चढके कर्णि, नालीक, आदि बाणोंसे समरमें वीरोंका वध करके सिंहनाद करने लगे ॥ ३० ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाद्रवत् ॥ ३१ ॥

ऐसे रोवोंके खडे करनेवाले संग्राममें महा धनुर्द्धारी राजा भगदत्त मदचूते हुए सुप्रतीक नामक गजराजपर चढके भीमसेनके समीप दौडते गये ॥ ३१ ॥

कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम् ।
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वतः । ॥ ३२ ॥

जिस प्रकारसे पर्वतके नाना स्थानोंसे जल बहता है, वैसे ही राजा भगदत्तके गजराजसे सम्पूर्ण शरीर अर्थात् दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों गण्ड और मस्तकसे मद चू रहा था ॥ ३२ ॥

त्वं तस्य राजशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
स्वबलेन वृतो राजञ्जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥ १९ ॥

राजश्रेष्ठ ! इससे तुम ही इस महायुद्धमें, भयङ्कर राक्षसके सङ्ग युद्ध करनेके योग्य पराक्रमशील योद्धा हो; राजन् ! तुम अपने बलको प्रकाशित करके उस दुष्ट राक्षस श्रेष्ठका संहार करो ॥ १९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २० ॥

राजा भगदत्तने सेनापति भीष्मका यह वचन सुनके शत्रुओंकी ओर सिंहनाद करते हुए शीघ्रतासे गमन किया ॥ २० ॥

तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २१ ॥
भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥ २२ ॥
चेदियो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
सुप्रतीकेन तांश्चापि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत् ॥ २३ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके महारथ भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदीके पांचों पुत्र, सत्यधृति, क्षत्रदेव, चेदिराज धृष्टकेतु, वसुदान और दशार्ण देशके राजाओंने राजा भगदत्तको गर्जते हुए बादलके समान सिंहनाद करते हुए सम्मुख आते देखकर, क्रुद्ध हो उनकी ओर सामना करनेके लिये गमन किया । राजा भगदत्त भी सुप्रतीक नामक गजराजपर चढके उन सब लोगोंकी ओर दौडे ॥ २१–२३ ॥

ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर राजा भगदत्तके सङ्ग पाण्डवोंका यमके राष्ट्रको बढानेवाला महाभयङ्कर और घोर संग्राम होने लगा ॥ २४ ॥

प्रमुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः ।
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥ २५ ॥

महाराज ! महा वेगवान् अत्यन्त चोखे तेज बाण वीर रथियोंके धनुषसे छूटकर हाथियों और रथोंके ऊपर गिरने लगे ॥ २५ ॥

प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः ।
परस्परं समासाद्य संनिपेतुरभीतवत् ॥ २६ ॥

मस्तकसे मदचूते हुए बडे मतवारे हाथी निर्भय चित्तसे महावतोंके अंकुशसे प्रेरित होकर, एक दूसरे हाथियोंके समीप जाकर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ २६ ॥

मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे
विभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ २७ ॥

उस महायुद्धमें महामतवारे हाथी क्रुद्ध होकर अपने मूषलके समान दांतोंसे दूसरे हाथियोंको आक्रमण करके उन्हें क्षतविक्षत करने लगे ॥ २७ ॥

हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः ।
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥ २८ ॥

चंवर भूषित घोडे प्रासधारी घुडसवारोंसे प्रेरित होकर शीघ्रताके सहित रणभूमिमें एक दूसरे-पर आक्रमण करने लगे ॥ २८ ॥

पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः ।
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २९ ॥

सैकडों सहस्रों पैदल वीर योद्धा पैदलवीरोंके शक्ति, तोमर आदि अस्त्रोंसे घायल हो, मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २९ ॥

रथिनश्च तथा राजन्कर्णिनालीकसायकैः ।
निहत्य समरे वीरान्सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३० ॥

राजन् ! रथी योद्धा रथपर चढके कर्णि, नालीक, आदि बाणोंसे समरमें वीरोंका वध करके सिंहनाद करने लगे ॥ ३० ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाद्रवत् ॥ ३१ ॥

ऐसे रोवोंके खडे करनेवाले संग्राममें महा धनुर्द्धारी राजा भगदत्त मदचूते हुए सुप्रतीक नामक गजराजपर चढके भीमसेनके समीप दौडते गये ॥ ३१ ॥

कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम् ।
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वतः । ॥ ३२ ॥

जिस प्रकारसे पर्वतके नाना स्थानोंसे जल बहता है, वैसे ही राजा भगदत्तके गजराजसे सम्पूर्ण शरीर अर्थात् दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों गण्ड और मस्तकसे मद चू रहा था ॥ ३२ ॥

किरञ्शरसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः।
ऐरावतस्थो मघवान्वारिधारा इवानघ ॥ ३३ ॥
हे पापरहित राजेन्द्र! राजा भगदत्त उस गजराज सुप्रतीकपर चढके, ऐरावतपर चढे हुए इन्द्रके समान जल-वर्षाकी भांती, अपने बाणोंको वर्षाते हुए गमन करने लगे ॥ ३३ ॥

स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः। ॥ ३४ ॥
जैसे बादल वर्षा-ऋतुमें पहाडपर जलकी धारा वर्षाता है, वैसे ही वे भीमसेनको अपने बाणोंकी वर्षासे पीडित करने लगे ॥ ३४ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः पादरक्षान्परःशतान्।
निजघान महेष्वासः संक्रुद्धः शरवृष्टिभिः ॥ ३५ ॥
तब महा धनुर्द्धर भीमसेनने क्रुद्ध होकर सौसे भी अधिक भगदत्तके हाथीके पादरक्षकोंको अपने बाणोंकी वर्षासे मार डाला ॥ ३५ ॥

तान्दृष्ट्वा निहतान्क्रुद्धो भगदत्तः प्रतापवान्।
चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥ ३६ ॥
प्रतापी राजा भगदत्तने क्रुद्ध होकर उन सब पादरक्षकोंको मारते हुए देख, उस गजराजको भीमसेनके रथकी ओर चलाया ॥ ३६ ॥

स नागः प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा।
अभ्यधावत वेगेन भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ३७ ॥
वह गजराज राजा भगदत्तसे प्रेरित होकर धनुपसे छूटे हुए बाणके समान शत्रुनाशन भीमसेनकी ओर बडे वेगसे दौडा ॥ ३७ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः।
अभ्यवर्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥ ३८ ॥
उस गजराजको आते देखके भीमसेनको आगे करके पाण्डव महारथी शीघ्रतापूर्वक उसके चारों ओर खडे हो गये ॥ ३८ ॥

केकयाश्चाभिमन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिष।
चेदिपश्चित्रकेतुश्च संक्रुद्धाः सर्व एव ते ॥ ३९ ॥
मारिष! केकयराज, अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचों पुत्र, शूरवीर दशार्णराज, पराक्रमी क्षत्रदेव, चेदिराज और चित्रकेतु-पाण्डवोंके इन सब महारथियोंने क्रुद्ध हो, ॥ ३९ ॥

उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ।
तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ४० ॥

अपने उत्तम दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित करते हुए, उस एक मात्र हाथीको सब महाबलवानोंने क्रुद्ध होकर चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४० ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्व्यरोचत महाद्विपः ।
सञ्जातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाद्रिराट् ॥ ४१ ॥

वह महा गजराज उन सब महारथियोंके अनेक बाणोंसे विद्ध होकर रुधिर युक्त होकर ऐसा शोभित हुआ, जैसे गेरुकी धारा बहनेसे पर्वतराज शोभायमान लगता है ॥ ४१ ॥

दशार्णाधिपतिश्चापि गजं भूमिधरोपमम् ।
समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम् ॥ ४२ ॥

दशार्णराज भी पर्वतके समान एक हाथीपर चढके भगदत्तके हाथीके समीप उपस्थित हुए ॥ ४२ ॥

तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ।
दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम् ॥ ४३ ॥

जैसे तट समुद्रके वेगको निवारण करता है, वैसे ही भगदत्तके सुप्रतीक गजराजने अपनी ओर आते हुए दशार्णराजके हाथीके वेगको धारण करके उसे निवारण किया ॥ ४३ ॥

वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मनः ।
साधु साध्विति सैन्यानि पाण्डवेयान्यपूजयन् ॥ ४४ ॥

महामना दशार्णराजके गजराजको रोका गया देख पाण्डवोंकी सेनाके सब वीर धन्य धन्य कहके प्रशंसा करने लगे ॥ ४४ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान्वै चतुर्दश ।
प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम ॥ ४५ ॥

हे भारत ! अनन्तर प्राग्ज्योतिष राजा भगदत्तने क्रुद्ध होकर उस हाथीके ऊपर सामनेसे चौदह तोमर चलाये ॥ ४५ ॥

तस्य वर्म मुखत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम् ।
विदार्य प्राविशन्क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ४६ ॥

जैसे वल्मीकमें सर्प घुसते हैं वैसे वे सब तोमर उस हाथीके सुवर्णसे भूषित कवचको भेदकर शीघ्रही उसके शरीरमें घुस गये ॥ ४६ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ।
उपावृत्तमदः क्षिप्रं स न्यवर्तत वेगतः ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह हाथी उन तोमरोंसे अत्यंत पीडित हो, सब मदहीन हो गया और वह शीघ्र ही बडे वेगसे पीछेकी ओर लौट गया ॥ ४७ ॥

प्रदुद्राव च वेगेन प्रणदन्भैरवं स्वनम् ।
स मर्दमानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा ॥ ४८ ॥

जैसे वायु प्रबल शक्ति वेगसे वृक्षोंको उखाडके फेंक देता है, वैसे ही वह हाथी महाघोर शब्द करता हुआ अपनी सेनाके वीरोंका मर्दन करता हुआ बडे वेगसे भाग गया ॥ ४८ ॥

तस्मिन्पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैर्युद्धायैवोपतस्थिरे ॥ ४९ ॥

उस हाथीके पराजित हो जानेपर भी पाण्डव महारथी जोर जोरसे सिंहनाद करके युद्धके लिये स्थिर खडे हुए ॥ ४९ ॥

ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन् ।
किरन्तो विविधान्बाणाञ्शस्त्राणि विविधानि च ॥ ५० ॥

जब वह हाथी भाग गया, तब पाण्डवलोग भीमसेनको आगे करके सिंहनाद करते हुए युद्धमें विविध भांतिके बाण और शस्त्रोंको चलाते हुए भगदत्तकी ओर दौडे ॥ ५० ॥

तेषामापततां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ।
श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद्गतसाध्वसः ।
भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत् ॥ ५१ ॥

हे राजन् ! महा धनुर्द्धारी भगदत्तने उन सब क्रुद्ध होकर आक्रमण करनेवाले अमर्षशील पाण्डवोंके महारथ वीरोंके घोर सिंहनादको सुनकर, अत्यन्त क्रुद्ध हो निर्भय चित्तसे अपने हाथीको उनकी ओर वेगपूर्वक बढाया ॥ ५१ ॥

अङ्कुशाङ्गुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि ।
तस्मिन्क्षणे समभवत्संवर्तक इवानलः ॥ ५२ ॥

हाथियोंमें श्रेष्ठ गजराज सुप्रतीक भगदत्तके अंकुश और अंगूठेसे प्रेरित होकर युद्ध भूमिमें क्षण भरमें प्रलय कालकी अग्निके समान प्रज्वलित हो गया ॥ ५२ ॥

रथसंघांस्तथा नागान्हयांश्च सह सादिभिः ।
पादातांश्च सुसंक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अमृद्नात्समरे राजन्संप्रधावंस्ततस्ततः ॥ ५३ ॥

राजन् ! यहांतक कि वह गजराज अत्यन्त क्रुद्ध होकर सवारोंके सहित रथ, हाथी, घुडसवारों सहित घोडों और सैकडों-सहस्रों पैदल चलनेवाले वीरोंका इधर उधर दौडते हुए मर्दन करने लगा ॥ ५३ ॥

तेन संलोड्यमानं तु पाण्डूनां तद्बलं महत् ।
संचुकोच महाराज चर्मेवाग्नौ समाहितम् ॥ ५४ ॥

महाराज ! पाण्डवोंकी बहुतसी सेना उस गजराजसे पीडित होकर मानों अग्निसे तपाये गये चमडेकी भांति सिमट गई ॥ ५४ ॥

भग्नं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ।
घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत् ॥ ५५ ॥

राक्षस घटोत्कचने अपनी सेनाको बुद्धिमान् भगदत्तके द्वारा भग्न हुई देखकर क्रुद्ध होके उनके उपर धावा किया ॥ ५५ ॥

विकटः पुरुषो राजन्दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ।
रूपं विभीषणं कृत्वा रोषेण प्रज्वलन्निव ॥ ५६ ॥

राजन् ! उस महाबलवान् भयानक रूपवाले, निष्ठूर घटोत्कचने उज्ज्वल लाल नेत्र और भयङ्कर मूर्ति धारण कर, क्रोधसे जलके उठकर, ॥ ५६ ॥

जग्राह विपुलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ।
नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः ।
सविष्फुलिङ्गज्वालाभिः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ ५७ ॥

पर्वतको भी भेदनेमें समर्थ एक प्रकाशमान्, चारों ओरसे अग्निकी चिनगारियोंसे वेष्टित, विमल त्रिशूल ग्रहण करके, हाथीको नष्ट करनेकी इच्छासे सहसा राजा भगदत्तकी ओर चलाया ॥ ५७ ॥

तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा ज्वालाकुलं रणे ।
चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं स पार्थिवः
चिच्छेद सुमहच्छूलं तेन बाणेन वेगवत् ॥ ५८ ॥

राजा भगदत्तने समरांगणमें उस ज्वालायुक्त भयानक त्रिशूलको सहसा संमुख आते देख, एक तीक्ष्ण और सुंदर अर्धचन्द्र बाण चलाया और शीघ्रतापूर्वक उस महान् त्रिशूलको काटके गिरा दिया ॥ ५८ ॥

निपपात द्विधा छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम् ।
महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता ॥ ५९ ॥

जैसे इन्द्रके हाथसे छूटकर आकाशमें गिरते हुए महान् वज्र शोभित होता है, वैसे ही वह प्रकाशमान् सुवर्णभूषित शूल भगदत्तके बाणसे दो खण्ड होकर शोभित होकर गिर गया ॥५९॥

शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृतं स पार्थिवः ।
रुक्मदण्डां महाशक्तिं जग्राहाग्निशिखोपमाम् ।
चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ६० ॥

हे राजन् ! राजा भगदत्तने राक्षसके चलाए त्रिशूलको दो खण्ड करके फिर घटोत्कचको "खडा रह ! खडा रह !" कहके अग्निकी शिखाके समान जलती हुई, सुवर्ण मय दण्डसे युक्त एक महाशक्ति ग्रहण करके उसके ऊपर चलाई ॥ ६० ॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव ।
उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च ॥ ६१ ॥

घटोत्कच आकाशसे वज्रके समान प्रकाशित उस महा शक्तिको संमुख आती देख, शीघ्र ही कूदकर उसे ग्रहण करके, सिंहनाद करने लगा ॥ ६१ ॥

बभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत ।
पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६२ ॥

हे भारत ! उसने उस शक्तिको शीघ्रताके सहित ग्रहण कर पांवके घुटनोंपर रखके राजा भगदत्तके संमुख ही तोड डाला; उसका वह कर्म अद्भुतरूपका देख पडा ॥ ६२ ॥

तदवेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन बलीयसा ।
दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चापि विस्मिताः ॥ ६३ ॥

आकाशमें विमानोंपर बैठे देवता, गन्धर्व और मुनिलोग उस बलवान् राक्षसके ऐसे महान् कर्मको देखकर विस्मित हुए ॥ ६३ ॥

पाण्डवाश्च महेष्वासा भीमसेनपुरोगमाः ।
साधु साध्विति नादेन पृथिवीमनुनादयन् ॥ ६४ ॥

महाधनुर्धर भीमसेन आदि पाण्डव उसके ऐसे कर्मको देखके "धन्य है, धन्य है" कहके उसकी प्रशंसा करने लगे, और अपने सिंहनादसे पृथ्वीको गूंजा दिया ॥ ६४ ॥

तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम् ।
नामृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ॥ ६५ ॥

महाधनुर्द्धारी प्रतापी भगदत्त हर्षित महात्मा पाण्डवोंके वीरोंका महान् सिंहनादको सुनकर न सह सके ॥ ६५ ॥

स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवानां महारथान् ।
विसृजन्विमलांस्तीक्ष्णान्नाराचाञ्ज्वलनप्रभान् ॥ ६६ ॥

उन्होंने इन्द्रके वज्रके समान शब्द करनेवाले अपने प्रचण्ड धनुषको चढाकर, वेगपूर्वक पाण्डवोंकी ओरके सब महारथियोंके ऊपर धावा किया और वह अग्निके समान प्रकाशमान निर्मल और तीक्ष्ण नाराच बाणोंको सिंहनाद करते हुए चलाने लगे ॥ ६६ ॥

भीममेकेन विव्याध राक्षसं नवभिः शरैः।
अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान्पञ्चभिस्तथा ॥ ६७ ॥

उन्होंने एक बाणसे भीमसेन, नौ बाणोंसे राक्षस घटोत्कच, तीन बाणोंसे अभिमन्यु और पांच बाणोंसे केकयराज पाचों भाइयोंको विद्ध किया ॥ ६७ ॥

पूर्णायतविसृष्टेन स्वर्णपुङ्खेन पत्रिणा।
बिभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाहवे।
पपात सहसा तस्य सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ६८ ॥

फिर युद्धमें धनुषको अच्छी तरह खींच कर छोडे हुए सोनेके पंख लगाये हुए एक तीक्ष्ण बाणसे क्षत्रदेवकी दाहिनी भुजामें प्रहार किया; उस बाणके लगते ही बाणके सहित उनका धनुष हाथसे छूटकर गिर पडा ॥ ६८ ॥

द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत्।
भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान् ॥ ६९ ॥

इसके अनन्तर प्रतापी भगदत्तने पांच बाणोंसे द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको विद्ध करके, फिर क्रुद्ध होके भीमसेनके रथके घोडोंको मार डाला; ॥ ६९ ॥

ध्वजं केसरिणं चास्य चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः।
निर्बिभेद त्रिभिश्चान्यैः सारथिं चास्य पत्रिभिः ॥ ७० ॥

और तीन बाणोंसे उनकी सिंहध्वजाको काटकर, फिर अन्य तीन पंखयुक्त बाणोंसे उनके सारथी विशोकको विद्ध किया ॥ ७० ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्।
विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥ ७१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भीमसेनका सारथी विशोक राजा भगदत्तके बाणोंसे युद्धमें अत्यन्त विद्ध होकर रथपर बैठ गया ॥ ७१ ॥

ततो भीमो महाराज विरथो रथिनां वरः।
गदां प्रगृह्य वेगेन प्रचस्कन्द महारथात् ॥ ७२ ॥

महाराज ! अनन्तर रथहीन होनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन गदा हाथमें ग्रहण कर उस महा रथसे वेगपूर्वक उतरके पृथ्वीपर खडे हुए ॥ ७२ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम्।
तावकानां भयं घोरं समपद्यत भारत ॥ ७३ ॥

हे भारत ! उनको शृङ्गयुक्त पर्वतके समान गदाधारी देखकर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको अत्यन्त ही घोर भय उत्पन्न हुआ ॥ ७३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
आजगाम महाराज निघ्नञ्छत्रून्सहस्रशः ॥ ७४ ॥

हे महाराज ! इसी अवसरमें सारथी कृष्णके सहित पाण्डुनन्दन अर्जुन चारों ओरसे सहस्रों शत्रुसेनाका वध करते हुए, उसी स्थानपर आकर उपस्थित हुए ॥ ७४ ॥

यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ परंतपौ ।
प्राग्ज्योतिषेण संसक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥ ७५ ॥

जिस स्थानपर वे दोनों पुरुषसिंह बलवान् पराक्रमी पितापुत्र भीमसेन और घटोत्कच भगदत्तके सङ्ग युद्ध कर रहे थे ॥ ७५ ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवो राजन्युध्यमानान्महारथान् ।
त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्रायाद्विकिरञ्शरान् ॥ ७६ ॥

हे भारत ! पाण्डुनन्दन अर्जुन अपने महारथिओंको युद्ध करते देखकर स्वयं शीघ्रताके सहित बाणोंको चलाकर युद्ध करने लगे ॥ ७६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः ।
सेनामचोदयत्क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम् ॥ ७७ ॥

इसके अनन्तर महारथी राजा दुर्योधनने शीघ्रताके सहित रथ, हाथी और घोडोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको अर्जुनके समीप शीघ्रही युद्धके लिये भेज दिया ॥ ७७ ॥

तामापतन्तीं सहसा कौरवाणां महाचमूम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेतवाहनः ॥ ७८ ॥

श्वेत घोडोंवाले पाण्डुपुत्र अर्जुन सहसा कौरवोंकी उस विशाल सेनाको सम्मुख आती देख, वेगपूर्वक उसकी ओर दौडे ॥ ७८ ॥

भगदत्तोऽपि समरे तेन नागेन भारत ।
विमृद्नन्पाण्डवबलं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ७९ ॥

हे भारत ! राजा भगदत्तने भी समरमें अपने गजराजसे पाण्डवोंकी सब सेनाको मर्दन करते हुए राजा युधिष्ठिर पर धावा किया ॥ ७९ ॥

तदासीत्तुमुलं युद्धं भगदत्तस्य मारिष ।
पाञ्चालैः सृञ्जयैश्चैव केकयैश्चोद्यतायुधैः ॥ ८० ॥

मारिष ! तब हथियार उठाये हुए पाञ्चाल, सृञ्जय और केकयदेशीय योद्धाओंके सङ्ग राजा भगदत्तका अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा ॥ ८० ॥

भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ ।
आश्रावयद्यथावृत्तमिरावद्वधमुत्तमम् ॥ ८१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ३९४९ ॥

उसी समय भीमसेनने कृष्ण और अर्जुनको रणभूमिमें इरावान्‌की मृत्युका यथावत् वृत्तान्त विस्तार पूर्वक सुनाया ॥ ८१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ ३९४९ ॥

: ९२ :

सञ्जय उवाच

पुत्रं तु निहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनञ्जयः ।
दुःखेन महताविष्टो निःश्वसन्पन्नगो यथा ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! अर्जुन अपने पुत्र इरावान्‌की मृत्युका वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त दुःखित होके सर्पके समान लम्बी सांस छोडने लगे ॥ १ ॥

अब्रवीत्समरे राजन्वासुदेवमिदं वचः ।
इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्पुरा ॥ २ ॥

राजन् ! तब वे समरमें भगवान् वसुदेवनंदन श्रीकृष्णसे बोले, हे मधुसूदन ! पहिले महा बुद्धिमान् विदुरने निश्चय ही यह सब देखलिया था ॥ २ ॥

कुरूणां पाण्डवानां च क्षयं घोरं महामतिः ।
ततो निवारयितवान्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ३ ॥

इस युद्धमें कौरवों और पाण्डवोंका यह घोर नाश परम बुद्धिमान् विदुरने जानकर, राजा धृतराष्ट्रको निवारण किया था ॥ ३ ॥

अवध्या बहवो वीराः संग्रामे मधुसूदन ।
निहताः कौरवैः संख्ये तथास्माभिश्च ते हताः ॥ ४ ॥

मधुसूदन ! हमारी ओरके बहुतसे वीरोंका कौरव लोग वध कर रहे हैं, और कौरवोंको भी हम युद्धमें नाश कर रहे हैं ॥ ४ ॥

अर्थहेतोर्नरश्रेष्ठ क्रियते कर्म कुत्सितम् ।
धिगर्थान्यत्कृते ह्येवं क्रियते ज्ञातिसंक्षयः ॥ ५ ॥

हे पुरुषोत्तम ! हम लोग केवल अर्थके निमित्त ही इस प्रकारके जाति–नाश करनेमें प्रवृत्त हुए हैं; अर्थहीके निमित्त ऐसे निन्दित कर्म करनेमें प्रवृत्त हुए हैं; इससे अर्थको धिक्कार है ॥ ५ ॥

अधनस्य मृतं श्रेयो न च ज्ञातिवधाद्धनम् ।
किं नु प्राप्स्यामहे कृष्ण हत्वा ज्ञातीन्समागतान् ॥ ६ ॥

हे कृष्ण ! धनहीन पुरुषको वरन मरना ही उत्तम है; परन्तु जातिके लोगोंका वध करके धन उपार्जन करना उत्तम नहीं है । हे महाबाहो ! हम युद्धमें जातिके लोगोंका वध करके ही क्या पावेंगे ? ॥ ६ ॥

दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
क्षत्रिया निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च ॥ ७ ॥

सुबलपुत्र शकुनि और कर्णकी कुमन्त्रणाके अनुसार दुर्योधनके अपराधसे ही क्षत्रियोंका नाश हो रहा है ॥ ७ ॥

इदानीं च विजानामि सुकृतं मधुसूदन ।
कृतं राज्ञा महाबाहो याचता स्म सुयोधनम् ।
राज्यार्धं पञ्च वा ग्रामान्नाकार्षीत्स च दुर्मतिः ॥ ८ ॥

हे मधुसूदन ! महाबाहो ! इस समय मैंने समझ लिया, कि राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनके निकट पहले आधा राज्य किंवा पांच ही गांव मांगकर जो याचना की थी, वही उत्तम कार्य किया था; परन्तु नीचबुद्धि दुर्योधनने वह प्रदान नहीं किया ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा हि क्षत्रियाञ्शूराञ्शयानान्धरणीतले ।
निन्दामि भृशमात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ९ ॥

अब इस समय शूरवीर क्षत्रियोंको रणभूमिमें मरके पृथ्वीपर पडे हुए देखकर, मैं अपनेको सबसे अधिक निन्दित समझता हूं; क्षत्रियोंकी इस जीविकाको धिक्कार है ॥ ९ ॥

अशक्तमिति मामेते ज्ञास्यन्ति क्षत्रिया रणे ।
युद्धं ममैभिरुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन ॥ १० ॥

हे मधुसूदन ! ये सब क्षत्रिय मुझे युद्धमें असमर्थ समझेंगे; इस ही कारणसे मैं जातिके लोगोंके सङ्ग युद्ध कर रहा हूं ॥ १० ॥

संचोदय हयान्क्षिप्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ।
प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् ।
नायं क्लीबयितुं कालो विद्यते माधव कश्चित् ॥ ११ ॥

हे कृष्ण ! इस समय घोडोंको तुम शीघ्र धृतराष्ट्र सेनाकी ओर चलाओ, मैं अपनी दोनों भुजाओंकी सहायतासे इस महा युद्ध-सागरसे पार होऊंगा, अब निरर्थक समयको बिताना उचित नहीं है ॥ ११ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा ।
चोदयामास तानश्वान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥ १२ ॥

शत्रुवीरनाशन कृष्णने अर्जुनकी ऐसी बात सुनकर वायुके समान वेगवाले उन श्वेत घोडोंको तुम्हारी सेनाकी ओर चलाया ॥ १२ ॥

अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ १३ ॥

हे भारत ! जैसे पूर्णिमाके दिन वायुकी प्रेरणासे समुद्रका वेग बढनेसे उसका महा घोर शब्द होता है; वैसे ही तुम्हारी सेनाके बीच अत्यन्त कोलाहल होने लगा ॥ १३ ॥

अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥ १४ ॥

महाराज ! तब सन्ध्याके समय पाण्डवोंके सङ्ग भीष्मका बादलकी गर्जनाके समान महा घोर शब्दसे युक्त भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ १४ ॥

ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् ।
परिवार्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा ॥ १५ ॥

राजन् ! जैसे वसुओंने इन्द्रको चारों ओरसे घेरकर युद्धके निमित्त गमन किया था; वैसे ही तुम्हारे सब पुत्र द्रोणाचार्यको घेरकर भीमसेनकी ओर दौडे ॥ १५ ॥

ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः ।
भगदत्तः सुशर्मा च धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्म, रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य, भगदत्त और सुशर्मा अर्जुनसे युद्ध करनेके निमित्त उनके समीप उपस्थित हुए ॥ १६ ॥

हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ ।
अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवारयत् ॥ १७ ॥

कृतवर्मा और बाह्लिक सात्यकिसे सामना करने लगे और राजा अम्बष्ठ अभिमन्युसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १७ ॥

शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान् ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ १८ ॥

हे महाराज ! बाकी सब महारथी योद्धा पाण्डवोंके बाकी महारथियोंपर आक्रमण करने लगे । तब उन सब वीरोंका महा घोर भयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ १८ ॥

×

भीमसेनस्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर ।
प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव ॥ १९ ॥
हे राजन् ! भीमसेन युद्धमें तुम्हारे पुत्रोंको देखकर जैसे अग्नि घृतकी आहुति पडनेसे अधिक प्रज्वलित होती है, वैसे ही क्रुद्ध होकर युद्धमें प्रकाशित होने लगे ॥ १९ ॥

पुत्रास्तु तव कौन्तेयं छादयाञ्चक्रिरे शरैः ।
प्रावृषीव महाराज जलदाः पर्वतं यथा ॥ २० ॥
महाराज ! तुम्हारे पुत्रोंने भी जैसे वर्षाके समयमें बादल पर्वतपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही कुन्तीनन्दन भीमसेनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करके उन्हें छिपा दिया ॥ २० ॥

स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशां पते ।
सृक्किणी विलिहन्वीरः शार्दूल इव दर्पितः ॥ २१ ॥
पृथ्वीपते ! तुम्हारे पुत्रोंके बाणोंकी वर्षासे बार बार आच्छादित किये जानेपर, क्रोधपूर्वक अपने मुंहके कोनोंको चाटते हुए, सिंहके समान शौर्यका अभिमान रखनेवाले, ॥ २१ ॥

व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास पार्थिव ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद्गतजीवितः ॥ २२ ॥
भारत ! पराक्रमी भीमसेनने एक अत्यंत तीक्ष्ण क्षुरप्रसे व्यूढोरस्कके ऊपर प्रहार किया, उसके लगते ही व्यूढोरस्क मर मरके पृथ्वीमें गिरे ॥ २२ ॥

अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन च
अपातयत्कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ २३ ॥
अनन्तर जैसे सिंह छोटे मृगका बध करता है, वैसे ही दूसरे एक शाणित तीक्ष्ण भल्लसे कुण्डलको भी मार डाला ॥ २३ ॥

ततः सुनिशितान्पीतान्समादत्त शिलीमुखान् ।
स सप्त त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष ॥ २४ ॥
मारिष ! अनन्तर वहांपर स्थित तुम्हारे सब पुत्रोंको देखकर शीघ्रताके सहित तीखे और पानीदार सात बाणोंसे उनके ऊपर लक्ष्य करके प्रहार करने लगे ॥ २४ ॥

प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना ।
अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् ॥ २५ ॥
दृढ धनुर्द्धारी भीमसेनके द्वारा चलाये हुए बाणोंसे तुम्हारे अति महारथी वीर पुत्रोंको मारकर रथसे नीचे गिरा दिया ॥ २५ ॥

अनाधृष्टिं कुण्डभेदं वैराटं दीर्घलोचनम् ।
दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम् ॥ २६ ॥
वे पुत्र अनाधृष्टि, कुण्डभेद, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज नामके थे ॥ २६ ॥

प्रपतन्ता स्म ते वीर विरेजुर्भरतर्षभ ।
वसन्ते पुष्पशबलाश्चूताः प्रपतिता इव ॥ २७ ॥
भरतर्षभ ! वे सभी वीर रथसे वहां गिरते समय, वसन्त कालमें पुष्पयुक्त आमके वृक्षोंकी भांति सुशोभित हुए ॥ २७ ॥

ततः प्रदुद्रुवुः शेषाः पुत्रास्तव विशां पते ।
तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥ २८ ॥
तब तुम्हारे शेष पुत्र उस महा संग्राममें महा बलवान् भीमसेनको कालस्वरूप जानकर वहांसे भाग गये ॥ २८ ॥

द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव ।
यथाद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद्व्यकिरच्छरैः ॥ २९ ॥
अनन्तर द्रोणाचार्यने भीमसेनको युद्धमें तुम्हारे पुत्रोंका वध करते देखकर पर्वतके ऊपर बादलकी जलवर्षाके समान उन्हें चारों ओरसे अपनी बाणवर्षासे छिपा दिया ॥ २९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् ।
द्रोणेन वार्यमाणोऽपि निजघ्ने यत्सुतांस्तव ॥ ३० ॥
कुन्तीपुत्र भीमसेनका उस समय यह मैंने अद्भुत पराक्रम देखा, कि उनको द्रोणाचार्य अपने बाणोंसे निवारण कर रहे थे; तौ भी उन्होंने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया ॥ ३१ ॥

यथा हि गोवृषो वर्षं संधारयति खात्पतत् ।
भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत् ॥ ३१ ॥
जैसे सांढ आकाशसे गिरते हुए जलकी वर्षा सहते हैं, वैसे ही भीमसेन द्रोणाचार्यके चलाये हुए बाणोंको सहने लगे ॥ ३१ ॥

अद्भुतं च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः ।
यत्पुत्रांस्तेऽवधीत्संख्ये द्रोणं चैव न्ययोधयत् ॥ ३२ ॥
महाराज ! भीमने उस युद्धमें यह आश्चर्य कार्य किया, कि द्रोणाचार्यको भी निवारण किया और तुम्हारे पुत्रोंका भी युद्धभूमिमें वध किया ॥ ३२ ॥

पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडार्जुनपूर्वजः ।
मृगेष्विव महाराज चरन्व्याघ्रो महाबलः ॥ ३३ ॥

जैसे महाबलवान् व्याघ्र हरिणोंके झुण्डमें भ्रमण करके क्रीडा करता है वैसे भीमसेन तुम्हारे वीर पुत्रोंके बीच भ्रमण करते थे ॥ ३२ ॥

यथा वा पशुमध्यस्थो द्रावयेत पशून्वृकः ।
वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद्रणे ॥ ३४ ॥

अथवा जैसे पशुओंके बीचमें स्थित वृक पशुओंको विदीर्ण करता है, वैसे ही भीमसेन रणभूमिमें तुम्हारे पुत्रोंको तितर बितर करने लगे ॥ ३४ ॥

गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथः ।
पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुरर्जुनम् ॥ ३५ ॥

गंगानंदन भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्य ये महारथी पाण्डुपुत्र बलवान् अर्जुनको युद्धमें निवारण करने लगे ॥ ३५ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां सोऽतिरथो रणे ।
प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३६ ॥

परन्तु अतिरथी अर्जुनने समरमें उन सब महारथियोंके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे निवारण किया। फिर तुम्हारी सेनाके मुख्य मुख्य शूरवीरोंका वध करके उन्हें यमपुरीमें भेजने लगे ॥३६॥

अभिमन्युश्च राजानमम्बष्ठं लोकविश्रुतम् ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं कारयामास सायकैः ॥ ३७ ॥

अभिमन्युने लोकमें विख्यात रथियोंमें श्रेष्ठ राजा अम्बष्ठको रथ रहित कर दिया। और उसको बाणसे निवारण करने लगे ॥ ३७ ॥

विरथो वध्यमानः स सौभद्रेण यशस्विना ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं सव्रीडो मनुजाधिपः ॥ ३८ ॥

राजा अम्बष्ठ यशस्वी सुभद्रापुत्र अभिमन्युके बाणोंसे पीडित और रथ रहित होकर लज्जा-पूर्वक रथसे कूद पडे ॥ ३८ ॥

असिं चिक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः ।
आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ ३९ ॥

और उन्होंने महात्मा सुभद्राकुमारपर रणक्षेत्रमें तलवार फेंकके, महात्मा कृतवर्माके रथपर चढ गये ॥ ३९ ॥

आपतन्तं तु निस्त्रिंशं युद्धमार्गविशारदः ।
लाघवाद्व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा ॥ ४० ॥

युद्धविद्याके जाननेवाले, शत्रुनाशन सुभद्राकुमार अभिमन्युने अपनी ओर उस तलवारको आती देख, रथकी गतिसे भ्रमण करके उसे निष्फल किया ॥ ४० ॥

व्यंसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा ।
साधु साध्विति सैन्यानां प्रणादोऽभूद्विशां पते ॥ ४१ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय समरभूमिमें वीर सुभद्रा पुत्र अभिमन्युके द्वारा अम्बष्ठकी चलायी हुई तलवारको निष्फल की गई देखकर समस्त सेनाके पुरुष धन्यवाद करके उनकी प्रशंसा करने लगे । सैनिकोंके मुखसे निकली हुई ' साधु साधु ' की ध्वनि गूंज उठी ॥ ४१ ॥

धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन् ।
तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! उधर पाण्डवोंकी सेनाके सहित धृष्टद्युम्न आदि योद्धा आपकी सेनाके साथ और तुम्हारी सेनाके वीर पाण्डव सेनाके साथ घोर युद्ध करने लगे ॥ ४२ ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
निघ्नतां भृशमन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥ ४३ ॥

एक दूसरेपर बहुत प्रहार और दुष्कर कर्म करनेवाले तुम्हारे और पाण्डवोंके सैनिकोंमें महान् संग्राम होने लगा ॥ ४३ ॥

अन्योन्यं हि रणे शूराः केशेष्वाक्षिप्य मारिष ।
नखैर्दन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥ ४४ ॥

मारिष ! दोनों सेनाके शूरवीर योद्धा युद्धमें एक दूसरेके केशोंको आकर्षण करते, नख, दांत, मुके और घुटनोंसे युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥

बाहुभिश्च तलैश्चैव निस्त्रिंशैश्च सुसंशितैः ।
विवरं प्राप्य चान्योन्यमनयन्यमसादनम् ॥ ४५ ॥

और अवसर पानेसे सुदृढ भुजाओं, थप्पडों और तलवारोंसे भी एक दूसरेका वध करके यमपुरीमें भेजने लगे ॥ ४५ ॥

न्यहनच्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।
व्याकुलीकृतसंकल्पा युयुधुस्तत्र मानवाः ॥ ४६ ॥

उस युद्धमें पिता पुत्रके ऊपर और पुत्र पिताके ऊपर प्रहार करके एक दूसरेको मारने लगा; सेनाके योद्धा रणभूमिमें वीर पुरुषोंको सब भांतिसे व्याकुल करके युद्धके कार्यको पूर्ण करने लगे ॥ ४६ ॥

रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि भारत ।
हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः ॥ ४७ ॥

भारत ! मरे हुए पुरुषोंके सुवर्णमय पृष्ठसे भूपित मनोहर धनुष और बहुमूल्य उत्तम भूषण रणभूमिमें गिरकर शोभने लगे ॥ ४७ ॥

जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैश्च शिताः शराः ।
तैलधौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः ॥ ४८ ॥

और सोने चांदीके पंखोंसे दण्ड युक्त तथा तेलके धोये हुए तीक्ष्ण बाण निर्मुक्त सर्पकी भांति रणभूमिमें गिरकर प्रकाशित होने लगे ॥ ४८ ॥

हस्तिदन्तत्सरून्खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ॥ ४९ ॥

रणभूमिमें धनुर्धर वीरोंकी तलवारें– जिसमें हाथीके दांतसे बनी हुई मूंठ लगी थीं और वे यथास्थान सुवर्णभूषित थीं, वैसे ही ढालें जो सुवर्ण पृष्ठ युक्त थीं– फेंकी पडी थीं ॥ ४९ ॥

सुवर्णविकृतप्रासान्पट्टिशान्हेमभूषितान् ।
जातरूपमयाश्चर्ष्टीः शक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ५० ॥

सुवर्ण भूषित प्रास, सोनेसे जडित पट्टिश, सोनेकी बनी हुई ऋष्टियां और सुवर्ण भूषित प्रकाशमान् शक्तियां इधर उधर पडी हुई थीं ॥ ५० ॥

अपकृत्ताश्च पतिता मुसलानि गुरूणि च ।
परिघान्पट्टिशांश्चैव भिण्डिपालांश्च मारिष ॥ ५१ ॥

मारिष ! वहां उत्तम कवच, बडे बडे मुसल, परिघ, पट्टिश और भिण्डिपाल भी सर्वत्र बिखरे हुए दिखाई देते थे ॥ ५१ ॥

पतितांस्तोमरांश्चापि चित्रा हेमपरिष्कृताः ।
कुथाश्च बहुधाकाराश्चामरव्यजनानि च ॥ ५२ ॥

विचित्र और सुवर्ण भूषित नाना भांतिको तोमर गिरे हुए थे । नाना भांतिके आकारके आस्तरण, चंवर और व्यजन भी यत्र-तत्र गिरे हुए दिखाई देते थे ॥ ५२ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि विसृज्य पतिता नराः ।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वा महारथाः ॥ ५३ ॥

महारथ वीर योद्धा इन सब नाना प्रकारके शस्त्रोंको हाथोंमेंसे त्यजकर ही मरके पृथ्वीमें गिरते थे, वे सब मरके भी जीते हुएके समान प्रकाशित होते थे ॥ ५३ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ।
गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ ॥ ५४ ॥

हे भारत ! अनेक योद्धाओंके शरीर गदाके प्रहारसे नष्ट हुए, अनेक वीरोंके शिर मुसलके चोटसे फूट गये थे, कितनेही योद्धा हाथी घोडे और रथोंसे कुचल गये थे और ये सभी वहां मरकर रणभूमिमें पडे थे ॥ ५४ ॥

तथैवाश्वनृनागानां शरीरैराबभौ तदा ।
संछन्ना वसुधा राजन्पर्वतैरिव सर्वतः ॥ ५५ ॥

राजन् ! रणभूमिका सब स्थान हाथी, घोडे और मनुष्योंके मृत शरीरोंसे इस भांति पूर्ण हो गया मानों पृथ्वी पर्वतोंसे छिप गई हो ॥ ५५ ॥

समरे पतितैश्चैव शक्त्यृष्टिशरतोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ॥ ५६ ॥

युद्धभूमिमें गिरे हुए शूल, शक्ति, ऋष्टि, बाण, तोमर, तलवार, पट्टिश, प्रास, लोहेके भाले, परशु, ॥ ५६ ॥

परिघैर्भिण्डिपालैश्च शतघ्नीभिस्तथैव च ।
शरीरैः शस्त्रभिन्नैश्च समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ५७ ॥

परिघ, भिन्डिपाल और शतघ्नी; ये सब अस्त्रशस्त्र और इनके प्रहारसे मरे हुए पुरुषोंके शरीरसे सारी पृथ्वी छिप गई ॥ ५७ ॥

निःशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न विबभौ संवृता मही ॥ ५८ ॥

हे शत्रुनाशन महाराज ! कितने योद्धा जिनके मुंहसे शब्द नहीं निकलता था और कितने ही धीरे धीरे शब्द बोलते थे, ऐसे योद्धा वहां भूमि पर गिर पडे थे। रुधिर बहते हुए शरीरसे गिरकर कितने ही योद्धा चेष्टा रहित हो गये। इस प्रकारसे इन पुरुषोंके शरीरोंसे पृथ्वी छिप गई ॥ ५८ ॥

सतलत्रैः सकेयूरैर्बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ५९ ॥
बद्धचूडामणिधरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
पतितैर्वृषभाक्षाणां बभौ भारत मेदिनी ॥ ६० ॥

हे भारत ! युद्धभूमिमें बैलके समान विशाल नेत्रोंवाले बलवान् वीरोंके गिरे हुए तलत्राण, और केयूरोंसे युक्त चन्दन चर्चित भुजा, हाथीयोंके सूण्डके समान छिन्नभिन्न हुई जङ्घा तथा उत्तम कुण्डलयुक्त मुकुटसे शोभित शिरोंसे पृथ्वी पूर्ण हो गई ॥ ५९-६० ॥

कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च काञ्चनैः ।
रराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवानलैः ॥ ६१ ॥

पृथ्वी पर शिखारहित अग्निकी जिस प्रकारसे शोभा होती है, इधर उधर बिखरे हुए सुवर्णमय कवच रुधिरसे युक्त होकर पृथ्वीपर वैसे ही शोभित होने लगे ॥ ६१ ॥

विप्रविद्धैः कलापैश्च पतितैश्च शरासनैः ।
विप्रकीर्णैः शरैश्चापि रुक्मपुङ्खैः समन्ततः ॥ ६२ ॥

सब ओर तूणीर फेंके हुए पडे थे, धनुष गिरे थे और सुवर्ण पंखयुक्त बाण बिखरे हुए थे ॥ ६२ ॥

रथैश्च बहुभिर्भग्नैः किङ्किणीजालमालिभिः ।
वाजिभिश्च हतैः कीर्णैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः ॥ ६३ ॥

सब प्रकारसे किङ्किणीयुक्त जालमाला विभूषित टूटे रथ, बाणोंसे मरे हुए जीभ निकाले रुधिरसे युक्त शरीरवाले घोडे सब ओर पडे हुए दिखाई देते थे ॥ ६३ ॥

अनुकर्षैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि ।
प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः ॥ ६४ ॥

रथके नीचेका काठ, अनुकर्ष, पताका, तूणीर, ध्वजा और बडे वीरोंके श्वेत वर्ण बडे बडे शंख फैलकर पडे थे ॥ ६४ ॥

स्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विबभौ मही ।
नानारूपैरलंकारैः प्रमदेवाभ्यलंकृता ॥ ६५ ॥

और कटे हुए सूण्डसे युक्त मरे हुए पर्वतके समान हाथियोंसे युक्त युद्धकी पृथ्वी नाना भांतिके भूषणोंसे युक्त प्रमदा स्त्रीकी भांति शोभित हुई ॥ ६५ ॥

दन्तिभिश्चापरैस्तत्र सप्रासैर्गाढवेदनैः ।
करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरं च मुहुर्मुहुः ।
विबभौ तद्रणस्थानं धस्यमानैरिवाचलैः ॥ ६६ ॥

प्राससे युद्ध अत्यन्त पीडित कई दन्तार हाथी सूण्डसे बार बार शब्द करते हुए और पानीके कण फेंकते हुए तथा कितने ही चेष्टारहित हाथियोंसे पृथ्वी छिप गई। तब वह रणभूमिमें झरनोंसे युक्त पर्वतोंसे युक्त होनेके समान दिखने लगी ॥ ६६ ॥

नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनाम् ।
वैडूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरङ्कुशैः शुभैः ॥ ६७ ॥

हाथियोंके नाना प्रकारके वर्णवाले कम्बल, हाथियोंके परिस्तोम, वैडूर्यमणि युक्त दण्डवाले हाथी-दांतोंसे युक्त शोभायमान अंकुश गिरे हुए थे ॥ ६७ ॥

घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः ।
विपाटितविचित्राभिः कुथाभी राङ्कवैस्तथा ॥ ६८ ॥

बडे बडे गजराजोंकी घंटाएं सब ओर बिखरी हुई थीं, हाथियोंके पीठपर बिछाये जानेवाले चित्र विचित्र कंबल फटे हुए और सादे अंकुश चारों ओर गिरे हुए थे ॥ ६८ ॥

ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च रुक्मकक्ष्याभिरेव च ।
यन्त्रैश्च बहुधा छिन्नैस्तोमरैश्च सकम्पनैः ॥ ६९ ॥

गलेकी चित्र विचित्र माला, सुवर्णके हौदे, बहुतसे कटे टूटे यन्त्र, कम्पन करनेवाले सुवर्णमय तोमर ॥ ६९ ॥

अश्वानां रेणुकपिलै रुक्मच्छन्नैरुरश्छदैः ।
सादिनां च भुजैश्छिन्नैः पतितैः साङ्गदैस्तथा ॥ ७० ॥

धूलिसे युक्त कपिलवर्ण भूपित घोडोंकी छातिको ढकनेवाले सुनहरे चारजामे, बाजूबंद सहित कटे हुए हाथ, घुडसवारोंके कवच ॥ ७० ॥

प्रासैश्च विमलैस्तीक्ष्णैर्विमलाभिस्तथर्ष्टिभिः ।
उष्णीषैश्च तथा छिन्नैः प्रविद्धैश्च ततस्ततः ॥ ७१ ॥

तीक्ष्ण और चमकीले प्रास, चमकती हुई ऋष्टि, जहां तहां गिरे हुए छिन्न भिन्न शिरस्त्राण आदिसे पृथ्वी पूर्ण हो गयी थी ॥ ७१ ॥

विचित्रैरर्धचन्द्रैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ।
अश्वास्तरपरिस्तोमै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा ॥ ७२ ॥

सुवर्णदण्ड भूपित विचित्र अर्ध चन्द्र बाण, घोडोंके जीन, झूल और उनकी पीठपर बिछाये जानेवाले रंकु मृगोंके मृदु चर्म आसन, जो नीचे गिरकर कुचलकर धूलसे भर गये थे ॥७२॥

नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ।
छत्रैस्तथापविद्धैश्च चामरव्यजनैरपि ॥ ७३ ॥

राजाओंके मुकुटमें आवद्ध महा मूल्यवान् और विचित्र चूडामणि, इधर उधर गिरे हुए छत्र, चंवर, व्यजन ॥ ७३ ॥

पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ॥ ७४ ॥

वीरोंके मनोहर कुण्डल युक्त, पद्म और चन्द्रमाके समान शोभायमान, मूंछोंसे युक्त और भूषणोंसे भूषित कटे हुए वदन ॥ ७४ ॥

अपविद्धैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलैः ।
ग्रहनक्षत्रशबला द्यौरिवासीद्वसुन्धरा ॥ ७५ ॥

महाराज ! सुवर्णके उत्तम कुंडल आदि भूषण प्रकाशित होकर, इधर उधर निखरे हुए थे । इन सब चीजोंसे पूर्ण हुई वहांकी भूमि ग्रह तथा तारोंसे युक्त आकाशमण्डलके समान विचित्र शोभा धारण करती थी ॥ ७५ ॥

एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत।
परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे ॥ ७६ ॥

भारत! तुम्हारी और पाण्डवोंकी वे दोनों ओरकी बहुत सेना युद्धमें इसी प्रकारसे एक दूसरीसे भिडकर मरकर पृथ्वीमें पडी हुई दिखाई देने लगी ॥ ७६ ॥

तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत।
रात्रिः समभवद्धोरा नापश्याम ततो रणम् ॥ ७७ ॥

हे भारत! योद्धाओंके थकने, भागने और मरके पृथ्वीमें गिरनेके अनन्तर, जब घोर रात्रि उपस्थित हुई, तब रणभूमिमें फिर कुछ भी नहीं देखा जाता था ॥ ७७ ॥

ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः।
घोरे निशामुखे रौद्रे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ७८ ॥

महा भयङ्कर घोर दारुण रात्रि होते देख, कौरव और पाण्डवोंने अपनी अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त किया ॥ ७८ ॥

अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥ ७९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ४०२८ ॥

कौरव और पाण्डव एक साथ अपनी सेनाके निवृत्त होनेपर यथा समय अपने अपने शिविरोंमें आकर विश्राम करने लगे ॥ ७९ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें बानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥ ४०२८ ॥

: ९३ :

सञ्जय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः।
दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज! इसके अनन्तर राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, तुम्हारा पुत्र दुःशासन और दुर्जय वीर सूतपुत्र कर्ण ॥ १ ॥

समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम्।
कथं पाण्डुसुताः युद्धे जेतव्याः सगणा इति ॥ २ ॥

ये सब एकत्र होकर, सपरिवार पाण्डवोंको किस प्रकारसे पराजित किया जायगा, इसका गुप्त विचार करने लगे ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः ।
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम् ॥ ३ ॥

फिर राजा दुर्योधन सुतपुत्र कर्ण और महा बलवान् शकुनिको सम्बोधन करके उन सब मन्त्रियोंसे बोले ॥ ३ ॥

द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे ।
न पार्थान्प्रतिबाधन्ते न जाने तत्र कारणम् ॥ ४ ॥

द्रोणाचार्य, भीष्म, शल्य, कृपाचार्य और भूरिश्रवा ये सब न जाने किस कारणसे पाण्डवों-को युद्धमें निवारित नहीं करते; उसे मैं समझ नहीं सकता हूं ॥ ४ ॥

अवध्यमानास्ते चापि क्षपयन्ति बलं मम ।
सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे ॥ ५ ॥

वे सब लोग इन सब पराक्रमी वीरोंसे अवध्य होकर हमारी सेनाका नाश कर रहे हैं, हे कर्ण ! युद्धमें हमारी सेनाका नाश भी हो रहा है, और अस्त्र शस्त्रोंके प्रहार भी नष्ट हो रहे हैं ॥५॥

निकृतः पाण्डवैः शूरैरवध्यैर्दैवतैरपि ।
सोऽहं संशयमापन्नः प्रकरिष्ये कथं रणम् ॥ ६ ॥

हे कर्ण ! देवताओंसे भी अवध्य शूरवीर पाण्डवोंसे मैं ठगा गया हूं । उन लोगोंको युद्धमें किस भांतिसे प्रहार करूंगा, उस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है ॥ ६ ॥

तमब्रवीन्महाराज सूतपुत्रो नराधिपम् ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ प्रकरिष्ये प्रियं तव ॥ ७ ॥

महाराज ! यह सुनकर सूतपुत्र कर्ण राजा दुर्योधनसे इस प्रकार बोले, भरतश्रेष्ठ ! तुम शोक मत करो । मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूंगा ॥ ७ ॥

भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात् ।
निवृत्ते युधि गाङ्गेये न्यस्तशस्त्रे च भारत ॥ ८ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्म इस युद्धसे शीघ्र ही हट जावें । भारत ! जब गंगानन्दन भीष्म शस्त्र त्यागकर युद्धसे निवृत्त हो जायेंगे, ॥ ८ ॥

अहं पार्थान्हनिष्यामि सहितान्सर्वसोमकैः ।
पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप ॥ ९ ॥

तब भीष्मके संमुखमें ही मैं सम्पूर्ण सोमकोंके सहित कुन्तीपुत्र पाण्डवोंका एक साथ वध करूंगा, राजन् ! यह मैं तुम्हारे समीप सत्य प्रतिज्ञा करता हूं ॥ ९ ॥

पाण्डवेषु दयां राजन्सदा भीष्मः करोति वै ।
अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान्महारथान् ॥ १० ॥

भीष्म सदा पाण्डवोंके ऊपर दया किया करते हैं; इससे वह इस महा युद्धमें महारथी पाण्डवोंको रणभूमिमें जीतनेमें सर्वथा असमर्थ हैं ॥ १० ॥

अभिमानी रणे भीष्मो नित्यं चापि रणप्रियः ।
स कथं पाण्डवान्युद्धे जेष्यते तात संगतान् ॥ ११ ॥

तात ! और वह युद्धमें अभिमानी हैं, सदा सर्वदा युद्ध करनेहीकी अभिलाषा करते हैं; इससे युद्ध करनेवाले सब पाण्डवोंको किस निमित्त जीत करके युद्ध शेष करेंगे ? ॥ ११ ॥

स त्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिबिरं प्रति ।
अनुमान्य रणे भीष्मं शस्त्रं न्यासय भारत ॥ १२ ॥

हे भारत ! इसलिये तुम शीघ्र ही यहांसे भीष्मके शिविरमें जाकर, भीष्मको इस विषयमें संमत करके युद्धभूमिमें उनका अस्त्र शस्त्र त्याग करनेके निमित्त अनुरोध करो ॥ १२ ॥

न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान्पश्य पाण्डवान् ।
मयैकेन रणे राजन्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ १३ ॥

राजन् ! भीष्मके अस्त्र त्याग करनेपर तुम देखोगे, कि मैंने अकेले ही युद्धमें पाण्डव लोगोंका उनके सुहृद बन्धुबान्धवोंके सहित वध किया है ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीद्भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः ॥ १४ ॥

कर्णने ऐसा वचन कहनेपर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन वहां अपने भाई दुःशासनसे इस प्रकार बोले ॥ १४ ॥

अनुयात्रं यथा सज्जं सर्वं भवति सर्वतः ।
दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय ॥ १५ ॥

हे दुःशासन ! जिससे ये अनुयायी वीर योद्धा सब प्रकारसे यात्रा संबंधी तैय्यारीसे सज्जित होवें, तुम उसका शीघ्र ही विधान करो ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्कर्णमाह जनेश्वरः ।
अनुमान्य रणे भीष्ममितोऽहं द्विपदां वरम् ॥ १६ ॥

राजन् ! राजा दुर्योधन दुःशासनसे ऐसा कहकर फिर कर्णसे बोले, मैं मनुष्योंमें श्रेष्ठ भीष्मको युद्धसे हटनेके लिये संमत करके, ॥ १६ ॥

आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिन्दम ।
ततस्त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकरिष्यसि संयुगम् ॥ १७ ॥

शीघ्र ही तुम्हारे निकट आता हूं, हे शत्रुनाशन ! भीष्मके युद्धसे पृथक् होनेहीसे तुम युद्ध करोगे ॥ १७ ॥

निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशां पते ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैर्देवैरिव शतक्रतुः ॥ १८ ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन शीघ्र ही अपने सब भाईयोंसे युक्त हो, देवताओंके बीच इन्द्रके समान शोभित होकर, गमन करने लगे ॥ १८ ॥

ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्तदा ॥ १९ ॥

तब भाई दुःशासनने शार्दूलके समान पराक्रमशील राजशार्दूल दुर्योधनको शीघ्रताके सहित घोडेपर चढाया ॥ १९ ॥

अङ्गदी बद्धमुकुटो हस्ताभरणवान्नृपः ।
धार्तराष्ट्रो महाराज विबभौ स महेन्द्रवत् ॥ २० ॥

महाराज ! राजा दुर्योधन शरीरके सब उत्तम वस्त्र, भूषण, माथेपर मुकुट और हाथोंमें वलय आदि आभूषणोंसे भूपित होकर मार्गमें गमन करते हुए, इन्द्रके समान अत्यन्त शोभित होने लगे ॥ २० ॥

भाण्डीपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभेन च ।
अनुलिप्तः परार्ध्येन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ २१ ॥

उसने मंजिष्ठा पुष्पके समान सुगंधित उत्तम और सुवर्णके समान वर्णवाले सुगन्धि चन्दन लगाया था ॥ २१ ॥

अरजोम्बरसंवीतः सिंहखेलगतिर्नृपः ।
शुशुभे विमलार्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः ॥ २२ ॥

निर्मल अम्बर धारण किये हुए, सिंहगतिके समान गमन करते हुए, राजा दुर्योधन उस समय अपनी निर्मल प्रभासे अम्बरधारी होकर शरदृतुके किरणधारी सूर्यके समान प्रकाशित हुए ॥ २२ ॥

तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिबिरं प्रति ।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः सर्वलोकस्य धन्विनः ।
भ्रातरश्च महेष्वासास्त्रिदशा इव वासवम् ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह राजा दुर्योधनको भीष्मके शिबिरकी ओर जाते देखकर सब लोगोंमें विख्यात महा बलवान् धनुर्द्धारी योद्धा नरेश और उनके धनुर्द्धर सब भाई लोग इस प्रकारसे उनके अनुगामी हुए, जैसे देवता लोग इन्द्रका अनुगमन करते हैं ॥ २३ ॥

हयानन्ये समारुह्य गजानन्ये च भारत ।
रथैरन्ये नरश्रेष्ठाः परिवव्रुः समन्ततः ॥ २४ ॥

भारत ! कितने ही घोडेपर, कितने ही हाथियोंपर और कितने ही पराक्रमी नरश्रेष्ठ वीर रथपर चढके राजा दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर चले ॥ २४ ॥

आत्तशस्त्राश्च सुहृदो रक्षणार्थं महीपतेः ।
प्रादुर्बभूवुः सहिताः शक्रस्येवामरा दिवि ॥ २५ ॥

जैसे स्वर्गमें देवता लोग इन्द्रकी रक्षा करनेके निमित्त उनके अनुगामी होते हैं, वैसे ही उनके समस्त सुहृद् अस्त्र-शस्त्र लेकर राजा दुर्योधनकी रक्षा करनेके निमित्त उनके अनुगामी हुए ॥ २५ ॥

संपूज्यमानः कुरुभिः कौरवाणां महारथः ।
प्रययौ सदनं राजन्गाङ्गेयस्य यशस्विनः
अन्वीयमानः सहितैः सोदरैः सर्वतो नृपः ॥ २६ ॥

राजन् ! कुरुराज महारथी दुर्योधन कौरवोंसे पूजित होकर यशस्वी गङ्गानन्दन भीष्मके समीप उनके शिविरमें जाने लगे । वह राजा अनुगमन करनेवाले सहोदर भाइयोंके सहित घेरकर गमन कर रहे थे ॥ २६ ॥

दक्षिणं दक्षिणः काले संभृत्य स्वभुजं तदा ।
हस्तिहस्तोपमं शैक्षं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ २७ ॥
प्रगृह्णन्नञ्जलीन्नृणामुद्यतान्सर्वतोदिशम् ।
शुश्राव मधुरा वाचो नानादेशनिवासिनाम् ॥ २८ ॥

चारों ओरसे नाना देशवासी मनुष्य हाथ जोडके खडे होकर उनसे विनयपूर्वक प्रणाम करते थे; वह सब शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ, यथायोग्य अस्त्र प्रहारकी शिक्षायुक्त अनुकूल रूपसे प्राप्त हुई, हाथिके सूण्डके समान विशाल अपनी दाहिनी भुजाको ऊपर उठाते, उन लोगोंकी विनययुक्त प्रणामाञ्जली ग्रहण करते और मधुर वचनोंको सुनते हुए गमन करने लगे ॥ २७–२८ ॥

संस्तूयमानः सूतैश्च मागधैश्च महायशाः ।
पूजयानश्च तान्सर्वान्सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ २९ ॥

सब जगत्का अधीश्वर महायशस्वी दुर्योधन सूत, मागध आदि पुरुषोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनकर, उन सब लोगोंका समादर करता था ॥ २९ ॥

प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलावसेचनैः ।
परिवव्रुर्महात्मानं प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥ ३० ॥

सुगन्धित तेलसे युक्त सुवर्णमय दीपक जलाकर सेवक महात्मा दुर्योधनको चारों ओरसे घेर-कर गमन करने लगे ॥ ३० ॥

स तैः परिवृतो राजा प्रदीपैः काञ्चनैः शुभैः ।
शुशुभे चन्द्रमा युक्तो दीप्तैरिव महाग्रहैः ॥ ३१ ॥

राजा दुर्योधन उन सब सुवर्णके शुभ दीपकोंसे घिरकर प्रकाशित महाग्रहोंके बीच चन्द्रमाके समान शोभित होने लगे ॥ ३१ ॥

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
प्रोत्सारयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतोदिशम् ॥ ३२ ॥

सुवर्णभूषित पगडी और वस्त्रोंको धारण करनेवाले योद्धा लोग हाथमें बेंत और शस्त्र ग्रहण करके सब ओर मार्गसे मनुष्योंको धीरे धीरे हटाते हुए चलने लगे ॥ ३२ ॥

संप्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभम् ।
अवतीर्य हयाचापि भीष्मं प्राप्य जनेश्वरः ॥ ३३ ॥

इसी प्रकारसे गमन करते हुए राजा दुर्योधन भीष्मके सुंदर शिविरके समीप पहुंचके घोडोंसे उतर पडा ॥ ३३ ॥

अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने ।
काञ्चने सर्वतोभद्रे स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ।
उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ ३४ ॥

और भीष्मके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। अनन्तर बहुमूल्य उत्तम वस्त्रोंसे युक्त सुवर्णमय सुन्दर सर्वतोभद्र आसनपर बैठ गये। अनन्तर हाथ जोड कर दुःखित चित्तसे गद्गद कण्ठसे आंखोंमें आंसू भरके भीष्मसे बोले ॥ ३४ ॥

त्वां वयं समुपाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ।
उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान् ॥ ३५ ॥

हे शत्रुनाशन ! हम लोग युद्धमें तुम्हारा आसरा करके इन्द्रके सहित देवता और असुरोंको भी जीतनेका उत्साह रखते हैं ॥ ३५ ॥

किमु पाण्डुसुतान्वीरान्ससुहृद्गणबान्धवान् ।
तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो ।
जहि पाण्डुसुतान्वीरान्महेन्द्र इव दानवान् ॥ ३६ ॥

तब जो सुहृद् तथा बन्धुबान्धवोंके सहित वीर पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करूंगा; उसकी बात ही क्या है ? इससे हे पितामह गङ्गानन्दन भीष्म ! तुम मेरे ऊपर कृपा करो । हे महाराज ! जैसे देवराज इन्द्रने दानवोंका वध किया था, वैसे ही तुम युद्धमें वीर पाण्डवोंका नाश करो ॥ ३६ ॥

पूर्वमुक्तं महाबाहो निहनिष्यामि सोमकान् ।
पाञ्चालान्पाण्डवैः सार्धं करूषांश्चेति भारत ॥ ३७ ॥

हे महाबाहो ! भरतकुलभूषण ! तुमने पहिले कहा था, कि मैं पाण्डवों सहित सम्पूर्ण सोमक वंशी, पाञ्चाल और करूषदेशीय योद्धाओंका संहार करूंगा ॥ ३७ ॥

तद्वचः सत्यमेवास्तु जहि पार्थान्समागतान् ।
सोमकांश्च महेष्वासान्सत्यवाग्भव भारत ॥ ३८ ॥

भारत ! तुम्हारा वचन सत्य होवे, तुम एकत्रित हुए महाधनुर्धर सोमकवंशीय वीर योद्धा और पाण्डवोंका वध करके, सत्यवादी बनो ॥ ३८ ॥

दयया यदि वा राजन्द्वेष्यभावान्मम प्रभो ।
मन्दभाग्यतया वापि मम रक्षसि पाण्डवान् ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! प्रभो ! यदि पाण्डवोंके ऊपर तुम्हारी दया और मेरी मंदभाग्यतासे मेरे ऊपर तुम द्वेष युक्त होकर पाण्डवोंकी रक्षा करते होओ ॥ ३९ ॥

अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् ।
स जेष्यति रणे पार्थान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ ४० ॥

तो युद्ध भूमिमें शोभापानेवाले पराक्रमी कर्णको युद्ध करनेके निमित्त आज्ञा दिजिये; वह पाण्डवोंको उनके सुहृद् तथा बन्धु बान्धवोंके सहित युद्धमें जीत लेगा ॥ ४० ॥

एतावदुक्त्वा नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
नोवाच वचनं किञ्चिद्भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ४०६९ ॥

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने भीम पराक्रमी भीष्मसे ऐसा वचन कहकर मौन अवलम्बन किया ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें तिरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥ ४०६९ ॥

: ९४ :

सञ्जय उवाच

वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धः पितामहः ।
दुःखेन महताविष्टो नोवाचाप्रियमण्वपि ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! लोकोंके स्वभाव जाननेवालोंमें अग्रणी पितामह भीष्म तुम्हारे पुत्रके वचनरूपी शलाकासे अत्यन्त विद्ध और महादुःखित हो, कुछ भी अप्रिय वचन न बोले ॥१॥

स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः ।
श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वै शलाकया ॥ २ ॥

वे दुःखित और क्रोधसे युक्त होकर सर्पकी भांति लम्बी सांस छोडते हुए बहुत देर तक चिन्ता करने लगे; वह दुर्योधनके वचनरूपी अंकुश शलाकासे पीडित होकर हाथीके समान व्यथाका अनुभव करने लगे ॥ २ ॥

उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत।
सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदां वरः।
अब्रवीत्तव पुत्रं तु सामपूर्वमिदं वचः ॥ ३ ॥

भारत ! फिर क्रोधरूपी अग्निसे दोनों नेत्र लाल करके, लोकवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भीष्म ऐसे देखने लगे, मानो देवता, असुर और गन्धर्वों सहित संपूर्ण लोकोंको भस्म करते हैं। अनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको इस प्रकार साम वचनसे बोले ॥ ३ ॥

किं नु दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरुपविध्यसि।
घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम्।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तवैव हितकाम्यया ॥ ४ ॥

हे दुर्योधन ! तुम इस प्रकार क्यों मुझको वचनरूपी शलाकासे विद्ध कर रहे हो ? मैं अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारे प्रियकार्यकी चेष्टा करता हूं और अनुष्ठान भी करता हूं, तुम्हारे हितकामनाके निमित्त इस महायुद्धरूपी अग्निमें अपने प्राणकी आहुति देनेके वास्ते भी उद्यत हुआ हूं ॥ ४ ॥

यदा तु पाण्डवः शूरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत्।
पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ५ ॥

अर्जुन आदि पाण्डुपुत्र जो युद्धमें अजेय हैं, उस विषयमें अधिक क्या कहूंगा ! पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुनने जो युद्धमें देवराज इन्द्रको पराजित करके खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया था, वही उसके अजेयताके निमित्त पूरा प्रमाण है ॥ ५ ॥

यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा।
अमोचयत्पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ६ ॥

हे महाबाहो राजन् ! जब गन्धर्वोंने तुमको बलपूर्वक हरण किया था, तब उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने पराक्रमसे उनके हाथसे तुम्हें छुडाया था; वही उसमें यथेष्ट प्रमाण है ॥ ६ ॥

द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तथाभिभो।
सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ७ ॥

हे महाबाहो ! उस समय तुम्हारे शूरवीर भाई और राधानन्दन सूतपुत्र बलवान् कर्ण तो भाग गये थे, वही उनके विषयमें पूर्ण प्रमाण है ॥ ७ ॥

यच्च नः सहितान्सर्वान्विराटनगरे तदा।
एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८ ॥

बिराट नगरमें जब हम सब लोगोंने मिल कर युद्धके लिये डटकर गौओंका हरण किया था, तब अर्जुनने अकेले ही हम लोगोंपर आक्रमण किया था; वही उसके विषयमें पूर्ण प्रमाण है ॥ ८ ॥

×

द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे ।
कर्णं च त्वां च द्रौणिं च कृपं च सुमहारथम् ।
वासांसि स समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ९ ॥

उस समय अर्जुनने मुझे और क्रुद्ध द्रोणाचार्यको, वैसे ही कर्ण, तुम, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और महारथी कृपाचार्यको भी जो युद्धमें पराजित करके वस्त्र हरण किया, यही उसके विषयमें यथेष्ट प्रमाण है ॥ ९ ॥

निवातकवचान्युद्धे वासवेनापि दुर्जयान् ।
जितवान्समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १० ॥

देवताओंके राजा इन्द्र भी जिनको युद्धमें नहीं जीत सके, उन निवातकवच नामके दानवोंको जो अर्जुनने युद्धमें पराजित किया, यही उसके विषयमें पूर्ण प्रमाण है ॥ १० ॥

को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं रणे ।
त्वं तु मोहान्न जानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥ ११ ॥

वेगशाली वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनको युद्धभूमिमें कौन जीतनेमें समर्थ है ? परंतु सुयोधन ! तुम मोहमें पडकर वाच्यावाच्यको नहीं समझ सकते हो ॥ ११ ॥

मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान्वृक्षान्पश्यति काञ्चनान् ।
तथा त्वमपि गान्धारे विपरीतानि पश्यसि ॥ १२ ॥

गान्धारीनन्दन ! मरनेवाला पुरुष जैसे सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता है; उसी प्रकारसे तुम भी सबको विपरीत दर्शन कर रहे हो ॥ १२ ॥

स्वयं वैरं महत्कृत्वा पाण्डवैः सहसृञ्जयैः ।
युध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव ॥ १३ ॥

तुमने स्वयं ही पहिले पाण्डव और सृञ्जयोंके सङ्ग अत्यन्त शत्रुता उत्पन्न की है, इस समय तुम ही उन सब वीरोंके सङ्ग युद्ध करके, अपना पराक्रम प्रकाशित करो; हमलोग तुम्हारे पराक्रमको देखें ॥ १३ ॥

अहं तु सोमकान्सर्वान्सपाञ्चालान्समागतान् ।
निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखण्डिनम् ॥ १४ ॥

नरव्याघ्र ! मैं शिखण्डीके अतिरिक्त युद्धके निमित्त एकत्रित हुए सम्पूर्ण सोमकवंशीय और पाञ्चाल योद्धाओंका वध करूंगा ॥ १४ ॥

तैर्वाहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम् ।
तान्वा निहत्य संग्रामे प्रीतिं दास्यामि वै तव ॥ १५ ॥

या तो मैं उन लोगोंके हाथसे युद्धमें मरके यमराजके स्थानपर गमन करूंगा; अथवा उनको संग्राममें मारकर तुम्हारी प्रीतिके कार्यको पूर्ण करूंगा ॥ १५ ॥

पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखण्डी राजवेश्मनि ।
वरदानात्पुमाञ्जातः सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ १६ ॥

पहिले शिखण्डी राजा द्रुपदके राजभवनमें स्त्री होकर जन्मा था, फिर वरके प्रभावसे पुरुष हो गया है; यथार्थमें वह शिखण्डिनी स्त्री है ॥ १६ ॥

तामहं न हनिष्यामि प्राणत्यागेऽपि भारत ।
यासौ प्राङ्निर्मिता धात्रा सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ १७ ॥

हे भारत ! प्राण त्याग होने तक भी मैं उसका वध नहीं करूंगा, क्योंकि विधाताने उसे पहिले स्त्रीरूपसे ही उत्पन्न किया था वह शिखण्डिनी आज भी मेरी दृष्टिमें स्त्री ही है ॥१७॥

सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽस्मि कर्ता महारणम् ।
यज्जनाः कथयिष्यन्ति यावत्स्थास्यति मेदिनी ॥ १८ ॥

हे गान्धारीनन्दन दुर्योधन ! तुम सुखसे जाकर शयन करो, मैं कल भीषण महायुद्ध करूंगा । जबतक पृथ्वी रहेगी, तबतक मेरी यह कीर्ति पृथ्वीमें प्रकाशित रहेगी, इसकी चर्चा लोग करते रहेंगे ॥ १८ ॥

एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर ।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम् ॥ १९ ॥

हे राजन् ! जब भीष्मने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहा, तब उन्होंने गुरु भीष्मको उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और अपने शिविरको चला गया ॥ १९ ॥

आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनम् ।
प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयङ्करः ।
प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिवः ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ॥ ४०८९ ॥

वहां आकर शत्रुओंके नाश करनेवाले राजा दुर्योधनने सङ्गमें चलनेवाले अनुयायियोंके उस महान् समुदायको शीघ्र ही निज निज स्थानमें जानेके निमित्त आज्ञा देकर, स्वयं शिविरमें प्रवेश करके, वह रात्रि सुखसे विताई ॥ २० ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें चौरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥ ४०८९ ॥

: ९७ :

सञ्जय उवाच

प्रभातायां तु शर्वर्यां प्रातरुत्थाय वै नृपः ।
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह ।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— रात्रिके बीतनेपर सवेरे प्रातःकाल उठके राजा दुर्योधनने सम्पूर्ण राजाओंको आज्ञा दी, कि तुम लोग सेनाको युद्धके लिये सज्जित करो; आज भीष्म क्रुद्ध होकर सोमकवंशी वीरोंका युद्धमें वध करेंगे ॥ १ ॥

दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु ।
मन्यमानः स तं राजन्प्रत्यादेशमिवात्मनः ॥ २ ॥

हे राजन् ! शान्तनुनन्दन भीष्मने रात्रिके समय दुर्योधनके उस अनेक प्रकारके विलाप वचनको सुनकर, यह मान लिया कि अब दुर्योधन मुझे युद्धसे निवृत्त करना चाहता है ॥२॥

निर्वेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवाच्यताम् ।
दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥ ३ ॥

इससे वे बहुत दुःखित हुए और उन्होंने दुर्योधनके बातोंकी बहुत निन्दा की । फिर अर्जुनके संग जो युद्धके निमित्त बहुत दिनसे चिन्ता कर रहे थे, उस ही युद्धके निमित्त विचार करने लगे ॥ ३ ॥

इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम् ।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥ ४ ॥

महाराज ! दुर्योधनने गंगानंदन भीष्मके विचारको संकेतोंसे जानके, दुःशासनसे कहा ॥४॥

दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।
द्वात्रिंशत्त्वमनीकानि सर्वाण्येवाभिचोदय ॥ ५ ॥

हे दुःशासन ! तुम शीघ्र ही भीष्मकी रक्षाके निमित्त सब रथोंको जोतकर तैयार करो और सम्पूर्ण बाईस श्रेणिसेनाको भीष्मकी रक्षामें नियुक्त करो ॥ ५ ॥

इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ।
पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चागमः ॥ ६ ॥

सेनाके सहित सब पाण्डवोंका वध करके, जो सम्पूर्ण पृथ्वीका निष्कण्टक राज्य ग्रहण करनेकी चिन्ता बहुत वर्षोंसे करते हुए चला आता हूं; उसका समय आज उपस्थित हुआ है ॥६॥

तत्र कार्यमहं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम् ।
स नो गुप्तः सुखाय स्याद्धन्यात्पार्थांश्च संयुगे ॥ ७ ॥

इससे भीष्मकी रक्षा करना ही हम लोगोंका इस समय प्रधान कार्य है, ऐसा मैं मानता हूं, क्योंकि यह हम लोगोंके सुखके लिये आवश्यक है । वह रक्षित होनेसे ही युद्धमें पाण्डवोंका नाश करेंगे ॥ ७ ॥

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
स्त्रीपूर्वको ह्यसौ जातस्तस्माद्वर्ज्यो रणे मया ॥ ८ ॥

पापरहित महात्मा भीष्मने मुझसे यह वचन कहा है, कि "मैं शिखण्डीके ऊपर शस्त्र प्रहार नहीं करूंगा, क्योंकि वह पहिले स्त्री होकर जन्मा था, इस ही कारणसे युद्धमें मैं उसका परित्याग करूंगा ॥ ८ ॥

लोकस्तद्वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान्पुरा ॥ ९ ॥

हे महाबाहो ! मैंने पूर्वकालमें पिताके प्रियकार्य करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण समृद्धशाली राज्य और स्त्रियोंका त्याग किया है । वह किसीसे अविदित नहीं है ॥ ९ ॥

नैव चाहं स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथञ्चन ।
हन्यां युधि नरश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १० ॥

नरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे समीप यह सत्य वचन कहता हूं, कि स्त्री जाति अथवा जो पहिले स्त्री-रूपसे जन्म लेकर पीछे किसी कारणसे पुरुष हो गया है, उसका मैं कभी युद्धमें वध नहीं करूंगा ॥ १० ॥

अयं स्त्रीपूर्वको राजञ्छिखण्डी यदि ते श्रुतः ।
उद्योगे कथितं यत्तत्तथा जाता शिखण्डिनी ॥ ११ ॥

राजन् ! युद्ध आरम्भ होनेके पहिले मैंने तुमसे इस विषयको वर्णन किया था, और तुमने सुना है, कि यह शिखण्डी पहिले स्त्रीरूपसे जन्म लेकर शिखण्डिनी नामसे विख्यात हुई थी ॥ ११ ॥

कन्या भूत्वा पुमाञ्जातः स च योत्स्यति भारत ।
तस्याहं प्रमुखे बाणान्न मुञ्चेयं कथञ्चन ॥ १२ ॥

भारत ! जो पहिले कन्या होकर पीछे पुरुष हुआ है, वह यदि मेरे सङ्ग युद्ध करेगा, तो मैं किसी प्रकारसे उसके ऊपर बाण न चलाऊंगा ॥ १२ ॥

युद्धे तु क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः ।
सर्वानन्यान्हनिष्यामि सम्प्राप्तान्बाणगोचरान् ॥ १३ ॥

तात ! शिखण्डीको छोडके, और दूसरे विजयाभिलाषी जितने क्षत्रिय योद्धा पाण्डवोंके पक्षमें हैं, उन सबका मैं अपने बाणोंके लक्ष्यमें संमुख पानेसे अवश्य वध करूंगा ॥ १३ ॥

एवं मां भरतश्रेष्ठो गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित् ।
तत्र सर्वात्मना मन्ये भीष्मस्यैवाभिपालनम् ॥ १४ ॥

शस्त्रोंके जाननेवाले भरतश्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्मने मुझसे ऐसा ही वचन कहा है, इससे सब भांतिसे यत्नपूर्वक युद्धमें उनकी रक्षा करना ही मैं उत्तम समझता हूं ॥ १४ ॥

अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महावने ।
मा वृकेणेव शार्दूलं घातयेम शिखण्डिना ॥ १५ ॥

महावनमें सिंह भी यदि अरक्षित होवे, तो भेडिया भी इसका संहार कर सकता है, इससे सिंहरूपी भीष्मका भेडियारूपी शिखण्डीसे युद्धमें वध करना उचित नहीं है ॥ १५ ॥

मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः ।
यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन्गुप्ते ध्रुवो जयः ॥ १६ ॥

शकुनि मामा, शल्य, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और विविंशति; ये सब महारथ योद्धा यत्नपूर्वक गंगानंदन भीष्मकी रक्षा करें, उनकी रक्षा करनेसे निश्चय हम लोगोंकी विजय होगी ॥१६॥

एतच्छ्रुत्वा तु राजानो दुर्योधनवचस्तदा ।
सर्वतो रथवंशेन गाङ्गेयं पर्यवारयन् ॥ १७ ॥

उस समय शकुनि आदि महारथ योद्धा दुर्योधनकी आज्ञा सुनके रथोंपर चढ अपनी रथकी विशाल सेनासे यशस्वी गंगानंदन भीष्मको घेरकर उनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १७ ॥

पुत्राश्च तव गाङ्गेयं परिवार्य ययुर्मुदा ।
कम्पयन्तो भुवं द्यां च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥ १८ ॥

तुम्हारे पुत्रोंने भी पृथ्वी और आकाशको कम्पित कर पाण्डवोंको क्षोभित कर और भीष्मको घेरकर प्रसन्नतापूर्वक गमन करना आरंभ किया ॥ १८ ॥

ते रथैश्च सुसंयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः ।
परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवस्थिताः ॥ १९ ॥

व्यूहबद्ध महारथ योद्धा, रथ, गजपति, घुडसवारोंके सहित भीष्मको घेरकर कवच आदिसे सुसज्जित हो उनकी रक्षा करनेके निमित्त रणभूमिमें युद्धके लिये स्थित हुए ॥ १९ ॥

यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम् ।
सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम् ॥ २० ॥

जैसे देवता और असुरोंके युद्धमें देवता लोग वज्रधारी इन्द्रकी रक्षा करते हैं, वैसे ही वह सब योद्धा महारथी भीष्मकी रक्षा करने लगे ॥ २० ॥

ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत्।
सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम्।
गोप्तारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः ॥ २१ ॥

तब राजा दुर्योधन फिर उनके भाई दुःशासनसे इस प्रकार बोले, हे दुःशासन ! युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके रथके बायें और दहिने चक्रकी रक्षा करते हैं, अर्जुन इन दोनों वीरोंसे रक्षित होकर शिखण्डीकी रक्षा करते हैं ॥ २१ ॥

स रक्ष्यमाणः पार्थेन तथास्माभिर्विवर्जितः।
यथा भीष्मं न नो हन्याद्दुःशासन तथा कुरु ॥ २२ ॥

हम लोग यदि यशस्वी भीष्मकी रक्षा न करेंगे, तो शिखण्डी अर्जुनसे रक्षित होकर, पितामह भीष्मका वध करेगा। इससे जिस प्रकार वह भीष्मका वध न कर सके, तुम उसीका विधान करो ॥ २२ ॥

भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सेनया सह ॥ २३ ॥

तुम्हारे पुत्र दुःशासनने अपने भाई दुर्योधनका यह वचन सुन, सेनाके सहित भीष्मको आगे करके रणभूमिमें गमन किया ॥ २३ ॥

भीष्मं तु रथवंशेन दृष्ट्वा तमभिसंवृतम्।
अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह ॥ २४ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन भीष्मको रथोंके समूहसे घिरा हुआ देखकर धृष्टद्युम्नसे बोले ॥ २४ ॥

शिखण्डिनं नरव्याघ्र भीष्मस्य प्रमुखेऽनघ।
स्थापयस्वाद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताहमच्युत ॥ २५ ॥

हे नरव्याघ्र ! अनघ ! पाञ्चालराज ! पुरुषसिंह शिखण्डीको भीष्मके आगे स्थित करो, आज मैं उसका रक्षक बनूंगा ॥ २५ ॥

ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सेनया सह।
व्यूहं चाव्यूहत महत्सर्वतोभद्रमाहवे ॥ २६ ॥

हे भारत ! अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म सेनाके सहित शिविरसे बाहर निकलकर, रणभूमिमें स्थित हुए और उन्होंने यत्नपूर्वक सर्वतोभद्र नामके बहुत बडे व्यूहकी युद्धमें रचना की ॥ २६ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च शैब्यश्चैव महारथः।
शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २७ ॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा, महारथ शैब्य, शकुनि, सिन्धुराज जयद्रथ और काम्बोजराज सुदक्षिण॥ २७॥

भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः ॥ २८ ॥

भारत ! ये सब महारथ योद्धा भीष्म और तुम्हारे पुत्रोंके सहित संपूर्ण सेनाके आगे उस व्यूहके मुखपर स्थित हुए ॥ २८ ॥

द्रोणो भूरिश्रवाः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ २९ ॥

मारिष ! द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त, ये लोग कवच धारणकर उस उत्तम व्यूहके दाहिने पक्षपर स्थित हुए ॥ २९ ॥

अश्वत्थामा सोमदत्त आवन्त्यौ च महारथौ ।
महत्या सेनया युक्ता वामं पक्षमपालयन् ॥ ३० ॥

अश्वत्थामा, सोमदत्त और महारथी अवन्तिराज दोनों भाई विन्द और अनुविन्द ये बहुतसी सेना लेकर उस व्यूहके वामपक्षपर संरक्षणके लिये स्थित हुए ॥ ३० ॥

दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृतः ।
व्यूहमध्ये स्थितो राजन्पाण्डवान्प्रति भारत ॥ ३१ ॥

महाराज ! भारत ! राजा दुर्योधन त्रिगर्त्तदेशीय सम्पूर्ण योद्धाओंसे सब ओरसे घिरे हुए, पाण्डवोंका सामना करनेके लिए, उसके मध्यस्थलपर स्थित हुए ॥ ३१ ॥

अलम्बुसो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः ।
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ ॥ ३२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अलम्बुस और महारथ श्रुतायु ये दोनों कवच धारण करके सब सेनाके सहित इस व्यूहके पीठपर विराजमान हुए ॥ ३२ ॥

एवमेते तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः ।
संनद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाग्नयः ॥ ३३ ॥

हे भारत ! तुम्हारी ओरके सब योद्धा व्यूह बद्ध होकर, सुसज्जित हो, जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३३ ॥

तथा युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ३४ ॥

इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर, पाण्डुपुत्र भीमसेन, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव सम्पूर्ण सेनाका महादुर्जय व्यूह बनाकर, सब सेनाके आगे कवच बांधकर स्थित हुए ॥ ३४ ॥

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः।
स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः ॥ ३५ ॥

उनके पीछे धृष्टद्युम्न, राजा विराट, महारथ सात्यकि ये शत्रुनाशन वीर बडी सेनाके सहित व्यूहमें यथास्थान स्थित हुए; ॥ ३५ ॥

शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः।
चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वीर्यवान्।
स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः ॥ ३६ ॥

महाराज ! उनके बाद शिखण्डी, अर्जुन, राक्षस घटोत्कच, महाबाहु चेकितान और पराक्रमी कुन्तिभोज ये सब वीर योद्धा बहुतसी सेनाके सहित युद्धके निमित्त स्थित हुए ॥ ३६ ॥

अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महारथः।
केकया भ्रातरः पञ्च स्थिता युद्धाय दंशिताः ॥ ३७ ॥

उसके अनन्तर महाधनुर्धर अभिमन्यु, महारथी द्रुपद और केकयराज पांचों भाई वर्म धारण करके युद्धके निमित्त तैयार खडे हुए ॥ ३७ ॥

एवं तेऽपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्जयम्।
पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय मारिष ॥ ३८ ॥

मारिष ! पराक्रमसे युक्त पाण्डव लोग वर्मधारी होकर तुम्हारी सेनाके प्रतिकूलमें अत्यन्त दुर्जय महा व्यूह बनाकर युद्धके निमित्त रणभूमिमें आकर उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥

तावकास्तु रणे यत्ताः सहसेना नराधिपाः।
अभ्युद्ययू रणे पार्थान्भीष्मं कृत्वाग्रतो नृप ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! तुम्हारी ओरके राजा लोग अपनी अपनी सेनाको साथ लेकर भीष्मको आगे करके सावधानतासे पाण्डवोंकी ओर बढे ॥ ३९ ॥

तथैव पाण्डवा राजन्भीमसेनपुरोगमाः।
भीष्मं युद्धपरिप्रेप्सुं संग्रामे विजिगीषवः ॥ ४० ॥

जनेश्वर ! और पाण्डव लोग भी युद्धमें विजयकी इच्छा करते हुए भीमसेनको आगे करके भीष्मके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले आगे बढे ॥ ४० ॥

क्ष्वेडाः किलिकिलाशब्दान्क्रकचान्गोविषाणिकाः।
भेरीमृदङ्गपणवान्नादयन्तश्च पुष्करान्।
पाण्डवा अभ्यधावन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ४१ ॥

पाण्डव लोग सिंहनाद, किल किल शब्द करके, शङ्ख, क्रकच, गोशृंग, भेरी, ढोल, मृदङ्ग, पणव, पुष्कर आदि बाजोंको बजवाते और भैरव गर्जना करते हुए युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ ४१ ॥

भेरीमृदङ्गशङ्खानां दुन्दुभीनां च निस्वनैः ।
उत्कृष्टसिंहनादैश्च वल्गितैश्च पृथग्विधैः ॥ ४२ ॥

हम लोग भी क्रुद्ध होकर शीघ्रताके सहित भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख और नगाडोंको बजाते और उच्च स्वरसे सिंहनाद करते हुए, तथा अनेक प्रकारकी शेखी गाते हुए उन लोगोंके संमुख उपस्थित हुए ॥ ४२ ॥

वयं प्रतिनदन्तस्तानभ्यगच्छाम सत्वराः ।
सहसैवाभिसंक्रुद्धास्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ४३ ॥

उनसे महाघोर तुमुल शब्द होने लगा, हमने भी अपनी गर्जना द्वारा उनको उत्तर दिया । उस समय उभय पक्षके अत्यंत क्रोधित हुए हुए सैनिकोंमें महान् युद्ध होने लगा ॥ ४३ ॥

ततोऽन्योन्यं प्रधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
ततः शब्देन महता प्रचकम्पे वसुन्धरा ॥ ४४ ॥

इसके अनन्तर दोनों पक्षके सब योद्धा एक दूसरेके संमुख होकर शस्त्रोंका प्रहार करने लगे; उस समय जो महाघोर शब्द हुआ उससे पृथ्वी कांपने लगी ॥ ४४ ॥

पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विबभ्रमुः ।
सप्रभश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत ॥ ४५ ॥

उस समय आकाशमें पक्षिगण घोर शब्द करते हुए घूमते थे । सूर्य अत्यन्त प्रकाश युक्त होकर उदय हुए थे, परन्तु उस समय उनका तेज छिप गया ॥ ४५ ॥

ववुश्च तुमुला वाताः शंसन्तः सुमहद्भयम् ।
घोराश्च घोरनिर्ह्रादाः शिवास्तत्र ववाशिरे ।
वेदयन्त्यो महाराज महद्वैशसमागतम् ॥ ४६ ॥

महान् भयकी सूचना देनेवाला भयंकर वायु प्रबल वेगसे बहने लगा; सियार महाघोर भयानक अशुभ शब्द करने लगे । महाराज ! गीदडियां आये हुए घोर विनाशकी सूचना दे रही थीं ॥ ४६ ॥

दिशः प्रज्वलिता राजन्पांसुवर्षं पपात च ।
रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्षं तथैव च ॥ ४७ ॥

सब दिशाएं जलने लगीं, धूलिकी वर्षा सब ओर होने लगी और रुधिरसे युक्त हड्डी आदिकी वर्षा होने लगी ॥ ४७ ॥

रुदतां वाहनानां च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ।
सुस्रुवुश्च शकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशां पते ॥ ४८ ॥

पृथ्वीपते ! सवारीके सब वाहन रोदन करने लगे, उनके नेत्रोंसे आंसूकी धार बहने लगी; वे सब भयभीत होकर चिंतामें पडकर मलमूत्र परित्याग करने लगे ॥ ४८ ॥

अन्तर्हिता महानादाः श्रूयन्ते भरतर्षभ।
रक्षसां पुरुषादानां नदतां भैरवान्रवान् ॥ ४९ ॥

भरतर्षभ ! महाघोर गर्जना करनेवाले नरभक्षी राक्षसोंके महान् शब्द सुनाई देते थे, परंतु बोलनेवाले दिखाई नहीं देते थे ॥ ४९ ॥

सम्पतन्तः स्म दृश्यन्ते गोमायुबकवायसाः ।
श्वानश्च विविधैर्नादैर्भषन्तस्तत्र तस्थिरे ॥ ५० ॥

सियार, गिद्ध और कौवें आदि मांस खानेवाले पक्षी वहां चारों ओरसे टूट पडते थे । कुत्ते भी नाना प्रकारकी आवाजमें भूंकते रहे थे ॥ ५० ॥

ज्वलिताश्च महोल्का वै समाहत्य दिवाकरम् ।
निपेतुः सहसा भूमौ वेदयाना महद्भयम् ॥ ५१ ॥

और जलते हुए वडे वडे लुक महा भयको सूचित करते हुए, सूर्यसे टकराकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ५१ ॥

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये समागमे पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः ।
प्रकाशिरे शङ्खमृदङ्गनिस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ ५२ ॥

जैसे प्रवल वायुसे वन कम्पित होता है, वैसे ही उस महान् संग्राममें पाण्डवों और कौरवोंकी महासेना शङ्ख, मृदङ्ग, ढोल, नगाडे तथा वीरोंके सिंहनाद आदि शब्दोंसे कम्पित होने लगी ॥ ५२ ॥

नरेन्द्रनागाश्वसमाकुलानामभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ॥ ४१४२ ॥

अमङ्गल सूचक ऐसे समयमें परस्पर आक्रमणके लिए प्रवृत्त हुए सम्पूर्ण राजाओं तथा हाथी, घोडोंसे युक्त महा सेनाका भयानक शब्द, वायुके प्रवल वेगसे प्रक्षुब्ध होकर उठे हुए समुद्र-जलके गर्जनाके समान सुनाई देने लगा ॥ ५३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें पंचानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥ ४१४२ ॥

: ९६ :

सञ्जय उवाच

अभिमन्यू रथोदारः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
अभिदुद्राव तेजस्वी दुर्योधनबलं महत् ।
विकिरञ्शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! उदार स्वभाववाले रथीश्रेष्ठ तेजस्वी अभिमन्यु पीतवर्ण श्रेष्ठ घोडोंके रथपर चढके, दुर्योधनकी सेनापर इस प्रकारसे अपने बाणोंको वर्षाने लगे, जैसे बादल आकाशसे पानीकी वर्षा करता है ॥ १ ॥

न शेकुः समरे क्रुद्धं सौभद्रमरिसूदनम् ।
शस्त्रौघिणं गाहमानं सेनासागरमक्षयम् ।
निवारयितुमप्याजौ त्वदीयाः कुरुपुंगवाः ॥ २ ॥

तुम्हारी ओरके वीर कौरवश्रेष्ठ योद्धा शस्त्रोंके प्रवाहसे युक्त समुद्रके समान कौरवोंके अक्षय महासेनामें प्रवेश करनेवाले क्रुद्ध शत्रुनाशन अभिमन्युको युद्धमें निवारण करनेमें समर्थ न हुए ॥ २ ॥

तेन मुक्ता रणे राजञ्शराः शत्रुनिबर्हणाः ।
क्षत्रियाननयञ्शूरान्प्रेतराजनिवेशनम् ॥ ३ ॥

राजन् ! वह शत्रुओंके नाश करनेवाले जब अपने बाणोंको छोडने लगे, तब उन बाणोंने कितनेही शूरवीर क्षत्रियोंको यमराजके घरपर पहुंचा दिया ॥ ३ ॥

यमदण्डोपमान्घोराञ्ज्वलनाशीविषोपमान् ।
सौभद्रः समरे क्रुद्धः प्रेषयामास सायकान् ॥ ४ ॥

अपने यमदण्डके समान घोर तथा प्रज्वलित मुखवाले विषधर सर्पोंके समान भयंकर सायकोंको, समरभूमिमें क्रुद्ध सुभद्राकुमार अभिमन्यु वर्षा रहा था ॥ ४ ॥

रथिनं च रथात्तूर्णं हयपृष्ठाच्च सादिनम् ।
गजारोहांश्च सगजान्पातयामास फाल्गुनिः ॥ ५ ॥

तथा वह बाणोंसे रथपरसे रथियोंको, घोडोंपरसे घुडसवारोंको और हाथियोंके सहित गजपतियोंको शीघ्रताके सहित विद्ध करने लगे ॥ ५ ॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म महत्संख्येऽद्भुतं नृपाः ।
पूजयांचक्रिरे हृष्टाः प्रशशंसुश्च फाल्गुनिम् ॥ ६ ॥

तब सब राजा लोग, युद्धमें अभिमन्युके इस बडे पराक्रमको और अद्भुत कर्मको देखकर आनंदित होकर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६ ॥

तान्यनीकानि सौभद्रो द्रावयन्बह्वशोभत ।
तूलराशिमिवाधूय मारुतः सर्वतोदिशम् ॥ ७ ॥

जैसे वायु रूईके ढेरको चारों ओर उडा देता है, वैसे ही सुभद्राकुमार दुर्योधनकी सेनाको तितर बितर करते बहुत शोभने लगे ॥ ७ ॥

तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्के मग्ना इव द्विपाः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! उससे खदेडी जाती हुई तुम्हारी सेना पङ्कमें पडे हुए हाथियोंके समान किसीको भी अपना सहाय न देख सकी ॥ ८ ॥

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि नरोत्तमः ।
अभिमन्युः स्थितो राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ९ ॥

उस समय नरश्रेष्ठ अभिमन्यु तुम्हारी सब सेनाको भगाकर धुएंसे रहित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ९ ॥

न चैनं तावकाः सर्वे विषेहुररिघातिनम् ।
प्रदीप्तं पावकं यद्वत्पतंगाः कालचोदिताः ॥ १० ॥

जैसे पतङ्ग कालप्रेरित होकर जलती हुई अग्निको नहीं सह सकते, वैसे ही तुम्हारी सब सेना शत्रुनाशन अभिमन्युके बाणोंको न सह सकी ॥ १० ॥

प्रहरन्सर्वशत्रुभ्यः पाण्डवानां महारथः ।
अदृश्यत महेष्वासः सवज्र इव वज्रभृत् ॥ ११ ॥

महाधनुर्द्धारी पाण्डवमहारथी अभिमन्यु सम्पूर्ण शत्रुओंपर प्रहार करता हुआ, वज्रधारी इन्द्रके समान दिखाई देने लगे ॥ ११ ॥

हेमपृष्ठं धनुश्चास्य ददृशे चरतो दिशः ।
तोयदेषु यथा राजन्भ्राजमानाः शतह्रदाः ॥ १२ ॥

राजन्! उनके धनुषका पृष्ठभाग सुवर्ण भूषित था, वह चारों ओर इस भांतिसे भ्रमण करता हुआ सुशोभित देख पडा, जैसे बादलोंके बीच प्रकाशमान् बिजली दिखाई देती है ॥ १२ ॥

शराश्च निशिताः पीता निश्चरन्ति स्म संयुगे ।
वनात्फुल्लद्रुमाद्राजन्भ्रमराणामिव व्रजाः ॥ १३ ॥

युद्धमें उसके धनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण और चमचमाते सब बाण, ऐसे दिखते थे, मानो पुष्पयुक्त वृक्षावलियोंसे पूर्ण वनमेंसे भ्रमरोंके समूह निकलते हैं ॥ १३ ॥

तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः ।
रथेन मेघघोषेण ददृशुर्नान्तरं जनाः ॥ १४ ॥

किसी मनुष्यने सुवर्णभूषित मेघवत् शब्द करनेवाले रथमें घूमते हुए महामना सुभद्राकुमार अभिमन्युका कुछ भी छिद्र नहीं निरीक्षण किया ॥ १४ ॥

मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिं च स बृहद्बलम् ।
सैन्धवं च महेष्वासं व्यचरल्लघु सुष्ठु च ॥ १५ ॥

महाधनुर्द्धर अभिमन्यु कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल और सिन्धुराज जयद्रथको मोहित करते हुए, सुंदर और शीघ्र गतिसे रणभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ १५ ॥

मण्डलीकृतमेवास्य धनुः पश्याम मारिष ।
सूर्यमण्डलसंकाशं तपतस्तव वाहिनीम् ॥ १६ ॥

मारिष ! तुम्हारी सेनाको त्रस्त करनेके समय उसका धनुष सब सूर्यमण्डलके समान मण्डलाकार होकर प्रकाशित होने लगा ॥ १६ ॥

तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूराः प्रतपन्तं शरार्चिभिः ।
द्विफल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः ॥ १७ ॥

शूरवीर क्षत्रिय योद्धा उनको ऐसा सबको संताप देते हुए पराक्रमशील तथा इतनी शीघ्रतासे बाणोंसे युद्ध करते देखकर, 'इस लोकमें दो अर्जुन उपस्थित हैं,' ऐसा समझने लगे ॥१७॥

तेनार्दिता महाराज भारती सा महाचमूः ।
बभ्राम तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ १८ ॥

महाराज ! तुम्हारी भरतवंशीयोंकी वह महासेना अभिमन्युके बाणोंसे पीडित होकर मदसे व्याप्त स्त्रीके समान इधर उधर घूमने लगी ॥ १८ ॥

द्रावयित्वा च तत्सैन्यं कम्पयित्वा महारथान् ।
नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः ॥ १९ ॥

जैसे इन्द्रने मय दानवको युद्धमें पराजित करके देवताओंको आनन्दित किया था, वैसे ही अभिमन्यु दुर्योधनकी महासेनाको तितर बितर करके, महारथियोंको कंपाकर सुहृद लोगोंको आनन्दित करने लगे ॥ १९ ॥

तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २० ॥

तुम्हारी सेना अभिमन्युके अस्त्रोंसे अत्यन्त पीडित होकर बादलके गर्जनाके समान महाघोर स्वरसे आर्तनाद करने लगी ॥ २० ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य मारिष ।
मारुतोद्धूतवेगस्य समुद्रस्येव पर्वणि ।
दुर्योधनस्तदा राजा आर्श्यशृङ्गिमभाषत ॥ २१ ॥

हे मारिष ! तब राजा दुर्योधन पूर्णमासीके दिन पवनके प्रबल वेगसे भयङ्कर गर्जना करनेवाले महासमुद्रके समान अपनी सेनाका आर्त्तनाद सुनकर, उस समय ऋष्यशृङ्गके पुत्र राक्षस अलम्बुससे बोले ॥ २१ ॥

एष कार्ष्णिर्महेष्वासो द्वितीय इव फल्गुनः ।
चमूं द्रावयते क्रोधाद्वृत्रो देवचमूमिव ॥ २२ ॥

हे राक्षसेन्द्र ! यह अर्जुनका पुत्र दूसरे अर्जुनके समान पराक्रमी है और क्रुद्ध होकर यह अभिमन्यु मेरी सेनाको इस प्रकारसे खदेड रहा है, जैसे वृत्रासुरने देवताओंकी सेनाको मार भगाया था ॥ २२ ॥

तस्य नान्यं प्रपश्यामि संयुगे भेषजं महत् ।
ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठ सर्वविद्यासु पारगम् ॥ २३ ॥

तुम युद्ध विषयक सब विद्याओंको जानते हो, राक्षसोंमें श्रेष्ठ हो, तुम्हारे अतिरिक्त मैं अपनी सेनाकी रक्षा करनेवाले किसी पुरुषको भी नहीं देखता हूं; जो उस रोगको सबसे उत्तम दवा है ॥ २३ ॥

स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभद्रमाहवे ।
वयं पार्थान्हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरःसराः ॥ २४ ॥

इससे तुम शीघ्र गमन करके युद्धमें सुभद्राकुमार वीर अभिमन्युका वध करो । हम सब भीष्म और द्रोणाचार्यको आगे करके अर्जुनका नाश करेंगे ॥ २४ ॥

स एवमुक्तो बलवान्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ।
नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ २५ ॥

प्रतापी राक्षसेन्द्र अवलम्बुस आपके पुत्र दुर्योधनकी बात सुनकर वर्षाकालके बादलके समान जोर जोरसे सिंहनाद करके शीघ्रताके सहित अभिमन्युकी ओर चला ॥ २५ ॥

तस्य शब्देन महता पाण्डवानां महद्बलम् ।
प्राचलत्सर्वतो राजन्पूर्यमाण इवार्णवः ॥ २६ ॥

राजन् ! उसके उस महाभयङ्कर गर्जनको सुनकर पांडवोंकी विशाल सेना विक्षुब्ध समुद्रके जलके समान सब ओर बिखुरने लगी ॥ २६ ॥

बहवश्च नरा राजंस्तस्य नादेन भीषिताः ।
प्रियान्प्राणान्परित्यज्य निपेतुर्धरणीतले ॥ २७ ॥

हे महाराज ! बहुतसे मनुष्य उसके उस महाघोर शब्दको सुनकर भयसे पीडित होके अपने प्रिय प्राण त्याग कर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २७ ॥

कार्ष्णिश्चापि मुदा युक्तः प्रगृहीतशरासनः ।
नृत्यन्निव रथोपस्थे तद्रक्षः समुपाद्रवत् ॥ २८ ॥

अर्जुन पुत्र अभिमन्यु हर्षित होकर धनुष बाण ग्रहण करके मानो रथपर नृत्य करते हुए उस राक्षसके संमुख दौडे ॥ २८ ॥

ततः स राक्षसः क्रुद्धः संप्राप्यैवार्जुनिं रणे ।
नातिदूरे स्थितस्तस्य द्रावयामास वै चमूम् ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर क्रोधी राक्षस अवलम्बुस युद्धमें अभिमन्युके पास पहूंचकर उनसे कुछ दूर पर स्थित उनकी सेनाको भगाने लगे ॥ २९ ॥

सा वध्यमाना समरे पाण्डवानां महाचमूः ।
प्रत्युद्ययौ रणे रक्षो देवसेना यथा बलिम् ॥ ३० ॥

वह राक्षस अवलम्बुस अस्त्रोंसे अभिमन्युकी विशाल सेनाको युद्धमें पीडितकर जैसे देवताओंकी सेनाने बलासुरपर आक्रमण किया था, उसी भांति वह राक्षस उसकी ओर दौडा ॥ ३० ॥

विमर्दः सुमहानासीत्तस्य सैन्यस्य मारिष ।
राक्षसा घोररूपेण वध्यमानस्य संयुगे ॥ ३१ ॥

मारिष ! महाघोर भयानक राक्षसके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेनाका युद्धमें महान् संहार होने लगा ॥ ३१ ॥

ततः शरसहस्रैस्तां पाण्डवानां महाचमूम् ।
व्यद्रावयद्रणे रक्षो दर्शयद्वै पराक्रमम् ॥ ३२ ॥

अनन्तर उस राक्षसने अपना पराक्रम प्रकाशित करके, रणभूमिमें सहस्र सहस्र बाणोंसे पाण्डवोंकी उस सम्पूर्ण सेनाके शूरवीरोंको तितर बितर कर दिया ॥ ३२ ॥

सा वध्यमाना च तथा पाण्डवानामनीकिनी ।
रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे भयात् ॥ ३३ ॥

तब उस घोर राक्षसके द्वारा वैसी मारी जाती हुई वह पाण्डवोंकी सेना भयभीत होकर समरसे भागने लगी ॥ ३३ ॥

तां प्रमृद्य ततः सेनां पद्मिनीं वारणो यथा ।
ततोऽभिदुद्राव रणे द्रौपदेयान्महाबलान् ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! जैसे हाथी कमलके सरोवरका मर्दन करता है, वैसे ही अलम्बुसने उस पाण्डवोंकी सेनाका मर्दन करके, फिर महाबलवान् द्रौपदीके पुत्रोंपर आक्रमण किया ॥ ३४ ॥

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः ।
राक्षसं दुद्रुवुः सर्वे ग्रहाः पञ्च यथा रविम् ॥ ३५ ॥

जैसे पांच ग्रह एक सूर्यको घेर लेते हैं, वैसे ही महाधनुर्धर और प्रहार करनेमें कुशल द्रौपदीके पांचों पुत्रोंने रणभूमिमें क्रुद्ध होकर अकेले अलम्बुसको चारों ओरसे घेरकर उसपर आक्रमण किया ॥ ३५ ॥

वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥ ३६ ॥

जैसे भयानक प्रलय कालके समय पांच ग्रह एक चन्द्रमाको पीडित करते हैं, वैसे ही वे पराक्रमी पांचो भाई उस राक्षस श्रेष्ठ अलम्बुसको पीडित करने लगे ॥ ३६ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षो बिभेद निशितैः शरैः ।
सर्वपारशवैस्तूर्णमकुण्ठाग्रैर्महाबलः ॥ ३७ ॥

अनन्तर महाबलवान् प्रतिविन्ध्यने सब प्रकारसे लोहेके बने हुए उत्तम धारवाले शीघ्रगामी परशुके समान तीक्ष्ण बाणोंसे राक्षस अलम्बुसको विद्ध किया ॥ ३७ ॥

स तैर्भिन्नतनुत्राणः शुशुभे राक्षसोत्तमः ।
मरीचिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ३८ ॥

तब बाणोंसे उस राक्षस राजका कवच छिन्न भिन्न हुआ और उससे वह सूर्यकिरणोंसे युक्त महामेघके समान प्रकाशित हुआ ॥ ३८ ॥

विषक्तैः स शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः ।
आर्श्यशृङ्गिर्बभौ राजन्दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥ ३९ ॥

राजन् ! तथा शरीरमें धंसे हुए उन सुवर्णदण्डसे युक्त बाणोंसे वह राक्षस अलम्बुस चमकीले शृङ्गयुक्त पर्वतके समान शोभित होने लगा ॥ ३९ ॥

ततस्ते भ्रातरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्तपनीयविभूषितैः ॥ ४० ॥

फिर उन पांचों भाइयोंने उस महायुद्धमें सुवर्ण भूषित तीक्ष्ण बाणोंसे उस राक्षसराजको पुनर्वार विद्ध किया ॥ ४० ॥

स निर्भिन्नः शरैर्घोरैर्भुजगैः कोपितैरिव ।
अलम्बुसो भृशं राजन्नागेन्द्र इव चुक्रुधे ॥ ४१ ॥

राजन् ! उन घोर बाणोंके लगनेसे अत्यंत घायल होकर क्रुद्ध हुए सर्पराजके समान वह राक्षस अलम्बुस अंकुशसे पीडित गजराजकी भांति अत्यंत क्रुद्ध हुआ ॥ ४१ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज मुहूर्तमथ मारिष ।
प्रविवेश तमो दीर्घं पीडितस्तैर्महारथैः ॥ ४२ ॥

अनन्तर उन महारथी पांचों द्रौपदीके पुत्रोंके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर वह मुहूर्त भर मोहित रहा ॥ ४२ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः ।
चिच्छेद सायकैस्तेषां ध्वजांश्चैव धनूंषि च ॥ ४३ ॥

फिर सावधान होके वह क्रोधसे दूना हो गया और अपने बाणोंसे उन लोगोंके सायक बाण, ध्वजा और धनुषको काट दिया ॥ ४३ ॥

×

एकैकं च त्रिभिर्बाणैराजघान स्मयन्निव ।
अलम्बुसो रथोपस्थे नृत्यन्निव महारथः ॥ ४४ ॥

फिर हंसकर मानो रथपर नृत्य करते हुए महारथी अलम्बुसने उन प्रत्येक वीरोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४४ ॥

त्वरमाणश्च संक्रुद्धो हयांस्तेषां महात्मनाम् ।
जघान राक्षसः क्रुद्धः सारथींश्च महाबलः ॥ ४५ ॥

अनन्तर अत्यन्त शीघ्रतासे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस महाबली राक्षसने उन महात्माओंके रथके घोडों और सारथियोंको भी मार डाला ॥ ४५ ॥

बिभेद च सुसंहृष्टः पुनश्चैनान्सुसंशितैः ।
शरैर्बहुविधाकारैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४६ ॥

फिर संतप्त होकर, नाना भांतिके सैकडों तथा सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंसे उन पांचों महारथोंको विद्ध किया ॥ ४६ ॥

विरथांश्च महेष्वासान्कृत्वा तत्र स राक्षसः ।
अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः ॥ ४७ ॥

राक्षस अलम्बुस उन महाधनुर्धरोंको रथ-रहित करके युद्धमें उनका वध करनेकी इच्छासे उनपर बडे वेगसे दौडा ॥ ४७ ॥

तानर्दितान्रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना ।
दृष्ट्वार्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाद्रवत् ॥ ४८ ॥

तब अर्जुनपुत्र अभिमन्यु उन महारथियोंको रणभूमिमें दुरात्मा राक्षस अलम्बुसके बाणोंसे पीडित देखकर उसकी ओर शीघ्रतासे दौडे ॥ ४८ ॥

तयोः समभवद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ।
ददृशुस्तावकाः सर्वे पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ४९ ॥

तुम्हारी ओरके और पाण्डवोंके पक्षके सब महारथी पुरुष उन दोनों महाबलवान् पुरुषसिंहोंके भयंकर युद्धको इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धके समान देखने लगे ॥ ४९ ॥

तौ समेतौ महायुद्धे क्रोधदीप्तौ परस्परम् ।
महाबलौ महाराज क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
परस्परमवेक्षेतां कालानलसमौ युधि ॥ ५० ॥

महाराज ! महा बलवान् अभिमन्यु और अलम्बुस आपसमें युद्ध करते हुए, क्रोधसे उद्दीप्त हो लाल नेत्र किये हुए, एक दूसरेको प्रलयकालकी अग्निके समान उस महायुद्धमें देखने लगे ॥ ५० ॥

तयोः समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयोरिव ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ४१९३ ॥

जैसे पहिलेके समयमें देवता और असुरोंके युद्धमें इन्द्र और शम्बरासुरका भयङ्कर युद्ध हुआ था, उसी भांति उन दोनों महा बलवान् राक्षस अलम्बुस और अभिमन्यु इनका भयङ्कर संग्राम होने लगा, वह घोर युद्ध अत्यंत अप्रिय नतीजा प्रगट करनेवाला था ॥ ५१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें छानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९६ ॥ ४१९३ ॥

: ९७ :

धृतराष्ट्र उवाच

आर्जुनिं समरे शूरं विनिघ्नन्तं महारथम् ।
अलम्बुसः कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! अलम्बुसने महारथी वीरोंके नाश करनेवाले शूरवीर, अर्जुन-कुमार अभिमन्युके सङ्ग समरमें किस प्रकारसे युद्ध किया ॥ १ ॥

आर्श्यशृङ्गिं कथं चापि सौभद्रः परवीरहा ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन यथा वृत्तं स्म संयुगे ॥ २ ॥

और शत्रुनाशन वीर अभिमन्युने भी राक्षस अलम्बुससे किस भांतिसे युद्ध किया ? युद्ध-स्थलके इस विषयको तुम विस्तारपूर्वक मेरे समीप वर्णन करो ॥ २ ॥

धनंजयश्च किं चक्रे मम सैन्येषु संजय ।
भीमो वा बलिनां श्रेष्ठो राक्षसो वा घटोत्कचः ॥ ३ ॥
नकुलः सहदेवो वा सात्यकिर्वा महारथः ।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४ ॥

संजय ! और मेरी सेनाके सङ्ग अर्जुन, बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेन, वा राक्षस घटोत्कच या नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकिने किस प्रकारसे युद्ध किया था ? हे सञ्जय ! तुम इन सब बातोंके बतानेमें कुशल हो, इससे मेरे समीप सब यथार्थ वृत्तान्तको वर्णन करो ॥ ३-४ ॥

सञ्जय उवाच

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि संग्रामं लोमहर्षणम् ।
यथाभूद्राक्षसेन्द्रस्य सौभद्रस्य च मारिष ॥ ५ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! राक्षसेन्द्र अलम्बुसके सङ्ग सुभद्राकुमार अभिमन्युका जैसा लोमहर्षण युद्ध हुआ था, उस संग्रामका वर्णन करूंगा ॥ ५ ॥

अर्जुनश्च यथा संख्ये भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च रणे चक्रुः पराक्रमम् ॥ ६ ॥

तथा अर्जुन, पाण्डुपुत्र भीमसेन, नकुल और सहदेवने युद्धमें किस प्रकार पराक्रम किया ॥६॥

तथैव तावकाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
अद्भुतानि विचित्राणि चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ७ ॥

और तुम्हारी सेनाके पराक्रमी वीर भीष्म और द्रोणाचार्य आदिने जिस भांतिसे निर्भय होकर अपने अपने पराक्रमको प्रकाशित करके अद्भुत और विचित्र कर्म किया था; वह सब वृत्तान्त मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं; तुम सुनो ॥ ७ ॥

अलम्बुसस्तु समरे अभिमन्युं महारथम् ।
विनद्य सुमहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः ।
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

राक्षस अलम्बुसने युद्धभूमिमें बार बार जोरजोरसे तर्ज्जन गर्जन करके महारथी अभिमन्युको "खडा रह ! खडा रह !" कहके बडे वेगसे उसपर आक्रमण किया ॥ ८ ॥

सौभद्रोऽपि रणे राजन्सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
आर्ष्यश्रृङ्गिं महेष्वासं पितुरत्यन्तवैरिणम् ॥ ९ ॥

राजन् ! सुभद्राकुमार अभिमन्यु भी बार बार सिंहके समान गर्जना कर, वेगसे, अपने पिताका अत्यंत वैरी उस महाधनुर्धर अलम्बुसकी ओर दौडे ॥ ९ ॥

ततः समेयतुः संख्ये त्वरितौ नरराक्षसौ ।
रथाभ्यां रथिनां श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ ।
मायावी राक्षसश्रेष्ठो दिव्यास्त्रज्ञश्च फाल्गुनिः ॥ १० ॥

इसके अनन्तर वे मनुष्य तथा राक्षस दोनों वीर शीघ्रही परस्पर भिड गये । देवता और दानवके समान, अभिमन्यु और राक्षस अलम्बुस दोनों ही रथियोंमें श्रेष्ठ, अपने अपने रथोंको बढाकर महाघोर युद्ध करने लगे । राक्षसेन्द्र अलम्बुस मायावी और अर्जुन कुमार अभिमन्यु दिव्य अस्त्रोंका जाननेवाला था ॥ १० ॥

ततः कार्ष्णिर्महाराज निशितैः सायकैस्त्रिभिः ।
आर्ष्यश्रृङ्गिं रणे विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ ११ ॥

महाराज ! पहिले अर्जुन पुत्र अभिमन्युने तीन तीक्ष्ण बाणोंसे समरमें अलम्बुसको विद्ध किया; उसके अनन्तर फिर पांच बाणोंसे उसको घायल किया ॥ ११ ॥

अलम्बुसोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णिं नवभिराशुगैः।
हृदि विव्याध वेगेन तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ १२ ॥
तब अलम्बुसने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्रताके सहित जैसे अंकुशसे बडे हाथीको विद्ध करते हैं, वैसे ही अर्जुनकुमार अभिमन्युके हृदयमें नौ शीघ्रगामी बाणोंसे वेगसे प्रहार किया ॥१२॥

ततः शरसहस्रेण क्षिप्रकारी निशाचरः।
अर्जुनस्य सुतं संख्ये पीडयामास भारत ॥ १३ ॥
भारत ! अनन्तर शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाले निशाचरने एक सहस्र बाणोंको चलाकर युद्धमें अर्जुनपुत्र अभिमन्युको पीडित किया ॥ १३ ॥

अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवतिं नतपर्वणाम्।
चिक्षेप निशितान्बाणान्राक्षसस्य महोरसि ॥ १४ ॥
तब क्रुद्ध अभिमन्युने उत्तम पानी चढे हुए तीक्ष्ण नब्बे बाणोंसे राक्षसराज अलम्बुसका विशाल वक्षःस्थल विद्ध किया ॥ १४ ॥

ते तस्य विविशुस्तूर्णं कायं निर्भिद्य मर्माणि।
स तैर्विभिन्नसर्वाङ्गः शुशुभे राक्षसोत्तमः
पुष्पितैः किंशुकै राजन्संस्तीर्ण इव पर्वतः ॥ १५ ॥
वह सब बाण शीघ्रतासे उसके शरीरको भेदकर मर्मस्थानमें प्रविष्ट हुए। राजन् ! उन बाणोंसे सब अङ्गोंके क्षतविक्षत हो जानेपर राक्षसराज अलम्बुस फूले हुए पलासवृक्षोंसे व्याप्त पर्वतके समान सुशोभित दीखने लगा ॥ १५ ॥

स धारयञ्शरान्हेमपुङ्खानपि महाबलः।
विबभौ राक्षसश्रेष्ठः सज्वाल इव पर्वतः ॥ १६ ॥
स्वर्णमय पंखयुक्त बाणोंको अपने शरीरमें धारण करनेवाला वह महाबलवान् राक्षसश्रेष्ठ तब अग्निकी ज्वालाओंसे युक्त पर्वतके समान शोभित हुआ ॥ १६ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज आर्ष्यश्रृङ्गिर्महाबलः।
महेन्द्रप्रतिमं कार्ष्णिं छादयामास पत्त्रिभिः ॥ १७ ॥
हे राजन् ! तब महाबलवान् अलम्बुसने क्रुद्ध होकर देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनकुमार अभिमन्युको अपने पंखवाले बाणोंसे छिपा दिया ॥ १७ ॥

तेन ते विशिखा मुक्ता यमदण्डोपमाः शिताः।
अभिमन्युं विनिर्भिद्य प्राविशन्धरणीतलम् ॥ १८ ॥
राक्षसके धनुषसे छूटे हुए यमदण्डके समान वे सब भयंकर और तीक्ष्ण बाण अभिमन्युके शरीरको भेदते हुए पृथ्वीपर गिरे ॥ १८ ॥

तथैवार्जुनिनिर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
अलम्बुसं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ॥ १९ ॥

और उस प्रकार अभिमन्युके धनुपसे छूटे हुए सुवर्ण दण्डयुक्त बाण अलम्बुसके शरीरको भेदकर पृथ्वीमें घुस गये ॥ १९ ॥

सौभद्रस्तु रणे रक्षः शरैः संनतपर्वभिः ।
चक्रे विमुखमासाद्य मयं शक्र इवाहवे ॥ २० ॥

अनन्तर जैसे इन्द्रने मयदानवको रणभूमिमें विमुख किया था वैसे ही सुभद्राकुमार अभिमन्युने युद्धमें अपने तेज बाणोंसे राक्षसको युद्धसे विमुख किया था ॥ २० ॥

विमुखं च ततो रक्षो वध्यमानं रणेऽरिणा ।
प्रादुश्चक्रे महामायां तामसीं परतापनः ॥ २१ ॥

फिर शत्रुओंको तपानेवाले राक्षस अलम्बुसने युद्धमें शत्रुके बाणोंसे पीडित और विमुख होकर अपनी तामसी महामाया उत्पन्न की ॥ २१ ॥

ततस्ते तमसा सर्वे हता ह्यासन्महीतले ।
नाभिमन्युमपश्यन्त नैव स्वान्न परान्रणे ॥ २२ ॥

महीपते ! तब रणभूमिमें वे सब पाण्डव सैनिक अन्धकारसे आच्छादित हो गये; उस समय वे रणक्षेत्रमें अभिमन्युको, अपने ओरके और शत्रुपक्षके सैनिकोंको न देख पाते थे ॥ २२ ॥

अभिमन्युश्च तद्दृष्ट्वा घोररूपं महत्तमः ।
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमत्युग्रं भास्करं कुरुनन्दनः ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन अभिमन्युने उस महाघोर अन्धकारको देखकर अत्यन्त उग्र भास्कर अस्त्र चलाकर उस दुष्ट राक्षसकी मायाका नाश किया ॥ २३ ॥

ततः प्रकाशमभवज्जगत्सर्वं महीपते ।
तां चापि जघ्निवान्मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ २४ ॥

महीपते ! तब सब जगत्में फिर प्रकाश होगया। रथियोंमें मुख्य अभिमन्युने इस प्रकारसे दुष्ट राक्षसकी मायाको नष्ट कर दिया ॥ २४ ॥

संक्रुद्धश्च महावीर्यो राक्षसेन्द्रं नरोत्तमः ।
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥

महापराक्रमी नरश्रेष्ठ अभिमन्युने अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसेन्द्र अलम्बुसको समरमें छिपा दिया ॥ २५ ॥

बह्वीस्तथान्या मायाश्च प्रयुक्तास्तेन रक्षसा ।
सर्वास्त्रविदमेयात्मा वारयामास फाल्गुनिः ॥ २६ ॥

अलम्बुसने उसी प्रकारसे दूसरी अनेक भांतिकी माया उत्पन्न की; परन्तु सब दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले अमेयात्मा अभिमन्युने अपने दिव्य अस्त्रोंसे उसकी सब मायाओंका निवारण किया ॥ २६ ॥

हतमायं ततो रक्षो वध्यमानं च सायकैः ।
रथं तत्रैव संत्यज्य प्राद्रवन्महतो भयात् ॥ २७ ॥

जब उस राक्षसकी सब माया निष्फल हुई; तब वह अभिमन्युके बाणोंसे पीडित होकर, अत्यन्त भयके कारण उसी स्थानपर अपने रथको छोडकर रणभूमिसे भाग गया ॥ २७ ॥

तस्मिन्विनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ।
आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं संममर्द ह ।
मदान्धो वन्यनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव ॥ २८ ॥

अर्जुनकुमार अभिमन्यु उस मायायुद्ध करनेवाले राक्षसको पराजित करके, जैसे गन्धयुक्त मतवारा हाथीराज कमलसे युक्त सरोवरमें बैठके कमलोंको तोड डालता है, वैसे ही शीघ्रही तुम्हारी सेनाको समरमें अपने बाणोंसे मर्दन करने लगे ॥ २८ ॥

ततः शांतनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाभिविद्रुतम् ।
महता रथवंशेन सौभद्रं पर्यवारयत् ॥ २९ ॥

अनन्तर शान्तनुनन्दन पितामह भीष्मने तुम्हारी सेनाको सुभद्राकुमार अभिमन्युके बाणोंसे तितर बितर होते देखकर अनेक रथियोंके सहित उसे घेर लिया ॥ २९ ॥

कोष्ठकीकृत्य तं वीरं धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
एकं सुबहवो युद्धे ततक्षुः सायकैर्दृढम् ॥ ३० ॥

तुम्हारी सेनाके बहुतसे महारथिओंने एकत्रित होकर वीर अभिमन्युको सब ओरसे घेर लिया और युद्धमें उस अकेलेको उन्होंने अपने बाणोंसे उसको विद्ध करना शुरू किया ॥ ३० ॥

स तेषां रथिनां वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
सदृशो वासुदेवस्य विक्रमेण बलेन च ॥ ३१ ॥

रथियोंमें अग्रणी, पराक्रममें अपने पिता अर्जुनके समान और मामा कृष्णके तुल्य बलवान् और पराक्रमी वीर अभिमन्यु थे ॥ ३१ ॥

उभयोः सदृशं कर्म स पितुर्मातुलस्य च ।
रणे बहुविधं चक्रे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३२ ॥

सब शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ उस वीरने समरमें उन सब रथी योद्धाओंसे अपने पिता और मामा सदृश अपना अनेक प्रकारका शौर्यपूर्ण कार्य किया ॥ ३२ ॥

ततो धनंजयो राजन्विनिघ्नंस्तव सैनिकान् ।
आससाद रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः ॥ ३३ ॥

तब वीर अर्जुन अपने पुत्र अभिमन्युकी रक्षा करनेके वास्ते, क्रुद्ध होकर सेनाके वीर पुरुषोंका वध करते हुए क्रुद्ध होकर भीष्मके समीप उपस्थित हुए ॥ ३३ ॥

तथैव समरे राजन्पिता देवव्रतस्तव ।
आससाद रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ३४ ॥

राजन्! तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म भी सूर्यके निकट राहुग्रहकी भांति समरभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ ३४ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पुत्रास्तव विशां पते ।
परिवव्रू रणे भीष्मं जुगुपुश्च समन्ततः ॥ ३५ ॥

पृथ्वीनाथ! तब तुम्हारे पुत्र रथ, हाथी, घोडे और पैदल सेनाके सहित युद्धमें महात्मा भीष्मको घेरकर खडे हो, सब ओरसे उनकी रक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

तथैव पाण्डवा राजन्परिवार्य धनंजयम् ।
रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ ॥ ३६ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! पाण्डव लोग भी उस महायुद्धमें अर्जुनको सब ओरसे घेरकर कवच आदिसे सुसज्जित हो उनकी रक्षा करने लगे और महायुद्धके लिये तैयार हो गये ॥ ३६ ॥

शारद्वतस्ततो राजन्भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ ३७ ॥

राजन्! अनन्तर कृपाचार्यने भीष्मके संमुख स्थित अर्जुनको पचीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३७ ॥

प्रत्युद्गम्याथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः ।
पाण्डवप्रियकामार्थं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ३८ ॥

तब शार्दूल जैसे मतवारे हाथीपर आक्रमण करता है, वैसे ही पाण्डवोंके हितैषी सात्यकिने कृपाचार्यपर आक्रमण करके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध करना आरम्भ किया ॥ ३८ ॥

गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः ।
हृदि विव्याध संक्रुद्धः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ३९ ॥

कृपाचार्यने भी क्रुद्ध होकर बडी शीघ्रतासे सात्यकिके हृदयमें कङ्कपत्र युक्त नौ बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३९ ॥

शैनेयोऽपि ततः क्रुद्धो भृशं विद्धो महारथः ।
गौतमान्तकरं घोरं समादत्त शिलीमुखम् ॥ ४० ॥

तब बहुत घायल हुए महारथी शिनि-पौत्र सात्यकिने भी क्रुद्ध होकर, धनुष खींचकर शीघ्रतासे कृपाचार्यका नाश करनेके निमित्त एक महाभयङ्कर बाण चलाया ॥ ४० ॥

तमापतन्तं वेगेन शक्राशनिसमद्युतिम् ।
द्विधा चिच्छेद संक्रुद्धो द्रौणिः परमकोपनः ॥ ४१ ॥

द्रोणाचार्यके पुत्र परम क्रोधी अश्वत्थामाने इन्द्रके वज्रसमान प्रकाशमान् उस बाणको वेगसे आता देखकर क्रुद्ध होके अपने बाणसे दो टुकडे करके गिरा दिया ॥ ४१ ॥

समुत्सृज्याथ शैनेयो गौतमं रथिनां वरम् ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा ॥ ४२ ॥

तब सात्यकि रथियोंमें मुख्य कृपाचार्यको छोडकर जैसे राहु ग्रह चन्द्रमाकी ओर वेगसे जाता है, वैसे ही वेगपूर्वक समरमें अश्वत्थामाकी ओर दौडे ॥ ४२ ॥

तस्य द्रोणसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद भारत ।
अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः ॥ ४३ ॥

भारत ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सात्यकिके धनुषके दो टुकडे कर दिये और धनुष कट जानेपर उन्हें अपने बाणोंसे पीडित किया ॥ ४३ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम् ।
द्रौणिं षष्ट्या महाराज बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४४ ॥

महाराज ! तब सात्यकिने दृढ एवं शत्रुविनाशक दूसरा धनुष ग्रहण करके साठ बाणोंसे अश्वत्थामाकी भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ४४ ॥

स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः ।
निषसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिमुपाश्रितः ॥ ४५ ॥

अश्वत्थामा उससे पीडित और व्यथित होकर, मूर्च्छित होकर रथकी ध्वजाका दण्ड पकडकर मुहूर्त भर रथके ऊपर बैठे रहे ॥ ४५ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
वार्ष्णेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समर्दयत् ॥ ४६ ॥

अनन्तर प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सावधान होकर क्रुद्ध चित्तसे सात्यकिको समरमें एक नाराच बाणसे विद्ध किया ॥ ४६ ॥

शैनेयं स तु निर्भिद्य प्राविशद्धरणीतलम् ।
वसन्तकाले बलवान्बिलं सर्पशिशुर्यथा ॥ ४७ ॥

वह नाराच बाण सात्यकिके शरीरको भेदकर, जैसे वसन्त कालमें बलवान् सर्पशिशु बिलमें घुसता है उसी प्रकार पृथ्वीमें घुस गया ॥ ४७ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन माधवस्य ध्वजोत्तमम् ।
चिच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं ननाद च ॥ ४८ ॥

इसके बाद अश्वत्थामाने दूसरे भल्ल बाणसे रणभूमिमें सात्यकिके रथकी उत्तम ध्वजाको काटकर, सिंहनाद किया ॥ ४८ ॥

पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत ।
निदाघान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ४९ ॥

भारत ! महाराज ! और वर्षाऋतुमें जैसे बादल सूर्यको छिपा देता है, वैसे ही फिर अपने भयङ्कर बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपा दिया ॥ ४९ ॥

सात्यकिश्च महाराज शरजालं निहत्य तत् ।
द्रौणिमभ्यपतत्तूर्णं शरजालैरनेकधा ॥ ५० ॥

महाराज ! सात्यकिने भी अश्वत्थामाके बाणोंको निवारण करके, अपने अनेक प्रकारके बाणोंसे अश्वत्थामाको शीघ्र ही छिपाया ॥ ५० ॥

तापयामास च द्रौणिं शैनेयः परवीरहा ।
विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा ॥ ५१ ॥

और सूर्य जैसे बादलोंसे मुक्त होकर सब प्राणियोंको तपाता है, वैसे ही शत्रुवीर नाशन सात्यकि द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे मुक्त होकर उन्हें अपने बाणोंसे तपाने लगे ॥ ५१ ॥

शराणां च सहस्रेण पुनरेनं समुद्यतम् ।
सात्यकिश्छादयामास ननाद च महाबलः ॥ ५२ ॥

महा बलवान् सात्यकिने फिर सहस्रों बाणोंसे अश्वत्थामाको छिपा दिया और गर्जना की ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा पुत्रं तथा ग्रस्तं राहुणेव निशाकरम् ।
अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५३ ॥

प्रतापी द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामाको राहुग्रस्त चन्द्रमाके समान सात्यकिके बाणोंसे पीडित देख क्रुद्ध होकर उसकी ओर दौडे ॥ ५३ ॥

विव्याध च पृषत्केन सुतीक्ष्णेन महामृधे ।
परीप्सन्स्वसुतं राजन्वार्ष्णेयेनाभितापितम् ॥ ५४ ॥

और राजन् ! उस महायुद्धमें सात्यकिके बाणोंसे पीडित अपने पुत्र अश्वत्थामाकी रक्षा करनेके वास्ते तीक्ष्ण बाणोंसे उसको विद्ध किया ॥ ५४ ॥

सात्यकिस्तु रणे जित्वा गुरुपुत्रं महारथम् ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः ॥ ५५ ॥

तब सात्यकिने युद्धमें गुरुपुत्र महारथी अश्वत्थामाको जीतकर संपूर्ण लोहमय बीस बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया ॥ ५५ ॥

तदन्तरममेयात्मा कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथः ॥ ५६ ॥

इसके अनन्तर अमेयात्मा, श्वेतवाहन, अत्यन्त तेजस्वी महारथी कुन्तीपुत्र अर्जुन युद्धभूमिमें सात्यकिकी रक्षा करनेके निमित्त द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ ५६ ॥

ततो द्रोणश्च पार्थश्च समेयातां महामृधे ।
यथा बुधश्च शुक्रश्च महाराज नभस्तले ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ४२५० ॥

हे भारत ! तब द्रोणाचार्य और अर्जुन उस महा संग्राममें परस्पर भिड गये, मानो आकाशमें स्थित बुध और शुक्र ग्रह एक दूसरेपर आक्रमण कर रहे हों ॥ ५७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सत्तानबेवां अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥ ४२५० ॥

: ९८ :

धृतराष्ट्र उवाच

कथं द्रोणो महेष्वासः पाण्डवश्च धनंजयः ।
समीयतू रणे शूरौ तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य और पाण्डुनन्दन अर्जुन दोनों महा बलवान् शूर योद्धाओंने युद्धमें प्रवृत्त होकर किस प्रकारसे युद्ध किया ? यह मुझे कहो ॥१॥

प्रियो हि पाण्डवो नित्यं भारद्वाजस्य धीमतः ।
आचार्यश्च रणे नित्यं प्रियः पार्थस्य संजय ॥ २ ॥

संजय ! पाण्डुपुत्र अर्जुन बुद्धिमान् द्रोणाचार्यके अत्यन्त प्यारे और द्रोणाचार्य भी अर्जुनके समरभूमिमें सदासे प्रिय हैं ॥ २ ॥

तावुभौ रथिनौ संख्ये दृप्तौ सिंहाविवोत्कटौ ।
कथं समीयतुर्युद्धे भारद्वाजधनञ्जयौ ॥ ३ ॥

यह दोनों ही अतिरथी सिंहके समान मत्त और बलवान् हैं; समरभूमिमें द्रोणाचार्य और धनंजय इन दोनोंने किस प्रकारसे यत्नवान् होकर आपसमें युद्ध किया ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

न द्रोणः समरे पार्थं जानीते प्रियमात्मनः।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य पार्थो वा गुरुमाहवे ॥ ४ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! द्रोणाचार्य अर्जुनको युद्धके स्थानपर अपना प्यारा शिष्य नहीं समझते, और अर्जुन भी क्षत्रिय धर्मकी प्रतीक्षामें गुरु द्रोणाचार्यको संग्रामभूमिमें अपना प्रिय नहीं मानते हैं ॥ ४ ॥

न क्षत्रिया रणे राजन्वर्जयन्ति परस्परम्।
निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ॥ ५ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा ही आपसमें किसीको युद्धमें त्याग नहीं करते। वे पिता, भाई, पुत्र और पितामह आदिके सङ्ग भी मर्यादारहित होकर युद्ध किया करते हैं ॥ ५ ॥

रणे भारत पार्थेन द्रोणो विद्धस्त्रिभिः शरैः।
नाचिन्तयत तान्बाणान्पार्थचापच्युतान्युधि ॥ ६ ॥

हे भारत ! द्रोणाचार्यको अर्जुनने युद्धमें तीन बाणोंसे विद्ध किया परंतु अर्जुनके धनुपसे छूटे हुए उन बाणोंको जानके युद्धमें आचार्यने कुछ चिन्ता नहीं की ॥ ६ ॥

शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे।
प्रजज्वाल च रोषेण गहनेऽग्निरिवोत्थितः ॥ ७ ॥

जब अर्जुनने फिर द्रोणाचार्यको समरमें अपने बाणोंकी वर्षासे छिपाया, तब द्रोणाचार्य वनको जलानेवाली अग्निके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो गये ॥ ७ ॥

ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः संनतपर्वभिः।
वारयामास राजेन्द्र नचिरादेव भारत ॥ ८ ॥

राजेन्द्र ! भारत ! अनन्तर शीघ्रताके सहित द्रोणाचार्यने युद्धमें अर्जुनको अपने चोखे बाणोंसे छिपा दिया ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत्।
द्रोणस्य समरे राजन्पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ९ ॥

राजन् ! तब राजा दुर्योधनने समरभूमिमें द्रोणाचार्यकी पृष्ठ रक्षा करनेके निमित्त सुशर्माको आज्ञा दी ॥ ९ ॥

त्रिगर्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्।
छादयामास समरे पार्थं बाणैरयोमुखैः ॥ १० ॥

त्रिगर्त्तराज सुशर्माने भी समरमें क्रुद्ध होकर धनुप धारण करके लोहमुख बाणोंसे अर्जुनको छिपा दिया ॥ १० ॥

ताभ्या मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे ।
हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ॥ ११ ॥

महाराज ! उन दोनोंके धनुषसे छूटे हुए बाण आकाशमें इस प्रकारसे शोभित होने लगे, जैसे शरद् ऋतुमें हंसोंके समूह आकाशमें गमन करते हुए शोभायमान लगते हैं ॥ ११ ॥

ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समस्ता विविशुः प्रभो ।
फलभारनतं यद्वत्स्वादुवृक्षं विहंगमाः ॥ १२ ॥

प्रभो ! और जैसे पक्षी चारों ओरसे आकर सुस्वादु फलोंसे युक्त वृक्षके ऊपर वेगसे गिरते हैं, वैसे ही वे सब बाण चारों ओरसे कुन्तीकुमार अर्जुनके ऊपर गिरकर उनके शरीरमें धंसने लगे ॥ १२ ॥

अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः ।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३ ॥

परन्तु रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने सिंहनाद करके युद्धभूमिमें पुत्रके सहित त्रिगर्त्तराज सुशर्माको अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ १३ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
पार्थमेवाभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ।
मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति ॥ १४ ॥

वे भी प्रलयकालमें यमराज जैसे सबको मार डालते हैं, उसी प्रकार अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर भी, प्राणत्याग करनेका निश्चय कर सम्मुखहीमें खडे हो पुनः उन्हींपर आक्रमण करने लगे ; और उन्होंने पाण्डुनन्दन अर्जुनके रथपर बाणोंकी वर्षा कर दी ॥ १४ ॥

शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षेण पाण्डवः ।
प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाचलः ॥ १५ ॥

राजेन्द्र ! जैसे पर्वत जलकी वर्षाको धारण करता है, वैसे ही अर्जुनने अपने बाणोंसे उनके सब बाणोंको ग्रहण किया ॥ १५ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम् ।
विमुक्तां बहुभिः शूरैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ॥ १६ ॥

उनके इस आश्चर्यरूपी हस्त-लघुताको उस समय मैंने देखा, कि अनेक शूर योद्धाओं द्वारा की हुई उस कठिन बाणवृष्टिका ॥ १६ ॥

यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव ।
कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः ॥ १७ ॥

उन्होंने अकेले ही इस भांति निवारण किया, जैसे वायु अपने प्रबलवेगसे बादलोंका निवारण कर देता है । अर्जुनका ऐसा कठिन कार्य देखके देवता और दानव प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥

अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्तान्प्रति भारत ।
मुमोचास्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे ॥ १८ ॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर अर्जुनने युद्धके मुहानेपर त्रिगर्त्त सेनापर क्रुद्ध होकर वायव्यास्त्र चलाया ॥ १८ ॥

प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम् ।
पातयन्वै तरुगणान्विनिघ्नंश्चैव सैनिकान् ॥ १९ ॥

उससे आकाशको क्षुब्ध करनेवाली वायु प्रवल वेगसे चलकर, वृक्षोंको तोडता और सेनाके पुरुषोंको मोहित करता हुआ प्रगट हुआ ॥ १९ ॥

ततो द्रोणोऽभिवीक्ष्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम् ।
शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह ॥ २० ॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्यने उस प्रचण्ड दारुण वायव्य अस्त्रको देखकर, महाभयङ्कर शैलास्त्र चलाया ॥ २० ॥

द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे महामृधे ।
प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्चाभवन्दिशः ॥ २१ ॥

द्रोणाचार्यसे युद्धमें शैलास्त्रके चलानेसे वायु शान्त और सब दिशाएं निर्मल हो गईं ॥ २१ ॥

ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान् ।
निरुत्साहान्रणे चक्रे विमुखान्विपराक्रमान् ॥ २२ ॥

फिर वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे त्रिगर्त्तराजके सब रथियोंको उत्साहरहित, पराक्रमहीन और युद्धसे विमुख कर दिया ॥ २२ ॥

ततो दुर्योधनो राजा कृपश्च रथिनां वरः ।
अश्वत्थामा ततः शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २३ ॥

अनन्तर राजा दुर्योधन, रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, काम्बोजराज सुदक्षिण, ॥ २३ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिकश्च सबाह्लिकः ।
महता रथवंशेन पार्थस्यावारयन्दिशः ॥ २४ ॥

अवन्तिके राजकुमार विन्द और अनुविन्द और बाह्लिकदेशीय सैनिकोंके साथ महाराज बाह्लिक इन सबने रथियोंकी बडी सेनासे युक्त होकर पार्थकी सब दिशाओंको व्याप्त किया ॥ २४ ॥

तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः ।
गजानीकेन भीमस्य ताववारयतां दिशः ॥ २५ ॥

उसी प्रकार भगदत्त और महाबलवान् श्रुतायुने गजसेनासे भीमसेनको चारों दिशाओंसे घेर लिया ॥ २५ ॥

भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशां पते ।
शरौघैर्विविधैस्तूर्णं माद्रीपुत्राववारयन् ॥ २६ ॥

प्रजानाथ ! भूरिश्रवा, शल और शकुनिने माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवपर अपने विविध प्रकारके तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे आक्रमण किया ॥ २६ ॥

भीष्मस्तु सहितः सर्वैर्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकैः ।
युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्यवारयत् ॥ २७ ॥

भीष्मने सेनाके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोंसे युक्त होकर, राजा युधिष्ठिरके निकट जाके, उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ २७ ॥

आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः ।
लेलिहन्सृक्किणी वीरो मृगराडिव कानने ॥ २८ ॥

अत्यन्त पराक्रमी कुन्तीकुमार भीमसेन हाथियोंकी सेनाको आती देखकर जैसे वनमें सिंह अपने दाढोंको चाटता है, उसी प्रकार अपने मुखके दोनों कोनोंको चाटने लगे ॥ २८ ॥

ततस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां गृह्य महाहवे ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तव सैन्यमभीषयत् ॥ २९ ॥

अनन्तर उस महायुद्धमें रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन शीघ्रही गदा ग्रहण करके रथसे कूद पडे और तुम्हारी सेनाको भयभीत करने लगे ॥ २९ ॥

तमुद्वीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः
परिवव्रू रणे यत्ता भीमसेनं समन्ततः । ॥ ३० ॥

हाथियोंपर चढनेवाले वीर योद्धाओंने भीमसेनको गदा लिये हुए देखकर, शीघ्रताके सहित उन्हें यत्नपूर्वक चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥

गजमध्यमनुप्राप्तः पाण्डवश्च व्यराजत ।
मेघजालस्य महतो यथा मध्यगतो रविः । ॥ ३१ ॥

जैसे महान् बादलोंके समूहमें सूर्य विराजमान् होता है, वैसे ही पाण्डुपुत्र भीमसेन हाथियोंकी सेनाके बीच शोभित हुए ॥ ३१ ॥

व्यधमत्स गजानीकं गदया पाण्डवर्षभः ।
महाभ्रजालमतुलं मातरिश्वेव संततम् ॥ ३२ ॥

जैसे पवन महान् मेघमालाको तितर बितर कर देता है, उसी प्रकार पाण्डवश्रेष्ठ भीमसेनने अपनी गदाकी चोटसे सारी गजसेनाको नष्ट कर दिया ॥ ३२ ॥

ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः।
आर्तनादं रणे चक्रुर्गर्जन्तो जलदा इव ॥ ३३ ॥

दन्तार हाथियोंकी सेना युद्धमें बलवान् भीमसेनकी गदाके प्रहारसे पीडित होकर बादलके समान गर्जती हुई आर्त्तनाद करने लगी ॥ ३३ ॥

बहुधा दारितश्चैव विषाणैस्तत्र दन्तिभिः।
फुल्लाशोकनिभः पार्थः शुशुभे रणमूर्धनि ॥ ३४ ॥

भीमसेन भी हाथियोंकी सेनामें जहां तहां शरीरमें उनके दांतोंसे घायल होकर फूले हुए अशोक वृक्षके समान युद्धके पुरोभागमें शोभित हुए ॥ ३४ ॥

विषाणे दन्तिनं गृह्य निर्विषाणमथाकरोत्।
विषाणेन च तेनैव कुम्भेऽभ्याहत्य दन्तिनम्।
पातयामास समरे दण्डहस्त इवान्तकः ॥ ३५ ॥

उस समय भीमसेनने कितने ही दन्तार हाथियोंका दांत पकडकर उखाडके उन्हें दन्तहीन कर दिया। उन हाथियोंके दांतोंसे ही उनके गंडस्थलमें प्रहार करके दण्डधारी यमराजके समान रणभूमिमें अनेक हाथियोंको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ३५ ॥

शोणिताक्तां गदां बिभ्रन्मेदोमज्जाकृतच्छविः।
कृताङ्गदः शोणितेन रुद्रवत्प्रत्यदृश्यत ॥ ३६ ॥

अनन्तर वह हाथियोंके मांस, मज्जा (चर्बी) और रुधिरसे पूरित होकर रक्तयुक्त गदा ग्रहण किये साक्षात् रुद्रकी भांति दिखाई देने लगे ॥ ३६ ॥

एवं ते वध्यमानास्तु हतशेषा महागजाः।
प्राद्रवन्त दिशो राजन्विमृद्नन्तः स्वकं बलम् ॥ ३७ ॥

हे राजन् ! हाथियोंकी सेना इसी प्रकारसे मारी जाने लगी और मरनेसे बचे हुए बडे हाथी भीमकी गदासे पीडित तथा घायल होके अपनी सेनाके वीरोंका ही नाश करते हुए इधर उधर दौडने लगे ॥ ३७ ॥

द्रवद्भिस्तैर्महानागैः समन्ताद्भरतर्षभ।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ ४२८८ ॥

भरतर्षभ ! दुर्योधनकी सब सेना उन बडे बडे हाथियोंको दौडते तथा चारों ओर भागते और अपनी सेनाके वीरोंको मर्दन करते देखकर रणभूमिसे फिर विमुख हुई ॥ ३८ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥ ४२८८ ॥

: ९९ :

सञ्जय उवाच

मध्याह्ने तु महाराज संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो रौद्रो भीष्मस्य सह सोमकैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! इस दिन मध्याह्नके समय सोमकवंशियोंके सङ्ग महात्मा भीष्मका महाभयङ्कर मनुष्योंका क्षय करनेवाला घोर संग्राम हुआ ॥ १ ॥

गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्म पाण्डवोंकी विशाल सेनाके वीरोंको अपने सौ सौ तथा सहस्र सहस्र तीक्ष्ण बाणोंसे जलाने लगे ॥ २ ॥

संममर्द च तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव ॥ ३ ॥

जैसे बैल कटे हुए अन्नको खलिहानमें मर्दन करते हैं, वैसे ही पितामह भीष्म पाण्डवोंकी सेनाको अपने शस्त्रोंसे मर्दन करने लगे ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा ।
भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम् ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, विराट और राजा द्रुपद महारथी भीष्मके निकट जाकर समरमें उनको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो विद्ध्वा विराटं च त्रिभिः शरैः ।
द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥

भारत ! तदनंतर शत्रुनाशन भीष्मने भी तीन तीन बाणोंसे धृष्टद्युम्न और विराटको विद्ध करके राजा द्रुपदके ऊपर एक नाराच बाण चलाया ॥ ५ ॥

तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेणामित्रकर्शिना ।
चुक्रुधुः समरे राजन्पादस्पृष्टा इवोरगाः ॥ ६ ॥

हे प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्न आदि वे सब महाधनुर्द्धारी योद्धा भीष्मके अस्त्रोंसे विद्ध होकर पांवसे पूंछ दबे हुए सर्पके समान अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥ ६ ॥

शिखण्डी तं च विव्याध भरतानां पितामहम् ।
स्त्रीमयं मनसा ध्यात्वा नास्मै प्राहरदच्युतः ॥ ७ ॥

शिखण्डी भरतवंशियोंके पितामह भीष्मको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे, परन्तु निश्चयी वीर भीष्मने उसे मनमें स्त्री जानके उसके ऊपर शस्त्र नहीं चलाया ॥ ७ ॥

×

धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधादग्निरिव ज्वलन् ।
पितामहं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नने युद्धमें क्रोधसे अग्निके समान जलके, तीन बाणोंसे पितामह भीष्मकी दोनों भुजा और उनकी छातीमें प्रहार किया ॥ ८ ॥

द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः ।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याध सायकैः ॥ ९ ॥

तब द्रुपदने पचीस, विराटने दस और शिखण्डीने पचीस बाणोंसे भीष्मको विद्ध किया ॥ ९ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज भीष्मः संख्ये महात्मभिः ।
वसन्ते पुष्पशबलो रक्ताशोक इवाबभौ ॥ १० ॥

महाराज ! उन महात्माओंके बाणोंसे युद्धमें भीष्म अत्यन्त विद्ध होकर फूले हुए वसन्त ऋतुके लाल अशोक वृक्षके समान शोभायमान हुए ॥ १० ॥

तान्प्रत्यविध्यद्गाङ्गेयस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
द्रुपदस्य च भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ११ ॥

मारिष ! और गंगानंदन भीष्मने शिखण्डीको छोडके उन सब महारथियोंको तीन तीन सीधे जानेवाले बाणोंसे विद्ध करके, एक भल्ल बाणसे राजा द्रुपदका धनुष काट दिया ॥ ११ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैः सुशितै रणमूर्धनि ॥ १२ ॥

राजा द्रुपदने दूसरा धनुष लेकर युद्धमें पांच तीक्ष्ण बाणोंसे भीष्मको विद्ध करके, तीन बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया ॥ १२ ॥

ततो भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः ॥ १३ ॥

महाराज ! तब भीमसेन, द्रौपदीके पांचों पुत्र, केकयराज पांचों भाई और पराक्रमी सात्वतवंशी सात्यकि ॥ १३ ॥

अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं युधिष्ठिरहितेप्सया ।
रिरक्षिषन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नमुखान्रणे ॥ १४ ॥

ये हितैषी युधिष्ठिरके धृष्टद्युम्नको आगे करके रणभूमिमें पाञ्चालराज द्रुपदकी रक्षा करनेकी अभिलाषा करके गंगानंदन भीष्मकी ओर दौडे ॥ १४ ॥

तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः ।
प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप ॥ १५ ॥

हे राजन् ! तुम्हारी ओरके सब योद्धा सेनाके सहित भीष्मकी रक्षा करते हुए पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे ॥ १५ ॥

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तव तेषां च संकुलम् ।
नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १६ ॥

तब दोनों सेनाओंके पैदल, घोडे, हाथी और रथियोंका यमराष्ट्रको बढानेवाला महाभयङ्कर दारुण संग्राम होने लगा ॥ १६ ॥

रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद्यमसादनम् ।
तथेतरान्समासाद्य नरनागाश्वसादिनः ॥ १७ ॥

रथी योद्धा रथियोंपर आक्रमण करके यमपुरीमें भेजने लगे । पैदल, हाथीसवार और घुड-सवार एक दूसरेके संमुख होकर ऐसा ही करने लगे ॥ १७ ॥

अनयन्परलोकाय शरैः संनतपर्वभिः ।
अस्त्रैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशां पते ॥ १८ ॥

पृथ्वीपते ! वहां सब जगह सब योद्धा अपने पानीदार तीक्ष्ण बाणोंसे और नाना प्रकारके घोर तीक्ष्ण अस्त्रोंसे एक दूसरेको मारके परलोकमें भेजने लगे ॥ १८ ॥

रथाश्च रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा ।
विप्रद्रुताश्वाः समरे दिशो जग्मुः समन्ततः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! जगह जगह अनेक रथ, सारथी और रथियोंके मारे जानेपर, भागते हुए घोडोंके साथ रणभूमिमें चारों ओर इधर उधर दौडने लगे ॥ १९ ॥

मर्दमाना नरान्राजन्हयांश्च सुबहून्रणे ।
वातायमाना दृश्यन्ते गन्धर्वनगरोपमाः ॥ २० ॥

मैंने देखा, कि वे सब रथ वायुके समान वेगवान् होकर अनेक पैदल और घोडोंको मर्दन करते हुए रणभूमिमें चारों ओर गन्धर्व नगरके समान शोभायमान होने लगे ॥ २० ॥

रथिनश्च रथैर्हीना वर्मिणस्तेजसा युताः ।
कुण्डलोष्णीषिणः सर्वे निष्काङ्गदविभूषिताः ॥ २१ ॥

कितने ही रथी रथोंसे विरहित हो गये थे । कवच, कुण्डल और वर्म धारण किये वे बडे तेजस्वी दिखते थे । उन्होंने सुवर्णभूषित बाहु भूषण धारण किये थे ॥ २१ ॥

देवपुत्रसमा रूपे शौर्ये शक्रसमा युधि ।
ऋद्ध्या वैश्रवणं चाति नयेन च बृहस्पतिम् ॥ २२ ॥

वे देखनेमें देवकुमारोंके समान सुंदर और युद्धवीरतामें इन्द्रकी उपमा धारण किये हुए थे । वे धनमें कुबेर और नीतिमें बृहस्पतिसे भी बढकर थे ॥ २२ ॥

सर्वलोकेश्वराः शूरास्तत्र तत्र विशां पते ।
विप्रद्रुता व्यदृश्यन्त प्राकृता इव मानवाः ॥ २३ ॥
ऐसे सर्वलोकेश्वर शूरवीर और पराक्रमी रथी राजा लोग भी रथसे रहित होकर साधारण मनुष्योंके समान इधर उधर दौडते दिखाई देने लगे ॥ २३ ॥

दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ विहीना वरसादिभिः ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि संपेतुः सर्वशब्दगाः ॥ २४ ॥
नरश्रेष्ठ ! कितने ही दन्तार हाथी अपने श्रेष्ठ सवारोंसे हीन होकर, चिंघाड मारते, दौडते और अपनी सेनाके वीरोंका ही मर्दन करते हुए शूरवीरोंके अस्त्रशस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २४ ॥

वर्मभिश्चामरैश्छत्रैः पताकाभिश्च मारिष ।
कक्ष्याभिरथ तोत्त्रैश्च घण्टाभिस्तोमरैस्तथा ॥ २५ ॥
मारिष ! विचित्र वर्म, चंवर, सुवर्ण-दण्ड भूपित छत्र, पताका, मणिबन्ध, तोत्र, घण्टा और तीक्ष्ण धारवाले तोमर आदि अस्त्र रणभूमिमें इधर उधर गिर पडे थे ॥ २५ ॥

विशीर्णैर्विप्रधावन्तो दृश्यन्ते स्म दिशो दश ।
नगमेघप्रतीकाशैर्जलदोदयनिस्वनैः ॥ २६ ॥
कितने ही मेघोंकी घटाके सदृश हाथी वर्षाकालके बादलके समान भयंकर शब्द करते हुए चारों ओर दौडते दिखाई देते थे ॥ २६ ॥

तथैव दन्तिभिर्हीनान्गजारोहान्विशां पते ।
प्रधावन्तोऽन्वपश्याम तव तेषां च संकुले ॥ २७ ॥
प्रजापते ! उन हाथियोंके सवार भी अनेक स्थलोंमें हाथियोंसे रहित होकर तुम्हारे और पाण्डवोंके युद्धमें चारों ओर दौडते दिखाई देते थे ॥ २७ ॥

नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान्हेमभूषितान् ।
वातायमानानद्राक्षं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥
नानादेशीय सैंकडों तथा सहस्रों वायुके समान वेगशाली घोडे सुवर्ण भूपित वर्मसे युक्त होकर युद्धक्षेत्रमें दौडते हुए दीख पडे ॥ २८ ॥

अश्वारोहान्हतैरश्वैर्गृहीतासीन्समन्ततः ।
द्रवमाणानपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे ॥ २९ ॥
घोडोंके मरनेपर उनके सवार भी तलवार ग्रहण करके शत्रुओंकी ओर दौडे, और कितने ही दूसरेसे पीडित होकर इधर उधर दौडने लगे ॥ २९ ॥

गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महारणे ।
ययौ विमृद्नंस्तरसा पदातीन्वाजिनस्तथा ॥ ३० ॥

उस महायुद्धमें कोई कोई हाथी अपने वेगसे दौडते हुए पैदल मनुष्य और घोडोंको अपने पांवसे मर्दन करते हुए, दूसरे हाथियोंके सङ्ग मिलकर गमन करने लगे ॥ ३० ॥

तथैव च रथान्राजन्संममर्द रणे गजः ।
रथश्चैव समासाद्य पदातिं तुरगं तथा ॥ ३१ ॥

राजन् ! कितने ही हाथी रणभूमिमें बहुतसे रथोंको मर्दन करने लगे । रथोंका समूह भी पृथ्वीमें पडे हुए घोडे तथा युद्ध करते हुए अनेक पैदल मनुष्योंको अपनी गतिसे पीसने लगे ॥ ३१ ॥

व्यमृद्नात्समरे राजंस्तुरगांश्च नरान्रणे ।
एवं ते बहुधा राजन्प्रमृद्नन्तः परस्परम् ॥ ३२ ॥

राजन् ! इसी भांति अनेक प्रकारसे समरमें कितने ही घोडोंने पैदल लोगोंको कुचल दिया। इस प्रकार वे सब सैनिक वार वार परस्पर मसलने लगे ॥ ३२ ॥

तस्मिन्रौद्रे तथा युद्धे वर्तमाने महाभये ।
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितान्त्रतरङ्गिणी ॥ ३३ ॥

इस प्रकारसे महाभयङ्कर दारुण घोर युद्धमें रुधिर, आंत और तरङ्गसे युक्त एक अत्यन्त भयङ्करी नदी उत्पन्न हुई ॥ ३३ ॥

अस्थिसञ्चयसंघाटा केशशैवलशाद्वला ।
रथह्रदा शरावर्ता हयमीना दुरासदा ॥ ३४ ॥

हड्डियोंका समूह उसमें किनारेकी वालू, (योद्धा और वाहनोंके) केश उस नदीके सेंवार और घास, टूटे हुए रथ उसमें नावरूप वहे जाते थे; वाण आदि अस्त्र भंवरसे दीख पडते थे; मरे हुए घोडे उस दुर्गम नदीकी मछलियां थी ॥ ३४ ॥

शीर्षोपलसमाकीर्णा हस्तिग्राहसमाकुला ।
कवचोष्णीषफेनाढ्या धनुर्द्वीपासिकच्छपा ॥ ३५ ॥

वीरोंके शिर पत्थरोंके टुकडोंके समान बिखरे थे और मरे हुए हाथी उसमें मगर घडियालके समान देख पडते थे; कवच और वस्त्र आदि उस नदीमें वहते हुए फेनके समान वोध होते थे; धनुष उसके किनारेकी भूमि, तलवार ढाल उस नदीके कच्छपके दिखाई देने लगे ॥ ३५ ॥

पताकाध्वजवृक्षाढ्या मर्त्यकूलापहारिणी ।
क्रव्यादसंघसंकीर्णा यमराष्ट्रविवर्धिनी ॥ ३६ ॥

पताका और ध्वज किनारेके वृक्षोंके समान दिखाई देने लगे । मनुष्योंकी लाशें उसके किनारे थे । यह नदी मनुष्यरूपी तटका अपने वेगसे नाश करने लगी; वह मांसाहारी पक्षियोंके समूहसे भरी हुई थी। जलकी नदीयां समुद्रको बढाती हैं; परन्तु यह नदी यमराजके राज्यको बढानेवाली उत्पन्न हुई ॥ ३६ ॥

तां नदीं क्षत्रियाः शूरा हयनागरथप्लवैः ।
प्रतेरुर्बहवो राजन्भयं त्यक्त्वा महाहवे ॥ ३७ ॥

राजन् ! पराक्रमसे युक्त अनेक शूरवीर क्षत्रिय योद्धा युद्धभूमिमें भय त्यागके घोडे, हाथी और रथरूपी नावोंसे इस नदीके पार जाने लगे ॥ ३७ ॥

अपोवाह रणे भीरून्कश्मलेनाभिसंवृतान् ।
यथा वैतरणी प्रेतान्प्रेतराजपुरं प्रति । ॥ ३८ ॥

जैसे वैतरणी नदी मरे हुए मनुष्यको यमपुरीमें ले जाती है, वैसे ही यह रुधिरकी नदी भी मूर्च्छित और डरपोक मनुष्योंको वहाकर ले जाने लगी ॥ ३८ ॥

प्राक्रोशन्क्षत्रियास्तत्र दृष्ट्वा तद्वैशसं महत् ।
दुर्योधनापराधेन क्षयं गच्छन्ति कौरवाः ॥ ३९ ॥

क्षत्रिय योद्धा इस प्रकारसे वीरोंका भयङ्कर नाश होता हुआ देखकर जोरसे चिल्लाकर कहने लगे, कि दुर्योधनके दोषहीसे सब वीरोंका नाश हो रहा है ॥ ३९ ॥

गुणवत्सु कथं द्वेषं धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः ।
कृतवान्पाण्डुपुत्रेषु पापात्मा लोभमोहितः ॥ ४० ॥

पापात्मा राजा दुर्योधनहीने न जाने किस कारणसे लोभ मोहमें फंसकर गुणवान् पाण्डुपुत्रोंसे द्वेष किया ॥ ४० ॥

एवं बहुविधा वाचः श्रूयन्ते स्मात्र भारत ।
पाण्डवस्तवसंयुक्ताः पुत्राणां ते सुदारुणाः ॥ ४१ ॥

भारत ! उन सब वीरोंके मुखसे इसी भांति अनेक प्रकारसे पाण्डवोंकी प्रशंसा और तुम्हारे पुत्रोंकी भयङ्कर निन्दाके सूचक नाना प्रकारके वचन दिखाई देने लगे ॥ ४१ ॥

ता निशम्य तदा वाचः सर्वयोधैरुदाहृताः ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ४२ ॥

तब सब लोकोंमें अपराधी तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उन सब योद्धाओंके मुखसे निकले हुए ऐसे वचन सुनकर भी ॥ ४२ ॥

भीष्मं द्रोणं कृपं चैव शल्यं चोवाच भारत ।
युध्यध्वमनहंकाराः किं चिरं कुरुथेति च ॥ ४३ ॥

महा पराक्रमी भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्यसे बोले, कि तुम सब लोग अहङ्कारसे रहित होकर युद्ध करो; क्यों विलम्ब करते हो ? ॥ ४३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
अक्षद्यूतकृतं राजन्सुघोरं वैशसं तदा ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! अनन्तर फिर कौरवोंका पाण्डवोंके साथ महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा, जो कपटपूर्ण द्युतके कारण उत्पन्न हुआ था और जिसमें भयंकर नाश होता था ॥ ४४ ॥

यत्पुरा न निगृह्णीषे वार्यमाणो महात्मभिः ।
वैचित्रवीर्य तस्येदं फलं पश्य तथाविधम् ॥ ४५ ॥

हे विचित्रवीर्यके पुत्र ! अनेक महात्माओंने पहिले तुम्हें निवारण किया था, तौभी तुमने उस समयमें उन लोगोंकी बात नहीं ग्रहण की; उस ही का यह महादारुण फल इस समय उपस्थित हुआ है, इसे देखिये ॥ ४५ ॥

न हि पाण्डुसुता राजन्ससैन्याः सपदानुगाः ।
रक्षन्ति समरे प्राणान्कौरवा वा विशां पते ॥ ४६ ॥

राजन् ! पृथ्वीपते ! युद्धमें पाण्डव, कौरव तथा उन दोनोंकी सेना और उनके अनुयायी पुरुष आदि कोई भी अपनी प्राणरक्षाकी चेष्टा नहीं करते हैं ॥ ४६ ॥

एतस्मात्कारणाद्घोरो वर्तते स्म जनक्षयः ।
दैवाद्वा पुरुषव्याघ्र तव चापनयान्नृप ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ४३३५ ॥

पुरुषव्याघ्र ! राजन् ! तुमने जो पहिले किसीके युद्धसे निवारण करनेवाले वचनोंको नहीं सुना था, उस ही कारणसे होवे, अथवा दैवकी प्रेरणासे अथवा चाहे तुम्हारी अनीतिके दोषसे ही होवे,– यह महाभयंकर जातिके लोगों तथा अपने इष्ट मित्र आदि सब पुरुषोंके नाशका समय उपस्थित हुआ है ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें निन्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥ ४३३५ ॥

: १०० :

सञ्जय उवाच

अर्जुनस्तु नरव्याघ्र सुशर्मप्रमुखान्नृपान् ।
अनयत्प्रेतराजस्य भवनं सायकैः शितैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! पुरुषसिंह अर्जुन सुशर्माके अनुयायी क्षत्रियोंका अपने तीक्ष्ण बाणोंसे वध करके उनको यमपुरीमें भेजने लगे ॥ १ ॥

सुशर्माऽपि ततो बाणैः पार्थं विव्याध संयुगे ।
वासुदेवं च सप्तत्या पार्थं च नवभिः पुनः ॥ २ ॥

सुशर्मा भी अपने बाणोंसे युद्धमें कुन्तीकुमार अर्जुनको विद्ध करने लगे । फिर सुशर्माने सत्तर बाणोंसे वसुदेवनन्दन कृष्णको विद्ध करके, नौ बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया ॥ २ ॥

तान्निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः ।
सुशर्मणो रणे योधान्प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ३ ॥

महारथी इन्द्रपुत्र अर्जुन सुशर्माको अपने बाण समूहोंसे निवारित, करके युद्धमें उसकी सेनाके योद्धाओंको यमलोक पहुंचाने लगे ॥ ३ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
व्यद्रवन्त रणे राजन्भये जाते महारथाः ॥ ४ ॥

राजन् ! प्रलयकालके यमराजके समान अर्जुनके अस्त्रोंसे युद्धमें मारे जाते हुए सुशर्माके सारे अनुयायी महारथ योद्धा डरकर अर्जुनके सम्मुखसे भाग गये ॥ ४ ॥

उत्सृज्य तुरगान्केचिद्रथान्केचिच्च मारिष ।
गजानन्ये समुत्सृज्य प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ ५ ॥

मारिष ! कोई कोई घोडोंको, कुछ दूसरे रथोंको और वैसे ही कुछ हाथियोंको त्यागकर चारों ओर युद्धभूमिमें भागने लगे ॥ ५ ॥

अपरे तुद्यमानास्तु वाजिनागरथा रणात् ।
त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशां पते ॥ ६ ॥

पृथ्वीपते ! कितने ही शूरवीर घोडे, हाथी और रथोंके सहित शीघ्रतासे वेगपूर्वक रणभूमिसे भागने लगे ॥ ६ ॥

पादाताश्चापि शस्त्राणि समुत्सृज्य महारणे ।
निरपेक्षा व्यधावन्त तेन तेन स्म भारत ॥ ७ ॥

भारत ! कितने ही पैदल योद्धा उस महासंग्राममें शस्त्रोंको त्यागकर उनकी अपेक्षा न रखते हुए, किसीकी ओर न देख इधर उधर भाग गये ॥ ७ ॥

वार्यमाणाः स्म बहुशस्त्रैगर्तेन सुशर्मणा ।
तथान्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ॥ ८ ॥

उन लोगोंको त्रिगर्त्तराज सुशर्मा तथा दूसरे बहुतसे मुख्य राजाओंने बार बार निवारण किया; तौ भी वे सब योद्धा युद्धमें भागनेसे निवृत्त नहीं हुए ॥ ८ ॥

तद्बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतम् ॥ ९ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उस सम्पूर्ण सेनाको भागती हुई देखकर, युद्धभूमिमें उस सब सेनाके सहित पितामह भीष्मको आगे कर, ॥ ९ ॥

सर्वोद्योगेन महता धनंजयमुपाद्रवत् ।
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशां पते ॥ १० ॥

हे पृथ्वीपते ! त्रिगर्त्तराज सुशर्माके जीवनकी रक्षा करनेके निमित्त सब प्रकारके प्रयत्नके सहित अर्जुनकी ओर दौडे ॥ १० ॥

स एकः समरे तस्थौ किरन्बहुविधाञ्शरान् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः शेषा विप्रद्रुता नराः ॥ ११ ॥

अकेले राजा दुर्योधन सब भाइयोंके सहित नाना प्रकारके बाणोंको चलाते हुए अर्जुनके सम्मुख समरभूमिमें स्थित हुए, और सेनाके शेष सब पुरुष भाग गये ॥ ११ ॥

तथैव पाण्डवा राजन्सर्वोद्योगेन दंशिताः ।
प्रययुः फल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यवस्थितः ॥ १२ ॥

राजन् ! पाण्डवोंने भी कवच बांधकर सब प्रयत्नसे युक्त होकर अर्जुनकी रक्षा करनेके निमित्त भीष्मके समीप गमन किया ॥ १२ ॥

जानन्तोऽपि रणे शौर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः ।
हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः ॥ १३ ॥

उन सब पुरुषोंने गाण्डीवधनुष धारण करनेवाले अर्जुनका भयानक बल और पराक्रम जानके भी उत्साहपूर्वक हाहाकार शब्द और सिंहनाद करते हुए चारों ओरसे घेरकर भीष्मके निकट गमन किया ॥ १३ ॥

ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः ॥ १४ ॥

तब तालध्वजावाले शूरवीर भीष्मने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाको छिपा दिया ॥ १४ ॥

एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः पाण्डवैः सह ।
अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ १५ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर जब सूर्य आकाशके बीचों बीच हुए, उस समय सब कौरव एकत्रित होकर पाण्डवोंसे घोर युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः ।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान्सहस्रशः ॥ १६ ॥

शूर सात्यकि पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके, सहस्र सहस्र बाणोंको चलाते हुए रणभूमिमें स्थित हुए ॥ १६ ॥

तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्ध्वा शितैः शरैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ १७ ॥

इसी प्रकार राजा द्रुपदने द्रोणाचार्यको उत्तम पानीसे बुझे हुए बाणोंसे एक बार घायल करके फिर सत्तर बाणोंसे पुनः विद्ध किया; इसके अनन्तर उनके सारथीको भी सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ १७ ॥

भीमसेनस्तु राजानं बाह्लिकं प्रपितामहम् ।
विद्ध्वानदन्महानादं शार्दूल इव कानने ॥ १८ ॥

भीमसेन अपने प्रपितामह महाराज बाह्लिकको बाणोंसे विद्ध करके वनमें सिंहके समान महानाद करने लगे ॥ १८ ॥

आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः ।
चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध हृदये भृशम् ॥ १९ ॥

शूरवीर अर्जुनपुत्र अभिमन्युने चित्रसेनके अनेक बाणोंसे विद्ध होकर भी, तीन बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार करके रणभूमिमें चित्रसेनको अत्यन्त ही विद्ध किया ॥ १९ ॥

समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम् ।
यथा दिवि महाघोरौ राजन्बुधशनैश्चरौ ॥ २० ॥

राजन् ! जैसे आकाशमें बुध और शनैश्चर ये दो महाघोर ग्रह प्रकाशित होते हैं, वैसे ही वे दोनों महा पराक्रमी वीर रणभूमिमें शोभित होने लगे ॥ २० ॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः ।
ननाद बलवन्नादं सौभद्रः परवीरहा ॥ २१ ॥

शत्रुनाशन सुभद्राकुमार वीर अभिमन्युने चित्रसेनके चारों घोडोंको मारकर, नौ बाणोंसे उनके सारथीका वध करके, बडे जोरसे सिंहनाद किया ॥ २१ ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशां पते ॥ २२ ॥

हे राजन् ! महारथी चित्रसेन घोडे और सारथीसे रहित रथपरसे शीघ्र ही कूदके, दुर्मुखके रथपर चढ गये ॥ २२ ॥

द्रोणश्च द्रुपदं विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
सारथिं चास्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २३ ॥

पराक्रमी द्रोणाचार्यने तीक्ष्ण बाणोंसे राजा द्रुपदको विद्ध करके शीघ्रताके सहित उनके सारथीको भी विद्ध किया ॥ २३ ॥

पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे ।
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २४ ॥

राजा द्रुपद संपूर्ण सेनाके संमुख ही द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित हो, पहिलेकी शत्रुताको स्मरण करके वेगवान् घोडोंके सहित रथपर चढे हुए रणभूमिसे भाग गये ॥ २४ ॥

भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्लिकम् ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ २५ ॥

भीमसेनने सब सेनाके संमुख ही मुहूर्त भरमें महाराज बाह्लिकको घोडे, सारथी और रथसे रहित कर दिया ॥ २५ ॥

ससंभ्रमो महाराज संशयं परमं गतः ।
अवप्लुत्य ततो वाहाद्बाह्लीकः पुरुषोत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारथः ॥ २६ ॥

हे महाराज ! पुरुषश्रेष्ठ महारथी बाह्लिक अत्यन्त संदेह और भयसे युक्त होकर, शीघ्रताके सहित अपने रथसे कूदके लक्ष्मणके रथपर चढ गये ॥ २६ ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारथः ।
शरैर्बहुविधै राजन्नाससाद पितामहम् ॥ २७ ॥

राजन् ! महारथी सात्यकिने कृतवर्माको निवारण करके, अनेक बाणोंकी वर्षा करते हुए पितामह भीष्मके निकट गमन किया ॥ २७ ॥

स विद्ध्वा भारतं षष्ट्या निशितैर्लोमवाहिभिः ।
ननर्तेव रथोपस्थे विधुन्वानो महद्धनुः ॥ २८ ॥

और उत्तम पानी चढे हुए रोएंको खडे करनेवाले साठ बाणोंसे महाबलवान् भरतवंशी पितामह भीष्मको विद्ध करके, बडा धनुष घुमाते हुए मानो रथके ऊपर नृत्य करने लगे ॥ २८ ॥

तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाथ पितामहः ।
हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम् ॥ २९ ॥
इसके अनन्तर पितामह भीष्मने सुवर्णचित्रित महावेगशील, सांपिनके समान आकारवाली सुंदर लोहमयी एक उत्तम महाशक्ति सात्यकिकी ओर चलाई ॥ २९ ॥

तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुतेजनाम् ।
ध्वंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः ॥ ३० ॥
वृष्णिवंशीय महायशस्वी सात्यकिने मृत्युके समान अत्यन्त तेजस्वी प्रचण्ड शक्तिको सम्मुख आती देखके शीघ्रतासे रथपर भ्रमण करके उसे विफल किया ॥ ३० ॥

अनासाद्य तु वार्ष्णेयं शक्तिः परमदारुणा ।
न्यपतद्धरणीपृष्ठे महोल्केव गतप्रभा ॥ ३१ ॥
वह प्रकाशमान परम भयानक शक्ति सात्यकिको न पाकर तेजस्वी बडे लुकके समान तेजोहीन होकर पृथ्वीपर गिरी ॥ ३१ ॥

वार्ष्णेयस्तु ततो राजन्स्वां शक्तिं घोरदर्शनाम् ।
वेगवद्गृह्य चिक्षेप पितामहरथं प्रति ॥ ३२ ॥
राजन् ! तब सात्यकिने घोर दर्शनी अपनी शक्ति ग्रहण करके उसे पितामह भीष्मके रथपर बडे वेगसे चलाई ॥ ३२ ॥

वार्ष्णेयभुजवेगेन प्रणुन्ना सा महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन कालरात्रिर्यथा नरम् ॥ ३३ ॥
उस महायुद्धमें वह वेगसे चलाई हुई महाशक्ति सात्यकिके हाथसे छूटकर मनुष्यको कालरात्रिके समान, अत्यन्त वेगपूर्वक पितामह भीष्मके ऊपर आगयी ॥ ३३ ॥

तमापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारत ।
क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां सान्वकीर्यत भूतले ॥ ३४ ॥
भारत ! गङ्गानन्दन भीष्मने उस सहसा आती हुई शक्तिको संमुख आती देख, दो क्षुरप्र बाणोंसे काटके दो खण्ड कर दिया; उससे वह शक्ति टुकडे होकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥३४॥

छित्वा तु शक्तिं गाङ्गेयः सात्यकिं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्शत्रुकर्शनः ॥ ३५ ॥
शत्रुनाशन गंगानन्दन भीष्मने उस शक्तिको काटके क्रुद्ध होकर हंसते हुए बाणोंसे सात्यकिके वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ३५ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
परिवव्रू रणे भीष्मं माधवत्राणकारणात् ॥ ३६ ॥

हे पाण्डुके बडे भाई राजन् ! तब पाण्डवोंने भीष्मके अस्त्रोंसे मधुवंशी सात्यकिको बचानेके वास्ते रथ, हाथी, घोडे और पैदल सेनाके सहित चारों ओरसे युद्धमें उनको घेर लिया ॥३६॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च समरे विजयैषिणाम् ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ॥ ४३७२ ॥

इसके अनन्तर विजयकी इच्छा करनेवाले कौरव और पाण्डवोंका रोएंको खडा करनेवाला महाघोर भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें सौवां अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥ ४३७२ ॥

: 101 :

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम् ।
यथा मेघैर्महाराज तपान्ते दिवि भास्करम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! रणभूमिमें क्रुद्ध भीष्म पितामहको ग्रीष्मकालके अन्तमें बादल जैसे सूर्यको छिपा देते हैं, उसी प्रकार चारों ओरसे घेर लिया था ॥ १ ॥

दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत ।
एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शत्रुनिषूदनः ॥ २ ॥

यह देखके राजा दुर्योधनने दुःशासनसे कहा, हे भारत ! शत्रुवीरनाशन महाधनुर्धारी पराक्रमी भीष्म पितामह ॥ २ ॥

छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः ॥ ३ ॥

पराक्रमी पाण्डवोंकी सेनामें चारों ओरसे घिर गये हैं । हे वीर ! इस समय तुमको महात्मा भीष्मकी रक्षा करनी उचित है ॥ ३ ॥

रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः ।
निहन्यात्समरे यत्तान्पाञ्चालान्पाण्डवैः सह ॥ ४ ॥

जब युद्धमें हम लोग हमारे पितामह भीष्मकी रक्षा करेंगे, तब वह विजयप्राप्तिके लिये यत्न करनेवाले पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल योद्धाओंका वध कर सकेंगे ॥ ४ ॥

तत्र कार्यमहं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम् ।
गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं पितामहः ॥ ५ ॥

इससे भीष्मकी रक्षा करनी ही मैं सबसे बडा कार्य समझता हूं, कारण कि यह महाधनुर्धारी पितामह भीष्म हम लोगोंके रक्षक हैं ॥ ५ ॥

स भवान्सर्वसैन्येन परिवार्य पितामहम् ।
समरे दुष्करं कर्म कुर्वाणं परिरक्षतु ॥ ६ ॥

इससे तुम युद्धमें सदा कठिन कर्मोंको करनेवाले पितामह भीष्मको सब सेनासे युक्त होकर चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करो ॥ ६ ॥

स एवमुक्तस्तु समरे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः ॥ ७ ॥

तुम्हारे पुत्र दुःशासन रणभूमिमें दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर, बहुत बडी सेनाके सहित भीष्मको सब ओरसे घेरकर खडे हुए ॥ ७ ॥

ततः शतसहस्रेण हयानां सुबलात्मजः ।
विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम् ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर रथियोंमें मुख्य सुबलपुत्र शकुनि अपने हाथोंमें चमकते हुए उत्तम प्रास, ऋष्टि और तोमर धारण करनेवाले, कई सौ हजार घुडसवारोंकी सेनाके सहित युद्धके लिये आये ॥ ८ ॥

दर्पितानां सुवेगानां बलस्थानां पताकिनाम् ।
शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः ॥ ९ ॥

वे सब सैनिक अपने शौर्यका अभिमान रखनेवाले, अत्यंत वेगवान्, बलवान्, ध्वजा पताकाओंसे सुशोभित थे; अस्त्रविद्याकी उत्तम शिक्षा पाये हुए और युद्धके कार्योंमें निपुण मुख्य वीर पैदल योद्धाभी उनके साथ थे ॥ ९ ॥

नकुलं सहदेवं च धर्मराजं च पाण्डवम् ।
न्यवारयन्नरश्रेष्ठं परिवार्य समन्ततः ॥ १० ॥

नकुल, सहदेव और पाण्डुपुत्र धर्मराज इन श्रेष्ठ पुरुषोंको चारों ओरसे घेरकर उन्हें निवारण करने लगे ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम् ।
अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां निवारणे ॥ ११ ॥

फिर राजा दुर्योधनने पाण्डवोंको निवारण करनेके वास्ते पराक्रमसे युक्त दसहजार घुडसवारोंको उनके निकट भेज दिया ॥ ११ ॥

तैः प्रविष्टैर्महावेगैर्गरुत्मद्भिरिवाहवे ।
खुराहता धरा राजंश्चकम्पे च ननाद च ॥ १२ ॥
रणभूमिमें गरुड पक्षीकी भांति अत्यंत वेगशाली वे सब घोडे आकर पाण्डुपुत्रोंके समीप उपस्थित हुए; राजन् ! उस समय पृथ्वी उन घोडोंकी टापसे कांपने और भयंकर शब्द करने लगी ॥ १२ ॥

खुरशब्दश्च सुमहान्वाजिनां शुश्रुवे तदा ।
महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ १३ ॥
जैसे पहाडपर जलते हुए बडे बांसोंके जंगलका प्रचंड शब्द होता है, उसी भांति घोडोंकी टापोंका भी महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ १३ ॥

उत्पतद्भिश्च तैस्तत्र समुद्धूतं महद्रजः ।
दिवाकरपथं प्राप्य छादयामास भास्करम् ॥ १४ ॥
उन सब घोडोंके वेगसे चलनेके समय उनके पांवोंके धक्केसे इतनी धूलि ऊपरको उडी, कि मानो उसने सूर्यके मार्गके समीप पहुंचकर उन्हें छिपा दिया ॥ १४ ॥

वेगवद्भिर्हयैस्तैस्तु क्षोभितं पाण्डवं बलम् ।
निपतद्भिर्महावेगैर्हंसैरिव महत्सरः ।
हेषतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १५ ॥
जैसे बडे तालावमें अत्यंत वेगसे उडनेवाली हंसोंकी पंक्ति गिरकर उसे मथ डालती है, वैसे ही उन वेगशील घोडोंको शीघ्रताके सहित सम्मुख आते देख पाण्डवोंकी सेना चकित हो गई । घोडोंके हिनहिनानेपर उस समय वहांपर कुछ भी नहीं सुन पडता था ॥ १५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे हयसादिनाम् ॥ १६ ॥
राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र माद्रीनन्दन नकुल और सहदेवने बलपूर्वक समरभूमिमें उन सम्पूर्ण घुडसवारोंके वेगको नष्ट किया ॥ १६ ॥

उद्वृत्तस्य महाराज प्रावृट्कालेन पूर्यतः ।
पौर्णमास्यामम्बुवेगं यथा वेला महोदधेः ॥ १७ ॥
महाराज ! जैसे वर्षाकालके पूर्ण महासागरकी लहर पूर्णमासीके दिन बहुत वेगसे उठती है, और जैसे तट उस लहरको रोकता है, वैसे ही उनको रोक दिया ॥ १७ ॥

ततस्ते रथिनो राजञ्शरैः संनतपर्वभिः ।
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि कायेभ्यो हयसादिनाम् ॥ १८ ॥
राजन् ! इसके अनन्तर वे रथी ही उन घुडसवारोंके सिरको अपने चोखे बाणोंसे काटने लगे ॥ १८ ॥

ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ।
नागैरिव महानागा यथा स्युर्गिरिगह्वरे । ॥ १९ ॥

हे राजन् ! जैसे बडे बडे हाथी सब हाथियोंके द्वारा ही पर्वतकी कन्दरामें मारे जाकर गिरते हैं, वैसे ही वे सब योद्धा लोग, सुदृढ धनुर्धर युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवके बाणोंसे रण-भूमिमें यथा उचित मरकर गिरने लगे ॥ १९ ॥

तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः संनतपर्वभिः ।
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश ॥ २० ॥

वे घुडसवार भी सब ओर भ्रमण करते हुए शिलापर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे और प्रास आदि अस्त्रोंसे शत्रुपक्षके सैनिकोंके सिरोंको काटने लगे ॥ २० ॥

अत्यासन्ना हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ।
अच्छिनन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमात् ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे घुडसवारोंके सिर पाण्डवोंके ऋष्टि आदि शस्त्रोंसे इस भांति कटके गिरने लगे, जैसे बडे बडे वृक्षोंसे पके हुए फल गिरते हैं ॥ २१ ॥

ससादिनो हया राजंस्तत्र निषूदिताः ।
पतिताः पात्यमानाश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥

राजन् ! सब ओर वहां सवारोंसहित मारे गये सैंकडों और सहस्रों घोडे गिरे और गिराये जाते थे ॥ २२ ॥

वध्यमाना हयास्ते तु प्राद्रवन्त भयार्दिताः ।
यथा सिंहान्समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः ॥ २३ ॥

मारे जाते हुए घोडे अपने प्राणकी रक्षाके निमित्त भयभीत होकर इस प्रकार इधर उधर भाग रहे थे, जैसे वनमें हरिणोंका झुण्ड सिंहोंको देखकर प्राण बचानेके लिये भाग जाता है ॥२३॥

पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून्महाहवे ।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च ताडयामासुराहवे ॥ २४ ॥

महाराज ! तब पाण्डव लोग उस समय महायुद्धमें शत्रुओंको जीत कर शङ्ख फूंकने और भेरी आदि बाजोंको बजाने लगे ॥ २४ ॥

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा दीनं सैन्यमवस्थितम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः ॥ २५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर राजा दुर्योधन अपनी सेनाको दीन होकर भागती हुई देखकर, दुःखित हो मद्रराज शल्यसे इस प्रकार बोले ॥ २५ ॥

एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो जित्वा मातुल मामकान्।
पश्यतां नो महाबाहो सेनां द्रावयते बली ॥ २६ ॥

हे राजन्! मातुल! महाबाहो! यह देखो, बलवान् राजा युधिष्ठिर हमलोगोंके सम्मुखहीमें हमारी सेनाको तितर-बितर कर रहे हैं॥ २६॥

तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम्।
त्वं हि संश्रूयसेऽत्यर्थमसह्यबलविक्रमः ॥ २७ ॥

हे महाबाहो! तुम्हारा शत्रुओंसे न सहने योग्य बल और पराक्रम सबको विदित है, इससे जैसे तट समुद्रके वेगको आगे बढनेसे रोकता है, वैसे ही तुम भी युधिष्ठिरको निवारण करो॥ २७॥

पुत्रस्य तव तद्वाक्यं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान्।
प्रययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥

प्रतापवान् शल्यने तुम्हारे पुत्रके यह वचन सुनकर, रथोंके समूहके सहित राजा युधिष्ठिर जिस स्थानपर थे, वहाँ पर गमन किया॥ २८॥

तदापतद्वै सहसा शल्यस्य सुमहद्बलम्।
महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः ॥ २९ ॥

तब शल्यकी महासेनाको उस समय वेगपूर्वक महान् जलप्रवाहके समान अपनी ओर आई हुई देखकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर निवारण करने लगे॥ २९॥

मद्रराजं च समरे धर्मराजो महारथः।
दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे।
नकुलः सहदेवश्च त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ३० ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धमें मद्रराज शल्यको भी रोक दिया और शीघ्रताके सहित दस बाणोंसे शल्यकी छातीमें विद्ध किया। नकुल और सहदेवने भी सीधे जानेवाले तीन तीन बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया॥ ३०॥

मद्रराजोऽपि तान्सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः।
युधिष्ठिरं पुनः षष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ॥ ३१ ॥

मद्रराज शल्यने भी पहिले उन तीनों महारथियोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध करके, फिर राजा युधिष्ठिरको शिलापर घिसे हुए साठ बाणोंसे और माद्रीपुत्र नकुल सहदेवको दो दो बाणोंसे विद्ध किया॥ ३१॥

ततो भीमो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाहवे ।
मद्रराजवशं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।
अभ्यद्रवत संग्रामे युधिष्ठिरममित्रजित् ॥ ३२ ॥

उसके बाद शत्रुविजयी महाबाहु भीमसेन समरभूमिमें राजा युधिष्ठिरको मृत्युके मुखमें पडे हुए पुरुषके समान मद्रराज शल्यके वशमें हुआ जानकर, उनके निकट युद्धके लिये दौडकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥

ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
अपरां दिशमास्थाय द्योतमाने दिवाकरे ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ४४०९ ॥

उस समय सूर्य पश्चिम दिशामें जाकर अस्ताचलको जा रहे थे; उसी समयमें दोनों सेनाओंमें महाघोर दारुण संग्राम होने लगा ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ एकवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०१ ॥ ४४०९ ॥

: १०२ :

सञ्जय उवाच

ततः पिता तव क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः ।
आजघान रणे पार्थान्सहसेनान्समन्ततः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— महाराज ! इसके अनन्तर पराक्रमी भीष्म पितामहने क्रुद्ध होकर चारों ओरसे तीक्ष्ण एवं श्रेष्ठ बाणोंकी वर्षा करके सेनाके सहित कुन्तीकुमार पाण्डवोंको पीडित करना आरम्भ किया ॥ १ ॥

भीमं द्वादशभिर्विद्ध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः ।
नकुलं च त्रिभिर्बाणैः सहदेवं च सप्तभिः ॥ २ ॥

उन्होंने भीमको बारह, सात्यकिको नौ, नकुलको तीन और सहदेवको सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ २ ॥

युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
धृष्टद्युम्नं ततो विद्ध्वा विननाद महाबलः ॥ ३ ॥

फिर बारह बाणोंसे राजा युधिष्ठिरकी दोनों भुजा और छातीमें प्रहार किया । फिर धृष्टद्युम्नको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके महाबली भीष्म सिंहनाद करने लगे ॥ ३ ॥

तं द्वादशार्धैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः ।
धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत्पितामहम् ॥ ४ ॥

तत्र नकुलने बारह, सात्यकिने तीन, धृष्टद्युम्नने सत्तर, भीमसेनने पांच और युधिष्ठिरने बारह बाणोंसे पितामह भीष्मको विद्ध किया ॥ ४ ॥

द्रोणस्तु सात्यकिं विद्ध्वा भीमसेनमविध्यत ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः ॥ ५ ॥

द्रोणाचार्यने यमदण्डके समान तीक्ष्ण पांच बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके, भीमसेनको भी उसी भांति तीक्ष्ण पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५ ॥

तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
तोत्त्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम् ॥ ६ ॥

जैसे बडे हाथीको अंकुशसे पीडित करते हैं, वैसे ही भीमसेन और सात्यकिने ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको सीधे जानवाले तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ ६ ॥

सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः
संग्रामे नाजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ७ ॥

सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति देशीय सम्पूर्ण योद्धाओंने भीष्मके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भी युद्धभूमिमें उन्हें त्याग नहीं किया ॥ ७ ॥

तथैवान्ये वध्यमानाः पाण्डवेयैर्महात्मभिः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः ।
तथैव पाण्डवा राजन्परिवव्रुः पितामहम् ॥ ८ ॥

उसी भांति नाना देशोंसे आये हुए तुम्हारी सेनाके राजा लोग भी हाथोंमें विविध भांतिके अस्त्रशस्त्र लिये महामना पांडवोंसे पीडित होकर भी पाण्डवोंके संमुख हुए । राजन् ! पाण्डवोंने भी भीष्म पितामहको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ८ ॥

स समन्तात्परिवृतो रथौघैरपराजितः ।
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन्परान् ॥ ९ ॥

अपराजित भीष्म चारों ओरसे रथसमूहों द्वारा घिरे हुए गहन वनमें लगाई हुई प्रचण्ड अग्निके समान प्रकाशित होकर पाण्डवोंकी सेनाको अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंके भस्म करने लगे ॥ ९ ॥

रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ।
शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निर्ददाह क्षत्रियर्षभान् ॥ १० ॥

जिस अग्निकी अग्निशाला रथ, ज्वाला-शिखा धनुष, तथा तलवार, शक्ति और गदा समिधा और बाण चिनगारियोंके समान हुए; इस प्रकारसे भीष्मरूपी अग्नि वहां क्षत्रियरूपी योद्धाओंको भस्म करने लगी ॥ १० ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः ।
कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद्बलम् ॥ ११ ॥

भीष्मने गिद्धपङ्खवाले सुवर्ण दण्ड युक्त चोखे तेज बाणोंसे और कर्णी, नालीक और नाराचोंसे पाण्डवोंकी सेनाको छिपा दिया ॥ ११ ॥

अपातयद्ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ।
मुण्डतालवानीव चकार स रथव्रजान् ॥ १२ ॥

फिर उन्होंने ध्वजाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर रथियोंको भी मार गिराया। ध्वजाएं काटकर उन्होंने रथसमूहोंको टूटे ताल-वनके समान कर दिया ॥ १२ ॥

निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे ।
अकरोत्स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १३ ॥

राजन् ! सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीष्मने रथ, घोडे और हाथियोंको मनुष्योंसे रहित कर दिया ॥ १३ ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत ॥ १४ ॥

हे भारत ! वज्रकी गडगडाहटके समान भीष्मके धनुषकी प्रत्यंचाकी टङ्कार ध्वनि और तलत्राणके शब्दको सुनकर सम्पूर्ण प्राणी कांपने लगे ॥ १४ ॥

अमोघा ह्यपतन्बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ ।
नासज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! भीष्म पितामहके बाण अमोघ होकर चारों ओर गिरते हुए दिखाई देने लगे। भीष्मके धनुषसे छुटे हुए बाण केवल शत्रुओंके वर्महीमें लगके नहीं रह गये ॥ १५ ॥

हतवीरान्रथान्राजन्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
अपश्याम महाराज ह्रियमाणान्रणाजिरे ॥ १६ ॥

महाराज ! किन्तु मैंने देखा, कि समरमें भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाणोंने रथोंको रथियोंसे रहित कर दिया; वीरोंसे हीन रथ वेगवान् घोडोंसे जुते हुए होनेके कारण रणभूमिमें चारों ओर खींचकर लिये जाते थे ॥ १६ ॥

चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
अपरावर्तिनः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १७ ॥

चेदि, काशि और करूष–देशीय चौदह हजार महारथी, विश्वमें विख्यात, उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए, शूरवीर पाण्डवोंके लिये अपना शरीर अर्पण किये हुए, रणसे पीछे न हटनेवाले योद्धालोग थे और उन सबकी ध्वजाएं सोनेकी बनी हुई थीं ॥ १७ ॥

संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथकुञ्जराः ॥ १८ ॥

मुंह खुले हुए कालके समान भीष्मके सामने जाकर सब महारथी युद्धरूपी समुद्रमें डूब गये । रथ, हाथी और घोडोंके सहित महात्मा भीष्मके बाणोंसे मरकर परलोक सिधारे ॥ १८ ॥

भग्नाक्षोपस्करान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च सर्वशः ।
अपश्याम रथान्राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

महाराज ! उस समय मैंने देखा, कि सैकडों तथा सहस्रों रथोंके चक्र तथा धुरे आदि सामान टूट टूट पृथ्वीमें चारों ओर पडे हुए थे ॥ १९ ॥

सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः ।
शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिशैश्च विशां पते ॥ २० ॥

पृथ्वीपते ! वरूथों सहित टूटे हुए रथ, मरे हुए हाथी, मारे गये रथी, कटे हुए बाण, विचित्र कवच, पट्टिश ॥ २० ॥

गदाभिर्मुसलैश्चैव निस्त्रिंशैश्च शिलीमुखैः ।
अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चक्रैर्भग्नैश्च मारिष ॥ २१ ॥

गदा, मुसल, शिलापर घिसे हुए चोखे बाण, छिन्नभिन्न हुए रथके नीचेका काठ, तूणीर, टूटे हुए रथके चक्के ॥ २१ ॥

बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
तलत्रैरङ्गुलित्रैश्च ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
चापैश्च बहुधा छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ २२ ॥

वीरोंकी कटी भुजाएं, धनुष, तलवार, कुण्डलोंके सहित मस्तक, पदत्राण, अंगुलित्राण, गिराये गये ध्वजा और अनेक प्रकारके टूटे हुए धनुषोंसे पृथ्वी आवृत हो गई ॥ २२ ॥

हतारोहा गजा राजन्हयाश्च हतसादिनः ।
परिपेतुर्द्रुतं तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २३ ॥

हे राजन् ! सौ सौ तथा हजार हजार हाथी और घोडे सवारोंसे रहित होकर पृथ्वीमें मरकर शीघ्र ही गिरने लगे ॥ २३ ॥

यतमानाश्च ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ।
नाशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ॥ २४ ॥

पाण्डवोंकी ओरके महारथ योद्धा भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर रणभूमिसे इधर उधर भागने लगे; पराक्रमी पाण्डव यत्नवान् होकर भी उनको निवारण न कर सके ॥२४॥

महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ।
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ॥ २५ ॥

महाराज ! इन्द्रके समान पराक्रमी प्रतापी भीष्म पितामहके बाणोंसे मारी जाती हुई, वह विशाल सेना, इतनी शीघ्रतासे भागने लगी, कि दो दो पुरुष भी एक सङ्ग नहीं दौड सके ॥ २५ ॥

आविद्धरथनागाश्वं पतितध्वजकूबरम् ।
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ॥ २६ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके रथ, हाथी और घोडे भीष्मके बाणोंसे क्षत विक्षत हो रहे थे । रथोंकी ध्वजाएं कटके पृथ्वीमें गिर गयी, और सेनाके सब शूरवीर योद्धा अचेतसे होकर महा कोलाहल करने लगे ॥ २६ ॥

जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
प्रियं सखायं चाक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ॥ २७ ॥

उस समयमें दैवकी इच्छासे प्रेरित होकर पिता पुत्रका, पुत्र पिताका और प्यारा मित्र अपने प्रिय मित्रोंका वध करने लगे ॥ २७ ॥

विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्रकीर्य केशान्धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त भारत ॥ २८ ॥

भारत ! उस समय मैंने देखा, कि पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी सेनाके कितने ही पुरुष कवचको त्यागके खुले हुए केश तथा नङ्गे सिर होकर भागने लगे ॥ २८ ॥

तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथकुञ्जरम् ।
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ॥ २९ ॥

जब उस समय भीष्मका रथ चारों ओर रणभूमिमें घूमने लगा, तब वह सब योद्धा मानों सिंहको देखकर गौओंके समुदायकी भांति भयभीत होकर इधर उधर घूमते और भागते हुए आर्त्तनाद करने लगे ॥ २९ ॥

प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ।
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ॥ ३० ॥

यदुकुलभूषण कृष्ण पाण्डवोंकी सेनाको भागती हुई देख अपने उत्तम रथको खडा करके कुन्तीपुत्र अर्जुनसे बोले ॥ ३० ॥

अयं स कालः संप्राप्तः पार्थ यः काङ्क्षितस्तव ।
प्रहरास्मै नरव्याघ्र न चेन्मोहात्प्रमुह्यसे ॥ ३१ ॥

हे पुरुषसिंह अर्जुन ! तुमने पहिले जो अभिलाषा की थी, उसका समय अब उपस्थित हुआ है; इसी समय भीष्मका वध करो, नहीं तो पीछे तुमको मोह प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥

यत्पुरा कथितं वीर त्वया राज्ञां समागमे ।
विराटनगरे पार्थ संजयस्य समीपतः ॥ ३२ ॥

हे वीर ! तात ! पूर्वकालमें विराट नगरमें जब हस्तिनापुरसे सञ्जय तुम्हारे समीप आये थे, तब तुमने राजाओंके इकट्ठे होनेके समय उससे यह कहा था कि ॥ ३२ ॥

भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ।
सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संयुगे ॥ ३३ ॥

" दुर्योधनके भीष्म, द्रोणाचार्य आदि सेनाके पुरुष तथा दूसरे जो मनुष्य उसके निमित्त मेरे सङ्ग युद्ध करेंगे, सब पुरुषोंको मैं सगेसंबंधि—अनुयायियोंके सहित युद्धमें मारूंगा ॥ ३३ ॥

इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिंदम ।
क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

हे शत्रुनाशन कुन्तीपुत्र भरतश्रेष्ठ अर्जुन ! तुम क्षत्रिय धर्मको स्मरण करके सब शोक और चिन्ताओंको त्याग कर, अब अपने वचनको सत्य करो ॥ ३४ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ।
अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अर्जुन कृष्णकी बात सुनकर, सिर नीचे करके तिरछी दृष्टिसे मानो इच्छा रहित होकर यह वचन बोले ॥ ३५ ॥

अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम् ।
दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत् ॥ ३६ ॥

अवध्य पुरुषोंको मारकर नरकमें लेजानेवाले राज्यको पाना अथवा वनवासके दुःखको भोग करना, ये दोनों ही अवस्था समान हैं; इस समय कौन कर्म करना मेरे लिये उचित है ॥ ३६ ॥

चोदयाश्वान्यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ।
पातयिष्यामि दुर्धर्षं वृद्धं कुरुपितामहम् ॥ ३७ ॥

जो हो, मैं तुम्हारे वचनका पालन करूंगा; जहांपर भीष्म पितामह हैं वहांपर ही घोडोंको बढाकर मेरे रथको ले चलो । मैं अत्यन्त पराक्रमी वृद्ध कुरु पितामह भीष्मका वध करूंगा ॥ ३७ ॥

ततोऽश्वान्रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः।
यतो भीष्मस्ततो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ॥ ३८ ॥

हे राजन्! इसके अनन्तर कृष्णने सूर्यके समान तेजस्वी भीष्म जहां युद्ध कर रहे थे, उसी ओर सुवर्णभूषित रथके चांदीके समान श्वेतवर्णवाले घोडोंको चलाया ॥ ३८ ॥

ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत्।
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यन्तमाहवे ॥ ३९ ॥

तब युधिष्ठिरकी महासेना महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनको भीष्मसे युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित देखकर, फिर लौटी ॥ ३९ ॥

ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः।
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४० ॥

तब कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्म पितामहने बार बार सिंहनाद करके अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनके रथको छिपा दिया ॥ ४० ॥

क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः।
शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४१ ॥

भीष्मके बाणोंकी भारी वर्षासे क्षणभरमें घोडे और सारथीके सहित अर्जुनका रथ अदृश्य हो गया। तब उसका कुछ पता ही नहीं लगता था ॥ ४१ ॥

वासुदेवस्त्वसंभ्रान्तो धैर्यमास्थाय सात्वतः।
चोदयामास तानश्वान्वितुन्नान्भीष्मसायकैः ॥ ४२ ॥

सात्वत कृष्णने विना किसी घबराहटके सावधानीके सहित भीष्मके बाणोंसे क्षत विक्षत शरीरवाले घोडोंको धीरताके सहित चलाया ॥ ४२ ॥

ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिस्वनम्।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा शितैः शरैः ॥ ४३ ॥

अनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने बादलके समान गंभीर शब्द करनेवाले दिव्य गाण्डीव धनुषको ग्रहण करके, अपने तीक्ष्ण बाणोंसे भीष्म पितामहके धनुषको काट दिया ॥ ४३ ॥

स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः।
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ॥ ४४ ॥

धनुष कटते ही कुरुकुल पितामह भीष्मने पुनः एक दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसके ऊपर प्रत्यंचा चढाई ॥ ४४ ॥

विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिस्वनम् ।
अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ॥ ४५ ॥

तदनंतर बादलके समान शब्द करनेवाले उस धनुषको दोनों हाथोंसे फेरते हुए बाणोंको चलाने लगे; परन्तु अर्जुनने क्रुद्ध होकर उसे भी काट डाला ॥ ४५ ॥

तस्य तत्पूजयामास लाघवं शंतनोः सुतः ।
साधु पार्थ महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ॥ ४६ ॥

अर्जुनके ऐसे कर्मको देखकर शान्तनुपुत्र भीष्म पितामहने अर्जुनके हस्तलाघवकी प्रशंसा की और बोले - पार्थ ! महाबाहो ! कुन्तीकुमार ! ' बहुत अच्छा ', ' धन्य धन्य ! ' ॥ ४६ ॥

समाभाष्यैनमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
मुमोच समरे भीष्मः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ४७ ॥

अर्जुनकी प्रशंसा कर, भीष्म फिर एक मनोहर धनुष ग्रहण करके युद्धमें उनके रथपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४७ ॥

अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ४८ ॥

कृष्णने मण्डलाकार रथको चलाकर भीष्मके चलाये हुए उन सब बाणोंको निष्फल करके, अर्जुनके घोडोंको चलानेकी कलामें अपना परम पराक्रम दिखाया ॥ ४८ ॥

शुशुभाते नरव्याघ्रौ भीष्मपार्थौ शरक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ४९ ॥

फिर पुरुषसिंह भीष्म और अर्जुन दोनों ही बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर होकर, परस्पर सींगोंसे घायल हुए क्रुद्ध बैलोंके समान सुशोभित हुए ॥ ४९ ॥

वासुदेवस्तु संप्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ।
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ॥ ५० ॥

श्रीकृष्णने देखा कि, अर्जुन मृदु युद्ध करते हैं और भीष्म सदा अपने बाणोंकी वर्षा करते हैं ॥ ५० ॥

प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ।
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ॥ ५१ ॥

भीष्म दोनों सेनाके बीच तपते हुए सूर्यके समान प्रकाशित होकर पाण्डवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य योद्धाओंका वध कर रहे हैं ॥ ५१ ॥

×

युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले।
नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥ ५२ ॥

यहांतक कि युधिष्ठिरकी सेनाके निमित्त मानो प्रलय कालका समय उपस्थित कर रहे हैं। यह देखकर शत्रुनाशन, महाबाहु श्रीकृष्ण अधिक न सह सके ॥ ५२ ॥

उत्सृज्य रजतप्रख्यान्हयान्पार्थस्य मारिष।
क्रुद्धो नाम महायोगी प्रचस्कन्द महारथात्।
अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली ॥ ५३ ॥

मारिष ! वह महायोगी क्रुद्ध होकर रजतसमान सफेद रंगवाले अर्जुनके घोडोंको त्यागकर उस उत्तम रथसे नीचे उतरे और अपने केवल भुजारूपी आयुधका अवलम्बन करके भीष्मकी ओर वेगसे दौडे ॥ ५३ ॥

प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः।
दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगतीश्वरः ॥ ५४ ॥

हाथमें कोडा लिये, अत्यन्त तेजस्वी, जगत्के स्वामी श्रीकृष्ण बार बार सिंहनाद करके, अपने पावोंसे पृथ्वीको विदीर्णसी कर रहे थे ॥ ५४ ॥

क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः।
ग्रसन्निव च चेतांसि तावकानां महाहवे ॥ ५५ ॥

अमित तेजस्वी पराक्रमी कृष्ण क्रोधसे नेत्र लाल करके, भीष्मके वध करनेकी इच्छासे उस महायुद्धमें तुम्हारे पुत्र और सैनिकोंकी चेतनाको मानो अपना ग्रास करते थे ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा माधवमाक्रन्दे भीष्मायोद्यन्तमाहवे।
हतो भीष्मो हतो भीष्म इति तत्र स्म सैनिकाः।
क्रोशन्तः प्राद्रवन्सर्वे वासुदेवभयान्नराः ॥ ५६ ॥

महाराज ! उस आक्रन्दित रणभूमिमें कृष्णको भीष्मकी ओर वेगसे दौडते हुए देखकर, तुम्हारी सेनाके पुरुष भयभीत हो गये। उस समय कृष्णसे भयभीत होकर जगह जगह सब मनुष्य कहने लगे, " भीष्म मारे गये, भीष्म मारे गये " और कृष्णके भयसे सब सैनिक कोलाहल करके भागने लगे ॥ ५६ ॥

पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः।
शुशुभे विद्रवन्भीष्मं विद्युन्माली यथाम्बुदः ॥ ५७ ॥

जैसे श्यामवर्ण बादल बिजलीसे अलंकृत शोभायमान लगता है, वैसे ही पीताम्बर पहरे हुए इन्द्र नीलमणिके समान मेघवर्ण कृष्ण भीष्मकी ओर दौडते समय शोभित हुए ॥ ५७ ॥

स सिंह इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम् ।
अभिदुद्राव तेजस्वी विनदन्यादवर्षभः ॥ ५८ ॥

जैसे सिंह गर्जते हुए उत्तम गजराजपर और गोपति सांड दूसरे सांडपर दौडता है, वैसे ही यदुकुलभूषण तेजस्वी कृष्ण सिंहनाद करते हुए कुरुश्रेष्ठ भीष्म पितामहकी ओर वेगसे दौडे ॥ ५८ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे ।
असंभ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महद्धनुः ।
उवाच चैनं गोविन्दमसंभ्रान्तेन चेतसा ॥ ५९ ॥

शान्तनुपुत्र भीष्मने कमलनयन कृष्णको युद्धमें क्रुद्ध चित्तसे अपनी ओर आते हुए देखकर, रणक्षेत्रमें बिलकुल भी भयभीत न होकर अपने बडे धनुषको फेरते हुए, निर्भय चित्त होकर कृष्णसे कहा ॥ ५९ ॥

एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ।
मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ॥ ६० ॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! आओ, हे देवोंके देव ! तुमको मेरा नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम ! इस महायुद्धमें तुम मेरा वध करो ॥ ६० ॥

त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ ।
श्रेय एव परं कृष्ण लोकेऽमुष्मिन्निहैव च ।
संभावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे ॥ ६१ ॥

हे परमात्मन् ! हे कृष्ण ! हे अनघ ! गोविन्द ! यदि तुम मुझे युद्धमें मारोगे, तो लोकके बीचमें मेरा परम मङ्गल होगा; मैं आज इस युद्धमें तीनों लोकमें सम्मानित होऊंगा ॥ ६१ ॥

अन्वगेव ततः पार्थस्तमनुद्रुत्य केशवम् ।
निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै ॥ ६२ ॥

इसके अनन्तर महाबाहु अर्जुनने शीघ्रताके सहित कृष्णके पीछे दौडके अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें ग्रहण किया ॥ ६२ ॥

निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ।
जगाम चैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ॥ ६३ ॥

कमल नयन पुरुषोत्तम कृष्ण अर्जुनसे ग्रहण किये जानेपर भी अर्जुनको सङ्ग लिये हुए ही वेगपूर्वक गमन करने लगे ॥ ६३ ॥

पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ।
निजग्राह हृषीकेशं कथंचिद्दशमे पदे ॥ ६४ ॥

परन्तु नौ चरण गमन करनेके अनन्तर दशवें चरण पर शत्रुनाशन वीर अर्जुनने बलपूर्वक उनके दोनों पावोंको पकडके किसी प्रकारसे हृषीकेशको रोक रक्खा ॥ ६४ ॥

तत एनमुवाचार्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ।
निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः परवीरहा ॥ ६५ ॥

अनन्तर शत्रुनाशन अर्जुन कातर होकर, क्रोधसे लाल नेत्र किये और सर्पके समान लम्बी सांस छोडते हुए अपने मित्र महात्मा कृष्णसे विनयपूर्वक बोले ॥ ६५ ॥

निवर्तस्व महाबाहो नानृतं कर्तुमर्हसि ।
यत्त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव ॥ ६६ ॥

हे महाबाहो कृष्ण ! तुम निवृत्त हो जाओ । तुमने पहिले कहा था, कि मैं युद्ध नहीं करूंगा । इससे तुम अपने उस वचनको मिथ्या मत करो ॥ ६६ ॥

मिथ्यावादीति लोकास्त्वां कथयिष्यति माधव ।
ममैष भारः सर्वो हि हनिष्यामि यतव्रतम् ॥ ६७ ॥

हे माधव ! यदि तुम युद्ध करोगे, तो तुमको सब पुरुष मिथ्यावादी कहेंगे । हे कृष्ण ! मेरे ऊपर यह सम्पूर्ण भार है, मैं ही यतव्रती भीष्म पितामहका वध करूंगा ॥ ६७ ॥

शपे माधव सख्येन सत्येन सुकृतेन च ।
अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ ६८ ॥

हे शत्रुनाशन कृष्ण ! मैं मित्रता, सत्य और सुकृतके सहित तुम्हारे निकट प्रतिज्ञा तथा शपथ करता हूं, कि शत्रुओंका जिस प्रकारसे नाश हो सकेगा मैं वही उपाय करूंगा ॥ ६८ ॥

अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महाव्रतम् ।
तारापतिमिवापूर्णमन्तकाले यदृच्छया ॥ ६९ ॥

तुम्हें आज ही महाव्रती दुर्जय भीष्मको पूर्ण तारापति चन्द्रमाके समान उनके अन्तिम समयमें इच्छानुसार मेरे अस्त्रोंसे पतित हुए देखनेकी सम्भावना है ॥ ६९ ॥

माधवस्तु वचः श्रुत्वा फल्गुनस्य महात्मनः ।
नकिञ्चिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः ॥ ७० ॥

श्रीकृष्ण महात्मा अर्जुनका ऐसा वचन सुन, कुछ भी न कह कर, फिर क्रोधपूर्वक ही रथपर चढे ॥ ७० ॥

तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शांतनवः पुनः ।
ववर्ष शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाचलौ ॥ ७१ ॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंके रथपर चढनेके अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म उन दोनों पुरुषोंके ऊपर इस प्रकार अपने बाणोंको वर्षाने लगे, जैसे बादल पर्वतके ऊपर जलकी वर्षा करता है ॥७१॥

प्राणांश्चादत्त योधानां पिता देवव्रतस्तव ।
गभस्तिभिरिवादित्यस्तेजांसि शिशिरात्यये ॥ ७२ ॥

जैसे शिशिर ऋतुके अन्तमें सूर्य अपनी किरणसे सम्पूर्ण पदार्थोंके तेजको ग्रहण करता है, वैसे ही भीष्म पितामह अपने तीक्ष्ण बाणोंसे योद्धाओंके प्राण हरण करने लगे ॥ ७२ ॥

यथा कुरूणां सैन्यानि बभञ्ज युधि पाण्डवः ।
तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता ॥ ७३ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन जिस भांतिसे युद्धमें कुरुसेनाको तितर बितर करते थे, भीष्म पितामह भी उस ही भांतिसे पाण्डवोंकी सेनाको रणभूमिमें भगाने लगे ॥ ७३ ॥

हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ।
निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे ।
मध्यं गतमिवादित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा ॥ ७४ ॥

पाण्डवोंकी सेना भीष्मके बाणोंसे विकल और पीडित होकर इस प्रकारसे उत्साहरहित और अचेत होके युद्धभूमिसे भागी, कि अत्यन्त पराक्रमी भीष्म पितामहकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुई; जैसे दोपहरमें अपने तेजसे तपते हुए सूर्यकी ओर कोई भी देख नहीं सकता ॥७४॥

ते वध्यमाना भीष्मेण कालेनेव युगक्षये ।
वीक्षांचक्रुर्महाराज पाण्डवा भयपीडिताः ॥ ७५ ॥

युगान्तके समय साक्षात् कालके समान भीष्मके बाणोंसे मारे जाते हुए सब पाण्डव शूरवीर भयसे पीडित होकर उनको देखने लगे ॥ ७५ ॥

त्रातारं नाध्यगच्छन्त गावः पङ्कगता इव ।
पिपीलिका इव क्षुण्णा दुर्बला बलिना रणे ॥ ७६ ॥

पाण्डव सेनाके वीरोंने भीष्मके बाणोंसे तितर बितर होकर कीचडमें पडे हुए गौओंके समूहकी भांति किसीको भी अपनी रक्षा करनेवाला न देखा। समरभूमिमें बलवान् भीष्मने उन दुर्बल सैनिकोंको चींटियोंके समान कुचल दिया ॥ ७६ ॥

महारथं भारत दुष्प्रधर्षं शरौघिणं प्रतपन्तं नरेन्द्रान् ।
भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते शरार्चिषं सूर्यमिवातपन्तम् ॥ ७७ ॥

भारत ! महारथी दुष्प्रधर्ष भीष्म बाणोंकी वर्षा करके, पाण्डवपक्षके राजाओंको भस्म करते थे। बाणरूपी किरणोंसे शोभित और सूर्यके समान प्रज्वलित भीष्मकी ओर देखनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ ॥ ७७ ॥

विमृद्नतस्तस्य तु पाण्डुसेनामस्तं जगामाथ सहस्ररश्मिः ।
ततो बलानां श्रमकर्शितानां मनोऽवहारं प्रति संबभूव ॥ ७८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ॥ ४४८७ ॥

इसी प्रकारसे जब वह पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर रहे थे, तब सहस्र किरणधारी भगवान् सूर्य अस्त होने लगे; अनन्तर संग्राममें थके हुए सेनाके पुरुषोंका चित्त युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त व्याकुल होने लगा ॥ ७८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एक सौ दोवां अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥ ४४८७ ॥

: १०३ :

सञ्जय उवाच

युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
संध्या समभवद्घोरा नापश्याम ततो रणम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! अनन्तर युद्ध करते करते सूर्यके अस्त होनेपर, महाघोर सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ; तब उस समय हमने युद्ध नहीं देखा ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा संध्यां संदृश्य भारत ।
वध्यमानं बलं चापि भीष्मेणामित्रघातिना ॥ २ ॥

भारत ! तब राजा युधिष्ठिरने देखा कि सन्ध्या हो गयी है और अपनी सेना भी शत्रुनाशन भीष्म पितामहके बाणोंसे पीडित हो गयी है ॥ २ ॥

मुक्तशस्त्रं परावृत्तं पलायनपरायणम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धमनुयान्तं महारथान् ॥ ३ ॥

भयसे विमुख और युद्धसे विकल होकर सेनाको अस्त्रशस्त्रोंको त्यागकर भागी हुई देखा तथा महारथी भीष्मको क्रुद्ध होकर युद्धमें सब महारथियोंको पीडित करते हैं, यह भी देखा ॥ ३ ॥

सोमकांश्च जितान्दृष्ट्वा निरुत्साहान्महारथान् ।
चिन्तयित्वा चिरं ध्यात्वा अवहारमरोचयत् ॥ ४ ॥

और सोमकवंशीय रथी योद्धाओंको पराजित तथा उत्साहरहित देखा और इन सब बातोंपर अत्यन्त ही विचार करके अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त आज्ञा देना उचित समझा ॥ ४ ॥

ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत्तदा　　　　॥ ५ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने युद्धसे अपनी सेनाको निवृत्त किया, इसी प्रकार तुम्हारी सेना भी संग्रामसे निवृत्त हुई ॥ ५ ॥

ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः ।
न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः　　　　॥ ६ ॥

हे भारत ! कुरुश्रेष्ठ ! महारथ योद्धाओंने संग्राममें क्षतविक्षत शरीरसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको युद्धसे निवृत्त करके अपने शिविरोंमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥

भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः ।
नालभन्त तदा शान्तिं भृशं भीष्मेण पीडिताः　　　　॥ ७ ॥

पाण्डव लोग युद्धमें भीष्मके वाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनके युद्धके कार्योंकी चिन्ता करने लगे; उस समयमें वह लोग शान्ति लाभ न कर सके ॥ ७ ॥

भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान्सह सृञ्जयैः ।
पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत　　　　॥ ८ ॥

हे भारत ! भीष्म पितामहने भी सृञ्जयोंके सहित पाण्डवोंको समरमें जीत करके तुम्हारे पुत्रोंसे पूजित और वन्दित होकर, ॥ ८ ॥

न्यविशत्कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः ।
ततो रात्रिः समभवत्सर्वभूतप्रमोहिनी　　　　॥ ९ ॥

चारों ओरसे प्रसन्नचित्त और हर्षयुक्त कुरुसेनाके सहित शिविरमें प्रवेश किया। इसके अनन्तर सब प्राणियोंको मोहित करनेवाली रात्रि उपस्थित हुई ॥ ९ ॥

तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन्　　　　॥ १० ॥

उस महाघोर रात्रिके समय बुद्धिमान् पाण्डव लोग दुर्धर्ष सृञ्जयों और वृष्णिवंशियोंके सहित विचार करनेके लिये एकत्र बैठे ॥ १० ॥

आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः ।
मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः　　　　॥ ११ ॥

मन्त्रकार्यको जाननेवाले वह सब महाबलवान् पुरुष एकाग्रचित्त होकर समयके अनुसार अपने कल्याणके निमित्त विचार करने लगे ॥ ११ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप ।
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १२ ॥

हे नृप ! अनन्तर राजा युधिष्ठिर बहुत देरतक विचार करके, वसुदेवनन्दन कृष्णकी ओर देखकर यह वचन बोले ॥ १२ ॥

पश्य कृष्ण महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥ १३ ॥

हे कृष्ण ! तुमने देखा, अत्यन्त पराक्रमी महात्मा भीष्म मेरी सेनाका इस प्रकारसे नाश करते हैं, जैसे हाथी कमलके वनका नाश कर देता है ॥ १३ ॥

न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥ १४ ॥

ये प्रज्वलित अग्निके समान बाणोंकी वर्षासे हमारी सेनाको भस्म करते हैं । उन महा तेजस्वी महात्मा भीष्म पितामहकी ओर हमलोग देखनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते ॥ १४ ॥

यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः ।
तथा भीष्मो रणे कृष्ण तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान् ॥ १५ ॥

रणभूमिमें प्रतापवान् भीष्म पितामह जब तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करते हैं, तब जैसे महा विषधर तक्षक नाग भयंकर दीखता है वैसे ही भयानक जान पडते हैं ॥ १५ ॥

गृहीतचापः समरे विमुञ्चंश्च शिताञ्शरान् ।
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट् ॥ १६ ॥
वरुणः पाशभृच्चापि सगदो वा धनेश्वरः ।
न तु भीष्मः सुसंक्रुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे ॥ १७ ॥

वे धनुष फेरते हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंको मेरी सेनापर वर्षाते रहते हैं । क्रुद्ध हुए दण्डधारी यमराज, हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्र, पाशको ग्रहण करनेवाले वरुण अथवा गदाधारी कुबेरको भी युद्धमें जीता जा सकता है; परन्तु इस महा युद्धमें क्रुद्ध भीष्मको पराजित नहीं किया जा सकता ॥ १६-१७ ॥

सोऽहमेवं गते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे ।
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य संयुगे ॥ १८ ॥

हे कृष्ण ! इससे मैं अपनी बुद्धिकी निर्बलताके कारण युद्धमें भीष्मके निमित्त शोकरूपी समुद्रमें डूब रहा हूं ॥ १८ ॥

वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो मे तत्र वै गतम् ।
न युद्धं रोचये कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा ॥ १९ ॥

हे दुर्धर्ष कृष्ण ! इससे अब मैं वनको जाऊंगा, वनवास करना ही मेरे निमित्त कल्याणकारी है । अब मेरी युद्ध करनेके निमित्त इच्छा नहीं होती है, भीष्म सदा ही हम लोगोंको पीडित करते हुए हमारी सेनाका वध करते हैं ॥ १९ ॥

यथा प्रज्वलितं वह्निं पतंगः समभिद्रवन् ।
एकतो मृत्युमभ्येति तथाहं भीष्ममीयिवान् ॥ २० ॥

जैसे पतङ्ग जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके केवल अपने शरीरहीका नाश कर देता है, वैसे ही मैंने भी भीष्म पितामहको युद्धमें पाया है ॥ २० ॥

क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः ॥ २१ ॥

हे यदुकुल भूषण ! मैं राज्य प्राप्तिके निमित्त पराक्रमके कार्यमें प्रवृत्त होकर अपना नाश कर रहा हूं, मेरे शूरवीर बलवान् भ्राता भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित हो रहे हैं ॥ २१ ॥

मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्यात्प्रभ्रंशनं गताः ।
परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन ॥ २२ ॥

वे सब भ्रातृस्नेहके वशमें होकर मेरेही निमित्त राज्यसे भ्रष्ट होकर वनवासी हुए थे । हे मधुसूदन ! द्रौपदी मेरे ही कारण इतना क्लेश पा रही है ॥ २२ ॥

जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ।
जीवितस्याद्य शेषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥ २३ ॥

इससे मैं जीवनको ही श्रेष्ठ समझता हूं; और आज जीवन भी दुर्लभ हो रहा है । अब इस बाकी जीवनकी अवस्थामें कल्याणके लिये धर्माचरण करूंगा ॥ २३ ॥

यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव ।
स्वधर्मस्याविरोधेन तदुदाहर केशव ॥ २४ ॥

हे माधव ! यदि मैं और मेरे भाई तुम्हारे अनुग्रहके पात्र होवें, तो तुम जिससे हम लोगोंके धर्ममें विरोध न होवे, ऐसा हित कर्म वर्णन करो; मैं उसका ही अनुष्ठान करूंगा ॥ २४ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद्बहुविस्तरम् ।
प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्णने इसी प्रकार राजा युधिष्ठिरके करुणा पूरित बहुतसे वचनोंको विस्तारपूर्वक सुनके उन्हें धीरज देकर यह वचन कहा ॥ २५ ॥

×

धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसंगर ।
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः ॥ २६ ॥

हे सत्य प्रतिज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! तुम कुछ भी शोक मत करो, तुम्हारे सब भाई पराक्रमसे युक्त, शत्रुओंका नाश करनेवाले और युद्धमें दुर्जय हैं ॥ २६ ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ ।
माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ ॥ २७ ॥

अर्जुन और भीमसेन वायु और अग्निके समान तेजस्वी हैं । माद्रीपुत्र नकुल सहदेव ऐसे पराक्रमी हैं, कि वे लोग प्रायः देवताओंके ऊपर भी प्रभुता कर सकते हैं ॥ २७ ॥

मां वा नियुङ्क्ष्व सौहार्दाद्योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव ।
त्वत्प्रयुक्तो ह्यहं राजन्किं न कुर्यां महाहवे ॥ २८ ॥

हे पाण्डुनन्दन ! राजन् ! मेरे साथ जो तुम्हारा सम्बन्ध वा सुहृदता है, उस ही निमित्त तुम मुझे नियुक्त करो, तो मैं अवश्य भीष्मके साथ युद्ध करूंगा । यदि तुम मुझको नियुक्त करोगे, तो तुम्हारे निमित्त मैं इस महायुद्धमें क्या नहीं कर सकता ? ॥ २८ ॥

हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फल्गुनः ॥ २९ ॥

यदि अर्जुन भीष्मके वध करनेकी इच्छा न करेंगे, तो मैं धृतराष्ट्र पुत्रोंके संमुख ही पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीष्मको युद्धमें आवाहन करके मार डालूंगा ॥ २९ ॥

यदि भीष्मे हते राजञ्जयं पश्यसि पाण्डव ।
हन्तास्म्येकरथेनाद्य कुरुवृद्धं पितामहम् ॥ ३० ॥

पाण्डुनन्दन ! आपको वीर भीष्मके मारे जानेपर ही तुम्हारी विजय दिखती है, तो मैं केवल एक रथसे ही आज कुरुकुल वृद्ध पितामह भीष्मको मार डालूंगा ॥ ३० ॥

पश्य मे विक्रमं राजन्महेन्द्रस्येव संयुगे ।
विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात् ॥ ३१ ॥

राजन् ! युद्धमें महेन्द्रके समान मेरा पराक्रम देखो । मैं महान् अस्त्र चलानेवाले भीष्मको रथसे पृथ्वीपर गिरा दूंगा ॥ ३१ ॥

यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः ।
मदर्था भवदर्था ये ये मदीयास्तवैव ते ॥ ३२ ॥

जो पुरुष पाण्डवोंका शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है इसमें संदेह नहीं है । जो तुम्हारे सुहृद् हैं वे मेरे भी हैं । जो मेरे मित्र है, वह तुम्हारे भी मित्र हैं ॥ ३२ ॥

तव भ्राता मम सखा संबन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य वै दद्यामर्जुनार्थे महीपते ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे भाई अर्जुनके साथ मेरा सम्बन्ध है; विशेष करके वह मेरे सखा और शिष्य हैं, मैं अर्जुनके निमित्त अपने शरीरसे मांस भी काटके दे सकता हूं ॥ ३३ ॥

एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत् ।
एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम् ।
स मां नियुङ्क्ष्व राजेन्द्र यावद्द्वीपो भवाम्यहम् ॥ ३४ ॥

पुरुषसिंह अर्जुन भी मेरे निमित्त अपने प्राणत्याग कर सकते हैं । तात ! हम दोनोंमें यह प्रतिज्ञा है, कि हम दोनों आपसमें एक दूसरेको संकटसे परित्राण करेंगे । हे राजन् ! इससे जिस प्रकारसे मैं द्वीप बन सकूंगा, तुम उस ही उपायसे मुझे युद्धमें नियुक्त करो ॥ ३४ ॥

प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः ।
घातयिष्यामि गाङ्गेयमित्युलूकस्य संनिधौ ॥ ३५ ॥

परन्तु युद्धके पहले विराट नगरमें सब राजाओंके बीच अर्जुनने यह प्रतिज्ञा की थी, कि " मैं गंगानंदन भीष्मका वध करूंगा " ॥ ३५ ॥

परिरक्ष्यं च मम तद्वचः पार्थस्य धीमतः ।
अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः ॥ ३६ ॥

बुद्धिमान् अर्जुनके इस वचनकी रक्षा करना मेरे लिये आवश्यक है, अर्जुनके प्रतिज्ञाको पूर्ण करना मेरा कर्तव्य ही है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥

अथ वा फल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे ।
निहनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम् ॥ ३७ ॥

अथवा अर्जुन ही युद्धमें शत्रुनगरीपर विजय प्राप्त करनेवाले भीष्मका वध करें, अर्जुनके लिये रणक्षेत्रमें यह भार कुछ कठिन नहीं है ॥ ३७ ॥

अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः ।
त्रिदशान्वा समुद्युक्तान्सहितान्दैत्यदानवैः ।
निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप ॥ ३८ ॥

क्योंकि कुन्तीपुत्र अर्जुन युद्धके निमित्त तैयार होनेपर दूसरे पुरुषोंसे न होने योग्य कर्मको भी कर सकते हैं । नराधिप ! अर्जुन युद्धमें दैत्य-दानवोंके सहित सम्पूर्ण देवताओंको भी नष्ट कर सकते हैं; तब जो भीष्मका युद्धमें वध करेंगे उसकी बात ही कौनसी है ? ॥ ३८ ॥

विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवितः ।
भीष्मः शांतनवो नूनं कर्तव्यं नावबुध्यते ॥ ३९ ॥

महा बलवान् शान्तनुपुत्र भीष्म जो तुम्हारा अनिष्ट करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं, इससे उलटी बुद्धिसे युक्त, पराक्रम हीन और अल्पजीवि हो गये हैं; इस ही निमित्त वह कर्तव्य कर्मको नहीं समझ सकते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
सर्वे ह्येते न पर्याप्तास्तव वेगनिवारणे ॥ ४० ॥

राजा युधिष्ठिर बोले– हे महाबाहो ! हे माधव ! तुम जो कुछ वचन कहते हो, वह सब ठीक ऐसाही है । ये सब तुम्हारा वेग धारण करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ४० ॥

नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेव यथेप्सितम् ।
यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान्नाथो महाबलः ॥ ४१ ॥

हे पुरुष व्याघ्र ! जब हमारे रक्षणकर्ता महाबलवान् तुम ही मेरी ओर हो, तब अभिलाषाके अनुसार सम्पूर्ण विषय ही मुझे सदा प्राप्त होवेंगे ॥ ४१ ॥

सेन्द्रानपि रणे देवाञ्जयेयं जयतां वर ।
त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महाहवे ॥ ४२ ॥

हे विजयदाता गोविन्द ! जब मैंने तुमको अपना सहाय पाया है, तब युद्धमें इन्द्रके सहित सब देवताओंको भी जीत सकता हूं; फिर इस महायुद्धमें भीष्म पर विजय पाना कौनसी बडी बात है ? ॥ ४२ ॥

न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वार्थगौरवात् ।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव ॥ ४३ ॥

परन्तु हे कृष्ण ! तुमने कहा था, कि " मैं युद्ध नहीं करूंगा " इससे अब मैं तुमको निज स्वार्थके निमित्त युद्धमें नियुक्त करके मिथ्याचरण करनेवाले नहीं बनाया चाहता हूं; इससे तुम युद्ध न करके यथा उचित हम लोगोंकी सहायता करो ॥ ४३ ॥

समयस्तु कृतः कश्चिद्भीष्मेण मम माधव ।
मन्त्रयिष्ये तवार्थाय न तु योत्स्ये कथंचन ।
दुर्योधनार्थे योत्स्यामि सत्यमेतादिति प्रभो ॥ ४४ ॥

माधव ! भीष्मने मेरे निकट युद्ध विषयक कार्यको एक प्रकारसे अङ्गीकार किया है, कि तुम्हारे हितके निमित्त मैं तुम्हें उत्तम मन्त्रणा प्रदान करूंगा; परन्तु तुम्हारी ओरसे किसी प्रकारसे भी युद्ध न करूंगा; युद्ध तो मैं केवल दुर्योधनके लिये ही करूंगा; प्रभो ! यह तुम मेरे वचनको सत्य जानो ॥ ४४ ॥

स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव ।
तस्माद्देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः ।
भवता सहिताः सर्वे पृच्छामो मधुसूदन ॥ ४५ ॥

माधव ! भीष्म मुझे राज्य और हितकर सलाह देंगे । हे मधुसूदन ! देवव्रत भीष्मके पास उन्हींसे उनके वधका उपाय पूछनेके लिये चलो, हम सब लोग फिर तुम्हारे साथ उनके समीप गमन करें ॥ ४५ ॥

तद्वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम् ।
रुचिते तव वार्ष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवम् ॥ ४६ ॥

हे सबके स्वामी वृष्णिनन्दन कृष्ण ! चलो, हम सब कोई मिलकर शीघ्र ही कुरुश्रेष्ठ भीष्म पितामहके निकट चलकर अपने विजयके निमित्त उनसे विचार करें ॥ ४६ ॥

स वक्ष्यति हितं वाक्यं तथ्यं चैव जनार्दन ।
यथा स वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्तास्मि संयुगे ॥ ४७ ॥

जनार्दन ! वह मेरे निमित्त हितकर और यथार्थ वचन कहेंगे; हे कृष्ण ! वह मुझसे जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही उपाय करूंगा ॥ ४७ ॥

स नो जयस्य दाता च मन्त्रस्य च धृतव्रतः ।
बालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम् ॥ ४८ ॥

हे कृष्ण ! जब हम लोग बालक अवस्थामें पितृहीन हुए थे, तब उन्होंने ही हमको लालन पालन करके बडा किया था । वह धृतव्रती पितामह अवश्य ही उत्तम युक्ति और सलाह देकर हम लोगोंके विजयके निमित्त उपाय बतावेंगे ॥ ४८ ॥

तं चेत्पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छासि माधव ।
पितुः पितरमिष्टं वै धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ४९ ॥

माधव ! जब पिताके भी पिता वृद्ध और प्यारे पितामहकी भी मैंने वध करनेकी इच्छा की, तब हम लोगोंकी क्षत्रियजीविकाको धिक्कार है ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच

ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम् ।
रोचते मे महाबाहो सततं तव भाषितम् ॥ ५० ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! अनन्तर वृष्णिनन्दन कृष्ण कुरुनन्दन युधिष्ठिरसे बोले– हे महाबाहो युधिष्ठिर ! तुमने जो वचन कहा, उसमें मेरी भी सदा सम्मति है ॥ ५० ॥

देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनापि निर्दहेत् ।
गम्यतां स वधोपायं प्रष्टुं सागरगासुतः ।
वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः ॥ ५१ ॥

गङ्गानन्दन पराक्रमी और देवव्रती भीष्म शत्रुओंको युद्धमें नेत्रसे देखकर ही भस्म कर सकते हैं; इससे उनके वधका उपाय पूंछनेके लिये तुम उनके समीप गमन करो। विशेषतः जब तुम उनसे पूछोगे, तो वह यथार्थ सत्य ही उत्तर देंगे ॥ ५१ ॥

ते वयं तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम् ।
प्रणम्य शिरसा चैनं मन्त्रं पृच्छाम माधव ।
स नो दास्यति यं मन्त्रं तेन योत्स्यामहे परान् ॥ ५२ ॥

इससे चलो हम लोग कुरुकुलके पितामहसे ही परामर्श करनेके निमित्त उनके निकट गमन करें; हम सब भी भीष्मके निकट चलकर नत मस्तक होकर प्रणाम करके उनसे हितकारक मन्त्रणा करेंगे; माधव ! वहांपर जानेसे वह हम लोगोंको जिस प्रकारसे सलाह देंगे, उसहीके अनुसार हमलोग शत्रुओंसे युद्ध करेंगे ॥ ५२ ॥

एवं संमन्त्र्य वै वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान् ।
विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति ॥ ५३ ॥

हे राजन् ! वीर पाण्डव और पराक्रमी कृष्णने ऐसा ही विचार करके, शस्त्र और कवचको उतारके, सबने मिलके भीष्मके शिविरमें जानेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ५३ ॥

प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रतिपेदिरे ।
पूजयन्तो महाराज पाण्डवा भरतर्षभ ।
प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमन्वयुः ॥ ५४ ॥

वहां पहुंचके शिविरमें प्रवेशकर शिर झुकाकर भीष्म पितामहको प्रणाम किया। हे महाराज भरतर्षभ ! पाण्डवलोगोंने कुरुश्रेष्ठ पितामह भीष्मको शिर झुकाकर प्रणाम करके, उनकी यथा उचित रीतिसे पूजा करते हुए उनके शरणागत हुए ॥ ५४ ॥

तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः ।
स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनंजय ।
स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ॥ ५५ ॥

उस समय कुरुकुल पितामह महाबाहु भीष्म उन सबका स्वागत प्रश्न पूछके फिर बोले— हे वृष्णिनंदन ! तुम्हारा स्वागत है। धनंजय ! तुम्हारा स्वागत है। धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन और नकुल सहदेव तुम सबका स्वागत है ॥ ५५ ॥

किं कार्यं वः करोम्यद्य युष्मत्प्रीतिविवर्धनम् ।
सर्वात्मना च कर्तास्मि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ५६ ॥

आज तुम लोगोंकी प्रीति बढानेके निमित्त कौनसा कार्य मुझको करना पडेगा, उसे तुम मुझसे कहो, यदि वह कार्य अत्यन्त कठिन भी होगा, तो भी मैं सब भांतिके प्रयत्न करके उसे पूर्ण करूंगा ॥ ५६ ॥

तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्तं पुनः पुनः ।
उवाच वाक्यं दीनात्मा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५७ ॥

जब गङ्गानन्दन भीष्मने बार बार प्रीतिपूर्वक ऐसा वचन कहा, तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर दुःखित चित्तसे यह वचन बोले, ॥ ५७ ॥

कथं जयेम धर्मज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ।
प्रजानां संक्षयो न स्यात्कथं तन्मे वदाभिभो ॥ ५८ ॥

कि हे धर्मके जाननेवाले पितामह ! मैं किस प्रकारसे युद्धमें विजय प्राप्त कर सकूंगा ? कैसे राज्य पाऊंगा ? और किस प्रकारसे प्रजाओंका नाश न होवेगा, तुम मुझसे यही सब उपाय वर्णन करो ॥ ५८ ॥

भवान्हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ।
भवन्तं समरे राजन्विषहेम कथं वयम् ॥ ५९ ॥

हे पितामह राजन् ! हमलोग युद्धमें तुम्हारे तेजको किसी प्रकार भी नहीं सह सकते हैं; इससे तुम स्वयं ही हमें अपने वधका उपाय वर्णन करो ॥ ५९ ॥

न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ।
मण्डलेनैव धनुषा सदा दृश्योऽसि संयुगे ॥ ६० ॥

हे कुरुकुल पितामह ! युद्धमें सदा ही मण्डलाकार धनुषके साथ ही आप दिखाई देते हैं, युद्धमें तनिक भी तुम्हारा कोई छिद्र नहीं देख पडता ॥ ६० ॥

नाददानं संदधानं विकर्षन्तं धनुर्न च ।
पश्यामस्त्वा महाबाहो रथे सूर्यमिव स्थितम् ॥ ६१ ॥

हे महाबाहो ! तुम सूर्यके समान रथपर स्थित होके किस समयमें बाण ग्रहण करते, साधते और धनुष पर रखके छोडते हो, वह हमलोग नहीं देख सकते ॥ ६१ ॥

नराश्वरथनागानां हन्तारं परवीरहन् ।
क इवोत्सहते हन्तुं त्वां पुमान्भरतर्षभ ॥ ६२ ॥

हे भरतर्षभ ! हे शत्रुओंके नाश करनेवाले ! तुम पैदल मनुष्य, अश्व, रथ और हाथियोंका वध करनेवाले हैं, कौन पुरुष तुम्हें मारनेका उत्साह कर सकता है ? ॥ ६२ ॥

वर्षता शरवर्षाणि महान्ति पुरुषोत्तम ।
क्षयं नीता हि पृतना भवता महती मम ॥ ६३ ॥

हे पुरुषोत्तम पितामह ! तुमने युद्धमें अपने बाणोंकी बहुत वर्षा करके अनेक पुरुषोंकी हत्या की है, हमारी महासेनाका तुमने बहुत ही क्षय किया है ॥ ६३ ॥

यथा युधि जयेयं त्वां यथा राज्यं भवेन्मम ।
भवेत्सैन्यस्य वा शान्तिस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६४ ॥

जो हो, इस समय किस प्रकारसे हमलोक युद्धमें तुम्हें जीत सकेंगे, जिस भांतिसे मुझे राज्य मिले और जैसे मेरी सेनाके पुरुषोंका कल्याण होवें; वही उपाय तुम मेरे निकट वर्णन करो ॥ ६४ ॥

ततोऽब्रवीच्छांतनवः पाण्डवान्पाण्डुपूर्वज ।
न कथंचन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे ।
युष्मासु दृश्यते वृद्धिः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ ६५ ॥

हे राजन् ! युधिष्ठिरकी बात सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्म उनसे बोले, हे धर्मके जाननेवाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! युद्धमें जब तक मैं जीवित हूं तब तक तुम्हारे विजयकी संभावना नहीं है; तुम्हारी समृद्धि होगी ऐसा दीखता है, तुमसे मैंने यह सत्य वचन कहा है ॥ ६५ ॥

निर्जिते मयि युद्धे तु ध्रुवं जेष्यथ कौरवान् ।
क्षिप्रं मयि प्रहरत यदीच्छथ रणे जयम् ।
अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम् ॥ ६६ ॥

युद्धमें मेरे पराजित होनेपर, तुमलोग शीघ्र ही कौरवोंको जीत सकोगे । इससे यदि तुमलोग युद्धमें अपने विजयकी इच्छा करते हो, तो शीघ्र मेरे ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करो । मैं तुम लोगोंको आज्ञा देता हूं, कि तुम सब कोई इच्छाके अनुसार मेरे ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करो ॥ ६६ ॥

एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ।
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम् ॥ ६७ ॥

मैं जो इस प्रकारसे तुम लोगोंसे विदित हुआ हूं; इसे मैं अपना सुकृत तथा पुण्य समझता हूं । मेरे मारे जानेहीसे सम्पूर्ण कुरुसेना तथा कौरवोंका बध होगा; इससे मैंने जो कुछ वचन कहा, तुम लोग वैसा ही उपाय करो ॥ ६७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ।
भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डपाणिमिवान्तकम् ॥ ६८ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले, पितामह ! युद्धमें तुम दण्डधारी यमराजके समान क्रोधमें भरे हुए दीख पडते हो; हम लोग तुम्हें कैसे पराजित कर सकेंगे, वह उपाय तुम मुझसे वर्णन करो ॥६८॥

शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा ।
न भवान्समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ६९ ॥

वज्रधारी इन्द्र, वरुण और यमको भी युद्धमें पराजित किया जा सकता है, परन्तु तुम्हें युद्धमें कोई पुरुष पराजित नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त इन्द्रके सहित सब देवता और दैत्य भी तुम्हें जीतनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ६९ ॥

भीष्म उवाच

सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।
नाहं शक्यो रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ७० ॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ।
न्यस्तशस्त्रं तु मां राजन्हन्युर्युधि महारथाः ॥ ७१ ॥

भीष्म बोले– हे महाबाहो ! पाण्डव ! तुम जो कहते हो, वह सब सत्य है। यदि मैं हाथमें शस्त्र लेकर और यत्नपूर्वक श्रेष्ठ धनुष ग्रहण करके युद्धमें स्थित होऊं, तो सब देवता और असुरोंके सहित इन्द्र भी मुझे रणक्षेत्रमें जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे। राजन् ! मेरे शस्त्ररहित होनेपर ये ही पुरुषसिंह युद्धमें मेरा वध कर सकते हैं ॥ ७०–७१ ॥

निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ।
द्रवमाणे च भीते च तवास्मीति च वादिनि ॥ ७२ ॥

शस्त्रत्यागी, शस्त्रोंसे घायल होके पृथ्वीपर गिरे हुए, कवचहीन, ध्वजारहित, भयभीत होकर भागते, 'मैं तुम्हारा हूं,' ऐसा कहके शरणमें आये हुए पुरुष, ॥ ७२ ॥

स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रके ।
अप्रसूते च दुष्प्रेक्ष्ये न युद्धं रोचते मम ॥ ७३ ॥

स्त्रीजाति, स्त्री नामधारी पुरुष, विकल हुए पुरुष, एक पुत्रके, सन्तानरहित और पापी पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करनेकी मेरी इच्छा नहीं होती ॥ ७३ ॥

इमं च शृणु मे पार्थ संकल्पं पूर्वचिन्तितम् ।
अमङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कथंचन ॥ ७४ ॥

हे राजन् ! मेरे पहिलेके किये हुए इन सङ्कल्पको सुनो, मैं किसीकी अमाङ्गलिक ध्वजा देखनेसे उसके सङ्ग युद्ध नहीं करूंगा ॥ ७४ ॥

य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ।
शिखण्डी समराकाङ्क्षी शूरश्च समितिंजयः ॥ ७५ ॥

द्रुपदराजका पुत्र, युद्धमें जीतनेवाला, शूरवीर, युद्धकी इच्छा करनेवाला, महारथी शिखण्डी जो तुम्हारी सेनामें स्थित है ॥ ७५ ॥

यथाभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात्पुंस्त्वमुपागतः ।
जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद्यथातथम् ॥ ७६ ॥

वह पहिले कन्या होकर जन्मा, पीछे पुरुष हो गया है, इस वृत्तान्तको तुम भी विस्तारपूर्वक जानते हो ॥ ७६ ॥

अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
मामेव विशिखैस्तूर्णमभिद्रवतु दंशितः ॥ ७७ ॥

शूरवीर अर्जुन रणक्षेत्रमें कवच धारण कर उसी शिखण्डीको आगे खडा करके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शीघ्रही मुझपर आक्रमण करें ॥ ७७ ॥

अमङ्गल्यध्वजे तस्मिन्स्त्रीपूर्वे च विशेषतः ।
न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुं कथंचन ॥ ७८ ॥

उस शिखण्डीके रथकी ध्वजा अमाङ्गलिक है, विशेष करके वह कन्या होके उत्पन्न हुआ था, इससे मैं शस्त्रधारी होकर भी किसी प्रकारसे भी उसके ऊपर प्रहार करनेकी अभिलाषा नहीं करता हूं ॥ ७८ ॥

तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनंजयः ।
शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ७९ ॥

हे भरतर्षभ ! इसी समय पाण्डुपुत्र अर्जुन उस शिखण्डीके पीछे खडे होकर चारों ओरसे शीघ्रताके सहित अपने बाणोंसे मेरे ऊपर प्रहार करें ॥ ७९ ॥

न तं पश्यामि लोकेषु यो मां हन्यात्समुद्यतम् ।
ऋते कृष्णान्महाभागात्पाण्डवाद्वा धनंजयात् ॥ ८० ॥

युद्धभूमिमें खडे होनेपर, महाभाग कृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनके अतिरिक्त ऐसा कोई भी पुरुष इस पृथ्वीपर नहीं दीख पडता, जो युद्धमें मेरा वध कर सके ! ॥ ८० ॥

एष तस्मात्पुरोधाय कंचिदन्यं ममाग्रतः ।
मां पातयतु बीभत्सुरेवं ते विजयो भवेत् ॥ ८१ ॥

इससे यह अर्जुन उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त किसी पुरुषको अथवा राजा द्रुपदके पुत्र शिखण्डीको मेरे सम्मुख खडा करके स्वयं शीघ्रताके सहित मेरा वध करे; ऐसा होनेहीसे निश्चय तुम्हारा विजय होगा ॥ ८१ ॥

एतत्कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं वचनं मम ।
ततो जेष्यसि संग्रामे धार्तराष्ट्रान्समागतान् ॥ ८२ ॥

हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! मैंने जैसे कहा है, तुम उसीके अनुसार सब कर्म करना, ऐसा करनेहीसे इन सब उपस्थित धार्तराष्ट्रोंको युद्धमें पराजित कर सकोगे ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच

तेऽनुज्ञातास्ततः पार्था जग्मुः स्वशिबिरं प्रति ।
अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ८३ ॥

सञ्जय बोले– इसके अनन्तर पाण्डव लोग महात्मा भीष्म कुरुकुल पितामहको प्रणाम करके, उनकी आज्ञा लेकर अपने अपने शिबिरोंमें गये ॥ ८३ ॥

तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते ।
अर्जुनो दुःखसंतप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ ८४ ॥

गङ्गापुत्र भीष्मके इस प्रकार परलोकके लिये उद्यत वचनोंको सुनकर, अर्जुन अत्यन्त दुःखित होकर लज्जापूर्वक कृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ ८४ ॥

गुरुणा कुलवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता ।
पितामहेन संग्रामे कथं योत्स्यामि माधव ॥ ८५ ॥

हे माधव ! कुरुकुलमें वृद्ध बुद्धिमान् गुरु भीष्म पितामहके साथ मैं रणभूमिमें कैसे युद्ध कर सकता हूं ? ॥ ८५ ॥

क्रीडता हि मया बाल्ये वासुदेव महात्मना ।
पांसुरूषितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः ॥ ८६ ॥

हे कृष्ण ! बालक अवस्थामें खेलते हुए मैंने सम्पूर्ण शरीरमें धूलि लपेटकर महा यशस्वी महात्मा भीष्म पितामहकी गोदमें चढके उनके सब वस्त्रों और शरीरको धूलिसे मलिन किया था ॥ ८६ ॥

यस्याहमधिरुह्याङ्कं बालः किल गदाग्रज ।
तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः ॥ ८७ ॥

वह मेरे पिता महात्मा पाण्डुके भी पिता हैं, परन्तु मैंने बालक अवस्थामें उनकी गोदमें बैठकर उन्हें 'पिता' कहके पुकारा था ॥ ८७ ॥

नाहं तातस्तव पितुस्तातोऽस्मि तव भारत ।
इति मामब्रवीद्बाल्ये यः स वध्यः कथं मया ॥ ८८ ॥

तब वह उस बाल्यावस्थामें ही मुझसे बोले थे, कि 'हे भरतकुलप्रदीप ! मैं तुम्हारा पिता नहीं हूं, तुम्हारे पिताका पिता हूं।' ऐसी अवस्थामें मैं किस प्रकारसे उनका वध करूंगा ? ॥ ८८ ॥

कामं वध्यतु मे सैन्यं नाहं योत्स्ये महात्मना ।
जयो वास्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे ॥ ८९ ॥

मेरी सेनाके सब पुरुषोंका वह इच्छापूर्वक संहार करे, परन्तु मैं महात्मा भीष्म पितामहके सङ्ग युद्ध न करूंगा; चाहे इससे मेरा विजय हो अथवा पराजय हो । हे कृष्ण ! इस विषयमें मेरा ऐसा ही विचार है, इसमें तुम्हारा क्या मत है ? ॥ ८९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे।
क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ॥ ९० ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले– हे अर्जुन ! तुमने क्षत्रिय धर्मको अवलम्बन करके पहिले यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं भीष्मको युद्धमें मारूंगा, इस समय उनको विना मारे तुम कैसे शान्त रह सकते हो ? ॥ ९० ॥

पातयैनं रथात्पार्थ वज्राहतमिव द्रुमम्।
नाहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति ॥ ९१ ॥

हे अर्जुन ! तुम युद्धदुर्मद गङ्गापुत्र भीष्मको शीघ्र ही रथसे वज्रहत वृक्षके समान पृथ्वीपर गिरा दो। भीष्मको विना मारे युद्धमें तुम्हारी जीत न हो सकेगी। ॥ ९१ ॥

दिष्टमेतत्पुरा देवैर्भविष्यत्यवशस्य ते।
हन्ता भीष्मस्य पूर्वेन्द्र इति तन्न तदन्यथा ॥ ९२ ॥

भीष्मकी मृत्यु इसी प्रकारसे होगी, इसका निश्चय देवताओंने पहिलेहीसे कर रक्खा है; पहिले समयमें जैसा भीष्मके मृत्युके विषयमें निश्चय हो चुका है, अवश्य ही सब कार्य उसी रीतिसे होगा, उसमें कुछ भी अन्यथा नहीं हो सकता ॥ ९२ ॥

न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवान्तकम्।
त्वदन्यः शक्नुयाद्धन्तुमपि वज्रधरः स्वयम् ॥ ९३ ॥

युद्धमें मुंह पसारे हुए यमराजके समान अत्यन्त पराक्रमी भीष्मको मारनेमें तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी समर्थ न होगा, वरन वज्रधारी इन्द्रभी उस महा बलवान् भीष्मको युद्धमें नहीं जीत सकेंगे ॥ ९३ ॥

जहि भीष्मं महाबाहो शृणु चेदं वचो मम।
यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः ॥ ९४ ॥

हे महाबाहो ! तुम भीष्मका वध करो इसमें कुछ भी अपने मनमें दुविधा मत उत्पन्न करो। यह मेरी बात सुनो ! इस विषयमें महाबुद्धिमान् बृहस्पतिने पहिले समयमें देवराज इन्द्रको जो कुछ कहा था, वह वचन तुम मुझसे सुनो ॥ ९४ ॥

ज्यायांसमपि चेच्छक्र गुणैरपि समन्वितम्।
आततायिनमामन्त्र्य हन्याद्घातकमागतम् ॥ ९५ ॥

इन्द्र ! अनेक उत्तम गुणोंसे भूषित श्रेष्ठ तथा वृद्ध पुरुष भी यदि आततायी होवे अथवा दूसरा भी कोई पुरुष यदि किसीके प्राणका नाश करनेके लिये आता हो, तो उसका वध करना उचित है ॥ ९५ ॥

शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय ।
योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चानसूयुभिः ॥ ९६ ॥

हे अर्जुन ! क्षत्रियोंका सदासे यही सनातन धर्म निश्चित हुआ है, कि पापरहित क्षत्रिय पुरुष शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करें, प्रजाकी रक्षा करें और यज्ञ करें ॥ ९६ ॥

अर्जुन उवाच

शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम् ।
दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्तते ॥ ९७ ॥

अर्जुन बोले– हे कृष्ण ! शिखण्डी निश्चय ही भीष्मके वधका कारण होगा, क्योंकि पाञ्चाल राजकुमार शिखण्डीको देखते ही भीष्म पितामह कभी उसके ऊपर अस्त्रोंको नहीं चलाते युद्धसे निवृत्त होते हैं ॥ ९७ ॥

ते वयं प्रमुखे तस्य स्थापयित्वा शिखण्डिनम् ।
गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥ ९८ ॥

इससे मैं यही विचार करता हूं, कि गंगानंदन भीष्मके सामने शिखण्डीको खडा करके उसके पीछेसे हम सब उनके ऊपर अपने शस्त्रोंका प्रहार करेंगे; इसी उपायसे उनका वध कर सकेंगे ॥ ९८ ॥

अहमन्यान्महेष्वासान्वारयिष्यामि सायकैः ।
शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठो भीष्ममेवाभियास्यतु ॥ ९९ ॥

मैं युद्धमें अन्य महाधनुर्धारी महारथी योद्धाओंको अपने अस्त्रोंसे निवारण करूंगा और योद्धाओंमें श्रेष्ठ शिखण्डी भीष्महीके ऊपर अपने शस्त्रोंको चलावेंगे ॥ ९९ ॥

श्रुतं ते कुरुमुख्यस्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
कन्या ह्येषा पुरा जाता पुरुषः समपद्यत ॥ १०० ॥

मैंने कुरुश्रेष्ठ भीष्मके निकट सुना है, कि उन्होंने कहा था; शिखण्डी पहिले कन्या होकर पीछे पुरुष हुआ है, इस प्रकारसे मैं शिखण्डीका वध नहीं करूंगा ॥ १०० ॥

सञ्जय उवाच

इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सहमाधवाः ।
शयनानि यथास्वानि भेजिरे पुरुषर्षभाः ॥ १०१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ४५८८ ॥

सञ्जय बोले– कृष्णके सहित पाण्डव लोग ऐसा निश्चय करके, अपने अपने शिविरोंमें गये और वे सब पुरुषश्रेष्ठ अपनी अपनी शय्याओं पर सो गये ॥ १०१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥ ४५८८ ॥

: १०४ :

धृतराष्ट्र उवाच

कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यवर्तत संयुगे ।
पाण्डवाश्च तथा भीष्मं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! युद्धमें शिखण्डी किस प्रकारसे गंगानंदन भीष्मके संमुख हुए और महात्मा भीष्म भी किस भांतिसे पाण्डवोंके संमुख होकर युद्धमें प्रवृत्त हुए; वह सब वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

ततः प्रभाते विमले सूर्यस्योदयनं प्रति ।
वाद्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! इसके अनन्तर सूर्योदयके विमल प्रभात समयपर भेरी, मृदङ्ग, ढोल और नगाडोंको बजवाके ॥ २ ॥

ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि ॥ ३ ॥

वैसे ही दहीके समान शुभ्र वर्णवाले शंख चारों ओर बजवाके, सब पाण्डवोंनें शिखण्डीको आगे करके युद्धके निमित्त यात्रा की ॥ ३ ॥

कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद्विशां पते ॥ ४ ॥

हे राजन् ! पृथ्वीपते ! शिखण्डी सर्वशत्रुनिवर्हण नामका व्यूह बनाकर उस सब सेनासे सजे हुए स्वयं व्यूहके आगे हुए ॥ ४ ॥

चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनञ्जयौ ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान् ॥ ५ ॥

उस समय भीमसेन और अर्जुन शिखण्डीके रथके चक्ररक्षक हुए; द्रौपदीके सब पांचों पुत्र और पराक्रमी सुभद्राकुमार अभिमन्यु उसके पृष्ठरक्षक नियत हुए ॥ ५ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः ।
धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात्पाञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ६ ॥

महारथी सात्यकि और चेकितान उन सबके रक्षक बनाये गये । पाञ्चाल योद्धाओंसे रक्षित होकर धृष्टद्युम्न उन सबके पीछे स्थित हुए ॥ ६ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
प्रययौ सिंहनादेन नादयन्भरतर्षभ ॥ ७ ॥

हे भारत ! इसके पीछे सम्पूर्ण सेनाके स्वामी राजा युधिष्ठिर सिंहनादसे सब दिशाओंको निनादित करते हुए नकुल–सहदेवके सहित गमन करने लगे; ॥ ७ ॥

विराटस्तु ततः पश्चात्स्वेन सैन्येन संवृतः ।
द्रुपदश्च महाराज ततः पश्चादुपाद्रवत् ॥ ८ ॥

उनके पीछे राजा विराट अपनी सेनाके सहित युद्धके निमित्त चलने लगे, महाराज ! तथा उनके पीछे राजा द्रुपद चले ॥ ८ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
जघनं पालयामास पाण्डुसैन्यस्य भारत ॥ ९ ॥

भारत ! केकयराज पांचों भाई और पराक्रमी धृष्टकेतु उस पाण्डव सेनाके व्यूहके जघनभागकी रक्षा करते हुए सबके पीछे चलने लगे ॥ ९ ॥

एवं व्यूह्य महात्सैन्यं पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १० ॥

पाण्डव लोग इसी प्रकारसे अपनी सेनाका महाव्यूह बनाकर, अपने प्राणोंकी आशा छोडकर, रणभूमिमें तुम्हारी सेनाकी ओर दौडे ॥ १० ॥

तथैव कुरवो राजन्भीष्मं कृत्वा महाबलम् ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां प्रययुः पाण्डवान्प्रति ॥ ११ ॥

हे प्रजानाथ ! कौरवोंने भी महाबलवान् भीष्मको सब सेनाके आगे करके पाण्डवोंके संमुख गमन किया ॥ ११ ॥

पुत्रैस्तव दुराधर्षै रक्षितः सुमहाबलैः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः ॥ १२ ॥

तुम्हारे महाबलवान् पराक्रमी पुत्र भीष्मकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए । उनके पीछे महाधनुर्धर द्रोणाचार्य और उनके पुत्र महारथी अश्वत्थामा चले ॥ १२ ॥

भगदत्तस्ततः पश्चाद्गजानीकेन संवृतः ।
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ ॥ १३ ॥

और उनके पीछे हाथियोंकी सेनासे युक्त होकर राजा भगदत्तने प्रस्थान किया । कृपाचार्य और कृतवर्मा राजा भगदत्तके अनुगामी हुए ॥ १३ ॥

काम्बोजराजो बलवांस्ततः पश्चात्सुदक्षिणः ।
मागधश्च जयत्सेनः सौबलश्च बृहद्बलः ॥ १४ ॥

उनके पीछे बलवान् काम्बोजराज सुदक्षिण, मगधदेशके राजा जयत्सेन और सुबलपुत्र बृहद्बलने युद्धके निमित्त यात्रा की । ॥ १४ ॥

तथेतरे महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः ।
जघनं पालयामासुस्तव सैन्यस्य भारत ॥ १५ ॥

भारत ! और सुशर्मा आदि दूसरे सब महाधनुर्द्धारी राजाओंने तुम्हारे सम्पूर्ण सेनाके जघन भागकी रक्षा करते हुए सबके पीछे गमन किया ॥ १५ ॥

दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शांतनवो युधि ।
आसुरानकरोद्व्यूहान्पैशाचानथ राक्षसान् ॥ १६ ॥

शान्तनु पुत्र भीष्म आसुर, पैशाच और राक्षस व्यूहोंके बीचसे नित्य ही प्रतिदिन एक नया व्यूह बनाया करते थे ॥ १६ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
अन्योन्यं निघ्नतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १७ ॥

हे भारत ! अनन्तर तुम्हारे और पाण्डवोंके ओरके योद्धाओंमें युद्ध आरंभ हुआ । राजन् ! दोनों ओरके योद्धालोग आपसमें एक दूसरेका वध करके यमपुरीकी वृद्धि करने लगे ॥ १७ ॥

अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधाञ्शरान् ॥ १८ ॥

अर्जुन आदि कुन्तीकुमार पाण्डव लोग शिखण्डीको आगे करके युद्धमें नाना प्रकारसे तीक्ष्ण बाणोंको चलाते हुए भीष्मके संमुख हुए ॥ १८ ॥

तत्र भारत भीमेन पीडितास्तावकाः शरैः ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः परलोकं ययुस्तदा ॥ १९ ॥

भारत ! भीमसेनने जब तुम्हारी सेनाको बाणोंसे पीडित करना आरंभ किया, तब वे सब योद्धा लोग रुधिरसे पूरित होकर परलोकमें गमन करने लगे ॥ १९ ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा ॥ २० ॥

नकुल, सहदेव और महारथ सात्यकि तुम्हारी सेनाके समीप जाकर बलपूर्वक उसे पीडित करने लगे ॥ २० ॥

ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ।
नाशक्नुवन्वारयितुं पाण्डवानां महद्बलम् ॥ २१ ॥

भरतर्षभ ! तुम्हारी सेनाके सब योद्धा पाण्डवोंकी ओरके शूरवीर योद्धाओंके अस्त्रोंसे विकल होकर, उनकी महासेनाको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ २१ ॥

ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः ।
संप्राद्रवद्दिशो राजन्काल्यमानं महारथैः ॥ २२ ॥

राजन् ! तुम्हारी सेना महारथी वीरोंके अस्त्रोंसे चारों ओरसे मारी और खदेडी जाती हुई इधर उधर भागने लगी ॥ २२ ॥

त्रातारं नाध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ ।
वध्यमानाः शितैर्बाणैः पाण्डवैः सहसृञ्जयैः ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारी सेनाके सब योद्धाओंने पाण्डवों और सृञ्जयोंके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर किसीको भी अपना बचानेवाला नहीं पाया ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

पीड्यमानं बलं पार्थैर्दृष्ट्वा भीष्मः पराक्रमी ।
यदकार्षीद्रणे क्रुद्धस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २४ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! महापराक्रमी भीष्मने मेरी सेनाको कुन्तीकुमार पाण्डवोंके अस्त्रोंसे पीडित देखकर युद्धमें क्रोधित होकर जो कुछ कर्म किया था, वह तुम मेरे समीपमें वर्णन करो ॥ २४ ॥

कथं वा पाण्डवान्युद्धे प्रत्युद्यातः परंतपः ।
विनिघ्नन्सोमकान्वीरांस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २५ ॥

हे सञ्जय ! शत्रुओंको दुःख देनेवाले बलवान् भीष्मने पाण्डवोंके संमुख होकर किस प्रकारसे युद्धमें सोमकोंका वध किया था ? वह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक तुम मुझसे कहो ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच

आचक्षे ते महाराज यदकार्षीत्पितामहः ।
पीडिते तव पुत्रस्य सैन्ये पाण्डवसृञ्जयैः ॥ २६ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! जब तुम्हारे पुत्रकी सेना पाण्डव और सृञ्जयोंसे पीडित हुई, तब उस समयमें पितामह भीष्मने जो कुछ किया था, वह मैं तुमसे कहता हूं ॥ २६ ॥

प्रहृष्टमनसः शूराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अभ्यवर्तन्त निघ्नन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २७ ॥

हे पाण्डुके बडे भाई ! पराक्रमी पाण्डव लोग हर्षपूर्वक तुम्हारे पुत्रकी सेनाका वध करते हुए आगे बढे ॥ २७ ॥

तं विनाशं मनुष्येन्द्र नरवारणवाजिनाम् ।
नामृष्यत तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः ॥ २८ ॥

हे राजन् ! भीष्म मनुष्य, हाथी और घोडोंसे युक्त अपनी सेनाको रणक्षेत्रमें शत्रुओंके अस्त्रोंसे नष्ट होती देखकर, उसे न सह सके ॥ २८ ॥

स पाण्डवान्महेष्वासः पाञ्चालांश्च स सृञ्जयान् ।
अभ्यद्रवत दुर्धर्षस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २९ ॥

महाधनुर्द्धारी दुर्धर्ष पराक्रमी भीष्म अपने प्राणको त्यागनेके वास्ते तैयार होकर पाण्डव, पाञ्चाल और सञ्जयोंके ऊपर आक्रमण करने लगे ॥ २९ ॥

स पाण्डवानां प्रवरान्पञ्च राजन्महारथान् ।
आत्तशस्त्रान्रणे यत्तान्वारयामास सायकैः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च शितैरञ्जलिकैस्तथा ॥ ३० ॥

राजन् ! वे रणभूमिमें क्रुद्ध होकर पाण्डवोंके पांच श्रेष्ठ शस्त्रधारी प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले महारथियोंको पराक्रमके सहित अपने नाना भांतिके तीक्ष्ण नाराच, वत्सदन्त और अञ्जलिक आदि बाणोंसे निवारण करने लगे ॥ ३० ॥

निजघ्ने समरे क्रुद्धो हस्त्यश्वममितं बहु ।
रथिनोऽपातयद्राजन्रथेभ्यः पुरुषर्षभः ॥ ३१ ॥

अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करके क्रोधपूर्वक उनकी सेनाके अनेक मनुष्य, हाथी और घोडोंका समरमें वध किया; राजन् ! पुरुषश्रेष्ठ भीष्मने जीतनेकी अभिलाषा करनेवाले पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंमेंसे रथियोंको रथ परसे मार गिराया ॥ ३१ ॥

सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यः पदातींश्च समागतान् ।
गजारोहान्गजेभ्यश्च परेषां विदधद्भयम् ॥ ३२ ॥

हाथीसवारोंको हाथी परसे, घुडसवारोंको घोडोंकी पीठसे और सामने आये हुए पैदल सैनिकोंको अपने अस्त्रोंके प्रभावसे मारके पृथ्वीपर गिरा दिया; ॥ ३२ ॥

तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम् ।
पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रपाणिमिवासुराः ॥ ३३ ॥

जिस प्रकारसे असुर लोग वज्रधारी इन्द्र पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकारसे पाण्डव लोग शीघ्रताके सहित युद्धमें फुर्ती दिखानेवाले अकेलेही महारथी भीष्मके संमुख उपस्थित हुए ॥ ३३ ॥

शक्राशनिसमस्पर्शान्विमुञ्चन्निशिताञ्शरान् ।
दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं संधारयन्वपुः । ॥ ३४ ॥

इन्द्रके वज्रके समान दुःसह स्पर्श करनेवाले तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा भीष्म करते थे, उस समय वे घोर मूर्त्ति धारण किये हुए सब दिशाओंमें दिखाई देते थे ॥ ३४ ॥

मण्डलीकृतमेवास्य नित्यं धनुरदृश्यत
संग्रामे युध्यमानस्य शक्रचापनिभं महत् ॥ ३५ ॥

युद्धके समय इन्द्रधनुषके समान महात्मा भीष्मका बडा धनुष सदा ही मण्डलाकार दीख पडता था ॥ ३५ ॥

तदृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रा तव विशां पते।
विस्मयं परमं प्राप्ताः पितामहमपूजयन् । ॥ ३६ ॥
हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रलोग युद्धमें उनके ऐसे पराक्रम तथा कठिन कर्मको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और पितामहकी अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगे ॥ ३६ ॥

पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव ।
युध्यमानं रणे शूरं विप्रचित्तिमिवामराः ।
न चैनं वारयामासुर्व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ३७ ॥
जैसे देवताओंने विप्रचित्ति नामक असुरको रणभूमिमें अवलोकन किया था, वैसे ही पाण्डव लोग खिन्नचित्त होकर महापराक्रमी युद्ध कार्यके जाननेवाले भीष्म पितामहको देखने लगे; उनको मुख पसारे हुए कालके समान रणभूमिमें खडा देखकर कोई भी उन्हें निवारण न कर सका ॥ ३७ ॥

दशमेऽहनि संप्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः ।
अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ ३८ ॥
जैसे प्रचण्ड अग्नि जङ्गलोंको भस्म कर देती है, वैसे ही भीष्म पितामह दसवें दिन अपने तीक्ष्ण तथा चोखे बाणोंसे शिखण्डीकी रथ सेनाको जलाने लगे ॥ ३८ ॥

तं शिखण्डी त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवान्तकम् ॥ ३९ ॥
तब शिखण्डीने, क्रोधी विषधर सर्प तथा काल प्रेरित यमराजके समान, महाबली भीष्मके दोनों स्तनोंके बीचमें तीन बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३९ ॥

स तेनातिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखण्डिनम् ।
अनिच्छन्नपि संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४० ॥
भीष्म शिखण्डीके उन बाणोंसे अत्यन्त विद्ध हो, उसकी ओर देखकर क्रुद्ध हुए और विना इच्छाके हंसके, अपना अभिप्राय प्रकाशित करते हुए शिखण्डीसे बोले, ॥ ४० ॥

काममभ्यस वा मा वा न त्वां योत्स्ये कथंचन ।
यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव हि त्वं शिखण्डिनी ॥ ४१ ॥
तुम इच्छाके अनुसार अपने बाणोंको मेरे ऊपर चलाओ, चाहे न चलाओ; परन्तु मैं किसी प्रकारसे भी तुम्हारे सङ्ग युद्ध न करूंगा; क्योंकि विधाताने जो तुमको पहिले स्त्रीरूपसे उत्पन्न किया था, तुम वही शिखण्डिनी हो ॥ ४१ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिखण्डी क्रोधमूर्छितः ।
उवाच भीष्मं समरे सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ४२ ॥

शिखण्डी उस समय भीष्मकी यह बात सुनकर क्रोधसे मूर्च्छित होकर, होठोंको चबाते हुए उनसे यह वचन बोले ॥ ४२ ॥

जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयङ्करम् ।
मया श्रुतं च ते युद्धं जामदग्न्येन वै सह ॥ ४३ ॥

हे महाबाहो ! तुम जो क्षत्रियोंका नाश करनेवाले हो, यह मैं जानता हूं । जमदग्निपुत्र परशुरामजीके साथमें तुम्हारा जो संग्राम हुआ था, वह भी मैंने सुना है ॥ ४३ ॥

दिव्यश्च ते प्रभावोऽयं स मया बहुशः श्रुतः ।
जानन्नपि प्रभावं ते योत्स्येऽद्याहं त्वया सह ॥ ४४ ॥

और तुम्हारे अलौकिक प्रभाव और कीर्तिको भी मैंने बहुत प्रकारसे सुना है; तुम्हारे ऐसे प्रभाव और पराक्रमको जानकर भी आज मैं तुम्हारे सङ्गमें युद्ध करूंगा ॥ ४४ ॥

पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम ।
अद्य त्वा योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम ॥ ४५ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! पुरुषोत्तम ! मैं अपने और पाण्डवोंके प्रिय कार्य करनेके निमित्त युद्धभूमिमें आज तुमसे युद्ध करूंगा ॥ ४५ ॥

ध्रुवं च त्वा हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः ।
एतच्छ्रुत्वा वचो मह्यं यत्क्षमं तत्समाचर ॥ ४६ ॥

मैं तुम्हारे सामनेही सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि आज निश्चयही तुम्हारा वध करूंगा; मेरे इस वचनको सुनकर तुम पराक्रमके अनुसार योग्य कार्य करो ॥ ४६ ॥

काममभ्यस वा मा वा न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।
सुदृष्टः क्रियतां भीष्म लोकोऽयं समितिंजय ॥ ४७ ॥

हे युद्ध जीतनेवाले भीष्म ! तुम इच्छापूर्वक मेरे ऊपर बाण चलाओ, चाहे न चलाओ, परन्तु मेरे संमुखसे आज तुम जीवित न बच सकोगे। इससे अब तुम लोकको अच्छी भांतिसे देख लो क्योंकि फिर न देखने पाओगे ॥ ४७ ॥

एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
अविध्यत रणे राजन्प्रणुन्नं वाक्यसायकैः ॥ ४८ ॥

हे राजन् ! शिखण्डीने भीष्मको इसी प्रकारसे वचनरूपी बाणोंसे विद्ध करके, स्वर्ण दण्डयुक्त तीक्ष्ण पांच बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ४८ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची परंतपः ।
कालोऽयमिति संचिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत् ॥ ४९ ॥

शत्रुतापन अर्जुनने शिखण्डीकी उस बातको सुनकर समझा कि " यही भीष्मके वधका समय है " ऐसा जानकर शिखण्डीसे प्रेरणा देनेके लिये बोले ॥ ४९ ॥

अहं त्वामनुयास्यामि परान्विद्रावयञ्शरैः ।
अभिद्रव सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ ५० ॥

हे महाबाहो ! मैं बाणोंसे शत्रुओंकी सब सेनाको तितर बितर करता हुआ तुम्हारा अनुगामी बनूंगा; तुम सावधान होकर महापराक्रमी भीष्मपर आक्रमण करो ॥ ५० ॥

न हि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्तुं महाबलः ।
तस्मादद्य महाबाहो वीर भीष्ममभिद्रव ॥ ५१ ॥

हे महाबाहो वीर ! महाबली भीष्म युद्धमें आज तुमको पीडित न कर सकेंगे, इससे यत्नपूर्वक शीघ्र ही तुम भीष्मकी ओर बढो ॥ ५१ ॥

अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष ।
अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह ॥ ५२ ॥

मारिष ! यदि आज तुम भीष्मको विना वध किये ही रणभूमिसे लौट चलोगे, तो सब लोग तुम्हारी और मेरी हंसी करेंगे ॥ ५२ ॥

नावहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे ।
तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम् ॥ ५३ ॥

हे वीर ! जिससे इस महायुद्धमें हम दोनोंकी सब लोगोंके बीच हंसी न होवे, तुम वैसा ही यत्न करो— भीष्म पितामहका शीघ्र ही इस रणभूमिमें वध करो ॥ ५३ ॥

अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि परंतप ।
वारयन्रथिनः सर्वान्साधयस्व पितामहम् ॥ ५४ ॥

उनको रथसे पृथ्वीपर गिरा दो । हे शत्रुतापन शिखण्डी ! मैं इस युद्धमें सम्पूर्ण रथियोंको निवारण करके तुम्हारी रक्षा करूंगा; तुम भीष्मका वध करनेके निमित्त यत्न करो ॥ ५४ ॥

द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाथ सुयोधनम् ।
चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ ५५ ॥

द्रोणाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुर्योधन, चित्रसेन, विकर्ण, सिन्धुराज जयद्रथ ॥ ५५ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
भगदत्तं यथा शूरं मागधं च महारथम् ॥ ५६ ॥

अवन्तिनगरीके राजा विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, पराक्रमसे युक्त राजा भगदत्त, महारथी पराक्रमी मगधराज ॥ ५६ ॥

सौमदत्तिं रणे शूरमार्ष्यशृङ्गिं च राक्षसम् ।
त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ५७ ॥

सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा, शूर अलम्बुस राक्षस, त्रिगर्तराज सुशर्मा और शूरवीर महारथियोंको युद्धभूमिमें मैं इस प्रकारसे निवारण करूंगा, जैसे समुद्रके वेगको तट रोकता है ॥ ५७ ॥

कुरूंश्च सहितान्सर्वान्ये चैषां सैनिकाः स्थिताः ।
निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहम् ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ॥ ४६४६ ॥

इसके अतिरिक्त महा बलवान् युद्ध करनेवाले सम्पूर्ण कौरवोंके सैनिकोंको भी एक ही समयमें युद्धमें निवारण करूंगा; इससे तुम शीघ्र ही भीष्म पितामहका वध करो ॥ ५८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एक सौ चारवां अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥ ४६४६ ॥

: १०५ :

धृतराष्ट्र उवाच

कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यधावत्पितामहम् ।
पाञ्चाल्यः समरे क्रुद्धो धर्मात्मानं यतव्रतम् ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! पाञ्चालराजके पुत्र शिखण्डीने युद्धमें क्रुद्ध होकर ब्रह्मचर्य व्रत करनेवाले, धर्मात्मा गङ्गानन्दन भीष्म पितामह पर किस प्रकारसे आक्रमण किया था ? ॥१॥

केऽरक्षन्पाण्डवानीके शिखण्डिनमुदायुधम् ।
त्वरमाणास्त्वराकाले जिगीषन्तो महरथाः ॥ २ ॥

पाण्डवोंकी ओरके कौन कौनसे योद्धालोग विजयकी अभिलाषासे शीघ्रताके सहित क्रुद्ध होकर शस्त्रधारी शिखण्डीकी रक्षा करनेमें उस शीघ्रताके समय प्रवृत्त हुए थे ॥ २ ॥

कथं शांतनवो भीष्मः स तस्मिन्दशमेऽहनि ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सहसृञ्जयैः ॥ ३ ॥

महाबलवान् शान्तनु-पुत्र भीष्मने उस दसवें दिन किस भांतिसे पाण्डव और सृञ्जयोंके सङ्ग युद्ध किया था ॥ ३ ॥

न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखण्डिनम् ।
कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः ॥ ४ ॥

शिखण्डीने जो रणभूमिमें भीष्मके सम्मुख होकर उनपर आक्रमण किया, वह मुझसे नहीं सहा जाता है । शिखण्डीने जब भीष्मके ऊपर अपने बाणोंको चलाया उस समयमें भीष्मका रथ तो नहीं टूट गया था ? अथवा उनका धनुष तो नहीं कट गया था ? ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच

नाशीर्यत धनुस्तस्य रथभङ्गो न चाप्यभूत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ।
निघ्नतः समरे शत्रूञ्शरैः संनतपर्वभिः ॥ ५ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! संग्राममें युद्ध करते हुए भीष्मका न रथ ही टूटा और धनुषही कटा था, वह अपने तीक्ष्ण बाणोंसे रणक्षेत्रमें शत्रुओंका नाश कर रहे थे, ॥ ५ ॥

अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ।
रथदन्तिगणा राजन्हयाश्चैव सुसज्जिताः ।
अभ्यवर्तन्त युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ॥ ६ ॥

राजन् ! तुम्हारी ओरके कई सौ और कई हजार महारथी, रथ, गजपति और घुडसवार योद्धा सज्जित होके, भीष्म पितामहको आगे करके युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे ॥ ६ ॥

यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चापि समितिंजयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ७ ॥

हे कुरुनन्दन राजन् ! युद्ध जीतनेवाले भीष्मने प्रतिदिन अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार रणभूमिमें कुन्तीकुमार पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका नाश किया था ॥ ७ ॥

युध्यमानं महेष्वासं विनिघ्नन्तं पराञ्शरैः ।
पाञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं सर्वे एवाभ्यवारयन् ॥ ८ ॥

वह महाधनुर्द्धारी भीष्म युद्धभूमिमें जब शत्रु सेनाका अपने बाणोंसे नाश कर रहे थे, उस समय पाण्डवों सहित सब पाञ्चाल योद्धा लोग उनका पराक्रम देखकर भी उन्हें निवारण करने लगे ॥ ८ ॥

दशमेऽहनि संप्राप्ते ततापं रिपुवाहिनीम् ।
कीर्यमाणां शितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥

दसवें दिन शत्रुकी सेनाको भीष्मने सैंकडो तथा सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके पीडित किया ॥ ९ ॥

न हि भीष्मं महेष्वासं पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अशक्नुवन्रणे जेतुं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ १० ॥

पाण्डुके ज्येष्ठ भाई ! पाश दण्डधारी यमराजके समान महाधनुर्धर सेनापति भीष्मको रण-भूमिमें जीतनेके लिये पाण्डवोंका सामर्थ्य न हुआ ॥ १० ॥

अथोपायान्महाराज सव्यसाची परंतपः ।
त्रासयन्रथिनः सर्वान्बीभत्सुरपराजितः ॥ ११ ॥

महाराज ! इसके अनन्तर अपराजित, सव्यसाची शत्रुतापन अर्जुनने सम्पूर्ण रथियोंको भयभीत करके भीष्मके समीपमें गमन किया ॥ ११ ॥

सिंहवद्विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन्मुहुः ।
शरौघान्विसृजन्पार्थो व्यचरत्कालवद्रणे ॥ १२ ॥

वह कुन्तीकुमार अर्जुन बलपूर्वक सिंहके समान गर्जना करते और बार बार धनुष टङ्कार करके, अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाते हुए रणभूमिमें कालके समान घूमने लगे ॥ १२ ॥

तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
सिंहस्येव मृगा राजन्व्यद्रवन्त महाभयात् ॥ १३ ॥

हे राजन् ! भारत ! अर्जुनके सिंहनाद और गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर तुम्हारी सम्पूर्ण सेना भयभीत होकर इस भांति भागने लगी, जैसे सिंहका शब्द सुनकर हरिणोंका समूह शीघ्रतासे भाग जाता है ॥ १३ ॥

जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा त्वत्सैन्यं चाभिपीडितम् ।
दुर्योधनस्ततो भीष्ममब्रवीद्भृशपीडितः ॥ १४ ॥

राजा दुर्योधन पाण्डुपुत्र अर्जुनको युद्धमें जययुक्त और अपनी सेनाको अत्यन्त पीडित और भागती हुई देखकर, दुःखित होके भीष्म पितामहसे बोले ॥ १४ ॥

एष पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दहते मामकान्सर्वान्कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ १५ ॥

हे पितामह ! यह देखो, कृष्ण सारथीके सहित श्वेतअश्ववाहन पाण्डुपुत्र मेरी सेनाका इस प्रकारसे नाश कर रहा है; जैसे अग्नि वनको भस्म कर देती है ॥ १५ ॥

पश्य सैन्यानि गाङ्गेय द्रवमाणानि सर्वशः ।
पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे ॥ १६ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ गंगानंदन ! देखिये मेरी सम्पूर्ण सेना युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके चारों ओर भाग रही है ॥ १६ ॥

यथा पशुगणान्पालः संकालयति कानने ।
तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥ १७ ॥

हे शत्रुनाशन ! जैसे गोपाल वनमें गौवोंको मार पीटके अपने वशमें कर लेता है, वैसे ही अर्जुन भी मेरी सेनाको अपने अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित करके युद्धभूमिसे भगा रहा है ॥ १७ ॥

धनंजयशरैर्भग्नं द्रवमाणमितस्ततः ।
भीमो ह्येष दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम् ॥ १८ ॥

मेरी सेना जगह जगह अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर इधर उधर भाग रही है और दुर्धर्षवीर भीम भी उस मेरी सेनाको तितर बितर कर रहा है ॥ १८ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
अभिमन्युश्च विक्रान्तो वाहिनीं दहते मम ॥ १९ ॥

इसके अतिरिक्त सात्यकी, चेकितान, माद्रीपुत्र नकुल सहदेव और पराक्रमी अभिमन्यु आदि रथी योद्धा भी हमारी सेनाको छिन्न-भिन्न कर रहे हैं ॥ १९ ॥

धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महाबलौ ॥ २० ॥

शूरता और वीरतासे युक्त धृष्टद्युम्न और राक्षस घटोत्कच भी शीघ्रताके सहित मेरी सेनाको रणभूमिमें भगा रहे हैं ॥ २० ॥

वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महाबलैः ।
नान्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत ॥ २१ ॥

हे भारत ! तुम्हारे अतिरिक्त इन सब महाबलवानोंसे पीडित हुई मेरी सेनाकी रक्षा करके इन सबको युद्धमें ठहरानेके लिए, और इन सबके सङ्ग युद्ध करनेका उपाय मैं दूसरा कुछभी नही देख सकता हूं; ॥ २१ ॥

ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम ।
पर्याप्तश्च भवान्क्षिप्रं पीडितानां गतिर्भव ॥ २२ ॥

देवताओंके समान पराक्रमी पुरुष व्याघ्र ! इससे तुम शीघ्रताके सहित इन सब महारथियोंका युद्धमें निवारण करो; केवल तुमही मेरी सेनाकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं । मेरी सेनाका अर्जुन आदि महारथियोंके बाणोंसे नाश होनेसे बचाओ और हमारे आश्रयदाता होईये ॥ २२ ॥

एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मनः ।
तव संधारयन्पुत्रमब्रवीच्छंतनोः सुतः ॥ २३ ॥

हे महाराज ! शान्तनुपुत्र देवव्रत भीष्म दुर्योधनका यह वचन सुनकर, क्षणभर सोच विचार अपना कर्त्तव्यकर्म निश्चय करके तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको धीरज देते हुए यह वचन बोले ॥ २३ ॥

दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भव विशां पते ।
पूर्वकालं तव मया प्रतिज्ञातं महाबल ॥ २४ ॥

हे प्रजानाथ, महाबलवान् राजा दुर्योधन ! स्थिर चित्त होकर यह जान लो । मैंने तुम्हारे समीप पहिले यह प्रतिज्ञा की थी, कि ॥ २४ ॥

हत्वा दश सहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।
संग्रामाद्व्यपयातव्यमेतत्कर्म ममाह्निकम् ।
इति तत्कृतवांश्चाहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥ २५ ॥

संग्राममें दस हजार महात्मा क्षत्रिय योद्धाओंको मारकर ही युद्धसे निवृत्त होऊंगा; और यह मेरा दैनिक कार्य होगा । भरतश्रेष्ठ ! जो कुछ मैंने प्रतिज्ञा की थी, उसे अबतक पूर्ण भी किया है; ॥ २५ ॥

अद्य चापि महत्कर्म प्रकरिष्ये महाहवे ।
अहं वा निहतः शेष्ये हनिष्ये वाद्य पाण्डवान् ॥ २६ ॥

परन्तु आज भी मैं महासंग्राममें बडा कर्म करूंगा । तो आज मैं पाण्डवोंको मारूंगा, अथवा उन लोगोंके अस्त्रोंसे मरकर रणभूमिमें शयन करूंगा ॥ २६ ॥

अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं महत् ।
भर्तृपिण्डकृतं राजन्निहतः पृतनामुखे ॥ २७ ॥

पुरुषसिंह ! राजन् ! आज मैं तुम्हारे संमुख ही स्वामीके दिये हुए अन्न आदि महान् ऋणोंसे स्वयं मारा जाकर मुक्त होऊंगा ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठः क्षत्रियान्प्रतपञ्शरैः ।
आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! महा पराक्रमी दुर्धर्ष महात्मा भीष्मने ऐसा कहकर क्षत्रियोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए, पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण किया ॥ २८ ॥

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ ।
आशीविषमिव क्रुद्धं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥ २९ ॥

हे भारत ! पाण्डव लोग रणभूमिमें सेनाके मध्यभागमें स्थित क्रोधी विषधर सर्पके समान गङ्गानन्दन भीष्मको युद्धसे निवारण करने लगे ॥ २९

दशमेऽहनि तस्मिंस्तु दर्शयञ्शक्तिमात्मनः ।
राजञ्शतसहस्राणि सोऽवधीत्कुरुनन्दन ॥ ३० ॥

हे राजन्! कुरुनन्दन! भीष्मने अपनी शक्तिका परिचय देते हुए, दसवें दिन सौ हजार योद्धाओंका वध किया ॥ ३० ॥

पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महाबलाः ।
तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य इवांशुभिः ॥ ३१ ॥

जैसे सूर्य अपने किरणोंसे जल आकर्षण करता है, वैसे ही महात्मा भीष्मने भी पाञ्चाल देशीय श्रेष्ठ महाबलवान् राजपुत्र योद्धाओंके तेजका आकर्षण कर लिया ॥ ३१ ॥

हत्वा दश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
सारोहाणां महाराज हयानां चायुतं पुनः ॥ ३२ ॥

हे राजन्! सवारोंके सहित दस हजार वेगशाली हाथी, दस हजार घोडे और घुडसवार ॥ ३२ ॥

पूर्णे शतसहस्रे द्वे पदातीनां नरोत्तमः ।
प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ३३ ॥

और पूरे दो लाख पैदल चलनेवाले योद्धाओंका नरश्रेष्ठ भीष्म वध करके रणभूमिमें धूएंसे रहित अग्निके समान विराजमान हुए ॥ ३३ ॥

न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम् ।
उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३४ ॥

पाण्डवोंकी सेनामें कोई भी पुरुष ऐसा न था, जो उत्तरायणकालके तपते हुए सूर्यके समान महात्मा भीष्मकी ओर देख सकता ॥ ३४ ॥

ते पाण्डवेयाः संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः ।
वधायाभ्यद्रवन्भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥ ३५ ॥

अनन्तर पाण्डव और सृञ्जय प्रभृति महारथी योद्धा महाधनुर्धर भीष्मके बाणोंसे पीडित हो अत्यन्त क्रोधित होकर उनके वधके निमित्त शीघ्रतासे आगे बढे ॥ ३५ ॥

स युध्यमानो बहुभिर्भीष्मः शांतनवस्तदा ।
अवकीर्णो महाबाहुः शैलो मेघैरिवासितैः ॥ ३६ ॥

अकेले बहुतसे योद्धाओंके साथ युद्ध करते हुए शान्तनुपुत्र महाबाहु भीष्म उस समयमें बाणोंसे आच्छादित होकर ऐसे शोभायमान हुए, जैसे काले रङ्गके बादलोंसे छिपकर पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुमेरु-गिरि शोभित होता है ॥ ३६ ॥

पुत्रास्तु तव गाङ्गेयं समन्तात्पर्यवारयन् ।
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ४६८३ ॥

तुम्हारे सब पुत्र भी बडी भारी सेनाके सहित गङ्गानन्दन भीष्मको चारों ओरसे घेरकर, उनकी रक्षा करनेके निमित्त वहांपर उपस्थित हुए । तब बडा युद्ध होने लगा ॥ ३७ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०५ ॥ ४६८३ ॥

: १०६ :

सञ्जय उवाच

अर्जुनस्तु रणे राजन्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! अर्जुनने युद्धमें भीष्मका पराक्रम देखकर शिखण्डीसे कहा; तुम भीष्म पितामहके साथ युद्ध करनेमें तत्पर हो जाओ ॥ १ ॥

न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादद्य कथञ्चन ।
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् ॥ २ ॥

आज तुम किसी प्रकारसे भी भीष्मका कुछ भय मत करो । मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके उनको उत्तम रथसे पृथ्वीपर गिरा दूंगा ॥ २ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ३ ॥

हे भारत ! जब अर्जुनने शिखण्डीसे ऐसा कहा, तब शिखण्डीने उनका बचन सुनकर गंगानंदन भीष्मके ऊपर धावा किया ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्सौभद्रश्च महारथः ।
हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ४ ॥

राजन् ! अर्जुनके वचनको सुनकर, धृष्टद्युम्न और सुभद्रानन्दन महारथी अभिमन्यु हर्षपूर्वक पितामह भीष्मकी ओर दौडे ॥ ४ ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥ ५ ॥

वृद्ध राजा विराट, द्रुपद और कुन्तिभोज भी कवच, अस्त्र–शस्त्रोंको धारण करके तेरे पुत्रके देखते ही गंगानंदन भीष्मकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान् ।
तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशां पते ।
समाद्रवन्त गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ६ ॥

पृथ्वीपते ! नकुल, सहदेव और पराक्रमी धर्मराज युधिष्ठिर तथा सम्पूर्ण सेनाके दूसरे वीरोंने अर्जुनका भाषण सुनकर गंगानंदन भीष्मपर आक्रमण किया ॥ ६ ॥

प्रत्युद्ययुस्तावकाश्च समेतास्तान्महारथान् ।
यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु । ॥ ७ ॥

तुम्हारी सेनाके योद्धाओंने भी एकत्र होकर, अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार इन उपस्थित महारथियोंका सामना किया, वह सब वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, तुम सुनो ॥ ७ ॥

चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ।
भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा ॥ ८ ॥

महाराज ! जैसे व्याघ्रका बच्चा वृषपर आक्रमण करता है, वैसे ही चित्रसेनने भीष्मके समीप पहुंचनेकी इच्छासे रणभूमिमें जाते हुए चेकितानपर आक्रमण किया; ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ।
त्वरमाणो रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत् ॥ ९ ॥

राजन् ! कृतवर्मा भीष्मके समीप आये हुए और युद्धके लिये प्रयत्न करनेवाले धृष्टद्युम्नको शीघ्रताके सहित निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ९ ॥

भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम् ।
त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत् ॥ १० ॥

महाराज ! सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, गंगानंदन भीष्मका वध करनेके वास्ते उनके संमुख आये हुए अत्यंत क्रुद्ध भीमसेनको शीघ्रताके सहित आकर युद्धसे निवारण करने लगे ॥ १० ॥

तथैव नकुलं वीरं किरन्तं सायकान्बहून् ।
विकर्णो वारयामास इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार भीष्मके जीवनकी रक्षा चाहनेवाले विकर्ण बहुतसे बाणोंकी वर्षा करनेवाले शूर नकुलको युद्धसे हटाने लगे ॥ ११ ॥

सहदेवं तथा यान्तं यत्तं भीष्मरथं प्रति ।
वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि । ॥ १२ ॥

राजन् ! शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य क्रुद्ध होकर भीष्मके रथके समीपमें पहुंचे हुए सहदेवको निवारण करने लगे ॥ १२ ॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं महाबलम् ।
भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद्बली । ॥ १३ ॥

बलवान् दुर्मुख भीष्मके वधकी इच्छा करनेवाले महाक्रूर भीमसेनके पुत्र महाबलवान् राक्षस घटोत्कचकी ओर दौडे ॥ १३ ॥

सात्यकिं समरे क्रुद्धमार्ष्यशृङ्गिरवारयत् ।
अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति ।
सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥ १४ ॥

क्रुद्ध सात्यकिका युद्धभूमिमें राक्षस अलम्बुस निवारण करने लगा । महाराज ! काम्बोजराज सुदक्षिण भीष्मके रथके समीप जाते हुए अभिमन्युको यत्नपूर्वक निवारण करने लगे ॥१४॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ ।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १५ ॥

भारत ! अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर एक साथ मिलकर आये हुए शत्रुमर्दन वूढे राजा विराट और द्रुपदको युद्धसे निवारण करने लगे ॥ १५ ॥

तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणम् ।
भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्य यत्नपूर्वक भीष्मके वधकी इच्छा करनेवाले ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरको युद्धसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥

अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मप्रेप्सुं महाराज तापयन्तं दिशो दश ।
दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे । ॥ १७ ॥

महाराज ! अर्जुन शिखण्डीको आगे करके अपने बाणोंसे सब ओर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको त्रस्त करते हुए जब भीष्मके संमुख उपस्थित हुए, तब महा धनुर्धारी दुःशासन सावधान होकर युद्धमें उनको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १७ ॥

अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान् ।
भीष्मायाभिमुखं यातान्वारयामासुराहवे । ॥ १८ ॥

तुम्हारी सेनाके और दूसरे सब शूरवीर योद्धा भीष्मके संमुख आये हुए पाण्डवोंकी सेनाके दूसरे सब महारथी योद्धाओंको युद्धमें निवारण करने लगे ॥ १८ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशत पुनः पुनः ।
अभिद्रवत संरब्धा भीष्ममेकं महाबलम् ॥ १९ ॥

धृष्टद्युम्न क्रुद्ध होकर अपनी सेनाके सहित केवल भीष्महीकी ओर बढे और जोरसे पुकारकर वार वार सब शूरवीरोंसे यह कहने लगे, कि अकेले महाबलवान् भीष्मपर तुम सब उत्साहित होकर धावा करो ॥ १९ ॥

एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं प्रयाति कुरुनन्दनः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट भीष्मो न प्राप्स्यते हि वः ॥ २० ॥

यह कुरुनन्दन अर्जुन भीष्मके संमुख युद्ध करनेके निमित्त रणभूमिमें गमन कर रहे हैं, अब तुम लोग कुछ भी भय मत करो, शीघ्रताके सहित भीष्मकी ओर दौडो; अब भीष्म तुम लोगोंको नहीं पा सकेंगे ॥ २० ॥

अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः ।
किमु भीष्मो रणे वीरा गतसत्त्वोऽल्पजीवितः ॥ २१ ॥

संग्रामभूमिमें इन्द्र भी अर्जुनके साथ युद्ध करनेका उत्साह नहीं कर सकते, तब बलहीन और थोडे पराक्रमवाले भीष्म उनका सामना रणक्षेत्रमें कैसे कर सकेंगे ? अब इनका जीवन थोडाही बाकी रहा है ॥ २१ ॥

इति सेनापतेः श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥ २२ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके महारथी योद्धा लोग सेनापति धृष्टद्युम्नकी यह बात सुनकर हर्षपूर्वक गंगानन्दन भीष्मके रथकी ओर दौडे ॥ २२ ॥

आगच्छतस्तान्समरे वार्योघान्प्रबलानिव ।
न्यवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः ॥ २३ ॥

तुम्हारी ओरके महाबलवान् श्रेष्ठ योद्धा लोग युद्धमें प्रलयकालके जलौघके समान तेजस्वी उन महारथीयोंको आते हुए देखके हर्षित होकर उनको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २३ ॥

दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः ।
भीष्मस्य जीविताकाङ्क्षी धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २४ ॥

महाराज ! महारथी दुःशासन भीष्मके जीवनरक्षाकी अभिलाषा करके भय छोडके, अर्जुनकी ओर दौडे ॥ २४ ॥

तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे तव पुत्रान्महारथान् ॥ २५ ॥

इसी प्रकार पराक्रमी पाण्डवोंने युद्धमें गंगानन्दन भीष्मके रथके समीपमें खडे हुए तुम्हारे महारथी पुत्रोंपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशां पते ।
दुःशासनरथं प्राप्तो यत्पार्थो नात्यवर्तत ॥ २६ ॥

हे राजन् ! इस स्थानपर मैंने एक अद्भुत और विचित्र कर्म यह देखा, कि अर्जुन दुःशासनके रथके समीपमें पहुंचकर फिर वहांसे आगे न बढ सके ॥ २६ ॥

यथा वारयते वेला क्षुभितं वै महार्णवम् ।
तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत् ॥ २७ ॥

जिस प्रकारसे तट प्रक्षुब्ध समुद्रके वेगको रोकता है, वैसे ही तुम्हारे पुत्र दुःशासनने क्रुद्ध अर्जुनका निवारण किया ॥ २७ ॥

उभौ हि रथिनां श्रेष्ठावुभौ भारत दुर्जयौ ।
उभौ चन्द्रार्कसदृशौ कान्त्या दीप्त्या च भारत ॥ २८ ॥

भारत ! वे दोनों ही रथियोंमें श्रेष्ठ, दोनों ही दुर्जय पराक्रमी और दोनों ही कान्ति और दीप्तिमें तेजस्वी चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हुए ॥ २८ ॥

तौ तथा जातसंरम्भावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ।
समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा ॥ २९ ॥

वे दोनों क्रोधमें भरे हुए एक दूसरेके वधकी इच्छासे उस महायुद्धमें इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे पहिले समयमें मयासुर और इन्द्रका युद्ध हुआ था ॥ २९ ॥

दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ।
वासुदेवं च विंशत्या ताडयामास संयुगे ॥ ३० ॥

महाराज ! दुःशासनने पाण्डुनन्दन अर्जुनपर तीन बाण और वसुदेवनन्दन कृष्णके ऊपर बीस बाणोंसे युद्धमें प्रहार किया ॥ ३० ॥

ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम् ।
दुःशासनं शतेनाजौ नाराचानां समार्पयत्
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे । ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर अर्जुनने कृष्णको बाणोंसे पीडित देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर, सौ नाराच बाणोंसे युद्धमें दुःशासनको विद्ध किया; वे सब बाण दुःशासनके कवचको भेदकर रणक्षेत्रमें उनके रुधिरको पीने लगे ॥ ३१ ॥

दुःशासनस्ततः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः संनतपर्वभिः । ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब दुःशासनने क्रुद्ध होकर पांच तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनका ललाट विद्ध किया ॥ ३२ ॥

ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः शुशुभे पाण्डवोत्तमः ।
यथा मेरुर्महाराज शृङ्गैरत्यर्थमुच्छ्रितैः ॥ ३३ ॥

महाराज ! जैसे सुमेरु पर्वत बहुत ऊंचे शिखरोंसे शोभित होता है, वैसे ही पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन भी माथेमें विद्ध हुए उन बाणोंसे संग्रामभूमिमें शोभायमान हुए ॥ ३३ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना ।
व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ॥ ३४ ॥

महाधनुर्धारी अर्जुन तुम्हारे धनुर्धर पुत्र दुःशासनके बाणोंसे युद्धमें विद्ध होकर, फूले हुए पलाश वृक्षके समान रणभूमिमें दिखाई देने लगे ॥ ३४ ॥

दुःशासनं ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः ।
पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुरुग्रो निशाकरम् । ॥ ३५ ॥

अनन्तर जैसे पूर्णमासीके दिन उग्र राहु अत्यन्त क्रुद्ध होकर चन्द्रमाको पीडित करता है, वैसे ही पाण्डुपुत्र अर्जुन क्रुद्ध होकर दुःशासनको पीडित करने लगे ॥ ३४ ॥

पीडयमानो बलवता पुत्रस्तव विशां पते ।
विव्याध समरे पार्थं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ ३६ ॥

हे प्रजानाथ ! तुम्हारे पुत्र दुःशासनने अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर शिलापर घिसे हुए कङ्क पत्र शोभित तेज बाणोंसे समरमें कुन्तीकुमार अर्जुनको फिर विद्ध किया ॥ ३६ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा त्वरमाणः पराक्रमी ।
आजघान ततः पश्चात्पुत्रं ते नवभिः शरैः ॥ ३७ ॥

तब त्वरायुक्त पराक्रमी अर्जुनने बाणोंसे दुःशासनका धनुष काटकर तुम्हारे पुत्रको नौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३७ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ३८ ॥

फिर दुःशासनने दूसरा धनुष ग्रहण करके भीष्मके संमुख स्थित होकर, अर्जुनकी दोनों भुजा और वक्षस्थलमें पचीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३८ ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुकर्शनः ।
अप्रैषीद्विशिखान्घोरान्यमदण्डोपमान्बहून् ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! अनन्तर शत्रुनाशन पाण्डुपुत्र अर्जुनने क्रुद्ध होकर यमदण्डके समान भयङ्कर अनेक वाण दुःशासनके ऊपर चलाये ॥ ३९ ॥

अप्राप्तानेव तान्बाणांश्चिच्छेद तनयस्तव ।
यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाभवत् ।
पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत्तनयस्तव ॥ ४० ॥

परंतु तुम्हारे पुत्र दुःशासनने अर्जुनके यत्नपूर्वक सावधान होते हुए भी उन वाणोंको अपने पास आनेके पहले ही मार्गहीमें काटके गिरा दिया; वह कठिन कार्य अचरजकी भांति दिखाई पडा । फिर अपने तीक्ष्ण वाणोंसे कुन्तीकुमार अर्जुनको विद्ध किया ॥ ४० ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान्संधाय कार्मुके ।
प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ॥ ४१ ॥

इसके अनन्तर रणभूमिमें अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर धनुषपर उत्तम शिलासे घिसे हुए चोखे सुवर्ण पंखयुक्त अनेक वाणोंको चढाकर, दुःशासनकी ओर चलाया ॥ ४१ ॥

न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महात्मनः ।
यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! भारत ! जैसे हंसोंका समूह तालावको पाकर उसमें उतरता है, वैसे ही अर्जुनके चलाये हुए वे सब वाण महामना दुःशासनके शरीरमें घुस गये ॥ ४२ ॥

पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ।
हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाश्रयत् ।
अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत्तदा ॥ ४३ ॥

तब तुम्हारे पुत्र दुःशासन संग्राममें महात्मा पाण्डुनन्दन अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर, अर्जुनको त्यागकर, शीघ्रताके सहित भीष्मके रथपर चढ गये, उस समय विपदरूपी अगाध समुद्रमें डूबते हुए दुःशासनके पक्षमें भीष्म ही द्वीपस्वरूप हुए ॥ ४३ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशां पते ।
अवारयत्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥ ४४ ॥

हे पृथ्वीपते ! पराक्रमी एवं शूरवीर तुम्हारे पुत्र दुःशासन सावधान होकर फिर अर्जुनको निवारण करने लगे ॥ ४४ ॥

शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रः पुरन्दरम् ।
निर्बिभेद महावीर्यो विव्यथे नैव चार्जुनात् ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ ४७२८ ॥

जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको निवारण किया था, वैसे ही महावीर तुम्हारा पुत्र दुःशासन उत्तम शिलापर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करने लगा, परन्तु उससे अर्जुन पीडित नहीं हुए ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एक सौ छठा अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ ४७२८ ॥

: १०७ :

सञ्जय उवाच

सात्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाभ्युद्यतं तदा ।
आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! महाधनुर्धारी ऋष्यशृङ्ग पुत्र राक्षस अलम्बुस भीष्मकी रक्षाके निमित्त, बलवान् कवचधारी सात्यकिको युद्धमें भीष्मसे युद्ध करनेके लिये उद्यत देख, निवारण करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ १ ॥

माधवस्तु सुसंक्रुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः ।
आजघान रणे राजन्प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥

राजन् ! भारत ! यदुकुलनन्दन सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, हंसते हंसते नौ बाणोंसे राक्षस अलम्बुसको उस समरमें पीडित किया ॥ २ ॥

तथैव राक्षसो राजन्माधवं निशितैः शरैः ।
अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! उसी प्रकारसे क्रुद्ध राक्षसेन्द्र अलम्बुसने भी तीक्ष्ण बाणोंसे शिनिपौत्र सात्यकिके ऊपर प्रहार किया ॥ ३ ॥

शैनेयः शरसङ्घं तु प्रेषयामास संयुगे ।
राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा ॥ ४ ॥

तब पराक्रमी शत्रुनाशन मधुवंशी सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्धमें अलम्बुसके ऊपर अपने बाणोंको चलाना आरम्भ किया ॥ ४ ॥

ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर राक्षस अलम्बुसने सत्य पराक्रमी महाबाहु सात्यकिको तीक्ष्ण–बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद किया ॥ ५ ॥

माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा।
धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी जहास च ननाद च ॥ ६ ॥

तेजस्वी सात्यकि उस समय अलम्बुस राक्षसके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर, धीरज अवलम्बन करके, हंसते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ ६ ॥

भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः।
ताडयामास समरे तोत्त्रैरिव महागजम् ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर जैसे बडे हाथीको महावत अंकुशसे पीडित करता है, उसी भांतिसे भगदत्तने क्रुद्ध होकर शिलापर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे समरमें मधुवंशी सात्यकिके ऊपर प्रहार किया ॥ ७ ॥

विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः।
प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान्संनतपर्वणः ॥ ८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि युद्धमें राक्षस अलम्बुसको त्याग कर प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्तके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाने लगे ॥ ८ ॥

तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद्धनुः।
चिच्छेद शितधारेण भल्लेन कृतहस्तवत् ॥ ९ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्तने सिद्धहस्त योद्धाके समान शीघ्रताके सहित अपने शतधारवाले चोखे भल्ल बाणोंसे सात्यकिका विशाल धनुष काट दिया ॥ ९ ॥

अथान्यद्धनुरादाय वेगवत्परवीरहा।
भगदत्तं रणे क्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥

शत्रुनाशन सात्यकिने एक दूसरा वेगवान् धनुष ग्रहण करके, तीक्ष्ण–बाणोंसे क्रुद्ध राजा भगदत्तको युद्धमें विद्ध किया ॥ १० ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी संलिहन्मुहुः।
शक्तिं कनकवैडूर्यभूषितामायसीं दृढाम्।
यमदण्डोपमां घोरां प्राहिणोत्सात्यकाय वै ॥ ११ ॥

महाधनुर्द्धारी सात्यकिके बाणोंसे इस प्रकार अत्यन्त विद्ध होकर, होठोंको काटते हुए, सुवर्ण और वैडूर्य मणियोंसे भूषित लोहमयी यमदण्डके समान महा भयङ्कर एक दृढशक्ति उन्होंने सात्यकिकी ओर चलाई ॥ ११ ॥

तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहोर्बलेरिताम् ।
सात्यकिः समरे राजंस्त्रिधा चिच्छेद सायकैः ।
सा पपात तदा भूमौ महोल्केव हतप्रभा ॥ १२ ॥

सात्यकिने भगदत्तके हाथके बलसे समरमें सहसा छूटी हुई उस शक्तिको शीघ्रताके सहित संमुख आती हुई देखकर, उनको अपने बाणसे काटके तीन टुकडे कर दिये, तब वह शक्ति महा लुकके समान तेजहीन होके पृथ्वीमें गिर पडी ॥ १२ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशां पते ।
महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥ १३ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रने भगदत्तकी शक्तिको निष्फल होती हुई देखकर, बडी भारी रथ-सेनाको सङ्ग लेकर सात्यकिको चारों ओरसे रोक लिया ॥ १३ ॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम् ।
दुर्योधनो भृशं हृष्टो भ्रातॄन्सर्वानुवाच ह ॥ १४ ॥

वृष्णिवंशियोंके महारथ सात्यकिको रथियोंकी सेनासे घिरा हुआ देखकर राजा दुर्योधन अपने सब भाइयोंसे हर्षपूर्वक यह वचन बोले ॥ १४ ॥

तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि ।
न जीवन्प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद्रथव्रजात् ।
अस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद्बलम् ॥ १५ ॥

हे कुरुनन्दन वीर पुरुषो ! जिसमें तुमलोगोंके निकटसे युद्धमें सात्यकि इस रथ-सेनामेंसे जीतेजी न निकल सके, तुम लोग वैसा ही उपाय करो; मेरे विचारमें सात्यकिके मारे जाने पर पाण्डवोंकी महासेनाका नाश होगा ॥ १५ ॥

तत्तथेति वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः ।
शैनेयं योधयामासुर्भीष्मस्य प्रमुखे तदा ॥ १६ ॥

तुम्हारे सब महारथी दुर्योधनकी आज्ञाको मानकर, रणभूमिमें भीष्मके समीप ही सात्यकिके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥

अभिमन्युं तदायान्तं भीष्मायाभ्युद्यतं मृधे ।
काम्बोजराजो बलवान्वारयामास संयुगे ॥ १७ ॥

हे राजन् ! पराक्रमी काम्बोजराज अभिमन्युको भीष्मकी ओर आते देखके उनको युद्धसे निवारण करने लगे ॥ १७ ॥

आर्जुनिर्नृपतिं विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन्विव्याध तं नृपम् ॥ १८ ॥

राजन् ! काम्बोजराज सुदक्षिणको अपने अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनकुमार अभिमन्युने विद्ध करके, फिर चौंसठ बाणोंसे उस नृपतिको अत्यंत विद्ध किया ॥ १८ ॥

सुदक्षिणस्तु समरे कार्ष्णिं विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चास्य नवभिरिच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ॥ १९ ॥

और फिर समरमें भीष्मके जीवनकी रक्षा इच्छिनेवाले काम्बोजराज सुदक्षिणने अभिमन्युको पांच बाणोंसे पुनर्वार विद्ध करके, नौ बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया ॥१९॥

तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र पराक्रमे ।
यदभ्यधावद्गाङ्गेयं शिखण्डी शत्रुतापनः ॥ २० ॥

उन दोनोंके पराक्रमसे वहांपर महाघोर संग्राम हुआ; क्योंकि शत्रुतापन शिखण्डी गंगानंदन भीष्मकी ओर बढे थे ॥ २० ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ ॥ २१ ॥

बूढे राजा महारथी विराट और द्रुपदने दुर्योधनकी उस बडी सेनाको निवारण करके, क्रोधित होकर युद्धमें भीष्मपर आक्रमण किया ॥ २१ ॥

अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः समायाद्रथसत्तमः ।
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ॥ २२ ॥

तब रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर, विराट और द्रुपदकी ओर वेगसे दौडे; भारत ! फिर उन दोनों महारथियोंके सङ्ग अश्वत्थामाका संग्राम होने लगा ॥ २२ ॥

विराटो दशभिर्भल्लैराजघान परंतप ।
यतमानं महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम् । ॥ २३ ॥

हे शत्रुओंको ताप देनेवाले ! राजा विराटने युद्धमें शोभायमान, प्रयत्नशील महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाको भल्ल नामक दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ २३ ॥

द्रुपदश्च त्रिभिर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तथा ।
गुरुपुत्रं समासाद्य भीष्मस्य पुरतः स्थितम् ॥ २४ ॥

और द्रुपदने भी शिलापर घिसे हुए तीन तीक्ष्ण बाणोंसे भीष्मके सामने स्थित गुरुपुत्र अश्वत्थामाके ऊपर प्रहार किया ॥ २४ ॥

अश्वत्थामा ततस्तौ तु विव्याध दशभिः शरैः ।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ ॥ २५ ॥

तब विराट और द्रुपद इन भीष्मका वध करनेके लिये उद्यत महा बलवान् दोनों वृद्ध महारथिओंको अश्वत्थामाने भी दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ २५ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत् ।
यद्द्रौणेः सायकान्घोरान्प्रत्यवारयतां युधि ॥ २६ ॥

उन दोनों बूढे राजाओंका उस समय मैंने यह अद्भुत और महान् पराक्रम देखा, कि युद्धमें वे लोग अश्वत्थामाके धनुषसे छूटे हुए घोर बाणोंका निवारण करने लगे ॥ २६ ॥

सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात् ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत् ॥ २७ ॥

अनन्तर शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने सहदेवको भीष्मकी ओर चढाई करनेके लिये आते देखकर, जैसे वनमें एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीकी ओर जाकर उसपर आक्रमण करता है, वैसे ही सहदेवपर आक्रमण किया ॥ २७ ॥

कृपश्च समरे राजन्माद्रीपुत्रं महारथम् ।
आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः ॥ २८ ॥

राजन् ! पराक्रमी कृपाचार्यने समरमें महारथी माद्रीपुत्र सहदेवको सत्तर सुवर्ण भूषित बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक विद्ध किया ॥ २८ ॥

तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः ॥ २९ ॥

अनन्तर माद्रीकुमार सहदेवने भी अपने बाणोंको चलाकर कृपाचार्यके धनुषको काटकर दो खण्ड कर दिया; और कृपाचार्यका जब धनुष कट गया, तब सहदेवने नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २९ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम् ।
माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्ध इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ॥ ३० ॥

अनन्तर भीष्मकी प्राणरक्षाकी अभिलाषा करनेवाले कृपाचार्यने दूसरा दृढ धनुष लेकर युद्धमें अत्यन्त हर्षके साथ माद्रीपुत्र सहदेवकी छातीमें क्रोधपूर्वक दस तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३० ॥

तथैव पाण्डवो राजञ्शारद्वतममर्षणम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकाङ्क्षया ।
तयोर्युद्धं समभवद्धोररूपं भयावहम् ॥ ३१ ॥

राजन्! इसीप्रकारसे पाण्डुपुत्र सहदेवने भी क्रोधित हो भीष्मको वधकी इच्छा करके अमर्षशील कृपाचार्यकी छातीमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया; उन दोनों महाबली पुरुष सिंहोंका अत्यन्त ही भयङ्कर महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ३१ ॥

नकुलं तु रणे क्रुद्धं विकर्णः शत्रुतापनः ।
विव्याध सायकैः षष्ट्या रक्षन्भीष्मस्य जीवितम् ॥ ३२ ॥

भीष्मके जीवनकी रक्षा करनेवाले महा बलवान् शत्रुनाशन विकर्णने रणभूमिमें साठ बाणोंसे क्रुद्ध नकुलको विद्ध किया ॥ ३२ ॥

नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धन्विना ।
विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः ॥ ३३ ॥

नकुलने भी तुम्हारे धनुर्धर पुत्र विकर्णके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर सतहत्तर बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ ३३ ॥

तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परंतपौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ ३४ ॥

शत्रुनाशन ये दोनों नरशार्दूल वीर भीष्मके निमित्त, जैसे गोशालामें दो सांड आपसमें लडते हैं, उसीके समान होकर, एक दूसरेके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगे ॥ ३४ ॥

घटोत्कचं रणे यत्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम् ।
दुर्मुखः समरे प्रायाद्भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ३५ ॥

पराक्रमी दुर्मुखने युद्धमें राक्षस घटोत्कचको सेनाका नाश करते हुए भीष्मकी ओर बढे आते देखकर भीष्मकी रक्षाके लिये उसकी ओर अपने रथको चलाया ॥ ३५ ॥

हैडिम्बस्तु ततो राजन्दुर्मुखं शत्रुतापनम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या निशितैः शरैः ॥ ३६ ॥

राजन्! अनन्तर क्रुद्ध हिडिम्बापुत्र घटोत्कचने अपने नब्बे तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुतापन दुर्मुखकी छातीमें प्रहार किया ॥ ३६ ॥

भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः ।
षष्ट्या वीरो नदन्हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि ॥ ३७ ॥

तब वीर दुर्मुखने सिंहनाद करके हर्षके सहित साठ चोखे बाणोंसे भीमसेनके पुत्र घटोत्कचको युद्धमें विद्ध किया ॥ ३७ ॥

धृष्टद्युम्नं रणे यान्तं भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणम् ।
हार्दिक्यो वारयामास रक्षन्भीष्मस्य जीवितम् ॥ ३८ ॥

महारथी कृतवर्मा धृष्टद्युम्नको समरमें भीष्मके वधकी इच्छासे आते देखकर, भीष्मके जीवनकी रक्षा करनेके लिये उनको निवारण करने लगे ॥ ३८ ॥

वार्ष्णेयः पार्षतं शूरं विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः ।
पुनः पञ्चाशता तूर्णमाजघान स्तनान्तरे ॥ ३९ ॥

धृष्टद्युम्नने लोहमय पांच बाणोंसे शूरवीर कृतवर्माको विद्ध करके, फिर उनके दोनों स्तनोंके बीच उनको पचास बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक पुनर्वार विद्ध किया ॥ ३९ ॥

तथैव पार्षतो राजन्हार्दिक्यं नवभिः शरैः ।
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ४० ॥

महाबाहु कृतवर्मा भी महारथी धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे । राजन् ! अनन्तर धृष्टद्युम्नने भी कङ्कपत्र युक्त भली भांति शिलापर घिसे हुए, चोखे नौ बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया ॥ ४० ॥

तयोः समभवद्युद्धं भीष्महेतोर्महारणे ।
अन्योन्यातिशयैर्युक्तं यथा वृत्रमहेन्द्रयोः । ॥ ४१ ॥

जैसे वृत्रासुरके साथ इन्द्रका युद्ध हुआ था, वैसे ही भीष्मके निमित्त उस महायुद्धमें उन दोनोंमें महा संग्राम होने लगा । वे दोनों एक दूसरेसे आगे बढ जानेके प्रयत्नमें लगे थे ॥ ४१ ॥

भीमसेनमथायान्तं भीष्मं प्रति महाबलम् ।
भूरिश्रवाभ्ययात्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४२ ॥

सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाने महाबलवान् भीष्मकी ओर आये हुए भीमसेनपर शीघ्रताके सहित आक्रमण किया। और कहा " खडा रह ! खडा रह ! " ॥ ४२ ॥

सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुङ्खेन संयुगे ॥ ४३ ॥

अनन्तर सोमदत्तपुत्रने युद्धमें सुवर्णपंखभूषित तीक्ष्ण नाराच बाणसे भीमसेनके दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया ॥ ४३ ॥

उरःस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान् ।
स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! पहिले समय क्रौञ्च नामका पर्वत जिस भांतिसे स्वामिकार्त्तिककी शक्तिसे विद्ध होकर शोभित हुआ था, प्रतापवान् भीमसेन छातीमें लगे हुए उस बाणसे उसी भांतिसे सुशोभित होने लगे ॥ ४४ ॥

तौ शरान्सूर्यसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते मुहुर्मुहुः ॥ ४५ ॥
वे दोनों युद्धमें क्रुद्ध होकर लोहारके द्वारा शिलापर घिसे हुए सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंको एक दुसरेकी ओर बार बार चलाने लगे । ॥ ४५ ॥

भीमो भीष्मवधाकाङ्क्षी सौमदत्तिं महारथम् ।
तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिश्च पाण्डवम् ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे ॥ ४६ ॥
भीष्मका वध करनेकी इच्छासे भीम महारथी भूरिश्रवाके ऊपर और भूरिश्रवा भीष्मकी विजय चाहता हुआ और उनकी रक्षाके निमित्त पाण्डुकुमार भीमसेनके ऊपर, अपने बाणोंको चलाते हुए एक दूसरेके अस्त्रोंका प्रतिकार करते हुए, अपने पराक्रमको प्रकाशित करने लगे ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिरं महाराज महत्या सेनया वृतम् ।
भीष्मायाभिमुखं यान्तं भारद्वाजो न्यवारयत् ॥ ४७ ॥
हे कुरुराज ! युधिष्ठिर बडी सेनाके सहित भीष्मकी ओर आते थे; परन्तु द्रोणाचार्य उन्हें मार्गहीमें निवारण करने लगे ॥ ४७ ॥

द्रोणस्य रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ।
श्रुत्वा प्रभद्रका राजन्समकम्पन्त मारिष ॥ ४८ ॥
राजन् ! मारिष ! प्रभद्रक सेनाके वीर योद्धा लोग द्रोणाचार्यके बादलके समान गर्जते हुए रथके शब्दको सुनकर कांपने लगे ॥ ४८ ॥

सा सेना महती राजन्पाण्डुपुत्रस्य संयुगे ।
द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात्पदम् ॥ ४९ ॥
राजन् ! युद्धमें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी वह महा सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे जब रोक दी गई, तब अनेक यत्न करके एक चरण मात्र भी आगे न बढ सकी ॥ ४९ ॥

चेकितानं रणे क्रुद्धं भीष्मं प्रति जनेश्वर ।
चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५० ॥
हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र चित्रसेन चेकितानको रणभूमिमें क्रुद्ध होकर भीष्मकी ओर आते देखकर, उनको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ५० ॥

भीष्महेतोः पराक्रान्तश्चित्रसेनो महारथः ।
चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत ॥ ५१ ॥
भारत ! महारथी चित्रसेन भीष्मकी रक्षाके लिए चेकितानके साथ अपनी पूरी शक्तिके अनुसार अपना पराक्रम दिखाते हुए युद्ध करने लगे ॥ ५१ ॥

तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमयोधयत् ।
तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ५२ ॥

इसीप्रकार चेकितान भी चित्रसेनको बलपूर्वक निवारण करने लगे। उस रणभूमिमें उन दोनोंका महाभयङ्कर संग्राम होने लगा ॥ ५२ ॥

अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तनयेन ते ।
विमुखीकृत्य पुत्रं ते तव सेनां ममर्द ह ॥ ५३ ॥

अर्जुन वहां बहुत भांतिसे रोके जानेपर भी तुम्हारे पुत्र दुःशासनको युद्धसे विमुख करके तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे; ॥ ५३ ॥

दुःशासनोऽपि परया शक्त्या पार्थमवारयत् ।
कथं भीष्मं परो हन्यादिति निश्चित्य भारत ॥ ५४ ॥

परन्तु दुःशासन भी ऐसा निश्चय करके ' कि अर्जुन हम लोगोंके भीष्म पितामहका जिसमें किसी प्रकारसे वध न कर सके ' अपनी परम शक्तिके अनुसार उन्हें निवारण करने लगे ॥५४॥

सा वध्यमाना समरे पुत्रस्य तव वाहिनी ।
लोडयते रथिभिः श्रेष्ठैस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ४७८३ ॥

हे राजन् ! पाण्डवोंके मुख्य मुख्य रथीलोग उस महासंग्राममें तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वध करते हुए उस महासेनाके वीरोंको तितर बितर करने लगे ॥ ५५ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ सातवां अध्याय समाप्त ॥ १०७ ॥ ४७८३ ॥

: १०८ :

सञ्जय उवाच

अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः ।
समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! अनन्तर महाबलवान्, धनुर्धारी, मतवारे हाथीके समान पराक्रमी, द्रोणाचार्य मतवारे हाथियोंके निवारण करने योग्य एक बडे धनुषको ग्रहण करके, ॥ १ ॥

विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं द्रावयाणो महारथान् ।
पृतनां पाण्डवेयानां पातयानो महारथः ॥ २ ॥

महारथी द्रोणाचार्य अपने श्रेष्ठ धनुषको खींचकर, पाण्डवोंकी सेनाके महारथी वीरोंको रणभूमिसे तितर बितर और मारकर गिरा रहे थे ॥ २ ॥

निमित्तानि निमित्तज्ञः सर्वतो वीक्ष्य वीर्यवान् ।
प्रतपन्तमनीकानि द्रोणः पुत्रमभाषत ॥ ३ ॥

उन्होंने उस समय सब ओर बुरे लक्षणोंको देखकर शत्रुसेनाको त्रस्त करते हुए अपने पुत्र अश्वत्थामासे कहा, ॥ ३ ॥

अयं स दिवसस्तात यत्र पार्थो महारथः ।
जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! महारथी अर्जुन समरमें जिस दिन भीष्मके वधके निमित्त परम यत्न करेंगे, आज वही दिन उपस्थित हुआ है; ॥ ४ ॥

उत्पतन्ति हि मे बाणा धनुः प्रस्फुरतीव मे ।
योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्तते मतिः ॥ ५ ॥

क्योंकि मेरे बाण अपने आप ही तूणीरसे निकलकर गिर रहे हैं; धनुष कांप रहा है; सब अस्त्र चलनेकी इच्छा करते हैं; मेरा चित्त भी क्रूर कर्म करनेमें प्रवृत्त हो रहा है ॥ ५ ॥

दिक्षु शान्तासु घोराणि व्याहरन्ति मृगद्विजाः ।
नीचैर्गृध्रा निलीयन्ते भारतानां चमूं प्रति ॥ ६ ॥

पशु और सब पक्षी शान्त चारों दिशाओंमें भयङ्कर शब्द कर रहे हैं । गिद्ध कुरुसेनाकी ओर आकाशसे पृथ्वीपर उतर रहे हैं; ॥ ६ ॥

नष्टप्रभ इवादित्यः सर्वतो लोहिता दिशः ।
रसते व्यथते भूमिरनुष्टनति वाहनम् ॥ ७ ॥

सूर्य मानो प्रकाश रहित हो गया है; सब दिशा लालवर्ण दीख पडती हैं; पृथ्वी मानो सब प्रकारसे घोर शब्दसे पीडित होकर कांप रही है ॥ ७ ॥

कङ्का गृध्रा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहुः ।
शिवाश्चाशिवनिर्घोषा वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ ८ ॥

कंक, गिद्ध और बगुले बार बार भयङ्कर शब्द कर रहे हैं; चारों ओर सियार महा घोर शब्द करके अमङ्गल–सूचक वाणी बोलकर महा भय उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ८ ॥

पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलात् ।
सकबन्धश्च परिघो भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ ९ ॥

सूर्यमण्डलके मध्यभागसे बडे बडे लुक गिर रहे हैं; कबन्धके सहित परिघ सूर्यको चारों ओरसे घेर रहा है; ॥ ९ ॥

परिवेषस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोरभूत् ।
वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १० ॥

चन्द्रमा और सूर्यका स्वरूप परिवेषसे भयङ्कर होकर क्षत्रियोंके शरीरके नाशके निमित्त महा भय दिखा रहा है ॥ १० ॥

देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः ।
कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च ॥ ११ ॥

कौरवोंमें श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रके देवालयोंकी सब देवताएं कांपते, हंसते, नाचते और रोदन करते हुए दिखाई दे रहे हैं ॥ ११ ॥

अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं निशाकरम् ।
अवाक्शिराश्च भगवानुदातिष्ठत चन्द्रमाः ॥ १२ ॥

ग्रह सब बुरे लक्षणको दिखाते हुए चन्द्रमाको दाहिनी ओर करके गमन कर रहे हैं; भगवान् चन्द्रमा अपने दोनों टुनगोंकी नीचे करके उदय हो रहे हैं ॥ १२ ॥

वपूंषि च नरेन्द्राणां विगतानीव लक्षये ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च भ्राजन्ति दंशिताः ॥ १३ ॥

दुर्योधनकी सेनाके राजाओंके शरीरोंका तेज मलिन दीख पडता है; वे सब अस्त्रशस्त्र और कवच धारण करके भी तेजहीन दीख पडते हैं ॥ १३ ॥

सेनयोरुभयोश्चैव समन्ताच्छ्रूयते महान् ।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निस्वनः ॥ १४ ॥

और दोनों सेनाके बीच चारों ओर पाञ्चजन्य शङ्खका गंभीर शब्द और गाण्डीव धनुषकी टंकार ध्वनि सुनाई देती है ॥ १४ ॥

ध्रुवमास्थाय बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे ।
अपास्यान्यान्रणे योधानभ्यस्यति पितामहम् ॥ १५ ॥

इससे अर्जुन रणभूमिमें उत्तम अस्त्रोंके आसरेसे दूसरे सब योद्धाओंको त्यागकर निश्चय ही भीष्म पितामह पर आक्रमण करेगा ॥ १५ ॥

हृष्यन्ति रोमकूपानि सीदतीव च मे मनः ।
चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम् ॥ १६ ॥

हे महाबाहो पुत्र ! भीष्म और अर्जुनके समागमको विचारकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है और मेरे शरीरके रोएं खडे होगये हैं ॥ १६ ॥

तं चैव निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम् ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्यायोधनं गतः ॥ १७ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुन आज रणभूमिमें धूर्त्त बुद्धि पापी पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीको आगे करके भीष्मके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त गमन कर रहा है ॥ १७ ॥

अब्रवीच्च पुरा भीष्मो नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥ १८ ॥

भीष्मने पहिले यह कहा है, कि " मैं शिखण्डीका वध नहीं करूंगा " क्योंकि विधाताने उसे पहिले स्त्रीरूपसे उत्पन्न किया था, वह दैवी घटनासे पुरुष होगया है; ॥ १८ ॥

अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महारथः ।
न चामङ्गलकेतोः स प्रहरेदापगासुतः ॥ १९ ॥

और महारथी याज्ञसेनि शिखण्डीकी ध्वजा भी अमाङ्गलिक है, इसी कारणसे गङ्गापुत्र भीष्म इस अमाङ्गलिक शिखण्डीके ऊपर अपने अस्त्रोंको नहीं चलावेंगे । ॥ १९ ॥

एतद्विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम् ।
अद्यैव तु रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २० ॥

आज अर्जुन पूरी तैयारीके साथ रणभूमिमें उपस्थित होकर कुरुकुल वृद्ध भीष्मकी ओर वेगपूर्वक दौड रहा है । इन बातोंपर जब मैं विचार करता हूं, तब मेरी बुद्धि बिलकुल कर्तव्य शून्य हो जाती है ॥ २० ॥

युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मार्जुनसमागमः ।
मम चास्त्राभिसंरम्भः प्रजानामशुभं ध्रुवम् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिरका क्रोध, भीष्म और अर्जुनका समागम, और मेरे अस्त्रोंका आपही चलाना, यह सब निश्चय ही प्रजाके अमङ्गलका कारण है ॥ २१ ॥

मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रो दृढविक्रमः ।
दूरपाती दृढेषुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन मनस्वी, बलवान् शूरवीर, अस्त्रोंके चलानेमें निपुण, शीघ्रता पूर्वक अत्यन्त पराक्रम प्रकट करनेवाले, दूरतक शस्त्रोंको चलानेवाले, उत्तम और दृढ बाणोंको धारण करनेवाले, सब शकुन और लक्षणोंको जाननेवाले हैं ॥ २२ ॥

अजेयः समरे चैव देवैरपि सवासवैः ।
बलवान्बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः । ॥ २३ ॥

युद्धमें इन्द्र सहित सब देवताओंसे भी अजिक्य हैं । वे बलवान् , बुद्धिमान् , जितेन्द्रिय और योद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥

विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः ।
तस्य मार्गं परिहरन्द्रुतं गच्छ यतव्रतम् ॥ २४ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन युद्धमें सदा विजयी और भयङ्कर अस्त्रोंको धारण करते हैं। तुम उन यतव्रतीके मार्गको रोकनेके लिये शीघ्रता सहित भीष्मके समीप गमन करो ॥ २४ ॥

पश्य चैतन्महाबाहो वैशसं समुपस्थितम् ।
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च ॥ २५ ॥

हे महाबाहो पुत्र ! आज तुम रणभूमिमें शूरवीरोंकी महा भयानक हत्या होती हुई देखोगे । शूरवीरोंके सुवर्णभूषित महान् और उत्तम ॥ २५ ॥

कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः संनतपर्वभिः ।
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराणि धनूंषि च ॥ २६ ॥

कवचोंको अर्जुन क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटेगा और ध्वजाके अग्रभाग, तोमर, और धनुषके टुकडे कर देगा ॥ २६ ॥

प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः शक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः ।
वैजयन्त्यश्च नागानां संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ २७ ॥

विमल प्रास, सुवर्णभूषित तीक्ष्ण शक्ति और हाथियोंके ऊपरकी वैजयन्ती पताकाओंको क्रोधित किरीटधारी अर्जुन अपने अस्त्रोंके बलसे काटकर गिरा देगा ॥ २७ ॥

नायं संरक्षितुं कालः प्राणान्पुत्रोपजीविभिः ।
याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च ॥ २८ ॥

हे पुत्र ! उपजीवी पुरुषोंको प्राण रक्षा करनेका यह समय नहीं है; स्वर्ग प्राप्तिकी इच्छा करके यश और जयके निमित्त युद्ध करनेके लिये भीष्मके पास गमन करो ॥ २८ ॥

हयनागरथावर्तां महाघोरां सुदुस्तराम् ।
रथेन संग्रामनदीं तरत्येष कपिध्वजः ॥ २९ ॥

यह देखो कपिध्वजासे युक्त अर्जुन घोडे, हाथी, टूटे रथ आदिसे युक्त महा भयङ्करी और दुस्तर संग्रामरूपी नदीको रथरूपी नौकासे तैरकर उसके पार जा रहा है ॥ २९ ॥ ॥

ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत् ।
इहैव दृश्यते राज्ञो भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥ ३० ॥
भीमसेनश्च बलवान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥

राजा युधिष्ठिरमें ही ब्रह्मनिष्ठा, दम, दान, तपस्या और उत्तम चरित आदि सद्गुण विद्यमान हैं, इस कारण जिसके सखा और भ्राता अर्जुन, बलवान् भीमसेन, माद्रीपुत्र पाण्डुकुमार नकुल और सहदेव हैं, जिसके सहायक और रक्षक यदुकुलभूषण भगवान् श्रीकृष्ण सदा साथ रहते हैं ॥ ३०–३१ ॥

तस्यैष मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
तपोदग्धशरीरस्य कोपो दहति भारतान् ॥ ३२ ॥

और जिसका शरीर तपस्यासे शुद्ध होकर प्रकाशित है, नीचबुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके ऊपर उसका कोप ही कुरुसेनाको भस्म किये डालता है ॥ ३२ ॥

एष संदृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः ।
दारयन्सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥ ३३ ॥

यह देखो, अर्जुन कृष्णकी शरणमें रहकर उनकी सहायतासे दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेनाको सब ओर तितर बितर कर रहा है ॥ ३३ ॥

एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना ।
महोर्मिनद्धं सुमहत्तिमिनेव नदीमुखम् ॥ ३४ ॥

जैसे तिमिंगिल महामत्स्य नदीमुखके प्रचंड तरङ्गोंको उठाकर दूर फेंकता है, वैसे ही किरीटधारी अर्जुनसे सम्पूर्ण कौरवी सेना युद्धमें मथित होकर प्रक्षुब्ध होती दिखाई देती है ॥ ३४ ॥

हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे ।
याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥ ३५ ॥

यह सुनो ! सेनाके बीच हाहाकार और किलकिलाहटका शब्द मच रहा है, इससे हे पुत्र ! तुम पाञ्चालपुत्र शिखण्डीके समीप गमन करो, मैं युधिष्ठिरके सम्मुख युद्ध करनेके निमित्त जाता हूं ॥ ३५ ॥

दुर्लभं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्यामिततेजसः ।
समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥ ३६ ॥

अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठिरके समुद्रके समान व्यूहके बीच गमन करना बहुत ही कठिन कार्य है; क्योंकि वह सब ओरसे रक्षित तथा अतिरथ योद्धाओंसे युक्त है ॥ ३६ ॥

सात्यकिश्चाभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
परिरक्षन्ति राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ॥ ३७ ॥

सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल और सहदेव नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करते हैं ॥ ३७ ॥

उपेन्द्रसदृशः श्यामो महाशाल इवोद्गतः ।
एष गच्छत्यनीकानि द्वितीय इव फल्गुनः ॥ ३८ ॥

भगवान् विष्णुके समान श्यामवर्ण और बडे शालवृक्षके समान उंचा यह अभिमन्यु दूसरे अर्जुनके समान सेनाके आगे गमन कर रहा है ॥ ३८ ॥

उत्तमास्त्राणि चादत्स्व गृहीत्वान्यन्महद्धनुः ।
पार्श्वतो याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥ ३९ ॥

इससे तुम दूसरे बडे धनुष और उत्तम उत्तम अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके शिखण्डीके समीपमें जाओ; और भीमसेनके साथ युद्ध करो ॥ ३९ ॥

को हि नेच्छेत्प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य ततस्त्वा विनियुञ्ज्महे ॥ ४० ॥

कौन पुरुष अपने प्यारे पुत्रके अनेक वर्षोंतक जीते रहनेकी इच्छा नहीं करता; सब कोई करते हैं । परन्तु मैं क्षत्रिय धर्मको अवलोकन करके तुमको इस युद्धमें नियुक्त करता हूं ॥४०॥

एष चापि रणे भीष्मो दहते वै महाचमूम् ।
युद्धे सुसदृशस्तात यमस्य वरुणस्य च ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ॥ ४८२४ ॥

हे पुत्र! यह भीष्म भी देखो रणक्षेत्रमें यमराज और वरुणके समान अपने पराक्रमको प्रकाशित करके पाण्डवोंकी महासेनाको अपने अस्त्रोंसे जला रहे हैं ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥ ४८२४ ॥

: 109 :

सञ्जय उवाच

भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, सात्वत कृतवर्मा, अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द, सिन्धुराज जयद्रथ, ॥ १ ॥

चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणो युवा ।
दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥ २ ॥

चित्रसेन, विकर्ण और युवक दुर्मर्षण तुम्हारी ओरके ये दस महारथी योद्धा लोग भीमसेनके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ २ ॥

महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया ।
भीष्मस्य समरे राजन्प्रार्थयाना महद्यशः ॥ ३ ॥

राजन् ! नाना देशोंसे इकट्ठी हुई महासेनाके सहित समरभूमिमें भीष्मके महान् यशकी अभिलाषा ये करते थे ॥ ३ ॥

शल्यस्तु नवभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥ ४ ॥

शल्यने नौ, कृतवर्माने तीन और कृपाचार्यने नौ बाणोंसे भीमसेनके ऊपर प्रहार किया ॥४॥

चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्भल्लैर्भीमसेनमताडयन् ॥ ५ ॥

मारिष ! चित्रसेन, विकर्ण और भगदत्तने भी भीमसेनके ऊपर दस दस भल्ल बाण चलाये ॥ ५ ॥

सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
दुर्मर्षणश्च विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

सिन्धुराज जयद्रथने तीन बाणोंसे भीमसेनको हंसुलियोंमें विद्ध किया । अवन्ति देशीय विन्द और अनुविन्दने पांच पांच बाणोंसे और दुर्मर्षणने बीस तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डुपुत्र भीमसेनको विद्ध किया ॥ ६ ॥

स तान्सर्वान्महाराज भ्राजमानान्पृथक्पृथक् ।
प्रवीरान्सर्वलोकस्य धार्तराष्ट्रान्महारथान् ।
विव्याध बहुभिर्बाणैर्भीमसेनो महाबलः ॥ ७ ॥

महाराज ! महाबलवान् शत्रुओंके वीरोंको मारनेवाले भीमसेनने तुम्हारी ओरके लोक-विख्यात उन महावीर तेजस्वी महारथियोंको अपने अनेक चोखे बाणोंसे पृथक् पृथक् रूपसे विद्ध किया ॥ ७ ॥

शल्यं पञ्चाशता विद्ध्वा कृतवर्माणमष्टभिः ।
कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ।
अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ ८ ॥

भारत ! उन्होंने शल्यको पांच और कृतवर्माको आठ बाणोंसे विद्ध करके, बाणके सहित कृपाचार्यके धनुषको बीचोंबीचसे काट दिया । फिर धनुष रहित कृपाचार्यके ऊपर पांच बाणोंसे प्रहार किया ॥ ८ ॥

विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ।
दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः ॥ ९ ॥

अनन्तर विन्द और अनुविन्दको तीन तीन बाणोंसे विद्ध करके, दुर्मर्षणको बीस, चित्रसेनको पांच बाणोंसे विद्ध किया ॥ ९ ॥

विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ।
विद्ध्वा भीमोऽनदद्धृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः ॥ १० ॥

और फिर विकर्णको दस बाणोंसे विद्ध किया । अनन्तर जयद्रथको पांच बाणोंसे विद्ध करके, फिर उनके ऊपर दूसरी बार तीन बाणोंसे प्रहार करके हर्षके सहित सिंहनाद किया ॥ १० ॥

अथान्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ।
भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः ॥ ११ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष ग्रहण करके शिलापर घिसे हुए दस चोखे बाणोंसे क्रुद्ध होकर, भीमसेनको विद्ध किया ॥ ११ ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैस्तोत्त्रैरिव महाद्विपः ।
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान् ।
गौतमं ताडयामास शरैर्बहुभिराहवे ॥ १२ ॥

महाबाहु प्रतापी भीमसेनने अंकुशोंके बलसे पीडित हुए मतवारे हाथीके समान कृपाचार्यके बहुत बाणोंसे विद्ध होकर, क्रोध पूर्वक बहुतसे बाणोंको चलाकर युद्धमें कृपाचार्यको विद्ध किया ॥ १२ ॥

सैन्धवस्य तथाश्वांश्च सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः ॥ १३ ॥

अनन्तर प्रलयकालीन यमराजके समान मूर्तिवाले तेजस्वी भीमसेनने सिन्धुराज जयद्रथके रथके चारों घोडे और सारथीको तीन बाणोंसे मारकर यमलोक भेज दिया ॥ १३ ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
शरांश्चिक्षेप निशितान्भीमसेनस्य संयुगे ॥ १४ ॥

महारथ जयद्रथ घोडोंसे रहित रथपरसे शीघ्र ही कूदे और उन्होंने भीमसेनके ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण युद्धमें चलाये ॥ १४ ॥

तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद भारत ।
भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

परन्तु हे भरतश्रेष्ठ ! भीमसेनने दो भल्ल बाणोंसे महात्मा सिन्धुराज जयद्रथका धनुष बीचमेंही काट डाला ॥ १५ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः ॥ १६ ॥

राजन् ! तब जयद्रथ धनुषके कटने, घोडे और सारथीके मारे जानेपर रथहीन हुए शीघ्रताके सहित चित्रसेनके रथपर चढ गये ॥ १६ ॥

अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः ।
महारथाञ्शरैर्विद्ध्वा वारयित्वा महारथः
विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १७ ॥

महारथी पाण्डुनन्दन भीमसेन रणभूमिमें उन सब महारथियोंको अपने बाणोंसे विद्ध करके अत्यन्त ही अद्भुत कर्म करने लगे और उन्होंने सब लोगोंके देखते ही सिन्धुराजको रथहीन कर दिया ॥ १७ ॥

नातीव ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् ।
स संधाय शरांस्तीक्ष्णान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
भीमं विव्याध सप्तत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १८ ॥

राजा शल्यने सब पुरुषोंके सामने जयद्रथको रथ रहित देखकर भीमसेनके पराक्रमको अधिक सहन नहीं किया । उन्होंने " खडा रह ! " कहके उत्तम पानी चढे हुए तीक्ष्ण सत्तर बाणोंको धनुषपर चढाकर भीमसेनकी ओर चलाया ॥ १८ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे ॥ १९ ॥

मारिष ! युद्धमें कृपाचार्य, कृतवर्मा, पराक्रमी भगदत्त, अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द, चित्रसेन, ॥ १९ ॥

दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान् ।
भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिंदमाः ॥ २० ॥

दुर्मर्षण, विकर्ण और पराक्रमी सिन्धुराज जयद्रथ इन शत्रुदमन करनेवाले वीरोंने शीघ्रतासे राजा शल्यकी रक्षाके निमित्त भीमसेनको अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ २० ॥

स तु तान्प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः ॥ २१ ॥

भीमसेनने भी उन सब महारथियोंको पांच बाणोंसे विद्ध किया और शल्यको सत्तर बाणोंसे विद्ध करके फिर दूसरी बार दस बाणोंसे उनके ऊपर प्रहार किया ॥ २१ ॥

तं शल्यो नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्मणि ॥ २२ ॥

शल्यने भीमको पहले नौ बाणोंसे विद्ध करके फिर उन्हें पांच बाणोंसे घायल किया और एक भल्ल बाणसे उनके सारथी के मर्मस्थानमें गहरी चोट पहुंचायी ॥ २२ ॥

विशोकं वीक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान् ।
मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २३ ॥

प्रतापी भीमसेनने अपने सारथी विशोकको शल्यके बाणसे अत्यन्त पीडित देखकर तीन बाणोंसे मद्रराज शल्यकी दोनों भुजा और छातीमें प्रहार किया ॥ २३ ॥

तथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
ताडयामास समरे सिंहवच्च ननाद च ॥ २४ ॥

और दूसरे उन सब महा धनुर्धारी महारथियोंके ऊपर तीन तीन सीधे जानेवाले बाणोंसे युद्धमें प्रहार करके सिंहनाद करने लगे ॥ २४ ॥

ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धदुर्मदम् ।
त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन् ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर उन सब महारथियोंने यत्नवान् होकर शिलापर घिसे हुए तीन तीन तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर युद्धदुर्मद पाण्डुपुत्र भीमसेनके मर्मस्थानोंको अत्यन्त विद्ध किया ॥२५॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे ।
पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाम्बुदैः ॥ २६ ॥

जैसे पर्वत वर्षते हुए बादलोंकी जलधारासे पीडित नहीं होता, वैसे ही महाधनुर्धारी भीमसेन सब महारथियोंके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर भी दुःखित न हुए ॥ २६ ॥

शल्यं च नवभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा महायशाः ।
प्राग्ज्योतिषं शतेनाजौ राजन्विव्याध वै दृढम् ॥ २७ ॥

राजन् ! अनन्तर महायशस्वी भीमसेनने चारों ओरसे तीन तीन बाणोंको चलाकर मद्रराज शल्यको अत्यन्त विद्ध करके, प्राग्ज्योतिष राजा भगदत्तको एक सौ बाणोंसे युद्धमें अतीव विद्ध किया ॥ २७ ॥

ततस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ २८ ॥

इसके अनन्तर अपने हाथोंकी शीघ्रतासे तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण चलाकर महामना कृतवर्माके धनुषको बाणके सहित काट दिया ॥ २८ ॥

अथान्यद्धनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम् ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परंतपः ॥ २९ ॥

शत्रुतापन कृतवर्माने शीघ्र ही दूसरा धनुष ग्रहण करके भीमसेनकी दोनों भृकुटी—भौंहोंके मध्य-स्थलमें एक नाराच बाणसे प्रहार किया ॥ २९ ॥

भीमस्तु समरे विद्ध्वा शल्यं नवभिरायसैः ।
भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३० ॥

उसके अनन्तर भीमसेनने रणभूमिमें शल्यको लोहेके बने हुए नौ बाणोंसे वेधकर, भगदत्तको तीन, कृतवर्माको आठ बाणोंसे विद्ध करके, ॥ ३० ॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रभृतीन्रथान् ।
ते तु तं समरे राजन्विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ ३१ ॥

कृपाचार्य आदि महारथियोंको दो दो बाणोंसे विद्ध किया । राजन् ! वे सब महारथी भी भीमसेनको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ३१ ॥

स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वतस्तैर्महारथैः ।
मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान्विचचार गतव्यथः ॥ ३२ ॥

भीमसेन उस समय उन सम्पूर्ण महारथियोंके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भी कुछ चिन्ता न करके, उन सबको तृणके समान समझकर रणभूमिमें चारों ओर घूमने लगे ॥ ३२ ॥

ते चापि रथिनां श्रेष्ठा भीमाय निशिताञ्शरान् ।
प्रेषयामासुरव्यग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥

तब उन सब श्रेष्ठ महारथियोंने सावधान होकर भीमसेनके ऊपर सौ सौ तथा हजार हजार तीक्ष्ण बाणोंको चलाना आरंभ किया ॥ ३३ ॥

तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः ।
चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महाधनाम् ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! वीरोंमें अग्रणी महारथी भगदत्तने सुवर्णदण्ड युक्त एक महा वेगवान् दृढ शक्ति ग्रहण करके भीमसेनकी ओर चलाई ॥ ३४ ॥

तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः ।
शतघ्नीं च कृपो राजञ्शरं शल्यश्च संयुगे ॥ ३५ ॥

राजन् ! महाबाहु सिन्धुराज जयद्रथने तोमर और पट्टिश, कृपाचार्यने शतघ्नी, पराक्रमी शल्यने बाण युद्धमें चलाया ॥ ३५ ॥

अथेतरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् ।
भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा ॥ ३६ ॥

और दूसरे सब धनुर्द्धारियोंने शीघ्रताके सहित भीमसेनको लक्ष्य करके बलपूर्वक पांच पांच बाणोंको चलाया ॥ ३६ ॥

तोमरं स द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणानिलात्मजः ।
पट्टिशं च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ३७ ॥

पवननन्दन भीमसेनने उन सब महारथियोंके अस्त्रोंको विफल कर दिया । क्षुरप्र अस्त्रसे तोमरास्त्रको दो टुकडे करके काट दिया, तीन बाणोंसे पट्टिशास्त्रको तिलके डंठलके समान खण्ड कर दिया ॥ ३७ ॥

स बिभेद शतघ्नीं च नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्त्वा महाबलः ॥ ३८ ॥

और कङ्कपत्र युक्त नौ बाणोंसे शतघ्नी अस्त्रको छिन्न भिन्न किया । महारथी भीमसेनने मद्रराज शल्यके चलाये हुए बाणको काटकर, ॥ ३८ ॥

शक्तिं चिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे ।
तथेतराञ्शरान्घोराञ्शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३९ ॥

भगदत्तकी चलाई हुई शक्तिको भी शीघ्रताके सहित युद्धमें सहसा काटके गिरा दिया और दूसरे सब महारथियोंके घोर बाणोंको भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ३९ ॥

भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत् ।
तांश्च सर्वान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ ४० ॥

युद्धकी श्लाघा रखनेवाले भीमसेनने एक एकके तीन तीन टुकडे करके काटके पृथ्वीमें गिराया । अनन्तर उन महाधनुर्द्धारी योद्धाओंके ऊपर तीन तीन बाणोंसे प्रहार किया ॥४०॥

तती धनञ्जयस्तत्र वर्तमाने महारणे ।
जगाम स रथेनाजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ।
निघ्नन्तं समरे शत्रून्योधयानं च सायकैः ॥ ४१ ॥

इसके अनन्तर अर्जुन उस महायुद्धमें महारथी भीमसेनको युद्धमें बाणोंसे शत्रुसेनाका संहार करते हुए और उन महारथी योद्धाओंके साथ युद्ध करते हुए देखकर, वहांपर रथसे उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥

तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीक्ष्य पाण्डवौ ।
नाशशंसुर्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभ ॥ ४२ ॥

महाराज ! तुम्हारी ओरके महारथ वीरोंने उन दोनों महात्मा पुरुषसिंह पाण्डवोंको वहींपर एकत्र उपस्थित देखकर, जयकी आशाको त्याग दिया ॥ ४२ ॥

अथार्जुनो रणे भीष्मं योधयन्वै महारथम् ।
भीष्मस्य निधनाकाङ्क्षी पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ४३ ॥

अनन्तर समरभूमिमें अर्जुन शिखण्डीको आगे करके भीष्मके वधकी अभिलाषासे भीष्मके साथ युद्ध करनेके लिये गमन कर रहे थे; ॥ ४३ ॥

आससाद रणे योधांस्तावकान्दश भारत ।
ये स्म भीमं रणे राजन्योधयन्तो व्यवस्थिताः ।
बीभत्सुस्तानथाविध्यद्भीमस्य प्रियकाम्यया ॥ ४४ ॥

भारत ! वह मार्गमें तुम्हारी ओरके दस महारथ वीरोंसे भीमसेनको युद्ध करते देखकर उनके निकट गये; राजन् ! और जो सब महारथ भीमसेनसे युद्ध कर रहे थे, अर्जुन भीमसेनके प्रियकार्यको करनेकी इच्छासे उन सबको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः ॥ ४५ ॥

तब राजा दुर्योधनने अर्जुन और भीमसेन इन दोनोंके वध करनेके निमित्त सुशर्माको भेजा ॥ ४५ ॥

सुशर्मन्गच्छ शीघ्रं त्वं बलौघैः परिवारितः ।
जहि पाण्डुसुतावेतौ धनञ्जयवृकोदरौ ॥ ४६ ॥

और यह वचन बोले, हे सुशर्मा ! तुम शीघ्र ही बडी सेनाके सहित पाण्डुपुत्र अर्जुन और भीमसेनके निकट जाकर उनका वध करो ॥ ४६ ॥

तच्छ्रुत्वा शासनं तस्य त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
अभिद्रुत्य रणे भीममर्जुनं चैव धन्विनौ ॥ ४७ ॥

प्रस्थलाधिपति त्रिगर्त्तराज सुशर्माने दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर, समरमें वेगपूर्वक गमन करके धनुर्धारी भीमसेन और अर्जुनको, ॥ ४७ ॥

रथैरनेकसाहस्रैः परिवव्रे समन्ततः ।
ततः प्रववृते युद्धमर्जुनस्य परैः सह ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ॥ ४८७२ ॥

अनेक सहस्र रथों द्वारा चारों ओरसे घेर लिया; इसके अनन्तर उस सब कुरुसेना और त्रिगर्त्त राजकी सेनाके साथ अर्जुनका युद्ध होने लगा ॥ ४८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एक सौ नवां अध्याय समाप्त ॥ १०९ ॥ ४८७२ ॥

: ११० :

सञ्जय उवाच

अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम् ।
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! अर्जुनने उस समय युद्धमें विजयके लिये यत्न करनेवाले महारथी शल्यको अपने तीक्ष्ण–बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया, ॥ १ ॥

सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ।
प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ २ ॥

सुशर्मा और कृपाचार्यको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया । अनन्तर युद्धभूमिमें प्राग्ज्योतिप राजा भगदत्त, सिन्धुराज जयद्रथ, ॥ २ ॥

चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च ।
दुर्मर्षणं च राजेन्द्र आवन्त्यौ च महारथौ ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! चित्रसेन, विकर्ण, कृतवर्मा, दुर्मर्षण और महारथी अवन्तिराज विन्द और अनुविन्दको ॥ ३ ॥

एकैकं त्रिभिरानर्छत्कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
शरैरतिरथो युद्धे पीडयन्वाहिनीं तव ॥ ४ ॥

मोर और कङ्कपङ्खसे युक्त तीन तीन बाणोंसे विद्ध करके अतिरथी अर्जुन युद्धमें तुम्हारी सेनाके दूसरे सब योद्धाओंको बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ४ ॥

×

जयद्रथो रणे पार्थं भित्त्वा भारत सायकैः ।
भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः ॥ ५ ॥

भारत ! चित्रसेनके रथपर स्थित हुए सिन्धुराज जयद्रथने युद्धमें कुन्तीपुत्र अर्जुनको अपने बाणोंसे विद्ध करके, शीघ्रताके सहित भीमसेनको भी अपने बाणोंसे विद्ध किया ॥ ५ ॥

शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः ।
विव्यधाते महाबाहुं बहुधा मर्मभेदिभिः ॥ ६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य और शल्यने भी रणभूमिमें नाना प्रकारके मर्मभेदी बाणोंसे महाबाहु अर्जुनको बहुत विद्ध किया । ॥ ६ ॥

चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशां पते ।
पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः
आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष ॥ ७ ॥

पृथ्वीपते ! मारिष ! चित्रसेन आदि तुम्हारे हर एक पुत्रोंने युद्धमें शीघ्रताके सहित पांच पांच तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुन और भीमसेनके ऊपर प्रहार किया ॥ ७ ॥

तौ तत्र रथिनां श्रेष्ठौ कौन्तेयौ भरतर्षभौ ।
अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद्बलम् ॥ ८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ, भरतकुल-भूषण दोनों कुन्तीपुत्र युद्धमें त्रिगर्त्त देशीय विशाल सेनाके योद्धाओंको पीडित करने लगे ॥ ८ ॥

सुशर्मापि रणे पार्थं विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
ननाद बलवन्नादं नादयन्वै नभस्तलम् ॥ ९ ॥

बलवान् सुशर्माने भी अर्जुनके ऊपर लोहेके बहुत बाणोंसे प्रहार करके बलपूर्वक सिंहनाद करके, आकाश निनादित किया ॥ ९ ॥

अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधनञ्जयौ ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणै रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः । ॥ १० ॥

पराक्रमसे युक्त दूसरे अनेक शूरवीर योद्धा शिला पर घिसे हुए सुवर्णपंखयुक्त, सीधे जानेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे भीमसेन और अर्जुनको विद्ध करने लगे ॥ १० ॥

तेषां तु रथिनां मध्ये कौन्तेयो रथिनां वरौ ।
क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यरोचताम् ।
आमिषेप्सू गवां मध्ये सिंहाविव बलोत्कटौ ॥ ११ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ उदार स्वभाववाले बलवान् कुन्तीकुमार भीम और अर्जुन दोनों ही, मानो गौओंके समूहमें मांसकी अभिलाषा करनेवाले पराक्रमशील दो सिंहोंकी भांति, सम्पूर्ण रथियोंके बीच क्रीडा करते हुए विचित्र दिखाई देने लगे ॥ ११ ॥

छित्त्वा धनूंषि वीराणां शरांश्च बहुधा रणे ।
पातयामासतुर्वीरौ शिरांसि शतशो नृणाम् ॥ १२ ॥

वे दोनों वीर रणभूमिमें सैकडों शूरवीर योद्धाओंके धनुष बाणोंको काटके, कितने ही वीरोंका शिर काटकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ १२ ॥

रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः ।
गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुर्व्यां महामृधे ॥ १३ ॥

अनेक रथ उस युद्धभूमिमें टूट गए; और सैकडों घोडे और सवारोंके सहित कितने ही हाथी मरकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १३ ॥

रथिनः सादिनश्चैव तत्र तत्र निसूदिताः ।
दृश्यन्ते बहुधो राजन्वेष्टमानाः समन्ततः ॥ १४ ॥

राजन् ! चारों ओर कितने ही रथी और घुडसवार शस्त्रोंसे पीडित होके पृथ्वी पर गिरते और कोई कम्पयुक्त दिखाई देते थे ॥ १४ ॥

हतैर्गजपदात्योघैर्वाजिभिश्च निसूदितैः
रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ १५ ॥

वहां मरे हुए हाथी, पैदल चलनेवाले योद्धाओं, घोडे और जगह जगह पर टूटे हुए बहुतसे रथोंसे पृथ्वी पूरित होगई ॥ १५ ॥

छत्रैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अङ्कुशैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत ॥ १६ ॥

भारत ! अनेक टुकडोंमें कटे और टूटे हुए छत्र, गिरी हुई ध्वजा, फेंके हुए अंकुश, कोडे, ॥१६॥

केयूरैरङ्गदैर्हारै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
उष्णीषैरपविद्धैश्च चामरव्यजनैरपि ॥ १७ ॥

केयूर, अंगद, हार, रंकु मृगके कोमल चर्म, नीचे पडी हुई वीरोंकी पगडियां, माला, चंवर, पंखे आदि ॥ १७ ॥

तत्र तत्रापविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
उरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी ॥ १८ ॥

और इधर उधर पडी हुई राजाओंकी चन्दनचर्चित भुजा तथा जङ्घासे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥१८॥

तत्राद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
शरैः संवार्य तान्वीरान्निजघान बलं तव ॥ १९ ॥

युद्धभूमिमें उस समय मैंने अर्जुनका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि उन्होंने अपने बाणोंसे उन सब महारथ वीरोंका निवारण करके, तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका नाश करने लगे ॥१९॥

पुत्रस्तु तव तं दृष्ट्वा भीमार्जुनसमागमम् ।
गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाभये ॥ २० ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने भीमसेन और अर्जुनके पराक्रमयुक्त मिलनको देखकर, महाभयके कारण गङ्गानन्दन भीष्मके रथके समीपमें गमन किया ॥ २० ॥

कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यावाजग्मुः संयुगं तदा ॥ २१ ॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा, सिन्धुराज जयद्रथ और अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द भी उस समयमें युद्धके लिये आये ॥ २१ ॥

ततो भीमो महेष्वासः फल्गुनश्च महारथः ।
कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे ॥ २२ ॥

अनन्तर महाधनुर्द्धारी भीमसेन और महारथी अर्जुन उस महा भयङ्कर कुरु सेनाको चारों ओर तितर बितर करने लगे ॥ २२ ॥

ततो बर्हिणवाजानामयुतान्यर्बुदानि च ।
धनञ्जयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म संयुगे ॥ २३ ॥

तुम्हारी ओरके सब क्षत्रिय योद्धा एक ही साथ मोरपंखयुक्त अनेक अयुत और अर्बुद अर्बुद बाणोंको अर्जुनके रथपर युद्धमें चलाने लगे ॥ २३ ॥

ततस्ताञ्शरजालेन संनिवार्य महारथान् ।
पार्थः समन्तात्समरे प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २४ ॥

तब अर्जुन उन सब महारथी राजाओंको अपने बाणोंके जालसे निवारण करके, सम्पूर्ण योद्धाओंको यमपुरीमें भेजने लगे ॥ २४ ॥

शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥

तब महारथी शल्यने क्रुद्ध होकर रणभूमिमें मानो क्रीडा करते हुए, अर्जुनकी छातीमें अनेक तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे प्रहार किया ॥ २५ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं च पञ्चभिः ।
अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि ॥ २६ ॥

अर्जुनने पांच बाणोंसे उनका धनुष और अंगुलित्राण काटकर, फिर तीक्ष्ण बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंको अत्यन्त ही विद्ध किया ॥ २६ ॥

अथान्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम् ।
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः ॥ २७ ॥
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २८ ॥

पराक्रमी मद्रराज शल्यने एक दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके समरमें क्रुद्ध होकर तीन बाणोंसे युद्धमें अर्जुनके ऊपर प्रहार किया, महाराज! फिर पांच बाणोंसे वसुदेवनन्दन कृष्णको विद्ध किया; अनन्तर नौ बाणोंसे भीमसेनकी दोनों भुजा और वक्षस्थल विद्ध किया ॥२७-२८॥

ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः ।
दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः ॥ २९ ॥
यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः ।
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुस्तौ महारथौ ॥ ३० ॥

हे राजन्! अनन्तर द्रोणाचार्य और महारथी मगधराज, दुर्योधनकी आज्ञासे जिस स्थानपर दोनों महारथी पाण्डुकुमार भीमसेन और अर्जुन कौरवोंकी महासेनाका नाश कर रहे थे, उसी स्थानपर उपस्थित हुए ॥ २९-३० ॥

जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युवा ।
विव्याध निशितैर्बाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥ ३१ ॥

हे भारत! मगधदेशके तरुण राजा जयत्सेनने प्रचण्ड अस्त्रोंको धारण करनेवाले भीमसेनको उत्तम पानी चढे हुए आठ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३१ ॥

तं भीमो दशभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ॥ ३२ ॥

भीमसेनने उनको दस बाणोंसे विद्ध करके, फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया, अनन्तर एक तीक्ष्ण भल्ल बाणसे उनके सारथीको मारकर रथकी बैठकसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ३२ ॥

उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः ।
मागधोऽपहृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥

तब मगधराज जयत्सेनके रथके घोडे भ्रमित होकर चारों ओर दौडने लगे, उससे वह सम्पूर्ण सेनाके सम्मुख ही युद्धसे पृथक् हुए ॥ ३३ ॥

द्रोणस्तु विवरं लब्ध्वा भीमसेनं शिलीमुखैः ।
विव्याध बाणैः सुशितैः पञ्चषष्ट्या तमायसैः ॥ ३४ ॥

इस समय द्रोणाचार्यने इष्ट छिद्र देखकर, भीमसेनको लोहेके बने हुए पैंसठ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३४ ॥

तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे ।
विव्याध नवभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत ॥ ३५ ॥

भारत ! युद्धमें प्रशंसित भीमसेनने रणभूमिमें पिताके समान गुरु द्रोणाचार्यको नौ भल्ल बाणोंसे विद्ध करके, फिर शीघ्रताके सहित साठ बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३५ ॥

अर्जुनस्तु सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
व्यधमत्तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथानिलः ॥ ३६ ॥

इधर अर्जुनने सुशर्माको लोहेके अनेक बाणोंसे विद्ध करके, जैसे वायु महामेघ मण्डलीको उडाकर एक दिशामें कर देता है, वैसे ही त्रिगर्त्तकी सेनाको रणभूमिसे तितर बितर करने लगे ॥ ३६ ॥

ततो भीष्मश्च राजा च सौबलश्च बृहद्बलः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ३७ ॥

इसके अनन्तर भीष्म, राजा दुर्योधन और सौबल बृहद्बल क्रुद्ध होकर भीमसेन और अर्जुनके ऊपर दौडे ॥ ३७ ॥

तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ३८ ॥

शूरवीर पराक्रमी पाण्डव और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न मुख पसारे हुए यमराजके समान भीष्मकी ओर युद्धमें दौडे ॥ ३८ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य भारतानां पितामहम् ।
अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा यतव्रतम् ॥ ३९ ॥

शिखण्डी कुरु-पितामह भीष्मके समीप पहुंचकर उन यतव्रतीका भय त्यागके प्रसन्नतापूर्वक उनकी ओर दौडने लगे ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
अयोधयन्रणे भीष्मं संहताः सह सृञ्जयैः ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर आदि सम्पूर्ण पाण्डव शिखण्डीको आगे करके सम्पूर्ण सृञ्जयोंके सहित रणभूमिमें भीष्मके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ४० ॥

तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ ४१ ॥

तुम्हारी ओरके सब शूरवीर योद्धा लोग यतव्रती भीष्मको युद्धमें आगे करके शिखण्डी आदि पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कौरवाणां भयावहम् ।
तत्र पाण्डुसुतैः सार्धं भीष्मस्य विजयं प्रति ॥ ४२ ॥

उस समय वहां भीष्मकी विजयके निमित्त कौरवोंका पाण्डवोंके साथ भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ ४२ ॥

तावकानां रणे भीष्मो ग्लह आसीद्विशां पते ।
तत्र हि द्यूतमायातं विजयायेतराय वा ॥ ४३ ॥

हे राजन् ! तुम्हारी ओरके योद्धाओंके साथ आपसमें एक दूसरेको जीतनेकी अभिलाषासे पाण्डवोंका संग्रामरूपी जुएका खेल आरम्भ हुआ । हे राजन् ! उसमें आप लोगोंके जयके विषयमें भीष्म ही पण (बाजी) स्वरूप हुए ॥ ४३ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज सर्वसैन्यान्यचोदयत् ।
अभिद्रवत गाङ्गेयं मा भैष्ट नरसत्तमाः ॥ ४४ ॥

हे भारत ! उस समय धृष्टद्युम्न सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंसे प्रोत्साहित करते हुए बोले; "हे नरोत्तम क्षत्रियो ! तुम लोग भय त्यागके गंगानन्दन भीष्मकी ओर बढो ॥ ४४ ॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा पाण्डवानां वरूथिनी ।
भीष्ममेवाभ्ययात्तूर्णं प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ ४५ ॥

सेनापति धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर पाण्डवोंकी विशाल सेना महायुद्धमें प्राणकी आशा छोडके शीघ्रतासे भीष्मकी ओर दौडी ॥ ४५ ॥

भीष्मोऽपि रथिनां श्रेष्ठः प्रतिजग्राह तां चमूम् ।
आपतन्तीं महाराज वेलामिव महोदधिः ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ४९१८ ॥

महाराज ! जैसे समुद्रके प्रबल वेगको तट ग्रहण करता है, वैसे ही रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने भी अपने ऊपर आती हुई उस सम्पूर्ण सेनाको अपने अस्त्रोंके बलसे रोक दिया ॥ ४६ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एक सौ दसवां अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥ ४९१८ ॥

: १११ :

धृतराष्ट्र उवाच

कथं शांतनवो भीष्मो दशमेऽहनि सञ्जय ।
अयुध्यत महावीर्यैः पाण्डवैः ससृञ्जयैः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! शान्तनुनन्दन महाबलवान् भीष्मने दसवें दिन पाण्डव और सृञ्जयोंके सहित किस प्रकारसे युद्ध किया था ? ॥ १ ॥

कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान्प्रत्यवारयन् ।
आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याहवशोभिनः ॥ २ ॥

और कौरवोंने पाण्डवोंको किस प्रकार युद्धमें रोका ? युद्धमें प्रशंसित भीष्मने उस दसवें दिन जो महाघोर संग्राम किया था, उसे तुम विस्तारपूर्वक मेरे निकटमें वर्णन करो ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

कुरवः पाण्डवैः सार्धं यथायुध्यन्त भारत ।
यथा च तदभूद्युद्धं तत्ते वक्ष्यामि शृण्वतः ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– हे भारत ! कौरवोंने पाण्डवोंके साथ जिस प्रकारसे युद्ध किया था, और वह युद्ध जिस प्रकार हुआ, उसे मैं पूर्णरीतिसे कहता हूं, तुम चित्त लगाकर सुनो ॥ ३ ॥

प्रेषिताः परलोकाय परमास्त्रैः किरीटिना ।
अहन्यहनि संप्राप्तास्तावकानां रथव्रजाः ॥ ४ ॥

प्रति दिन किरीटधारी अर्जुनने तुम्हारी सेनाके अनेक रथियोंका अपने उत्तम अस्त्रोंसे वध करके उन्हें यमलोकमें भेजा था ॥ ४ ॥

यथाप्रतिज्ञं कौरव्यः स चापि समितिंजयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ५ ॥

और कौरवोंमें श्रेष्ठ, युद्ध जीतनेवाले भीष्मने भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार नित्य कुन्तीपुत्र पाण्डवोंकी सेनाके पुरुषोंका वध किया था ॥ ५ ॥

कुरुभिः सहितं भीष्मं युध्यमानं महारथम् ।
अर्जुनं च सपाञ्चाल्यं दृष्ट्वा संशयिता जनाः ॥ ६ ॥

तुम्हारी ओरसे कौरवों सहित महारथी भीष्म और पाण्डवोंकी ओरके पाञ्चाल वीरोंके सहित अर्जुन युद्ध कर रहे थे, यह देखके जयके विषयमें सबको संशय उत्पन्न हुआ था; ॥ ६ ॥

दशमेऽहनि तस्मिंस्तु भीष्मार्जुनसमागमे ।
अवर्तत महारौद्रः सततं समितिक्षयः ॥ ७ ॥

परन्तु दसवें दिन जब भीष्म और अर्जुनका समागम होने लगा, तब दोनों सेनाके शूरवीर योद्धाओंका सतत भयङ्कर नाश होने लगा ॥ ७ ॥

तस्मिन्नयुतशो राजन्भूयश्च स परंतपः ।
भीष्मः शांतनवो योधाञ्जघान परमास्त्रवित् ॥ ८ ॥

राजन् ! परन्तप और उत्तम शस्त्रोंके जाननेवाले शान्तनुपुत्र भीष्मने उस दिन दस दस हजार योद्धाओंको कई बार अपने अस्त्रोंके बलसे मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ८ ॥

येषामज्ञातकल्पानि नामगोत्राणि पार्थिव ।
ते हतास्तत्र भीष्मेण शूराः सर्वेऽनिवर्तिनः ॥ ९ ॥

पार्थिव ! जिन सबके नाम और गोत्र अज्ञात प्राय हो गये और जो युद्धमें पराक्रमी और पीछे न हटनेवाले शूरवीर योद्धा थे, वे सब भीष्मके बाणोंसे मर कर यमलोकमें पहुंचे ॥९॥

दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीम् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परंतपः ॥ १० ॥

इसी प्रकार शत्रुनाशन, धर्मात्मा महाबाहु तुम्हारे पिता भीष्मने दस दिन पर्यन्त पाण्डवोंकी सेनाको अत्यन्त पीडित करके, अपने प्राणकी आशाको त्याग दिया ॥ १० ॥

स क्षिप्रं वधमन्विच्छन्नात्मनोऽभिमुखं रणे ।
न हन्यां मानवश्रेष्ठान्संग्रामेऽभिमुखानिति ॥ ११ ॥

वह युद्धमें सम्मुख रहकर शीघ्र ही अपने मरनेकी इच्छा करके, " अब सम्मुख आये हुए अनेक श्रेष्ठ पुरुषोंका वध नहीं करूंगा " ॥ ११॥

चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव ।
अभ्याशस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

ऐसा विचार कर, महाराज ! तुम्हारे पिता महाबाहु देवव्रत समीपमें खडे हुए पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे बोले; ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
शृणु मे वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः ॥ १३ ॥

" हे पुत्र ! सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाज्ञानी धर्मात्मा युधिष्ठिर ! मैं तुम्हारे निकट स्वर्ग-प्राप्तिके निमित्त धर्मयुक्त वचन कहता हूं; उसको तुम सुनो । ॥ १३ ॥

निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनानेन भारत ।
घ्नतश्च मे गतः कालः सुबहून्प्राणिनो रणे ॥ १४ ॥

तात भारत ! मैंने युद्धमें अनेक पुरुषोंका वध करके बहुत समय बिताया है; इस समय अब मैं अपने शरीरके रखनेकी इच्छा नहीं करता हूं; ॥ १४ ॥

तस्मात्पार्थं पुरोधाय पाञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा ।
मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १५ ॥

इससे यदि मेरा प्रिय कार्य करनेकी इच्छा करते हो, तो पाञ्चाल योद्धा और सृञ्जयोंके सहित अर्जुनको आगे करके शीघ्र ही मेरे वधके निमित्त यत्न करो । " ॥ १५ ॥

×

तस्य तन्मतमाज्ञाय पाण्डवः सत्यदर्शनः ।
भीष्मं प्रतिययौ यत्तः संग्रामे सह सृञ्जयैः ॥ १६ ॥

तब सत्यदर्शी पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने भीष्मका अभिप्राय जानकर युद्धमें सृञ्जय वीरोंके सहित प्रयत्न पूर्वक भीष्मकी ओर गमन किया ॥ १६ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजन्पाण्डवश्च युधिष्ठिरः ।
श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्बलम् ॥ १७ ॥

हे राजन् ! अनन्तर धृष्टद्युम्न और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर भीष्मका यह वचन सुनकर, सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंसे बोले; ॥ १७ ॥

अभिद्रवत युध्यध्वं भीष्मं जयत संयुगे ।
रक्षिताः सत्यसंधेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना ॥ १८ ॥

तुम लोग भीष्मकी ओर दौडो; उनके साथ युद्ध करके संग्राममें उन्हें पराजित करके विजय पाओ । शत्रुओंको जीतनेवाले सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन तुम लोगोंकी रक्षा करेंगे ॥ १८ ॥

अयं चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः ।
भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥ १९ ॥

और सेनापति महाधनुर्धारी धृष्टद्युम्न और भीमसेन भी युद्धमें निश्चयही तुम सबकी रक्षा करेंगे ॥ १९ ॥

न वै भीष्माद्भयं किंचित्कर्तव्यं युधि सृञ्जयाः ।
ध्रुवं भीष्मं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २० ॥

हे सृञ्जय पुरुषो ! तुम लोग युद्धमें भीष्मसे तनिक भी मत डरो, हमलोग शिखण्डीको आगे करके भीष्मको जीतेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २० ॥

तथा तु समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा संजग्मुः क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनंजयम् ।
भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥ २२ ॥

दसवें दिन पाण्डव लोग इसी प्रकारसे प्रतिज्ञा करके ब्रह्मलोकमें गमन करनेका निश्चय करके क्रुद्धचित्तसे, शिखण्डी और पाण्डुपुत्र अर्जुनको आगे करके भीष्मके वधके निमित्त यत्नपूर्वक उनकी ओर बढने लगे ॥ २१-२२ ॥

ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
द्रोणेन सहपुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे महाबली पराक्रमी नाना देशोंके राजा और अश्वत्थामाके सहित द्रोणाचार्य अपनी सेनाके सहित ॥ २३ ॥

दुःशासनश्च बलवान्सह सर्वैः सहोदरैः ।
भीष्मं समरमध्यस्थं पालयांचक्रिरे तदा ॥ २४ ॥

और बलवान् दुःशासन अपने सब भाईयोंको साथ लेकर, युद्धभूमिमें स्थित भीष्म पितामहकी रक्षा करने लगे ॥ २४ ॥

ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य यतव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग यतव्रती भीष्मको आगे करके, रणभूमिमें शिखण्डी आदि पाञ्चाल देशीय वीरों और पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥

चेदिभिश्च सपाञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ।
ययौ शांतनवं भीष्मं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २६ ॥

कपिध्वजावाले अर्जुनने शिखण्डीको अपने आगे करके चेदि और पाञ्चालदेशीय योद्धाओंके सहित शान्तनुपुत्र भीष्मके संमुख गमन किया ॥ २६ ॥

द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।
युधामन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥ २७ ॥

शिनिपौत्र सात्यकि अश्वत्थामासे; धृष्टकेतु पौरवके सङ्ग और अभिमन्यु अनुयायी और सेवकोंके सहित दुर्योधनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥

विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद परंतपः ॥ २८ ॥

शत्रुतापन राजा विराटने अपनी सेनाको लेकर सैन्ययुक्त वृद्धक्षत्रके पुत्र जयद्रथपर आक्रमण किया ॥ २८ ॥

मद्रराजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः ।
भीमसेनाभिगुप्तश्च नागानीकमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर महाधनुर्धर मद्रराज शल्य और उनकी सेना, और अच्छी प्रकारसे चारों ओरसे रक्षित भीमसेन हाथियोंकी सेनाके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २९ ॥

अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
द्रोणं प्रति ययौ यत्तः पाञ्चाल्यः सह सोमकैः ॥ ३० ॥

धृष्टद्युम्न सोमकोंके सहित यत्नवान् होकर, निवारण न होने योग्य, सब अस्त्र शस्त्रोंको जाननेवाले महा पराक्रमी द्रोणाचार्यके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

कर्णिकारध्वजं चापि सिंहकेतुररिंदमः ।
प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३१ ॥

शत्रुनाशन, सिंह ध्वजासे युक्त राजपुत्र बृहद्बल कर्णिकारके चिन्हयुक्तध्वजावाले सुभद्रानन्दन अभिमन्युकी ओर दौडे ॥ ३१ ॥

शिखण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
राजभिः समरे सार्धमभिपेतुर्जिघांसवः ॥ ३२ ॥

तुम्हारे सब पुत्र बहुतसे राजाओंके सहित एकत्र होकर शिखण्डी और पाण्डुपुत्र अर्जुनके वधकी इच्छा करके, उन दोनों वीरोंके संमुख उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥

तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे ।
संप्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥ ३३ ॥

जब दोनों ओरकी महासेना अत्यन्त भयानक रूपसे पराक्रमको प्रकाशित करती हुई रणभूमिमें एक दूसरेकी ओर दौडी, उस समय पृथ्वी कांपने लगी ॥ ३३ ॥

तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत ।
तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शांतनवं रणे ॥ ३४ ॥

भारत ! शान्तनुपुत्र भीष्मको देखकर तुम्हारे और शत्रुपक्षके सब योद्धा समरमें आपसमें युद्ध करने लगे; ॥ ३४ ॥

ततस्तेषां प्रयततामन्योन्यमभिधावताम् ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३५ ॥

भारत ! एक दूसरेकी ओर यत्नपूर्वक दौडने लगे । तब उस सम्पूर्ण सेनाके बीच महाघोर शब्द सब दिशाओंमें उत्पन्न होने लगा ॥ ३५ ॥

शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
सिंहनादैश्च सैन्यानां दारुणः समपद्यत ॥ ३६ ॥

शङ्ख, नगाडे और ढोल आदि जुझाऊ बाजोंका गंभीर घोष और हाथियोंके चिङ्घाडका शब्द तथा वीरोंका सिंहनाद बडा भयानक सुनाई देने लगा ॥ ३६ ॥

सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा ।
वीराङ्गदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥ ३७ ॥

सम्पूर्ण राजाओंकी चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाली प्रभा शूरोंके उत्तम कवच और किरीटोंके सामने फिकी पड गई ॥ ३७ ॥

रजोमेघाश्च संजज्ञुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः ।
धनुषां चैव निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥ ३८ ॥

दोनों सेनाके दौडने पर जो धूलि उडी, वह वादलके समान दिखाई देने लगी; उसमें वीरोंके अस्त्र शस्त्र बिजलीके समान दीख पडते थे; धनुषोंकी टंकारध्वनि अत्यंत भयंकर प्रतीत होती थी ॥ ३८ ॥

बाणशङ्खप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनाः
रथघोषश्च संजग्मुः सेनयोरुभयोरपि ॥ ३९ ॥

दोनों सेनाके धनुष, बाण, शङ्खोंकी आवाज, भेरियोंके शब्द जोरजोरसे होते थे और दोनों सेनाओंके रथोंके चलनेका शब्द और वीर पुरुषोंके तर्जन गर्जनके शब्द चारों ओरसे सुन पडते थे ॥ ३९ ॥

प्रासशक्त्यृष्टिसंघैश्च बाणौघैश्च समाकुलम् ।
निष्प्रकाशमिवाकाशं सेनयोः समपद्यत ॥ ४० ॥

आकाश मण्डल दोनों सेनाके प्रास, शक्ति, ऋष्टि और बाणोंके समूहसे पूरित होकर प्रकाशहीनसा हो गया ॥ ४० ॥

अन्योन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे ।
कुञ्जराः कुञ्जराञ्जघ्नुः पदातींश्च पदातयः ॥ ४१ ॥

उस महासंग्राममें रथी रथियोंको और घुडसवार घुडसावारोंको मारकर पृथ्वीमें गिराने लगे; पैदल चलनेवाले योद्धा पदातिसेनाके वीरोंका वध करने लगे और हाथीवाले शूरवीर योद्धा गजसेनाके योद्धाओंको मारकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ४१ ॥

तदासीत्सुमहद्युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥ ४२ ॥

हे नरव्याघ्र राजन् ! जैसे मांसके निमित्त दो बाज पक्षियोंका आपसमें युद्ध होता है, वैसेही भीष्मके निमित्त पाण्डवोंके सहित कौरवोंका महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ४२ ॥

तयोः समागमो घोरो बभूव युधि भारत ।
अन्योन्यस्य वधार्थाय जिगीषूणां रणाजिरे ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ४९६१ ॥

भारत ! वे सब योद्धा एक दूसरेके वधकी इच्छा करके क्रुद्ध होकर विजयकी अभिलाषा करके भयङ्कर युद्ध करने लगे ॥ ४३ ॥

महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ ४९६१ ॥

: ११२ :

सञ्जय उवाच

अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् ।
महत्या सेनया युक्तो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! पराक्रमी बडी भारी सेनासे युक्त अभिमन्यु भीष्मके वधके निमित्त तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥

दुर्योधनो रणे कार्ष्णिं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २ ॥

दुर्योधनने समरभूमिमें नौ तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुन पुत्र अभिमन्युके ऊपर प्रहार किया और फिर क्रुद्ध होकर उसने उन्हें तीन बाणोंसे और आघात किया ॥ २ ॥

तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरामिव स्वसाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति ॥ ३ ॥

अभिमन्युने क्रुद्ध होकर समरमें मृत्युकी बहिनके समान एक भयङ्कर शक्ति दुर्योधनके रथपर चलाई ॥ ३ ॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशां पते ।
द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे महारथी पुत्र दुर्योधनने उस महाघोर शक्तिको सहसा संमुख आती देखकर क्षुरप्र अस्त्रसे काटके उसे दो खण्ड कर दिया ॥ ४ ॥

तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥

अर्जुन पुत्र अभिमन्युने उस शक्तिको कटती हुई देखके अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीन बाणोंसे राजा दुर्योधनकी दोनों भुजा और वक्षस्थलमें प्रहार किया ॥ ५ ॥

पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे ।
दशभिर्भरतश्रेष्ठ दुर्योधनममर्षणम् ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर पराक्रमी अभिमन्युने फिर दूसरी बार अमर्षण दुर्योधनके दोनों स्तनोंके बीचमें भयानक दस बाण मारे ॥ ६ ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं चित्ररूपं च भारत ।
ईक्षितृप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥ ७ ॥

हे भारत ! उन दोनोंका वह भयङ्कर युद्ध अत्यन्त ही विचित्र और आंखोंको प्रसन्न करनेवाला था, सब लोगोंमें प्रशंसाके योग्य था, सम्पूर्ण राजा उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥

भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च।
युयुधाते रणे वीरौ सौभद्रकुरुपुंगवौ ॥ ८ ॥

हे भारत! सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और कुरुराज दुर्योधन, इन दोनों वीरोंका भीष्मके वध तथा अर्जुनकी विजयके निमित्त उस रणभूमिमें महाघोर युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥

सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुंगवः।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परंतपः ॥ ९ ॥

शत्रुनाशन ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर युद्धमें सात्यकिकी छातीमें अत्यंत वेगशाली एक नाराच बाणसे प्रहार किया ॥ ९ ॥

शैनेयोऽपि गुरोः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत।
अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १० ॥

हे भारत! अमेयात्मा सात्यकिने गुरुपुत्र अश्वत्थामाके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें कंकपत्रोंसे युक्त नौ बाणोंसे प्रहार किया ॥ १० ॥

अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः।
त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ११ ॥

अश्वत्थामाने भी समरमें सात्यकिके ऊपर पहले नौ बाणोंको चलाकर, फिर शीघ्रताके सहित सात्यकिकी दोनों भुजा और छातीमें तीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः।
द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान महायशाः ॥ १२ ॥

महायशस्वी महाधनुर्द्धारी सात्यकिने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर अश्वत्थामाके ऊपर भी फिर तीन बाणोंसे प्रहार किया ॥ १२ ॥

पौरवो धृष्टकेतुं च शरैरासाद्य संयुगे।
बहुधा दारयांचक्रे महेष्वासं महारथम् ॥ १३ ॥

महारथी पौरवने बडे धनुर्धारी धृष्टकेतुको अपने बाणोंसे आच्छादित करके अनेक स्थानमें विद्ध किया ॥ १३ ॥

तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः।
त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याध सुमहाबलः ॥ १४ ॥

तब महाबलवान् महारथी धृष्टकेतुने भी युद्धमें शीघ्रतासे तीस तीक्ष्ण बाणोंसे पौरवको विद्ध किया ॥ १४ ॥

पौरवस्तु धनुश्छित्त्वा धृष्टकेतोर्महारथः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध दशभिः शरैः ॥ १५ ॥

महारथी पौरवने धृष्टकेतुके धनुषको काटकर, बलपूर्वक सिंहनाद किया और फिर अपने तीक्ष्ण दस बाणोंसे उनको विद्ध किया ॥ १५ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः ।
आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ १६ ॥

महाराज ! धृष्टकेतुने दूसरा धनुष लेकर तिहत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे पौरवके ऊपर प्रहार किया ॥ १६ ॥

तौ तु तत्र महेष्वासौ महामात्रौ महारथौ ।
महता शरवर्षेण परस्परमवर्षताम् ॥ १७ ॥

वह महारथी महाधनुर्द्धारी महात्मा दोनों वीर इसी प्रकारसे एक दूसरेको अपने बाणोंकी भारी वर्षासे विद्ध करने लगे ॥ १७ ॥

अन्योन्यस्य धनुश्छित्त्वा हयान्हत्वा च भारत ।
विरथावसियुद्धाय संगतौ तौ महारथौ ॥ १८ ॥

भारत ! वे दोनों महारथी वीर एक दूसरेके रथके घोडोंको मारकर और एक दूसरेके धनुपको काटके, रथहीन होकर तलवार ग्रहण करके, क्रोधित होकर परस्पर खड्ग युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपरिष्कृते ।
तारकाशतचित्रौ च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ ॥ १९ ॥

वे दोनों वीर विचित्र रूपकी सौ–सौ चन्द्र, सूर्य और तारोंसे चित्रित सुवर्णभूषित ऋषभ–चर्मकी बनी हुई ढाल और तलवार ग्रहण करके शोभा पाते थे ॥ १९ ॥

प्रगृह्य विमलौ राजंस्तावन्योन्यमभिद्रुतौ ।
वाशितासंगमे यत्तौ सिंहाविव महावने ॥ २० ॥

राजन् ! धृष्टकेतु और पौरव दोनों विजयके लिये प्रयत्नशील हो इस प्रकारसे एक दूसरेकी ओर दौडे, जैसे महान् वनमें ऋतुमती सिंहिनीके संगम समयमें दो सिंह एक दूसरेकी ओर दौडते हैं ॥ २० ॥

मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ।
चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् ॥ २१ ॥

वे दोनों एक दूसरेको आक्रमण करनेकी इच्छासे मण्डलाकार पैंतराकी चाल दिखाते हुए आगे बढते, पीछे हटते और एक दूसरेको ललकारते हुए रणभूमिमें भ्रमण करने लगे ॥ २१ ॥

पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना ।
ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्　　॥ २२ ॥

अनन्तर पौरवने " खडा रह ! " कहके धृष्टकेतुके ललाटमें अपनी बडी तलवारसे क्रोधित होकर प्रहार किया ॥ २२ ॥

चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम् ।
आजघान शिताग्रेण जत्रुदेशे महासिना　　॥ २३ ॥

चेदिराज धृष्टकेतुने भी पुरुषोंमें मुख्य पौरवके ऊपर समरमें अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवार चलाई ॥ २३ ॥

तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे ।
अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिंदमौ　　॥ २४ ॥

हे राजन् ! शत्रुनाशन दोनों शूरवीर महा संग्राममें इसी प्रकारसे आपसमें एक दूसरेके ऊपर वेगपूर्वक खड्गका प्रहार करके, अन्तमें दोनों अत्यन्त पीडित हो पृथ्वीमें गिरे ॥ २४ ॥

ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव ।
जयत्सेनो रथे राजन्नपोवाह रणाजिरात्　　॥ २५ ॥

तब तुम्हारे पुत्र जयत्सेनने पौरवको अपने रथपर उठाके उन्हें उस रथसेही रणभूमिमें पृथक् किया ॥ २५ ॥

धृष्टकेतुं च समरे माद्रीपुत्रः परंतपः ।
अपोवाह रणे राजन्सहदेवः प्रतापवान्　　॥ २६ ॥

राजन् ! शत्रुतापने प्रतापवान् माद्रीपुत्र सहदेवने धृष्टकेतुको अपने रथपर चढाकर युद्धभूमिसे पृथक् किया ॥ २६ ॥

चित्रसेनः सुशर्माणं विद्ध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध तं षष्ट्या पुनश्च नवभिः शरैः　　॥ २७ ॥

चित्रसेनने अनेक बाणोंसे सुशर्माको विद्ध करके, फिर उन्हें साठ बाणोंसे विद्ध किया; उसके अनन्तर फिर दूसरी बार नौ बाणोंसे विद्ध किया ॥ २७ ॥

सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं विशां पते ।
दशभिर्दशभिश्चैव विव्याध निशितैः शरैः　　॥ २८ ॥

पृथ्वीपते ! सुशर्माने भी क्रुद्ध होकर तुम्हारे पुत्र चित्रसेनको दस दस तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ २८ ॥

चित्रसेनश्च तं राजंस्त्रिंशता नतपर्वणाम् ।
आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ।
भीष्मस्य समरे राजन्यशो मानं च वर्धयन् ॥ २९ ॥

राजन् ! फिर भी चित्रसेनने क्रुद्ध होकर तीस तीक्ष्ण वाणोंसे युद्धमें सुशर्माके ऊपर प्रहार किया । इसी प्रकारसे भीष्मके निमित्त उसने यश और कीर्त्तिको समरमें बढाया ॥ २९ ॥

सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्बलमयोधयत् ।
आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३० ॥

हे राजन् ! पराक्रमी सुभद्राकुमार अभिमन्यु राजकुमार बृहद्बलके सङ्ग युद्ध करने लगे । कोशलराज बृहद्बलने पहिले अर्जुनकुमार अभिमन्युको लोहेके पांच वाणोंसे विद्ध करके, फिर दूसरी वार वीस तीक्ष्ण वाणोंसे विद्ध किया ॥ ३० ॥

बृहद्बलं च सौभद्रो विद्ध्वा नवभिरायसैः ।
नाकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः पुनः ॥ ३१ ॥

अनन्तर अभिमन्यु कोशलराज बृहद्बलको लोहेके नौ वाणोंसे विद्ध करके, उन्हें युद्धमें विचलित न कर सके; तब फिर अपने वाणोंसे वार वार उनको विद्ध करने लगे ॥ ३१ ॥

कौसल्यस्य पुनश्चापि धनुश्चिच्छेद फाल्गुनिः ।
आजघान शरैश्चैव त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ॥ ३२ ॥

और अर्जुनकुमारने अपने तीक्ष्ण वाणोंसे उनके धनुषको भी काटके, फिर कङ्क पङ्खसे युक्त तीस वाणोंसे राजा बृहद्बलके ऊपर प्रहार किया ॥ ३२ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः ।
फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः ॥ ३३ ॥

राजकुमार बृहद्बलने दूसरा धनुष ग्रहण करके क्रुद्ध चित्तसे समरमें अनेक वाणोंको चलाकर अर्जुनपुत्र अभिमन्युको विद्ध किया ॥ ३३ ॥

तयोर्युद्धं समभवद्भीष्महेतोः परंतप ।
संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः ।
यथा देवासुरे युद्धे मयवासवयोरभूत् ॥ ३४ ॥

हे परन्तप ! महाराज ! जैसे देवता और असुरोंके युद्धमें इन्द्र और मयका युद्ध हुआ था, उसी प्रकारसे भीष्मके निमित्त विचित्र युद्ध करनेवाले पराक्रमी अभिमन्यु और राजा बृहद्बल क्रुद्ध होकर आपसमें समरमें युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

भीमसेनो गजानीकं योधयन्बह्वशोभत ।
यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन्पर्वतोत्तमान् ॥ ३५ ॥

जैसे देवताओंके राजा इन्द्र हाथमें वज्र लेकर बडे बडे पर्वतोंको विदारण करते हुए शोभित हुए थे, वैसे ही भीमसेन गजसेनाके साथ युद्ध करते हुए बहुत प्रकाशित होने लगे ॥३५॥

ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसंनिभाः ।
निपेतुरुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३६ ॥

पर्वतके समान बहुतसे बडे हाथी भीमसेनकी गदाकी चोटसे मारे जाते हुए, चिङ्घाड मारकर पृथ्वीको निनादित करके भूमिपर गिरने लगे ॥ ३६ ॥

गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
विरेजुर्वसुधां प्राप्य विकीर्णा इव पर्वताः ॥ ३७ ॥

तूटे हुए कज्जलगिरिके समान काले वर्णके वे सब बडे हाथी पृथ्वीपर गिरकर इधर-उधर विखरे हुए पर्वतोंके समान शोभित होने लगे ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे ।
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास संगतः ॥ ३८ ॥

महाधनुर्धारी राजा युधिष्ठिर बडी भारी सेनासे रक्षित मद्रराज शल्यको उस युद्धमें बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ३८ ॥

मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् ।
पीडयामास संरब्धो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ३९ ॥

पराक्रमी मद्रराज शल्य भी भीष्मकी रक्षाके निमित्त, क्रुद्ध होकर, समरमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ३९ ॥

विराटं सैन्धवो राजा विद्ध्वा संनतपर्वभिः ।
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरर्दयत् ॥ ४० ॥

सिन्धुराज जयद्रथने विराटको सुवर्णदण्डयुक्त नौ तीक्ष्ण सायकोंसे विद्ध किया, और फिर तीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४० ॥

विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीमुखे ।
त्रिंशता निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ४१ ॥

महाराज ! राजा विराटने सेनापति सिन्धुराज जयद्रथकी छातीमें शिलापर घिसे हुए तीस चोखे बाणोंसे प्रहार किया ॥ ४१ ॥

चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मायुधध्वजौ ।
रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ॥ ४२ ॥

राजा विराट और सिन्धुराज जयद्रथ इन दोनों महारथोंके विचित्र धनुष, उत्तम तलवार, विचित्र कवच, विचित्र ध्वजा और अस्त्र शस्त्र भी विचित्र ही थे; इससे दोनों ही विचित्र-रूपसे युद्ध करते हुए रणभूमिमें विराजमान हुए ॥ ४२ ॥

द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे ।
महासमुदयं चक्रे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४३ ॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्य उस महान् युद्धमें पाञ्चालराजकुमार सेनापति धृष्टद्युम्नके सम्मुख होकर, अपने तीक्ष्ण बाणोंसे महाघोर संग्राम करने लगे ॥ ४३ ॥

ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद्धनुः ।
छित्त्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत ॥ ४४ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यने बाणोंसे धृष्टद्युम्नका बडा धनुष काट दिया, फिर पचास बाण चलाकर उनको विद्ध किया ॥ ४४ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥ ४५ ॥

शत्रुनाशन वीर धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर, युद्ध करते हुए द्रोणाचार्यके देखते ही उनके ऊपर बाणोंको चलाना आरम्भ किया ॥ ४५ ॥

ताञ्शराञ्शरसंघैस्तु संनिवार्य महारथः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत्पञ्च सायकान् ॥ ४६ ॥

महारथ द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चलाए हुए सब बाणोंको काट दिया; फिर द्रोणाचार्यने द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नकी ओर पांच बाण चलाये ॥ ४६ ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ॥ ४७ ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर शत्रुनाशन धृष्टद्युम्नने क्रुद्ध होकर यमदण्डके समान समरमें एक गदा ग्रहण करके द्रोणाचार्यकी ओर चलाई ॥ ४७ ॥

तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम् ।
शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे ॥ ४८ ॥

द्रोणाचार्यने सुवर्णपत्रभूषित उस गदाको सहसा सम्मुख आती देख रणभूमिमें पचासों बाणोंसे उसे निवारण किया ॥ ४८ ॥

सा छिन्ना बहुधा राजन्द्रोणचापच्युतैः शरैः ।
चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ॥ ४९ ॥

राजन् ! वह गदा द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे कई टुकडे होकर, चूर चूर होके पृथ्वीपर गिरी ॥ ४९ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुसूदनः ।
द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारशवीं शुभाम् ॥ ५० ॥

शत्रुनाशन धृष्टद्युम्नने अपनी गदाको विफल देखकर, लोहमयी एक उत्तम शक्ति द्रोणाचार्यकी ओर चलाई ॥ ५० ॥

तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत ।
पार्षतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥ ५१ ॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्य नौ बाणोंसे उस शक्तिको युद्धमें काटके, फिर महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ ५१ ॥

एवमेतन्महायुद्धं द्रोणपार्षतयोरभूत् ।
भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भयानकम् ॥ ५२ ॥

हे राजेन्द्र ! भीष्मके निमित्त महा धनुर्द्धारी द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका इसी प्रकारसे महा घोर और भयानक संग्राम होने लगा ॥ ५२ ॥

अर्जुनः प्राप्य गाङ्गेयं पीडयन्निशितैः शरैः ।
अभ्यद्रवत संयत्तं वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ५३ ॥

अर्जुन गङ्गानन्दन भीष्मको देखके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करते हुए, जैसे वनमें एक मतवारा हाथी दूसरे मतवारे हाथीकी ओर आक्रमणके लिये जाता है, वैसेही सावधानीसे उनकी ओर दौडे ॥ ५३ ॥

प्रत्युद्ययौ च तं पार्थं भगदत्तः प्रतापवान् ।
त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः ॥ ५४ ॥

प्रतापवान् महाबलवान् राजा भगदत्त अपने महा मदान्ध हाथीपर चढके अर्जुनकी ओर वेगसे आक्रमणके लिये चले; उस हाथीके शरीरसे तीन जगहसे मद झरता था ॥ ५४ ॥

तमापतन्तं सहसा महेन्द्रगजसंनिभम् ।
परं यत्नं समास्थाय बीभत्सुः प्रत्युपद्यत ॥ ५५ ॥

अर्जुन देवराज इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान उस गज-राजको सहसा सम्मुख आते देखके अत्यन्त यत्नके सहित उसके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ ५५ ॥

ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ५६ ॥

अनन्तर हाथीपर बैठे हुए प्रतापी महाबलवान् राजा भगदत्त युद्धमें अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनको निवारण करने लगे ॥ ५६ ॥

अर्जुनस्तु रणे नागमायान्तं रजतोपमम् ।
विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥ ५७ ॥

राजा भगदत्तका चांदीके समान चमकीला हाथी जिस समय वेगपूर्वक अर्जुनकी ओर जा रहा था, उस समय उन्होंने सुवर्णदण्डयुक्त लोहमय तीक्ष्ण बाणोंसे उसे विद्ध किया ॥५७॥

शिखण्डिनं च कौन्तेयो याहि याहीत्यचोदयत् ।
भीष्मं प्रति महाराज जह्येनमिति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥

महाराज! कुन्तीकुमार अर्जुन शिखण्डीको "जाओ, जाओ, भीष्मके निकट जाओ; उनका वध करो," ऐसा ही वचन कहके प्रेरणा देने लगे ॥ ५८ ॥

प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज ।
प्रययौ त्वरितो राजन्द्रुपदस्य रथं प्रति ॥ ५९ ॥

पाण्डुके ज्येष्ठ बंधु ! राजन् ! प्राग्ज्योतिष राजा भगदत्त पाण्डुपुत्र अर्जुनको त्यागकर शीघ्रताके सहित राजा द्रुपदके समीप उपस्थित हुए ॥ ५९ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यद्रवद्द्रुतम् ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत ॥ ६० ॥

महराज! तब अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके, शीघ्रताके सहित भीष्मके ऊपर धावा किया। उसके अनन्तर भारी युद्ध होने लगा ॥ ६० ॥

ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं रणे ।
सर्वेऽभ्यधावन्क्रोशन्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६१ ॥

तब तुम्हारी सेनाके शूरवीर रणभूमिमें वेगशाली पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर सिंहनाद करते हुए दौडे; उन सब वीरोंका दौडना अद्भुतरूपसे दिखाई देने लगा ॥ ६१ ॥

नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ६२ ॥

नृपति ! जैसे वायु आकाशमें बादलको तितर बितर कर देता है, वैसे ही अर्जुन उत्तम अवसर पाकर तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाको रणभूमिमें छिन्न भिन्न करने लगे ॥ ६२ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः समाचिनोत् ॥ ६३ ॥

शिखण्डीने भरतकुलके पितामह भीष्मको देखकर, उनके सामने पहुंचकर निर्भय चित्तसे शीघ्रही यत्नपूर्वक अनेक बाणोंकी वर्षासे उन्हें छिपा दिया ॥ ६३ ॥

सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान् ।
न्यवारयत सैन्यं च पाण्डवानां महारथः ॥ ६४ ॥

महारथ भीष्म सुवर्णदण्डयुक्त अपने तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनके अनुयायी सोमकोंका युद्धमें वध कर रहे थे, और पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंका भी निवारण करते थे; ॥ ६४ ॥

रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ।
शरसंघमहाज्वालः क्षत्रियान्समरेऽदहत् ॥ ६५ ॥

भीष्म उस समय रथरूपी अग्निगृहमें स्थित थे, धनुष उस अग्निकी शिखा; तलवार, शक्ति और गदा उसके इन्धन, और बाणरूपी महाभयङ्कर ज्वालासे युक्त होकर युद्धमें क्षत्रिय योद्धाओंको भस्म करते थे ॥ ६५ ॥

यथा हि सुमहानग्निः कक्षे चरति सानिलः ।
तथा जज्वाल भीष्मोऽपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन् ॥ ६६ ॥

जैसे प्रज्वलित अग्नि वायुका सहारा लेकर फूसको भस्म करता हुआ चारों ओर प्रकाशित होती है, वैसे ही भीष्म पितामह अपने दिव्य अस्त्रोंको चलाते हुए प्रकाशित होने लगे ॥६६॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः शितैः संनतपर्वभिः ।
नादयन्स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महायशाः ॥ ६७ ॥

महायशस्वी भीष्म सुवर्ण पंखयुक्त अत्यंत तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंको मारकर सब दिशा और उपदिशाओंको नादित करने लगे ॥ ६७ ॥

पातयन्रथिनो राजन्गजांं सह सादिभिः ।
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ॥ ६८ ॥

राजन् ! रथियोंको गिराकर और सवारोंसहित हाथियोंको मारकर, रथोंके समुदायको मुण्डीत तालवनके समान कर रहे थे ॥ ६८ ॥

निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे ।
चकार स तदा भीष्मः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६९ ॥

राजन् ! सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म उस रणभूमिमें रथ, हाथी और घोडेको मनुष्य रहित कर रहे थे ॥ ६९ ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
निशम्य सर्वतो राजन्समकम्पन्त सैनिकाः ॥ ७० ॥

हे नृप ! सम्पूर्ण सेनाके योद्धा उनके बिजलीके शब्दके समान धनुषप्रत्यञ्चाके टङ्कार शब्दको सुनकर, भयसे कांप रहे थे ॥ ७० ॥

अमोघा ह्यपतन्बाणाः पितुस्ते मनुजेश्वर ।
नासज्जन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥ ७१ ॥

हे प्रजानाथ ! तुम्हारे पिता भीष्मके बाण चारों ओर अमोघरूपसे भ्रमण करते हुए दिखाई देते थे; वे सब बाण योद्धाओंके केवल शरीर मात्रमें लगके नहीं गिरे, किन्तु शरीरके आवरण भेद कर निकलने लगे ॥ ७१ ॥

निर्मनुष्यान्रथान्राजन्सुयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
वातायमानान्पश्याम ह्रियमाणान्विशां पते ॥ ७२ ॥

हे राजन् ! उस समय मैंने देखा, कि वेगवान् घोडोंसे जुते हुए, जिनमें मनुष्य नहीं था, ऐसे कितनेही रथ थे; कितने पुरुषोंके मरनेपर उनके रथके घोडे वायुवेगके समान रथको खींचते हुए इधर उधर दौडने लगे ॥ ७२ ॥

चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ७३ ॥

चेदि, काशि और करूष देशीय चौदह हजार, उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए प्रख्यात, शूरवीर और पाण्डवोंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग करनेके लिये तैय्यार ऐसे महारथ योद्धा वहां थे ॥ ७३ ॥

अपरावर्तिनः शूराः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ।
जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ७४ ॥

उनके रथपर सुवर्णभूषित ध्वजा शोभित थी, शौर्यसंपन्न और जो संग्रामसे कभी पीछे नहीं हटते थे, वे सब अपने प्राणकी आशाको छोडकर, युद्धमें मुंह फैलाये हुए यमराजके समान भीष्मके संमुख पहुंचकर रथ, हाथी और घोडोंके सहित परलोक सिधारे ॥ ७४ ॥

न तत्रासीन्महाराज सोमकानां महारथः ।
यः संप्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे ॥ ७५ ॥

महाराज ! सोमकोंके बीच ऐसा कोई भी महारथी पुरुष उस समय वहांपर नहीं था, जो युद्धमें भीष्मके समीप जाकर अपने मनमें जीनेकी आशा कर सके ! ॥ ७५ ॥

तांश्च सर्वान्रणे योधान्प्रेतराजपुरं प्रति ।
नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ॥ ७६ ॥

उस समय सम्पूर्ण पुरुष भीष्मके अद्भुत पराक्रमको देखकर, रणभूमिपर उपस्थित हुए सम्पूर्ण योद्धाओंको ही यमलोकमें पहुंचा हुआ समझने लगे ॥ ७६ ॥

न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्याति महारथः ।
ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ॥
शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ७७ ॥

उस समय रणभूमिमें कृष्ण सारथीके सहित, श्वेत अश्वयुक्त रथवाले, वीर पदसे पुकारे जाने योग्य पाण्डुपुत्र अर्जुन और राजा द्रुपदके अमित तेजस्वी पुत्र महारथ शिखण्डीको छोडके अन्य कोई भी महारथ योद्धा भीष्मके संमुख न जासके ॥ ७७ ॥

शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य भरतर्षभ ।
दशभिर्दशभिर्बाणैराजघान महाहवे ॥ ७८ ॥

भरतर्षभ ! शिखण्डीने युद्धमें भीष्मके संमुख उपस्थित होके, शिलापर घिसे हुए दस दस बाणोंसे उस महासंग्राममें उनके ऊपर प्रहार किया ॥ ७८ ॥

शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ।
अवैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥ ७९ ॥

भारत ! गङ्गानन्दन भीष्म क्रोधमें भरकर शिखण्डीको इस प्रकारसे देखने लगे मानो प्रज्वलित दृष्टिसे ही उसे भस्म किया डालते थे ॥ ७९ ॥

स्त्रीत्वं तत्संस्मरन्राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः ।
न जघान रणे भीष्मः स च तं नावबुद्धवान् ॥ ८० ॥

राजन् ! सब पुरुषोंके संमुख जो शिखण्डीको स्त्री समझके युद्धमें भीष्मने नहीं मारा, उस बातको शिखण्डीने नहीं समझा ॥ ८० ॥

अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत ।
अभित्वरस्व त्वरितो जहि चैनं पितामहम् ॥ ८१ ॥

हे राजन् ! अनन्तर अर्जुन शिखण्डीसे बोले; " जलदी आगे बढो और इन भीष्म पितामहका वध करो ॥ ८१ ॥

किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम् ।
न ह्यन्यमनुपश्यामि कंचिद्यौधिष्ठिरे बले ॥ ८२ ॥

हे वीर ! तुम्हारी क्या बात है ! तुम महारथी भीष्म पितामहको मारके रथसे गिरा दो। राजा युधिष्ठिरकी सेनाके बीच और ऐसा कोई भी शूरवीर योद्धाको मैं नहीं देखता, ॥ ८२ ॥

४

यः शक्तः समरे भीष्मं योधयेत पितामहम् ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ८३ ॥

जो तुम्हारे अतिरिक्त संग्राममें पितामह भीष्मके विरुद्ध उनके संमुख उपस्थित होके युद्ध कर सके । हे पुरुषसिंह ! मैं तुम्हारे समीपमें सत्य वचन करता हूं ॥ ८३ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमुपाद्रवत् ॥ ८४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! शिखण्डीने अर्जुनके मुंहसे इस प्रकार अपनी बडाई सुनके शीघ्रही नाना प्रकारके बाणोंको चलाके भीष्म पितामहपर आक्रमण किया ॥ ८४ ॥

अचिन्तयित्वा तान्बाणान्पिता देवव्रतस्तव ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः ॥ ८५ ॥

तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्मने शिखण्डीके चलाए हुए बाणोंकी कुछ भी पर्वाह न करके, समरमें क्रुद्ध हुए अर्जुनहीको अपने बाणोंसे युद्धसे निवारण करने लगे ॥ ८५ ॥

तथैव च चमूं सर्वां पाण्डवानां महारथः ।
अप्रैषीत्समरे तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष ॥ ८६ ॥

मारिप ! और पाण्डवोंकी सेनाके दूसरे अनेक योद्धाओंको समरमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर यमलोकमें भेजने लगे ॥ ८६ ॥

तथैव पाण्डवा राजन्सैन्येन महता वृताः ।
भीष्मं प्रच्छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ८७ ॥

राजन् ! महासेनासे घिरे हुए पाण्डवोंने भी जैसे बादलोंका समूह सूर्यको छिपा देता है वैसे ही अपने बाणोंसे भीष्म पितामहको चारों ओरसे ढक दिया ॥ ८७ ॥

स समन्तात्परिवृतो भारतो भरतर्षभ ।
निर्ददाह रणे शूरान्वनं वह्निरिव ज्वलन् ॥ ८८ ॥

भरतर्षभ ! महापराक्रमी भीष्म पांडवोंकी सेनामें चारों ओरसे घिरकर उन सब शूरवीरोंको इस प्रकार अपने अस्त्रोंसे जलाने लगे, जैसे प्रज्वलित अग्नि वनमें प्रकट होके संपूर्ण वनके वृक्षोंको जला देती है ॥ ८८ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
अयोधयत यत्पार्थं जुगोप च यतव्रतम् ॥ ८९ ॥

उस रणभूमिमें मैंने तुम्हारे पुत्र दुःशासनका यह आश्चर्यमय पराक्रम देखा, कि वह यतव्रती भीष्म पितामहकी रक्षा करने लगे और अर्जुनके सङ्ग युद्ध भी करते थे ॥ ८९ ॥

कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः ।
दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः ॥ ९० ॥

युद्धमें सम्पूर्ण पुरुष तुम्हारे धनुर्धर महामनस्वी पुत्र दुःशासनके उस अद्भुत कर्मको देखकर प्रसन्न हुए ॥ ९० ॥

यदेकः समरे पार्थान्सानुगान्समयोधयत् ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुल्बणम् ॥ ९१ ॥

समरभूमिमें वह अकेले ही जब अत्यन्त तेजस्वी होकर अनुयायियोंके सहित पाण्डवोंसे युद्ध करने लगे, उस समयमें पाण्डव लोग उन अति पराक्रमी दुःशासनको निवारण न कर सके ॥ ९१ ॥

दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः ।
सादिनश्च महाराज दन्तिनश्च महाबलाः ॥ ९२ ॥

महाराजा ! दुःशासनने युद्धमें रथियोंको रथरहित और घुडसवारोंको घोडोंसे हीन कर दिया; अनन्तर दन्तार गजसेनाके महाबलवान् योद्धाओंको भी हाथिओंसे रहित किया ॥ ९२ ॥

विनिर्भिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्धरणीतले ।
शरातुरास्तथैवान्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः ॥ ९३ ॥

सम्पूर्ण योद्धा और उनके वाहन दुःशासनके तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित होके तथा मरके पृथ्वीमें गिरने लगे । कितने ही दन्तार हाथी बाणोंसे पीडित होके रणभूमिमें इधर उधर भागने लगे ॥ ९३ ॥

यथाग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद्दीप्तार्चिरुल्बणः ।
तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डवान्वै विनिर्दहन् ॥ ९४ ॥

जैसे अग्नि सूखे काठको पाकर दहकती हुई लपटोंके साथ तीव्र वेगसे अधिक प्रज्वालित होती है, वैसे ही तुम्हारे पुत्र दुःशासन क्रुद्ध होकर पाण्डवोंकी सेनाको अपने बाणोंसे जलाने लगे और अपने तेजसे प्रकाशित हुए ॥ ९४ ॥

तं भारतमहामात्रं पाण्डवानां महारथः ।
जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाप्युद्यातुं कथंचन ।
ऋते महेन्द्रतनयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ॥ ९५ ॥

हे भारत ! उस महा संग्राममें भरतकुलके महावीर दुःशासनको पाण्डवोंकी सेनाके बीचसे कृष्ण सारथीके सहीत श्वेतवाहन इन्द्रपुत्र अर्जुनको छोडके और कोई भी महारथी जय करने वा उनके संमुख बढनेमें समर्थ न हुआ ॥ ९५ ॥

स हि तं समरे राजन्विजित्य विजयोऽर्जुनः ।
भीष्ममेवाभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ९६ ॥

हे राजन् ! विजयी अर्जुन सब सेनाके योद्धाओंके सामने ही दुःशासनको जीत करके वेगपूर्वक भीष्मकी ओर बढे ॥ ९६ ॥

विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः ।
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत रणोत्कटः ।
अर्जुनं च रणे राजन्योधयन्स व्यराजत ॥ ९७ ॥

महाबलवान् भीष्मके बाहुबलका आसरा लेनेवाले तुम्हारे युद्धप्रिय पुत्र दुःशासन पराजित होकर भी, अपनी सेनाके पुरुषोंको धीरज देते हुए, फिर अर्जुनके सङ्ग क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे, उस समय युद्धमें वे शोभित होने लगे ॥ ९७ ॥

शिखण्डी तु रणे राजन्विव्याधैव पितामहम् ।
शरैरशनिसंस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः ॥ ९८ ॥

राजन् ! शिखण्डीके विषधर सर्पके समान भयंकर और वज्रके समान स्पर्श करनेवाले बाणोंसे युद्धमें भीष्म पितामहको विद्ध करने लगे; ॥ ९८ ॥

न च तेऽस्य रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर ।
स्मयमानश्च गाङ्गेयस्तान्बाणाञ्जगृहे तदा ॥ ९९ ॥

परन्तु, जनेश्वर ! शिखण्डीके धनुषसे छूटे हुए उन सम्पूर्ण बाणोंसे भीष्म पितामहको तनिक भी पीडा न हुई; वह गंगानंदन भीष्म हंसते हंसते शिखण्डीके उन बाणोंको ग्रहण करने लगे ॥ ९९ ॥

उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति ।
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥ १०० ॥

जैसे गर्मीसे दुःखित मनुष्य जलधाराको ग्रहण करनेकी इच्छा करता है, उसी प्रकारसे गङ्गानन्दन भीष्म शिखण्डीके बाणोंको ग्रहण करने लगे ॥ १०० ॥

तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे ।
भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ १०१ ॥

महाराज ! उस समय युद्धमें सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा महात्मा भीष्मको अग्निके समान प्रचण्ड होकर सब पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धाओंको अपने अस्त्रोंके बलसे जलाते देखने लगे ॥ १०१ ॥

ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष ।
अभिद्रवत संग्रामे फल्गुनं सर्वतो रथैः ॥ १०२ ॥

मारिष ! इसके अनन्तर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंसे कहा, कि तुम लोग सब भांतिसे अर्जुनपर समरभूमिमें रथोंके सहित चारों ओरसे आक्रमण करो ॥ १०२ ॥

भीष्मो वः समरे सर्वान्पालयिष्यति धर्मवित् ।
ते भयं सुमहत्त्यक्त्वा पाण्डवान्प्रतियुध्यत ॥ १०३ ॥

धर्मात्मा भीष्म समरमें तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे, इससे तुम सब लोग मृत्युका भय त्यागकर पाण्डवोंकी सेनाके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त आगे बढ़ो ॥ १०३ ॥

एष तालेन दीप्तेन भीष्मस्तिष्ठति पालयन् ।
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणां रणे शर्म च वर्म च ॥ १०४ ॥

ये सुवर्णदण्डभूषित प्रदीप्त दिव्य तालध्वजासे शोभित होकर हमारी रक्षा करते हुए स्थित हैं। भीष्म पितामह सम्पूर्ण धार्तराष्ट्रोंके लिये रणभूमिमें कल्याणकारी आश्रय और कवच हैं ॥१०४॥

त्रिदशापि समुद्युक्ता नालं भीष्मं समासितुम् ।
किमु पार्था महात्मानं मर्त्यभूतास्तथाबलाः ।
तस्माद्द्रवत हे योधाः फल्गुनं प्राप्य संयुगे ॥ १०५ ॥

सम्पूर्ण देवता भी मिलके युद्धके लिये उद्योग करें तो भी वे महात्मा भीष्मका युद्धमें सामना नहीं कर सकते हैं; तब दुर्बल कुन्तीपुत्र पाण्डव लोग मरणधर्मा मनुष्य होकर उनका क्या कर सकेंगे ? हे शूरवीर क्षत्रिय पुरुषो ! तुम लोग रणभूमिमें अर्जुनको देखकर क्यों युद्धसे भाग रहे हो ? ॥ १०५ ॥

अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि फल्गुनम् ।
सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपाः ॥ १०६ ॥

तुम सब कोई क्षत्रिय योद्धा नरेश हो, इससे सब ओरसे सावधान होकर मेरे साथ रहकर यत्नपूर्वक युद्ध करो । मैं आज यत्नवान् होके तुम सब लोगोंके सङ्ग मिलकर अर्जुनके सङ्ग युद्ध करूंगा ॥ १०६ ॥

तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः ।
अर्जुनं प्रति संयत्ता बलवन्तो महारथः ॥ १०७ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे धनुर्द्धारी पुत्र राजा दुर्योधनके वचनको सुनकर वे सब महाबली महारथी योद्धा प्रयत्नपूर्वक अर्जुनपर दौड़े ॥ १०७ ॥

ते विदेहाः कलिङ्गाश्च दाशेरकगणैः सह ।
अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीराश्च महारणे ॥ १०८ ॥
बाह्लीका दरदाश्चैव प्राच्योदीच्याश्च मालवाः ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ॥ १०९ ॥
शाल्वाश्चयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ।
अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम् ॥ ११० ॥

विदेह, कलिङ्ग, दासेरक, निषाद, सौवीर, बाह्लिक, दरद, प्राच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिवि, वासति, शाल्व, शक, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय देशीय बलवान् और महापराक्रमी सम्पूर्ण योद्धा जैसे पतङ्ग अग्निकी ओर दौडता है, वैसे ही युद्धमें कुन्तीकुमार अर्जुनके संमुख शीघ्रताके सहित आके उपस्थित हुए और धावा करने लगे ॥१०८–११०॥

स तान्सर्वान्सहानीकान्महाराज महारथान् ।
दिव्यान्यस्त्राणि संचिन्त्य प्रसंधाय धनञ्जयः ॥ १११ ॥

हे भारत ! महारथ अर्जुनने उन सब महारथियोंको सम्पूर्ण सेनाके सहित संमुख आया हुआ देखकर, चिन्तन करके दिव्य अस्त्रोंको धनुषपर संधान करके चलाया ॥ १११ ॥

स तैरस्त्रैर्महावेगैर्ददाहाशु महाबलः ।
शरप्रतापैर्बीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः ॥ ११२ ॥

उन महावेगशाली अस्त्रोंसे अनेक बाण उत्पन्न हुए और उन्हीं सब बाणोंके प्रतापसे दुर्योधनकी सेनाके सब योद्धा शीघ्रही इस प्रकारसे भस्म हो गये, जैसे पतङ्ग अग्निमें जाकर जलके मर जाते हैं ॥ ११२ ॥

तस्य बाणसहस्राणि सृजतो दृढधन्विनः ।
दीप्यमानमिवाकाशे गाण्डीवं समदृश्यत ॥ ११३ ॥

महाधनुर्द्धारी अर्जुन जब सहस्रों बाणोंको अपने दिव्य अस्त्रोंसे उत्पन्न करके चलाने लगे, तब उनका गाण्डीव धनुष आकाशमें प्रकाशित होने लगा ॥ ११३ ॥

ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णरथध्वजाः ।
नाभ्यवर्तन्त राजानः सहिता वानरध्वजम् ॥ ११४ ॥

महाराज ! उन सब क्षत्रियोंके बाणोंसे पीडित होनेपर, उनकी रथ ध्वजा भी इधर उधर बाणोंसे कटके गिर पडी; वे सब लोग इकठे होकर भी कपिध्वज अर्जुनके संमुख न हो सके ॥ ११४ ॥

सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ।
गजाः सह गजारोहैः किरीटिशरताडिताः ॥ ११५ ॥

रथी योद्धा लोग रथकी उत्तम ध्वजाके सहित, घुडसवार घोडोंके सङ्ग और गजपति योद्धा हाथियोंके सहित अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ ११५ ॥

ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृतासीद्वसुंधरा ।
विद्रवद्भिश्च बहुधा बलै राज्ञां समन्ततः ॥ ११६ ॥

अनन्तर अर्जुनकी भुजाओंसे छूटे हुए बाणोंसे और चारों ओर भागती हुई अनेक राजाओंकी सेनासे वहांकी सारी भूमि व्याप्त हो गई ॥ ११६ ॥

अथ पार्थो महाबाहुर्द्रावयित्वा वरूथिनीम् ।
दुःशासनाय समरे प्रेषयामास सायकान् ॥ ११७ ॥

महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनने उस सम्पूर्ण सेनाको तितर बितर करके, दुःशासनकी ओर समरमें अनेक बाण चलाये ॥ ११७ ॥

ते तु भित्त्वा तव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ।
धरणीं विविशुः सर्वे वल्मीकमिव पन्नगाः ।
हयांश्चास्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत् ॥ ११८ ॥

वे सब लोहमुख बाण तुम्हारे पुत्र दुःशासनके कवचको भेदके पृथ्वीमें इस प्रकारसे घुस गये, जैसे सर्प बिलमें प्रवेश करते हैं । इसके अनन्तर अर्जुनने दुःशासनके घोडोंका वध करके उनके सारथीको भी बाणोंसे मारके गिरा दिया ॥ ११८ ॥

विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान्प्रभो ।
आजघान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ११९ ॥

फिर अर्जुनने विविंशतिको बीस बाणोंसे मारकर उसे रथरहित करके, फिर पांच तीक्ष्ण बाणोंसे बहुत पीडित किया ॥ ११९ ॥

कृपं शल्यं विकर्णं च विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ १२० ॥

अनन्तर कुन्तीपुत्र श्वेतवाहन अजुनने कृपाचार्य, शल्य और विकर्णको लोहेके अनेक बाणोंसे विद्ध करके, उन सबको रथहीन कर दिया ॥ १२० ॥

एवं ते विरथाः पञ्च कृपः शल्यश्च मारिष ।
दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ।
सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ १२१ ॥

मारिष ! इस प्रकार कृपाचार्य, शल्य, दुःशासन, विकर्ण और विविंशति, ये पांच महारथ रथरहित होकर अर्जुनके सम्मुख रणभूमिसे पराजित होके भाग गये ॥ १२१ ॥

पूर्वाह्णे तु तथा राजन्पराजित्य महारथान् ।
प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः ॥ १२२ ॥

हे राजन् ! पूर्वाह्ण समयमें कुन्तीकुमार अर्जुन उन सब महारथियोंको पराजित करके युद्धमें धूएंसे रहित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ १२२ ॥

तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिवानिव ।
अन्यानपि महाराज पातयामास पार्थिवान् ॥ १२३ ॥

महाराज ! और जैसे किरणधारी सूर्य चारों ओर अपने किरणोंको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षा करके दूसरी ओरके क्षत्रिय योद्धाओंका भी वध किया ॥ १२३ ॥

पराङ्मुखीकृत्य तदा शरवर्षैर्महारथान् ।
प्रावर्तयत संग्रामे शोणितोदां महानदीम् ।
मध्येन कुरुसैन्यानां पाण्डवानां च भारत ॥ १२४ ॥

भारत ! उन्होंने महारथ वीरोंको अपने बाणोंसे पराजित करके संग्रामभूमिमें कुरुपाण्डवोंकी सेनाके बीच रुधिरकी नदी बहा दी ॥ १२४ ॥

गजाश्च रथसंघाश्च बहुधा रथिभिर्हताः ।
रथाश्च निहता नागैर्नागा हयपदातिभिः ॥ १२५ ॥

हाथी और रथोंके समूह कोई कोई स्थानोंमें रथियोंके अस्त्रोंसे नष्ट होकर पृथ्वीमें गिर पडे, कितने ही रथी योद्धा हाथियोंसे और कितने ही हाथी, घुडसवार एवं शूरवीर पैदल चलनेवाले योद्धाओंके अस्त्रोंसे मरके पृथ्वीमें गिरे ॥ १२५ ॥

अन्तरा छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च ।
निपेतुर्दिक्षु सर्वासु गजाश्वरथयोधिनाम् ॥ १२६ ॥

बहुतेरे हाथी, घोडे और रथियोंके शरीर और सिर बीचों बीच कटकर चारों ओर रणभूमिमें पडे हुए दिखाई देते थे ॥ १२६ ॥

छन्नमायोधनं रेजे कुण्डलाङ्गदधारिभिः ।
पतितैः पात्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः ॥ १२७ ॥

उस समय वहां गिरे और गिराये जाते हुए, कुण्डल और अंगदधारी महारथी राजपुत्रोंके मरे हुए शरीरोंसे सारी युद्धभूमि भरी हुई थी ॥ १२७ ॥

रथनेमिनिकृत्ताश्च गजैश्चैवावपोथिताः ।
पादाताश्चाप्यदृश्यन्त साश्वाः सहयसादिनः ॥ १२८ ॥

हे राजन् ! रुधिररूपी कीचडसे युक्त अनेक मरे हुए हाथी, घोडे और रथके चक्केसे कटे हुए, तथा अस्त्र शस्त्रोंसे गिरते हुए मनुष्योंसे रणभूमि छिप गई, और कितनोंहीको हाथियोंने अपनी सूंडोंसे पकडकर पृथ्वीपर दे मारा था । पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धा और अपने अश्वोंसहित घुडसवार योद्धा चारों ओर दिखाई देते थे ॥ १२८ ॥

गजाश्वरथसंघाश्च परिपेतुः समन्ततः ।
विशीर्णाश्च रथा भूमौ भग्नचक्रयुगध्वजाः ॥ १२९ ॥

बहुतेरे रथी, घुडसवार और गजपति चारों ओर वीरोंके अस्त्र शस्त्रोंसे मर कर पृथ्वीमें गिर पडे; और बहुतसे रथोंके चक्के, धूरी और ध्वजा टूट गईं; वे सब टूटे हुए रथ इधर उधर पृथ्वीमें पडे हुए दीख पडते थे ॥ १२९ ॥

तद्गजाश्वरथौघानां रुधिरेण समुक्षितम् ।
छन्नमायोधनं रेजे रक्ताभ्रमिव शारदम् ॥ १३० ॥

जैसे शरद् ऋतुमें लाल रङ्गके बादल आकाशमें दीख पडते हैं, उसी भांतिसे युद्धभूमि हाथी, घोडे तथा रथियोंके समुदायके रुधिरसे ढकी और भीगी, रक्तवर्ण होकर प्रकाशित होने लगी ॥ १३० ॥

श्वानः काकाश्च गृध्राश्च वृका गोमायुभिः सह ।
प्रणेदुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृगद्विजाः ॥ १३१ ॥

कुत्ते, कौए, गिद्ध, भेडिये, सियार और दूसरे बहुतसे भयानक पशु-पक्षी अपना मांसाहार पाकर हर्षकी बोली बोलने लगे ॥ १३१ ॥

ववुर्बहुविधाश्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः ।
दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु विनदत्सु च ॥ १३२ ॥

वायु सब दिशाओंमें अनेक प्रकारसे बहने लगी । राक्षस और दूसरे अनेक प्राणी भी उस समयमें महाघोर शब्द करते दिखाई देने लगे ॥ १३२ ॥

काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः ।
धूमायमाना दृश्यन्ते सहसा मारुतेरिताः ॥ १३३ ॥

सुवर्णमय हार विखरे हुए पडे थे, मूल्यवान् पताका सहसा वायुके प्रचण्डवेगसे उडती हुई दिखाई देने लगी ॥ १३३ ॥

श्वेतच्छत्रसहस्राणि सध्वजाश्च महारथाः ।
विनिकीर्णाः स्म दृश्यन्ते शतशोऽथ सहस्रशः ।
सपताकाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः ॥ १३४ ॥

सहस्रों श्वेत छत्र और ध्वजाओंसे युक्त सैंकडों और हजारों महारथी इधर उधर सब ओर गिरे, विखरे दिखायी देते थे। पताकाके सहित कितने ही बडे बडे हाथी बाणोंसे पीडित होके चारों दिशाओंमें इधर उधर दौडने लगे ॥ १३४ ॥

क्षत्रियाश्च मनुष्येन्द्र गदाशक्तिधनुर्धराः ।
समन्ततो व्यदृश्यन्त पतिता धरणीतले ॥ १३५ ॥

हे प्रजानाथ ! कितने ही क्षत्रियोंको गदा, शक्ति और धनुष ग्रहण किये हुए ही मैंने पृथ्वी पर गिरे हुए देखा ॥ १३५ ॥

ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ १३६ ॥

हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर महाबलवान् भीष्म दिव्य अस्त्रोंको उत्पन्न करके सब धनुर्धारियोंके सम्मुख कुन्तीकुमार अर्जुनकी ओर दौडे ॥ १३६ ॥

तं शिखण्डी रणे यत्तमभ्यधावत दंशितः ।
संजहार ततो भीष्मस्तदस्त्रं पावकोपमम् ॥ १३७ ॥

कवचधारी शिखण्डी भीष्मको अर्जुनकी ओर युद्धके लिये आते देखकर उनकी ओर दौडे । तब भीष्मने शिखण्डीको सामने देख अपने अग्निके समान तेजस्वी उस दिव्य अस्त्रको वापस लिया ॥ १३७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
निजघ्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम् ॥ १३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ ५०९९ ॥

उस ही अवसरमें कुन्तीपुत्र श्वेतवाहन अर्जुन भीष्म पितामहको मोहित करके तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वध करने लगा ॥ १३८ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११२ ॥ ५०९९ ॥

: ११३ :

सञ्जय उवाच

एवं व्यूढेष्वनीकेषु भूयिष्ठमनुवर्तिषु ।
ब्रह्मलोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् भारत ! दोनों पक्षकी सेना इस प्रकारसे व्यूह-बद्ध हुई थी, कि बहुतसे सैनिक उसमेंही स्थित थे; सेनाके सब योद्धा युद्धसे पीछे न हटके ब्रह्म-लोकमें गमन करनेकी इच्छा करके युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

न ह्यनीकमनीकेन समसज्जत संकुले ।
न रथा रथिभिः सार्धं न पदाताः पदातिभिः ॥ २ ॥

जब महा घोर संग्राम उपस्थित हुआ, तब सेनाके शूरवीरोंने अपने समान पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करनेका विचार न किया; नाही रथी रथियोंके साथ, नाही पैदल चलनेवाले पैदल चलनेवालोंके साथ युद्ध करते थे ॥ २ ॥

अश्वा नाश्वैरयुध्यन्त न गजा गजयोधिभिः ।
महान्व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत ॥ ३ ॥

न अश्व अश्वोंसे और न हाथी गजयोधीसे लडते थे, दोनों सेनाका अत्यन्त भयङ्कर मर्यादा रहित विपरीत युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥

नरनागरथेष्वेवं व्यवकीर्णेषु सर्वशः ।
क्षये तस्मिन्महारौद्रे निर्विशेषमजायत ॥ ४ ॥

उस महाघोर युद्धमें मनुष्य, हाथी और रथ चारों ओर तितर बितर होके लडने लगे, तब पैदल चलनेवाले योद्धा, गजपति, रथी तथा घुडसवारोंमें कोई विशेषता न रही; जिसने जिसको जहां अपने घातपर पाया, वहांपर ही उसका वध किया ॥ ४ ॥

ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ।
दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय सत्वराः ।
पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन् ॥ ५ ॥

भारत ! इधर शल्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, दुःशासन और विकर्ण ये पांचों महारथी योद्धा अपने प्रकाशमान रथोंपर चढके शीघ्रतापूर्वक पाण्डवोंकी सेनापर चढ आये और समरमें उनको अस्त्रोंसे कंपाने लगे ॥ ५ ॥

सा वध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः ।
त्रातारं नाध्यगच्छद्वै मज्जमानेव नौर्जले ॥ ६ ॥

पाण्डवोंकी सेना इन पांचों महारथियोंके बाणोंसे मारी जाती हुई रणभूमिमें व्यकुल होके, किसीको भी अपने रक्षणकर्ता करके नहीं पा सकी, जैसे समुद्रमें डूबती हुई नौका दीखती है ॥ ६ ॥

यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति ।
तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माण्यकृन्तत ॥ ७ ॥

जैसे शिशिर कालमें गौ आदि पशु शीतसे अत्यन्त दुःखित होते हैं, वैसे ही पराक्रमी भीष्मके बाणोंसे पाण्डवोंकी सेना अत्यन्त ही पीडित और दुःखित हुई ॥ ७ ॥

अतीव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना।
नगमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः ॥ ८ ॥
उधर महात्मा अर्जुनने भी तुम्हारी महासेनाके काले बादलोंकी घटाके समान अनेक हाथियोंको मार गिराया ॥ ८ ॥

मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः।
इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः ॥ ९ ॥
अर्जुनने पैदलोंके बहुतसे यूथपतियोंको मिट्टीमें मिलाया हुआ दिखाई देता था। सहस्रों महा बलवान् हाथी सहस्रों नाराच बाणोंसे पीडित होकर, ॥ ९ ॥

पेतुरार्तस्वरं कृत्वा तत्र तत्र महागजाः।
आबद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥ १० ॥
आर्त्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिर पडे। कितने ही मारे गये शूरवीर महात्मा योद्धाओंके सुन्दरभूषणोंसे भूषित शरीर ॥ १० ॥

छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
तस्मिन्नतिमहाभीमे राजन्वीरवरक्षये॥
भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनञ्जये ॥ ११ ॥
और कुण्डलोंसे युक्त शिरोंसे छिप गई युद्धभूमि शोभा पा रही थी। राजन्! बडे बडे वीरोंको नष्ट करनेवाले उस महा घोर युद्धमें जब एक ओर भीष्म और दूसरी ओर पाण्डुनन्दन अर्जुन अपने पराक्रमको प्रकाशित कर रहे थे, ॥ ११ ॥

ते पराक्रान्तमालोक्य राजन्युधि पितामहम्।
न न्यवर्तन्त कौरव्या ब्रह्मलोकपुरस्कृताः ॥ १२ ॥
इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम्।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त तस्मिन्वीरवरक्षये ॥ १३ ॥
राजन्! तब पितामह भीष्मको युद्धमें महान् पराक्रममें प्रवृत्त देख, सर्व कौरवलोग ब्रह्मलोक पर ध्यान रखकर भीष्मके निकट उपस्थित हुए और स्वर्गगमनकी परम अभिलाषा करके युद्धमें प्राणकी आशा त्यागकर वीरोंका नाश करनेवाले उस युद्धमें पाण्डवोंकी ओर दौडे ॥ १२–१३।

पाण्डवापि महाराज स्मरन्तो विविधान्बहून्।
क्लेशान्कृतान्सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप ॥ १४ ॥
हे राजन् नराधिप! पराक्रमी पाण्डव लोग भी पुत्रों सहित तुम्हारे पहिले समयके दिये हुए नानाप्रकारके बहुत दुःखोंका स्मरण करके, ॥ १४ ॥

भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकपुरस्कृताः ।
तावकांस्तव पुत्रांश्च योधयन्ति स्म हृष्टवत् ॥ १५ ॥

युद्धमें भय त्यागकर ब्रह्मलोकमें गमन करनेका निश्चय करके, हर्षके सहित तेरे पक्षके सैनिक और तेरे पुत्रोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः ।
अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह ॥ १६ ॥

समरभूमिमें पाण्डव–सेनापति महारथ धृष्टद्युम्नने अपनी सेनाके योद्धाओंसे कहा, कि हे सोमको ! तुम लोग सृञ्जयोंके सहित मिलकर गङ्गानन्दन भीष्मपर आक्रमण करो ॥ १६ ॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सह सृञ्जयैः ।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शस्त्रवृष्ट्या समन्ततः ॥ १७ ॥

सोमक क्षत्रिय और सृञ्जय शूरवीर योद्धा सेनापति धृष्टद्युम्नके वचनको सुनकर चारों ओरसे अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करते हुए भीष्मकी ओर दौडे ॥ १७ ॥

वध्यमानस्ततो राजन्पिता शान्तनवस्तव ।
अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान् ॥ १८ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पिता शान्तनुपुत्र भीष्म उन सब वीरोंके अस्त्रशस्त्रोंसे पीडित होके क्रोध पूर्वक उस सम्पूर्ण सृंजय सेनाके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥

तस्य कीर्तिमतस्तात पुरा रामेण धीमता ।
सम्प्रदत्तास्त्रशिक्षा वै परानीकविनाशिनी ॥ १९ ॥

तात ! यशस्वी भीष्म पितामहको पहिले पूर्वकालमें बुद्धिमान् परशुरामने जो शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाले अस्त्रोंकी शिक्षा दी थी, ॥ १९ ॥

स तां शिक्षामधिष्ठाय कृत्वा परबलक्षयम् ।
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भीष्मो दश सहस्राणि जघान परवीरहा ॥ २० ॥

कुरुकुलके वृद्ध पितामह, शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले भीष्मने उन्हीं अस्त्रशस्त्रोंकी शिक्षाके बलसे इस महासंग्राममें पाण्डवपक्षीय शत्रुसेनाका नाश करते हुए नित्य ही दस हजार मुख्य योद्धाओंका वध किया था ॥ २० ॥

तस्मिंस्तु दिवसे प्राप्ते दशमे भरतर्षभ ।
भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पाञ्चालेषु च संयुगे ।
गजाश्वममितं हत्वा हताः सप्त महारथाः ॥ २१ ॥

भरतर्षभ ! परन्तु दसवें दिन महा पराक्रमी शत्रुनाशन भीष्मने अकेले ही युद्धमें मत्स्य और पाञ्चाल देशीय सेनाओंके घोडोंको मारकर, सात महारथियोंका वध किया ॥ २१ ॥

हत्वा पञ्च सहस्राणि रथिनां प्रपितामहः ।
नराणां च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश ॥ २२ ॥

और फिर दूसरी बार पांच हजार रथियोंका वध करके, तुम्हारे पिता भीष्मने महायुद्धमें चौदह हजार पैदल चलनेवाले मनुष्य, ॥ २२ ॥

तथा दन्तिसहस्रं च हयानामयुतं पुनः ।
शिक्षाबलेन निहतं पित्रा तव विशां पते ॥ २३ ॥

हे पृथ्वीपते ! फिर अपने अस्त्रशिक्षा बलसे एक हजार हाथी और दस हजार घोडोंका वध किया ॥ २३ ॥

ततः सर्वमहीपानां क्षोभयित्वा वरूथिनीम् ।
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर सब राजाओंकी सेनाको तितर बितर करके, राजा विराटके प्यारे सहोदर भाई शतानीकका वध करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २४ ॥

शतानीकं च समरे हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ।
सहस्राणि महाराज राज्ञां भल्लैर्न्यपातयत् ॥ २५ ॥

राजन् ! महा प्रतापी भीष्मने रणभूमिमें शतानीकको मारकर, एक हजार राजाओंको अपने तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे धराशायी कर दिया ॥ २५ ॥

ये च केचन पार्थानामभियाता धनञ्जयम् ।
राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम् ॥ २६ ॥

पाण्डवोंकी ओरके जो सब क्षत्रिय योद्धा नरेश अर्जुनके अनुगामी हुए थे, वे सब भीष्मके संमुख पहुंचके उनके अस्त्रोंसे मरकर यमलोकको सिधारे ॥ २६ ॥

एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः ।
अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ २७ ॥

भीष्मने इसी प्रकारसे दसों दिशाओंमें सब ओर अपने बाणोंको चलाकर बाणोंका जालसा बिछा दिया और पाण्डवोंकी सेनाको परास्त किया और कितनोंको बाणोंसे पीडित करके कुरुसेनाके आगे स्थित हुए ॥ २७ ॥

स कृत्वा सुमहत्कर्म तस्मिन्वै दशमेऽहनि ।
सेनयोरन्तरे तिष्ठन्प्रगृहीतशरासनः ॥ २८ ॥

दसवें दिन भीष्म पितामह युद्धमें कठिन कर्म करके हाथमें धनुष लेकर दोनों सेनाके बीचमें स्थित हुए ॥ २८ ॥

न चैनं पार्थिवा राजञ्शेकुः केचिन्निरीक्षितुम् ।
मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥ २९ ॥

राजन् ! उस समयमें कोई योद्धा उनकी ओर आंख उठाकर इस प्रकारसे न देख सके; जैसे ग्रीष्मकालके तपते हुए मध्याह्न समयके सूर्यको कोई नहीं देख सकता है ॥ २९ ॥

यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे ।
तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्तापयामास भारत ॥ ३० ॥

हे भारत ! जैसे देवताओंके राजा इन्द्रने युद्धमें दानवोंकी सेनाको संतप्त किया था, उसी प्रकारसे भीष्म पाण्डवोंकी सेनाको अपने अस्त्रोंसे बलसे तपाने लगे ॥ ३० ॥

तथा च तं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः ।
उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥ ३१ ॥

मधुसूदन देवकीनन्दन कृष्ण महात्मा भीष्मको इस प्रकारसे पराक्रम प्रकाशित करके बीचमें स्थित देखके, प्रीतिपूर्वक अर्जुनसे बोले ॥ ३१ ॥

एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः ।
नानिहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! यह बलवान् शान्तनुन्दन भीष्म दोनों सेनाके बीच इस समय स्थित हैं; तुम बलपूर्वक उनका वध करेंगे तो युद्धमें तुम्हारी विजय हो जायगी ॥ ३२ ॥

यत्तः संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः ।
न हि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥ ३३ ॥

जहांपर वह सम्पूर्ण सेनाको अपने बाणोंसे पीडित कर रहे हैं, वहां पर ही तुम अपने पराक्रमको प्रकाशित करके उनका निवारण करो । हे अर्जुन ! तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कोई भी पराक्रमी भीष्मके बाणोंको सहनेका उत्साह नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥

ततस्तस्मिन्क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः ।
सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! कपिध्वज अर्जुनने कृष्णके वचनसे प्रेरित होकर उसी समय अपने बाणोंकी वर्षासे भीष्मको ध्वजा, रथ और घोडोंके सहित छिपा दिया ॥ ३४ ॥

स चापि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान् ।
शरव्रातैः शरव्रातान्बहुधा विदुधाव तान् ॥ ३५ ॥

कुरुश्रेष्ठ भीष्मने भी अर्जुनके चलाये हुए बाणोंके समूहके अपने बाणोंसे टुकडे कर दिये ॥ ३५ ॥

तेन पाञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३६ ॥

इसके अन्तर पाञ्चाल राजा द्रुपद, पराक्रमी धृष्टकेतु, पाण्डुपुत्र भीमसेन, पृषतनन्दन धृष्टद्युम्न, ॥ ३६ ॥

यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह ।
सात्यकिश्च महाराज सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ॥ ३७ ॥

महाराज ! नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराजके पांचों भ्राता, सात्यकि, सुभद्राकुमार अभिमन्यु, घटोत्कच, ॥ ३७ ॥

द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः । ॥ ३८ ॥

द्रौपदीके पांचों पुत्र, शिखण्डी, पराक्रमी कुन्तिभोज, सुशर्मा, विराट और पाण्डवोंकी ओरके महाबली पराक्रमी योद्धा ॥ ३८ ॥

एते चान्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः ।
समुद्धृताः फल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे ॥ ३९ ॥

ये और दूसरे अनेक शूरवीर योद्धा लोग जो भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर शोकरूपी समुद्रमें डूब रहे थे; उन लोगोंके वास्ते अर्जुन नौका स्वरूप होकर भीष्म के सम्मुख आपहुंचे ॥ ३९ ॥

ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम् ।
भीष्ममेवाभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ ४० ॥

तब शिखण्डी किरीटधारी अर्जुनसे रक्षित होकर, परम अस्त्रशस्त्रोंको ग्रहण करके वेगसे भीष्म पितामहकी ओर दौडे ॥ ४० ॥

ततोऽस्यानुचरान्हत्वा सर्वान्रणविभागवित् ।
भीष्ममेवाभिदुद्राव बीभत्सुरपराजितः ॥ ४१ ॥

अनन्तर युद्धविभागको जाननेवाले, अपराजित अर्जुनने पितामह भीष्मके सब अनुयायियोंको मारकर, स्वयं उनकी ओर बढे ॥ ४१ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
दुद्रुवुर्भीष्ममेवाजौ रक्षिता दृढधन्वना ॥ ४२ ॥

तथा सात्यकि, चेकितान, पृषतनन्दन धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल सहदेव; ये वीर सुदृढ धनुष धारण करनेवाले अर्जुन से रक्षित होकर भीष्मकी ओर दौडे ॥ ४२ ॥

अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः ॥ ४३ ॥

अभिमन्यु और द्रौपदीके पाचों पुत्र भी महा अस्त्रोंको ग्रहण करके समरमें भीष्मकी ओर दौडे ॥ ४३ ॥

ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः ।
बहुधा भीष्ममानर्छन्मार्गणैः कृतमार्गणाः ॥ ४४ ॥

युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले दृढ धनुषधारी सम्पूर्ण महारथ भीष्मकी ओर अपने शत्रुओंको बाणोंको नष्ट करनेवाले बाणोंको चलाने लगे ॥ ४४ ॥

विधूय तान्बाणगणान्ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः ।
पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम् ।
कृत्वा शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः ॥ ४५ ॥

शत्रुनाशन उदारात्मा भीष्म उन सब श्रेष्ठ धनुषधारी राजाओंके छोडे हुए सब बाणोंको निवारण करके, पाण्डवोंकी बडी सेनामें घुस गये और पितामह भीष्म मानो क्रीडा करते हुए, उन सब महारथियोंके बाणोंको काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ४५ ॥

नाभिसंधत्त पाञ्चाल्यं स्मयमानो मुहुर्मुहुः ।
स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मृत्य भीष्मो बाणाञ्शिखण्डिनः ।
जघान द्रुपदानीके रथान्सप्त महारथः ॥ ४६ ॥

उन्होंने बार बार हंसकर शिखण्डीके स्त्रीत्वका स्मरण करके भीष्मने उसकी ओर बाण नहीं चलाया, महारथी भीष्मने राजा द्रुपदकी सेनाके सात रथियोंका वध किया ॥ ४६ ॥

ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समपद्यत ।
मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् ॥ ४७ ॥

तब क्षणभरके बीच अकेले भीष्मपर धावा करनेवाले मत्स्य, पाञ्चाल और चेदीदेशीय योद्धाओंका महान् कोलाहलका शब्द वहां गूंज उठा ॥ ४७ ॥

ते वराश्वरथव्रातैर्वारणैः सपदातिभिः ।
तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ।
भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रतपन्तं रणे रिपून् ॥ ४८ ॥

हे राजन् ! उन सब योद्धाओंने घोडे, रथिओंके समूह, हाथी और पैदल सेनाके सहित महारथी भागीरथीपुत्र भीष्मको इस प्रकारसे घेर लिया, जैसे बादलोंका समूह सूर्यको छिपा देता है । उस समय भीष्म समरमें शत्रुओंको अत्यन्त त्रस्त कर रहे थे ॥ ४८ ॥

ततस्तस्य च तेषां च युद्धे देवासुरोपमे ।
किरीटी भीष्ममानर्छत्पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ५१४८ ॥

इसके अनन्तर भीष्म और उन योद्धाओंमें देव असुरोंके संग्रामके समान महाघोर युद्ध होने लगा । किरीटधारी अर्जुन शिखण्डीको आगे करके भीष्मको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एक सौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥ ५१४८ ॥

: ११४ :

सञ्जय उवाच

एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! पाण्डव लोग इसी प्रकार शिखण्डीको आगे करके समरभूमिमें भीष्मको चारों ओरसे घेरकर विद्ध करने लगे ॥ १ ॥

शतघ्नीभिः सुघोराभिः पट्टिशैः सपरश्वधैः ।
मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीभिश्च सर्वशः ॥ २ ॥
शरैः कनकपुङ्खैश्च शक्तितोमरकम्पनैः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च भारत
अताडयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः ॥ ३ ॥

भारत ! वे सब सृञ्जयोंके सहित एकत्रित होकर, महा भयङ्कर शतघ्नी, परिघ, परशु, मुद्गर, मूषल, प्रास, गोफन, सुवर्ण पंखयुक्त बाण, शक्ति, तोमर, कम्पन, नाराच, वत्सदंत और भुशुण्डी आदि अस्त्रशस्त्रोंसे भीष्मके ऊपर युद्धमें प्रहार करने लगे ॥ २–३ ॥

स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ।
विव्यथे नैव गाङ्गेयो भिद्यमानेषु मर्मसु ॥ ४ ॥

उन सब महारथियोंके शस्त्रोंके प्रहारसे महात्मा भीष्मका तनुत्राण कट गया और उनके मर्म-स्थान बाणोंसे विद्ध होने लगे। गंगानन्दन भीष्म पितामह उन सब महारथियोंके बाणोंसे विद्ध होकर भी दुःखित न हुए ॥ ४ ॥

स दीप्तशरचापार्चिरस्त्रप्रसृतमारुतः ।
नेमिनिर्ह्रादसंनादो महास्त्रोदयपावकः ॥ ५ ॥
चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ।
युगान्ताग्निसमो भीष्मः परेषां समपद्यत ॥ ६ ॥

परंतु उस समय रणभूमिमें शत्रुओंके लिये प्रलयकालकी अग्निके समान अद्भुत तेजसे प्रकाशित होकर चारों ओर घूमने लगे। धनुष बाण तथा दूसरे सम्पूर्ण महा अस्त्रही प्रज्वलित आग थे; उनके धनुषसे जो सब बाण छूटते थे, वे अग्निके सहायक वायु रूपी दीख पडते थे; रथके पहियोंका शब्द अग्निके आंचके समान सबको तपा रहा था, महान् अस्त्रोंका उदय अंगारके समान था; उनका विचित्र धनुष अग्निकी महाशिखारूप और बडे बडे वीरोंके शरीर ही उस अग्निमें काष्ठरूपी बोध होते थे ॥ ५–६ ॥

निपत्य रथसंघानामन्तरेण विनिःसृतः
दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् ॥ ७ ॥

शत्रुओंके निमित्त इस प्रकारके अग्निरूपी भीष्म एकही क्षणमें कभी उन सब राजाओंके रथोंके समूहके मध्यसे निकल कर बाहर हो जाते थे, और कभी उन सब रथियोंके बीचमें प्रवेश करके वहां विचरते हुए दीख पडते थे ॥ ७ ॥

ततः पाञ्चालराजं च धृष्टकेतुमतीत्य च ।
पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद स वेगितः ॥ ८ ॥

अनन्तर उन्होंने पाञ्चालराज द्रुपद और धृष्टकेतुकी कुछ भी परवा न करके पाण्डवोंकी सेनामें वेगसे प्रवेश किया ॥ ८ ॥

ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ९ ॥

तब महाबलवान् भीष्म सात्यकि, भीमसेन, पाण्डुपुत्र अर्जुन, द्रुपद, विराट और पार्षत धृष्टद्युम्नको ॥ ९ ॥

भीमघोषैर्महावेगैर्वैरिवारणभेदिभिः ।
षडेतानभ्यविध्यच्छड्भास्करप्रतिमैः शरैः ॥ १० ॥

भयानक शब्द करनेवाले, महान् वेगशाली, शत्रुके कवचोंको भी विदीर्ण करनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी शिलापर घिसे उत्तम तीक्ष्ण छः बाणोंसे इन छः महारथियोंको विद्ध करने लगे ॥ १० ॥

तस्य ते निशितान्बाणान्संनिवार्य महारथाः ।
दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामासुरोजसा ॥ ११ ॥

अनन्तर उन छः महारथियोंने भीष्मके तीक्ष्ण बाणोंको निवारण करके, बलपूर्वक अपने दस दस बाणोंसे उन्हें पीडित किया ॥ ११ ॥

शिखण्डी तु रणे बाणान्यान्मुमोच महाव्रते ।
ते भीष्मं विविशुस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ १२ ॥

महारथ शिखण्डीने युद्धमें जिन सब सुवर्णमय पंखसे युक्त और उत्तम पानी चढे हुए बाणोंको महाव्रती भीष्मके ऊपर चलाया, वे सब बाण महात्मा भीष्मके शरीरमें तुरंतही घुस गये ॥ १२ ॥

ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाभ्यवर्तत
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत् ॥ १३ ॥

तब शिखण्डीको आगे करके किरीटधारी अर्जुन क्रुद्ध होकर भीष्मकी ओर दौडे, और अपने बाणोंसे उनका धनुष काट दिया ॥ १३ ॥

भीष्मस्य धनुषश्छेदं नामृष्यन्त महारथाः ।
द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १४ ॥

महारथी भीष्मके धनुषका काट जाना कौरव महारथियोंको सहन नहीं हुआ । द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, सिन्धुराज, जयद्रथ, ॥ १४ ॥

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च
सप्तैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः ॥ १५ ॥

भूरिश्रवा, शल, शल्य और राजा भगदत्त, ये सात महारथी परम क्रुद्ध हो किरीटधारी अर्जुनकी ओर दौडे ॥ १५ ॥

उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ।
अभिपेतुर्भृशं क्रुद्धाश्छादयन्त स्म पाण्डवान् ॥ १६ ॥

सब महारथी अपने दिव्य उत्तम अस्त्रोंको प्रकाशित करते हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्रताके सहित पाण्डवोंके संमुख आपहुंचे और उनको अपने अस्त्र शस्त्रोंसे छिपा दिया ॥ १६ ॥

तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फल्गुनं प्रति ।
उद्वृत्तानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये ॥ १७ ॥

जैसे प्रलयकालके समयमें अमर्यादित समुद्रोंकी लहरोंका महाभयङ्कर शब्द होता है, वैसे ही उन सब महारथियोंके अर्जुनके निकट उपस्थित होने पर महाघोर शब्द सुनाई देने लगा ॥ १७ ॥

हतानयत गृह्णीत युध्यतापि च कृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः फल्गुनस्य रथं प्रति ॥ १८ ॥

अर्जुनके रथके समीप " मारो, लाओ, पकडो, अस्त्रोंसे युद्ध करो, काटो, " इसी प्रकारसे चारों ओर महाघोर शब्द होने लगा ॥ १८ ॥

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यधावन्परीप्सन्तः फल्गुनं भरतर्षभ ॥ १९ ॥

हे भारत ! उस तुमुल शब्दको सुनकर पाण्डवोंकी ओरके महारथी अर्जुनकी रक्षाके लिये दौडे ॥ १९ ॥

सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ २० ॥

सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, राक्षस घटोत्कच ॥ २० ॥

अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्छिताः ।
समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुकधारिणः ॥ २१ ॥

और अभिमन्यु ये सात वीर विचित्र धनुषोंको ग्रहण करके, क्रोधपूर्वक शीघ्रताके सहित वहां दौडे आये ॥ २१ ॥

तेषां समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे देव और दानवोंका संग्राम हुआ था, वैसे ही कुरुपाण्डवोंका महाघोर रोवेंको खडा करनेवाला संग्राम होने लगा ॥ २२ ॥

शिखण्डी तु रथश्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना ।
अविध्यद्दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे ।
सारथिं दशभिश्चास्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे ॥ २३ ॥

इधर किरीटधारी अर्जुनसे रक्षित रथश्रेष्ठ शिखण्डीने युद्धमें धनुष कटे हुए महात्मा भीष्मको और उनके सारथीको दस दस बाणोंसे विद्ध करके, एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा काटके गिरा दी ॥ २३ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम् ।
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिभिश्चिच्छेद फल्गुनः ॥ २४ ॥

गंगानन्दन भीष्मने दूसरा एक महावेगवान् धनुष ग्रहण किया, अर्जुनने उसे भी उत्तम पानी चढे हुए तीन तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे काटके गिरा दिया ॥ २४ ॥

एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः ।
धनुर्भीष्मस्य चिच्छेद सव्यसाची परन्तपः ॥ २५ ॥

भीष्म जब दूसरा धनुष ग्रहण करते थे, उस ही समय शत्रुतापन, सव्यसाची पाण्डुपुत्र अर्जुन क्रुद्ध होके अपने बाणोंसे उसे काट देते थे ॥ २५ ॥

स च्छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं जग्राह संक्रुद्धो गिरीणामपि दारणीम् ।
तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फल्गुनस्य रथं प्रति ॥ २६ ॥

इसी भांति जब बार बार वह धनुषसे रहित हुए, तब फिर धनुष न ग्रहण करके, दांतसे होंठ काटते हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीष्मने एक महाघोर पर्वतोंको भी तोडनेकी सामर्थ्यवाली शक्ति ग्रहण करके, क्रोधपूर्वक अर्जुनके रथकी ओर चलाई ॥ २६ ॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव ।
समादत्त शितान्भल्लान्पञ्च पाण्डवनन्दनः ॥ २७ ॥

पाण्डवोंको आनन्द देनेवाले अर्जुनने जलते हुए वज्रके समान उस घोर शक्तिको सम्मुख आती देखकर, उत्तम पानी चढे हुए पांच भल्ल बाणोंको ग्रहण किया ॥ २७ ॥

तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः ।
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुबलेरिताम् ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर उन पांचो बाणोंको चलाकर भीष्मकी भुजाबलसे छूटी हुई उस भयङ्कर शक्तिको क्रुद्ध होकर पांच खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २८ ॥

सा पपात परिच्छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना ।
मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतह्रदा ॥ २९ ॥

जैसे बिजली बादलोंके समूहसे निकल कर पृथ्वी पर गिरती है, वैसे ही क्रोधित अर्जुन द्वारा काटी हुई वह प्रकाशमान् शक्ति पांच खण्ड होके गिर पडी ॥ २९ ॥

छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः ।
अचिन्तयद्रणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः ॥ ३० ॥

पराये देशके जीतनेवाले वीर भीष्म उस भयङ्कर शक्तिको अर्जुनके अस्त्रसे छिन्नभिन्न हुई देखकर क्रोधित हो गये और रणभूमिमें बुद्धिपूर्वक विचार करने लगे ॥ ३० ॥

शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान् ।
यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः ॥ ३१ ॥

यदि महाबलवान् जनार्दन कृष्ण पाण्डवोंके रक्षाकर्त्ता न होते, तो मैं एक धनुष लेकर ही उन सबका वध कर सकता ॥ ३१ ॥

कारणद्वयमास्थाय नाहं योत्स्यामि पाण्डवैः ।
अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः ॥ ३२ ॥

और भी ये पाण्डुकी संतान होनेके कारण, पाण्डवोंकी अवध्यता और शिखण्डीके स्त्री-भावके कारण, ऐसे इन दो कारणोंका आश्रय लेकर मैं पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध न करूंगा ॥ ३२ ॥

पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहत् ।
स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा ।
तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवात्मनः ॥ ३३ ॥

पहिले समयमें जब मैंने पिता शान्तनुके साथ माता सत्यवतीका विवाह कराया था उस समय मेरे पिताने प्रसन्न होकर मुझे दो वरदान दिये थे, कि "तुम जब मरनेकी इच्छा करोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी और तुम्हें युद्धमें कोई भी मार न सकेगा।" यदि मैं मरनेकी इच्छा न करूं, तो रणभूमिमें मेरी मृत्यु भी नहीं हो सकती है; इससे अब इस अवसरमें मरनेकी इच्छा करना ही मेरा कर्तव्य कार्य है, यही मेरी मृत्युके योग्य समय उपस्थित हुआ है ॥ ३३ ॥

एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्यामिततेजसः ।
ऋषयो वसवश्चैव वियत्स्था भीष्ममब्रुवन् ॥ ३४ ॥

अत्यन्त तेजस्वी भीष्म पितामहके इस अभिप्रायको जानकर आकाशमें विमानोंपर बैठे हुए ऋषि लोग और वसुओंने उनसे कहा ॥ ३४ ॥

यत्ते व्यवसितं वीर अस्माकं सुमहत्प्रियम् ।
तत्कुरुष्व महेष्वास युद्धाद्बुद्धिं निवर्तय ॥ ३५ ॥

हे वीर ! तुमने जो विचार किया है, वह हम लोगोंको भी अत्यंत प्रिय है; हे महा धनुर्द्धारी भीष्म ! तुम ऐसा ही कार्य करो; युद्धसे अपनी मति हटा लो ॥ ३५ ॥

तस्य वाक्यस्य निधने प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः ।
अनुलोमः सुगन्धी च पृषतैश्च समन्वितः ॥ ३६ ॥

उनके वचनोंको समाप्त होनेपर ही जलकणोंसे युक्त सुखद शीतल, मन्द, सुगन्धित, अनुकूल वायु बहने लगी ॥ ३६ ॥

देवदुन्दुभयश्चैव संप्रणेदुर्महास्वनाः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि पार्थिव ॥ ३७ ॥

राजन् ! तब देवताओंनें आनन्दित होके स्वर्गमें जोर जोरसे दुन्दुभी बजाकर, भीष्मके ऊपर फूलोंकी वर्षा की ॥ ३७ ॥

न च तच्छुश्रुवे कश्चित्तेषां संवदतां नृप ।
ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! उन लोगोंके उस वचनको महाबाहु भीष्मके तथा मेरे अतिरिक्त और किसीने भी नहीं सुना; परन्तु मैंने व्यास मुनिके वर-प्रभावसे उन सब वचनोंको सुन लिया ॥ ३८ ॥

संभ्रमश्च महानासीत्त्रिदशानां विशां पते ।
पतिष्यति रथाद्भीष्मे सर्वलोकप्रिये तदा ॥ ३९ ॥

हे पृथ्वीपते ! सब लोकोंके प्यारे भीष्म रथसे पृथ्वीपर गिरेंगे, इस बातको जानके देवताओंके मनमें अत्यन्त ही सम्मोह उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥

इति देवगणानां च श्रुत्वा वाक्यं महामनाः ।
ततः शांतनवो भीष्मो बीभत्सुं नाभ्यवर्तत ।
भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः ॥ ४० ॥

महमना शान्तनुनन्दन भीष्मने देवताओंके उस वचनको सुन, अर्जुनके सब आवरणोंका भेदन करनेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर भी फिर उनपर आक्रमण नहीं किया ॥ ४० ॥

शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः ॥ ४१ ॥

माहाराज ! शिखण्डीने क्रुद्ध होकर नौ तीक्ष्ण बाणोंसे भरतवंशियोंके पितामह भीष्मकी छातीमें प्रहार किया ॥ ४१ ॥

स तेनाभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः ।
नाकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ ४२ ॥

राजन् ! जैसे भूकम्प होनेपर पर्वत अचल रूपसे ही स्थिर रहता है, वैसे ही युद्धमें शिखण्डीके बाणोंके लगनेसे कुरुपितामह भीष्म तनिक भी विचालित न हुए ॥ ४२ ॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ।
गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समर्पयत् ॥ ४३ ॥

अनन्तर अर्जुनने हंसकर गाण्डीव धनुषको खींचकर भीष्मकी ओर पच्चीस क्षुद्रक बाण चलाये ॥ ४३ ॥

पुनः शरशतेनैनं त्वरमाणो धनंजयः ।
सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ४४ ॥

अनन्तर अर्जुनने फिर क्रुद्ध होकर शीघ्रतासे भीष्मके सम्पूर्ण शरीर और उनके मर्म स्थानको अपने सौ तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया ॥ ४४ ॥

एवमन्यैरपि भृशं वध्यमानो महारणे ।
न चक्रुस्ते रुजं तस्य रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ ४५ ॥

इसी प्रकारसे अन्य महारथियोंने भी अपने बाणोंसे महायुद्धमें भीष्मको बहुत विद्ध किया। शिलापर घिसे हुए सुवर्ण दण्डयुक्त तेज बाण भीष्मके शरीरमें तनिकभी पीडा उत्पन्न नहीं कर सके ॥ ४५ ॥

तत: किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाभ्यवर्तत ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत् ॥ ४६ ॥

अनन्तर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर शिखण्डीको आगे करके पुन: भीष्मके ही सम्मुख उपस्थित हुए और उनके धनुषको अपने बाणोंसे उन्होंने काट दिया ॥ ४६ ॥

अथैनं दशभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।
सारथिं विशिखैश्चास्य दशभि: समकम्पयत् ॥ ४७ ॥

अनन्तर अर्जुनने नौ बाणोंसे भीष्मको विद्ध कर, एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा काट दी और फिर दस बाणोंसे उनके सारथिको कंपित किया ॥ ४७ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादत्त गाङ्गेयो बलवत्तरम् ।
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरुपानुदत् ॥
निमेषान्तरमात्रेण आत्तमात्तं महारणे ॥ ४८ ॥

गङ्गानन्दन भीष्मने एक दूसरा अत्यन्त दृढ धनुष ग्रहण किया, परंतु अर्जुनने उसे भी अपने तीन तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे तीन खण्ड काट दिया । इसी प्रकारसे भीष्म महायुद्धमें जितने धनुष ग्रहण करते थे, अर्जुन उसी समय पल भरमें उसे अपने बाणोंसे काट देते थे; ॥ ४८ ॥

एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यपि ।
तत: शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाभ्यवर्तत ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार अर्जुनने युद्धमें भीष्मके बहुतसे धनुषोंको काट डाला । इसके अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म युद्ध करनेके निमित्त अर्जुनकी ओर नहीं बढे ॥ ४९ ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समर्दयत् ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासो दु:शासनमभाषत ॥ ५० ॥

परन्तु अर्जुनने भीष्मके ऊपर पचीस क्षुद्रक बाण चलाये । तब महाधनुर्द्धारी भीष्म अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर दु:शासनसे बोले ॥ ५० ॥

एष पार्थो रणे क्रुद्ध: पाण्डवानां महारथ: ।
शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाभ्यसते रणे ॥ ५१ ॥

हे वीर ! पाण्डवोंमें महारथ कुन्तीकुमार अर्जुन रणभूमिमें क्रुद्ध होकर कई हजार बाणोंसे मुझे पीडित कर रहा है ॥ ५१ ॥

×

न चैष शक्यः समरे जेतुं वज्रभृता अपि ।
न चापि सहिता वीरा देवदानवराक्षसाः ।
मां चैव शक्ता निर्जेतुं किमु मर्त्याः सुदुर्बलाः ॥ ५२ ॥

वज्रधारी इन्द्र भी युद्धमें अर्जुनको नहीं जीत सकते; और इसी प्रकार सब देव, दानव तथा राक्षस वीर भी एकत्रित होकर आवें तो भी मुझे युद्धमें पराजित करनेको समर्थ नहीं हो सकते; तब अत्यन्त दुर्बल मनुष्य मेरा क्या कर सकते हैं ? ॥ ५२ ॥

एवं तयोः संवदतोः फल्गुनो निशितैः शरैः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य भीष्मं विव्याध संयुगे ॥ ५३ ॥

इसी प्रकारसे भीष्म दुःशासनसे बात चीत कर रहे थे, उसी समय अर्जुन शिखण्डीको आगे करके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनको विद्ध करने लगे ॥ ५३ ॥

ततो दुःशासनं भूयः स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
अतिविद्धः शितैर्बाणैर्भृशं गाण्डीवधन्वना ॥ ५४ ॥

अनन्तर भीष्म पितामह गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होके, हंसकर फिर दुःशासनसे बोले, ॥ ५४ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शाः शिताग्राः संप्रवेशिताः ।
विमुक्ता अव्यवच्छिन्ना नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ५५ ॥

ये सब बाण जलधाराके समान आकाशसे आकर मेरे शरीरमें वज्र और विद्युतके स्पर्शके समान लगते हैं; ये अत्यंत तीक्ष्ण अग्रके हैं और ये मेरे शरीरमें बहुत जोरसे घुस गये हैं । इससे इन अविच्छिन्न छूटनेवाले बाणोंको अर्जुन ही चला रहा है, ये शिखण्डीके चलाये हुए बाण नहीं हैं ॥ ५५ ॥

निकृन्तमाना मर्माणि दृढावरणभेदिनः ।
मुसलानीव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ५६ ॥

ये सब बाण मेरे दृढ कवचको तोडके मर्मस्थानोंको पीडित कर रहे हैं, ये बाण मेरे शरीरपर मुसलके समान आघात करते हैं; ये शिखण्डीके बाण नहीं हैं ॥ ५६ ॥

ब्रह्मदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगा दुरासदाः ।
मम प्राणानारुजन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ५७ ॥

ये बाण वज्रदण्डके समान दुःसह स्पर्श करनेवाले और इनका वेग वज्रके तुल्य न सहने योग्य होकर, मुझे अत्यन्त पीडित कर रहे हैं, ये मेरे प्राणोंमें व्यथा उत्पन्न कर देते हैं; ये शिखण्डीके चलाये बाण नहीं हैं ॥ ५७ ॥

भुजगा इव संक्रुद्धा लेलिहाना विषोल्बणाः ।
समाविशन्ति मर्माणि नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ५८ ॥

ये सब वाण क्रोधित प्रचण्ड विषधारी सर्पके समान डसे लेते हैं और मेरे मर्मस्थानोंके बीच प्रवेश कर रहे हैं, इससे ये शिखण्डीके वाण नहीं हैं ॥ ५८ ॥

नाशयन्तीव मे प्राणान्यमदूता इवाहिताः ।
गदापरिघसंस्पर्शा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ५९ ॥

गदा और परिघके समान स्पर्श करके, ये सब वाण मानो अहितकारी यमदूतोंके समान मेरे प्राणका नाश किया चाहते हैं, ये सब वाण शिखण्डीके चलाये हुए नहीं हैं ॥ ५९ ॥

कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमासे गवामिव ।
अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ६० ॥

माघमासमें थंडीके कारण जैसे गौओंके शरीर विदीर्ण होते हैं, वैसेही ये सब वाण मेरे शरीरको पीडित कर रहे हैं; इससे इन सब वाणोंको अर्जुन ही चला रहा है, ये वाण शिखण्डीके नहीं हैं ॥ ६० ॥

सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ।
वीरं गाण्डीवधन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम् ॥ ६१ ॥

गाण्डीवधारी वीर कपिध्वजासे युक्त श्रेष्ठ अर्जुनके अतिरिक्त दूसरे सम्पूर्ण क्षत्रिय एकत्रित होकर भी अपने प्रहारोंसे युद्धमें मुझे इतने पीडित नहीं कर सकते ॥ ६१ ॥

इति ब्रुवञ्शान्तनवो दिधक्षुरिव पाण्डवम् ।
सविष्फुलिङ्गां दीप्ताग्रां शक्तिं चिक्षेप भारत ॥ ६२ ॥

हे भारत ! शान्तनुपुत्र भीष्मने ऐसे ही वचनोंको कहते हुए मानो अर्जुनको भस्म करनेकी इच्छा करके उनकी ओर एक स्फुलिंगसहित प्रदीप्त महाभयङ्कर शक्ति चलाई ॥ ६२ ॥

तामस्य विशिखैश्छित्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत् ।
पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तत्र भारत ॥ ६३ ॥

भारत ! अनन्तर अर्जुनने भीष्मकी चलाई हुई शक्तिको, सब कुरुवंशियोंके सम्मुख ही वहां तीन बाणोंसे टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६३ ॥

चर्माथादत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ।
खड्गं चान्यतरं प्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा ॥ ६४ ॥

इसके अनन्तर गङ्गानन्दन भीष्मने मृत्युके मुखमें गमन करनेकी अथवा विजयकी इच्छा करके, सुवर्ण भूषित ढाल और तलवारको ग्रहण किया ॥ ६४ ॥

तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमद्दंशितात्मनः ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६५ ॥
उन्हें ग्रहण करके रथसे उतरते उतरते ही कवचधारी अर्जुनने अपने बाणोंसे उनकी ढालके सौ टुकडे करके गिरा दिया । अर्जुनका वह कठिन कर्म आश्चर्यमय दिखाई देने लगा ॥ ६५ ॥

विनद्योच्चैः सिंह इव स्वान्यनीकान्यचोदयत् ।
अभिद्रवत गाङ्गेयं मा वोऽस्तु भयमण्वपि ॥ ६६ ॥
इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने सिंहके गर्जनाके समान उच्च स्वरसे अपनी सेनाके योद्धाओंको आज्ञा दी, कि तुम लोग शीघ्रताके सहित गङ्गानन्दन भीष्मके निकट युद्ध करनेके वास्ते गमन करो; तुम लोगोंको तनिक भी भयकी सम्भावना नहीं है ॥ ६६ ॥

अथ ते तोमरैः प्रासैर्बाणौघैश्च समन्ततः ।
पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नानाप्रहरणैस्तथा ॥ ६७ ॥
वे सब योद्धा राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार सब ओरसे तोमर, प्रास, बाण समूह, पट्टिश, खड्ग, त्रिशूल और नाना प्रकारके तीक्ष्ण उत्तम अस्त्र शस्त्र ॥ ६७ ॥

वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः ।
सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामजायत ॥ ६८ ॥
वत्सदन्त तथा भल्लोंको ग्रहण करके, अकेले भीष्मकी ओर दौडे । अनन्तर पाण्डवोंके सैनिक घोर सिंहनाद करने लगे ॥ ६८ ॥

तथैव तव पुत्राश्च राजन्भीष्मजयैषिणः ।
तमेकमभ्यवर्तन्त सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ ६९ ॥
हे राजन् ! तथा भीष्मकी जयकी अभिलाषा करनेवाले तुम्हारे सब पुत्र भी सिंहनाद करते हुए, एक मात्र भीष्म ही की रक्षा करने लगे ॥ ६९ ॥

तत्रासीत्तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह ।
दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे ॥ ७० ॥
राजेन्द्र ! उस दसवें दिन भीष्म और अर्जुनका समागम होनेपर तुम्हारी महासेनाका पाण्डवोंकी सेनाके साथ महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ७० ॥

आसीद्गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधेरिव ।
सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ७१ ॥
दोनों ओरकी सेनाके युद्धपरायण योद्धा एक दुसरेके बाणोंसे पीडित होने लगे। जैसे समुद्रमें गङ्गाका सङ्गम होनेपर क्षणभरके बीच वहांपर जल ही जल दीख पडता है, वैसे ही दोनों सेना युद्ध भूमिमें शोभित हुई ॥ ७१ ॥

अगम्यरूपा पृथिवी शोणिताक्ता तदाभवत् ।
समं च विषमं चैव न प्राज्ञायत किंचन ॥ ७२ ॥

उस समय सैनिकोंके रक्तसे युक्त भूमि अतर्क्य रूप और समविषमभावसे शून्य दीखने लगी ॥ ७२ ॥

योधानामयुतं हत्वा तस्मिन्स दशमेऽहनि ।
अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ॥ ७३ ॥

उस समय भीष्मके सम्पूर्ण मर्मस्थान अर्जुनके बाणोंसे विद्ध हुए थे, तौ भी वह दस हजार पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंको मार कर कुरु सेनाके आगे स्थित हुए ॥ ७३ ॥

ततः सेनामुखे तस्मिन्स्थितः पार्थो धनंजयः ।
मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम् ॥ ७४ ॥

अनन्तर अपनी सेनाके आगे खडे हुए कुन्तीकुमार धनंजय कुरु सेनाके भीतर प्रवेश करके तुम्हारे सैनिकोंको तितर बितर करने लगे ॥ ७४ ॥

वयं श्वेतहयाद्भीताः कुन्तीपुत्राद्धनंजयात् ।
पीडयमानाः शितैः शस्त्रैः प्रद्रवाम महारणात् ॥ ७५ ॥

उस समय हम लोग श्वेतवाहन कुन्तीपुत्र धनजयसे डरकर उनके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे पीडित होकर महायुद्धमेंसे भागने लगे ॥ ७५ ॥

सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ७६ ॥

सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, और वसाति ॥ ७६ ॥

शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ।
द्वादशैते जनपदाः शरार्ता व्रणपीडिताः
संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना ॥ ७७ ॥

शाल्वाश्रय, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय; इन बारह देशोंके शूरवीर योद्धा बाणोंसे घायल और घावोंसे पीडित होनेपर भी अर्जुनके साथ युद्ध करनेवाले भीष्मको रणभूमिमें त्यागके वहांसे नहीं गये ॥ ७७ ॥

ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः ।
परिकाल्य कुरून्सर्वाञ्शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ७८ ॥

अनन्तर बहुतसे शूरवीर योद्धा चारों ओरसे एक मात्र भीष्मको ही घेरकर, सम्पूर्ण कौरवोंको सब ओर तितर बितर करके, उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७८ ॥

निपातयत गृह्णीत विध्यताथ च कर्षत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो राजन्भीष्मरथं प्रति ॥ ७९ ॥

राजन् ! उस समय " मारो, पकडो, विद्ध करो, काटो " इसी प्रकारसे महा घोर शब्द भीष्मके रथके समीपमें सुनाई देने लगा ॥ ७९ ॥

अभिहत्य शरौघैस्तं शतशोऽथ सहस्रशः ।
न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रेष्वङ्गुलमात्रकम् ॥ ८० ॥

सैकडों तथा सहस्रों बाणोंको एक ही बार सम्पूर्ण योद्धा भीष्मके ऊपर चलाने लगे; उस समय पितामह भीष्मके शरीरमें दोन अंगुल स्थान भी ऐसा न रहा कि जिसपर बाणोंसे वेध नहीं हुआ है ॥ ८० ॥

एवं विभो तव पिता शरैर्विशकलीकृतः ।
शिताग्रैः फल्गुनेनाजौ प्राक्शिराः प्रापतद्रथात् ।
किञ्चिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम् ॥ ८१ ॥

हे प्रभो ! इसी भांति तुम्हारे पिता भीष्म, अपराह्न समयमें तुम्हारे सब पुत्रोंके संमुखमेंही, अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर छलनी जैसा होके, पूरबको सिर और पश्चिमको चरण करके रथसे नीचे गिरे ॥ ८१ ॥

हा हेति दिवि देवानां पार्थिवानां च सर्वशः ।
पतमाने रथाद्भीष्मे बभूव सुमहान्स्वनः ॥ ८२ ॥

भीष्मको रथसे गिरता देख सम्पूर्ण राजाओं तथा आकाशसे देवताओंने सब ओरसे महा हाहाकार शब्द किया ॥ ८२ ॥

तं पतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम् ।
सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन्हृदयानि नः ॥ ८३ ॥

महात्मा भीष्म पितामहको रथसे नीचे गिरते देखकर, उनके सङ्ग ही सङ्ग हम सब लोगोंके हृदय भी गिर पडे ॥ ८३ ॥

स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ।
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम्
धरणीं नास्पृशच्चापि शरसंघैः समाचितः । ॥ ८४ ॥

सब धनुर्द्धारियोंके ध्वजास्वरूप वह महाबाहु भीष्म इन्द्र-ध्वजाकी भांति पृथ्वीको शब्दायमान करते हुए रथसे गिर पडे । महात्मा भीष्म सब अङ्गोंमें बाणोंसे व्याप्त होरहे थे, इससे रथसे गिरके भी पृथ्वीको स्पर्श नहीं किया ॥ ८४ ॥

शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम्
रथात्प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत् । ॥ ८५ ॥

महाधनुर्द्धारी पुरुषश्रेष्ठ भीष्म पितामहने रथसे गिरके शरशय्यापर शयन किया, उस समय उनके हृदयमें दिव्य भावका सञ्चार हुआ ॥ ८५ ॥

अभ्यवर्षत पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी ।
पतन्स ददृशे चापि खर्वितं च दिवाकरम् ॥ ८६ ॥

तब आकाशसे बादल जलकी वर्षा करने लगे और पृथ्वी कांपने लगी, उन्होंने रथसे गिरते समय सूर्यको दक्षिणायन मार्गसे गमन करता हुआ देखा ॥ ८६ ॥

संज्ञां चैवालभद्वीरः कालं संचिन्त्य भारत ।
अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्यां वाचं समन्ततः ॥ ८७ ॥

भारत ! वीरश्रेष्ठ भीष्म समयका विचार करके फिर सावधान हुए । इसके अनन्तर चारों ओरसे अंतरिक्षमें उन्होंने यह देववाणी सुनी ॥ ८७ ॥

कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कालं कर्ता नरव्याघ्रः संप्राप्ते दक्षिणायने ॥ ८८ ॥

कि " सर्व शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, पुरुषसिंह और कालपरभी प्रभुत्व रखनेवाले महात्मा गङ्गानन्दन भीष्म सूर्यके दक्षिणायन रहनेपर क्यों प्राणत्याग करेंगे ? " ॥ ८८ ॥

स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ।
धारयामास च प्राणान्पतितोऽपि हि भूतले ।
उत्तरायणमन्विच्छन्भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ८९ ॥

देववाणी सुनकर गंगानंदन भीष्म पितामह बोले, " मैं अभी जीवित हूं । " कुरुपितामह भीष्म रथसे पृथ्वीपर गिरकर भी सूर्यके उत्तरायण आनेकी प्रतीक्षा करते हुए, प्राण धारण कर के शरशय्या पर शयन करने लगे ॥ ८९ ॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ।
महर्षीन्हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै ॥ ९० ॥

हिमालयपुत्री गङ्गाने भीष्मका अभिप्राय समझकर महर्षियोंको हंस रूपसे उनके निकटमें भेज दिया ॥ ९० ॥

ततः संपातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः ।
आजग्मुः सहिता द्रष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥ ९१ ॥

जिस स्थान पर पुरुषसिंह भीष्म शरशय्यापर शयन कर रहे थे, मानस सरोवर निवासी हंसरूपी सब ऋषी लोगोंने मिलकर उडते हुए बडी शीघ्रताके सहित वहां पर आकाशसे उतरकर, कुरुपितामह भीष्मका दर्शन करनेके लिये उनके निकटमें गमन किया ॥ ९१ ॥

ते तु भीष्मं समासाद्य मुनयो हंसरूपिणः।
अपश्यञ्शरतल्पस्थं भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ९२ ॥
अनन्तर उन सब हंसरूपधारी मुनियोंने वहां पहुंचकर कुरुपितामह भीष्मको शरशय्यापर शयन किये हुए देखा ॥ ९२ ॥

ते तं दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
गाङ्गेयं भरतश्रेष्ठं दक्षिणेन च भास्करम् ॥ ९३ ॥
वे सब मनीषी महर्षी लोग महात्मा भरतश्रेष्ठ गंगानंदन भीष्मका दर्शन करके उनको प्रदक्षिण कर, सूर्यको दक्षिणायन मार्गसे गमन करते देख ॥ ९३ ॥

इतरेतरमामन्त्र्य प्राहुस्तत्र मनीषिणः।
भीष्म एव महात्मा सन्संस्थता दक्षिणायने ॥ ९४ ॥
चिन्ता करके आपसमें सलाह करके वे मनीषी मुनि कहने लगे, भीष्म धर्मात्मा और महात्मा होकर दक्षिणायनमें क्यों प्राणत्याग करते हैं ? ॥ ९४ ॥

इत्युक्त्वा प्रस्थितान्हंसान्दक्षिणामभितो दिशम्।
संप्रेक्ष्य वै महाबुद्धिश्चिन्तयित्वा च भारत ॥ ९५ ॥
हंसोंने ऐसा वचन कहके दक्षिण दिशासे प्रस्थान करनेका विचार किया। हे भारत ! महा बुद्धिमान् शान्तनुनन्दन भीष्मने उन सब हंसरूपी ऋषियोंको जाते देखकर चिन्तन पूर्वक ॥ ९५ ॥

तानब्रवीच्छांतनवो नाहं गन्ता कथञ्चन।
दक्षिणावृत्त आदित्ये एतन्मे मनसि स्थितम्। ॥ ९६ ॥
उन सम्पूर्ण महर्षियोंसे कहा, " जबतक सूर्य दक्षिणायनमें है, तबतक मैं किसी प्रकारसेभी पर लोकमें गमन नहीं करूंगा, मैंने ऐसा ही अपने मनमें निश्चित विचार किया है " ॥ ९६ ॥

गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद्यन्मे पुरातनम्।
उदगावृत्त आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ ९७ ॥
" हे हंसो ! मैं तुम लोगोंसे सत्य वचन कहता हूं, जब सूर्य उत्तरायण मार्गसे गमन करेंगे, तब मैं उस लोकपर गमन करूंगा जो मेरा अपना पुराना स्थान है ॥ ९७ ॥

धारयिष्याम्यहं प्राणानुत्तरायणकाङ्क्षया।
ऐश्वर्यभूतः प्राणानामुत्सर्गे नियतो ह्यहम्।
तस्मात्प्राणान्धारयिष्ये मुमुर्षुरुदगायने ॥ ९८ ॥
इस समय मैं उत्तरायण कालकी प्रतीक्षा करते हुए अपना प्राण धारण करूंगा। उचित समयपर प्राणत्याग करना मेरे वशमें है; इसी कारणसे मैं उत्तरायण समयमें मरनेकी अभिलाषा करूंगा ॥ ९८ ॥

यश्च दत्तो वरो मह्यं पित्रा तेन महात्मना ।
छन्दतो मृत्युरित्येवं तस्य चास्तु वरस्तथा ॥ ९९ ॥

मेरे महात्मा पिताने जो मुझे इच्छा मरणका वर दिया था, उनका वह वर सार्थक होवे, उसी वरके प्रभावसे अपने मरनेके विषयमें मुझे अधिकार है ॥ जब इच्छा करूंगा, तब ही मेरी मृत्यु होगी; ॥ ९९ ॥

धारयिष्ये ततः प्राणानुत्सर्गे नियते सति ।
इत्युक्त्वा तांस्तदा हंसानशेत शरतल्पगः ॥ १०० ॥

अतः मैं उत्तरायणमें मृत्यु प्राप्त करनेकी इच्छासे अपने प्राण धारण करूंगा " शरशय्या पर पडे हुए भीष्मने उन हंसोंसे ऐसा वचन कहके फिर शयन किया ॥ १०० ॥

एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि ।
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ १०१ ॥

कुरुकुलके शृङ्गस्वरूपी महातेजस्वी भीष्म पितामहको इस प्रकारसे गिरा हुआ देखकर पाण्डव और सृञ्जय सिंहनाद करने लगे ॥ १०१ ॥

तस्मिन्हते महासत्त्वे भरतानाममध्यमे ।
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
संमोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत्तदा ॥ १०२ ॥

हे भारत ! कुरु-पितामह महा तेजस्वी भीष्मको रथसे पृथ्वीपर गिरे हुए देखकर तुम्हारे सब पुत्र अपने कर्त्तव्य कर्मसे विमूढ हुए और सम्पूर्ण कौरवोंको उस समयमें भयङ्कर मोह उत्पन्न हुआ ॥ १०२ ॥

नृपा दुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः ।
विषादाच्च चिरं कालमतिष्ठन्विगतेन्द्रियाः ॥ १०३ ॥

दुर्योधन आदि सम्पूर्ण कौरव नरेश लम्बी सांसोंको छोडके रोने लगे, और विषादयुक्त सम्पूर्ण शरीर और इन्द्रियोंसे शिथिल होकर बहुत समयतक स्थिर होके खडे रहे ॥१०३॥

दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः ।
ऊरुग्राहगृहीताश्च नाभ्यधावन्त पाण्डवान् ॥ १०४ ॥

महाराज ! और वे भारी चिन्ता करने लगे; उस समय युद्ध करनेमें किसीकी भी इच्छा नहीं हुई । उनके हाथ पैरोंने मानो मगर घडियालरूपी होकर उन्हें पकड रक्खा; युद्धमें पाण्डवोंकी ओर गमन करनेमें भी समर्थ नहीं हुए ॥ १०४ ॥

×

अवध्ये शांतनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि ।
अभावः सुमहान्राजकुरूनागादतन्द्रितः ॥ १०५ ॥

महाराज ! शान्तनुपुत्र महातेजस्वी भीष्म जब सब पुरुषोंसे अवध्य होकर भी युद्धमें मारे गये, तब हम लोगोंके मनमें यही महा वितर्क उपस्थित हुआ, कि अब कुरुराज दुर्योधन जीवित नहीं हैं ॥ १०५ ॥

हतप्रवीराश्च वयं निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।
कर्तव्यं नाभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ १०६ ॥

हम लोग सव्यसाची अर्जुनके सम्मुखसे पराजित और उनके तीक्ष्ण बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर हो गये थे, और हमारे प्रमुख वीर उनसे मारे गये थे। उस अवस्थामें हम निज कर्तव्य कर्मसे विमूढ होकर व्याकुल हो गये ॥ १०६ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च परां गतिम् ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खाञ्शूराः परिघबाहवः ।
सोमकाश्च सपञ्चालाः प्राहृष्यन्त जनेश्वर ॥ १०७ ॥

हे राजन् ! महाबाहु पराक्रमी पाण्डवोंने युद्धमें विजय पाकर और न्याय युद्धमें जययुक्त होनेसे परलोकमें भी उत्तम गति निश्चित कर ली। ऐसा विचार कर सब कोई परिघके समान बाहुवाले शूरवीर हर्षके सहित अपने अपने महान् शंखोंको बजाने लगे। जनेश्वर ! उस समय सोमक और पाञ्चाल लोग हर्षित हुए ॥ १०७ ॥

ततस्तूर्यसहस्रेषु नदत्सु सुमहाबलः ।
आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननर्त च ॥ १०८ ॥

तथा हजारों शङ्ख, भेरी, बांसुरी, ढोल और नगाडोंका शब्द सुनाई देने लगा। महा बलवान् भीमसेन बलपूर्वक जोर जोरसे ताल ठोकने लगे और नाचने लगे ॥ १०८ ॥

सेनयोरुभयोश्चापि गाङ्गेये विनिपातिते ।
संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समन्ततः ॥ १०९ ॥

हे राजन् ! गङ्गानन्दन भीष्मके मारे जानेपर सब ओर दोनों सेनाके शूरवीर योद्धा अपने अस्त्र शस्त्रको नीचे रखकर भारी चिन्ता करने लगे ॥ १०९ ॥

प्राक्रोशन्प्रापतंश्चान्ये जग्मुर्मोहं तथापरे ।
क्षत्रं चान्येऽभ्यनिन्दन्त भीष्मं चैकेऽभ्यपूजयन् ॥ ११० ॥

कितने ही जोरसे चिल्लाने और कितने ही योद्धा उस समय गिरने लगे। और कितने ही मोहित हो गये। तब कितनेही शूरवीर क्षत्रिय धर्मकी निन्दा करने लगे और कुछ भीष्मकी प्रशंसा करते थे ॥ ११० ॥

ऋषयः पितरश्चैव प्रशशंसुर्महाव्रतम् ।
भरतानां च ये पूर्वे ते चैनं प्रशशंसिरे ॥ १११ ॥

सम्पूर्ण ऋषि, देवता, पितर और भरतकुलके पूर्व पुरुषोंने भी महाव्रती भीष्म पितामहकी प्रशंसा की ॥ १११ ॥

महोपनिषदं चैव योगमास्थाय वीर्यवान् ।
जपञ्शान्तनवो धीमान्कालाकाङ्क्षी स्थितोऽभवत् ॥ ११२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ ॥ ५२६० ॥

पराक्रमी शान्तनुपुत्र बुद्धिमान् भीष्म सूर्यके उत्तरायणकी अभिलाषा करके उपनिषदोंमें कहे हुए योगको अवलम्बन करके समयको बिताते हुए शरशय्यापर शयन करने लगे ॥ ११२ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एकसौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ ११४ ॥ ५२६० ॥

: ११५ :

धृतराष्ट्र उवाच

कथमासंस्तदा योद्धा हीना भीष्मेण सञ्जय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जो पिताके निमित्त ब्रह्मचारी हुए थे, उन देवताओंके समान और पराक्रमी भीष्मसे हीन मेरी सेनाके योद्धाओंने उस समय क्या किया ? ॥ १ ॥

तदैव निहतान्मन्ये कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ।
न प्राहरद्यदा भीष्मो घृणित्वाद्द्रुपदात्मजे ॥ २ ॥

जब भीष्मने द्रुपदपुत्र शिखण्डीके ऊपर घृणा करके उसके वधके निमित्त अपने अस्त्रोंको नहीं चलाया, उसी समयमें मैंने सम्पूर्ण कौरव तथा उनके अनुयायी समस्त नरेश योद्धाओंको पाण्डवोंके अस्त्रोंसे मरे हुए समझ लिया है ॥ २ ॥

ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत्प्रभविष्यति ।
यदद्य पितरं श्रुत्वा निहतं मम दुर्मतेः ॥ ३ ॥

अपनी दुर्बुद्धिके कारण मैंने आज पिता भीष्मके मरनेका वृत्तान्त सुनके जो दुःख पाया है; मेरी समझमें इससे बढकर और दूसरा कौनसा दुःख हो सकता है ? ॥ ३ ॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।
श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते ॥ ४ ॥

हे सञ्जय ! निश्चय ही मेरा हृदय पाषाणसे निर्मित है; नहीं तो भीष्मका मरना सुन कर हृदय सौ टुकडे होके क्यों न फट गया ? ॥ ४ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे ।
न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैः स्म यः पुरा ॥ ५ ॥

युद्धमें जो देवव्रत भीष्म मारे गये, वह मुझसे बार बार नहीं सहा जाता है। पहिले जमदग्नि-पुत्र परशुरामजी अपने दिव्य-अस्त्रोंको चला कर भी इनका वध न कर सके ॥ ५ ॥

यदद्य निहतेनाजौ भीष्मेण जयमिच्छता ।
चेष्टितं नरसिंहेन तन्मे कथय संजय ॥ ६ ॥

हे तात सञ्जय ! जयकी अभिलाषा करनेवाले नरसिंह भीष्मने युद्धमें घायल होकर जो कुछ किया था, वह वृत्तान्त तुम मेरे निकट वर्णन करो ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच

सायाह्ने न्यपतद्भूमौ धार्तराष्ट्रान्विषादयन् ।
पाञ्चालानां ददद्धर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ॥ ७ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्म सन्ध्याके समय जब घायल होके पृथ्वीपर गिरे, उस समय उन्होंने धार्त्तराष्ट्रोंको विषादित किया और पांचालोंको आनन्दित होनेका अवसर दिया ॥ ७ ॥

स शेते शरतल्पस्थो मेदिनीमस्पृशंस्तदा ।
भीष्मे रथात्प्रपतितः प्रच्युतो धरणीतले ॥ ८ ॥

उन्होंने पृथ्वीको स्पर्श किये बिना ही उस समय शरशय्यापर शयन किया। भीष्म जिस समय बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर रथसे पृथ्वी पर गिरे, ॥ ८ ॥

हा हेति तुमुलः शब्दो भूतानां समपद्यत ।
सीमावृक्षे निपतिते कुरूणां समितिक्षये ॥ ९ ॥

उस समयमें सम्पूर्ण प्राणी महाघोर हाहाकार शब्द करने लगे। कौरवोंके युद्धके जीतनेवाले सीमावृक्ष रूपी भीष्म पितामहको पृथ्वी पर गिरते देख, ॥ ९ ॥

उभयोः सेनयो राजन्क्षत्रियान्भयमाविशत्
भीष्मं शान्तनवं दृष्ट्वा विशीर्णकवचध्वजम् ।
कुरवः पर्यवर्तन्त पाण्डवाश्च विशां पते ॥ १० ॥

हे राजन् ! दोनों सेनाके क्षत्रिय योद्धाओंके चित्तमें भय उत्पन्न हुआ। पृथ्वीपते ! शान्तनु-नन्दन भीष्मको छिन्न भिन्न कवच और ध्वजासे हीन देखकर, कौरव और पाण्डव दोनों ही उन्हें घेरकर खडे हो गये ॥ १० ॥

खं तमोवृतमासीच्च नासीद्भानुमतः प्रभा ।
रराास पृथिवी चैव भीष्मे शान्तनवे हते ॥ ११ ॥

आकाशमें अन्धेरा छागया, सूर्य प्रकाशहीन होगए, और शान्तनुपुत्र भीष्मके मारे जानेपर पृथ्वी महा घोर शब्द करने लगी ॥ ११ ॥

अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो अयं ब्रह्मविदां गतिः ।
इत्यभाषन्त भूतानि शयानं भरतर्षभम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण मनुष्य भरतकुलमें मुख्य भीष्मको शरशय्या पर शयन करते देखकर आपसमें कहने लगे; यह ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंमें श्रेष्ठ और ब्रह्मवेत्ताओंकी गति हैं ॥ १२ ॥

अयं पितरमाज्ञाय कामार्तं शान्तनुं पुरा ।
ऊर्ध्वरेतसमात्मानं चकार पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥

इन्हीं पुरुषसिंहने पहिले अपने पिता शान्तनुको कामार्त्त समझके अपने ब्रह्मचर्य व्रतका अवलम्बन किया था ॥ १३ ॥

इति स्म शरतल्पस्थं भरतानाममध्यमम् ।
ऋषयः पर्यधावन्त सहिताः सिद्धचारणैः ॥ १४ ॥

सिद्ध और चारणों सहित ऋषि लोग भरत कुलसत्तम भीष्मको शरशय्यापर देखकर उनके पास दौडते आये ॥ १४ ॥

हते शान्तनवे भीष्मे भरतानां पितामहे ।
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव च भारत ॥ १५ ॥

भारत ! जब भरतवंशियोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्म रथसे घायल होके पृथ्वीपर गिरे, तब तुम्हारे पुत्र लोग 'क्या करेंगे' ऐसी चिन्ता करके कुछ भी निश्चय न कर सके ॥१५॥

विवर्णवदनाश्चासन्गतश्रीकाश्च भारत ।
अतिष्ठन्व्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ॥ १६ ॥

भारत ! उन सब लोगोंका मुख दुःखित हो गया था; और वे सब लोग तेजरहित तथा लज्जित होके सिर नीचेकी ओर करके खडे थे ॥ १६ ॥

पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान्हेमजालपरिष्कृतान् ॥ १७ ॥

पाण्डवलोग विजय पाके युद्धके अग्रभागमें खडे थे और सब सुवर्णभूषित बडे शङ्ख और युद्धके सहस्रों बाजोंको बजाने लगे ॥ १७ ॥

भृशं तूर्यनिनादेषु वाद्यमानेषु चानघ ।
अपश्याम रणे राजन्भीमसेनं महाबलम् ।
आक्रीडमानं कौन्तेयं हर्षेण महता युतम् ॥ १८ ॥

हे महाराज ! जब जोरसे बाजे बज रहे थे, उस समय महाबलवान् कुन्तीपुत्र भीमसेनको बडे हर्षसे युद्धमें क्रीडा करते हुए मैंने निरीक्षण किया ॥ १८ ॥

निहत्य समरे शत्रून्महाबलसमन्वितान् ।
संमोहश्चापि तुमुलः कुरूणामभवत्तदा ॥ १९ ॥

युद्धमें महा बलवान् और पराक्रमी शत्रुओंको मार गिराया था। उस समय कौरव लोग अत्यंत चेतरहित हो गये थे ॥ १९ ॥

कर्णदुर्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः ।
तथा निपतिते भीष्मे कौरवाणां धुरंधरे ।
हाहाकारमभूत्सर्वं निर्मर्यादमवर्तत ॥ २० ॥

कर्ण और दुर्योधन बार बार लम्बी सांस छोडते चिन्ता करने लगे। कुरुपितामह धुरंधर भीष्मको इस प्रकार रथसे पृथ्वीपर गिरा हुआ देख, सम्पूर्ण सेनाके बीच हाहाकार मच गया। कहीं कोई मर्यादा नहीं रही ॥ २० ॥

दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकं समाद्रवत् ॥ २१ ॥

तुम्हारे पुत्र दुःशासन भीष्मको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर, वेगपूर्वक द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौडे ॥ २१ ॥

भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः स्वेनानीकेन दंशितः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यमभिचोदयन् ॥ २२ ॥

दुर्योधनकी आज्ञासे वीर पुरुषसिंह दुःशासन अपनी सेनाके साथ लेकर, सेनाके पुरुषोंको विषादित करके दुःशासनने द्रोणाचार्यके समीप गमन किया ॥ २२ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कुरवः पर्यवारयन् ।
दुःशासनं महाराज किमयं वक्ष्यतीति वै ॥ २३ ॥

हे राजन् ! कुरुसेनाके सब शूरवीर योद्धा दुःशासनको आते देख, उनकी बातोंको सुननेके निमित्त चारों ओरसे उन्हें घेरके खडे हो गये ॥ २३ ॥

ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः ।
द्रोणस्तदप्रियं श्रुत्वा सहसा न्यपतद्रथात् ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर दुःशासनने द्रोणाचार्यके समीप जाकर भीष्मके पृथ्वीपर गिरनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया; द्रोणाचार्य उस अप्रिय समाचारको सुनकर सहसा रथसे गिर पडे ॥ २४ ॥

स संज्ञामुपलभ्याथ भारद्वाजः प्रतापवान् ।
निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष ॥ २५ ॥

मारिष ! प्रतापवान् भरद्वाज पुत्रने थोडी देरके अनन्तर सावधान होकर उसी समय अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ २५ ॥

विनिवृत्तान्कुरून्दृष्ट्वा पाण्डवापि स्वसैनिकान् ।
दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैरवहारमकारयन् ॥ २६ ॥

तब पाण्डवोंने भी कौरवोंको युद्धसे निवृत्त होता हुआ देखकर, शीघ्र गमन करनेवाले अपने घुडसवार दूतोंको सेनामें चारों ओर भेजके अपनी सेनाके योद्धाओंको भी युद्धसे निवृत्त किया ॥ २६ ॥

विनिवृत्तेषु सैन्येषु पारंपर्येण सर्वशः ।
विमुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः ॥ २७ ॥

सेनाके सब पुरुष निवृत्त होनेका समाचार सुनकर युद्धसे निवृत्त हुए । जब सम्पूर्ण सेना युद्धसे निवृत्त होगई तब सब राजाओंने अपने शरीरसे कवच उतार कर भीष्मके निकट गमन किया ॥ २७ ॥

व्युपारम्य ततो युद्धाद्योधाः शतसहस्रशः ।
उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवामराः ॥ २८ ॥

उस समयमें सैकडों तथा सहस्रों क्षत्रिय योद्धा युद्धसे निवृत्त होकर, जैसे सब देवता प्रजापति ब्रह्माके समीप जाकर सेवामें खडे होते हैं वैसे ही महात्मा भीष्मके निकट जाकर खडे हुए ॥ २८ ॥

ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम् ।
अभिवाद्य व्यतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ २९ ॥

पाण्डव और कौरव शरशय्यापर शयन किये हुए भरतश्रेष्ठ भीष्म पितामहके पास पहुंच कर प्रणाम करके उनके संमुख खडे हो गये ॥ २९ ॥

अथ पाण्डून्कुरूंश्चैव प्रणिपत्याग्रतः स्थितान् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३० ॥

पाण्डव और कौरव जब प्रणाम करके उनके सन्मुख खडे हुए तब धर्मात्मा शान्तनुनन्दन भीष्म उन सब लोगोंसे यह वचन बोले ॥ ३० ॥

स्वागतं वो महाभागाः स्वागतं वो महारथाः ।
तुष्यामि दर्शनाच्चाहं युष्माकममरोपमाः ॥ ३१ ॥

" हे महाभाग पुरुषो ! तुम्हारा स्वागत हो ! हे देवताओंके समान महारथी पुरुषो ! तुम्हारा स्वागत हो ! तुम सब लोगोंके दर्शनसे मैं सन्तुष्ट हुआ हूं । " ॥ ३१ ॥

अभिनन्द्य स तानेवं शिरसा लम्बताब्रवीत् ।
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम् ॥ ३२ ॥

भीष्म पितामह सिर नीचे लटकते हुए शरशय्यापर शयन करके सम्पूर्ण पुरुषोंका इसी प्रकारसे स्वागत करके तुम्हारे पुत्रोंको अपने निकट चारों ओर खडे देखकर उनसे यह वचन बोले– " मेरा सिर नीचे लटक रहा है, तुम लोग मेरे सिरके नीचे तकिया लगा दो । " ॥ ३२ ॥

ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च ।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत्तानि पितामहः ॥ ३३ ॥

यह वचन सुनके राजा लोग महीन और कोमल वस्त्रोंसे बने हुए तकिये लेकर वहां उपस्थित हुए; परन्तु पितामह भीष्मने उन वस्तुओंको ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं की ॥ ३३ ॥

अब्रवीच्च नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान्नृपान् ।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥ ३४ ॥

तदनंतर पुरुषसिंह भीष्म हंसकर उन राजा लोगोंसे बोले, " हे राजा लोगो ! ये सब वस्तु वीरशय्याके योग्य नहीं है । " ॥ ३४ ॥

ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम् ।
धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥ ३५ ॥

इसके अनन्तर सब लोगोंके बीच महारथ, पुरुषसिंह, महाबाहु पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर देखकर महात्मा भीष्म पितामह यह वचन बोले ॥ ३५ ॥

धनञ्जय महाबाहो शिरसो मेऽस्य लम्बतः ।
दीयतामुपधानं वै यद्युक्तमिह मन्यसे ॥ ३६ ॥

" हे पुत्र ! हे महाबाहु अर्जुन ! मेरा शिर तकियेके विना लटक रहा है, इससे तुम्हारे विचारमें जैसा वस्त्र मेरे सिरके नीचे देनेके योग्य होवे, वह तुम मेरे शिरके नीचे लगा दो । " ॥ ३६ ॥

स संन्यस्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम् ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

तब अर्जुनने भीष्म पितामहको प्रणाम करके अपने विशाल धनुष पर रोदा चढा लिया और आंखोंमें आंसू भरके उनसे बोले ॥ ३७ ॥

आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर ।
प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह ॥ ३८ ॥

"हे सब शस्त्रधारियोंमें अग्रणी दुर्धर्ष कुरुश्रेष्ठ पितामह ! मैं तुम्हारा दास यहां पर उपस्थित हूं, आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना होगा ?" ॥ ३८ ॥

तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते ।
उपधानं कुरुश्रेष्ठ फल्गुनोपनयस्व मे ।
शयनस्यानुरूपं हि शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे ॥ ३९ ॥

अर्जुनकी बात सुनके शान्तनुनन्दन भीष्म फिर बोले– हे तात ! कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! मेरा सिर नीचे लटका जाता है, इससे तुम मेरे सिरके नीचे कोई योग्य वस्तु प्रदान करो । हे वीर अर्जुन ! मेरे वीर शय्याके योग्य मेरे सिरके नीचे तकिया लगा दो ॥ ३९ ॥

त्वं हि पार्थ महाबाहो श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ।
क्षत्रधर्मस्य वेत्ता च बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः ॥ ४० ॥

हे कुन्तीकुमार महाबाहो ! तुम इस कार्यके करनेमें समर्थ हो, तुम सब धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ हो; क्षत्रिय धर्मके जाननेवाले, बुद्धि और पराक्रमसे युक्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हो ॥ ४० ॥

फल्गुनस्तु तथेत्युक्त्वा व्यवसायपुरोजवः ।
प्रगृह्यामन्त्र्य गाण्डीवं शरांश्च नतपर्वणः ॥ ४१ ॥

अर्जुनने 'जो आज्ञा' कहकर भीष्मकी आज्ञा मान उनके अभिप्रायके अनुसार कार्य करनेके निमित्त तैयार हुए । उन्होंने गाण्डीव धनुष लेकर उसे अभिमन्त्रित कर, सन्नतपर्व युक्त तीन बाणोंके धनुषपर रक्खा ॥ ४१ ॥

अनुमान्य महात्मानं भरतानाममध्यमम् ।
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरुदगृह्णाच्छिरः शरैः ॥ ४२ ॥

फिर महात्मा भरतकुलके श्रेष्ठ पितामह भीष्मकी अनुमति पाकर उन अत्यन्त वेगशाली तीन तीक्ष्ण बाणोंसे ही भीष्म पितामहके सिरको धारण किया ॥ ४२ ॥

अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना ।
अतुष्यद्भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित् ॥ ४३ ॥

जब सव्यसाची अर्जुनने भीष्मकी इच्छाके अनुसार कार्य किया, तब धर्म अर्थके तत्त्वको जाननेवाले भरतश्रेष्ठ भीष्म पितामह बहुत आनन्दित हुए ॥ ४३ ॥

×

उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद्धनञ्जयम् ।
कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ॥ ४४ ॥

उन्होंने अपने शरशय्याके योग्य तकिया पाकर अर्जुनकी प्रशंसा करके उन्हें आनन्दित किया, और योद्धाओंमें श्रेष्ठ, इष्टमित्रोंके आनन्द और प्रीतिके बढानेवाले, कुन्तीपुत्र अर्जुनसे यह वचन बोले, ॥ ४४ ॥

अनुरूपं शयानस्य पाण्डवोपहितं त्वया ।
यद्यन्यथा प्रवर्तेथाः शपेयं त्वामहं रुषा ॥ ४५ ॥

हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! तुमने मेरे वीरशय्याके योग्य तकिया प्रदान किया है, यदि तुम इसके विपरीत कार्य करते, तो मैं रुष्ट होकर तुम्हें शाप देता ॥ ४५ ॥

एवमेतन्महाबाहो धर्मेषु परिनिष्ठितम् ।
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाजौ शरतल्पगतेन वै ॥ ४६ ॥

हे महाबाहो ! अपने धर्ममें निष्ठा करनेवाले क्षत्रियको युद्धमें इसी भांतिकी शरशय्या पर शयन करना योग्य है ॥ ४६ ॥

एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवेनाभि संस्थितान् ॥ ४७ ॥

भीष्म पितामह अर्जुनसे ऐसा कहके अपने समीप खडे हुए सम्पूर्ण राजा और राजपुत्रोंसे तथा समीपमें स्थित पाण्डवोंसे बोले, ॥ ४७ ॥

शयेयमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः ।
ये तदा पारयिष्यन्ति ते मां द्रक्ष्यन्ति वै नृपाः ॥ ४८ ॥

जब तक सूर्य उत्तरायण मार्गसे गमन नहीं करेंगे, तब तक मैं इसी शरशय्या पर शयन किये रहूंगा । जो सब क्षत्रिय राजा उस समय मेरे समीप आवेंगे, वे लोग मुझे उस समय प्राण त्याग करते हुए देखेंगे ॥ ४८ ॥

दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ।
अर्चिष्मान्प्रतपँल्लोकान्रथेनोत्तमतेजसा ।
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान्सुहृदः सुप्रियानपि ॥ ४९ ॥

दीप्तिमान्, सब लोकोंको तपाते हुए उत्तम तेजस्वी रथसे जब सूर्य कुबेरके निवास स्थान उत्तर दिशाके पथपर आ जायेंगे, उसी समय मैं प्रियतम मित्रके समान अपने अत्यंत प्यारे प्राणोंका त्याग करूंगा ॥ ४९ ॥

परिखा खन्यतामत्र ममावसदने नृपाः
उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः ।
उपारमध्वं संग्रामाद्वैराण्युत्सृज्य पार्थिवाः ॥ ५० ॥

हे राजा लोगो ! इस स्थान पर मेरे निमित्त परिखा खुदवा दो, मैं यहां पर ही सैकडों बाणोंसे व्याप्त रह कर सूर्यकी उपासना करूंगा । हे राजसत्तम ! तुम लोग इस समय आपसकी शत्रुताको त्यागके युद्धसे शान्त होजाओ ॥ ५० ॥

उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ।
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलास्ते सुशिक्षिताः ॥ ५१ ॥

हे राजन् ! अनन्तर शरीरसे बाणको निकालनेकी कलामें कुशल, उत्तम शिक्षा पाए हुए और चिकित्सामें निपुण कई एक चतुर वैद्य, सम्पूर्ण आवश्यक उपकरण और औषधियोंको लेकर भीष्म पितामहके निकट उपस्थित हुए ॥ ५१ ॥

तान्दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच वचनं तदा ।
दत्तदेया विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ॥ ५२ ॥
एवंगते न हीदानीं वैद्यैः कार्यमिहास्ति मे ।
क्षत्रधर्मप्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ॥ ५३ ॥

गङ्गानन्दन भीष्म उन वैद्योंको देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनसे बोले, हे दुर्योधन ! तुम चिकित्सकोंको सम्मानित करके उन्हें धन देकर विदा करो; इस समय मेरी ऐसी अवस्थामें वैद्यका कुछ भी प्रयोजन नहीं है । क्योंकि मैंने क्षत्रिय धर्मके अनुसार प्रशंसित परम श्रेष्ठ गतिको प्राप्त किया ॥ ५२–५३ ॥

नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ।
एतैरेव शरैश्चाहं दग्धव्योऽन्ते नराधिपाः ॥ ५४ ॥

हे राजा लोगो ! इस समय अब मैं शरशय्या पर हूं, अब मेरे लिये वैद्यकी क्या आवश्यकता है ? यह मेरा धर्म नहीं है। अब जो मैं इन सम्पूर्ण तीक्ष्ण-बाणोंके साथ अग्निसे भस्म होऊंगा यही मेरे वास्ते परम धर्म है ॥ ५४ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
वैद्यान्विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ॥ ५५ ॥

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने भीष्मके ऐसे वचन सुन वैद्योंको यथायोग्य धन देके उन सबको मानपूर्वक विदा किया ॥ ५५ ॥

ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ।
स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्यामिततेजसः ॥ ५६ ॥

अनन्तर नाना देशोंके इकट्ठे हुए सम्पूर्ण राजा लोग अत्यन्त तेजस्वी भीष्म पितामहकी धर्म विषयमें परम निष्ठा देखकर बहुत विस्मित हुए ॥ ५६ ॥

उपधानं ततो दत्त्वा पितुस्तव जनेश्वर ।
सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः ॥ ५७ ॥

जनेश्वर ! पाण्डवों सहित सब महारथी कौरवोंने तुम्हारे पिता भीष्मको इस प्रकारसे तकिया प्रदान किया; ॥ ५७ ॥

उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ।
तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ॥ ५८ ॥

अनन्तर सबने मिल सुंदर शरशय्या पर सोये हुए महात्मा भीष्मके निकट जाकर उन्हें प्रणाम करके उनको प्रदक्षिणा की ॥ ५८ ॥

विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ।
वीराः स्वशिबिराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः ।
निवेशायाभ्युपागच्छन्सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ ५९ ॥

सम्पूर्ण वीर योद्धाओंने सब ओरसे भीष्मकी रक्षाका विधान करके, बहुत ही कातर चित्तसे भीष्मकी चिन्ता करते हुए, सांयकालमें रुधिरसे युक्त शरीरवाले उन सबने विश्रामके निमित्त अपने अपने शिबिरोंमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥

निविष्टान्पाण्डवांश्चापि प्रीयमाणान्महारथान् ।
भीष्मस्य पतनाद्धृष्टानुपगम्य महारथान् ।
उवाच यादवः काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ६० ॥

भीष्मके पृथ्वीपर गिर जानेसे महारथी पाण्डवोंके प्रसन्न और हर्षयुक्त चित्तसे शिबिरोंमें पहुंचा देख, महा बलशाली कृष्ण उचित समय जान कर उन सबके निकट जाकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे यह वचन बोले ॥ ६० ॥

दिष्ट्या जयसि कौरव्य दिष्ट्या भीष्मो निपातितः ।
अवध्यो मानुषैरेष सत्यसन्धो महारथः ॥ ६१ ॥

हे कुरुनन्दन भारत ! तुम प्रारब्धसे ही युद्धमें जयी हुए हो; सत्य प्रतिज्ञ महारथी भीष्म मनुष्योंसे अथवा देवताओंसे अवध्य थे, तुमने प्रारब्धसे ही उन्हें निपातित किया है;॥६१॥

अथ वा दैवतैः पार्थ सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ।
त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो घोरेण चक्षुषा ॥ ६२ ॥

अथवा तुम अपनी कोपदृष्टिसे जिसकी ओर देखो, वह कभी जीवित नहीं रह सकता । इससे भीष्म सब शस्त्रोंके जानने वाले होकर भी प्रारब्धके अनुसार तुम्हारे सङ्ग युद्ध करके तुम्हारी घोर कोपदृष्टिसे ही भस्म होते होंगे ॥ ६२ ॥

एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ।
तव प्रसादाद्विजयः क्रोधात्तव पराजयः ।
त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ॥ ६३ ॥

जब कृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहा, तब राजा युधिष्ठिर उनसे बोले, हे कृष्ण ! तुम जिस पर प्रसन्न रहते हो, उस ही का जय होता है; और तुम जिसके ऊपर क्रोध करते हो, उसहीका युद्धमें पराजय होता है । हे कृष्ण ! जो लोग तुम्हारे भक्त और शरणागत हैं, उन्हें कुछभी भय नहीं होता; हम लोग तुम्हारे शरणमें हैं ॥ ६३ ॥

अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव ।
रक्षिता समरे नित्यं नित्यं चापि हिते रतः ।
सर्वथा त्वां समासाद्य नाश्चर्यमिति मे मतिः ॥ ६४ ॥

केशव ! तुम युद्धमें सदा जिसकी रक्षा करते हो, जिसके तुम सदा ही हितैषी हो; उसके विजयका होना कुछ आश्चर्यका विषय नहीं है । मेरे विचारमें जब हम लोगोंने तुमको सब प्रकारसे अपना सहाय पाया है, तब युद्धमें विजय प्राप्त करेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥६४॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः ।
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं वचनं पार्थिवोत्तम ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ ५३२५ ॥

जब धर्मराज युधिष्ठिर कृष्णसे ऐसा वचन बोले, तब जनार्दन कृष्णने हंसके कहा, हे राजसत्तम ! तुमने जैसा वचन कहा है, वह तुम्हारे लिये ही अतियोग्य है ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके भीष्मपर्वमें एक सौ पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥ ५३२५ ॥

: ११६ :

सञ्जय उवाच

व्युष्टायां तु महाराज रजन्यां सर्वपार्थिवाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च अभिजग्मुः पितामहम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! रात्रिके बीतने पर जब सम्पूर्ण राजा, पाण्डव और तुम्हारे पुत्रोंने भीष्म पितामहकी उपासना करनेके निमित्त उनके समीप गमन किया ॥ १ ॥

तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तमम् ।
अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ २ ॥

सम्पूर्ण क्षत्रियश्रेष्ठ पुरुष वीरशय्यापर शयन किये हुए वीर पितामह भीष्मको प्रणाम करके उनके निकट खडे होगये ॥ २ ॥

कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः ।
स्त्रियो बालास्तथा वृद्धाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः ।
समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ॥ ३ ॥

सहस्रों कन्याएं वहां जाकर शान्तनुनन्दन भीष्मके निमित्त चन्दनचूर्ण, लाज और मालाको वहां रखने लगी। स्त्रियां, बालक, बुढे और सर्वसाधारण लोग शान्तनुनन्दन भीष्मको देखने की इच्छासे उनके निकट इस भांतिसे उपस्थित हुए जैसे सम्पूर्ण प्राणी अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यके अनुगामी होते हैं ॥ ३ ॥

तूर्याणि गणिका वारास्तथैव नटनर्तकाः ।
उपानृत्यञ्जगुश्चैव वृद्धं कुरुपितामहम् ॥ ४ ॥

बहुतेरे बाजा बजानेवाले गणिका, वारा, नट और नाच करनेवाले लोगोंने शरशय्या पर शयन किये वृद्ध पितामह भीष्मके निकट गमन किया ॥ ४ ॥

उपारम्य च युद्धेभ्यः संनाहान्विप्रमुच्य च ।
आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः ॥ ५ ॥

कुरु-पाण्डवोंकी सेनाके सब वीर योद्धाओंने मिलकर, युद्धसे निवृत्त हो कवच तथा अस्त्र शस्त्रोंको त्याग कर, ॥ ५ ॥

अन्वासत दुराधर्षं देवव्रतमरिन्दमम् ।
अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः ॥ ६ ॥

महातेजस्वी शत्रुनाशन देवव्रत भीष्म पितामहके निकट गमन किया। वह सब पहिलेकी भांति वहां पहुंचकर प्रीतिपूर्वक यथा योग्य रीतिसे भीष्मके निकट बैठ गये ॥ ६ ॥

सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता ।
शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवादित्यमण्डलम् ॥ ७ ॥

जैसे आकाशमें सूर्यमण्डलकी शोभा दीख पडती है, वैसे ही सैकडों राजाओंसे युक्त भीष्मसे सुशोभित, भरतवंशीय राजाओंकी दीप्तिशालिनी वह सभा शोभित होने लगी ॥ ७ ॥

विबभौ च नृपाणां सा पितामहमुपासताम् ।
देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥ ८ ॥

जैसे ब्रह्माकी उपासना करनेके समय देवताओंकी सभा शोभित होती है, वैसे ही पितामह भीष्मकी उपासना करनेवाले उन राजाओंकी सभा भी प्रकाशित होने लगी ॥ ८ ॥

भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ ।
अभितप्तः शरैश्चैव नातिहृष्टमनाब्रवीत् ॥ ९ ॥

हे भारत ! भीष्म बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर, अपनी वेदनाको धैर्यपूर्वक सहकर, बहुत आनन्दित मन न होते हुए बोले ॥ ९ ॥

शराभितप्तकायोऽहं शरसंतापमूर्छितः ।
पानीयमभिकाङ्क्षेऽहं राज्ञस्तान्प्रत्यभाषत ॥ १० ॥

मेरा शरीर बाणोंकी चोटसे भस्म हो रहा है; मैं बाणोंकी पीडासे मूर्छितप्राय हो रहा हूं । सम्पूर्ण राजाओंको अपने निकटमें उपस्थित देखकर मुझे पानी पीनेकी इच्छा है ऐसा कहा ॥ १० ॥

ततस्ते क्षत्रिया राजन्समाजह्नुः समन्ततः ।
भक्ष्यानुच्चावचांस्तत्र वारिकुम्भांश्च शीतलान् ॥ ११ ॥

राजन् ! अनन्तर उन सब क्षत्रिय राजाओंने चारों ओरसे भोजन करने योग्य बहुतसे उत्तम व्यंजन और अत्यन्त ही उत्तम तथा मीठे और ठण्डे कई एक पानीके घडोंको लाकर उपस्थित किया ॥ ११ ॥

उपानीतं च तद्दृष्ट्वा भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ।
नाद्य तात मया शक्यं भोगान्कांश्चन मानुषान् ॥ १२ ॥

उनके द्वारा लाये हुए उस सामग्रीको देखकर शान्तनुपुत्र भीष्म बोले, हे पुत्रों ! इस समय मैं किसी प्रकारसे मनुष्योंके योग्य भोगोंको नहीं ग्रहण करूंगा ॥ १२ ॥

उपभोक्तुं मनुष्येभ्यः शरशय्यगतो ह्यहम् ।
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥ १३ ॥

मैं इस समय शरशय्या पर पडकर मनुष्योंके योग्य भोगोंसे रहित हो गया हूं; केवल सूर्य-चन्द्रमाके उत्तरायण मार्गसे गमन करनेकी प्रतीक्षासे जीवन धारण कर रहा हूं ॥ १३ ॥

एवमुक्त्वा शान्तनवो दीनवाक्सर्वपार्थिवान् ।
धनंजयं महाबाहुमभ्यभाषत भारत ॥ १४ ॥

हे भारत ! शान्तनुपुत्र भीष्मने सब क्षत्रिय नरेशोंकी निन्दा करनेवाला ऐसा वचन कहके महाबाहु अर्जुनको बोले ॥ १४ ॥

अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम् ।
अतिष्ठत्प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ १५ ॥

अनन्तर महाबाहु अर्जुनने पितामह भीष्मके समीप जाकर उन्हें प्रणाम करके हाथ जोडके उनके संमुख खडे हो गये । अर्जुनने भीष्मसे विनयपूर्वक निवेदन किया, कि कहिये पितामह ! क्या आज्ञा है, मुझे कौनसा कार्य करना होगा ? ॥ १५ ॥

तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याग्रतः स्थितम् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयम् ॥ १६ ॥

राजन् ! धर्मात्मा भीष्म पाण्डुपुत्र अर्जुनको प्रणाम करते और संमुख खडे देखकर बडे प्रसन्न हो यह वचन बोले, ॥ १६ ॥

दह्यतेऽदः शरीरं मे संस्यूतोऽस्मि महेषुभिः ।
मर्माणि परिदूयन्ते वदनं मम शुष्यति ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! तीक्ष्ण बडे बाणोंसे संपूर्ण अंग अत्यंत ही विद्ध हुए हैं, मेरा सब शरीर दग्धसा हुआ जाता है, सारे मर्म स्थानोंमे अत्यंत पीडा हो रही है, मेरा मुख सूखा जाता है ॥१७॥

ह्लादनार्थं शरीरस्य प्रयच्छापो ममार्जुन ।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमम्भो यथाविधि ॥ १८ ॥

हे महाधनुर्द्धारी अर्जुन ! मेरा सम्पूर्ण शरीर अस्त्र शस्त्रोंकी चोटसे अत्यन्त पीडित होरहा है, उसको आनन्द देनेके लिये मुझको तुम पानी लाकर दो । तुम ही इस अवस्थामें मुझे यथा उचित विधिपूर्वक पानी पिलानेमें समर्थ हो, इससे तुम मुझे पीनेके लिये जल प्रदान करो ॥ १८ ॥

अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ १९ ॥

तब बहुत अच्छा कहकर पराक्रमी अर्जुनने भीष्मकी आज्ञा सुनके रथपर चढके, बलपूर्वक गाण्डीव धनुष पर रोदा चढा कर धनुषटङ्कार किया और उसे खींचने लगे ॥ १९ ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि श्रुत्वा सर्वे च पार्थिवाः ॥ २० ॥

सम्पूर्ण राजा और दूसरे सब प्राणी वज्रकी गडगडाहटके समान अर्जुनके गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर भयभीत होगये ॥ २० ॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः ।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २१ ॥

अनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र अर्जुनने शरशय्या पर सोये हुए सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भरतोत्तम भीष्म पितामहको रथ द्वाराही प्रदक्षिणा करके, ॥ २१ ॥

संधाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य महायशाः ।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ।
अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे ॥ २२ ॥

अनन्तर महायशस्वी अर्जुनने एक प्रकाशमान् बाणको सब लोकोंके देखतेही अभिमन्त्रित और पर्जन्यअस्त्रसे युक्त कर धनुष पर चढाके, भीष्मके दाहिनी ओर पार्श्वमें पृथ्वीको विद्ध किया ॥ २२ ॥

उत्पपात ततो धारा विमला वारिणः शिवा।
शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च ॥ २३ ॥
इसके अनन्तर अमृतके समान मधुर दिव्य सुगन्ध और रससे युक्त शीतल जलकी विमल कल्याणमयी धारा पृथ्वीसे उत्पन्न हुई ॥ २३ ॥

अतर्पयत्ततः पार्थः शीतया वारिधारया।
भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमः ॥ २४ ॥
दिव्य कर्म करनेवाले, दिव्य पराक्रमी अर्जुनने उसी शीतल जलधारासे कुरुश्रेष्ठ भीष्मको तृप्त किया ॥ २४ ॥

कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः।
विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः ॥ २५ ॥
तब सम्पूर्ण क्षत्रिय नरेश इन्द्रके समान अर्जुनका यह अद्भुत पराक्रम देखकर अत्यन्त ही विस्मित हुए ॥ २५ ॥

तत्कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषमद्भुतम्।
सम्प्रावेपन्त कुरवो गावः शीतार्दिता इव ॥ २६ ॥
सब कौरवलोग अर्जुनका वह अलौकिक कर्म देखकर शीतसे जकडे हुए गौओंके समान थर थर कांपने लगे ॥ २६ ॥

विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन्सर्वतो नृपाः।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ २७ ॥
सम्पूर्ण राजा अर्जुनका यह कर्म देखकर आश्चर्यसे चकित हो सब ओर अपने उत्तरीयोंको उडाने लगे, तब चारों ओरसे शंख और नगाडे गंभीर ध्वनिसे बजने लगे ॥ २७ ॥

तृप्तः शान्तनवश्चापि राजन्बीभत्सुमब्रवीत्।
सर्वपार्थिववीराणां संनिधौ पूजयन्निव ॥ २८ ॥
राजन् ! शान्तनुपुत्र भीष्म जलसे तृप्त होकर सम्पूर्ण क्षत्रिय वीर राजाओंके सम्मुख अर्जुनकी प्रशंसा करके यह वचन कहने लगे; ॥ २८ ॥

नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन।
कथितो नारदेनासि पूर्वर्षिरमितद्युतिः ॥ २९ ॥
हे कुरुवंशके आनन्दको वढानेवाले महाबाहु अर्जुन ! यह कर्म तुम्हारे निमित्त कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, तुम जो पुरातन अत्यन्त तेजस्वी ऋषि नर हो, उसे देवऋषि नारदने मेरे समीप वर्णन किया था ॥ २९ ॥

×

वासुदेवसहायस्त्वं महत्कर्म करिष्यसि । ॥ ३० ॥
यन्नोत्सहति देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम्
सम्पूर्ण देवताओंके सहित देवराज इन्द्र भी जिन बृहत् कर्मके करनेका उत्साह नहीं कर सकते, तुम नारायणस्वरूप श्रीकृष्णकी सहायतासे उन महान् कर्मको पूर्ण करोगे ॥ ३० ॥

विदुस्त्वां निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः । ॥ ३१ ॥
धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृषु
पार्थ ! ज्ञानी पुरुष तुमको सम्पूर्ण क्षत्रियोंका नाश करनेवाला समझते हैं ॥ तुम पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें प्रधान हो और समस्त पुरुषोंमें भी श्रेष्ठ हो ॥ ३१ ॥

मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां गरुडो वरः । ॥ ३२ ॥
सरसां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम्
इस पृथ्वीमें जैसे सब जीवोंके बीच मनुष्य श्रेष्ठ है, पक्षियोंमें गरुड श्रेष्ठ हैं, सरिताओंमें समुद्र श्रेष्ठ है और चतुष्पाद प्राणियोंमें गौ श्रेष्ठ हैं, ॥ ३२ ॥

आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान्वरः । ॥ ३३ ॥
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम्
जैसे तेजस्वियोंमें सूर्य श्रेष्ठ है, पर्वतोंमें हिमालय श्रेष्ठ है और जातियोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है; वैसे ही धनुर्द्धारियोंके बीच तुम श्रेष्ठ हो ॥ ३३ ॥

न वै श्रुतं धार्तराष्ट्रेण वाक्यं संबोध्यमानं विदुरेण चैव । ॥ ३४ ॥
द्रोणेन रामेण जनार्दनेन मुहुर्मुहुः सञ्जयेनापि चोक्तम्
मैं, विदुर, द्रोणाचार्य, जमदग्निके पुत्र परशुराम, भगवान् जनार्दन कृष्ण और सञ्जय आदि हम सब लोगोंने बार बार दुर्योधनको युद्धसे निवारण किया था; परंतु दुर्योधनने हम लोगोंकी बातें नहीं सुनीं ॥ ३४ ॥

परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो दुर्योधनो नाभ्यनन्दद्वचो मे । ॥ ३५ ॥
स शेष्यते वै निहतश्चिराय शास्त्रातिगो भीमबलाभिभूतः
विपरीत बुद्धि दुर्योधनने अज्ञान पुरुषके समान होकर, हम लोगोंके वचनोंको माना नहीं। वह सदा ही शासनके मर्यादासे बाहर रहता है, इससे शीघ्र ही भीमसेनके बलसे पराजित हो मारा जाकर युद्धभूमिमें दीर्घकालके लिये सो जायगा ॥ ३५ ॥

ततः श्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो दुर्योधनो दीनमना बभूव । ॥ ३६ ॥
तमब्रवीच्छांतनवोऽभिवीक्ष्य निबोध राजन्भव वीतमन्युः
अनन्तर भीष्मकी यह बात सुनकर कौरवराज दुर्योधन दीनचित्त होकर दुःखित हुए। दुर्योधनको दुःखित देखकर शान्तनुनन्दन भीष्म पितामह उसकी ओर देखकर बोले, हे राजन् ! क्रोधको त्यागकर मेरे वचनोंको सुनो ॥ ३६ ॥

दृष्टं दुर्योधनेदं ते यथा पार्थेन धीमता ।
जलस्य धारा जनिता शीतस्यामृतगन्धिनः ।
एतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन्नान्यः कश्चन विद्यते ॥ ३७ ॥

दुर्योधन ! बुद्धिमान् अर्जुनने जो शीतल, दिव्य गन्धयुक्त अमृतके समान पृथ्वीसे जलधारा उत्पन्न की, उसे तुमने नेत्रोंसे प्रत्यक्ष देखा; ऐसा कर्म कर सके इस प्रकारका कोई भी पुरुष इस पृथ्वीपर नहीं है ॥ ३७ ॥

आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ।
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ।
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ॥ ३८ ॥

आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य और प्राजापत्य, विधाता, त्वष्टा और सविताके सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र ॥ ३८ ॥

सर्वस्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः ।
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नान्यो वै वेद कश्चन ।
न शक्याः पाण्डवास्तात युद्धे जेतुं कथञ्चन ॥ ३९ ॥

इस मर्त्य लोकके बीच एक अर्जुन और देवकी पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ही जानते हैं, दूसरा कोई भी नहीं जानता है। हे तात ! पाण्डवोंको तुम युद्धमें किसी प्रकार भी जीत नहीं सकोगे ॥ ३९ ॥

अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः ।
तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाहवशोभिना ।
कृतिना समरे राजन्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४० ॥

जिस महात्माके ये अलौकिक कर्म तुमने देखे हैं, जो धैर्यवान्, युद्धमें शूर और संग्राममें सुशोभित होनेवाले हैं, राजन् ! इससे युद्धके सब कार्योंको जाननेवाले पराक्रमी अर्जुनके सङ्ग समरमें तुम्हारी शीघ्र ही सन्धि होनी उचित है ॥ ४० ॥

यावत्कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसंसदि ।
तावत्पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४१ ॥

हे तात ! जबतक महाबाहु कृष्ण कुरु लोगोंके प्रेमके अधीन हैं, उतने ही समयमें तुम शूरवीर अर्जुनके सङ्गमें संधि स्थापन करो ॥ ४१ ॥

यावच्चमूं न ते शेषां शरैः संनतपर्वभिः ।
नाशयत्यर्जुनस्तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४२ ॥

तात ! जबतक अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी शेष सेनाका विनाश नहीं कर डालते हैं, तभी तक तुम पाण्डवोंके सङ्गमें सन्धि स्थापन करो ॥ ४२ ॥